महावीर: मेरी दृष्टि में

प्रवचन-क्रम

1. महावीर से प्रेम...3
2. महावीर की समसामयिकता...24
3. तथ्य और महावीर-सत्य..54
4. संयम नहीं--महावीर-विवेक...68
5. सत्य की महावीर-उपलब्धि..99
6. अभिव्यक्ति की महावीर-साधना...115
7. अनुभूति की महावीर-अभिव्यक्ति...141
8. तीर्थंकर महावीरः अनुभूति और अभिव्यक्ति...................................156
9. प्रतिक्रमणः महावीर-सूत्र..190 10..अप्रमादः महावीर-धर्म
.... 206
11..सामायिकः महावीर-साधना
.... 237
12..कर्म-सिद्धांतः महावीर-व्याख्या
.... 255
13...जाति-स्मरणः महावीर-उपाय
.... 289
14..महावीरः परम समर्पित व्यक्तित्व
.... 309
15...महावीरः अस्तित्व की गहराइयों में
.... 325
16....................................महावीरः अनादि, अनीश्वर और स्वयंभू अस्तित्व
.... 359
17...महावीर के मौलिक योगदान
.... 378
18..वासना-चक्र के बाहर महावीर-छलांग
.... 409
19..महावीरः सत्य अनेकांत
.... 425
20...महावीरः परम-स्वातंष्य की उदघोषणा
.... 444
21...अनेकांतः महावीर का दर्शन-आकाश
.... 465
22..जागा सो महावीरः सोया सो अमहावीर
.... 491

23..महावीरः आत्यंतिक स्वतंत्रता के प्रतीक 506

24...दुख, सुख और महावीर-आनंद 522

25...महावीरः मेरी दृष्टि में 538

2

महावीर: मेरी दृष्टि में पहला प्रवचन

महावीर से प्रेम

मैं महावीर का अनुयायी तो नहीं हूं, प्रेमी हूं। वैसे ही जैसे क्राइस्ट का, कृष्ण का, बुद्ध का या लाओत्से का। और मेरी दृष्टि में अनुयायी कभी भी नहीं समझ पाता है।
और दुनिया में दो ही तरह के लोग होते हैं, साधारणतः। या तो कोई अनुयायी होता है, और या कोई विरोध में होता है। न अनुयायी समझ पाता है, न विरोधी समझ पाता है। एक और रास्ता भी है--प्रेम, जिसके अतिरिक्त हम और किसी रास्ते से कभी किसी को समझ ही नहीं पाते। अनुयायी को एक कठिनाई है कि वह एक से बंध जाता है और विरोधी को भी यह कठिनाई है कि वह विरोध में बंध जाता है। सिर्फ प्रेमी को एक मुक्ति है। प्रेमी को बंधने का कोई कारण नहीं है। और जो प्रेम बांधता हो, वह प्रेम ही नहीं है।
तो महावीर से प्रेम करने में महावीर से बंधना नहीं होता। महावीर से प्रेम करते हुए बुद्ध को, कृष्ण को, क्राइस्ट को प्रेम किया जा सकता है। क्योंकि जिस चीज को हम महावीर में प्रेम करते हैं, वह और हजार-हजार लोगों में उसी तरह प्रकट हुई है।
महावीर को थोड़े ही प्रेम करते हैं। वह जो शरीर है वर्धमान का, वह जो जन्मतिथियों में बंधी हुई एक इतिहास रेखा है, एक दिन पैदा होना और एक दिन मर जाना, इसे तो प्रेम नहीं करते हैं। प्रेम करते हैं उस ज्योति को जो इस मिट्टी के दीए में प्रकट हुई। यह दीया कौन था, यह बहुत अर्थ की बात नहीं। बहुत-बहुत दीयों में वह ज्योति प्रकट हुई है।
जो ज्योति को प्रेम करेगा, वह दीए से नहीं बंधेगा; और जो दीए से बंधेगा, उसे ज्योति का कभी पता नहीं चलेगा। क्योंकि दीए से जो बंध रहा है, निश्चित है कि उसे ज्योति का पता नहीं चला। जिसे ज्योति का पता चल जाए उसे दीए की याद भी रहेगी? उसे दीया फिर दिखाई भी पड़ेगा?
जिसे ज्योति दिख जाए, वह दीए को भूल जाएगा। इसलिए जो दीए को याद रखे हैं, उन्हें ज्योति नहीं दिखाई दी। और जो ज्योति को प्रेम करेगा, वह इस ज्योति को, उस ज्योति को थोड़े ही प्रेम करेगा! जो भी ज्योतिर्मय है--जब एक ज्योति में दिख जाएगा उसे, तो कहीं भी ज्योति हो, वहीं दिख जाएगा। सूरज में भी, घर में जलने वाले छोटे से दीए में भी, चांद-तारों में भी, आग में--जहां कहीं भी ज्योति है, वहीं दिख जाएगा।
लेकिन अनुयायी व्यक्तियों से बंधे हैं, विरोधी व्यक्तियों से बंधे हैं। प्रेमी भर को व्यक्ति से बंधने की कोई जरूरत नहीं। और मैं प्रेमी हूं। और इसलिए मेरा कोई बंधन नहीं है महावीर से। और बंधन न हो तो ही समझ हो सकती है, अंडरस्टैंडिंग हो सकती है।
यह भी ध्यान में रखना जरूरी है कि महावीर को चर्चा के लिए क्यों चुना? बहाना है सिर्फ। जैसे एक खूंटी होती है, कपड़ा टांगना प्रयोजन होता है, खूंटी कोई भी काम दे सकती है। महावीर भी काम दे सकते हैं ज्योति के स्मरण में--बुद्ध भी, कृष्ण भी, क्राइस्ट भी। किसी भी खूंटी से काम लिया जा सकता है। स्मरण उस ज्योति का जो हमारे दीए में भी जल सकती है।
स्मरण मैं महान मानता हूं, अनुकरण नहीं। और स्मरण भी महावीर का जब हम करते हैं, तो भी महावीर का स्मरण नहीं है वह, स्मरण है उस तत्व का, जो महावीर में प्रकट हुआ। और उस तत्व का स्मरण आ जाए तो तत्काल स्मरण आत्म-स्मरण बन जाता है। और वही सार्थक है, जो आत्म-स्मरण की तरफ ले जाए।
लेकिन महावीर की पूजा से यह नहीं होता। पूजा से आत्म-स्मरण नहीं आता। बड़े मजे की बात है, पूजा आत्म-विस्मरण का उपाय है। जो अपने को भूलना चाहते हैं, वे पूजा में लग जाते हैं। और उनके लिए भी महावीर खूंटी का काम देते हैं, बुद्ध, कृष्ण, सब खूंटी का काम देते हैं। जिसे अपने को भूलना ही हो, वह अपने भूलने का वस्त्र उनकी खूंटी पर टांग देता है। अनुयायी, भक्त, अंधे, अनुकरण करने वाले भी महावीर, बुद्ध, कृष्ण की खूंटियों का उपयोग कर रहे हैं आत्म-विस्मरण के लिए! पूजा, प्रार्थना, अर्चना--सब विस्मरण हैं।

स्मरण बहुत और बात है। स्मरण का अर्थ है कि हम महावीर में उस सार को खोज पाएं, देख पाएं--किसी रूप में, कहीं पर भी--वह सार हमें दिख जाए, उसकी एक झलक मिल जाए, उसका एक स्मरण आ जाए कि ऐसा भी हुआ है, ऐसा भी किसी व्यक्ति में होता है, ऐसा भी संभव है। यह संभावना का बोध तत्काल हमें अपने प्रति जगा देगा, कि जो किसी एक में संभव है, जो एक मनुष्य में संभव है, वह फिर मेरी संभावना क्यों न बने! और तब हम पूजा में न जाएंगे, बल्कि एक अंतर्पीड़ा में, एक इनर सफरिंग में उतर जाएंगे। जैसे जले हुए दीए को देख कर बुझा हुआ दीया एक आत्म-पीड़ा में उतर जाए, और उसे लगे कि मैं व्यर्थ हूं, मैं सिर्फ नाम मात्र को दीया हूं, क्योंकि वह ज्योति कहां? वह प्रकाश कहां? मैं सिर्फ अवसर हूं अभी जिसमें ज्योति प्रकट हो सकती है, लेकिन अभी हुई नहीं।
लेकिन बुझे हुए दीयों के बीच बुझा हुआ दीया रखा रहे, तो उसे ख्याल भी न आए, पता भी न चले। तो करोड़ बुझे हुए दीयों के बीच में भी जो स्मरण नहीं आ सकता, वह एक जले हुए दीए के निकट आ सकता है।
महावीर या बुद्ध या कृष्ण का मेरे लिए इससे ज्यादा कोई प्रयोजन नहीं
है कि वे जले हुए दीए हैं। और उनका ख्याल और उनके जले हुए दीए की ज्योति की लपट एक बार भी हमारी आंखों में कौंध जाए, तो हम फिर वही आदमी नहीं हो सकेंगे, जो हम कल तक थे। क्योंकि हमारी एक नई संभावना का द्वार खुलता है, जो हमें पता ही नहीं था कि हम हो सकते हैं। उसकी प्यास जग गई। यह प्यास जग जाए, तो कोई भी बहाना बनता हो, उससे कोई प्रयोजन नहीं। तो मैं महावीर को भी बहाना बनाऊंगा, कृष्ण को भी, क्राइस्ट को भी, बुद्ध को भी, लाओत्से को भी। फिर हममें बहुत तरह के लोग हैं। और कई बार ऐसा होता है कि जिसे लाओत्से में ज्योति दिख सकती है, उसे हो सकता है बुद्ध में ज्योति न दिखे। और यह भी हो सकता है कि जिसे महावीर में ज्योति दिख सकती है, उसे लाओत्से में ज्योति न दिखे। एक बार अपने में ज्योति दिख जाए, तब तो लाओत्से, बुद्ध का मामला ही नहीं है, तब तो सड़क पर चलते हुए साधारण आदमी में भी ज्योति दिखने लगती है। तब तो फिर ऐसा आदमी ही नहीं दिखता, जिसमें ज्योति न हो। तब तो आदमी बहुत दूर की बात है, पशु-पक्षी में भी वही ज्योति दिखने लगती है। पशु-पक्षी भी बहुत दूर की बात है, पत्थर में भी वह ज्योति दिखने लगती है। एक बार अपने में दिख जाए, तब तो सबमें दिखने लगती है। लेकिन जब तक स्वयं में नहीं दिखी है, तब तक जरूरी नहीं है कि सभी लोगों को महावीर में ज्योति दिखे।
उसके कारण हैं। व्यक्ति-व्यक्ति के देखने के ढंग में भेद है। और व्यक्ति-व्यक्ति की ग्राहकता में भेद है। और व्यक्ति-व्यक्ति के रुझान और रुचि में भेद है। एक सुंदर युवती है, जरूरी नहीं सभी को सुंदर मालूम पड़े। मजनूं को पकड़ लिया था उसके गांव के सम्राट ने। और मजनूं की पीड़ा की खबरें उस तक पहुंची थीं। उसका रात देर तक वृक्षों के नीचे रोना और चिल्लाना, उसकी आंखों से बहते हुए आंसू। गांव भर में उसकी चर्चा। तो सम्राट ने दया करके उसे बुला लिया और कहा कि तू पागल हो गया है? लैला को मैंने भी देखा है, ऐसा क्या है? बहुत साधारण है। उससे सुंदर लड़कियां तेरे लिए मैं इंतजाम कर दूंगा। दस लड़कियां बुला ली थीं उसने। कतार लगवा दी थी द्वार के सामने कि देख!
नगर की सुंदरतम लड़कियां वहां उपस्थित थीं, राजा का निमंत्रण था। लेकिन मजनूं ने देखा तक नहीं और मजनूं खूब हंसने लगा और उसने कहा कि आप समझे नहीं। लैला को देखने के लिए मजनूं की आंख चाहिए। और वह आंख आपके पास नहीं। तो हो सकता है, लैला आपको साधारण दिखे। लैला में मैं ही देख सकता हूं असाधारण, मैं मजनूं हूं।
मजनूं की आंख लैला को पैदा करती है, आविष्कार करती है, उदघाटन करती है। यानी लैला होने के लिए एक मजनूं चाहिए। नहीं तो लैला लैला भी नहीं होती, उसका पता भी नहीं चलता, उसका आविष्कार भी नहीं होता।
और एक-एक व्यक्ति में बुनियादी भेद है। इसलिए दुनिया में इतने तीर्थंकर, इतने अवतार, इतने गुरु हैं। और इसलिए ऐसा हो सकता है कि बुद्ध और महावीर जैसे व्यक्ति एक ही गांव में एक ही दिन ठहरे और गुजरे हों, एक ही इलाके में वर्ष-वर्ष घूमे हों, फिर भी गांव में किन्हीं को बुद्ध दिखाई

पड़े हों, किन्हीं को महावीर दिखाई पड़े हों और किन्हीं को दोनों न दिखाई पड़े हों।
तो जब मैं कुछ देखता हूं, तो जो है, दिखाई पड़ रहा है, वही महत्वपूर्ण नहीं है, मेरे पास देखने की एक, एक विशिष्ट दृष्टि है। और वह प्रत्येक व्यक्ति की अलग है। किसी को महावीर में वह ज्योति दिखाई पड़ सकती है। और तब इस बेचारे की मजबूरी है। हो सकता है वह कहे कि बुद्ध में कुछ भी नहीं। और वह कहे, जीसस में क्या है? मोहम्मद में क्या है? लेकिन उसकी नासमझी है। वह जरा जल्दी कर रहा है। वह बहुत सहानुभूतिपूर्ण नहीं मालूम हो रहा है, वह समझ नहीं रहा है। और जब कोई उससे कहेगा कि महावीर में कुछ भी नहीं है, तो वह क्रोध से भर जाएगा। अब भी वह नहीं समझ पा रहा है कि जब मैं कहता हूं कि जीसस में कुछ नहीं दिखाई पड़ता, तो हो सकता है कि किसी को महावीर में कुछ भी न दिखाई पड़े। महावीर में जो है, उसे देखने के लिए एक विशिष्ट आंख चाहिए।
और जमीन पर भिन्न-भिन्न तरह के लोग हैं। बहुत भिन्न-भिन्न तरह के लोग हैं। कोई उनकी जातियां बनाना भी मुश्किल है, इतने भिन्न तरह के लोग हैं। लेकिन एक बार दिख जाए फ्लेम--तब सब भिन्नताएं खो जाती हैं। सब भिन्नताएं दीयों की भिन्नताएं हैं, ज्योति की भिन्नता नहीं है। दीए भिन्न-भिन्न हैं, बहुत-बहुत आकार के हैं, बहुत-बहुत रूप के हैं, बहुत-बहुत रंगों के हैं, बहुत-बहुत कारीगरों ने उन्हें बनाया है, बहुत-बहुत उनके स्रष्टा हैं, उनके निर्माता हैं। तो हो सकता है कि जिसने एक ही तरह का दीया देखा हो, दूसरे तरह के दीए को देख कर कहने लगे, यह कैसा दीया? ऐसा दीया होता ही नहीं! लेकिन जिसने एक बार ज्योति देख ली--चाहे कोई भी रूप हो, चाहे कोई भी आकार हो-- जिसने एक बार ज्योति देख ली, दूसरी किसी भी रूप, किसी भी आकार की ज्योति को देख कर वह यह न कह सकेगा, यह कैसी ज्योति है? क्योंकि ज्योतिर्मय का जो अनुभव है, वह आकार का अनुभव नहीं है। और दीए का जो अनुभव है, वह आकार का अनुभव है। ज्योतिर्मय का अनुभव निराकार का अनुभव है।
दीया एक जड़ है, पदार्थ है--ठहरा हुआ, रुका हुआ। ज्योति एक चेतन है, एक शक्ति--जीवंत, भागी हुई। दीया रखा हुआ है। ज्योति जा रही है। और कभी ख्याल किया कि ज्योति सदा ऊपर की तरफ जा रही है! कोई भी उपाय करो, दीए को कैसा ही रखो--आड़ा कि तिरछा, उलटा कि नीचा, छोटा कि बड़ा, इस आकार का कि उस आकार का-- ज्योति है कि बस भागी जा रही है ऊपर को। कैसी भी ज्योति हो, भागी जा रही है ऊपर को। निराकार का अनुभव है ज्योति में--ऊर्ध्वगमन का। वह सतत ऊपर और ऊपर जा रही है।
और कितनी जल्दी ज्योति का आकार खो जाता है, देर नहीं लगती। देख भी नहीं पाते कि आकार खो जाता है। पहचान भी नहीं पाते, आकार खो जाता है। ज्योति कितनी जल्दी छोटा सा आकार लेती है, फिर निराकार में खो जाती है। फिर खोजने चले जाओ, मिलेगी नहीं तुम्हें। थी अभी--अभी थी और अब नहीं है! लेकिन ऐसा कहीं हो सकता है कि जो था, वह अब न हो जाए?
तो ज्योति एक मिलन है आकार और निराकार का। प्रतिपल आकार निराकार में
जा रहा है। हम आकार तक देख पाएं, तो भी हम अभी ज्योति को नहीं देख पाए, क्योंकि वह जो आकार के पार संक्रमण हो रहा है निराकार में, वही है।
और इसलिए ऐसा हो जाता है कि दीयों को पहचानने वाले इन ज्योतियों के संबंध में झगड़ा करते रहते हैं! और दीयों को पकड़ने वाले ज्योतियों के नाम पर पंथ और संप्रदाय बना लेते हैं! और ज्योति से दीए का क्या संबंध है? ज्योति से दीए की संगति भी क्या है? दीया सिर्फ एक अवसर था, जहां ज्योति घटी।
और वह जो ज्योति का आकार दिखा था, वह भी सिर्फ एक अवसर था, जहां से ज्योति निराकार में गई।
वर्धमान तो दीया है, महावीर ज्योति हैं। सिद्धार्थ तो दीया है, बुद्ध ज्योति हैं। जीसस तो दीया है, क्राइस्ट ज्योति हैं। लेकिन हम दीयों को पकड़ लेते हैं। और महावीर के संबंध में सोचते समय वर्धमान के संबंध में सोचने लगते हैं! भूल हो गई। और वर्धमान को जो पकड़ लेगा, वह महावीर को कभी नहीं जान सकेगा। सिद्धार्थ को जो पकड़ लेगा, उसकी बुद्ध से कभी पहचान ही नहीं होगी। और जीसस को, मरियम के बेटे को जिसने पहचाना, वह क्राइस्ट को, परमात्मा के बेटे को कभी नहीं पहचान पाएगा। उससे क्या संबंध है! वे दोनों बात ही अलग

हैं। लेकिन हमने दोनों को इकट्ठा कर रखा है--जीसस-क्राइस्ट, वर्धमान-महावीर, गौतम-बुद्ध--दीए और ज्योति को! और ज्योति का हमें कोई पता नहीं है, दीए को हम पकड़े हैं!
मेरा दीयों से कोई संबंध नहीं है। कोई अर्थ ही नहीं देखता हूं उनमें।
और फिर दीए तो हम हैं ही। इसकी चिंता हमें नहीं करनी चाहिए। दीए हम सब हैं ही, ज्योति हम हो सकते हैं, जो हम अभी नहीं हैं। ज्योति की चिंता करनी चाहिए। तो इधर महावीर को निमित्त बना कर ज्योति का विचार करेंगे। जिनको महावीर की तरफ से ही ज्योति पहचान में आ सकती है, अच्छा है, वहीं से पहचान आ जाए। जिनको न आ सकती हो, उनके लिए कुछ और निमित्त बनाया जा सकता है। सब निमित्त काम दे सकते हैं।
बहुत विशिष्ट हैं महावीर, इसलिए सोचना तो बहुत जरूरी है उन पर। लेकिन विशिष्ट किसी दूसरे की तुलना में नहीं। आमतौर से हम ऐसा ही सोचते हैं कि जब हम कहते हैं कोई व्यक्ति विशिष्ट है, तो हम पूछते हैं, किससे? जब मैं कहता हूं बहुत विशिष्ट हैं महावीर, तो मैं यह नहीं कहता हूं कि बुद्ध से, कि मोहम्मद से। तुलना में नहीं कह रहा हूं। बहुत विशिष्ट हैं इस अर्थ में, जो घटना घटी उससे। यह जो घटना घटी, यह जो ज्योतिर्मय होने की घटना और निराकार में विलीन हो जाने की घटना घटी, उससे विशिष्ट हैं।
उस अर्थ में जीसस विशिष्ट हैं, मोहम्मद विशिष्ट हैं, कन्फ्यूशियस विशिष्ट हैं। उस अर्थ में वही विशिष्ट है, जो आकार को खोकर निराकार में चला गया। यही है विशिष्टता। हम अविशिष्ट हैं, हम साधारण हैं। साधारण इस अर्थ में कि वह घटना अभी नहीं घटी।
दुनिया में दो ही तरह के लोग हैं, साधारण और असाधारण। साधारण से मेरा मतलब है, जो अभी सिर्फ दीया हैं, ज्योति बन सकते हैं। साधारण असाधारण का अवसर है, मौका है, बीज है। और असाधारण वह है, जो ज्योति बन गया और गया वहां-- उस घर की तरफ जहां पहुंच कर शांति है, जहां आनंद है, जहां खोज का अंत है और उपलब्धि है।
इसलिए विशिष्ट जब मैं कह रहा हूं तो मेरा मतलब यह नहीं है कि किसी से विशिष्ट। विशिष्ट जब मैं कह रहा हूं तो मेरा मतलब है साधारण नहीं, असाधारण। हम सब साधारण हैं और हम सब असाधारण हो सकते हैं। और जब तक हम साधारण हैं, तब तक हम साधारण के बीच में भी साधारण-असाधारण के जो भेद खड़े करते हैं, वे एकदम नासमझी के हैं।
साधारण बस साधारण ही है, वह चपरासी है कि राष्ट्रपति, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। ये साधारण के ही दो रूप हैं--चपरासी पहली सीढ़ी पर, राष्ट्रपति आखिरी सीढ़ी पर। चपरासी भी चढ़ता जाए तो राष्ट्रपति हो जाए, और राष्ट्रपति उतरता आए तो चपरासी हो जाए। चपरासी चढ़ जाते हैं और राष्ट्रपति उतर आते हैं, दोनों काम चलते हैं। यह एक ही सीढ़ी पर सारा खेल है--साधारण की सीढ़ी पर। साधारण की सीढ़ी पर सभी साधारण हैं, चाहे वे किसी भी पायदान पर खड़े हों,
वे किसी भी सीढ़ी पर खड़े हों--नंबर एक की, कि नंबर हजार की, कि नंबर शून्य की--इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। एक सीढ़ी साधारण की है। और इस साधारण की सीढ़ी से जो छलांग लगा जाते हैं, वे असाधारण में पहुंच जाते हैं।
असाधारण की कोई सीढ़ी नहीं है। इसलिए असाधारण दो व्यक्तियों में नीचे- ऊपर कोई नहीं होता। फिर कई लोग पूछते हैं कि बुद्ध ऊंचे कि महावीर? कि कृष्ण ऊंचे कि क्राइस्ट? तो वे अपनी साधारण की सीढ़ी के गणित से असाधारण लोगों को सोचने चल पड़े हैं। और ऐसे पागल भी हैं कि किताबें भी लिखते हैं कि कौन किससे ऊंचा! और उन्हें पता नहीं कि ऊंचे और नीचे का जो ख्याल है, वह साधारण दुनिया का ख्याल है। असाधारण ऊंचा और नीचा नहीं होता। असल में जो ऊंचे-नीचे की दुनिया के बाहर चला जाता है, वही असाधारण है। तो वहां कैसी तौल कि कबीर कहां कि नानक कहां! और ऐसी किताबें हैं और ऐसे नक्शे बनाए हैं लोगों ने कि कौन किस सीढ़ी पर खड़ा है वहां भी! कि कौन आगे है, कौन पीछे है, कौन किस खंड में पहुंच गया है! वह साधारण लोगों की दुनिया है, और साधारण लोगों के ख्याल हैं। वे वहां भी वही सोच रहे हैं!
वहां कोई ऊंचा नहीं है, कोई नीचा नहीं है। असल में ऊंचा और नीचा जहां
तक है, वहां तक दीया है। बड़ा और छोटा जहां तक है, वहां तक दीया है। ज्योति

बड़ी और छोटी होती नहीं। ज्योति या तो ज्योति होती है या नहीं होती। ज्योति बड़ी और छोटी का क्या मतलब है?
और निराकार में खो जाने की क्षमता छोटी ज्योति की उतनी ही है, जितनी बड़ी से बड़ी ज्योति की। और निराकार में खो जाना ही असाधारण हो जाना है। तो छोटी ज्योति कौन? बड़ी ज्योति कौन? छोटी ज्योति धीरे-धीरे खोती है? बड़ी ज्योति जल्दी खो जाती है? यह वैसी ही भूल है... इसे थोड़ा समझ लेना उचित होगा।
हजारों साल तक ऐसा समझा जाता था कि अगर हम एक मकान की छत पर खड़े हो जाएं और एक बड़ा पत्थर गिराएं और एक छोटा पत्थर--एक साथ--तो बड़ा पत्थर जमीन पर पहले पहुंचेगा, छोटा पत्थर पीछे। हजारों साल तक यह ख्याल था, किसी ने गिरा कर देखा नहीं था। क्योंकि यह बात इतनी साफ-सीधी मालूम पड़ती थी और उचित, और तर्कयुक्त, कि कोई यह कहता भी अगर कि चलो जरा छत पर गिरा कर देखें, तो लोग कहते, पागल हो, इसमें भी कोई सोचने की बात है? बड़ा पत्थर पहले गिरेगा। बड़ा मास है, ज्यादा मास है, छोटा पत्थर छोटा सा है, पीछे गिरेगा। बड़ा पत्थर जल्दी आएगा, छोटा पत्थर धीरे आएगा।
लेकिन उन्हें पता नहीं था कि बड़ा पत्थर और छोटा पत्थर का सवाल नहीं है गिरने में, सवाल है ग्रेविटेशन का, सवाल है जमीन की कशिश का। और वह कशिश दोनों पर बराबर काम कर रही है, छोटे और बड़े का उस कशिश के लिए भेद नहीं।
तो जब पहली दफा एक आदमी ने चढ़ कर ‘पिसा’ के टावर पर और गिरा कर देखा--वह अदभुत आदमी रहा होगा--गिरा कर देखे दो पत्थर छोटे और बड़े। और जब दोनों पत्थर साथ गिरे तो वह खुद ही चौंका। उसको भी विश्वास न आया कि ऐसा होगा। बार-बार गिरा कर देखे कि पक्का हो जाए, नहीं तो लोग कहेंगे कि पागल है, ऐसा कहीं हो सकता है!
और जब दौड़ कर उसने विश्वविद्यालय में खबर दी, जिसका वह अध्यापक था, तो अध्यापकों ने कहा कि ऐसा कभी नहीं हो सकता। छोटा और बड़ा पत्थर साथ-साथ कैसे गिर सकते हैं? छोटा पत्थर छोटा है, बड़ा पत्थर बड़ा है। बड़ा पहले गिरेगा, छोटा पीछे गिरेगा। और उन्होंने जाने से इनकार किया! पंडित सबसे ज्यादा जड़ होते हैं। अध्यापक थे, विश्वविद्यालय के पंडित थे, उन्होंने कहा, यह हो ही नहीं सकता। जाने की जरूरत नहीं। देखने कौन जाए? फिर भी, बामुश्किल प्रार्थना करके वह ले गया। और जब पंडितों ने देखा कि बराबर दोनों साथ गिरे, तो उन्होंने कहा, इसमें जरूर कोई जालसाजी है। क्योंकि ऐसा हो कैसे सकता है? या शैतान का कोई हाथ है! ऐसा हो नहीं सकता।
इस उदाहरण को मैं इसलिए कह रहा हूं कि जमीन में एक ग्रेविटेशन है, एक कशिश है, एक गुरुत्वाकर्षण है नीचे खींचने का। और परमात्मा में, निराकार में भी एक ग्रेविटेशन है ऊपर खींचने का, एक कशिश है। यह जो निराकार फैला हुआ है ऊपर, वह चीजों को ऊपर खींचता है। हम जमीन की कशिश को तो पहचान गए हैं, बाकी ऊपर की कशिश को हम नहीं पहचान पाए हैं, क्योंकि जमीन पर हम सब हैं, उस ऊपर की कशिश पर कभी कोई जाता है। और जो जाता है, वह लौटता नहीं, तो कुछ खबर मिलती नहीं। वह जो ऊपर की कशिश है, उसी का नाम ग्रेस है।
इसका ग्रेविटी, उसका ग्रेस; इसका गुरुत्वाकर्षण, उसका प्रभु-प्रसाद। कोई और नाम भी दे दें, उससे कुछ फर्क नहीं पड़ता। वहां छोटी और बड़ी ज्योति का सवाल नहीं है, कोई ज्योति भर बन जाए, बस। छोटी ज्योति उतनी ही गति से चली जाती है जितनी बड़ी ज्योति--बड़ी से बड़ी ज्योति जाएगी। वह ग्रेस खींच लेती है निराकार की। इसलिए वहां कोई छोटा-बड़ा नहीं है, क्योंकि छोटे-बड़े का वहां कोई अर्थ ही नहीं है।
तो बुद्ध या महावीर, कौन बड़ा, कौन छोटा--यह साधारण लोगों की गणित की दुनिया है, जिससे हम हिसाब लगाते हैं। और साधारण गणित की दुनिया से असाधारण लोगों को नहीं तौला जा सकता, इसलिए वहां कोई बड़ा-छोटा नहीं है। साधारण से बाहर जो हुआ, वह बड़े-छोटे की गणना के बाहर हो जाता है।
इसलिए इससे बड़ी भ्रांति कोई और नहीं हो सकती है कि कोई कृष्ण में, कोई क्राइस्ट में, कोई बुद्ध में, महावीर में तौल करने बैठे। कोई कबीर में, नानक में, रमण में, कृष्णमूर्ति में कोई तौल करने बैठे। कौन बड़ा, कौन छोटा? कोई छोटा-बड़ा नहीं है।

लेकिन हमारे मन को बड़ी तकलीफ होती है, अनुयायी के मन को बड़ी तकलीफ होती है। हमने जिसे पकड़ा है, वह बड़ा होना ही चाहिए। और इसीलिए मैंने कहा कि अनुयायी कभी नहीं समझ पाता। समझ ही नहीं सकता। अनुयायी कुछ थोपता है अपनी तरफ से। समझने के लिए बड़ा सरल चित्त चाहिए। अनुयायी के पास सरल चित्त नहीं होता। विरोधी भी नहीं समझ पाता, क्योंकि वह छोटा करने के आग्रह में होता है, अनुयायी से उलटी कोशिश में लगा होता है।
प्रेमी समझ पाता है। इसलिए जिसे भी समझना हो उसे प्रेम करना है। और प्रेम सदा बेशर्त है। अगर कृष्ण को इसलिए प्रेम किया कि तुम मुझे स्वर्ग ले चलना, तो यह प्रेम शर्तपूर्ण हो गया, इसमें कंडीशन शुरू हो गई। अगर महावीर को इसलिए प्रेम किया कि तुम्हीं सहारे हो, तुम्हीं पार ले चलोगे भवसागर के, तो शर्त शुरू हो गई, प्रेम खतम हो गया। प्रेम है बेशर्त। कोई शर्त ही नहीं है। प्रेम यह नहीं कहता कि तुम मुझे कुछ देना। प्रेम का मांग से कोई संबंध ही नहीं है। जहां तक मांग है वहां तक सौदा है, जहां तक सौदा है वहां तक प्रेम नहीं है।
सब अनुयायी सौदा कर रहे हैं, इसलिए कोई अनुयायी प्रेम नहीं कर पाता।
और विरोधी किसी और से सौदा कर रहा है, इसलिए विरोधी हो गया है। और विरोधी भी इसीलिए हो गया है कि उसे सौदे का आश्वासन नहीं दिखाई पड़ता कि ये कृष्ण कैसे ले जाएंगे! तो कृष्ण को उसने छोड़ दिया, इनकार कर दिया। प्रेम का मतलब है बेशर्त। प्रेम का मतलब है वह आंख, जो परिपूर्ण सहानुभूति से भरी है और समझना चाहती है। मांग कुछ भी नहीं है।
तो महावीर को समझने के लिए पहली बात तो मैं यह कहना चाहूंगा, कोई मांग नहीं, कोई सौदा नहीं, कोई अनुकरण नहीं, कोई अनुयायी का भाव नहीं, एक सहानुभूतिपूर्ण दृष्टि कि एक व्यक्ति हुआ, जिसमें कुछ घटा। हम देखें कि क्या घटा, पहचानें कि क्या घटा, खोजें कि क्या घटा। इसलिए जैन कभी महावीर को नहीं समझ पाएगा, उसकी शर्त बंधी है। जैन महावीर को कभी नहीं समझ सकता। बौद्ध बुद्ध को कभी नहीं समझ सकता।
इसलिए प्रत्येक ज्योति के आस-पास जो अनुयायियों का समूह इकट्ठा होता है, वह ज्योति को बुझाने में सहयोगी होता है, उस ज्योति को और जलाने में नहीं! अनुयायियों से बड़ा दुश्मन खोजना बहुत मुश्किल है। इन्हें पता ही नहीं, ये दुश्मनी कर देते हैं।
अब महावीर का जैन होने से क्या संबंध? कोई भी नहीं। महावीर को पता ही न होगा कि वे जैन हैं। और पता होगा तो बड़े साधारण आदमी थे, फिर उस असाधारण दुनिया के आदमी नहीं थे, जिसकी हम बात करते हैं। महावीर को पता भी नहीं हो सकता सपने में कि मैं जैन हूं। न क्राइस्ट को पता हो सकता है कि मैं ईसाई हूं।
और जिनको यह पता है, वे समझ नहीं पाएंगे। क्योंकि जब हम समझने के पहले कुछ हो जाते हैं, तो जो हम हो जाते हैं वह हमारी समझ में बाधा डालता है। जो हम हो जाते हैं, वह हमारी समझ में बाधा डालता है। क्योंकि हम हो पहले जाते हैं, और फिर हम समझने जाते हैं। समझने जाना हो तो खाली मन चाहिए।
इसलिए जो जैन नहीं है, बौद्ध नहीं है, हिंदू नहीं है, मुसलमान नहीं है,
वह समझ सकता है, वह सहानुभूति से देख सकता है, उसकी प्रेमपूर्ण दृष्टि हो सकती है; क्योंकि उसका कोई आग्रह नहीं है। उसका अपना होने का कोई आग्रह नहीं है। और बड़े मजे की बात है कि हम जन्म से ही जैन हो जाते हैं! जन्म से हिंदू हो जाते हैं! मतलब जन्म से ही हमारे धार्मिक होने की संभावना समाप्त हो जाती है।
अगर कभी भी मनुष्य को धार्मिक बनाना हो तो जन्म से धर्म का संबंध बिल्कुल ही तोड़ देना जरूरी है। जन्म से कोई कैसे धार्मिक हो सकता है? और जो जन्म से ही पकड़ लिया किसी धर्म को, अब वह समझेगा क्या? समझने का मौका क्या रहा? अब उसके आग्रह निर्मित हो गए, प्रेज्युडिस, पक्षपात निर्मित हो गए। अब वह महावीर को समझ ही नहीं सकता, क्योंकि महावीर को समझने के पहले महावीर तीर्थंकर हो गए, परम गुरु हो गए, सर्वज्ञ हो गए, परमात्मा हो गए। अब परमात्मा को पूजा जा सकता है, समझा थोड़े ही जा सकता है। तीर्थंकर का गुणगान किया जा सकता है, समझा तो नहीं जा सकता है। समझने के लिए तो अत्यंत सरल दृष्टि चाहिए, जिसका कोई पक्षपात नहीं।

इसलिए मैं कह सकता हूं कि महावीर को समझ सका हूं, क्योंकि मेरा कोई पक्षपात नहीं है, कोई आग्रह नहीं है। लेकिन हो सकता है, जो मेरी समझ है, वह शास्त्रों में न मिले। मिलेगी ही नहीं। न मिलने का कारण पक्का है, क्योंकि शास्त्र उन्होंने लिखे हैं, जो बंधे हैं। शास्त्र उन्होंने लिखे हैं, जो अनुयायी हैं। शास्त्र उन्होंने लिखे हैं, जो जैन हैं। शास्त्र उन्होंने लिखे हैं, जिनके लिए महावीर तीर्थंकर हैं, सर्वज्ञ हैं। शास्त्र उन्होंने लिखे हैं, जिन्होंने महावीर को समझने के पहले कुछ मान लिया है।
मेरी समझ शास्त्र से मेल न खाए... और यह मैं आपसे कहना चाहता हूं कि समझ कभी भी शास्त्र से मेल नहीं खाएगी। समझ और शास्त्र में बुनियादी विरोध रहा है। शास्त्र नासमझ रचते हैं। नासमझ इस अर्थों में कि वे पक्षपातपूर्ण हैं। नासमझ इस अर्थों में कि वे कुछ सिद्ध करने को आतुर हैं। नासमझ इस अर्थों में कि समझने की उतनी उत्सुकता नहीं है, जितनी कुछ सिद्ध करने की। एक व्यक्ति हैं, वे आत्मा के पुनर्जन्म पर शोध करते हैं। मुझे किसी ने उन्हें मिलाया। तो उन्होंने मुझसे कहा... हिंदुस्तान, हिंदुस्तान के बाहर, न मालूम कितने विश्वविद्यालयों में वे बोले हैं। यहां के एक विश्वविद्यालय से संबंधित हैं तो उस विश्वविद्यालय में एक विभाग ही बना रखा है जो पुनर्जन्म के संबंध में खोज करता है। कुछ मित्र उन्हें मेरे पास लाए थे मिलाने। बीस-पच्चीस मित्र इकट्ठे हो गए थे। आते ही उनसे बात हुई तो पहले मैंने उनसे पूछा कि आप क्या कर रहे हैं? तो उन्होंने कहा कि मैं वैज्ञानिक रूप से सिद्ध करना चाहता हूं कि आत्मा का पुनर्जन्म होता है। मैंने उनसे कहा कि एक बात निवेदन करूं, अगर वैज्ञानिक रूप से सिद्ध करना चाहते हैं, ऐसा कहते हैं, तो आप अवैज्ञानिक हो गए। वैज्ञानिक होने की पहली शर्त यह है कि हम कुछ सिद्ध नहीं करना चाहते, जो है उसे जानना चाहते हैं। वैज्ञानिक होना है अगर, तो आपको कहना चाहिए, हम जानना चाहते हैं कि आत्मा का पुनर्जन्म होता है या नहीं होता है? आप कहते हैं, मैं वैज्ञानिक रूप से सिद्ध करना चाहता हूं कि आत्मा का पुनर्जन्म होता है, तो आपने यह तो पहले ही मान लिया है कि पुनर्जन्म होता है, अब सिर्फ सिद्ध करने की बात रह गई है, सो आप उसको वैज्ञानिक रूप से सिद्ध कर रहे हैं। तो अवैज्ञानिक तो आप हो ही गए।
मैंने कहा, इसमें विज्ञान का नाम बीच में मत डालें व्यर्थ। वैज्ञानिक बुद्धि कुछ भी सिद्ध नहीं करना चाहती, जो है, उसे जानना चाहती है। और शास्त्रीय बुद्धि इसीलिए अवैज्ञानिक हो गई है कि वह कुछ सिद्ध करना चाहती है, जो है, उसे जानना नहीं चाहती। जो है, हो सकता है हमारे मानने, समझने, सोचने से बिल्कुल भिन्न हो, विपरीत हो।
तो इसलिए शास्त्रीय बुद्धि का आदमी, परंपरा से बंधा, संप्रदाय से बंधा, भयभीत है, सत्य पता नहीं कैसा हो? और सत्य कोई हमारे अनुकूल ही होगा, यह जरूरी नहीं। और अनुकूल ही होता तो हम कभी के सत्य में मिल गए होते। संभावना तो यही है कि वह प्रतिकूल होगा। हम असत्य हैं, वह प्रतिकूल होगा। लेकिन हम सत्य को अपने अनुकूल ढालना चाहते हैं, और तब सत्य भी असत्य हो जाता है। सब शास्त्रीय बुद्धियां असत्य की तरफ ले जाती हैं।
तो मेरी बात न मालूम कितने तलों पर मेल नहीं खाएगी। मेल खा जाए, यही आश्चर्य है। कहीं खा जाए तो वह संयोग की बात है। न खाना बिल्कुल स्वाभाविक होगा।
फिर शास्त्र से मेरी पकड़ नहीं है।
महावीर को खोजने का एक ढंग तो यह है कि महावीर के संबंध में जो परंपरा
है, जो शास्त्र हैं, जो शब्द हैं, जो संगृहीत है, हम उसमें जाएं। और उस सारी परंपरा के गहरे पहाड़ को तोड़ें, खोदें और महावीर को पकड़ें कि कहां हैं महावीर। महावीर को हुए ढाई हजार साल हुए। ढाई हजार सालों में जो भी लिखा गया महावीर के संबंध में, हम उस सबसे गुजरें और महावीर तक जाएं। यह शास्त्र के द्वारा जाने का रास्ता है, जैसा कि आमतौर से जाया जाता है। लेकिन मैं मानता हूं कि इस मार्ग से कभी जाया ही नहीं जा सकता है। कभी भी नहीं जाया जा सकता। आप जहां पहुंचेंगे, उसका महावीर से कोई संबंध ही नहीं होगा। उसके कारण हैं। वे थोड़े हमें समझ लेने चाहिए।

महावीर ने जो अनुभव किया, किसी ने भी जो अनुभव किया, उसे शब्द में कहना कठिन है--पहली बात। जिसे भी कोई गहरा अनुभव हुआ है, वह शब्द की असमर्थता को एकदम तत्काल जान पाता है कि बहुत मुश्किल हो गई। परमात्मा का, सत्य का, मोक्ष का अनुभव तो बहुत गहरा अनुभव है, साधारण सा प्रेम का अनुभव भी अगर किसी व्यक्ति को हुआ हो, तो वह पाता है कि क्या कहूं, कैसे कहूं?
नहीं, शब्द में नहीं कहा जा सकता। प्रेम के संबंध में अक्सर वे लोग बातें करते रहेंगे, जिन्हें प्रेम का अनुभव नहीं हुआ है। जो प्रेम के संबंध में बहुत आश्वासन से बातें करता हो, समझ ही लेना कि उसे प्रेम का अनुभव नहीं हुआ है। क्योंकि प्रेम के अनुभव के बाद हेजीटेशन आएगा, आश्वासन नहीं रह जाएगा। बहुत डरेगा, वह चिंतित होगा कि कैसे कहूं, क्या कहूं? कहता हूं तो गड़बड़ हो जाती है सब। जो कहना चाहता हूं, वह पीछे छूट जाता है। जो कभी सोचा भी नहीं था, वह शब्द से निकल जाता है। जितनी गहरी अनुभूति, शब्द उतने थोथे और व्यर्थ, क्योंकि शब्द हैं सतह पर निर्मित। और शब्द हैं उनके द्वारा निर्मित, जो सतह पर जीए हैं।
अब तक संतों की कोई भाषा विकसित नहीं हो सकी। जो भाषा है, वह साधारणजनों की है। और साधारणजनों की भाषा में असाधारण अनुभव को डालना ऐसा ही कठिन है, जैसे कि हम संगीत सुनें--जैसे कि हम संगीत सुनें और कोई बहरा आदमी कहे कि संगीत तो मैं सुन नहीं सकता, तो तुम संगीत को पेंट कर दो, चित्र बना दो, तो शायद थोड़ा मैं समझ सकूं। क्या किया जाए संगीत को पेंट करने के लिए? कैसे पेंट करें?
की है कोशिश लोगों ने। राग और रागिनियों को भी चित्रित किया है। लेकिन वे भी उनकी ही समझ में आ सकती हैं, जिन्होंने संगीत सुना हो, बहरे आदमी को वे भी कुछ नहीं समझ पड़तीं। वे भी समझ नहीं पड़तीं। मेघ घिर गए हैं, वर्षा की बूंदें आ गई हैं, और मोर नाचने लगे। और एक लड़की है, और उसकी साड़ी उड़ी जाती है, वह घर की तरफ भागी चली जाती है। उसके पैर के घूंघर बज रहे हैं। अब किसी राग को किसी ने चित्रित किया है। लेकिन बहरे आदमी ने कभी आकाश
के बादलों का गर्जन नहीं सुना, इसलिए चित्र में बादल बिल्कुल ही शांत मालूम पड़ते हैं, उनके गर्जन का कोई सवाल ही नहीं उठता। बहरे आदमी ने कभी पैरों में बंधे घूंघर की आवाज नहीं सुनी। तो घूंघर दिख सकते हैं, पर घूंघर से क्या होगा? क्योंकि जो दिखता है घूंघर, वह घूंघर है ही नहीं।
जो दिखता है, वह दीया है; घूंघर तो कुछ और है जो घटता है। वह जो घूंघर दिखता है, वह नहीं है घूंघर। घूंघर तो कुछ और है, जो घटता है। जो दिखता है वह और है। घूंघर सुना जाता है। और जो दिखता है और सुना जाने में बड़ा फर्क है। एक चीज दिखाई पड़ रही है घूंघर, पैर में बंधे, लेकिन जिसने कभी घूंघर नहीं सुना उसे क्या दिखाई पड़ रहा है? उसे एक चीज दिखाई पड़ रही है, जिसका घूंघर से कोई संबंध नहीं।
वह चित्र बिल्कुल मृत है, क्योंकि उस चित्र से ध्वनि का कोई जन्म उस आदमी को नहीं हो सकता, जिसने ध्वनि नहीं सुनी।
मगर यह भी आसान है, क्योंकि कान और आंख एक ही तल की इंद्रियां हैं। यह इतना कठिन नहीं है। है तो बिल्कुल ही कठिन, लेकिन फिर भी उतना कठिन नहीं है। जब कोई व्यक्ति अतींद्रिय सत्य को जानता है, तो सभी इंद्रियां एकदम व्यर्थ हो जाती हैं और जवाब देने में असमर्थ हो जाती हैं। बोलना पड़ता है इंद्रिय से--और जो जाना गया है, वह वहां जाना गया है, जहां कोई इंद्रिय माध्यम नहीं थी। एक इंद्रिय माध्यम है जानने में तो दूसरी इंद्रिय अभिव्यक्ति में माध्यम नहीं बन पाती। और अगर इंद्रिय माध्यम ही न हो अनुभव का, तो फिर इंद्रिय कैसे अभिव्यक्ति के लिए रास्ता दे सकती है? इसलिए जो जानता है, वह एकदम मुश्किल में पड़ जाता है। बहुत बार तो वह मौन ही हो जाता है। मौन भी बड़ी पीड़ा देता है, क्योंकि लगता है उसे कि कहूं। लगता है कि कह दूं, क्योंकि चारों तरफ वह उन लोगों को देखता है, जिनको भी यह हो सकता है। और उन्हें दुखी देखता है, और आंसुओं से भरी हुई आंखें देखता है। क्लांत चेहरे देखता है, चिंता से भरे हुए हृदय देखता है। चारों तरफ रुग्ण, विक्षिप्त मनुष्य को देखता है। और भीतर देखता है, जहां परम आनंद घटित हो गया है। और उसे लगता है कि इसे भी हो सकता है जो मेरे निकट खड़ा है।

कोई कारण नहीं है, कोई बाधा नहीं है, कोई रुकावट नहीं है। तो इसे कह दूं। और कहने में शब्द एकदम असमर्थ हो जाते हैं।
तो महावीर जैसा व्यक्ति जब बोलता है तो पहला तो झूठ वहां हो जाता है,
जब वह बोलता है। और जो उसने बोला, वह एक प्रतिशत भी वह नहीं है जो उसने जाना। फिर भी वह हिम्मत करता है, साहस जुटाता है, और सोचता है शायद नहीं हजार किरणें पहुंचेंगी, तो एक किरण पहुंचेगी। खबर तो पहुंच जाएगी। वह बोलता है।
अगर महावीर की ही वाणी पकड़ कर कोई महावीर की खोज करने जाए तो भी महावीर नहीं मिलेंगे। ठेठ महावीर को सुन कर ही कोई अगर महावीर की वाणी पकड़ कर खोजने जाए, तो एंगल बिल्कुल बदल जाएगा। जो महावीर की वाणी को ही पकड़ कर महावीर की खोज में जाएगा, वह कहीं पहुंचेगा, जहां महावीर बिल्कुल नहीं होंगे। बिल्कुल चूक कर निकल जाएगा बगल से। बिल्कुल ही चूक जाएगा। क्योंकि शब्द में नहीं जाना है, जो महावीर ने जाना है। वह जाना है निःशब्द में और हमने पकड़ा शब्द। अब शब्द से हम जहां जाएंगे, वह वहां नहीं ले जाने वाला, जहां निःशब्द में जानने वाला गया होगा।
और फिर पच्चीस सौ साल बाद... महावीर का शब्द जिन्होंने सुना, उनमें से जिन्होंने समझा होगा थोड़ा-बहुत, वे मौन में चले गए होंगे। जिनको थोड़ी भी समझ आई होगी और पकड़ आई होगी, और निःशब्द की झलक का जरा सा इशारा मिला होगा, वे निःशब्द में भागे होंगे। जिनकी समझ में नहीं आया होगा, वे शब्द संग्रह करने में भागे होंगे। तो महावीर के पास जो समझा होगा, वह मौन में गया होगा, जो नहीं समझा होगा, वह गणधर बन गया होगा।
अब यह बड़ा उलटा मामला है। आमतौर से हम सोचते हैं कि महावीर के पास जो गणधर हैं, वे उनके सबसे ज्यादा समझने वाले लोग हैं। इससे बड़ा झूठ नहीं हो सकता। महावीर के पास जो सबसे ज्यादा समझने वाला आदमी होगा, वह तो मौन में चला गया होगा। वह तो गया होगा खोजने वहां। और जो सबसे कम समझने वाला है, वह महावीर क्या बोले हैं, उसको दूसरे तक पहुंचाने की व्यवस्था करने में लग गया होगा। तो गणधर वह नहीं है... ।
परिग्रही जो व्यक्ति होगा, वह सब चीज संग्रह करता है--चाहे धन संग्रह करे, चाहे शब्द संग्रह करे, चाहे यश संग्रह करे, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। एक परिग्रह की वृत्ति है मनुष्य के भीतर कि इकट्ठा कर लो। लेकिन कुछ चीजें ऐसी हैं, जिनके इकट्ठे करने में कुछ थोड़ा-बहुत अर्थ भी हो सकता है। जैसे कोई धन इकट्ठा करे, तो धन इकट्ठा करने में थोड़ा अर्थ हो सकता है, क्योंकि धन परिग्रह की वृत्ति से ही पैदा हुआ है, और परिग्रह की वृत्ति का ही वाहन है, और परिग्रह की वृत्ति की ही विनिमय की मुद्रा है। यानी परिग्रही व्यक्ति का ही धन आविष्कार है। तो धन को कोई संग्रह करे तो सार्थक भी है, क्योंकि धन परिग्रह का ही माध्यम है और परिग्रह के लिए ही है। लेकिन जिस अनुभव से महावीर गुजरे हैं, वह अपरिग्रह में घटा। और उनके शब्दों को जो इकट्ठा कर रहा है, वह परिग्रही वृत्ति का व्यक्ति है।
इसलिए अक्सर ऐसा हुआ कि महावीर को उत्सुकता नहीं है शब्द संग्रह की, न बुद्ध को है, न क्राइस्ट को है। नहीं तो महावीर भी किताब लिख सकते हैं। लेकिन महावीर किताब नहीं लिखे, और कृष्ण भी किताब नहीं लिखे, और बुद्ध भी किताब नहीं लिखे, और जीसस भी किताब नहीं लिखे। सिर्फ लाओत्से ने इन असाधारण लोगों में किताब लिखी और वह भी जबरदस्ती में लिखी।
लाओत्से ने अस्सी साल की उम्र तक किताब नहीं लिखी। और लोग कहते रहे कि कुछ लिखो तो वह कहता कि जो लिखूंगा, वह झूठ हो जाएगा और जो लिखना है, वह लिखा नहीं जा सकता। इसलिए इस उपद्रव में मैं नहीं पड़ता। अस्सी साल तक बचा, लेकिन सारे मुल्क में यह भाव पैदा हो गया कि अब बूढ़ा हुआ जाता है, अब मर जाएगा और जो जानता है वह खो जाएगा। फिर लाओत्से अंतिम उम्र में पर्वतों की तरफ चला गया। उसका पता नहीं, वह कब मरा, उसका कुछ पता नहीं। वह पर्वतों में चला गया सब छोड़-छाड़ कर। उसने कहा, इसके पहले कि मृत्यु छीने, मुझे खुद ही चला जाना चाहिए। आखिर मृत्यु की प्रतीक्षा भी क्यों करनी! इतना परवश भी क्यों होना!
तो वह जब चीन की सीमा-रेखा छोड़ने लगा, तो चीन के सम्राट ने उसको रुकवा लिया अपनी चुंगी-चौकी पर, और कहा कि टैक्स चुकाए बिना नहीं जाने देंगे। तो

लाओत्से ने कहा, कैसा टैक्स? न हम कोई सामान ले जाते बाहर, न कुछ लाते; अकेले जाते हैं, खाली हैं। सच तो यह है कि जिंदगी भर से खाली हैं, कुछ सामान कभी था ही नहीं जिस पर टैक्स देना पड़े। टैक्स कैसा?
सम्राट ने बहुत मजाक की उससे, और कहा कि टैक्स तो बहुत-बहुत लिए जाते हो, इतनी संपत्ति कभी कोई आदमी ले ही नहीं गया है। सब कुछ न कुछ दे जाते हैं, तुम बोलते ही नहीं हो कि क्या तुम्हारे भीतर है। वह सब चुका दो। कम से कम टैक्स दे दो, संपत्ति मत दो। कम से कम टैक्स तो दे जाओ, नहीं तो हम क्या कहेंगे कि एक आदमी के पास था और बिल्कुल ले गया। बिल्कुल ले गया चुपचाप। ऐसा नहीं हो सकता, हम चुंगी-चौकी के बाहर नहीं जाने देंगे।
जबरदस्ती लाओत्से को रोक लिया। वह भी हंसा, उसने कहा, बात तो शायद ठीक
ही है। ले तो जाता हूं। लेकिन देने का कोई उपाय नहीं है, इसलिए ले जाता हूं। और कोई... देना मैं भी चाहता हूं। अगर तुम कहते हो तो... ।
तो उसने एक छोटी सी किताब लिखी है। उस तरह के असाधारण लोगों में लिखने वाला वह अकेला आदमी है। पर पहला ही वाक्य यह लिखाः कि बड़ी भूल हुई जाती है, जो कहना है, वह कहा नहीं जा सकता; और जो नहीं कहना है, वही कहा जाएगा। सत्य बोला नहीं जा सकता, जो बोला जा सकता है, वह सत्य हो नहीं सकता। बड़ी भूल हुई जाती है। और मैं इसको जान कर लिखने बैठा हूं, इसलिए जो भी आगे पढ़ो, इसको जान कर पढ़ना। जो भी आगे पढ़ो मेरी किताब में, इसे जान कर पढ़ना कि सत्य बोला नहीं जा सकता, कहा नहीं जा सकता; और जो कहा जा सकता है, वह सत्य हो नहीं सकता। दैट व्हिच कैन बी सेड, इज़ नाट दि ताओ; वह जो कहा जा सकता है, वह सत्य नहीं है। इसे पहले समझ लेना, फिर किताब पढ़ना।
तो किसी ने किताब लिखी नहीं। जिसने लिखी, उसने यह शर्त पहले लगा दी। यानी सच तो यह है कि जो समझ जाएगा, वह इसके आगे किताब पढ़ेगा ही नहीं। मामला ही यह है। लाओत्से होशियार आदमी मालूम होता है। राजा समझा कि हम चुंगी लिए ले रहे हैं, वह गलती में पड़ गया। जो समझेगा वह इसके आगे किताब पढ़ेगा नहीं। बात खतम हो गई। जो नहीं समझेगा, वह पढ़ता रहे, उससे कोई मतलब भी नहीं। तो नासमझ किताबें पढ़ रहे हैं, समझदार रुक जाते हैं।
बुद्ध, महावीर जैसे लोगों ने किताब लिखी नहीं। कारण हैं बहुत। पक्का नहीं है कि जो कहना है, वह कहा जा सकता है। फिर भी कहा। कहने का माध्यम उन्होंने चुना, लिखने का नहीं चुना। उसका भी कारण है। क्योंकि कहने का माध्यम प्रत्यक्ष है, आमने-सामने है। और मैं गया, आप गए, कि खो गया। लिखने का माध्यम स्थायी है, आमने-सामने नहीं है, परोक्ष है। न मैं रहूंगा, न आप रहेंगे, वह रहेगा। वह हमसे स्वतंत्र होकर रह जाएगा।
कहने में भूल होती है, लेकिन फिर भी सामने है आदमी। अगर मैं कुछ कह रहा हूं तो आप मुझे देख रहे हैं, मेरी आंख को देख रहे हैं। मेरी तड़प, मेरी पीड़ा को भी देख रहे हैं। मेरी मुसीबत भी देख रहे हैं कि कुछ है, जो कि नहीं कहा जा सकता, तो हो सकता है आप थोड़ा समझ जाएं। लेकिन एक किताब है। फिर तो न आंख है, न तड़प है, न पीड़ा है। सब साफ-सुथरा, सीधा है। फिर किताब बचती है।
इनमें से किसी ने भी यह फिक्र नहीं की कि बचे। इन सबकी फिक्र यह थी कि
कह दें तो बात खतम हो जाए। इससे ज्यादा उसको बचाना नहीं है। लेकिन बचा ली गई। बचाने वाले लोग खड़े हो गए। उन्होंने कहा, इसको बचाना होगा, बड़ी कीमती चीज है, इसको बचा लो।
उन्होंने बचाने की कोशिश की। फिर उनकी बचाई गई किताब पर किताबें चलती आईं। उनकी बचाई गई किताब पर टीकाएं, टीकाएं होती रहीं। और वह बचाना भी महावीर के ठीक सामने नहीं हो सका। उसका कारण है कि शायद महावीर ने इनकार किया होगा, बुद्ध ने इनकार किया होगा कि यह सामने न हो। लिखना मत! तो तीन-तीन सौ, चार-चार सौ, पांच-पांच सौ वर्ष बाद हुआ। यानी जो लिखा गया है, वह भी सुन कर नहीं लिखा गया है। किसी ने सुना है, फिर किसी ने किसी से कहा है, ऐसे दो-चार पीढ़ी बीत गई हैं, और कहते-कहते-कहते वह लिखा गया है।
तो महावीर ही असमर्थ हैं कहने में। फिर उनको सुनने वाले ने किसी से कहा है, फिर उसने किसी से कहा है, फिर उसने किसी से कहा है, फिर दो-चार-पांच पीढ़ियों के बाद वह लिखा गया। फिर उस लिखे पर टीकाएं चल रही हैं, विवाद चल रहे हैं। वे हमारे पास शास्त्र हैं अब। अगर इन शास्त्रों से--किसी को

महावीर से चूकना हो, तो इससे सुगम उपाय नहीं है, इन शास्त्रों में चला जाए। बस वह महावीर पर नहीं पहुंच सकेगा।
तो मैं कोई शास्त्रों से महावीर तक पहुंचने की न तो सलाह देता हूं, और
न मैं उस रास्ते से उन तक गया हूं, और न मानता हूं कि कोई कभी जा सकता है। तो मैं बिल्कुल ही अशास्त्रीय व्यक्ति हूं। अशास्त्रीय भी कहना ठीक नहीं, एकदम शास्त्र-विरोधी।
फिर महावीर पर पहुंचने का क्या रास्ता है? शास्त्रीय रास्ता दिखाई पड़ता है, इसलिए साधु-संन्यासी शास्त्र खोले हुए खोज रहे हैं कि खोज लें महावीर को। और क्या रास्ता है? और क्या मार्ग है? और अगर सारे शास्त्र खो जाएं, तो साधु-संन्यासियों और पंडितों के हिसाब से महावीर खो जाएंगे। क्या बचाव है? अगर सारे शास्त्र खो जाएं, तो महावीर का क्या बचाव है? महावीर खो जाएंगे।
लेकिन क्या सत्य का अनुभव खो सकता है? क्या यह संभव है कि महावीर जैसी अनुभूति घटे और अस्तित्व के किसी कोने में सुरक्षित न रह जाए? क्या यह संभव है कि कृष्ण जैसा आदमी पैदा हो और सिर्फ आदमी की लिखी किताबों में उसकी सुरक्षा हो? और अगर किताबें खो जाएं तो कृष्ण खो जाएं?
अगर ऐसा है, तो न कृष्ण का कोई मूल्य है, न महावीर का कोई मूल्य है। आदमी के रिकार्ड ही अगर, क्लर्कों के रिकार्ड, गणधरों के रिकार्ड ही अगर सब कुछ हैं, तो ठीक है, किताबें खो जाएंगी और ये आदमी खो जाएंगे।
इतना सस्ता नहीं है यह मामला। इतनी बड़ी घटनाएं घटें जिंदगी में, अरबों-खरबों वर्ष में अरबों-खरबों लोगों के बीच कभी कोई एक आदमी परम सत्य को उपलब्ध होता हो, तो इसके परम सत्य के उपलब्ध होने की घटना सिर्फ कमजोर आदमियों की कमजोर भाषा में सुरक्षित रहे और अस्तित्व में इसकी सुरक्षा का कोई उपाय न हो, ऐसा नहीं है। ऐसा हो भी नहीं सकता।
इसलिए एक और उपाय है। यानी मेरा कहना यह है कि जगत में जो भी महत्वपूर्ण घटता है, महत्वपूर्ण तो बहुत दूर की बात, साधारण गैर-महत्वपूर्ण घटता है, वह भी किन्हीं तलों पर सुरक्षित होता है। महत्वपूर्ण तो सुरक्षित होता ही है, वह तो कभी नष्ट नहीं होता।
इसलिए जो भी महत्वपूर्ण घटा है जगत में कभी भी, वह मनुष्य पर नहीं छोड़ दिया गया है कि आप उसे सुरक्षित करें। यह तो ऐसे ही होगा कि अंधों के एक समाज में एक आदमी को आंख मिल जाए, और उसे प्रकाश दिखाई पड़े, और अंधों के ऊपर निर्भर हो कि तुम उसके अनुभव को सुरक्षित रखना। अंधों पर छूटे यह बात कि तुम्हारे बीच जो एक आंख वाला आदमी पैदा हुआ था, उसे जो अनुभव हुआ, तुम उसे सुरक्षित रखना--तुम वेद बनाना, तुम आगम रचना, तुम गीता लिखना, तुम सुरक्षित रखना। तुम बाइबिल बनाना, तुम सुरक्षित रख लेना।
और अंधे सुरक्षित रख लें। और फिर अंधों पर अंधों की कमेंट्रीज होती चली जाएं, टीकाएं होती चली जाएं। और हजार, दो हजार साल बाद आंख वाले आदमी की देखी गई बात अंधों के द्वारा सुरक्षित की गई हो और अंधों के द्वारा व्याख्याएं की गई हों। और फिर उनके द्वारा हम आंख वाले आदमी की बात को खोजने निकलें, तो हमसे ज्यादा मूढ़ कोई दूसरा नहीं होगा।
तो मैं यह कहना चाहता हूं कि अस्तित्व में कुछ भी खोता नहीं। सच तो यह
है कि अभी भी मैं जो बोल रहा हूं, यह कभी खोएगा नहीं। आप भी जो बोल रहे हैं, वह भी नहीं खोएगा। जो शब्द एक बार पैदा हो गया है, वह तक नहीं खोएगा कभी। आज हम जानते हैं, लंदन में कोई बोल रहा है, तो रेडियो से हम यहां श्रीनगर में उसे सुनते हैं। आज से दो सौ वर्ष पहले नहीं सुन सकते थे। और दो सौ वर्ष पहले कोई मान भी नहीं सकता था कि यह कभी भी संभव होगा कि लंदन में कोई बोलेगा और श्रीनगर में कोई सुनेगा। कोई नहीं मान सकता था। लेकिन क्या आप समझते हैं कि उस दिन लंदन में जो बोला जा रहा था, वह श्रीनगर में नहीं सुना जा रहा था? यानी मेरा मतलब यह है कि उस दिन जो भी ध्वनि-तरंगें लंदन में बोलने से पैदा हो रही थीं, वे श्रीनगर की इस डल झील के पास से नहीं गुजरती थीं?
अगर नहीं गुजरती होतीं तो आज आप रेडियो में भी कैसे पकड़ लेते? अभी भी, यहां से भी गुजर रही हैं सब तरंगें। सारे जगत में अभी जो बोला जा रहा है, वह भी आपके पास से गुजर रहा है। सिर्फ डिवाइस, सिर्फ एक यांत्रिक तरकीब की

जरूरत है, जिससे वह पकड़ा जा सके, बस। यानी मेरा कहना यह है कि कृष्ण ने अगर कभी भी बोला है, तो आज भी उसकी ध्वनि-तरंगें किन्हीं तारों के निकट से गुजर रही हैं।
यह भी ध्यान रहे कि लंदन में जो बोला गया है, ठीक आप उसी वक्त नहीं सुन लेते हैं उसे। क्योंकि ध्वनि-तरंगों को आने में समय लगता है। तो जब लंदन में बोला जाता है, तब आप नहीं सुनते हैं, थोड़ी देर बाद सुनते हैं; ठीक उसी वक्त नहीं सुन लेते हैं, थोड़ी देर बाद सुनते हैं। मतलब यह हुआ कि उतनी देर ध्वनि-तरंगें आप तक यात्रा करती हैं।
जो कभी भी बोला गया है, उसकी ध्वनि-तरंगें आज भी यात्रा करते हुए किन्हीं तारों के पास से गुजर रही हैं। और अगर उन तारों के लोगों के पास व्यवस्था होगी यंत्रों की तो वे उन्हें पकड़ लेते होंगे। यानी किसी तारे पर आज भी महावीर के वचन सुने जा सकते हैं, सुने जा रहे होंगे।
इसका क्या मतलब हुआ? इसके और मतलब हुए। इसका मतलब यह हुआ कि इस अनंत आकाश में--अनंत है इसीलिए कुछ नहीं खोता--जो भी पैदा होता है, वह यात्रा करता रहता है।
यह मैं ध्वनि की बात कर रहा हूं, लेकिन और सूक्ष्म तरंगें हैं, जहां अनुभूति की तरंगें शेष रहती हैं। जब हम बोलते हैं, तब ध्वनि की तरंग पैदा होती है, लेकिन जब हम अनुभव करते हैं, तब भी एक घटना घटती है और तरंगें पैदा होती हैं, जो कि और भी सूक्ष्म आकाश में यात्रा करती हैं। तो अगर रेडियो हो सके तो हम आकाश--स्थूल आकाश में घूमती हुई ध्वनि-तरंगों को पकड़ लेते हैं। अगर और कोई व्यवस्था आंतरिक हो सके तो और सूक्ष्म आकाश में हुए अनुभवों की तरंगों को पुनः पकड़ा जा सकता है। यानी इसका मतलब यह हुआ कि मैं यह कह रहा हूं कि जगत में जो भी श्रेष्ठतम अनुभव हुए हैं, जितने गहरे अनुभव हुए हैं, उतने गहरे आकाश के तल पर उनके रिकार्ड सदा सुरक्षित हैं। वे कभी विनष्ट नहीं होते। और आदमियों पर नहीं छोड़ गया है कि वे किताबें लिख कर उनको सुरक्षित कर लें।
इसका मतलब यह हुआ कि अगर हम उन गहराइयों में अपने भीतर उतरें, यदि हम विशिष्ट ध्यान रख कर उतरें, तो हम विशिष्ट व्यक्तियों की अनुभूति से तत्काल प्रत्यक्ष संबंध जोड़ सकते हैं। लेकिन अगर हम कोई विशिष्ट व्यक्ति का ध्यान रख कर न उतरें, तो हम अपनी ही अंतर-अनुभूति में उतर जाते हैं। अपने भीतर गहरे उतरने वाला व्यक्ति उन ट्यूनिंग्स की भी व्यवस्था कर सकता है, जहां वह महावीर, या बुद्ध, या जीसस, या कृष्ण से संयुक्त हो जाए। संयुक्त होने का मतलब यह नहीं है कि कृष्ण कहीं बैठे हैं, जिनसे संयोग
हो जाएगा। वह दीया तो टूट गया, और वह ज्योति भी खो गई। लेकिन उस ज्योति ने जो अनुभव किया था, उस अनुभव की सूक्ष्म तरंगें अस्तित्व की गहराइयों में आज भी सुरक्षित हैं। और उतनी गहराइयों पर आप उतरें--विशिष्ट ध्यान लेकर। अगर महावीर का पूर्ण ध्यान लेकर आप उस गहराई पर उतरे हैं तो आपके लिए
वे द्वार खुल जाते हैं जहां महावीर की अनुभूतियों की सूक्ष्म तरंगें आपको उपलब्ध हो जाएं। और जब भी दुनिया में कभी इस तरह के अनुभवों से जुड़ा जाता है, तो और कोई जुड़ने का रास्ता नहीं है। इसलिए सब आदमी की किताबें खो जाएं, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। इससे कोई भी फर्क नहीं पड़ता।
एक द्वीप था, महाद्वीप--अटलांटिस। लंबा समय हुआ, वह डूब गया सागर में।
अब वह पृथ्वी पर नहीं है। कभी था। और उसका कोई रिकार्ड शेष नहीं रह गया, क्योंकि रिकार्ड भी डूब गए उस द्वीप के साथ। जैसे कि एशिया डूब जाए--पूरा का पूरा एशिया। परिवर्तन हो और सागर हावी हो जाए, एशिया पूरा डूब जाए। और एशिया के सारे रिकार्ड भी उसके साथ डूब जाएं। और आज तो यह भी है कि एशिया के कुछ रिकार्ड लंदन में भी हैं और न्यूयार्क में भी हैं, जो बच जाएं। उस दिन तो यह भी संभव नहीं था। उस दिन तो हमें पता ही नहीं था दूसरे कुछ का। अटलांटिस नाम का एक महाद्वीप पूरा का पूरा डूब गया, कई करोड़ वर्ष पहले। लेकिन कुछ लोग जो गहराइयों में उतरते रहे, वे निरंतर इसकी खबर देते रहे कि एक महाद्वीप पूरा का पूरा डूब गया है। और वे इसका रिकार्ड करते चले गए। इसके कोई रिकार्ड नहीं बचे, लेकिन इजिप्त के कुछ फकीरों ने, तिब्बत के कुछ साधकों ने, इसके रिकार्ड्स, इस बात के रिकार्ड कि एक पूरा का पूरा महाद्वीप डूब गया है, यह मेरे अनुभव में आता है। बहुत पहले डूब गया है। और

इसकी, कुछ आंतरिक खोज करने वाले लोग इसकी निरंतर खोज में लगे रहे कि वह कैसा द्वीप था? कैसे लोग थे? कैसी उनकी व्यवस्था थी?
और आप जान कर हैरान होंगे कि कुछ लोगों ने निरंतर मेहनत करके, सिर्फ अंतर-अनुभव से, उस महाद्वीप के सारे के सारे नक्शे वापस निर्मित किए। अगर यह एक आदमी ने नक्शे निर्मित किए--उस जाति के लोगों के चेहरे, उस जाति का धर्म, उस जाति की मान्यताएं, ख्याल, अनुभूतियां, इन पर सारा का सारा इंतजाम किया--अगर एक व्यक्ति करे तो बड़ा मुश्किल था, क्योंकि इसका पक्का कैसे माना जाए कि यह आदमी कल्पना नहीं कर रहा है? कल्पना कर सकता है। लेकिन अलग-अलग लोगों ने इसके प्रयोग किए और निकटतम सहमतियों पर पहुंच गए कि वह नक्शा ऐसा होगा। और धीरे-धीरे इन लोगों के दबाव में... ।
वैज्ञानिक तो पहले बिल्कुल इनकार किए कि यह कभी हो ही नहीं सकता, क्योंकि इसका कोई रिकार्ड ही नहीं। ऐसा कोई द्वीप कभी रहा नहीं-- महाद्वीप। इसका कोई हिसाब ही नहीं है कहीं भी। लेकिन ये लोग अपना काम करते चले गए और इन लोगों के दबाव में अंततः वैज्ञानिकों को भी चिंतना पड़ी कि कुछ हो सकता है। और इसकी खोज-बीन वैज्ञानिक ढंगों से की गई और पता चला कि ऐसा एक महाद्वीप निश्चित ही डूबा और वह आज भी समुद्र के तल में पड़ा हुआ है। और जहां इन मिस्टिक्स ने कहा था कि वह है, वह करीब-करीब वहां है। और उसके ऊपर बड़ी गहराई की पानी की पर्तें हैं। और इन्होंने जो कहा था कि उसमें इस तरह के पहाड़ होने चाहिए, इन-इन रेखाओं पर, वहां पहाड़ भी हैं। इसका भी वैज्ञानिक अनुसंधान चला। और अब अटलांटिस पर बड़ी खोज चलती है कि क्या वहां से कुछ उपलब्ध हो सकेगा?
लेकिन इसकी पहली खबर देने वाले वे लोग थे, जिनके पास कोई... कोई मतलब न था, और उनकी बात ही बिल्कुल झूठ समझी गई। वह जो अटलांटिक महासागर है, उसके नीचे अटलांटिस डूबा हुआ है।
यह मैं इसलिए कह रहा हूं कि मैं आपको यह ख्याल दिला सकूं कि मेरा कोई रास्ता शास्त्र के मार्ग से बिल्कुल नहीं है। और मेरी यह भी समझ है कि उस मार्ग से कोई मार्ग भी नहीं है कभी। इसलिए जो भी लोग उस मार्ग पर पड़ गए हैं, वे सिर्फ भटकाने वाले सिद्ध हुए हैं, वे कहीं ले जाने वाले सिद्ध नहीं हुए। सरल वही है। किताब पढ़ने से ज्यादा सरल और क्या हो सकता है! हालांकि कुछ लोगों के लिए वह भी कठिन है। किताब पढ़ने से ज्यादा सरल बात और क्या हो सकती है! लेकिन आकाशिक रिकार्ड्स, जिनकी मैं बात कर रहा हूं, कि अस्तित्व की गहराइयों में अनुभूतियां सुरक्षित रह जाती हैं, वहां से उन्हें वापस पकड़ा जा सकता है, और वहां से उनसे पुनः जीवन-संबंध स्थापित किए जा सकते हैं।
तो मैं यह जो चर्चा करूंगा इधर, उसका शास्त्रों से आप तालमेल खोजने की कोशिश में ही मत पड़ना, उससे कोई संबंध नहीं है। किसी और द्वार से ही मैं चेष्टा करता हूं। उस चेष्टा में जो कुछ मुझे दिखाई पड़ता है, वह मैं आपसे कहता चलूंगा। और इसलिए जब तक कोई और लोग मेरे साथ उस प्रयोग को करने को राजी न हों, तब तक मेरी बात अथारिटेटिव है या नहीं, कुछ निर्णय नहीं हो सकता। उसके निर्णय का कोई उपाय ही नहीं है दूसरा, जब तक कि कुछ लोग इस बात के लिए राजी न हों कि वे मेरे साथ प्रयोग करने को राजी हो जाएं। और तब मैं लिख कर रख दूं कि तुम्हें यह अनुभव होगा, और उन्हें हो जाए, तो फिर कुछ बात बने।
तो उसी आशा में यह सारी बात मैं करूंगा कि कुछ लोग निकल आएं शायद। विवाद का तो इसमें उपाय ही नहीं है कुछ। क्योंकि विवाद किससे करना है? लेकिन हो सकता है कुछ लोग इस प्रेरणा से भर जाएं और हिम्मत जुटाएं, तो आविष्कार हो सकता है। और तभी कोई तौल हो सकती है, जो मैं कह रहा हूं वह कहां तक, कितने दूर तक क्या अर्थ रखता है। अब इसमें इतने उलटे मामले आ जाएंगे और आपके पास कोई उपाय नहीं होगा कि क्या करें!
पश्चिम में एक फकीर था अभी, गुरजिएफ। सारी ईसाइयत का इतिहास यह कहता
है कि जुदास ने जीसस को मरवाया, जुदास ने जीसस को तीस रुपयों में बेचा, और जुदास जीसस का दुश्मन है। क्योंकि जुदास... जो आदमी मरवा दे, वह दुश्मन तो है।

प्रश्नः शिष्य नहीं था वह?

शिष्य था, लेकिन दगाबाज था। बिट्रे किया, धोखा दिया, और जीसस को बिकवा दिया और जीसस को सूली उसी वजह से लगी। उसने ही पकड़वाया रात को आकर। जीसस रात में ठहरे हुए हैं और जुदास लाया है दुश्मन के सिपाहियों को और जीसस को पकड़वा दिया है। तो जुदास से ज्यादा गंदा नाम ईसाइयत के इतिहास में दूसरा नहीं है। यानी किसी आदमी को गाली देनी हो तो जुदास कह दो। तो इससे बड़ी कोई गाली नहीं है। जीसस को फांसी लगवाने से बड़ा और बुरा हो भी क्या सकता है? लेकिन गुरजिएफ पहला आदमी है, जिसने कहा, यह बात सरासर झूठी है। जुदास दुश्मन नहीं है, जीसस का दोस्त है। और पकड़वाने में जीसस का शड्यंत्र है, जुदास का नहीं। यानी जीसस चाहते हैं कि पकड़े जाएं और सूली पर लटकाए जाएं। और जुदास उनका सेवक है। और इतना बड़ा सेवक है कि जब जीसस उसे कहते हैं कि तू मुझे पकड़वा, तो उनके बाकी शिष्यों की किसी की हिम्मत नहीं है इस काम को करवाने की। लेकिन जुदास तो सेवक है, वह कहता हैः आपकी आज्ञा! जुदास जीसस को पकड़वा देता है।
तो गुरजिएफ ने सबसे पहले यह कहा कि मैं उन गहराइयों से इस बात की खोज, आपको खबर देता हूं कि जुदास दुश्मन नहीं है और जुदास जैसा मित्र पाना मुश्किल है कि जो कि मरवाने तक की आज्ञा को मानने को चुपचाप शिरोधार्य कर ले और चला जाए। इसीलिए... सारी ईसाइयत कहती है कि जुदास के पैर पड़े ईसा ने, पकड़े जाने के पहले। ईसाइयत कहती है, कितना अदभुत था जीसस कि जो पकड़वा रहा था, उसके पैर छुए, पैर धोए।
गुरजिएफ कहता है कि पैर पड़ने योग्य था आदमी जुदास। ऐसा आदमी खोजना मुश्किल है कि जिसने इसमें भी इनकार न किया--जब जीसस ने कहा कि तू मुझे पकड़वा दे और मेरी फांसी लगवानी जरूरी है। अगर मेरी फांसी नहीं लगती तो जो मैं कह रहा हूं, वह खो जाएगा। मेरी फांसी लगती है तो सील-मोहर हो जाएगी। और मेरी फांसी ही अब मेरा काम कर सकती है और कोई उपाय नहीं है। तो तू मुझे फांसी लगवा दे।
फांसी से बचाने वाले मित्र खोजना आसान है, फांसी लगवाने वाला मित्र खोजना बहुत मुश्किल है। लेकिन जब गुरजिएफ ने पहली दफा यह बात कही, तो यह बड़ी मुश्किल का मामला हो गया। और सारी ईसाइयत ने बड़ा विरोध किया कि यह क्या बकवास है? यह तुम क्या कहते हो? यह तो हमारा सब हिसाब पलट गया। यह तो बात ही ठीक नहीं है। लेकिन एक आदमी हिम्मत जुटा कर नहीं आया कि आकर कोशिश करता कि यह आदमी कहता कहां से है। लेकिन मैंने प्रयोग किए और मैं हैरान हुआ कि वह ठीक कहता हैः जुदास दुश्मन नहीं है, जुदास ही दोस्त है। वह फकीर ठीक कहता है, वह गलत कहता ही नहीं बिल्कुल। मगर बड़ी मुश्किल से खोज पाया होगा, क्योंकि सारा का सारा... ।
तो मेरा कहना है कि शास्त्र खोज का रास्ता तो है ही नहीं, बल्कि सबसे बड़ी रुकावट है, क्योंकि माइंड को ऐसी बातों से भर देता है जो कि हो सकता है नहीं भी हों। और तब उनसे नीचे उतरना, उनके विपरीत जाना, भिन्न जाना ही मुश्किल हो जाता है। एकदम मुश्किल हो जाता है।
और महावीर के संबंध में तो बहुत ज्यादा हुई है यह बात। हद की है, जिसका हिसाब लगाना ही मुश्किल है। बहुत ही हद की है।
गुरजिएफ ने यह जो... तो इसको उसने नाम दिया क्राइस्ट ड्रामा। उसने कहा
कि यह सूली-वूली सब खेल है। यह सूली बिल्कुल खेल है और नाटक है पूरा रचा हुआ, जिसमें जीसस ने इस ख्याल पर अपने मित्र को राजी कर लिया है और अपने आस-पास की हवा को कि जो मैं कह रहा हूं, अब अगर उसे तुम्हें बहुत दूर तक पहुंचाना हो उसकी खबर, तो मेरी फांसी लगवा देना जरूरी है, नहीं तो यह बात खो जाएगी। मेरी फांसी ही मूल्यवान बनेगी।
इसलिए क्रास मूल्यवान बन गया। क्रास का मूल्य, जीसस से ज्यादा मूल्यवान क्रास हो गया।
ये जो... इस तरह की बहुत सी बातें हैं, जो बहुत ही मुश्किल में डालेंगी।
लेकिन उनके संबंध में विवाद करने का कोई उपाय नहीं है, उनके संबंध में प्रयोग करने का ही उपाय है। इधर इन दिनों में बहुत बात होगी, जो शायद आपको पहली दफे ही ख्याल में आए, पहली दफे ही सुनें आप।

लेकिन इस कारण न तो मैं कहता हूं कि मान लेना कि मैंने कही, और न कहता हूं कि इसलिए इनकार कर देना कि पहली दफे किसी ने कही। अगर सच में ही प्रेम हो तो खोज पर निकलना। उस खोज के मार्ग की भी हम बात करेंगे कि वह कैसे खोज में हम जा सकते हैं। और फिर जो भी प्रश्न इसमें उठते चले जाएंगे, वे सब प्रश्न ले लेंगे।
इस मौके का उपयोग, आप गहरे भी जाएं, भीतर जाएं, उसके लिए भी करना चाहिए। और जो बातें भी मैं कहूंगा, वे बातें भी, आप थोड़े गहरे चलते हैं तो ही आपको साफ भी दिखाई पड़ेंगी, कि मैं कह क्या रहा हूं! यानी किन दृश्यों की बात कर रहा हूं, और किन गहराइयों की बात कर रहा हूं, किस आकाश की बात कर रहा हूं, वह आपको भी थोड़ी सी उसकी कुछ झलक भी मिले, तो ही जो मैं कह रहा हूं वह भी ठीक से समझ में आ सकता है।
इसलिए जब यहां हैं ही इस मौके पर, तो इस शांत और एकांत का तो पूरा उपयोग कर लेना चाहिए। तो मैंने सोचा ही ऐसा है कि आपको अभी मैं डीप मेडिटेशन के लिए, गहरे ध्यान के लिए कुछ सुझाव दे दूं, जिनका आप शेष समय में भी उपयोग करें, और एक घंटे के लिए कहीं भी--पहाड़ के पास, बगिया में, झील पर--एक घंटा बैठ कर भी उपयोग करें।
और दोपहर को, एक घंटे के लिए, आपको मैं व्यक्तिगत समय दूंगा। एक-एक व्यक्ति को कुछ भी उस संबंध में पूछना हो सिर्फ--और किसी संबंध में नहीं-- उस संबंध में पूछना हो, उसका कुछ व्यक्तिगत उलझाव हो, अड़चन हो, तो वह उस वक्त बात कर ले। और जितना उसे वक्त चाहिए, उतना बात कर ले, नहीं तो हमेशा अतृप्ति रह जाती है वह।
तो जरूरी नहीं है कि रोज ही सबको वक्त मिल जाए। कल एक-दो, तीन-चार, जितने बात कर सकें, उतने कर लें, और फिर दूसरे बात कर लेंगे। और इतने, दस-पंद्रह दिन का साथ है, तो सबका हो सकेगा। तो दस मिनट, पंद्रह मिनट, जितना जिसको लगे, वह अपना पूरा सुलझाव ले ले।
गहरे ध्यान की पहली जरूरत तो यह है कि उसका स्मरण जितने ज्यादा समय तक
रह सके, उतना ही गहरा हो सकता है। तो एक सरल सी प्रक्रिया पर रोज दिन भर ख्याल रखें। चलते, उठते, बैठते, सोते, जब तक ख्याल रहे श्वास पर ख्याल रखें, पूरे वक्त। स्मृति श्वास पर रहे। श्वास भीतर जा रही है तो हमारी स्मृति भी उसके साथ भीतर जाए--बोध भी, कांशसनेस भी--कि श्वास भीतर गई। श्वास बाहर जा रही है तो बोध भी श्वास के साथ बाहर जाए। आप श्वास पर ही तैरने लगें। श्वास पर ही चेतना की नाव को लगा दें। बाहर जाए तो बाहर, भीतर जाए तो भीतर। श्वास के साथ ही आपका भी कंपन होने लगे। और इसे बिल्कुल न भूलें कभी। जब भी भूल जाएं, और जैसे ही याद आए, फौरन फिर शुरू कर दें। घूमने गए हैं, बगीचे में गए हैं--कहीं भी गए हैं, कार में बैठे हैं, तो इसको नहीं छोड़ देना है। इसको सतत ही स्मरण रखें।
तो एक तीन-चार दिन में वह स्मरण टिकने लगेगा। और जैसे-जैसे स्मरण टिकेगा, वैसे-वैसे ही आपका चित्त शांत होने लगेगा। ऐसी शांति जो आपने कभी नहीं जानी होगी। क्योंकि जब चित्त पूरा श्वास के साथ चलता है तो विचार अपने आप बंद होने लगते हैं। विचार का उपाय ही नहीं रहता, क्योंकि दो बातें एक साथ नहीं हो सकतीं। श्वास पर चित्त होगा तो विचार बंद होंगे, और विचार पर चित्त जाएगा तो श्वास पर चित्त नहीं रह जाएगा। ये दोनों बातें एक साथ नहीं हो सकतीं, ये असंभव हैं। इसीलिए श्वास पर ध्यान रखने को कह रहा हूं, ताकि विचार वहां से खो जाएं।
और विचार सीधे हटाने हों तो बहुत कठिन है, क्योंकि वह सप्रेशन हो जाता है। यहां हम हटा नहीं रहे विचारों को, विचारों से कोई संबंध ही नहीं। हम तो अपनी पूरी चेतना को दूसरी जगह लिए जा रहे हैं। और चूंकि चेतना वहां नहीं होती जहां विचार हैं, इसलिए उनको हट जाना पड़ता है। यानी हम किसी आदमी को यह नहीं कह रहे हैं कि तुम इस कमरे को छोड़ो, यह कमरा ठीक नहीं है, तुम भागो यहां से, और उस आदमी को यह कमरा अच्छा लग रहा है। नहीं, हम उसको यह कह रहे हैं कि बाहर बगिया है, बड़े अच्छे फूल लगे हैं, आते हो क्या? हम उससे कमरा छोड़ने की बात ही नहीं कर रहे। कह रहे हैं, बाहर फूल हैं, बगिया है, सूरज निकला है, आते हो क्या? हम बाहर आने का निमंत्रण दे रहे हैं, कमरा छोड़ने का

आग्रह नहीं कर रहे। बाहर आएगा तो कमरा छूट जाएगा, इसलिए कमरे की हमें चिंता नहीं करनी है।
तो विचार छोड़ने का ख्याल ही नहीं करना है, श्वास पर ध्यान चला जाए तो विचार छूट जाते हैं। क्योंकि श्वास बिल्कुल दूसरा तल है, जहां विचार नहीं है। और विचार एक दूसरा तल है, जहां श्वास का स्मरण नहीं हो सकता। तो ये बिल्कुल ही अपोजिट प्रक्रियाएं हैं। तो अगर एक पर ले जाते हैं तो दूसरे से अपने आप मुक्ति हो जाती है।
तो पूरे समय, ऐसा नहीं कि कभी थोड़ी-बहुत देर। तब फिर गहरा नहीं हो पाएगा। पूरे समय! सुबह उठें तो पहला स्मरण श्वास का। रात सोएं तो अंतिम स्मरण श्वास का। तो अपने आप आपका बोलना कम हो जाएगा। विचार तो कम होंगे ही, बोलना कम हो जाएगा। क्योंकि जब आप बोलेंगे, आपका ध्यान श्वास से हट जाएगा फौरन।
इसलिए मैं मौन रखने को भी नहीं कहता, क्योंकि वे दोनों बातें एक साथ नहीं चल सकतीं, आप बोले कि श्वास से ध्यान गया। श्वास पर ध्यान रखना है तो बोलना बंद करना होता है। अपने आप हो जाता है। तो कम बोलना पड़ेगा। बहुत कम बोलिए।
नहीं तो अक्सर होता क्या है, इतनी शांत जगह में भी आकर हम जब बातें करते हैं, तो शांत जगह बेमानी हो जाती है। और शांति का जो इंपैक्ट है, वह हममें प्रवेश ही नहीं कर पाता। वह बातों की जो हम दीवाल खड़ी रखते हैं। जैसे कि आप बैठ कर यहां अगर कमरे में बात करने लगे, तो आप भूल जाएंगे कि आप श्रीनगर में हैं, कि इधर डल लेक है, कि पहाड़ी है--सब गया। वह जो बातों का तल है, वह आपको सब भुला देगा। तो जैसे आप बंबई में होते, दिल्ली में होते, वही हो जाएगा, उससे कुछ फर्क नहीं पड़ता।
तो बातचीत से बचें और ध्यान उस पर ले जाएं। बातचीत अपने आप क्षीण हो जाएगी। यानी मैं चाहता हूं कि पंद्रह दिन में धीरे-धीरे ऐसा हो जाए कि बातचीत न ही हो जाए। बिल्कुल जरूरी है, एसेंशियल है, जैसे कि पानी चाहिए, ऐसी बातचीत रह जाए। अकारण, व्यर्थ, फिजूल बातचीत न रह जाए। तो उसका ध्यान रखें। तो ही गहरा होगा। तो मौन अपने आप!
मौन भी दमन नहीं, कि बोलना ही नहीं है, ऐसा नहीं कह रहा हूं। बोलें, लेकिन बोलना एसेंशियल जो हो वही, जो जरूरत का है, काम का पड़ गया है, उतना; बाकी चुप। और चुप इसलिए कि ध्यान श्वास पर रखना है।
थोड़ा एकांत में भी जाएं, जब भी मौका मिल जाए। साथ मत ले जाएं किसी को, क्योंकि जब दूसरा साथ होता है, तो ध्यान दूसरे पर होता है। बड़ी सूक्ष्मता से अगर ख्याल करेंगे, जब भी दूसरा मौजूद हो तो आप उसको भूल नहीं सकते। इस कमरे में आप अकेले बैठे हैं और इस कमरे में एक आदमी को और लाकर बिठाल दिया और आपसे कहा, आपको कोई मतलब नहीं, आपको जो करना है करिए। आप चाहे किताब पढ़ो और चाहे आप कुछ भी करो, वह आदमी यहां मौजूद है, यह आप भूल नहीं सकते। और आपकी चेतना सतत उसके होश से भरी रहेगी। और अगर आप भूल जाओ तो वह भी बुरा मानता है। पत्नी के साथ हो और आप भूल गए हो तो पत्नी भारी बुरा मानती है। पति को अगर पत्नी भूल गई तो पति बुरा मानता है।
असल में हम बुरा ही तब मानते हैं, जब दूसरा हमें भूलता है, उसी सेकेंड में बुरा मानते हैं। क्योंकि हमारी पूरी आकांक्षा, दूसरे की अटेंशन हम पर हो, यह बनी रहती है। और जिसको हम प्रेम वगैरह कहते हैं, मित्रता वगैरह कहते हैं, वह कुछ नहीं है, वह एक-दूसरे पर अटेंशन देने का एक-दूसरे को सुख है, और कुछ भी नहीं। दूसरा मुझे याद रखे हुए है। उसके कारण हैं बहुत गहरे। कारण यह है कि हमको अपना तो कोई स्मरण नहीं है। तो हम अपने अस्तित्व को दूसरे को स्मरण करा कर ही अनुभव कर पाते हैं, और कोई उपाय नहीं है। अगर दूसरा भूल गया तो हम गए।
समझ लीजिए कि आप यहां हैं और आपको बाकी सब मित्र भूल गए, तो आपके होने में क्या रह गया? आप गए। आपका अस्तित्व ही खतम हो गया। आप हो ही नहीं फिर। समझ लें कि पंद्रह दिन यहां हैं और दीपचंद को सारे लोग भूल गए। दीपचंद कहीं जाता है, कोई देखता ही नहीं, कोई नमस्कार नहीं करता, कोई कहता नहीं कहो, कैसे हो? कोई नहीं पूछता, कोई फिकर नहीं करता, कोई देखता ही नहीं उसकी तरफ, कोई ध्यान ही नहीं देता। दीपचंद एकदम मिट गए। क्योंकि दीपचंद अपने

भीतर तो कुछ हैं नहीं। एक अटेंशन का ही जोर है, जो कुछ हैं। इसलिए जो अटेंशन देता है, वह प्यारा मालूम पड़ता है। जो नहीं देता, वह दुश्मन मालूम पड़ता है। जो मुंह फेर लेता है, वह दुश्मन है। जो पास आ जाता है, वह मित्र है। और हमारी सारी रिलेशनशिप उसी पर खड़ी है--पति-पत्नी की, प्रेमी-प्रेयसी की, मित्र की, इसकी-उसकी, बाप-बेटे की--सब उसी पर खड़ी है, अटेंशन दो। अगर बाप को लगता है कि बेटा अटेंशन नहीं दे रहा, उसकी तरफ ध्यान नहीं दे रहा, तो सब गड़बड़ हो गया। बेटे को लगा कि बाप अटेंशन नहीं दे रहा, तो सब गड़बड़ हो गया। लोग बीमार पड़ते हैं इसलिए कि दूसरा ध्यान दे। क्योंकि अगर ऐसे ध्यान नहीं मिलता, तो पत्नी बीमार पड़ गई है। तो अब तो पति को ध्यान देना पड़ेगा। अब तो बैठेगा छुट्टी लेकर दफ्तर छोड़ कर। स्त्रियों की तीस प्रतिशत से ज्यादा बीमारियां सिर्फ अटेंशन की बीमारियां हैं। जैसे ही उनको लगा कि ध्यान नहीं दिया जा रहा कि वे बीमार पड़ीं। और फिर कोई और उपाय नहीं है उनके पास कि कैसे आपके ध्यान को आकृष्ट करें।
जिन बच्चों को मां का प्रेम नहीं मिलता, वे निरंतर बीमार पड़ते हैं। बीमार पड़ने का और कोई कारण नहीं है। मां की कमी नहीं है, अटेंशन की कमी है। मां का वहां कोई भारी मतलब नहीं है। और मां से ज्यादा अटेंशन कोई नहीं दे पाता न! इसलिए फिर सब कमी हो गई। नर्स रख दो तुम तो वह दूध पिला देती, अटेंशन नहीं देती; कपड़े पहना देती, अटेंशन नहीं देती। अटेंशन है ही नहीं उसकी उस पर, उसकी अटेंशन अपनी घड़ी पर है कि उसको पांच बजे जाना है। इसलिए बच्चे को फौरन फील होना शुरू हो जाता है कि कुछ कमी हो रही है। यानी कपड़ा नहीं चाहिए, कपड़े से ज्यादा ध्यान चाहिए। ध्यान भोजन है बहुत गहरा, वह न मिले तो चूक हो जाती है।
इसलिए दूसरे को साथ न ले जाएं, नहीं तो वह मांग करता है पूरे वक्त कि
आप अटेंशन दो। और आप भी मांग करते हो कि वह अटेंशन दे। और यह सौदा साथ में चलता है, म्युचुअल है, इसलिए दोनों को देना पड़ता है। तो अकेले जाएं थोड़ी देर को। और यहां भी ऐसा ही फील करें कि अकेले हैं। जैसे कोई दूसरा है नहीं साथ। थोड़ी देर के लिए कोई साथ नहीं है, हम अकेले हैं। इसको थोड़ा ख्याल करेंगे तो, तो ही आप श्वास पर ध्यान दे पाएंगे, नहीं तो सब्स्टीट्यूट दूसरे मिल गए, तो फिर गया मामला।
श्वास पर पूरे वक्त ध्यान रखें। और घंटे, आधा घंटे को कभी भी एकांत में बैठ कर इंटेंस ध्यान रखें। आंख बंद कर लें और श्वास पर ही ध्यान रखें। क्योंकि बाहर चलते, काम करते, बार-बार चूक ही जाता है। क्योंकि इसका ख्याल नहीं है न, इसलिए चूक जाता है। अब पैर में कांटा गड़ गया तो अटेंशन कहां ध्यान श्वास पर रहेगा? ध्यान तो कांटे पर चला जाएगा फौरन। प्यास लगी है तो अटेंशन कैसे श्वास पर रहेगा? ध्यान तो पानी पर चला जाएगा।
तो एक घंटे के लिए कहीं एकांत में जाकर बैठ जाएं। रात इतनी बढ़िया होगी, कपड़े-वपड़े पहन कर कहीं भी एक दीवाल से टिक जाएं और बैठे रहें। और पूरा घंटा श्वास में ही बिता दें। तो इन पंद्रह दिनों में इतना बड़ा काम हो जाएगा, जो कि आप अकेले पंद्रह वर्षों में नहीं कर पाएंगे। जो यहां हो सकता है। इसमें दो-चार घटनाएं घटेंगी, उनकी चिंता नहीं करनी है। जैसे कि श्वास पर जितना ध्यान देंगे, नींद कम हो जाएगी। तो उसकी जरा भी चिंता नहीं लेनी है। जितनी देर नींद खुली रहे, बिस्तर पर भी श्वास पर ही ध्यान रखें। तीन-चार-पांच दिन श्वास पर ध्यान रखने से नींद उड़ भी जा सकती है किसी की, उससे जरा भी चिंता नहीं लेनी है। क्योंकि श्वास पर ध्यान रखने से नींद से जो काम होता है, वह पूरा हो जाता है, और कोई कारण नहीं है। इतना विश्राम मिल जाता है।
नींद दो तरह से खतम होती है--टेंशन से भी और रिलैक्सेशन से भी। चिंता
से भी नींद खतम हो जाती है, क्योंकि चिंता इतना तनाव से भर देती है कि मस्तिष्क शिथिल ही नहीं हो पाता तो नींद खतम हो जाती है। और अगर कोई ध्यान का प्रयोग करे तो इतना शिथिल-शांत हो जाता है कि नींद से जो शांति की जरूरत थी, वह पूरी हो जाती है। इसलिए नींद का कोई कारण नहीं रह जाता, वह विदा हो जाती है। तो उसका ध्यान नहीं करेंगे। जरा भी फिकर नहीं करेंगे।
और कुछ अजीब-अजीब अनुभव हो सकते हैं। तो उन पर भी चिंता नहीं करेंगे,
वे अलग-अलग सबको हो सकते हैं। एक से होते भी नहीं। तो इसीलिए एक घंटे का

दोपहर वक्त दिया है कि वैसा कोई अनुभव हो तो मुझसे अलग बात कर लेना। और उसकी बात किसी दूसरे से आप मत करना। क्योंकि दूसरा सिर्फ हंसेगा और आपको पागल समझेगा। क्योंकि वैसा अनुभव उसको नहीं हो रहा है। इसलिए उसको दूसरे से कहना ही मत कभी। क्योंकि वह सबको अलग-अलग होगा। इसलिए कोई को कभी सिंपैथी नहीं मिलेगी।
हो सकता है किसी को श्वास पर ध्यान देते-देते ऐसा लगे कि उसका शरीर बहुत बड़ा हो गया है, और एकदम फैल गया है, विस्तार हो गया है उसके शरीर का। वह एकदम घबड़ा जाए कि यह क्या हो गया? अब उठ सकेंगे कि नहीं उठ सकेंगे? इतना भारी हो जाए कि बिल्कुल पत्थर हो गया। या इतना हलका हो जाए कि ऐसा लगे कि जमीन से ऊपर उठ गया है, कि जमीन और मेरे बीच फासला हो गया है, कि मैं ऊपर उठा जा रहा हूं, कि मैं लौट पाऊंगा कि नहीं लौट पाऊंगा?
कुछ भी लग सकता है। एकदम श्वास पर ध्यान देते-देते अचानक लग सकता है
कि सिंकिंग हो रही है, श्वास डूबी जा रही है, और कहीं मैं मर तो नहीं जाऊंगा? गहन अंधकार का अनुभव हो सकता है। तेज चमकती बिजलियों का अनुभव हो सकता है। सुगंध अनुभव हो सकती है, अजीब तरह की दुर्गंध अनुभव हो सकती है। कुछ भी हो सकता है। बहुत तरह की बातें हो सकती हैं।
तो उनको चुपचाप खुद ही अपने भीतर रख लें, उसको किसी से कहना ही मत। उसको तो मुझे, जब मैं आपको प्राइवेट में मिलूंगा दरवाजा बंद करके तब आप मुझ को कह देना। और मुझे कह कर फिर आप दुबारा उसकी कभी किसी से बात मत करना।
उसके कई कारण हैं। एक तो दूसरा कभी उस पर विश्वास नहीं करेगा। कभी नहीं करेगा, उसका कारण है कि वैसा उसको हो नहीं रहा। और वह हंसेगा, और उसकी हंसी आपको नुकसान पहुंचाएगी। बहुत गहरा नुकसान पहुंचाएगी। दूसरी बात है कि हमें जो अनुभव होते हैं, अगर हम उनकी बात कर दें, तो फिर दुबारा नहीं होते। वे दुबारा नहीं होते। क्योंकि वे होते हैं अनायास, और जब हम उनकी बात कर देते हैं तो हम पूरे कांशस हो जाते हैं। तो फिर वे नहीं होते।
और भी एक बड़े मजे की बात है कि ये जो गहरी अनुभूतियां हैं, उनको बिल्कुल सीक्रेट की तरह छिपाना चाहिए भीतर, नहीं तो ये बिखर जाती हैं। इनकी जो पोटेंशियल फोर्स है, इनमें भी बड़ी ताकत है। तो जैसे हम तिजोड़ी के भीतर धन को छिपा देते हैं। और जैसे कि हम कपड़े पहनते हैं और शरीर की गर्मी को भीतर रोक लेते हैं। सर्दी पड़ रही है तो हम कपड़े पहने हुए हैं। क्यों पहने हुए हैं? वह एक ही कि सर्दी हमारी गर्मी को खींच लेगी बाहर। शरीर की गर्मी को बाहर ले जाएगी और शरीर मुश्किल में पड़ जाएगा। तो पूरे वक्त हमारा शरीर बाहर के संपर्क में अपनी गर्मी खो रहा है, अपनी शक्ति खो रहा है। जब बहुत गहरी अनुभूतियां हमें होती हैं तो एक पर्टिकुलर टाइप ऑफ एनर्जी, एक खास तरह की शक्ति पैदा होती है उन अनुभवों के साथ। अगर आपने बात की, तो वह तत्काल बिखर जाती है और खो जाती है।
तो उसकी बात ही नहीं करना। निकटतम सगे को भी उसकी बात मत करना। उसको पता ही नहीं चलने देना किसी को, उसको बिल्कुल अपने अंदर छिपा लेना, ताकि वह एनर्जी बढ़े, गहरी हो, और और गहरे अनुभवों में ले जाए। इसलिए उसकी बात नहीं करना।
और सबसे मैं अलग ही बात करूंगा कि क्या करना, उसको जो लग रहा है उसके साथ। यह जो जनरल था, वह मैंने कह दिया। इसको आप कल से शुरू करें। और फिर देखेंगे, जैसा होगा वैसी बात करेंगे।

प्रश्नः श्वास पर ध्यान केंद्रित करना और ‘मैं कौन हूं’... ।

श्वास पर ध्यान केंद्रित करना बहुत गहरा प्रयोग है, बहुत गहरा प्रयोग है। ‘मैं कौन हूं’ भी बहुत गहरा प्रयोग है, लेकिन बहुत दूसरी दिशा से, बहुत दूसरी दिशा से। वह विचार की दिशा से ही निर्विचार में जाने की कोशिश है।
और यह निर्विचार से ही शुरू होता है।
वह जो है विचार ही है, ‘मैं कौन हूं’ वह विचार ही है। और विचार को ही इतनी तीव्रता में ले जाना है कि जाकर वह निर्विचार में उतार दे आपको। यह जो है निर्विचार से ही शुरू करना है, यहां विचार छोड़ ही देना है।

तो ‘मैं कौन हूं’ में कुछ लोगों को तनाव भी हो सकता है और कुछ लोगों को परेशानी भी हो सकती है। इसमें किसी को तनाव नहीं होगा, किसी को कोई परेशानी नहीं होगी। और मैं बहुत तरह की विधियों की बात करता हूं। और सिर्फ इस कारण करता हूं कि बहुत तरह के लोग हैं, किसको कौन सी विधि कब पकड़ जाएगी कहना मुश्किल है। फिर जिसको जो पकड़ जाए, वह उससे चला जाए।
और कोई एक सौ बारह विधियां हो सकती हैं। वह भी एक दफा सोच रहे हैं, लाला जी की वह भी इच्छा है, कि एक बार उन एक सौ बारह विधियों पर इकट्ठा मैं एक सात-आठ दिन बैठ कर बात करूं। ताकि एक पूरा संकलन पूरी विधियों का अलग हो जाए। तो उनसे कोई भी व्यक्ति पकड़ ले अपने लिए, उसके लिए क्या उपयोगी हो सकता है। और इसलिए मैं हर कैंप में विधि बदल देता हूं।

महावीर: मेरी दृष्टि में दूसरा प्रवचन

महावीर की समसामयिकता

प्रश्नः आपने कहा कि आप महावीर के संबंध में अंतर्दृष्टि से कुछ बतलाएंगे। और यदि यह जानना हो कि वह जो कुछ आपने जाना, तो हम प्रयोग करके देख लें। मुझे लगता है, एक दूसरा भी साधन है, जिससे आपकी बात की प्रामाणिकता जांची जा सकती है। और वह साधन यह है कि हममें से किसी के जीवन की कोई ऐसी घटना, जो आप, जानना जिसका संभव नहीं है आपके लिए साक्षात, आप यदि बतला दें तो यह प्रामाणिक हो सकता है। क्योंकि आप मेरे जीवन की कोई ऐसी घटना जान गए जो आपने कभी देखी-सुनी नहीं, इसलिए आप महावीर के भी पिछले जीवन को अंतर्दृष्टि से जान सके होंगे। क्या आप इस प्रकार करना पसंद करेंगे?

दो-तीन बातें समझनी चाहिए।
एक तो महावीर के जीवन की घटना जानना और बात है और महावीर के अंतर्जीवन में क्या घटा, इसे जानना और बात है। महावीर के बाहर के जीवन से प्रयोजन ही नहीं। मुझे प्रयोजन नहीं है, न जानने की उत्सुकता है। लेकिन अंतर्जीवन में क्या घटा, उससे प्रयोजन है, उत्सुकता भी है, उस तरफ दिशा भी, दृष्टि भी है।
तुम्हारे अंतर्जीवन में भी देखा जा सकता है, तुम्हारे बहिर्जीवन से मुझे कोई प्रयोजन नहीं। सच बात तो यह है कि जिसे हम बाहर का जीवन कहते हैं, वह एक स्वप्न से ज्यादा मूल्य नहीं रखता। हमें वह बहुत महत्वपूर्ण मालूम पड़ता है, क्योंकि हम उस स्वप्न में ही जीते हैं। जैसे रात कोई सपना देखे, तो सपने में उसे पता भी नहीं चलता कि जो वह देख रहा है, सपना है। लगता है, वह बिल्कुल सत्य है। जब तक जाग न जाए, तब तक सपना सत्य ही मालूम पड़ता है। जागते ही सपना एकदम व्यर्थ हो जाता है।
तो मुझे तो बाहर के जीवन से कोई अर्थ ही नहीं है कि महावीर कब पैदा हुए? कब मरे? शादी की या नहीं की? बेटी पैदा हुई कि नहीं हुई? इन सबसे मुझे प्रयोजन ही नहीं, कोई अर्थ ही नहीं है। हुआ हो तो ठीक, न हुआ हो तो ठीक। मैं तो वहां तक कहना चाहता हूं कि महावीर भी हुए हों तो ठीक, न हुए हों तो ठीक। यह महत्वपूर्ण ही नहीं है। जो महत्वपूर्ण है, वह तो अंतर, जो चेतना में गति हुई, जो चेतना में विकास हुआ, जो रूपांतरण हुआ, वह महत्वपूर्ण है।
तो वैसे तो किसी के भी अंतर्जीवन में उतरा जा सकता है। लेकिन तब भी तुम जांच न कर पाओगे, क्योंकि तुम खुद ही अपने अंतर्जीवन से परिचित नहीं हो। अगर फिर भी मेरी बात की जांच करनी हो, तब भी तुम्हें अपने अंतर्जीवन में उतरना पड़े।
दूसरी बात यह है कि तुम्हारे बहिर्जीवन में कोई अगर कुछ घटनाएं बता दे, तो इससे पक्का नहीं होता कि वह महावीर के संबंध में जो बताएगा, वह ठीक होगा। क्योंकि तुम मौजूद हो और तुम्हारे बहिर्जीवन की घटनाओं में उतरना बड़ी साधारण सी कला और ट्रिक की बात है। जो कि एक साधारण सा टेलीपैथिस्ट भी बता सकेगा, एक साधारण सा ज्योतिषी भी बता सकेगा। वह चार आने लेकर भी बता सकेगा। तो बहिर्जीवन का तो कोई मूल्य नहीं। अगर कोई बता भी दे तुम्हारे बहिर्जीवन का तो उससे कुछ प्रामाणिकता नहीं होती कि वह महावीर के अंतस-जीवन के संबंध में जो कहेगा, वह अर्थ रखता है।
असल में बहिर्जीवन का कोई ऐसा संबंध ही नहीं है अंतस-जीवन से। और इसीलिए यह, यह समझने जैसा है कि क्राइस्ट का बाहर का जीवन एक है, और महावीर का बाहर का जीवन दूसरा है, बुद्ध का तीसरा है, फिर भी अंतस-जीवन एक है। और बहिर्जीवन को देखने-विचारने वाले लोग इसीलिए मुश्किल में पड़ जाते हैं। जिसने महावीर के बहिर्जीवन को पकड़ लिया है, वह बुद्ध को समझना उसके लिए असमर्थ हो जाएगा। क्योंकि जो महावीर के बहिर्जीवन में है, वह सोचता है कि वह अंतस-जीवन से अनिवार्य रूप से बंधा हुआ है। जैसे वह देखता है कि महावीर नग्न खड़े हैं, तो वह सोचता है, जो परम ज्ञान को उपलब्ध होगा, वह नग्न खड़ा होगा। और अगर बुद्ध वस्त्र पहने हुए हैं, तो बुद्ध कैसे परम ज्ञान को

उपलब्ध हो सकते हैं? बहिर्जीवन की पकड़ के कारण ही अंतस-जीवन के संबंध में इतनी खाइयां खड़ी हो गई हैं। मुझे तो उससे प्रयोजन ही नहीं है।
दूसरी बात, मैं ठीक कह रहा हूं महावीर के संबंध में या नहीं, इस बात की जांच का भी कोई अर्थ नहीं है। अर्थ सिर्फ एक ही है कि वैसे अंतस-जीवन में उतरा जा सकता है या नहीं? यानी मेरी इस बात की जांच-पड़ताल करने का भी कोई अर्थ नहीं है, निरर्थक है, क्योंकि मैं इसलिए कह ही नहीं रहा हूं कि मैं सही हूं या गलत हूं, यह कोई सिद्ध किया जाए; कह ही इसलिए रहा हूं कि तुम जहां हो, वहां से सरक सको और किसी और दिशा में गति कर सको।
इसलिए अगर वह सारी बातचीत तुम्हें अंतस-दिशा में गति देने वाली बन जाती है, तो मैं मान लूंगा कि काफी प्रमाण हो गया। और अगर नहीं बनती है, और सब तरह से प्रमाणित हो जाता है कि जो मैंने कहा वह ठीक था, तो भी मैं मानूंगा कि बात अप्रामाणिक हो गई। यानी मेरे लिए अर्थवत्ता इसमें है कि महावीर के जीवन के संबंध में जो मैं कहूं, वह किसी न किसी रूप में तुम्हारे जीवन को रूपांतरित करने वाला बनता हो। न बनता हो, तो वह कितना ही सही हो तो गलत हो गया, और बनता हो तो सारी दुनिया सिद्ध कर दे कि वह गलत है, तो भी मेरे लिए गलत न रहा।
यानी इसका मतलब यह है, और यही वजह है--इसको समझना बहुत उपयोगी होगा-- यही वजह है कि जो लोग जानते रहे हैं, उन्होंने इतिहास लिखने पर जोर नहीं दिया, इतिहास की जगह उन्होंने पुराण पर जोर दिया--मिथ पर।
एक दुनिया है, लोग हैं, जो इतिहास पर जोर दे रहे हैं। एक दूसरी दुनिया है, एक दूसरा जगत है, कुछ थोड़े से लोगों का, जो इतिहास पर कोई जोर नहीं देते, जो मिथ पर जोर देते हैं, पुराण पर जोर देते हैं। और दोनों के भेद को समझना भी उपयोगी होगा।
इतिहास का आग्रह यह होता है कि बाहर घटी हुई घटनाएं तथ्य, फैक्ट्स की तरह संगृहीत की जाएं। पुराण या मिथ इस बात पर जोर देती है कि बाहर की घटनाएं तथ्य की तरह इकट्ठी हों या न हों, निष्प्रयोजन है, वे इस भांति इकट्ठी हों कि जब कोई उनसे गुजरे, तो उसके भीतर कुछ घटित हो जाए। इन दोनों बातों में दृष्टि अलग है।
तथ्य और इतिहास को सोचने वाला महावीर पर जोर देगा, क्राइस्ट पर जोर देगा--कैसा जीवन? मिथ की दृष्टि वाला व्यक्ति तुम पर जोर देगा कि महावीर का कैसा जीवन कि तुम बदल जाओ। इसमें बुनियादी फर्क हुए।
अब यह हो सकता है कि मिथ किसी दृष्टि से अप्रामाणिक मालूम पड़े। जैसे जीसस का सूली पर चढ़ना और फिर तीन दिन बाद पुनरुज्जीवित हो जाना। ऐतिहासिक तथ्य की तरह शायद इसे प्रमाणित नहीं किया जा सकता कि ऐसा हुआ हो। जैसे जीसस का कुंआरी मां से पैदा होना। ऐतिहासिक तथ्य की तरह प्रमाणित नहीं किया जा सकता कि कुंआरी लड़की से कोई पैदा हो सकता है, जिसका पुरुष से कोई संपर्क न हुआ हो।
बाहर की दुनिया की यह घटना ही नहीं है। बाहर की दुनिया में तो कुंआरी लड़की से कोई लड़का कैसे पैदा होगा? लेकिन जिन्होंने इस पर जोर दिया है उनकी दृष्टि बहुत गहरी है। यह भीतर की घटना को ही वे कह रहे हैं। वे कह रहे हैं कि जीसस जैसा बेटा अत्यंत कुंआरी आत्मा से ही जन्म ले सकता है। अत्यंत इनोसेंट। कुंआरा शरीर नहीं, कुंआरी आत्मा, कुंआरे चित्त से।
और यह भी हो सकता है कि शरीर बिल्कुल कुंआरा हो और चित्त बिल्कुल कुंआरा न हो। इससे उलटा भी हो सकता है कि शरीर कुंआरा न हो और चित्त बिल्कुल कुंआरा हो।
जीसस जैसे व्यक्ति का जन्म वर्जिन गर्ल से ही हो सकता है, कुंआरी लड़की
से ही हो सकता है।
यह इतिहास तो नहीं है, लेकिन इतिहास अगर सिद्ध भी कर दे, तो नुकसान ही पहुंचाएगा। यानी मैं मानूंगा कि यह बात प्रमाणित ही रहनी चाहिए कि जीसस जैसे व्यक्ति का जन्म एक कुंआरे मन से होता है। और अगर किसी मां को जीसस जैसे बेटे को जन्म देना हो, तो उसके चित्त का अत्यंत कुंआरा होना जरूरी है। और कुंआरेपन का कोई संबंध शरीर से है ही नहीं। वर्जिनिटी का कोई संबंध शरीर से नहीं है। शरीर तो यंत्र है, कुंआरापन तो आंतरिक मनोदशा है।

अब जैसे महावीर के पैर को सर्प काट लेता है और दूध बहता है। इसे किसी
भी ऐतिहासिक तरह से, वैज्ञानिक तरह से सिद्ध नहीं किया जा सकता। करने वाले करते हों तो गलत करते हैं। वे महावीर को व्यर्थ हरवा देंगे। और जो बात है, जो मिथ है, वह खो जाएगी। वह बात बहुत और है। उस बात में फिर किसी चित्त पर, चित्त के भाव पर ही ख्याल है।
सर्प भी काटे, जहर भी महावीर को कोई दे, मारने को भी कोई आ जाए, तो भी महावीर का मन मां से भिन्न नहीं हो पाता है। दूध निकलने का कुल मतलब इतना है कि महावीर का मन मदरली है, वह मातृत्व से भरा हुआ है। मां से अन्यथा वे नहीं हो सकते हैं। उनका होना ही मातृत्व में है। यानी उनके भीतर से कुछ और नहीं निकल सकता है, सिवाय दूध के।
लेकिन न तो शारीरिक अर्थों में और न तथ्य और इतिहास के अर्थों में इस बात का कोई मूल्य है। अब जैसे हम जो भी हिसाब करने जाएंगे--और हम दोनों तरफ एक जैसे लोग होते हैं--कोई कहेगा कि यह बिल्कुल गलत है, महावीर के पैर से दूध कैसे निकल सकता है? बात ही झूठी है। और दूसरा व्यक्ति सिद्ध करने की कोशिश करे किसी तरकीब से कि पैर से दूध निकल सकता है!
एक मुनि को मैं सुनने गया। वह मुझसे पहले बोले तो उन्होंने कहा, मैंने वैज्ञानिक रूप से सिद्ध कर दिया है कि महावीर के पैर से दूध निकला। कैसे सिद्ध कर दिया है? तो उन्होंने कहा, ऐसे सिद्ध कर दिया है कि जब मां के स्तन से दूध निकल सकता है, यानी शरीर के किसी अंग से दूध निकल सकता है, तो पैर से क्यों नहीं निकल सकता है?
तो मैंने उनको पूछा कि इसके दो अर्थ हुए। इसका एक अर्थ तो यह हुआ कि महावीर को पुरुष न माना जाए, क्योंकि पुरुष के तो स्तन से भी दूध निकलना मुश्किल है, पैर का तो मामला बहुत दूर है। और अब तक किसी स्त्री के पैर से भी दूध नहीं निकला है। तो दूसरी बात यह मानी जाए कि स्तन का जो यंत्र है, वह महावीर के पैर में लगा हुआ है। जो स्त्री के स्तन में होता है, वह महावीर के पैर में है वैसी यांत्रिक व्यवस्था, जिससे खून दूध में रूपांतरित होता है।
लेकिन मैंने उनसे कहा कि ये बातें अगर प्रमाणित भी हो जाएं कि ऐसा था
कि महावीर के पैर स्तन का काम कर रहे थे, तो भी जो मतलब था, वह खो गया। तो महावीर का जो मूल्य था, वह गया। अगर किसी के भी पैर स्तन का काम कर रहे हों तो उससे दूध निकल जाएगा, इसमें फिर महावीर का कुछ होना न रहा। और अगर मां के स्तन से दूध निकलता है तो यह कोई बड़ी खूबी की बात नहीं है, यांत्रिक बात है। अगर सिद्ध भी कर दोगे तो तुम महावीर को पोंछ डालोगे, क्योंकि जो बात थी, वह खो जाएगी।
वह बात कुल इतनी है कि महावीर का प्रत्युत्तर मां का उत्तर होने वाला है--चाहे तुम कुछ भी करो। चाहे तुम जहर डालो, शत्रुता करो, चोट पहुंचाओ, वहां से प्रेम और करुणा ही बह सकता है। वहां से... ।
अब दूध का मतलब क्या होता है? दूध का मतलब है, जो तुम्हें पोषण दे सके।
और कुछ मतलब नहीं होता। तो महावीर को चाहे तुम गाली दो, महावीर जो भी करेंगे, वह तुम्हारा पोषक ही सिद्ध होगा। वह तुम्हें पोषण ही देगा।
अब हमें कोई गाली दे तो हम जो करेंगे, वह घातक सिद्ध होगा उसके लिए। और
हम जो करेंगे दो ही बात कर सकता है, या तो वह घातक सिद्ध हो या पोषक सिद्ध हो। तो महावीर से जो भी प्रत्युत्तर निकलेगा, जो रिएक्शन होगा महावीर का, वह पोषक सिद्ध होने वाला है, इतनी भर बात है उसमें। लेकिन तथ्य में खोजने जाने पर... ।
और यह भी जरूरी नहीं है कि किसी दिन सर्प ने काटा ही हो। यह भी जरूरी नहीं है। न यह जरूरी है कि पैर से दूध निकला हो, न यह जरूरी है कि सर्प ने काटा हो। जरूरी कुल इतना है कि महावीर के पूरे जीवन को जिन्होंने भी अनुभव किया है, उन्हें ऐसा लगा है कि इसे अगर हम कविता में कहें तो ऐसा ही कह सकते हैं कि सर्प भी काटे महावीर को, तो दूध ही निकल सकता है।
लेकिन... इसलिए मुझे कोई प्रयोजन नहीं है। यानी मैं सिद्ध करने जाऊंगा
भी नहीं। सिद्ध कर भी सकता होऊं, तो भी सिद्ध करने नहीं जाऊंगा। क्योंकि मेरी दृष्टि ही यह है कि महावीर को प्रसंग बना कर तुम कैसे गति कर सकते हो! और तब हो सकता है, बहुत कुछ जो कहा जाता है, वह छोड़ देना पड़े; बहुत कुछ जो

नहीं कहा जाता है, उसे खोज लेना पड़े। और हम जब एक दृष्टि लेकर प्रवेश करते हैं, और अंतस की खोज में चलते हैं... ।
अब क्या है, कठिनाई क्या है? अगर समझो कि मैं एक बहुत बहादुर आदमी के संबंध में कहूं कि यह बहुत डरपोक है, तो शायद वह भी मुझसे पहली बार राजी न हो कि आप मेरे संबंध में यह क्या कह रहे हैं! मेरे पास प्रमाणपत्र हैं बहादुरी के, सर्टिफिकेट हैं। मैं सिद्ध कर सकता हूं कि मुझसे बड़ा बहादुर नहीं है, महावीर-चक्र है मेरे पास। युद्ध के मैदान पर कभी पीछे नहीं लौटा हूं।
लेकिन ये प्रमाणपत्र कुछ गलत नहीं करते हैं, फिर भी यह हो सकता है कि
वह आदमी भीतर से भयभीत आदमी है। और अक्सर ऐसा हुआ है कि जो व्यक्ति अंतस-चेतन में भयभीत होता है, वह बाहर के कृत्यों में निर्भय सिद्ध करने की कोशिश में लगा होता है। यानी वह बाहर अपने को निर्भय सिद्ध करने के जो उपाय कर रहा है, वह उपाय कर ही इसलिए रहा है कि भीतर जो उसका भय है, वह उसे भूल जाए और मिट जाए।
अब एक व्यक्ति मेरे पास आया कि जिसको कोई नहीं कह सकेगा कि यह आदमी कभी भयभीत होगा। शरीर से बलिष्ठ है, हर तरह के संघर्ष से गुजरा है। जेलें काटी हैं, दबंग है। किसी के सामने खड़ा हो जाए तो वह आदमी हिल जाए। और उस आदमी ने मुझसे कहा कि मैं इतना डरता हूं भीतर कि जब मैं बोलने खड़ा होता हूं तो मेरे पैर कंपने लगते हैं। और मुझे लगता है कि पता नहीं आज मेरे मुंह से शब्द निकलेगा कि नहीं निकलेगा! निकल जाता है, यह दूसरी बात, लेकिन सदा भय यही बना रहता है।
अब इस आदमी को खुद ही ख्याल आया है तो ठीक है, नहीं तो इससे कहा जाए कि ऐसा है, तो बहुत मुश्किल हो जाए।
अब अंतस-जीवन के तथ्य हमें ही ज्ञात नहीं हैं और अगर मैं कहूं भी कि आपके संबंध में यह अंतस-जीवन की बात है, तो हो सकता है आप सबसे पहले इनकार करने वाले व्यक्ति सिद्ध हों।
और यह भी ध्यान रहे, आप जितने जोर से इनकार करेंगे, उतने ही जोर से मेरे लिए सही होगा कि वह तथ्य आपके भीतर है, क्योंकि जोर से इनकार इसीलिए आता है। अगर वह तथ्य न हो तो शायद आप कहें, मैं सोचूंगा, मैं खोजूंगा। लेकिन अगर वह तथ्य है, जैसे एक भयभीत आदमी बाहर से बहादुर बनने की कोशिश में लगा है, तो उससे यह कहने पर कि तुम्हारे भीतर भीरुता है, वह इतने जोर से इनकार करेगा कि जिसका कोई हिसाब नहीं।
पर मुझे बाहर के तथ्यों से कोई प्रयोजन ही नहीं है। कोई प्रयोजन नहीं है। इसलिए उस तरह की प्रामाणिकता में जाने की मैं कोई तैयारी नहीं दिखाऊंगा। मैं तो एक ही प्रामाणिकता मानता हूं, कि जो मैं कह रहा हूं, वह जिन प्रयोगों से मुझे दिखाई पड़ता है कि ऐसा है, उन प्रयोगों में से कोई भी गुजरने को तैयार हो।
अब जैसे समझ लें, समझ लें एक आदमी है। जैसे पहली दफा दूरबीन बनी, जिससे दूर के तारे देखे जा सकते हैं। दूरबीन बनी और पहले आदमी ने जिसने दूरबीन बनाई, उसने अपने मित्रों को आमंत्रित किया कि तुम आओ और मैं तुम्हें ऐसे तारे दिखला देता हूं जो तुमने कभी नहीं देखे हैं।
तो उन मित्रों ने दूरबीन में से देखने से इनकार कर दिया। उन्होंने कहा कि हो सकता है, तुम्हारी दूरबीन में कुछ बात हो, जिससे कुछ तारे दिखाई पड़ते हैं, जो नहीं हैं। तुम खुली आंख से कुछ ऐसी बातें बताओ जो दूर की हैं। तो फिर हम मानें कि तुम्हारी दूरबीन में भी कुछ बात हो सकती है। पहले हमें खुली आंख से कुछ बताओ जो कि दूर का है, जो कि हमको नहीं दिखाई पड़ रहा और तुमको दिखाई पड़ता हो। तो फिर हम तुम्हारी दूरबीन से झांकें।
उन्होंने दूरबीन से झांका तो भी उन्होंने कहा कि इसमें कुछ पक्का नहीं होता। इसमें हो सकता है कि दूरबीन की ही करतूत है। मेरी बात समझे न तुम? लेकिन वह आदमी क्या कर सकता है? इसके सिवाय और क्या उपाय है? वह यही कह सकता है कि तुम भी दूरबीन बना लो, जिसमें कि तुम्हें यह पक्का हो जाए कि इस दूरबीन में कोई तरकीब नहीं है। तुम अपनी दूरबीन बना लो और तुम अपनी दूरबीन से झांको।

और मामला इतना जटिल है कि जरूरी नहीं है बहुत कि मैं तुम्हें अंतस-प्रयोगों के लिए कहूं तो तुम्हें ठीक वही दिखाई पड़े, जो मुझे दिखाई पड़ता है। लेकिन एक बात पक्की है कि तुम्हें जो भी दिखाई पड़े, तुम इतना अनुभव कर सकोगे कि जो मैं कह रहा हूं, वह दिखाई पड़ रहा होगा--एक।
दूसरा, तुम यह भी अनुभव कर सकोगे कि जो मैं कह रहा हूं, उसके पीछे जो दृष्टि है, वह तुम्हें कुछ भी दिखाई पड़े तो वह दृष्टि तुम्हारे फौरन समझ में आ जाएगी... कि वह दृष्टि क्या है। और यह भी तुम्हें दिखाई पड़ेगा कि महावीर मेरे लिए बिल्कुल गौण हैं, न क्राइस्ट का कोई मूल्य है, न बुद्ध का कोई मूल्य है। मूल्य है हमारा, जो भटक रहे हैं। और इनको कोई तरफ से, किसी कोण से एक चीज दिखाई पड़ जाए, जो इनकी भटकन को मिटा दे। और एक दिन ये वहां पहुंच जाएं जहां कि कोई भी महावीर कभी पहुंचता रहा है।
तो मेरा प्रयोजन ही भिन्न है। और एक ही उपाय है उस प्रयोजन को... क्योंकि मेरा प्रयोजन तभी सिद्ध होता है, नहीं तो सिद्ध नहीं होता। अगर मैं यह बता भी दूं कि तुम कब पैदा हुए, और तुम्हारी कब शादी हुई, और तुम्हारा कब लड़का पैदा हुआ, तो भी मेरा प्रयोजन सिद्ध नहीं होता--असिद्ध होता है। क्योंकि फिर मैं तुम्हारे बहिर्जीवन पर ही जोर देता हूं। और तुम्हारी दृष्टि को मैं फिर भी अंतर्मुखी नहीं कर पाता। और तुम बहिर्मुखी जीवन-दृष्टि को ही पुनः-पुनः सिद्ध कर लेते हो। फिर सिद्ध कर लोगे और फिर भीतर उतरने से रह जाओगे।
यानी मेरा कहना यह है कि अगर मेरी बातचीत से तुम्हें बेचैनी पैदा हो जाए, और ऐसा लगने लगे कि पता नहीं, यह बात सही है या झूठ? तो तुम मुझसे प्रमाण मत पूछो, फिर तुम प्रमाण की तलाश में निकल जाओ खुद। तो अगर बात झूठ भी हुई तो भी तुम वहां पहुंच जाओगे, जहां पहुंचना चाहिए, और बात सही भी हुई तो भी तुम वहां पहुंच जाओगे। और जिस दिन तुम वहां पहुंच जाओगे तो जरूरी नहीं है कि तुम लौट कर मुझसे कहने आओ।
जैसे समझ लो कि इस कमरे में आग नहीं लगी है। इस कमरे में आग नहीं लगी
है और मैं तुमसे चिल्ला कर कहता हूं कि कमरे में आग लगी हुई है, और मर जाएंगे अगर हम भीतर रहते हैं, चलो बाहर चलें। और तुम कहो कि कोई ताप नहीं मालूम पड़ता, कहीं कोई लपट दिखाई नहीं पड़ती। और मैं तुमसे कहूं, .तुम तो बस बाहर चले चलो तो तुमको पता चल जाएगा कि मकान में आग लगी थी। और जब तक तुम भीतर हो, दिखाई नहीं पड़ेगा।
और तुम बाहर पहुंच जाओ, सच में ही तुम पाओ कि मकान में आग नहीं लगी थी। लेकिन बाहर जाकर तुम देखोगेः सूरज निकला है जो तुमने कभी नहीं देखा, और ऐसे फूल खिले हैं जो तुमने कभी नहीं देखे, और ऐसा आनंद है जो तुमने कभी अनुभव नहीं किया।
तो तुम मुझे धन्यवाद दे दोगे। तुम मुझे कहोगे, कृपा की कि कहा कि मकान में आग लगी है। क्योंकि हम मकान की भाषा ही समझ सकते थे, सूरज और फूलों की भाषा हम समझ ही नहीं सकते थे। क्योंकि सूरज और फूल हमने कभी देखा नहीं था। अगर तुमने कहा भी होता कि बाहर सूरज है और फूल हैं और आनंद की वर्षा हो रही है, तो हम कहते कि हम कुछ समझे नहीं, कैसा बाहर? कैसा सूरज? कैसा फूल? हम तो एक ही भाषा समझ सकते थे, मकान की। और हम यही समझ सकते थे कि अगर मकान में आग लगी हो तो ही बाहर जाया जा सकता है, नहीं तो जाने की कोई जरूरत नहीं। जब मकान सुरक्षित है तो बाहर जाने की क्या जरूरत?
तो हो सकता है बाहर जाकर तुम पाओ कि मकान में आग नहीं लगी थी, लेकिन फिर भी तुम मुझे धन्यवाद दो, कि ठीक हुआ कि कहा कि मकान में आग लगी है, नहीं तो हम बाहर कभी न आ पाते। और अब हम मकान में भीतर कभी न जाएंगे, यद्यपि उसमें आग नहीं लगी है, लेकिन मकान में होना ही आग में होना है।
मेरा मतलब समझे न तुम? यानी यह जरूरी नहीं है। तुम, तुम बाहर आकर मुझसे यही कहोगे कि मकान में आग तो नहीं लगी है, लेकिन मकान में होना ही आग में होना है। क्योंकि हम चूके जा रहे थे, वह सब जला जा रहा था जीवन, चूका जा रहा था सब कुछ, जो मिल सकता था।
इसलिए बहुत सी बातें हैं। और जिसको आमतौर से हम प्रमाण कहते हैं, मेरी
उस पर कोई श्रद्धा नहीं है--किसी तरह के प्रमाण पर। प्रमाण एक ही है कि तुम पहुंच जाओ। और तुम पहुंच जाओ तो इनकार नहीं कर सकते हो, इतना मैं वायदा

करता हूं। यानी तुम पहुंच जाओ तो जो मैं कह रहा हूं, उससे तुम इनकार नहीं कर सकते हो, इतना मैं वायदा करता हूं।

प्रश्नः एक प्रश्न मेरे मन में उठता है। आपने रात को शास्त्रों के बारे में कुछ बात कही। मुझे ऐसा लगा कि आप जो भी कुछ कहते हैं, वह शास्त्रों में भी उपलब्ध हो ही सकता है। और आप जो कुछ कह रहे हैं, वह भी स्वयं में एक शास्त्र ही बनते चले जा रहे हैं। और जो बातें आप शास्त्रों के संबंध में कह रहे हैं, वह आपकी कही हुई बातों पर भी ज्यों की त्यों लागू हो जाएंगी। जो देखने वाला है, उसे इसमें भी दिखेगा। जो नहीं देखने वाला है, उसे इसमें भी नहीं दिखेगा। और जो देखने वाला है, उसे प्राचीन शास्त्रों में भी दिख ही जाता है। और न देखने वाले को उनमें भी नहीं दिखता। फिर उनकी निंदा का कोई प्रयोजन शेष नहीं रह जाता।

उनकी निंदा मैं करता ही नहीं हूं। शास्त्र की निंदा मैं नहीं करता हूं, क्योंकि शास्त्र को मैं निंदा के योग्य भी नहीं मानता हूं। प्रशंसा के योग्य मानना तो दूर, निंदा के योग्य भी नहीं मानता हूं। क्योंकि निंदा भी हम उसकी करते हैं, जिससे कुछ मिल सकता होता और नहीं मिला। निंदा हम उसकी करते हैं, जिससे कुछ मिल सकता होता, अन्यथा मिल सकता होता, और नहीं मिला। शास्त्र से मिल ही नहीं सकता है। उसकी निंदा का कोई अर्थ नहीं। उसकी निंदा का कोई अर्थ नहीं है, क्योंकि शास्त्र से न मिलना शास्त्र का स्वभाव है। यानी यह शास्त्र का स्वभाव ही है कि उससे सत्य नहीं मिल सकता, इसलिए शास्त्र की निंदा क्या करना? मिल जाए तो आश्चर्य हो जाएगा, असंभव घटना हो जाएगी।
तो मैं तो निंदा नहीं करता हूं शास्त्र की, इतना ही कहता हूं कि शास्त्र से नहीं मिलता है। जैसे समझें कि एक आदमी एक रास्ते से जा रहा है, और किसी जगह पहुंचना चाहता है, और हम उससे कहते हैं यह रास्ता वहां नहीं जाता। इसका मतलब यह नहीं कि हम उस रास्ते की निंदा करते हैं। इसका कुल मतलब इतना है कि हम यह कहते हैं कि वह जहां जाना चाहता है, वहां यह रास्ता नहीं जाता है।
हम यह भी नहीं कहते कि यह रास्ता कहीं नहीं जाता है। यह रास्ता भी कहीं जाता है। लेकिन जहां वह जाना चाहता है, वहां नहीं जाता, बल्कि उससे उलटा जाता है। जैसे प्रज्ञा की खोज में निकले हुए व्यक्ति को शास्त्र व्यर्थ है, क्योंकि शास्त्र का रास्ता प्रज्ञा को नहीं जाता, पांडित्य को जाता है। और पांडित्य प्रज्ञा से बिल्कुल उलटी चीज है। पांडित्य है उधार और प्रज्ञा है स्वयं की। और ऐसा असंभव है कि उधार संपदा को कोई कितना ही इकट्ठा कर ले तो वह स्वयं की संपदा बन जाए।
तो जब मैं यह कहता हूं कि शास्त्र से नहीं जाया जा सकता, तो यह भूल कर
भी मत सोचना कि मैं निंदा करता हूं, मैं तो सिर्फ शास्त्र का स्वभाव बता रहा हूं। और अगर शास्त्र का स्वभाव ऐसा है, तो मेरे शब्दों को मान कर जो शास्त्र निर्मित हो जाएंगे, उनका स्वभाव भी ऐसा ही होगा। यानी उनसे कोई कभी प्रज्ञा को नहीं जा सकेगा।
अगर मैं ऐसा कहूं कि दूसरों के शास्त्र से कोई प्रज्ञा को नहीं जा सकता लेकिन मेरे शब्द पर अगर कोई शास्त्र बन गया, उससे कोई प्रज्ञा को जाएगा, तब तो गलती बात हो गई। तब तो मैं किसी के शास्त्र की निंदा कर रहा हूं और किसी के शास्त्र की प्रशंसा कर रहा हूं।
नहीं, मैं तो शास्त्र मात्र का स्वभाव बता रहा हूं--वह चाहे महावीर का हो, चाहे बुद्ध का हो, चाहे कृष्ण का हो, चाहे मेरा हो, चाहे तुम्हारा हो, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। किसी का भी शब्द सत्य में ले जाने वाला नहीं है। हां, लेकिन दूसरी बात सच है कि अगर दिखाई पड़ जाए किसी को तो शास्त्र में दिखाई पड़ सकता है। लेकिन दिखाई पहले पड़ जाए। उसका मतलब यह हुआ कि शास्त्र किसी को दिखला तो नहीं सकता है, लेकिन जिसको दिखाई पड़ता है, उसे शास्त्र में भी दिख सकता है। लेकिन दिखाई पड़ना पहले घट जाए। तो फिर शास्त्र की तो क्या बात, उसे तो पत्थर, कंकड़, दीवाल, पहाड़, सबमें दिखाई पड़ता है। यानी यह सवाल फिर शास्त्र का नहीं रह जाता, जिसे दिखाई पड़ गया, उसे

सबमें दिखाई पड़ता है। तो उसे शास्त्र में भी दिखाई पड़ेगा। अब शास्त्र में उसे वही दिखाई पड़ेगा, जो उसे दिखाई पड़ रहा है। और कल तक चूंकि उसे नहीं दिखाई पड़ रहा था, इसलिए शास्त्र अंधे थे। क्योंकि उसका अंधकार था भीतर, अंधकार ही दिखाई पड़ रहा था।
यानी मेरा मतलब यह है कि शास्त्र में हमें वही दिखाई पड़ सकता है, जो हमें दिखाई पड़ रहा है। शास्त्र उससे ज्यादा नहीं दिखला सकते हैं। शास्त्र उससे ज्यादा नहीं दिखला सकते हैं। इसलिए शास्त्र में हम वह नहीं पढ़ते हैं, जो कहने वाले या लिखने वाले का इरादा रहा होगा। शास्त्र में हम वह पढ़ते हैं, जो हम पढ़ सकते हैं। यानी शास्त्र किसी भी अर्थ में हमारे ज्ञान को वृद्धि नहीं देता, शास्त्र उतना ही बता देता है।
जैसे समझ लें, आईना है। आईने में हमें वही दिखाई पड़ जाता है, जो हम हैं। वही दिखाई पड़ जाता है, जो हम हैं। आईना हममें कोई वृद्धि नहीं देता। और कोई यह सोचता हो कि कुरूप आदमी आईने के सामने खड़े होकर सुंदर हो जाएगा, तो वह गलती में है। वह एकदम गलती में है। कोई यह सोचता हो कि अज्ञानी आदमी शास्त्र के सामने खड़े होकर ज्ञानी हो जाएगा, तो वह गलती में है।
हां, ज्ञानी को शास्त्र में ज्ञान दिख जाएगा, अज्ञानी को अज्ञान ही दिखता रहेगा। और मजा यह है कि ज्ञानी शास्त्र में देखने नहीं जाता, क्योंकि जब खुद ही दिख गया है, तो उसे और किसी दूसरे से क्या देखना है? और अज्ञानी शास्त्र में देखने जाता है।
अक्सर ऐसा होता है कि सुंदर आदमी दर्पण से मुक्त हो जाता है, और कुरूप आदमी दर्पण के आस-पास घूमता रहता है। वह जो कुरूपता का बोध है, वह किसी भांति दर्पण से पक्का कर लेना चाहता है कि मिट जाए, नहीं है अब। सुंदर दर्पण से मुक्त हो जाता है। असल में जितनी बार हम दर्पण को देखते हैं, उतना ही हमारा कुरूपता का बोध है। और किसी भांति पक्का कर लेना चाहते हैं कि दर्पण कह दे कि अब हम कुरूप नहीं हैं। विश्वास हमें आ जाए कि अब हम कुरूप नहीं हैं। लेकिन घड़ी भर बाद फिर दर्पण देखना पड़ता है। क्योंकि वह जो कुरूपता का बोध है, वही दर्पण में दिखाई पड़ता है बार-बार।
शास्त्र में वही दिखाई पड़ता है, जो हम हैं।
लेकिन यह बात ठीक है कि आज नहीं कल, मेरे शब्द इकट्ठे हो जाएंगे और शास्त्र बन जाएंगे। और जिस दिन मेरे शब्द शास्त्र बन जाएं, उसी दिन उनकी हत्या हो गई।
फिर भी ध्यान रहे कि मैं किताब का विरोधी नहीं हूं, शास्त्र का विरोधी हूं, और इन दोनों में फर्क करता हूं।
किताब का दावा नहीं है सत्य देने का, किताब का दावा सिर्फ संग्राहक होने का है। किसी ने कुछ कहा था, वह संग्रह किया गया। शास्त्र का दावा सिर्फ संग्राहक होने का नहीं है, शास्त्र का दावा सत्य को देने का है। शास्त्र का दावा यह है कि मैं सत्य हूं।
जो किताब यह दावा करती है कि मैं सत्य हूं, वह शास्त्र बन जाती है। जो किताब सिर्फ विनम्र संग्रह है, और दावा नहीं करती, जैसा कि मैंने कल लाओत्से का कहा कि किताब के पहले उसने लिखा कि जो कहा जाएगा वह सत्य नहीं होगा, इसे समझ कर किताब को पढ़ना। यह शास्त्र नहीं बन रही है यह किताब। यह विनम्र किताब है, यह सिर्फ संग्रह है। और इस किताब को अगर कोई शास्त्र बनाता है तो वह खुद ही जिम्मेवार है। यह किताब उस पर बोझ बनने की तैयारी में नहीं थी। यह किताब उसको मुक्त करने की तैयारी में थी। पूरा इसका भाव यही था।
तो मेरी सारी बातें ऐसी हैं कि अगर उनको काट-पीट न किया जाए तो शास्त्र बनाना मुश्किल है, ज्यादा से ज्यादा किताब बन सकती है। लेकिन शास्त्र बनाए जा सकते हैं। शास्त्र बनाए जाना कठिन नहीं है। क्योंकि शास्त्र कोई बोलता है कुछ, इससे नहीं बनते; कोई पकड़ता है, इससे बनते हैं। यानी शास्त्र महावीर के बोलने से नहीं बनता, गणधरों के पकड़ने से बनता है। और पकड़ने वाले हैं।
तो पकड़ने वाला पकड़ ही न पाए, इसका सारा उपाय हमारी वाणी में होना चाहिए। यानी वह वाणी ऐसी कांटों वाली हो और ऐसे अंगारे से भरी हो कि पकड़ना मुश्किल हो जाए। लेकिन फिर भी अंगारे भी बुझ जाते हैं और एक न एक दिन राख

हो जाते हैं और पकड़ने वाले उनको मुट्ठी में पकड़ लेंगे। इसका मतलब सिर्फ यह हुआ कि बार-बार ज्ञानी को पुराने ज्ञानियों की दुश्मनी में खड़ा होना पड़ता है।
अब यह बड़ा उलटा काम है। निरंतर ज्ञानी को पुराने ज्ञानियों की दुश्मनी में खड़ा होना पड़ता है। और यह दुश्मनी नहीं है। इससे बड़ी कोई मित्रता नहीं हो सकती। क्योंकि इस भांति जो राख पकड़ ली गई है, उसको छुड़ाने का कोई और रास्ता नहीं होता।
तो अगर जो महावीर को प्रेम करता है, उसे जैनियों के खिलाफ खड़ा होना ही पड़ेगा। अगर महावीर भी लौट आएं तो उनको भी खड़ा होना पड़ेगा। क्योंकि जो उन्होंने दिया था, वह जीवित अंगारा था। वह पकड़ा नहीं जा सकता था, सिर्फ जीया जा सकता था, समझा जा सकता था। फिर अब राख रह गई है, उसको लोगों ने पकड़ लिया है। और उसको पकड़ कर वे बैठ गए हैं!
तो दुनिया में जो एक करिश्मे की बात दिखाई पड़ती है, आश्चर्यजनक मालूम पड़ती है कि क्यों कभी ऐसा होता है कि कृष्ण के खिलाफ महावीर खड़े हैं? कि महावीर के खिलाफ बुद्ध खड़े हैं? कि बुद्ध के खिलाफ कोई और खड़ा है? यह कैसा अजीब है!
होना तो यह चाहिए कि महावीर बुद्ध का समर्थन करते हों, क्राइस्ट बुद्ध का समर्थन करते हों, मोहम्मद महावीर का समर्थन करते हों; महावीर, कृष्ण, राम का समर्थन करते हों। होना तो यह चाहिए, लेकिन हुआ इससे उलटा ही। होने का कारण है। इसके पहले कि किसी के जीवन में नए ज्ञान की किरण आए, जैसे ही वह किरण आती है, उसे दिखाई पड़ता है, लोगों के हाथ में राख है। कभी वह भी किरण थी, लेकिन अब राख है। और समझाया न जाए कि यह राख है, तो छुटकारा होने वाला नहीं है।
फिर भी न बुद्ध महावीर के खिलाफ हैं, न महावीर कृष्ण के खिलाफ हैं। खिलाफ हैं शास्त्र बन जाने के। और जो भी शास्त्र बन जाता है, वह सत्य मर जाता है।
तो इसको स्मरण रखें, तो शास्त्र बनने की उम्मीद मिटती है, आशा मिटती है। लेकिन फिर भी बन सकता है, इसलिए लड़ाई जारी रहेगी। इसलिए किसी ज्ञानी पर लड़ाई खतम नहीं हो जाएगी। ज्ञानी होंगे और आने वाले ज्ञानियों को उनका खंडन करना पड़ेगा।
यह बड़ा कठोर कृत्य है। लेकिन प्रेम इतना कठोर भी होता है। यह बड़ा कठोर कृत्य है। यह बड़ा कठोर कृत्य है कि... झेन फकीर हुए हैं, अब झेन फकीर बुद्ध के अनुयायी हैं। लेकिन झेन फकीर अपने अनुयायियों से कहते हैं कि अगर बुद्ध बीच में आए तो एक चांटा मार कर अलग कर देना। और आएगा बुद्ध बीच में तुम्हारे। परम ज्ञान के उपलब्ध होने के पहले बुद्ध तुम्हारे बीच में मार्ग रोकेगा। तो एक चांटा मार कर अलग कर देना।
एक झेन फकीर तो यह भी कहता था कि बुद्ध का मुंह में नाम आए तो कुल्ला करके पहले मुंह साफ कर लेना, फिर दूसरा काम करना।
तो उसके शिष्य पूछते, यह तुम क्या कहते हो? और बुद्ध की मूर्ति रखे हुए
हो अपने मंदिर में!
वह कहता, ये दोनों ही सही हैं। बुद्ध से हमारा प्रेम है, लेकिन बुद्ध किसी के आड़े आ जाए, तो उससे हमारी लड़ाई है। और इसके लिए बुद्ध का आशीर्वाद हमको मिला हुआ है। यानी हमने बुद्ध से यह पूछ लिया है कि हम लोगों से यह कहें तो कुछ बुरा तो नहीं कि तुम्हारा नाम मुंह में आ जाए तो कुल्ला करके साफ कर लेना?
अब इसको समझना हमें मुश्किल हो जाएगा इस आदमी को, लेकिन यह आदमी है।
और यह ठीक कह रहा है। एक तरफ यह कह रहा है कि हम... एक मूर्ति रखी हुई है और रोज सुबह उसके सामने फूल भी रख आता है! और लोगों को समझाता है कि बुद्ध से बचना, इससे खतरनाक आदमी ही नहीं हुआ! और इसका नाम भी आए मुंह में तो बस कुल्ला करके साफ कर लेना! इतना अपवित्र है यह नाम, अपवित्र! और कहता है बुद्ध से पूछ लिया है और आशीर्वाद ले लिया है, कि हां यह करो!
अब इसके मतलब क्या हैं? इसके मतलब ये हैं कि हर चीज बाधा बन जाती है। असल में जो भी सीढ़ी है, वह मार्ग का पत्थर भी बन सकती है। और जो भी पत्थर है, वह मार्ग की सीढ़ी भी बन सकता है। सब कुछ बनाने वाले पर निर्भर है। और जब

पुरानी सीढ़ी पत्थर बन जाती है तो उसे हटाने की बात करनी पड़ती है, उसे मिटाने की बात करनी पड़ती है। यह लड़ाई जारी रहेगी। यह लड़ाई निरंतर जारी रहेगी। इस लड़ाई को रोकना मुश्किल है।
यानी मैं जो कह कर जाऊंगा, कल किसी को हिम्मत जुटा कर उसे गलत कहना ही पड़ेगा। मैं जो कह कर जाऊंगा, मुझे प्रेम करने वाले किसी व्यक्ति को मेरे खिलाफ लड़ना ही पड़ेगा। इसके सिवाय कोई उपाय ही नहीं। क्योंकि वे सुनने वाले उसको पकड़ेंगे और शास्त्र बनाएंगे और कल उससे छुटकारा दिलाना होगा। यानी जो व्यक्ति भी हमारे लिए मुक्तिदायी सिद्ध हो सकते हैं, हम उन्हें बंधन बना लेते हैं। और जब उन्हें बंधन बना लेते हैं तो उनसे भी मुक्ति दिलानी पड़ती है। और जो हमें फिर मुक्ति दिलाता है, हम उसे फिर बंधन बना लेते हैं। लंबी कथा है यह कि मुक्तिदायी विचार भी कैसे बंधन बन जाते हैं, मुक्तिदायी व्यक्ति भी कैसे बंधन बन जाते हैं, फिर कैसे उनसे छुड़ाना पड़ता है।
और इसलिए कोई भी विचार सदा रहने वाला नहीं हो सकता। और इसलिए कोई भी विचार की एक सीमा है प्रभाव की, जीवंत। उस प्रभाव क्षेत्र में जितने लोग आ जाते हैं, और जो जीवंत प्रयोग में लग जाते हैं, वे तो निकल जाते हैं। पीछे फिर राख रह जाती है।
और इसलिए सब तीर्थंकरों, सब अवतारों, सब उन द्रष्टावान लोगों के आस-पास राख का संग्रह हो जाता है। और वह जो राख का संग्रह है, वह संप्रदाय बन जाता है। और फिर वे राख के संग्रह एक-दूसरे से लड़ते हैं, झगड़ते हैं, उपद्रव करते हैं। और तब जरूरत होती है कि कोई फिर खड़ा हो और सारी राख को मिटा दे। लेकिन इसका यह मतलब नहीं होता कि वह राख नहीं बन जाएगा, वह बनेगा। जो
भी अंगारा जलेगा, वह बुझेगा। जो विचार एक दिन जीवंत होगा, वह एक दिन मृत हो जाएगा। जब महावीर ही मिट जाते हैं, जब बुद्ध ही मिट जाते हैं, तो जो कहा हुआ है, वह भी मिट जाएगा। इस जगत में जिसमें हम जी रहे हैं, इस जगत में कुछ भी शाश्वत नहीं है। न कोई वाणी, न कोई विचार, न कोई व्यक्ति--कुछ भी शाश्वत नहीं है। यहां सभी मिट जाएगा। मिट जाने के बाद भी पकड़ने वाला आग्रह उसको पकड़े रखेगा।
और तब किसी को चेताना पड़ेगा कि लहर चली गई है, हाथ तुम्हारा खाली है, तुम कुछ भी नहीं पकड़े हुए हो। अब दूसरी लहर आ गई है, तुम पुरानी लहर के चक्कर में पड़े हो। उसे पकड़े रहे, तो यह नई लहर से भी चूक जाओगे और पुरानी लहर जा चुकी है।
यह जो हमें ख्याल में आ जाए, तो मैं शास्त्र की निंदा नहीं कर रहा हूं, शास्त्र की वस्तुस्थिति क्या है, वह कह रहा हूं। और वह जो तुम कहते हो, वह ठीक है। मेरी बहुत सी बातें शास्त्र में मिल जाएंगी--इसलिए नहीं कि वे शास्त्र में हैं, इसलिए कि तुम मेरी बातों को समझ लोगे। अगर मेरी बातें तुम्हें समझ में पड़ गईं, तो तुम्हें शास्त्र में मिल जाएंगी। क्योंकि शास्त्र में तुम्हें वही मिल जाएगा, जो तुम्हारी समझ है। जो तुम्हारी समझ है, वही मिल जाएगा। क्योंकि हम शास्त्र में अपनी समझ डालते हैं।
आमतौर से हम सोचते हैं कि शास्त्र से समझ निकलती है। निकलती नहीं, हम शास्त्र में अपनी समझ डालते हैं। इसीलिए तो गीता की हजार टीकाएं हो सकती हैं। अगर गीता से समझ निकलती हो तो हजार टीकाएं कैसे हो सकती हैं? और कृष्ण के अगर हजार मतलब रहे हों तो कृष्ण का दिमाग खराब रहा होगा। कृष्ण का मतलब तो एक ही रहा होगा। हजार टीकाएं हो सकती हैं, लाख टीकाएं हो सकती हैं, क्योंकि हर एक व्यक्ति अपनी समझ उसमें खोज लेगा। और शब्द इतना बेजान है कि तुम उसे मार-ठोंक कर जहां लाना चाहो, वहां आ जाता है। वह कुछ कर ही नहीं सकता। तुमने उसकी गर्दन में डाली फांस और खींचा, तो तुम जहां लाना चाहते हो, वहां ले आते हो।
तो उसी गीता से शंकर निकाल लेंगे कि जगत सब माया है, और कर्ममुक्त हो जाना ही संदेश है। और उसी गीता से तिलक निकाल लेंगे कि कर्म ही जीवन है, और जीवन सत्य है। उसी गीता से दोनों निकल आएंगे। उसी गीता से अर्जुन निकालता है कि युद्ध में जूझ जाओ।
अर्जुन सुनने वाला है, श्रोता है पहला वह। पहली टीका उसी की है समझो। पहला कमेंटेटर वही है। सुना है उसने। तो सुन ही तो नहीं लिया, जो सुना है

उसको समझा है, गुना है, अपना मतलब निकाला है। अर्जुन मतलब निकाल लेता है, युद्ध में जूझ जाओ, और महाभारत का युद्ध हो जाता है। और उसी गीता को गांधी अपनी माता समझते हैं, और अहिंसा का संदेश निकालते हैं।
यानी अब यह बहुत मजेदार मामला है कि अर्जुन हिंसा में उतर जाता है और गांधी उसको जिंदगी भर हाथ में रख कर अहिंसा में चले जाते हैं। तो गीता बेचारी कुछ है कि गीता में कुछ हम डालते हैं?
शास्त्र अपनी बुद्धि को बाहर निकाल कर पढ़ने का उपाय है। भीतर पढ़ना जरा मुश्किल है, इसलिए प्रोजेक्ट कर लेते हैं पर्दे पर। शास्त्र पर्दा बन जाता है। उस पर अपने भीतर को बाहर लिख लेते हैं। फिर हमें दोहरी तृप्ति मिल जाती है। एक तो हमें अपने पर विश्वास नहीं है, तो जब हम गीता में पढ़ लेते हैं अपने को, तो हम मजबूत, पक्के हो जाते हैं कि ठीक है, क्योंकि कृष्ण भी यही कहते हैं। यानी हम, हमें कोई भटक जाने का डर नहीं है, महावीर भी यही कहते हैं, बुद्ध भी यही कहते हैं।
इस भूल में पड़ना ही मत कि अनुयायी ने कभी भी बुद्ध का या महावीर का साथ दिया है, अनुयायी ने बुद्ध और महावीर का साथ लिया है। दिखता हमें ऐसा है कि महावीर के पीछे चल रहा है महावीर का अनुयायी। सच्चाई उलटी है, महावीर का अनुयायी महावीर को अपने पीछे चला रहा है। और चला कर आश्वस्त है कि हम कोई गलती में तो हो नहीं सकते, क्योंकि महावीर साथ हैं। तो वह हर चीज का निकाल लेता है, हर चीज के उपाय निकाल लेता है।
शब्द में कोई अर्थ नहीं है। शब्द तो कोरी ध्वनि है, अर्थ हम डालते हैं। इसलिए ऐसा भी हो जाता है कि शब्द चलते-चलते अपने विरोधी अर्थों के व्यंजक तक भी हो जाते हैं। यानी वही शब्द हजार साल पहले कुछ था, हजार साल बाद ठीक उलटा हो गया।
अब अंग्रेज हिंदुस्तान में आए, तो पहला संपर्क उनका बंगालियों से पड़ा। बंगालियों की मछली की बदबू और उनके शरीर का गंदापन उनको बास देता था। बास की वजह से वे कहते थे बाबू। बाबू का मतलब, बू-सहित--जिसमें बदबू आ रही हो। और अब बाबूजी से ज्यादा कीमती शब्द नहीं है इस वक्त--कि आइए, बाबूजी! वह बदबू की वजह से, सिर्फ गंदगी की वजह से कि बंगाली से बास आती है मछली की, खाने-पीने की।
अभी भी, दूसरा उतना बाबू नहीं हो पाया है; बंगाली बाबू अब भी बाबू है। लेकिन अब आदर का शब्द हो गया है। आदर का इसलिए हो गया है कि अंग्रेज सत्तावान थे। जिसको उन्होंने बाबू कहा, वह आदृत हो गया। और जब अंग्रेज ने बाबू कह दिया और गवर्नर ने किसी को बाबू कहा तो वह बाहर अकड़ कर निकला कि हम कोई साधारण थोड़े हैं, हम बाबू! और दूसरे लोग भी उसको बाबू कहने लगे। अब बाबू बड़ा कीमती शब्द है!
शब्दों की यात्रा है, हम उनमें क्या डालते हैं, यह हम पर निर्भर है। कैसे हम... शब्द में कुछ भी नहीं है, हम उसमें डालते हैं। अर्थ हमारा है, शब्द कोरा, खाली है। शब्द कंटेनर है, डब्बा है खाली। कंटेंट हम डालते हैं। और कंटेंट हमारे हाथ में है बिल्कुल कि हम क्या डालेंगे।
इसलिए हर पीढ़ी, हर युग, हर आदमी अपना कंटेंट डाल देता है। जो बहुत कुशल हैं डालने में, वे किसी भी चीज से कोई भी अर्थ निकाल सकते हैं, उन पर कोई शब्द का बंधन ही नहीं है। कोई बंधन ही नहीं है।
तो इसलिए मैं कहता हूं कि... अब मेरी बात समझ में आ जाए तो शास्त्र में मिल जाएगी। शास्त्र की बात तुम्हारी पकड़ में हो तो मेरी बात में मिल जाएगा। लेकिन इसमें पड़ना ही मत। इसमें पड़ना ही मत, क्योंकि यह पड़ना ही गलत दिशा में ले जाता है। जब मैं तुम्हारे सामने मौजूद हूं, तो सीधा ही मुझे लेना, शास्त्र को बीच में लाना ही मत। सीधा ही मुझे समझने की कोशिश करना, कंपेयर ही मत करना, तुलना ही मत करना कि यह कहां है और कहां नहीं है। होगा तो ठीक, नहीं होगा तो ठीक। सीधे ही समझने की कोशिश उपयोगी है, क्योंकि तभी हम ज्यादा से ज्यादा समझ सकते हैं। और जो हमारी समझ में आ जाए, वह हमें सब जगह दिखाई पड़ने लगेगा।

प्रश्नः पढ़ने और सुनने से ज्ञान नहीं होता है तो फिर पढ़ने और सुनने की जरूरत क्या है? और उसके बाद, आप स्वयं इतने समय तक अभी पढ़ा और सुना ही तो रहे हैं! उसमें भेद क्या है?

हां, असल में जिंदगी बड़ी विरोधी चीजों से बनी है। और यह बात सच है कि पढ़ने-समझने से, सुनने से, ज्ञान नहीं आ जाता है। अगर यह बोध बना रहे कि पढ़ने और सुनने से ही ज्ञान नहीं आ जाता है, तो पढ़ना-सुनना भी तुम्हारे भीतर ज्ञान को लाने के लिए निमित्त बन सकता है--अगर यह बोध बना रहे कि इससे ही ज्ञान नहीं आ जाता है। और अगर यह ख्याल हो जाए कि पढ़ना-सुनना ही ज्ञान दे देता है, तो तुम्हारे भीतर कभी ज्ञान नहीं आएगा। यह निमित्त नहीं बनेगा, यह बाधा बन जाएगी।
अब ये बातें उलटी दिखती हैं ऊपर से। अगर तुम्हें पक्का स्पष्ट है यह
कि क्या पढ़ने से मिलेगा, तो तुम्हें पढ़ने से भी कुछ मिल सकता है। क्योंकि तब तुम पढ़ने को नहीं पकड़ लोगे, क्योंकि वह तो तुम्हें स्पष्ट ही है कि पढ़ने से कुछ नहीं मिलता। तब तुम सुनने को नहीं पकड़ लोगे; तब तुम सोचोगे, समझोगे, खोजोगे; वह तुम्हारी जारी रहेगी खोज। और तब पढ़ना भी एक निमित्त बन सकता है तुम्हारी खोज का।
तो शास्त्रों से वे लोग फायदा भी उठा सकते हैं, जो शास्त्रों से नहीं बंधे हैं। जो बिल्कुल मुक्त हैं शास्त्रों से। जिन्हें ख्याल ही नहीं है कि शास्त्र से ज्ञान मिल सकता है, वे शास्त्रों से भी फायदा उठा सकते हैं। और जिन्हें यह ख्याल है कि शास्त्र में सब लिखा है, सब मिल जाएगा, वे शास्त्रों को अपनी छाती पर रख कर सिर्फ डूब जाते हैं और कुछ भी नहीं कर पाते।
अब मेरी बहुत बातें उलटी तुम्हें दिखाई पड़ सकती हैं, क्योंकि जिंदगी
ही उलटी है। और यहां बड़े अजीब मामले हैं। यहां ऐसा मामला है कि यहां अगर हमने... समझ लो कि एक आदमी ऐसा पक्का समझ ले कि शास्त्र पढ़ लिया तो सब मिल गया। तो वह पढ़ता रहे शास्त्र, इकट्ठा करता रहे। बहुत इकट्ठा कर ले, और उसको कभी कुछ न मिले, क्योंकि उसने मिलने की सारी बात शास्त्र पर छोड़ दी है तो उसकी अंतर्खोज तो सब खतम हो गई है। जब शास्त्र से मिल जाता है तो अंतर्खोज की जरूरत क्या है? तो इकट्ठा कर लेगा शास्त्र और अंतर्खोज क्षीण होती जाएगी, मर जाएगी। जितना शास्त्र ज्यादा हो जाएगा, उतना अंतर्खोज मर जाएगी।
लेकिन एक आदमी है जो सचेत है पूरा, कि शास्त्र से क्या मिलने वाला है, शब्द ही है वहां। अंतर्खोज जारी रखी है उसने। अंतर्खोज जारी है। तो जितनी अंतर्खोज होती चली जाती है, उतना ही उसे शास्त्र में मिलने लगता है। क्योंकि जितना उसे दिखाई पड़ने लगता है... क्योंकि शास्त्र आखिर जिन्होंने कहा है, उन्होंने जान कर ही कहा है। कहा नहीं जा सकता, मुश्किल है कहना, तो भी जान कर ही कहा है। तो भी जाना है उन्होंने, तो ही कहा है। कोड है वह तो। इसमें कुछ जानने वालों ने कुछ प्रतीक छोड़े हैं।
अब जैसे समझ लें, एक मंदिर है, वहां एक मूर्ति रखी है। यह भी एक कोड है,
यह भी एक शास्त्र है। इधर अक्षरों में लिखा है, यहां हमने पत्थर में खोदा है। सब मंदिर कोड लैंग्वेज में हैं। अब नए मंदिर नहीं हैं, क्योंकि नए मंदिर का उससे कोई संबंध नहीं रह गया। जितने नए मंदिर बन रहे हैं, उनका कोई संबंध नहीं है अब। क्योंकि अब हमें पता ही नहीं है, अब हम कुछ और ही हिसाब से बना रहे हैं। नया आर्किटेक्ट जा रहा है उसमें, नई बिल्डिंग की डिजाइन जा रही है, वह सब जा रहा है। लेकिन पुराना, जितना पुराना मंदिर है, उतना कोड लैंग्वेज में है।
मंदिर की एक भाषा है, क्योंकि असल में आदमी की कितनी, कितनी करुणा भी है, कितनी कठिनाई भी है। जिनको एक बार कुछ पता चल गया है, वे चाहते हैं कि वह किसी तरह सुरक्षित रह जाए। शब्द में भी लिखते हैं, पत्थर में भी खोदते हैं, क्योंकि किताब गल जाएगी, जल जाएगी, तो पत्थर में खुदा रहेगा।
तो मंदिर के पत्थर में एक कोड खोदा हुआ है। और सारी व्यवस्था ऐसी की
गई है कि जो अंतर्खोज में जाएगा, उसके लिए मंदिर एकदम सार्थक हो जाएगा।

एकदम सार्थक हो जाएगा। क्योंकि तब उसे अर्थ ही दूसरे दिखाई पड़ने शुरू हो जाएंगे। उसे अर्थ दूसरे दिखाई पड़ने शुरू हो जाएंगे।
अब तुम अगर मंदिर की बनावट देखो, तो चौकोन मंदिर बनेगा। मंदिर चौकोन होगा, लेकिन उसके ऊपर का जो गुंबद है, वह गोल होगा। यानी दो हिस्सों में मंदिर बंटा हुआ है, नीचे का चौकोन हिस्सा है, ऊपर का गोल हिस्सा है। भीतर तुम जाओगे, तो जहां मूर्ति स्थापित की गई है, उसे कहते हैं गर्भगृह। अब उसे क्यों गर्भगृह कहते हैं? वहां मूर्ति रखी है। उस मूर्ति की तुम्हें परिक्रमा करनी होती है। वह भी नियमित, कितनी करनी, वह भी सब नियमित है। उतनी तुम परिक्रमा करते हो। मंदिर चौकोन है, परिक्रमा गोल है। उस गोल परिक्रमा के बीच में ठीक केंद्र पर एक मूर्ति है। ऊपर भी मंदिर गोल है। अब यह एक कोड लैंग्वेज है।
इंद्रियां हमारे कोने हैं। और एक इंद्रिय में हम चले जाएं तो हम एक दिशा में चले जाएंगे। सब इंद्रियों के ऊपर कहीं न जाने वाली एक गोल स्थिति है, जिससे कोई दिशा नहीं जाती, जिसमें अंदर घूमना पड़ता है। कोना तो एक दिशा की तरफ इंगित करता है, पूरब तो पूरब की तरफ बढ़ते चले गए तो तुम पूरब चले जाओगे अंतहीन। लेकिन गोल घेरे में किसी दिशा की तरफ कोई इंगित नहीं है, वहां तुम्हें अंदर गोल घूमना पड़ता है।
तो एक तो हमारा शरीर है, जिसमें दिशाएं हैं, जिसमें से तुमने कोई भी दिशा पकड़ ली तो तुम अंतहीन जा सकते हो। और शरीर के भीतर हमारा एक गोल परिभ्रमण है--चित्त का, जहां कि तुम कहीं जा नहीं सकते, सिर्फ गोल घूम सकते हो। अगर कभी तुमने विचार पर ख्याल किया होगा, तो तुम हैरान होओगे कि विचार सदा गोल घूमता रहता है, उसकी कभी कोई दिशा नहीं होती। तुम एक विचार सोचोगे, दूसरा सोचोगे, फिर तुम पहले पर आ जाओगे। तुमने कल जो सोचा था, फिर आज सोचने लगोगे, फिर कल सोचने लगोगे।
विचार का जो घेरा है, वह वर्तुल है, वह गोल घेरे में घूम रहा है। और तुम विचार में कभी भी सीधे नहीं जा सकते। और उसका वर्तुल सुनिश्चित है। अगर कोई व्यक्ति अपने भीतर चित्त का थोड़ा विश्लेषण करेगा तो हैरान हो जाएगा, कि वह हमेशा गोल-गोल घूमता रहा--पूरी जिंदगी। वह परिक्रमा है। विचार परिक्रमा है। और अगर तुम विचार की परिक्रमा में ही घूमते रहे तो तुम भगवान तक कभी नहीं पहुंचोगे, क्योंकि वह उस परिक्रमा के ठीक भीतर है। इस परिक्रमा से उतरो तो तुम पहुंच पाओगे। इसके तुम लगाते रहो चक्कर हजार... । अब दो बातें ख्याल में हुईं। एक तो चौकोन दिशाओं वाला, जहां से डायमेन्शंस जाते हैं शरीर के--कि कोई आदमी भोजन के रस में चला गया, कोई आदमी सेक्स के रस में चला गया, कोई आदमी संगीत के रस में चला गया, कोई आदमी सौंदर्य के रस में चला गया--तो ये दिशाएं अंतहीन हैं, ये चली जाएंगी। और जितना तुम इनमें जाओगे, उतना ही तुम स्वयं से दूर निकलते चले जाओगे।
तो इसलिए बाहर के मंदिर के परकोटे को गोल नहीं बनाया है। परकोटा हमारा गोल नहीं है शरीर का, उसमें कोने हैं जिनसे यात्रा हो सकती है। और एक कोने पर तुम यात्रा करोगे तो तुम दूसरे कोनों से विरोध में हो जाओगे, एकदम। और एक ही कोना बढ़ता चला जाएगा। और अपने से निरंतर दूर होते चले जाओगे।
फिर हमारे भीतर... शरीर का परकोटा है, उसके भीतर चित्त का गोल परिभ्रमण है। अगर तुम इसमें घूमते रहे तो अनेक जन्मों तक घूमते रहो इस परिभ्रमण में तो भी परमात्मा तक नहीं पहुंचोगे, सत्य तक नहीं पहुंचोगे। कभी न कभी इस परिभ्रमण से उतर जाना पड़ेगा, अंदर चले जाना पड़ेगा। और मूर्ति जो है, वह बिल्कुल थिर है। इसलिए सारी मूर्तियां थिरता की सूचक हैं।
इसलिए कई दफे हैरानी होती है। अब जैसे अभी जो बात चल रही थी न, उस पर इससे भी ख्याल तुम्हें आ जाएगा। जैनों की चौबीस तीर्थंकरों की मूर्तियां हैं, तुम कोई फर्क नहीं बता सकते उनमें, सिवाय उनके चिह्नों के। अगर चिह्न अलग कर दिए जाएं तो मूर्तियां बिल्कुल एक जैसी हैं। उनमें कोई भी फर्क नहीं है। महावीर की मूर्ति पार्श्व की हो सकती है, पार्श्व की नेमी की हो सकती है। सिर्फ नीचे का एक चिह्न भर है, उसको तुम अलग कर दो, तो किसी मूर्ति में कोई फर्क नहीं है।

क्या चौबीस ये आदमी एक जैसे रहे होंगे? क्या यह ऐतिहासिक हो सकता है मामला कि इन चौबीस आदमियों की एक जैसी आंख, एक जैसी नाक, एक जैसे चेहरे, एक जैसे बाल रहे हों? यह तो असंभव है। दो आदमियों का एक जैसा खोजना मुश्किल है। और ये चौबीस बिल्कुल एक जैसे रहे हों, जिनमें भेद ही नहीं है कोई! नहीं, यह ऐतिहासिक तथ्य नहीं है, यह तथ्य ज्यादा आंतरिक है। क्योंकि जैसे ही व्यक्ति ज्ञान को उपलब्ध होता है, सब भेद विलीन हो जाते हैं और अभेद शुरू हो जाता है। वहां सब एक सा चेहरा है और एक सी नाक है और एक सी आंख है। मतलब केवल इतना है कि एक हमारे भीतर ऐसी जगह है, जहां नाक-चेहरे इत्यादि मिट जाते हैं और बिल्कुल एक ही, एक ही रह जाता है, एक सा ही रह जाता है।
तो जो लोग एक जैसे हो गए हों, उनको हम कैसे बताएं? तो हमने मूर्तियां
एक जैसी बना दी हैं--बिल्कुल एक जैसी, उसमें कोई फर्क ही नहीं किया है। मूर्तियां कभी एक जैसी नहीं रहीं। हो ही नहीं सकतीं। इसलिए मूर्तियों
की चिंता ही नहीं करनी पड़ी। महावीर का चेहरा कैसे रहा हो, यह सवाल ही नहीं रहा है। उस चेहरे की हमने बात ही छोड़ दी है। अगर फोटोग्राफ लिया होता तो महावीर की मूर्ति से कोई मेल नहीं खा सकता था कभी भी। क्योंकि फोटोग्राफ सिर्फ बाहर को पकड़ता है, मूर्ति में हमने भीतर को पकड़ने की कोशिश की है। भीतर आदमी एक जैसे हो गए हैं। इसलिए अब इनकी बाहर की मूर्तियों को अलग-अलग रखना गलत सूचना हो जाएगी।
अब यह बड़े मजे की बात है कि भीतर को हमने बाहर पर जिता दिया है।
फोटोग्राफ में बाहर भीतर पर जीत जाता है। फोटोग्राफ अलग-अलग होता है।
लेकिन ये चौबीस तीर्थंकरों की मूर्तियां अलग नहीं हैं, ये बिल्कुल एक सी हैं।

प्रश्नः इनका लेवल एक हो गया है?

हां, जैसे ही चेतना एक तल पर पहुंच गई है, सब एक हो गया है। यानी अगर इसे हम ठीक से कहें तो उनके चेहरे एक से हो गए, चेहरों में फर्क नहीं रहा। आंखें अलग-अलग रही होंगी, लेकिन जो उनसे झांकने लगा, देखने वाला, वह एक हो गया। ओंठ अलग-अलग रहे होंगे, लेकिन जो वाणी निकलने लगी, वह एक हो गई। भीतर सब एक हो गया।
तो एक गोल परिक्रमा है, जिसके हम चक्कर अनंत जीवन तक लगाते रहें तो भी गर्भगृह में हम प्रवेश नहीं कर पाएंगे। परिक्रमा से उतरना पड़ेगा, तो हम वहां जाएंगे, जहां भगवान को प्रतिष्ठित किया है। और भगवान को अगर हम वहां गौर से देखेंगे तो सब थिर है, सब शांत है। उस मूर्ति में सब शांत है, सब थिर है, जैसे वहां कोई गति ही नहीं है। कोई गति नहीं मालूम पड़ती। कोई कंपन नहीं है।
इसलिए पत्थर की मूर्तियां चुनी गईं, क्योंकि पत्थर हमारे पास सबसे ज्यादा ठहरा हुआ, सबसे ज्यादा ठहरा हुआ तत्व है, जिससे हम खबर दे सकें। सबसे ज्यादा ठहरा हुआ। और उस ठहराव में भी जो हमने रूप-रेखा चुनी है, वह बिल्कुल ठहरी हुई है। मूवमेंट की बात ही नहीं है। इसलिए हाथ जुड़े हुए हैं, पैर जुड़े हुए हैं, पैर क्रास्ड हैं, हाथ जुड़े हुए हैं, आंखें आधी बंद हैं। ध्यान रहे, आंख अगर पूरी बंद हो तो खोलनी पड़ेगी, आंख अगर पूरी खुली हो
तो बंद करनी पड़ेगी, क्योंकि अति से लौटना पड़ता है। अति पर कोई ठहर नहीं सकता। अगर आप श्रम करें, तो आपको विश्राम करना पड़ेगा; अगर विश्राम करें बहुत, तो फिर आपको श्रम करना पड़ेगा।
अति पर कोई कभी ठहर नहीं सकता, इसलिए आंख को आधा खुला, आधा बंद रख दिया है--मध्य में, जहां से न यहां जाना है, न वहां जाना है। ठहरने का प्रतीक है वह सिर्फ। सब ठहर गया है, अब कहीं कुछ जाता-आता नहीं। अब कोई गति नहीं है--न पीछे लौटना है, न आगे जाना है, अब कहीं कुछ जाना नहीं है। यह सब ठहरा हुआ, वह बिल्कुल केंद्र में है।
तो मंदिर प्रत्येक व्यक्ति का प्रतीक है कि तुम अपने साथ क्या कर सकते हो। या तो तुम बाहर के कोनों से जा सकते हो यात्रा पर, वह इंद्रियों की यात्रा होगी; या तुम भीतर मस्तिष्क के विचार में चक्कर लगा सकते हो, वह

परिभ्रमण होगा; और या तुम सबके बीच में जाकर थिर हो जा सकते हो, वह उपलब्धि होगी।
हजार तरह की कोशिश की है--नृत्य में, संगीत में, चित्र में, मूर्ति में, शब्द में--हजार तरह की कोशिश की है। पिरामिड हैं इजिप्त के, बड़े अदभुत सीक्रेट्स हैं उनमें। वह सब खोद डाला उन्होंने कि कभी भी कोई जानने वाले लोग आएंगे, तो ये पत्थर न मिटेंगे। बड़ी मेहनत की, सब खोद डाला है कि कैसे, अंतरात्मा तक पहुंचने का क्या रास्ता है! तो पिरामिड के पूरे पत्थरों में सब इशारे खुदे हुए हैं। पूरे इशारे खुदे हुए हैं।
तो जिन लोगों ने जाना है, उन्होंने बहुत तरह की कोशिश की है कि जो जाना है, वह ठहर, किसी तरह छूट जाए और बाद में जब भी कोई जानने वाला होगा तो फौरन खोल लेगा कि वहां क्या है। वे कीज़ हैं, कुंजियां हैं, जिनसे बहुत ताले खुलते हैं।
लेकिन न आपको ताले का पता है, न आपको कुंजी का पता है। तो आप कुंजी भी लिए बैठे रहते हैं, ताला भी लटका रहता है, कुछ नहीं खुलता। और पहली बात यह है कि अगर जोर से किसी चीज को अंधे की तरह पकड़ लिया तो फिर तुम कभी नहीं कुछ खोल पाओगे।
तो इसलिए पकड़ना मत। जो मैं निरंतर कह रहा हूं, उसका कुल मतलब इतना है
कि शास्त्र को पकड़ना मत--पढ़ना, पकड़ना मत। सुनना किसी को, लेकिन बहरे मत हो जाना। पढ़ो, अंधे मत हो जाना। सुनना और पूरी तरह जानते हुए सुनना कि सुनने से क्या हो सकता है। और मैं कहता हूं कि अगर इस तरह सुना तो सुनने से भी हो सकता है। पढ़ने से क्या हो सकता है, अगर ऐसा जानते हुए पढ़ा, तो पढ़ने से भी हो सकता है। हो सकने का मतलब यह कि वह भी निमित्त बन सकता है तुम्हारी भीतर की यात्रा का।
कोई भी चीज निमित्त बन सकती है, लेकिन अंधे होकर पकड़ लेने से सब बाधा
हो जाती है। पढ़ो, सुनो, लेकिन प्रत्येक क्षण यह जानते रहो कि खोज मेरी है, और मुझे करनी होगी, इसमें मैं बासा और उधार सत्य नहीं ले सकता हूं। यह अगर स्मरण रहे तो, तो मैं जो कह रहा हूं, वह तुम्हारे लिए बाधा नहीं बनेगा। नहीं तो वह भी बाधा बन जाएगा। वह भी बाधा बन जाएगा।
अब तुमने देखा, खजुराहो के मंदिर हैं। तो जिनकी समझ में कुछ बात आई, उन्होंने कितनी मेहनत से खोदने की कोशिश की है! मंदिर के बाहर की दीवाल पर सारी सेक्स, सारी काम और योनि और यौन, सब खोद डाला है। बड़ी अदभुत बात खोदी है पत्थर पर। लेकिन भीतर मंदिर में नहीं है सेक्स का कोई चित्र, सब बाहर की परिधि पर खोदा गया है। और मतलब यह है सिर्फ कि जीवन की बाहर की परिधि सेक्स से बनी है, काम से बनी है। और अगर मंदिर के भीतर जाना हो तो इस परिधि को छोड़ना पड़ेगा। मंदिर के बाहर ही रहना हो, तो ठीक है, यही चलेगा।
काम, जीवन की बाहर की दीवाल है। और राम, भीतर मंदिर में प्रतिष्ठित है। जब तक काम में उलझे हो, तब तक भीतर नहीं जा सकोगे। लेकिन अगर उन सारे मैथुन चित्रों को कोई घूमता हुआ देखता रहे, देखता रहे, तो कितनी देर देखता है! फिर थक जाता है, फिर ऊब जाता है, फिर वह कहता है अब मंदिर--अंदर चलो। और अंदर जाकर बड़ा विश्राम पाता है, क्योंकि वहां तो एक दूसरी दुनिया शुरू हुई।
तो जब जीवन की अनंत-अनंत यात्राओं में थक जाएंगे हम सेक्स के जीवन से, बाहर-बाहर घूम-घूम कर, तब एक दिन मन कहेगा कि अब बहुत हुआ, अब बहुत देखा, अब बहुत भोगा, अब भीतर चलो।
इस तथ्य को पत्थर में खोद कर छोड़ दिया किन्हीं ने। जिन्होंने जाना उन्होंने छोड़ दिया। तंत्र के अनुभव से यह बात उनको दिखाई पड़ी कि दो ही तरह का जीवन है, या तो काम का या राम का। और काम राम के मंदिर की बाहर की दीवाल है।
तो ऐसा नहीं है कि काम राम का दुश्मन है, सिर्फ बाहर की दीवाल है। राम
को वही सुरक्षित किए हुए है चारों तरफ से। राम के रहने का घर उसी से बना है। राम को निवास न मिलेगा, अगर काम न रह जाए। तो काम दुश्मन भी नहीं है, फिर भी काम रोकने वाला है। अगर बाहर ही घूमते रहे, घूमते रहे, तो भूल ही जाओगे कि मंदिर में एक जगह और थी, जहां काम न था। जहां कुछ और शुरू होता था, एक दूसरी ही यात्रा शुरू होती थी।

लेकिन जब ऊब जाओ तभी तो भीतर जाओगे। अभी भी मैं देखता हूं, कभी जाकर खजुराहो बैठ जाता हूं तो जो देखने वाले आते हैं, वे पहले तो बाहर ही घूमते हैं, भीतर मंदिर में कोई सीधा नहीं जाता। कभी कोई गया ही नहीं। भीतर मंदिर में कोई सीधा जा भी कैसे सकता है? उधर बैठ कर देखता हूं तो जो भी यात्री आता है वह पहले बाहर।
और इतने अदभुत चित्र हैं कि कहां भीतर जाना है? कैसा भीतर? और वे इतने उलझाने वाले हैं, और इतने अदभुत हैं कि इतनी तो मैथुन प्रतिमाएं इस अदभुत ढंग से दुनिया में कहीं नहीं खोदी गईं।
असल में दुनिया में कहीं इस गहरे अनुभव को बहुत कम लोग उपलब्ध हुए। इसीलिए इसको खोदने का उपाय न था। खोद ही नहीं पाए वे। अब पश्चिम करीब पहुंच रहा है, जहां हमने हजार, दो हजार साल पहले खोदे, वहां अब पहुंच रहा है, अब वहां सेक्स की परिधि अपनी पूरी तरह प्रकट हो रही है। तो हो सकता है कि सौ, दो सौ वर्षों में वह भीतर के मंदिर को भी निर्मित करे। जोर से परिभ्रमण हो रहा है सेक्स का अब, तो भीतर का मंदिर निर्मित होगा।
तो मैं देखता हूं वहां तो बाहर यात्री घूम रहा है, धूप तेज होती जाती
है और यात्री है कि एक-एक, एक-एक, मैथुन चित्र को देखता चला जाता है। थक गया है, पसीना-पसीना हो गया है, सब देख डाला बाहर। फिर वह कहता है चलो, अब भीतर भी देख लें।
बाहर से थक जाएगा, थक जाएगा, थक जाएगा, तो कोई भीतर जाएगा। अब इसको पत्थर में भी खोदा है, कितनी मेहनत की है! इसे किताबों में भी लिखा है। लेकिन किताब में इतना ही लिखना पड़ेगा कि बाहर से जब थक जाओगे, काम से जब थक जाओगे, तब राम की उपलब्धि हो सकती है। लेकिन हो सकता है इतना सा वाक्य किसी के ख्याल में ही न आए, हो सकता है इसे पढ़ कर तुम कुछ भी न समझो, तो इसका एक मंदिर भी बनाया है।
इसके और हजार रूप भी खोजे थे--संगीत से भी, नृत्य से भी--सब तरफ से। सब माध्यम से जिसको भी ज्ञात हो गया है, वह कोशिश करेगा तुम्हें खबर देने की। लेकिन फिर भी जरूरी नहीं... अगर तुमने खबर को ही पकड़ लिया, जैसे किसी ने कहा कि ठीक है, अगर यही सत्य है कि खजुराहो के मंदिर में बाहर काम है, अंदर राम है, तो हम इसी मंदिर में ठहरे जाते हैं, झंझट छोड़ें। जब यही सत्य है, और सब सत्य इसमें खोदा हुआ है, तो हम इसी मंदिर के पुजारी हुए जाते हैं।
तो हो जाओ तुम पुजारी, चूक गए तुम बात। अगर तुम समझ जाते तो इस मंदिर
से कुछ लेना-देना ही न था, बात खतम हो गई थी। अगर इशारा समझ में आ गया था तो इस मंदिर में अब न भीतर था, न बाहर था कुछ, अब बात खतम हो गई थी। अब तुम कहते कि ठीक है! और तुम लोगों से कहते कि देखना, मंदिर में मत उलझ जाना, मंदिर से कुछ न मिलेगा। और अगर ध्यान रहा कि मंदिर से कुछ न मिलेगा तो शायद खोजो और मंदिर से भी कुछ मिल जाए।
तो मेरी कोई शत्रुता नहीं है। शत्रुता होने का सवाल ही नहीं है। न कोई निंदा है। क्योंकि निंदा करने का क्या अर्थ हो सकता है? जो मैं कह रहा हूं, फिर कह रहा हूं। तो कहे हुए की निंदा करने का क्या अर्थ हो सकता है? जो मैं कह रहा हूं, वह फिर लिखा जाएगा। तो लिखे हुए की निंदा का क्या अर्थ हो सकता है? लेकिन इतनी चेतावनी जरूरी है कि न निंदा करना, न प्रशंसा करना--समझना। समझा तो वह मुक्ति की तरफ ले जाता है।
कुछ और इस संबंध में हो तो बात कर लो, फिर रात अपन अलग बात करेंगे।

प्रश्नः तीर्थंकरों की सारी मूर्तियों की समानता की बात जो है, तो सिर्फ तीर्थंकरों की क्यों, बुद्ध और महावीर में भी वही मूर्तियों की समानता और वही रूप की समानता है। वही क्राइस्ट और राम और कृष्ण, सब में वही समानता है। लेकिन ये अलग-अलग व्यक्ति हुए। इनकी बात छोड़ें, हम केवल बुद्ध और महावीर की बात लें। दोनों समकालीन थे। दोनों में से दोनों ने क्यों नहीं कहा कि जो मैं हूं, वही बुद्ध हैं, जो मेरा रूप है, वही बुद्ध का रूप है? और बुद्ध ने क्यों नहीं कहा कि जो मैं हूं, वही महावीर का रूप है?

यह बहुत विचारणीय बात है। चौबीस तीर्थंकरों की मूर्तियां एक जैसी हैं, तो क्यों क्राइस्ट की, क्यों बुद्ध की वैसी नहीं? और न हों--ठीक कहते

हैं आप--कम से कम बुद्ध तो महावीर के साथ ही थे, एक ही समय में थे, इन दोनों की मूर्तियां एक जैसी हो सकती थीं!
लेकिन नहीं हैं, और नहीं हो सकती थीं। और कारण हैं। और कारण ये हैं कि
यह जो चौबीस तीर्थंकरों की एक धारा है, इस धारा ने एक सोचने का ढंग निर्मित किया है, अभिव्यक्ति की एक कोड लैंग्वेज निर्मित की है इस धारा ने। और यह धारा कोई तीर्थंकर नहीं बनाते हैं, यह धारा तीर्थंकरों के आस-पास निर्मित होती है। यह सहज निर्मित होती है। एक भाषा, एक ढंग, एक प्रतीक की व्यवस्था निर्मित हुई है। शब्दों की परिभाषा और एक ढंग निर्मित हुआ है। और यह ढंग कोई तीर्थंकर निर्मित नहीं करते, उनके होने से निर्मित होता है, उनकी मौजूदगी से निर्मित होता है।
जैसे कि सूरज निकला। अब सूरज कोई आपकी बगिया के फूल निर्मित नहीं करता है, लेकिन सूरज की मौजूदगी से फूल खिलते हैं, निर्मित होते हैं। सूरज न निकले, तो आपकी बगिया में फूल नहीं खिलेंगे। फिर भी सूरज सीधा जिम्मेवार नहीं है आपके फूल खिलाने को।
फिर आपने अपनी बगिया में एक तरह के फूल लगा रखे हैं और मैंने अपनी बगिया में दूसरी तरह के, तो मेरी बगिया में दूसरी तरह के फूल खिलते हैं, आपकी बगिया में दूसरी तरह के। और दोनों सूरज से खिलते हैं, और फिर भी दोनों में भेद होगा। और आपने अपनी बगिया में दस तरह के फूल लगा रखे हैं तो उनमें भी भेद होगा।
तो प्रत्येक धारा में, जैसे कि चौबीस तीर्थंकरों की एक धारा है, वह एक प्रतीक व्यवस्था में वह धारा खड़ी हुई है। तो उसके अपने प्रतीक हैं, अपने शब्द हैं, अपनी कोड लैंग्वेज है। और वह उसके आस-पास जो एक वर्तुल खड़ा हो गया है--उन शब्दों, उन प्रतीकों के आस-पास--वह न दूसरे प्रतीक समझ सकता है, न पहचान सकता है।
बुद्ध की एक बिल्कुल नई परंपरा शुरू हो रही है, जिसके सब प्रतीक नए हैं। और मैं मानता हूं कि उसका भी कारण है। असल में पुराने प्रतीक एक सीमा पर जाकर जड़ हो जाते हैं और हमेशा नए प्रतीकों की जरूरत पड़ती है। और अगर बुद्ध यह कह दें कि जो मैं कह रहा हूं, वही महावीर कहते हैं, तो जो फायदा बुद्ध पहुंचा सकते हैं, वह कभी नहीं पहुंचा सकेंगे। महावीर पर एक धारा खतम हो रही है और जड़प्राय होकर नष्ट हो रही है। महावीर अंतिम हैं--एक भाषा के। और वह भाषा जड़ हो गई है और उखड़ गई है, अब उसकी गति चली गई है, टूटने के करीब हो गई है। बुद्ध बिल्कुल एक नई धारा के फिर प्रारंभ हैं। इस नई धारा को पूरी चेष्टा करनी पड़ेगी कि वह कहे कि यह महावीर वाली तो है ही नहीं। यानी मजा यह है कि पूरी तरह जानते हुए कि जो महावीर हैं, वही बुद्ध हैं, बुद्ध को पूरे समय जोर देना पड़ेगा और ज्यादा जोर देना पड़ेगा कि कहीं भूल-चूक से भी यह उस धारा से न जुड़ जाए। क्योंकि वह जो मरती हुई धारा हो गई है, जिसका वक्त पूरा हो गया है, विदा हो रही है, अगर उससे यह भी जुड़ गई तो यह जन्म ही नहीं ले पाएगी।
मेरा आप मतलब समझ रहे हैं न? मेरा मतलब यह है, तो बुद्ध को बहुत सचेत होना पड़ेगा। इसलिए--ख्याल में आपको आ जाए--महावीर ने बुद्ध के खिलाफ एक शब्द नहीं कहा है। और महावीर ने कभी बुद्ध का कोई खंडन नहीं किया। लेकिन बुद्ध ने बहुत बार महावीर का खंडन किया, और बहुत शब्द कहे, और बहुत कठोर शब्द कहे।
और इसी वजह से मैं कहता हूं कि महावीर बूढ़े थे और बुद्ध जवान थे, महावीर विदा हो रहे थे और बुद्ध आ रहे थे। और बुद्ध को एकदम जरूरी था यह डिस्टिंक्शन बनाना बिल्कुल साफ कि उस व्यवस्था से हमें कुछ लेना-देना नहीं, वह बिल्कुल गलत है। क्योंकि लोकमानस में वह विदा होती व्यवस्था हुई जा रही है, और अगर उससे कोई भी संबंध जोड़ा तो नई व्यवस्था के जन्मने में बाधा बनने वाली है और कुछ नहीं होने वाला।
फिर और भी बातें हैं। चाहे कोई व्यवस्था विचार की, चिंतना की, दर्शना की, कितनी ही गहरी क्यों न हो, वह सिर्फ एक पर्टिकुलर टाइप को, एक विशेष तरह के व्यक्तियों को ही प्रभावित करती है। कोई ऐसी व्यवस्था नहीं है, जो सब तरह के व्यक्तियों के काम आ सके। अब तक नहीं है, न हो सकती है। यानी अब तो यह पक्का माना जा सकता है, वह नहीं हो सकती।

तो महावीर के व्यक्तित्व को जो प्रभावित करती है बात--वह पार्श्व वाली बात उन्हें प्रभावित करती है, नेमी वाली, आदिनाथ वाली उनको प्रभावित करती है--वे उसी टाइप के व्यक्ति हैं। और इस टाइप के बनने में भी अनंत जन्म लगते हैं, एक खास तरह के व्यक्ति बनने में, उनको वह खास तरह की धारा ही प्रभावित कर सकती है।
बुद्ध बिल्कुल भिन्न तरह के व्यक्ति हैं। उनके व्यक्तित्व की अपनी यात्रा है। उन्हें उसमें कुछ रस नहीं मालूम होता। लेकिन मैं मानता हूं कि बुद्ध की चिंतना ने बहुत से लोगों को, जो महावीर से कभी कोई लाभ नहीं ले सकते थे, लाभ दिया। और वे बुद्ध से लाभ ले सके।
लेकिन बुद्ध और महावीर की एक है, मीरा की अपनी चिंतना और अपनी धारा है। अब महावीर और मीरा का व्यक्तित्व बिल्कुल उलटा है। अगर महावीर की अकेली चिंतना दुनिया में हो, तो बहुत थोड़े से लोग ही सत्य के अंतिम मार्ग तक पहुंच पाएंगे। क्योंकि मीरा के टाइप के लोग वंचित रह जाएंगे, उससे उनका मेल ही नहीं हो पाता। उससे मेल ही नहीं जुड़ता न कहीं!
तो अनंत धाराएं चलती हैं इसलिए कि अनंत प्रकार के व्यक्ति हैं। और चेष्टा यह है कि ऐसा एक भी व्यक्ति न रह जाए जिसके योग्य और जिसके अनुकूल पड़ने वाली धारा न मिल सके। इसलिए अनंत धाराएं हैं और रहेंगी। और दुनिया जितनी विकसित होती जाएगी, उतनी धाराएं ज्यादा होती जाएंगी।
धाराएं ज्यादा होनी चाहिए, क्योंकि ऐसा कभी न हो... जैसे समझ लें कि महावीर हैं, अब महावीर की जो जीवन-धारा है, वह एकदम ही जिसको हम कहें पुरुष की है। उसमें स्त्री का उपाय ही नहीं है, एकदम पुरुष की है। और पुरुष और स्त्री के मनस में बुनियादी भेद है। जैसे, स्त्री पैसिव माइंड है। स्त्री के पास जो मन है, वह निष्क्रिय मन है। पुरुष के पास जो मन है, वह एग्रेसिव माइंड है, आक्रामक मन है उसके पास।
इसलिए स्त्री अगर किसी को प्रेम भी करे तो आक्रमण नहीं करेगी। प्रेम
भी करे, उसका मन किसी के पास जाने का हो, तब भी वह बैठ कर उसकी प्रतीक्षा करेगी कि वह आए। यानी वह किसी को प्रेम भी करती है तो जा नहीं सकती उठ कर उसके पास, वह प्रतीक्षा करेगी कि वह आए। उसका पूरा का पूरा माइंड पैसिव है। आप आएंगे तो वह खुश होगी, आप नहीं आएंगे तो दुखी होगी, लेकिन इनीशिएटिव नहीं ले सकती कि वह खुद आप तक जाए।
अगर एक स्त्री किसी को प्रेम करती है तो वह कभी प्रस्ताव नहीं करेगी
कि मुझे विवाह करना है। वह प्रतीक्षा करेगी कि कब तुम प्रस्ताव करो। किसी स्त्री ने कभी प्रस्ताव नहीं किया विवाह का। हां, वह प्रस्ताव के लिए सारी योजना करेगी, प्रस्ताव लेकिन तुम्हीं करो, प्रस्ताव कभी वह नहीं करने वाली है। और प्रस्ताव किए जाने पर भी कोई स्त्री कभी सीधा हां नहीं भर सकती, क्योंकि हां भी आक्रामक है। और एकदम से हां भरने से पता चलता है कि उसकी तैयारी थी। तो कभी एकदम हां नहीं भरेगी। वह न करेगी। न को धीरे-धीरे, धीरे-धीरे धीमा करेगी। न को धीरे-धीरे हां के करीब ला पाएगी। निगेटिव है उसका माइंड जो है। फिजियोलाजी भी उसकी निगेटिव है, पाजिटिव नहीं है। इसलिए स्त्रियां कभी किसी पुरुष पर सेक्सुअल हमला नहीं कर सकतीं। कभी हमला नहीं कर सकतीं वे किसी पुरुष पर। क्योंकि पुरुष अगर राजी नहीं है, तो स्त्री किसी तरह का काम-संबंध उससे स्थापित नहीं कर सकती। लेकिन स्त्री अगर राजी भी नहीं है तो भी पुरुष उसके साथ संभोग कर सकता है, व्यभिचार कर सकता है। क्योंकि वह है निगेटिव, पुरुष है पाजिटिव।
महावीर की जो जीवन-चिंतना है, वह एकदम पुरुष की जीवन-चिंतना है। इसलिए महावीर के मार्ग में स्त्री को मोक्ष जाने का उपाय भी नहीं है। अकारण नहीं है वह बात। इसका मतलब यह नहीं है कि स्त्री का मोक्ष नहीं हो सकता, इसका मतलब सिर्फ इतना है कि महावीर के मार्ग से नहीं हो सकता। महावीर के मार्ग में उपाय नहीं है।
इसलिए महावीर के मार्ग में तो स्त्री को एक बार और पुरुष योनि लेनी पड़े, और तब वह, तब वह मोक्ष की तरफ जा सकती है। क्योंकि महावीर की जो व्यवस्था है, वह संकल्प की, विल की, आक्रमण की, बहुत गहरे आक्रमण की व्यवस्था है। उस व्यवस्था में कहीं हारना, टूटना, पराजित होना, उसका उपाय नहीं है।

महावीर कहते हैं, जीतना है तो जीतो। और समग्र शक्ति लगा कर जीतो। एक इंच शक्ति पीछे न रह जाए।
और लाओत्से कहता है अपने एक शिष्य को... उसका शिष्य एक पूछता है कि आप कभी हारे? लाओत्से कहता है, मैं कभी नहीं हारा। तो उसका शिष्य कहता है, कभी तो हारे होंगे जिंदगी में किसी मौके पर? लाओत्से कहता है, बिल्कुल नहीं, कभी मैं हारा ही नहीं। तो उसका सीक्रेट क्या था? उसका राज क्या था? लाओत्से कहता है, राज यह था कि मैं सदा हारा हुआ ही था। इसलिए मेरे हारने का कोई उपाय न था। मैं पहले से ही हारा हुआ था। अगर कोई मेरी छाती पर चढ़ने आता तो मैं जल्दी से लेट जाता, उसको बिठा लेता। वह समझता कि मैं जीत गया और मैं समझता कि खेल हुआ, क्योंकि हम पहले से ही हारे हुए थे। जीते क्या तुम! तो मुझे कोई हरा ही नहीं सकता है, क्योंकि मैं सदा हारा हुआ हूं। अब यह जो लाओत्से है, यह स्त्री के मार्ग का अग्रणी व्यक्ति है। यह हराने नहीं जाएगी। यह पूरी तरह हार जाएगी और आपको मुश्किल में डाल देगी। स्त्री किसी को हराने नहीं जाएगी। और हराने गई कि मुश्किल में पड़ जाएगी। वह पूरी तरह हार जाएगी, वह टोटल सरेंडर कर देगी, वह कहेगी, मैं तुम्हारी दासी हूं, तुम्हारे चरणों की धूल। और तुम हैरान हो जाओगे, कब वह तुम्हारे सिर पर बैठ गई, तुम्हें पता नहीं चलेगा।
उसके जीतने का रास्ता हार जाना है--पूरी तरह हार जाना, संपूर्ण समर्पण। और जो स्त्री संपूर्ण समर्पण नहीं कर पाती, वह कभी नहीं जीत पाएगी। वह जीत ही नहीं सकती।
इसलिए इस युग में स्त्रियां दुखी होती चली जाती हैं, क्योंकि उनका समर्पण खतम हुआ जा रहा है। और वे भूल कर रही हैं। वे सोच रही हैं कि पुरुष के जैसा हम भी करें। वे उसमें हार जाने वाली हैं। पुरुष का करना और ढंग का है। पुरुष के जीतने का मतलब है जीतना। पुरुष के जीतने का मतलब है जीतना, स्त्री के जीतने का मतलब है हारना। उनका पूरा का पूरा मनस भिन्न है। इसलिए जो स्त्री जीतने की कोशिश करेगी, वह हार जाएगी। वह कभी नहीं जीत पाएगी, उसका जीवन नष्ट हो जाएगा। क्योंकि वह पुरुष-कोशिश में लगी है जो कि उसके व्यक्तित्व की संभावना ही नहीं है। और इसलिए पश्चिम में स्त्रियां बुरी तरह हार रही हैं, क्योंकि वे पुरुष को जीतने की कोशिश में लगी हैं। वह बात ही उन्होंने छोड़ दी है कि हम समर्पण करेंगे, हम जीतेंगे। पुरुष को जीतने का एक ही उपाय था कि हार जाओ। इस तरह मिट जाओ कि पता ही न रहे कि तुम हो--और तुम पुरुष को जीत लो। पुरुष बच ही नहीं सकता फिर, तुमसे जीत ही नहीं सकता।
लाओत्से कहता है, हम पहले से ही हारे हुए थे, इसलिए हमें कभी कोई हरा नहीं सका। अब लाओत्से और महावीर का मार्ग बिल्कुल उलटा है। एकदम ही उलटा है, इसमें कोई मेल ही नहीं है। तो लाओत्से का मार्ग उन लोगों के लिए उपयोगी है जो हारने में समर्थ हैं, और महावीर का मार्ग उनके लिए उपयोगी है जो जीतने में समर्थ हैं। जो सिर्फ जीत ही सकते हैं।
इसीलिए महावीर शब्द उनको मिल गया, महावीर शब्द मिलने का और कोई कारण नहीं है। लड़ने की, आक्रमण की जो चरम क्षमता है, उससे वे महावीर कहलाए, और कोई कारण नहीं है। यानी वहां गुंजाइश ही नहीं छोड़ी उन्होंने किसी तरह के भय की, किसी तरह के समर्पण की। इसलिए महावीर परमात्मा को इनकार करते हैं-- भगवान को। उसकी वजह यह है कि अगर भगवान है तो समर्पण करना पड़ेगा। हमसे ऊपर कोई है। यह महावीर नहीं मान सकते कि हमसे ऊपर कोई है। पुरुष यह मान ही नहीं सकता। वह जो पुरुष का चित्त है पूरा, कि उससे ऊपर कोई है, यह असंभव है।
तो महावीर भगवान को इनकार... यह फिलॉसाफिक नहीं है मामला। यह कोई दर्शन-शास्त्र का मामला नहीं है कि महावीर इनकार करते हैं कि कोई परमात्मा नहीं है। तुम ही परमात्मा हो, मैं ही परमात्मा हूं, आत्मा ही शुद्ध होकर परमात्मा हो जाती है। यानी आत्मा ही जब पूर्ण रूप से जीत लेती है तो परमात्मा हो जाती है। ऐसा कोई परमात्मा कहीं नहीं है जिसके पैर में तुम सिर झुकाओ, जिसकी तुम प्रार्थना करो। परमात्मा को इनकार कर देते हैं बिल्कुल, क्योंकि परमात्मा है तो समर्पण करना पड़ेगा, परमात्मा है तो भक्ति करनी पड़ेगी, इसलिए परमात्मा का बिल्कुल इनकार है।

लाओत्से अपने को इनकार करता है। लाओत्से कहता हैः मैं हूं ही नहीं, वही है। क्योंकि मैं अगर थोड़ा सा भी बचा, तो हमला जारी रहेगा, तो लड़ाई जारी रहेगी, अगर मैं जरा इंच भर भी मैं हूं, तो वह मैं लड़ेगा। इसलिए वह कहता है, लाओत्से कहता है, मैं हूं ही नहीं। मैं एक सूखा पत्ता हूं। जब हवाएं मुझे पूरब ले जाती हैं तो मैं पूरब चला जाता हूं; जब हवाएं मुझे पश्चिम ले जाती हैं, मैं पश्चिम चला जाता हूं। मैं एक सूखा पत्ता हूं। जब हवाएं नीचे गिरा देती हैं, गिर जाता हूं; जब हवाएं ऊपर उठा लेती हैं, उठ जाता हूं। क्योंकि मैं हूं ही नहीं; हवाओं की जो मर्जी, वह मेरी मर्जी है। इतना सूखे पत्ते की तरह मैं नहीं हूं तो उसके लिए परमात्मा ही रह जाता है।
और ये दोनों रास्ते एक ही जगह पहुंचा देते हैं, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। या तो मैं पूरी तरह मिट जाऊं, तो एक ही बच गया--परमात्मा; या परमात्मा को पूरी तरह मिटा दूं, तो एक ही बच गया--मैं। बस एक ही बच जाना चाहिए आखिर में। दो रहेगा तो उपद्रव है, असत्य है, एक ही बच जाए।
और एक के बचाने के दो उपाय हैं। पुरुष एक ढंग से बचता है एक, कि वह स्त्री को मिटा देता है, अपने में लीन कर लेता है। स्त्री भी एक को बचा लेती है, वह अपने को मिटा देती है और पूरी तरह डूब जाती है। और इसमें जो सवाल है, वह किसी के नीचे-ऊंचे होने का नहीं है, सवाल टाइप ऑफ माइंड का, वह जो हमारे मस्तिष्क का टाइप है, उसका है।
तो महावीर का एक है मार्ग, एक है ढंग। बुद्ध का ढंग दूसरा है। तो बुद्ध
की एक नई भाषा खड़ी हो रही है अब, नए प्रतीक खड़े हो रहे हैं। और बुद्ध को समझना है तो उन्हीं प्रतीकों से समझना होगा। बुद्ध की एक नई मूर्ति निर्मित हो रही है।
क्राइस्ट का बिल्कुल और है, तीसरा है। क्राइस्ट जैसा तो कोई आदमी नहीं है इनमें फिर। क्राइस्ट तो बिना सूली पर चढ़े हुए सार्थक ही नहीं हैं। और अगर महावीर सूली पर चढ़ें तो हमारे लिए व्यर्थ हो जाएं। जो महावीर को एक धारा में सोचते हैं, उनके लिए बिल्कुल व्यर्थ हो जाएं। लेकिन क्राइस्ट बिना सूली पर चढ़े अर्थ ही नहीं पाता है। क्राइस्ट का और तरह का व्यक्तित्व है। कृष्ण का और ही तरह का व्यक्तित्व है, जिसका कोई हिसाब ही नहीं। हम कल्पना ही नहीं कर सकते कि कृष्ण और महावीर में कैसे मेल बिठाओ। कोई मेल नहीं हो सकता। और ये सब सार्थक हैं। सब सार्थक इस अर्थों में हैं कि पता नहीं आपके लिए कौन सा व्यक्तित्व ज्योति की अनुभूति आपको कराए, किस व्यक्तित्व में आपको दिखे। आपको उसमें ही दिखेगी, जो व्यक्तित्व का आपका टाइप होगा, नहीं तो आपको नहीं दिखेगी।
इसलिए मैं मानता हूं कि यह बड़ा उचित है कि ये सब भिन्न-भिन्न टाइप हैं,
ये भिन्न-भिन्न तरह के लोग हैं। इन भिन्न-भिन्न ज्योतियों से भिन्न-भिन्न तरह के लोगों को दर्शन हो सकते हैं। और हो सकता है, अभी भी बहुत संभावनाएं शेष हैं। और हो सकता है उन संभावनाओं के शेष होने की वजह से बहुत बड़ी मनुष्य-जाति अब तक धार्मिक नहीं हो पाती। उसका कारण यह है कि उसकी टाइप का आदमी अब तक ज्योति को उपलब्ध नहीं हुआ।
मेरा आप मतलब समझ रहे हैं न? यानी जिसको वह समझ सकता था, वह आदमी अभी पहुंचा ही नहीं उस जगह, जहां से उसको ज्योति दिखाई पड़ जाए।
तो इसलिए भिन्न होगा। सच एक, जिसको सारे के बीच... जैसा कि मेरी जो दृष्टि है, मेरा अपना प्रयोग रहा। और मैं नहीं समझता कि किसी ने वैसा प्रयोग कभी किया। मेरा प्रयोग यह रहा कि मैं अपने व्यक्तित्व का टाइप मिटा दूं। मेरा प्रयोग यह रहा कि मैं सिर्फ व्यक्ति रह जाऊं, अत्यंत इम्पर्सनल, जिसका कोई टाइप नहीं है।
जैसे कि इस मकान में दो खिड़कियां हैं। इस तरफ से हम देखेंगे तो एक दृश्य दिखाई पड़ता है; उस खिड़की से देखते हैं, दूसरा दृश्य दिखाई पड़ता है। और दोनों दृश्य एक ही बड़े दृश्य के हिस्से हैं। और जिसको मैं इस खिड़की की बात कहूं और वह उस खिड़की पर खड़ा हो, तो वह कहे, सब झूठ है, सरासर झूठ है-- कैसी झील? कहां की झील? कुछ नहीं है, सब झूठ बात। मैं भी खिड़की पर खड़ा हूं। मैं भी बाहर देख रहा हूं, झील नहीं है--पहाड़ है। और मैं कहूं कि कैसा पहाड़? झील के अतिरिक्त यहां कुछ नहीं दिखाई पड़ता! और हम लड़ते रहें, क्योंकि दूसरे की खिड़की पर जाना बहुत मुश्किल है। दूसरे की खिड़की पर जाना बहुत

मुश्किल है, क्योंकि दूसरे की खिड़की पर जाना मतलब दूसरे हो जाना, और कोई उपाय नहीं। सारा का सारा व्यक्तित्व दूसरे जैसा हो जाए तो उसकी खिड़की पर आप खड़े हो सकते हैं; वह हो नहीं सकता, वह बहुत मुश्किल मामला है। हजार खिड़कियां हैं जीवन के भवन में, जो खिड़की करीब पड़ रही है जिसके व्यक्तित्व के, वह उस खिड़की पर जाकर ही दर्शन कर सकता है।
लेकिन एक और रास्ता भी है कि हम मकान के बाहर ही क्यों न आ जाएं! दूसरे
की खिड़की पर जाना तो बहुत मुश्किल है, लेकिन मकान के बाहर आ जाना मुश्किल नहीं है। और मेरा मानना है, मकान के बाहर आ जाना सब तरह की खिड़की पर खड़े लोगों के लिए एक सा ही आसान है--मकान के बाहर आ जाना। अगर खिड़की को हम पकड़ते हैं तो दूसरे की खिड़की के हम दुश्मन हो जाते हैं। हो ही जाएंगे। और अगर हम मकान के बाहर आ जाते हैं तो हमें पता लगता है कि उस मकान के भीतर जितनी खिड़कियां हैं, वे सब एक ही दृश्य को दिखला रही हैं।
दृश्य बहुत बड़ा है, खिड़कियां बहुत छोटी हैं। खिड़कियों से जो दिखाई पड़ता है वह पूरा नहीं है। अब अगर कभी भी कोई व्यक्ति बाहर आ जाए सारी दृष्टियों को, सारे नय को छोड़ कर, तो उसे दिखाई पड़ता है कि कृष्ण एक खिड़की हैं, राम एक खिड़की हैं, बुद्ध एक खिड़की हैं, महावीर एक खिड़की हैं--लेकिन खिड़कियां ही हैं।
महावीर उन खिड़कियों से छलांग लगा गए हैं बाहर, लेकिन खिड़की रह गई, और उनके पीछे आने वाले खिड़कियों पर खड़े रह गए हैं। महावीर पहुंच गए बाहर, लेकिन खिड़की से गए बाहर। तो महावीर तो निकल गए, खिड़की के पीछे जो उनके साथ आए थे, वे खिड़की पर खड़े रह गए हैं। और वे कहते हैं, जिस खिड़की से महावीर गए हैं, वही सत्य है।
एक बुद्ध वाली खिड़की है, वहां भी लोग सत्य हैं।
और अब दुनिया में संभावना इस बात की हो गई है पैदा कि अब हम मनुष्य को द्वार से बाहर ले जा सकते हैं--खिड़कियों के ही बाहर ले जा सकते हैं। और वहां से जो हमें दिखाई पड़ेगा, उसमें हमें सब एक से मालूम पड़ेंगे, क्योंकि हम खिड़की के बाहर खड़े होकर देखेंगे।
तो मुझे तो बुद्ध और महावीर में कोई फर्क नहीं दिखाई पड़ता--रत्ती भर भी। लेकिन मकान के बाहर खड़े हों तो ही, और नहीं तो फर्क बड़ा है, क्योंकि फर्क खिड़की से निर्मित होता है जिससे वे कूदे। वह खिड़की हमारी नजर में रह गई, वह बिल्कुल अलग है।
महावीर का एक ढंग है--अत्यंत संकल्प का, इंटेंस विल का। यानी महावीर कहते यह हैं कि अगर किसी भी चीज में पूर्ण संकल्प हो गया है तो उपलब्धि हो जाएगी। बुद्ध की बिल्कुल और ही बात है। बुद्ध कहते हैं कि संकल्प तो संघर्ष है, संघर्ष से कैसे सत्य मिलेगा? संकल्प छोड़ दो, शांत हो जाओ। संकल्प ही मत करो, तो उस शांति में ही मिलेगा। यह भी ठीक है। यह भी एक खिड़की है, ऐसे भी मिल सकता है। और महावीर भी कहते हैं, वह भी ठीक है, वैसे भी मिल सकता है।
तो इस पर हम विचार करें कि ये अलग-अलग मूर्तियां जो बनीं, अलग मंदिर बने, मस्जिदें खड़ी हुईं, इनके अलग-अलग प्रतीक हुए, अलग भाषा बनी, अलग कोड बनी, वह बिल्कुल स्वाभाविक थी। और फिर भी कोई अलग नहीं है। यानी कभी न कभी एक मंदिर दुनिया में बन सकता है, जिसमें हम क्राइस्ट की, बुद्ध की, महावीर की एक सी मूर्तियां ढालें। इसमें कोई कठिनाई नहीं। लेकिन बड़ी कठिनाई वह कि आप अगर महावीर को प्रेम करते हैं, तो आप क्राइस्ट की मूर्ति के साथ क्या करेंगे? आप महावीर जैसी ढाल देंगे। तब फिर बात गड़बड़ हो गई। अगर क्राइस्ट को प्रेम करने वाला आदमी महावीर की मूर्ति ढालेगा तो सूली पर लटका देगा, क्योंकि अभी वह कोड और वह लैंग्वेज पैदा नहीं हो सकी, जो सारी मूर्तियों में काम आ सके। लेकिन वह भी हो सकता है, वह भी हो सकता है।
बहुत दिन तक बुद्ध के मरने के बाद बुद्ध की मूर्ति नहीं बनी, क्योंकि बुद्ध इनकार किए हैं कि मूर्ति बनाना मत। और मूर्ति की जगह सिर्फ प्रतीक चला बोधिवृक्ष का, तो बुद्ध की मूर्ति बनानी होती तो बोधिवृक्ष बना देते। वह वृक्ष ही प्रतीक था। धीरे-धीरे वृक्ष के नीचे बुद्ध का आगमन हुआ, बहुत धीरे-धीरे आगमन हुआ। कोई मरने के चार-छह सौ, सात सौ, आठ सौ वर्ष बाद। धीरे-

धीरे अकेला वृक्ष प्रतीक रखना मुश्किल हो गया, और बुद्ध की मूर्ति वापस आ गई।
अगर हम झांकना चाहें सबके भीतर, समान के लिए, तो हमें मूर्ति मिटा ही देनी पड़े। फिर हमें एक नया कोड विकसित करना पड़े। जैसे मोहम्मद की कोई मूर्ति नहीं है। और उस कोड के विकास करने में एक प्रयोग है वह। और हिम्मत की है। बुद्ध की मूर्ति नहीं थी, लेकिन पांच-छह-सात सौ साल में हिम्मत टूट गई और मूर्ति आ गई। मुसलमान ने बड़ी हिम्मत जाहिर की है, चौदह सौ साल हो गए, मूर्ति को प्रवेश नहीं करने दिया है। खाली जगह छोड़ी है।
बहुत मुश्किल है, बहुत आसान नहीं है। मन मूर्ति के लिए लालायित होता है। मन कहता है कि कोई रूप? कैसे थे? मन की इच्छा होती है कोई रूप बने। बहुत रूप बना कर लोगों ने देख लिए।
कुछ लोग हैं, जिनके लिए सब रूपों में भूल दिखाई पड़ेगी, तो उन्होंने रूप हटा कर भी देख लिया। रूप नहीं रखा, मोहम्मद को विदा ही कर दिया। मस्जिद खाली रह गई। वह भी कुछ लोगों के व्यक्तित्व की दिशा वही हो सकती है। बहुत मंदिर, बहुत मस्जिद बन गए, कुछ लोगों ने मंदिर-मस्जिद को भी विदा करके देख लिया, तीर्थों को भी विदा करके देख लिया।
सब तरह के लोग हैं इस पृथ्वी पर--अनंत तरह के लोग हैं, अनंत तरह की उनकी इच्छाएं, अनंत तरह की उनकी व्यवस्थाएं। और सबके लिए समुचित मार्ग मिल सके, इसलिए उचित ही है कि यह भेद रहे। लेकिन एक वक्त आएगा, जैसे-जैसे मनुष्यता ज्यादा विकसित होगी, वैसे-वैसे हम खिड़की का आग्रह छोड़ देंगे, व्यक्ति का आग्रह छोड़ देंगे।
यह पहले भी मुश्किल पड़ा होगा, इतना आसान नहीं है यह। इसलिए हमने प्रतीक थोड़े से बचा लिए। चौबीस तीर्थंकर हैं जैनों के। अच्छा तो यह होता कि प्रतीक भी न रहते, लेकिन मन ने थोड़ा सा इंतजाम किया होगा कि एकदम कैसे एक कर दें, तो थोड़ा सा तो चिह्न रखो कि ये कौन हैं? ये कौन हैं? थोड़ा सा चिह्न बना लो। उतने में ही भेद हो गया, उतने में ही भेद हो गया।
तो पार्श्व का मंदिर अलग बनता है, महावीर का मंदिर भी अलग बनता है।
उतने से चिह्न ने भी भेद ला दिया। वह चिह्न भी विदा कर देने की जरूरत है।
लेकिन मन मनुष्य का बदले, तभी। उसके पहले नहीं हो सकता है।
तो आप ठीक पूछते हैं, जो अनुभव हुआ है, वह तो एक ही है। लेकिन उस अनुभव
को कहा गया अलग-अलग शब्दों में।
अब जैसे महावीर हैं। महावीर कहते हैं, आत्मा को पाना परम ज्ञान है। इससे ऊंचा कोई ज्ञान नहीं। और बुद्ध वहीं उसी समय में, उसी क्षेत्र में मौजूद, कहते हैं, आत्मा को मानने से बड़ा अज्ञान नहीं है। और दोनों ठीक कहते हैं। और मैं जानता हूं कि न महावीर इसके लिए राजी हो सकते हैं बुद्ध से और न बुद्ध इसके लिए महावीर से राजी हो सकते हैं। और दोनों जानते हैं भलीभांति कि कोई भेद नहीं है।
आप मेरा मतलब समझ रहे हैं? आप मेरा मतलब समझ रहे हैं, और दोनों राजी नहीं हो सकते हैं। और दोनों जानते हैं भलीभांति कि भेद नहीं है। हम पर करुणा के कारण राजी नहीं हो सकते हैं। राजी हुए कि हमारे लिए व्यर्थ हो जाएंगे।
महावीर इसीलिए बहुत बड़े व्यापक वर्ग को प्रभावित नहीं कर सके, जितना बुद्ध ने इतने बड़े व्यापक वर्ग को प्रभावित किया। और उसका कारण है कि महावीर के पास जो प्रतीक थे, वे अतीत के थे और बुद्ध के पास जो प्रतीक हैं वे भविष्य के हैं। यानी महावीर के पास जो प्रतीक थे उसके पीछे तेईस तीर्थंकरों की धारा थी। प्रतीक पिट चुके थे। प्रतीक प्रचलित हो चुके थे। प्रतीक परिचित हो गए थे।
इसलिए महावीर का बहुत क्रांतिकारी व्यक्तित्व भी क्रांतिकारी नहीं मालूम पड़ सका, क्योंकि प्रतीक जो उन्होंने प्रयोग किए, वे पीछे से आते थे। और बुद्ध का उतना क्रांतिकारी व्यक्तित्व नहीं है जितना महावीर का, वह ज्यादा क्रांतिकारी मालूम हो सका, प्रतीक भविष्य के हैं।
यानी बहुत फर्क पड़ता है। लैंग्वेज जो बुद्ध ने चुनी है, वह भविष्य की है। सच तो यह है कि अभी बुद्ध का प्रभाव और बढ़ेगा। आने वाले सौ वर्षों में बुद्ध के प्रभाव के निरंतर बढ़ जाने की भविष्यवाणी की जा सकती है। क्योंकि

बुद्ध ने जो प्रतीक चुने थे, वे आने वाले सौ वर्षों में मनुष्य के और निकट आ जाने वाले हैं, एकदम निकट आ जाने वाले हैं।
यानी मनुष्यता अभी भी उन प्रतीकों से, जिसको कहना चाहिए प्रतीक अभी
भी पूरी तरह एग्झास्ट नहीं हो गए, बल्कि करीब आ रहे हैं। वे बहुत करीब आते जा रहे हैं। इसलिए पश्चिम में इस समय बुद्ध का सर्वाधिक प्रभाव है, एकदम बढ़ता जा रहा है। क्राइस्ट... ।

प्रश्नः वे क्या प्रतीक हैं?

बुद्ध ने सारे प्रतीक नए चुने, सारी भाषा नई चुनी। जैसे, जैसे कि महावीर ने आत्मा की बात की, बुद्ध ने आत्मा को इनकार कर दिया। बुद्ध ने कहा, आत्मा वगैरह कोई भी नहीं। महावीर ने इनकार किया परमात्मा को-- परमात्मा नहीं है, मैं ही हूं। बुद्ध ने परमात्मा की बात ही नहीं की, इनकार करने योग्य भी नहीं माना। समझते हैं न? इनकार करने योग्य भी नहीं माना। बात ही फिजूल है। चर्चा के योग्य भी नहीं है। और मैं हूं, इसको भी इनकार कर दिया। और कहा कि जो अपने मैं के पूर्ण इनकार को उपलब्ध हो जाता है, उसका निर्वाण हो जाता है।
यह जो आने वाली सदी है, धीरे-धीरे उस जगह पहुंच रही है, जहां व्यक्ति अनुभव कर रहा है कि व्यक्ति होना भी एक बोझ है, इसको भी विदा हो जाना चाहिए, इसकी भी कोई आवश्यकता नहीं है। ईगो, अहंकार भी एक बोझ है, इसे भी विदा हो जाना चाहिए।
फिर महावीर ने जो भी व्यवस्था दी उसमें मोक्ष पाने का ख्याल है--कि मोक्ष मिल जाए। उसमें एक उद्देश्य है, एक लक्ष्य है--ऐसा मालूम पड़ता है। जो प्रतीक उन्होंने चुने उनकी वजह से ऐसा मालूम पड़ता है कि मोक्ष एक लक्ष्य है, उसके लिए साधना करो, तपश्चर्या करो, तो मोक्ष मिलेगा। बुद्ध ने कहा कि कोई लक्ष्य नहीं है, क्योंकि जब तक लक्ष्य की भाषा है, तब तक डिजायर है, वासना है, तृष्णा है। तो लक्ष्य की बात ही मत करो। लक्ष्य की बात मत करो, उसका मतलब यह हुआ कि अभी जीओ, इसी क्षण में जीओ, कल की बात ही मत करो।
तो दुनिया, पुरानी दुनिया गरीब दुनिया थी, और गरीब दुनिया कभी भी क्षण में नहीं जी सकती है। गरीब दुनिया को हमेशा भविष्य में जीना पड़ता है। क्योंकि किसी गरीब आदमी से कहो, आज ही जीओ, तो वह कहेगा, क्या आप कहते हैं! कल का क्या होगा?
लेकिन दुनिया बदल गई, एफ्लुएंट दुनिया पैदा हो गई, समृद्ध दुनिया पैदा हो गई। अमरीका में पहली दफा धन इस बुरी तरह बरस पड़ा है कि अब कल का कोई सवाल नहीं। तो बुद्ध की यह बात कि आज ही जीओ, इसी क्षण जीओ, पहली दफे सार्थक हो जाएगी। अब यानी, पहली दफा कल की चिंता करने की जरूरत नहीं है। कल का कोई मतलब ही नहीं है--आएगा आएगा, नहीं आएगा नहीं आएगा।
गरीब दुनिया जो है, वह स्वर्ग बनाती है आगे, वे तृप्तियां हैं। यहां
तो सुख मिलता नहीं, तो आदमी सोचता है मरने के बाद। समृद्ध दुनिया जो है, वह स्वर्ग आगे क्यों बनाए? वह आज ही बना लेती है, इसी वक्त बना लेती है। हिंदुस्तान का स्वर्ग भविष्य में होता है, अमरीका का स्वर्ग अभी है और यहीं है।
उसी से हमें ईर्ष्या होती है भौतिकवादी से। वह ईर्ष्या का भी कारण है कुछ इसमें। इसलिए हम गाली देते हैं, निंदा करते हैं, वह भी कारण है कि उसका स्वर्ग अभी बना जा रहा है, हमारा स्वर्ग मरने के बाद है। पक्का अभी भरोसा भी नहीं, मरने के बाद होगा कि नहीं होगा।
तो बुद्ध ने जो संदेश दिया, वह बिल्कुल तात्कालिक जीने का है, इस क्षण जीने का है। महावीर का जो संदेश है, मैंने कहा कि संकल्प का है। संकल्प टेंशन से चलता है, तनाव से चलता है। उसकी हम धीरे से बात करेंगे कि तनाव संकल्प कैसे ले जाता है। संकल्प की जो प्रक्रिया है, वह तनाव की प्रक्रिया है--परम तनाव की। और मजे की बात यह है कि सब चीजें अगर उनकी पूर्णता तक ले जाई जाएं तो अपने से विपरीत में बदल जाती हैं, यह नियम है। अगर आप तनाव को उसकी एक्सट्रीम पर ले जाएं, तो विश्राम शुरू हो जाता है। जैसे कि मैं इस मुट्ठी को बांधूं, और पूरी ताकत लगा दूं बांधने में, फिर मेरे पास ताकत ही

न बचे, तो मुट्ठी खुल जाएगी। क्योंकि जब मेरे पास ताकत नहीं बचेगी, सारी ताकत बांधने में लग जाएगी और आगे ताकत नहीं मिलेगी बांधने को, तो क्या होगा? मुट्ठी खुल जाएगी। और मैं मुट्ठी को खुलते देखूंगा और बांध भी नहीं सकूंगा, क्योंकि सारी ताकत तो मैं लगा चुका हूं। हां, धीरे से मुट्ठी को बांधें तो खुल नहीं सकती मुट्ठी अपने आप, क्योंकि ताकत मेरे पास सदा शेष है, जिससे मैं उसको बांधे रहूंगा।
इसलिए महावीर कहते हैं, संकल्प पूर्ण--पूर्ण संकल्प कर दो। इतना तनाव पैदा होगा, इतना तनाव पैदा होगा कि तनाव की आखिरी गति आ जाएगी। और तनाव की आखिरी गति के बाद तनाव शिथिल हो जाता है। तो ले जाते हैं वे भी विश्राम में, लेकिन उनका मार्ग है पूर्ण तनाव से।
और बुद्ध कहते हैं कि तनाव? तो तनाव तो कष्टपूर्ण होगा। तो जितना तनाव है, वह भी छोड़ दो। अब यह ऐसा हुआ कि समझ लीजिए कि बीच में हम खड़े हैं, आधे तनाव में। महावीर कहते हैं, पूर्ण तनाव, ताकि तनाव से तुम बाहर निकल जाओ। बुद्ध कहते हैं, जितना है, इससे भी पीछे लौट आओ, तनाव ही छोड़ दो। तो भी विश्राम आ जाता है।
तो महावीर की भाषा अब इस सदी में समझ में आना मुश्किल पड़ जाएगी, क्योंकि कोई तनाव पसंद नहीं करता, तनाव वैसे ही बहुत ज्यादा है। आदमी इतना तना हुआ है, इसलिए मैं कह रहा हूं कि फ्यूचर की जो लैंग्वेज है, वह बुद्ध के पास है। इसलिए पश्चिम में कोई महावीर की बात नहीं मानेगा कि और संकल्प करो, और तपश्चर्या करो। वह कहेगा, हम मरे जा रहे हैं वैसे ही। अब हम पर कृपा करो, हमको कोई विश्रांति चाहिए। तो बुद्ध कहते हैं, विश्रांति का यह रहा रास्ता कि जितना तनाव है, यह भी छोड़ दो, टोटल रिलैक्स हो जाओ। यह जंचेगा, क्योंकि तनाव से भरा हुआ आदमी है। जंचेगा यह।
महावीर के पहले के तेईस तीर्थंकरों के लंबे काल में प्रकृति के परम विश्राम में आदमी जी रहा था, कोई तनाव न था, विश्राम ही था जिंदगी। उस विश्राम में महावीर की भाषा सार्थक बन गई, क्योंकि विश्राम की बात सार्थक होती ही नहीं उस दुनिया में। उस दुनिया में आदमी से विश्राम के लिए कहना बिल्कुल फिजूल था।
जैसे बंबई के आदमी को आप कहिए कि चलो डल झील पर, बड़ी शांति है, तो उसको समझ में आता है। और डल झील के पास एक गरीब आदमी अपनी बकरियां चरा रहा है, उससे कहो कि तुम कितनी परम शांति में हो। वह कहता है, कभी बंबई के दर्शन करने का मन होता है। उसके मन में बंबई बसी है, कभी बंबई वह जाए। स्वाभाविक, जो जहां है, वहां से भिन्न जाना चाहता है।
तो सारा जगत था प्रकृति की बिल्कुल गोद में बसा हुआ--न कोई तनाव था, न कोई चिंता थी। उस स्थिति में संकल्प को बढ़ा कर और तनाव को पूर्ण करने की बात ही अपील कर सकती थी, वह लैंग्वेज उस वक्त काम आ सकती थी। तो वह चली। फिर एक संक्रमण आया। और संक्रमण... इसलिए महावीर उस अर्थ में बहुत प्रभावी नहीं हो सके, बहुत प्रभावी नहीं हो सके। और जो लोग उनके पीछे भी गए, वे भी उनको मान नहीं सके। वह नाममात्र की मान्यता रही और नए लोगों को वे उस दिशा में ला नहीं सके, क्योंकि नया आदमी उसके लिए राजी नहीं हुआ। रोज-रोज संख्या क्षीण होती चली गई।
जैसे दिगंबर जैन मुनि है। श्वेतांबर जैन मुनि महावीर से बहुत दूर है, क्योंकि उसने बहुत समझौते कर लिए। इसीलिए उसकी संख्या ज्यादा है। वह अभी भी है, समझौता करके। दिगंबर जैन मुनि ने समझौता नहीं किया। उसने महावीर की जैसी बात थी, ठीक वैसा ही प्रयोग किया। तो मुश्किल से बीस-बाईस मुनि हैं पूरे मुल्क में। और हर साल एक मरता है तो फिर पूरा नहीं होता। अगर इक्कीस रह जाते हैं तो फिर बाईस करना मुश्किल हो जाता है। एक पच्चीस-तीस वर्षों में वे बीस-बाईस मुनि मर जाएंगे। पचास साल बाद दिगंबर जैन मुनि का होना असंभव है।
लैंग्वेज चली गई। उसके लिए कोई राजी नहीं है। उसके लिए कोई राजी ही नहीं है। तो एक मरता है तो उसको वे पूरा नहीं कर पाते, दूसरे को नहीं ला पाते।
और जिनको वे आज रखे भी हैं, उनमें से कोई भी शिक्षित नहीं है। यानी एक अर्थों में वे पुरानी सदी के लोग हैं, इसलिए राजी भी हैं। एक शिक्षित आदमी

को, ठीक आधुनिक शिक्षा पाए हुए आदमी को दिगंबर मुनि नहीं बन सका अब तक। बन नहीं सकता। उसकी भाषा सब बदल गई। तो अशिक्षित, बिल्कुल कम समझ के लोग, गांव के लोग, दक्षिण के लोग--उत्तर का एक जैन मुनि नहीं है दिगंबरों के पास--वही भर बन पाता है। और वह भी आज कोई नहीं बनता। यानी वे भी सब पचपन वर्ष के ऊपर की उम्र के लोग हैं, जो बीस-पच्चीस वर्ष में विदा होते चले जाएंगे। एक मरता है, फिर उसको वे रिप्लेस नहीं कर पाते। वह लैंग्वेज मर गई।
श्वेतांबर मुनि की संख्या बची है, बढ़ती है, क्योंकि वह वक्त के साथ लैंग्वेज को बदलता रहा है, समझौते करता रहा है वह, समझौते के लिए तरकीबें निकालता रहा है। समझौते करके ही वह बचा हुआ है। अब वह रोज समझौते करता जा रहा है। माइक से बोलना है तो माइक से बोलने लगेगा। यह करना है, वह करना है; वह सब समझौते कर रहा है। कल वह गाड़ी में भी बैठने लगेगा, परसों वह हवाई जहाज में भी उड़ेगा; वह सब समझौते कर लेगा। वह समझौते करके ही बच रहा है। लेकिन समझौते करने में वह महावीर से कोई संबंध नहीं रह गया उसका, जो था। तो मेरा कहना... मैं यह कह रहा हूं कि भविष्य के लिए... लेकिन महावीर की
जो साधना है, वह भविष्य के लिए सार्थक हो सकती है। और एक ही उपाय है कि उसे भविष्य की भाषा में फिर से पूरा का पूरा रख दिया जाए।
तो मैं कहता हूं, समझौते जीवन में मत करो, जीवन में समझौता बेईमानी है। समझौता ही बेईमानी है असल में। असल में प्रत्येक युग में, और नई जब भाषा बनती है, तो भाषा बदलो। नए शब्द चुनो, नई दृष्टि चुनो, नया दर्शन चुनो। और मूल साधना का सूत्र ख्याल में ले लो।
जैसे मैं कहता हूं कि आज अगर महावीर की नहीं कोई अपील है सारे जगत में, उसका कारण यह है कि उनके पास भाषा बिल्कुल ही पिटी-पिटाई है, वह गई। लेकिन अब भी हो सकती है अपील, भाषा इस युग के अनुकूल हो आज, तो आज अपील हो जाए। अपील, आप क्या कहते हैं, इसकी नहीं होती, अपील इस बात की है कि आप उसको कैसे कहते हैं, वह युग के मन के अनुकूल है या नहीं है! नहीं तो वह खो देती है अपील।
तो एक तो इसलिए वे पिछड़ गए कि उन्होंने अतीत की भाषा का उपयोग किया। महावीर एक अर्थ में अतीत के प्रति अनुगत हैं। बुद्ध अतीत के प्रति बिल्कुल ही अनुगत नहीं हैं, भविष्य के प्रति हैं। अतीत को इनकार ही कर दिया। इसलिए अपने से पहले किसी परंपरा से उन्होंने नहीं जोड़ा, नई परंपरा को सूत्रबद्ध किया। और भी बहुत कारण हैं, जिनकी वजह से परिणाम नहीं हो सका जितना हो सकता था।
फिर से पुनरुज्जीवित की जा सकती है, भाषा में कोई कठिनाई नहीं है। लेकिन अनुयायी कभी उतनी हिम्मत नहीं जुटा पाता, क्योंकि उसे लगता है, सब खो जाएगा। भाषा ही उसकी संपत्ति है। वह समझता है कि भाषा ही संपत्ति है, अगर उसको बदला तो सब खो गया। जब कि भाषा संपत्ति नहीं है, भाषा सिर्फ कंटेनर है, डब्बा है; कंटेंट की बात है असल में। मगर हमें पता नहीं कितना फर्क पड़ता है।
अभी मैंने पढ़ा कि एक अमरीकी लेखक ने एक लाख किताबें छपवाईं, लेकिन नहीं बिक सकीं, तीन वर्ष परेशान हो गया। तो उसने जाकर विज्ञापन सलाहकारों से सलाह ली। तो उन्होंने कहा कि तुम्हारा जो कवर है, वह गलत है; तुमने जो नाम रखा है, वह पिटा-पिटाया है। किताब का नाम जो रखा है, वह पिटा-पिटाया है; और तुम्हारा जो कवर है, वह गलत है, आधुनिक मन के अनुकूल नहीं है। तो इसलिए वह किताब में रखा रहेगा, कभी उस पर नजर ही नहीं पड़ने वाली किसी खरीदने वाले की। किताब तो पीछे देखी जाती है, किताब का कवर तो पहले दिखता है।
तो उसने कवर बदल दिया। नए रंग, नई डिजाइन, आधुनिक कला से संबंधित कर दिया, नाम बदल दिया। वह किताब दस महीने में बिक गई। और भारी प्रशंसा हुई उस किताब की। हमेशा ऐसा होता है, हमेशा ऐसा होता है।
अब महावीर के ऊपर बहुत पुराना कवर है।

प्रश्नः अब नया कवर कौन सा होना चाहिए?

हां, उसके लिए भी अपन बात करेंगे। नया कवर हो, बिल्कुल हो, बिल्कुल हो।
और जरूर होना चाहिए, क्योंकि महावीर की धारा का इतना अदभुत अर्थ है कि वह

खो जाए, तो नुकसान होगा। मनुष्य-जाति को नुकसान होगा। जैनियों को तो नुकसान होगा कवर बदलने से, मनुष्य-जाति को नुकसान होगा महावीर की धारा के अर्थ के खो जाने से। तो इसलिए मैं मानता हूं जैनियों के नुकसान की चिंता नहीं करनी चाहिए। मनुष्य-जाति की समृद्धि में महावीर आगे भी सार्थक रहें, यह विचार होना चाहिए। तो उस पर--जैसे ही हम उनकी साधना-पद्धति को पूरा समझेंगे तो ख्याल में आ जाएगा कि हम उसे क्या दृष्टि दें।
अब जैसे मैं यह कह रहा हूं--जैसे मैं यह कह रहा हूं कि पुराना--उदाहरण
के लिए, महावीर की साधना को मैं कहता हूं पूर्ण संकल्प की साधना, प्रैक्टिस ऑफ दि टोटल विल। और जैन परंपरा कहती है, दमन की साधना।
दमन शब्द पिट गया--सार्थक नहीं है, खतरनाक है। फ्रायड के बाद दमन की जो
भी साधना बात करेगी, उसका इस जगत में कोई स्थान नहीं हो सकता। हो ही नहीं सकता अब। फ्रायड के बाद दमन का जिस साधना-पद्धति ने प्रयोग किया, वह पद्धति उस शब्द के साथ ही दफना दी जाएगी, वह नहीं बच सकती अब।
और ऐसा नहीं है कि महावीर की साधना दमन की साधना थी। असल में दमन का अर्थ ही और था तब। तब दमन का अर्थ ही और था। फ्रायड ने पहली बार दमन को नया अर्थ दे दिया है, जो कभी था ही नहीं।
तो चल सकता था, काया-क्लेश शब्द हम उपयोग कर सकते थे; अब नहीं कर सकते हैं। अब किसी ने कहा काया-क्लेश, वह गया। उसी शब्द के साथ वह डूब जाएगा पूरा का पूरा उसका सब विचार। क्योंकि काया-क्लेश शब्द आने वाले भविष्य के लिए सार्थक नहीं है, निरर्थक है। और काया-क्लेश का जो मतलब है, वह अब भी सार्थक है। और महावीर की पद्धति में जिसको काया-दमन कहा है, वह अब भी सार्थक है--जो कंटेंट है, वह।
लेकिन यह शब्द बासा पड़ गया और एकदम खतरनाक हो गया। क्योंकि इधर फ्रायड के बाद काया-क्लेश जो दे रहा है, वह आदमी मैसोचिस्ट है, वह आदमी खुद को सताने में मजा ले रहा है। वह आदमी रुग्ण है, मानसिक बीमार है, जो आदमी अपने को सताने में मजा ले रहा है। दो तरह के लोग हैं। जो दूसरों को सताने में मजा लेते हैं वे सैडिस्ट, और जो अपने को सताने में मजा लेते हैं वे मैसोचिस्ट।
अब अगर काया-क्लेश की बात की तो महावीर तक मैसोचिस्ट सिद्ध हो जाने वाले हैं आने वाले भविष्य में। यानी यह जैनियों की नासमझी में वह महावीर फंस जाने वाले हैं। और उनको अब बचाव का कोई उपाय नहीं, वे कुछ खड़े होकर कह नहीं सकते कि क्या कहा जा रहा है!
और अगर महावीर के शरीर को देखो तो पता चल जाएगा कि तुम्हारी काया- क्लेश की बात नितांत नासमझी की है। हां, तुम्हारे मुनि को देखो तो पता चलता है कि काया-क्लेश सच है। महावीर की काया को देख कर लगता है कि ऐसी काया को संभालने वाला आदमी नहीं हुआ है। महावीर को देख कर तो ऐसा ही लगता है। ऐसी सुंदर काया शायद ही कभी कोई... न बुद्ध के पास थी, न क्राइस्ट के पास थी ऐसी सुंदर काया।

प्रश्नः कैसी?

जैसी महावीर के पास सुंदर काया है। जितना सुंदर स्वस्थ शरीर महावीर
के पास है, ऐसा किसी के पास नहीं था। और मेरा अपना मानना है कि इतने सुंदर होने की वजह से वे नग्न खड़े हो सके। असल में नग्नता को छिपाना कुरूपता को छिपाना है। हम सिर्फ उन्हीं अंगों को छिपाते हैं, जो कुरूप हैं। इतने परम सुंदर हैं वे कि छिपाने को कुछ भी नहीं है, वे नग्न खड़े हो सके। नग्न खड़े होने में भी वे परम सुंदर हैं। और उनकी परंपरा को पकड़ने वाला जो शब्द पकड़े हुए है काया-क्लेश का कि वे शरीर को सता रहे हैं, वे बिल्कुल पागल हैं, क्योंकि सताने वाला शरीर ऐसा नहीं होता, जैसा महावीर का है।
हां, इधर दिगंबर जैन मुनि को देखें तो पता चलता है कि हां, यह शरीर को सता रहा है। एक दिगंबर मुनि अब तक महावीर जैसा शरीर खड़ा करके नहीं बता सका।
तो कहीं कोई भूल हो गई है। महावीर काया-क्लेश किसी और ही बात को कहते हैं। एक आदमी जो सुबह घंटे भर व्यायाम करता है, वह भी काया-क्लेश कर रहा

है। आप समझ रहे हैं न? काया-क्लेश वह भी कर रहा है, जो घंटे भर व्यायाम करता है, पसीना-पसीना हो जाता है, शरीर को थका डालता है। और एक आदमी वह भी काया- क्लेश कर रहा है, जो एक कोने में बिना खाए-पीए, बिना नहाए-धोए पड़ा है। वह भी काया-क्लेश कर रहा है। लेकिन पहला आदमी काया के लिए ही काया-क्लेश कर रहा है, और दूसरा आदमी काया की दुश्मनी में काया-क्लेश कर रहा है। दोनों का अगर दस वर्ष ऐसा ही क्रम चला तो दोनों को खड़ा करेंगे तो नंबर एक का तो एक अदभुत सुंदर शरीर वाला व्यक्ति निकल आएगा और दूसरा एक दीन-हीन, मरा हुआ व्यक्ति हो जाएगा।
काया-क्लेश किसलिए? महावीर कहते हैं कि काया का श्रम काया के लिए ही। काया कभी भी वैसी नहीं बन सकती, जैसी बन सकती है; उसके लिए श्रम उठाना पड़ेगा।
तो क्लेश जो अब शब्द है, वह अब घातक और दुश्मनीपूर्ण मालूम पड़ता है।
वह महावीर के लिए नहीं है घातक और दुश्मनीपूर्ण। उस शब्द को पकड़ कर हम महावीर की पूरी वृत्ति को ही नष्ट कर देंगे। उस शब्द को बदलना पड़ेगा।
अब महावीर उपवास शब्द का प्रयोग करते हैं। उपवास का मतलब होता है-- अपने पास रहना, टु बी नियर वनसेल्फ। और कोई मतलब ही नहीं होता। आत्मा के पास निवास करना--उपवास। जैसे उपनिषद--गुरु के पास बैठना। ऐसे उपवास--अपने पास होना। लेकिन उपवास का फास्टिंग, अनशन अर्थ हो गया है। उपवास का मतलब हो रहा है, अनशन, न खाना।
अब यह उपवास नहीं चल सकता, न खाने वाला। और न खाने पर जोर दिया, तो वह दमन और काया-क्लेश वाली बात है। चार-चार महीने तक कोई आदमी बिना खाए रह सकता है? लेकिन उपवास में रह सकता है। उपवास का मतलब ही और है। उपवास का मतलब है कि एक व्यक्ति अपनी आत्मा में इतना लीन हो गया कि शरीर का उसे पता ही नहीं है, तो भोजन भी नहीं करता है, क्योंकि शरीर का पता हो तो भोजन करे। अपने भीतर ऐसा लीन हो गया है कि शरीर का पता नहीं चलता--दिन बीत जाते हैं, रातें बीत जाती हैं, उसे शरीर का पता नहीं।
एक संन्यासी मेरे पास आए और उन्होंने मुझसे... मेरे पास सामने ही रुके
थे तो आए मुझसे मिलने तो मैंने कहा, आप खाना खाकर जाएं। तो उन्होंने कहा, आज तो मेरा उपवास है। तो मैंने कहा, कैसा उपवास करते हैं? उन्होंने कहा कि इसमें क्या बात है, आप यह भी नहीं जानते कि कैसा उपवास करते हैं? खाना नहीं लेते दिन भर। तो मैंने कहा, इसको आप उपवास समझते हैं? अनशन क्या है फिर? तो उन्होंने कहा, दोनों एक चीज हैं। नाम से कोई फर्क पड़ता है? तो मैंने कहा, फिर आप अनशन करते हैं, अभी उपवास का आपको पता नहीं।
और जब आप अनशन करेंगे तो ध्यान रहे, पूरा वास शरीर के पास होगा, आत्मा
के पास होने वाला ही नहीं है। अनशन का मतलब ही यही है कि नहीं खाया; खाने का ख्याल है, नहीं खाया, छोड़ा। तो दिन भर शरीर के पास ही मन घूमेगा। भूख लगी, प्यास लगी, कल का ख्याल कि कल क्या खाएंगे, परसों क्या खाएंगे--पूरे वक्त एक... ।
तो मैंने उनसे कहा कि यह तो उपवास से अनशन बिल्कुल उलटा है। दोनों में भोजन नहीं खाया जाता, लेकिन दोनों उलटी ही बातें हैं, क्योंकि अनशन में आदमी शरीर के पास रहता है--चौबीस घंटे, जितना कि खाना खाने वाला भी नहीं रहता। दो दफे खा लिया और बात खतम हो गई है। और अनशन वाला दिन भर खाता रहता है, मन ही मन में खाना चलता है।
उपवास का मतलब है कि किसी दिन ऐसे मौज में आ गए हो तुम अपने भीतर कि अब शरीर की कोई याद ही न रही। और महावीर की जो शरीर की तैयारी है, वह इसलिए है कि जब शरीर की याद न रहे तो शरीर इतना समर्थ हो कि दस-पांच दिन, महीने दो महीने झेल जाए। नहीं तो झेलेगा कैसे? तो यह मुनि का तो झेल ही नहीं सकता। अगर यह, अगर यह भीतर चला जाए तो यह तो मर ही जाए। क्योंकि इसके पास तो शरीर में जो अतिरिक्त होना चाहिए झेलने के लिए, वह है ही नहीं। इसके पास स्टोरेज ही नहीं है कोई। अगर बहुत बलिष्ठ शरीर हो, तो वह तीन महीने तक तो बिल्कुल आसानी से बिना खाए बच सकता है, नष्ट नहीं होगा।
तो महावीर अगर चार-चार महीने का उपवास किए हैं तो इस बात का सबूत है कि
उस आदमी के पास भारी बलिष्ठ शरीर था--साधारण नहीं--असाधारण रूप से, कि चार-

47

चार महीने तक उसने नहीं खाया है तो शरीर बचा है, शरीर मिट नहीं गया है इससे कुछ।
यह काया-क्लेश करने वाला तो कभी चार दिन नहीं कर सकता, वह तो चार दिन में मर जाएगा अगर उपवास इसका हो जाए। उपवास का मतलब इसकी आत्मा और चेतना एकदम भीतर चली जाए कि बाहर का इसे ख्याल ही न रहे, तो इसका शरीर तो साथ छोड़ देगा फौरन।
लेकिन शब्दों ने जान ले ली है। तो उस संन्यासी को मैंने कहा कि तुम कभी जिस दिन ध्यान करो और किसी दिन ध्यान में ऐसे डूब जाओ कि उठने का मन न हो तो उठना ही मत तुम। जब उठने का मन हो उठ आना, न हो तो मत उठना। तो उसे मैं ध्यान कुछ दो-तीन महीने कराता था। उसके साथ एक युवक रहता था। उसने एक दिन सुबह आकर मुझे खबर दी कि आज चार बजे से वे ध्यान में गए हैं तो नौ बज गया अभी तक उठे नहीं हैं और उन्होंने कह दिया है कि कभी न उठ आऊं तो उठाना मत। लेकिन मुझे बहुत डर लग रहा है, वे पड़े हैं। मैंने कहा, उन्हें पड़ा रहने दो। वह युवक दो बजे फिर दोपहर में आया कि... तब तो जरा घबड़ाहट होने लगी, क्योंकि वे पड़े ही हैं--न करवट लेते, न हाथ हिलाते। कहीं कुछ नुकसान तो नहीं हो जाएगा? मैंने कहा, तुम मत डरो, आज उपवास हो गया, तुम हो जाने दो।
रात नौ बजे वह फिर आया और उसने कहा, अब तो हमारी हिम्मत के बाहर हो गया मामला, आप चलिए। मैंने कहा, वहां कोई जाने की जरूरत नहीं है, तुम रहने दो। ग्यारह बजे रात वह आदमी उठा और भागा हुआ मेरे पास आया। और उसने कहा कि
आज समझा कि उपवास और अनशन का क्या अर्थ है! कितना भेद है! हो गया उपवास आज। हद का हुआ है। कभी कल्पना ही न की थी कि ऐसा भी उपवास का अर्थ हो सकता है। जब आप भीतर चले जाते हैं तो बाहर का स्मरण छूट जाता है। उस स्मरण के छूटने में पानी भी छूट जाता है। और शरीर इतना अदभुत यंत्र है कि जब आप भीतर होते हैं तो शरीर आटोमैटिक हो जाता है, अपनी व्यवस्था पूरी करने लगता है, आपको कोई चिंता लेने की जरूरत नहीं रहती। और शरीर की साधना का मतलब यह है कि शरीर ऐसा हो कि जब आप भीतर चले जाएं तो उसे आपकी कोई जरूरत न हो, वह अपनी व्यवस्था कर ले, वह स्वचालित यंत्र की तरह अपना काम करता रहे, और आपकी प्रतीक्षा करे कि जब आप बाहर आएंगे, तब वह आपको खबर देगा कि मुझे भूख लगी, कि मुझे प्यास लगी, नहीं तो वह चुपचाप झेलेगा और आपको खबर भी नहीं देगा। तो काया-क्लेश का मतलब है, काया की ऐसी साधना कि काया बाधा न रह जाए, साधक हो जाए, सीढ़ी बन जाए। लेकिन शब्द बड़े खतरनाक हैं, इसलिए इसको काया- क्लेश मत कहो, इसको काया-साधना कहो तो समझ में आ सकता है। इसको क्लेश कहा, तो क्लेश शब्द ऐसा बेहूदा है कि उससे ऐसा लगता है कि सता रहे हो, टार्चर कर रहे हो, तब तो नुकसान होगा।
और उपवास को फास्टिंग मत कहो, अनशन मत कहो; उपवास को कहो आत्मा के निकट होना। निश्चित ही, आत्मा के निकट होकर शरीर भूल जाता है। वह दूसरी बात है, वह गौण बात है, अनशन हो जाएगा, लेकिन वह दूसरी बात है। अनशन करने से उपवास नहीं होता, उपवास करने से अनशन हो जाता है।
और यह सब ख्याल में आ जाए तो, तो महावीर की धारा को खो जाने का कोई कारण नहीं, हालांकि वह खोने के करीब खड़ी है। और अगर जैन मुनि और साधु- संन्यासियों के हाथ में रही, तो वह खो ही जाने वाली है, उसका कोई उपाय नहीं। और यह भी ध्यान रहे कि महावीर जैसा आदमी दुबारा पैदा होना मुश्किल है, एकदम मुश्किल है। क्योंकि वैसे आदमी को पैदा होने के लिए जो पूरी हवा और वातावरण चाहिए, वह दुबारा अब संभव नहीं है। जैसा काल, जैसा क्षेत्र चाहिए, वह दुबारा संभव नहीं है।
इसलिए मेरा मानना है, कोई आदमी कभी नहीं खोना चाहिए। जिसने कोई भी मूल्यवान बचाया है, वह बचा रहना चाहिए, ताकि उसके अनुकूल लोगों के लिए वह ज्योति का दर्शन बन सके।
झोरेस्ट नहीं खोना चाहिए, कन्फ्यूशियस नहीं खोना चाहिए, मिलरेपा नहीं खोना चाहिए--कोई नहीं खोना चाहिए। उन्होंने अलग-अलग कोणों से पहुंच कर ऐसी चीज पाई है, जो बचनी ही चाहिए। वह मनुष्य-जाति की असली संपत्ति वह है। लेकिन वे जो उसको खो रहे हैं, वही उसके बचाने वाले मालूम पड़ते हैं कि वे उसके रक्षक हैं, वे उसको खोए चले जा रहे हैं।

महावीर: मेरी दृष्टि में तीसरा प्रवचन

तथ्य और महावीर-सत्य

महावीर के जन्म से लेकर, उनकी साधना के काल के शुरू होने तक, कोई स्पष्ट घटनाओं का उल्लेख उपलब्ध नहीं है। यह बड़ी महत्वपूर्ण बात है। जीसस के जीवन में भी पहले तीस वर्षों के जीवन का कोई उल्लेख नहीं है। इसके पीछे बड़ा महत्वपूर्ण कारण है।
महावीर जैसी आत्माएं अपनी यात्रा पूरी कर चुकी होती हैं पिछले जन्म में ही। बिकमिंग का, घटनाओं का जो जगत है, वह समाप्त हो चुका होता है पिछले जन्म में ही। इस जन्म में जो उनकी आने की प्रेरणा है, वह उनकी स्वयं की कोई वासना उसमें कारण नहीं है अब, सिर्फ करुणा कारण है। जो उन्होंने जाना है, जो उन्होंने पाया है, उसे बांटने के अतिरिक्त इस जन्म में उनका अब कोई काम नहीं है।
ठीक से समझो तो यही तीर्थंकर होने का अर्थ है।
तीर्थंकर का अर्थ यह हैः ऐसी आत्मा, जो अब सिर्फ मार्ग दिखाने को पैदा हुई है। और जो अभी स्वयं ही मार्ग खोज रहा हो, वह मार्ग नहीं दिखा सकता है।
जो खुद ही अभी मार्ग खोज रहा है, उसके मार्ग बताने का कोई अर्थ भी नहीं।
क्योंकि मार्ग क्या है पूरा, यह मार्ग पर चलने से नहीं, मंजिल पर पहुंच जाने से पता चलता है। चलते समय तो सभी मार्ग ठीक मालूम होते हैं। जिन पर हम चलते हैं, वही मार्ग ठीक मालूम होता है।
और चलते समय कसौटी भी कहां है कि जिस मार्ग पर हम चल रहे हैं, वह ठीक होगा; क्योंकि मार्ग का ठीक होना निर्भर करेगा मंजिल के मिल जाने पर। मार्ग के ठीक होने का एक ही अर्थ है कि जो मंजिल मिला दे। लेकिन यह पता कैसे चलेगा मंजिल मिलने के पहले कि इस मार्ग से मंजिल मिलेगी? यह तो उसे ही पता चल सकता है जो मंजिल पर पहुंच गया। लेकिन जो मंजिल पर पहुंच गया, उसका मार्ग समाप्त हो गया।
और मंजिल पर पहुंच जाना इतना कठिन नहीं है, जितना मंजिल पर पहुंच कर
और मार्ग पर लौटना। क्योंकि साधारणतः कोई कारण नहीं मालूम होता कि जो मंजिल पर पहुंच गया हो, वह अब मंजिल पर विश्राम करे।
तो दुनिया में मुक्त आत्माएं तो बहुत होती हैं, क्योंकि मुक्ति की मंजिल पर पहुंचते ही वे खो जाती हैं निराकार में। लेकिन थोड़ी सी आत्माएं फिर अंधेरे पथों पर वापस लौट आती हैं। ऐसी आत्माएं जो मंजिल पर पहुंच कर वापस जगत में लौटती हैं, तीर्थंकर कहलाती हैं। कोई परंपरा उन्हें तीर्थंकर कहती होगी, कोई परंपरा उन्हें अवतार कहती है, कोई परंपरा उन्हें ईश्वर-पुत्र कहती है, कोई परंपरा पैगंबर कहती है। लेकिन पैगंबर, तीर्थंकर, अवतार का जो अर्थ है, वह इतना है सिर्फ--ऐसी चेतना, जिसका अपना काम पूरा हो चुका, और अब लौटने का कोई कारण नहीं रह गया। बहुत कठिन है, यह मैंने कहा। मंजिल खोजना कठिन है, मंजिल पर पहुंच कर, जब कि परम विश्राम का क्षण आ गया, तब लौटना उन रास्तों पर, जिन रास्तों को बहुत मुश्किल से छोड़ा जा सका और मुक्त हुआ जा सका, अत्यधिक कठिन है। इसलिए उन थोड़ी सी आत्माओं को परम सम्मान उपलब्ध हुआ है, जो मंजिल पाकर रास्ते पर वापस लौट आती हैं। और ये ही आत्माएं मार्गदर्शक हो सकती हैं।
तीर्थंकर का मतलब है, जिस घाट से पार हुआ जा सके। तीर्थ कहते ही उस घाट
को हैं, जहां से पार हुआ जा सके। और तीर्थंकर कहते हैं उस घाट को, उस घाट पर उस मल्लाह को, जो पार करने का रास्ता बता दे।
तो महावीर का इस जन्म में और कोई प्रयोजन नहीं है अब। इसलिए पहले बचपन
का सारा जीवन घटनाओं से शून्य है। घटनाएं घटने का अब कोई अर्थ नहीं है, वह बिल्कुल शून्य है घटनाओं से। इसलिए कोई घटना उल्लिखित नहीं है, उल्लिखित होने का कोई कारण नहीं है।
जीसस का प्रारंभिक जीवन बिल्कुल शून्य है घटनाओं से। कोई घटना ही नहीं है।

अब यह बड़ी हैरानी की बात है, आमतौर से जिन्हें हम विशिष्ट पुरुष कहते हैं, उनके बचपन में विशिष्ट घटनाएं घटती हैं--जिन्हें हम विशिष्ट पुरुष कहते हैं। लेकिन वे भी साधारण ही पुरुष होते हैं। सच में जो विशिष्ट है, उसका प्राथमिक जीवन बिल्कुल घटना-शून्य होता है।
इस अर्थ में घटना-शून्य होता है कि वह लौटा है किसी और काम से, अपना अब कोई काम नहीं रहा। अपना कोई काम नहीं है, इसलिए उसकी बिकमिंग की, उसके होने की, बढ़ने की कोई घटनाएं नहीं हैं। बस वह चुपचाप बढ़ता चला जाता है। चारों तरफ चुप्पी होती है, वह चुपचाप बड़ा हो जाता है--उस क्षण की प्रतीक्षा में, जब वह जो देने आया है, वह देना शुरू कर दे।
मेरी दृष्टि में तो महावीर को वर्धमान का नाम ही इसलिए मिला। इसलिए नहीं, जैसा कि कहानियों और किताबों में लिखा हुआ है कि उनके घर में पैदा होने से घर में सब चीजों की बढ़ती होने लगी--धन बढ़ने लगा, यश बढ़ने लगा। मेरी दृष्टि में तो नाम ही अर्थ यह रखता है कि जो चुपचाप बढ़ने लगा, जिसके आस-पास कोई घटना न घटी। यानी जिसका बढ़ना इतना चुपचाप था, जैसे पौधे चुपचाप बड़े होते हैं, कलियां फूल बनती हैं--और कभी पता नहीं चलता, कहीं कोई शोरगुल नहीं होता, कहीं कोई आवाज नहीं होती। ऐसा चुपचाप बड़ा होने लगा जो। मैं तो उस नाम में यही अर्थ देखता हूं, जो चुपचाप बढ़ने लगा।
और यह चुपचाप बढ़ना दिखाई पड़ने लगा होगा, क्योंकि घटनाएं न घटना बहुत बड़ी घटना है--बिल्कुल घटना न घटना! छोटे से छोटे आदमी के जीवन में घटनाएं घटती हैं, चाहे छोटी। बड़े आदमी के जीवन में बड़ी घटनाएं घटती हैं, चाहे कैसी भी। लेकिन ऐसा व्यक्ति जिसके जीवन में कोई घटना न घट रही हो, जो इतना चुपचाप बढ़ने लगा हो कि चारों तरफ कोई वर्तुल पैदा न होता हो--समय में, काल में, क्षेत्र में--तो वह अनूठा दिखाई पड़ गया होगा, कि कुछ विशिष्ट ही है। इसलिए शिक्षक उसे पढ़ाने आए हैं तो उसने इनकार कर दिया, क्योंकि वह पढ़ेगा क्या? वह पढ़ा हुआ ही है। शिक्षक पढ़ाने आए हैं तो वर्धमान ने मना कर दिया है, क्योंकि शिक्षकों ने पाया जो वे उसे पढ़ा सकते हैं, वह पहले से ही जानता है। इसलिए कोई शिक्षा नहीं हुई। शिक्षा का कोई कारण न था, कोई अर्थ भी न था। कोई घटना न घटी। वे चुपचाप बड़े हो गए हैं।
और हो सकता है, यह बात भी अनुभव में आई होगी लोगों को। इतने चुपचाप कोई
भी बड़ा नहीं होता। ऐसा ही जीसस का जीवन हैः बड़े चुपचाप बड़े हो गए हैं। दूसरी बात ध्यान में रख लेने जैसी है, महावीर के जन्म के संबंध में, अर्थपूर्ण है। जो मिथ, जो कहानी है, वह तो यह है कि वे ब्राह्मण स्त्री के गर्भ में आए, और देवताओं ने गर्भ बदल दिया और क्षत्रिय गर्भ में पहुंचा दिया।
यह बात तथ्य नहीं है, यह कोई तथ्य नहीं है कि किसी एक स्त्री से गर्भ निकाला और दूसरी स्त्री में रख दिया। लेकिन यह बड़ी, बड़ी गहरी बात है। और गहरी बात, कई चीजों की सूचनाएं हैं, वे हमें समझ लेनी चाहिए।
पहली सूचना तो यह है कि महावीर का, जो मैंने सुबह कहा, जो पथ है, वह पुरुष का, आक्रमण का, क्षत्रिय का; वह जो पथ है। महावीर का जो व्यक्तित्व है, और उनकी जो खोज का पथ है, वह क्षत्रिय का है। क्षत्रिय का इस अर्थों में कि वह जीतने वाले का है।
और इसीलिए महावीर जिन कहलाए। जिन का मतलब है, जीतने वाला। जिसका और कोई पथ नहीं है सिवाय जीतने के। जीतेगा तो ही उसका मार्ग है। और इसलिए पूरी परंपरा जैन हो गई। वह जो जिन है... तो यह बड़ी मीठी कहानी चुनी है कि था ब्राह्मणी के गर्भ में, लेकिन देवताओं को उठा कर क्षत्रिय के गर्भ में कर देना पड़ा। क्योंकि वह बच्चा ब्राह्मण होने को न था।
अब ब्राह्मण भी समझने जैसी बात है। ब्राह्मण का अपना मार्ग है। जैसे मैंने कहा कि पुरुष का एक मार्ग है, आक्रमण का; स्त्री का एक मार्ग है, समर्पण का। ब्राह्मण का एक मार्ग है, भिक्षा में मांग लेने का। यानी ब्राह्मण कह यह रहा है कि परमात्मा से लड़ोगे? अशोभन है। समर्पण करोगे? किसके प्रति? उसका अभी कोई पता नहीं है। लेकिन अज्ञात घेरे हुए है चारों तरफ और हम अत्यंत क्षुद्र और दीन-हीन। न हम जीत सकते हैं। और हम समर्पण भी क्या करेंगे? हमारे पास समर्पण करने को भी क्या है? दीनता-हीनता इतनी है। टोटल हेल्पलेसनेस। असहाय हम इतने हैं कि देंगे क्या? देने को क्या है? और

छीनेंगे कैसे? तो एक ही मार्ग है कि हाथ फैला दें विनम्रता से और भिक्षा में ले लें।
तो ब्राह्मण का जो मार्ग है, ब्राह्मण की जो वृत्ति है, वह भिक्षुक की है।
तो कहानी यह कहती है कि महावीर जैसा व्यक्ति अगर ब्राह्मणी के गर्भ में भी आ जाए, तो भी देवताओं को हटा कर उसे क्षत्रिय के गर्भ में रख देना पड़ेगा। वह व्यक्तित्व ब्राह्मण का नहीं है। और व्यक्तित्व गर्भ से आते हैं। वह व्यक्तित्व ही जन्मना क्षत्रिय का है--जो जीतेगा; मांग नहीं सकता है। महावीर ऐसा हाथ नहीं फैला सकते। परमात्मा के सामने भी नहीं। किसी के भी सामने नहीं। वे जीतेंगे। जीत कर ही अर्थ है उनकी जिंदगी का।
और इस देश में जो परंपरा थी, उस क्षणों में जो परंपरा थी--सर्वाधिक प्रभावी, वह ब्राह्मण की थी। सर्वाधिक प्रभावी जो परंपरा थी उस दिन, वह ब्राह्मण की थी। वह असहाय, मांग लेने वाले की थी।
अदभुत है वह बात भी। इतनी आसान नहीं, जितना कोई सोचता हो। क्योंकि असहाय होना बड़ी अदभुत क्रांति है। बिल्कुल असहाय हो जाना, वह भी एक मार्ग है। लेकिन वह मार्ग बुरी तरह पिट गया था। और इस बुरी तरह पिट गया था कि असहाय ब्राह्मण बड़ा दंभी हो गया था। जो अदभुत घटना घट गई थी वह यह थी, क्योंकि मार्ग तो था असहाय होने का, लेकिन परंपरा इतनी गाढ़ी हो गई थी और मजबूत हो गई थी कि असहाय ब्राह्मण सबसे ज्यादा अकड़ कर सड़कों पर खड़ा था। तो वह ब्राह्मण की जो मौलिक धारणा थी, वह खंडित हो चुकी थी। ब्राह्मण गुरु हो गया था। ब्राह्मण ज्ञानी हो गया था। ब्राह्मण सब के ऊपर बैठ गया था। वह जो असहाय होने की जो धारणा थी, वह खो गई थी। उस बात को तोड़ देना जरूरी था। इसको बड़े प्रतीक रूप में कथा कहती है कि ब्राह्मणी के गर्भ में आकर भी देवताओं को हटा देना पड़ा। यानी ब्राह्मणी का गर्भ अब महावीर जैसे व्यक्ति को पैदा करने में असमर्थ हो गया था। उसका जो मतलब है, उसका मतलब यह है कि ब्राह्मण की दिशा से अब महावीर जैसे व्यक्ति के पैदा होने की कोई संभावना न थी। सूख गई थी धारा, अकड़ गई थी, ऐंठ गई थी, गलत हो गई थी। अब क्षत्रिय की धारा से... ।
इसलिए जो संघर्ष था उस दिन, वह बहुत गहरे में ब्राह्मण और क्षत्रिय के मार्ग का संघर्ष था। और यह थोड़ी सोचने की बात है।
कोई पूछता है कभी कि क्या क्षत्रिय के अलावा और कोई तीर्थंकर नहीं हो सकता?
नहीं हो सकता। चाहे वह बेटा ब्राह्मण के गर्भ से ही क्यों पैदा न हो,
वह होगा क्षत्रिय ही। तो ही, तो ही उस मार्ग पर जा सकता है। वह मार्ग आक्रमण का है। वह मार्ग विजय का है। वहां भाषा विषय की और जीत की है। दूसरी बात लोग निरंतर पूछते हैं कि क्या गरीब का बेटा तीर्थंकर नहीं
हो सकता? वे सब राजपुत्र थे। क्षत्रिय और राजपुत्र!
वह भी बहुत अर्थपूर्ण है, कि जो अभी इस संसार को ही नहीं जीत पाया, वह
उस संसार को कैसे जीतेगा! आक्रमण का मार्ग है न! तो अभी जब इस संसार में ही नहीं जीत पाए तो वहां कैसे जीत लोगे? अभी इतनी छोटी सी जीत नहीं तय कर पाए, उस बड़ी जीत पर कैसे जाओगे?
इसलिए वे चौबीसों बेटे राजपुत्र भी हैं। राजपुत्र इस अर्थ में सूचक
है कि जीतने वाला जो है, वह कुछ भी जीतेगा। और जब वह इसको जीत लेगा, तब उसकी तरफ उसकी नजर उठेगी। वह इस लोक को जीत लेगा, तब उस लोक को जीतेगा। जीत के मार्ग पर पहले यही लोक पड़ने वाला है।
ब्राह्मण इस लोक में भी शिक्षा मांगेगा, उस लोक में भी। वह मानता ही
यह है कि प्रसाद से ही मिलेगा, जो मिलना है। आक्रमण की बात ही नहीं है कोई। ग्रेस से मिलेगा, प्रभु-कृपा से।
वह जो संघर्ष था, वह ब्राह्मण और क्षत्रिय ऐसी दो जातियों का नहीं, ऐसी दो परंपराओं का! ऐसी दो जातियों का कोई संघर्ष नहीं है, ऐसी दो परंपराओं का, ऐसे दो मार्गों का जो सत्य की खोज पर निकले हैं। और जब एक मार्ग कुंठित हो जाता है--और सब मार्ग कुंठित हो जाते हैं एक सीमा पर जाकर, क्योंकि सब मार्ग अहंमन्य हो जाते हैं, ईगोइस्ट हो जाते हैं एक सीमा पर जाकर।

ब्राह्मण का मार्ग प्राचीनतम मार्ग है। वह कुंठित हो गया था। उसके विरोध में बगावत जरूरी थी। वह बगावत क्षत्रिय से आनी स्वाभाविक थी। और आनी इसलिए स्वाभाविक थी कि हमेशा बगावत ठीक विपरीत से आती है। विद्रोह जो है वह ठीक विपरीत से आता है।
ब्राह्मण है मांगने वाला, क्षत्रिय है जीतने वाला। एक दान और दया में
ले लेगा, दूसरा दुश्मन को समाप्त करके लेगा। लेने का उसके लिए और दूसरा अर्थ ही नहीं होता।
तो ठीक बगावत विपरीत वर्ग से आने वाली थी, इसलिए वे क्षत्रिय हैं। इसलिए वह जन्म की कथा बड़ी मीठी है। यानी वह यह बताती है कि अब ब्राह्मण की जो कोख थी, वह बांझ हो गई थी। अब उसमें महावीर जैसा व्यक्ति पैदा नहीं हो सकता। वह परंपरा क्षीण हो गई थी, सूख गई थी--कि ब्राह्मण उस युग में महावीर या बुद्ध की हैसियत का एक भी आदमी पैदा नहीं कर पाया। वह मार्ग सूख गया था। उसने पैदा किए आदमी, लेकिन वक्त लग गया कोई डेढ़ हजार वर्ष का। फिर आया संघर्ष। डेढ़ हजार वर्ष में महावीर और बुद्ध ने जो परंपरा छोड़ी थी, वह सूख गई और जड़ हो गई। तब ठीक विपरीत विद्रोह फिर काम कर गया।
ये जो प्रतीक इस तरह चुने हैं, बड़े अर्थपूर्ण हैं। और इन प्रतीकों को
जो जड़ता से तथ्यों की भांति पकड़ लेता है, वह बिल्कुल भटक ही जाता है, उसे पता ही नहीं चलता कि क्या अर्थ हो सकता है!
महावीर के जीवन में, जब मैं कहता हूं कोई घटना नहीं घटी, तो कुछ बातें लेकिन सोचने जैसी हैं। जैसे, दिगंबर कहते हैं कि महावीर अविवाहित रहे। मजेदार घटना है! और श्वेतांबर कहते हैं, न केवल विवाहित, बल्कि एक बेटी भी हुई!
कितनी ही चीजें विकृत हो जाएं, लेकिन यह असंभव है कि एक अविवाहित व्यक्ति के साथ पत्नी और लड़की भी जुड़ जाए। यह करीब-करीब असंभव है। लेकिन यह भी असंभव है कि एक विवाहित व्यक्ति और उसकी एक लड़की और दामाद के होते हुए एक परंपरा उसे अविवाहित घोषित करे। ये दोनों बातें असंभव हैं। ये दोनों बातें कैसे संभव हो सकती हैं? अगर विवाह हुआ हो, लड़की हुई हो, दामाद हो, और ये सब बातें तथ्य हों, तो कोई कैसे इनकार कर देगा इस बात को कि यह हुआ नहीं?
यहां फिर समझ लेने जैसा है कि तथ्य जरूरी नहीं कि सदा सत्य हों। यह एक बात समझ लेनी जरूरी है। तथ्य जरूरी नहीं कि सदा सत्य हों। और जिनकी पकड़ सत्य पर है, बहुत बार तथ्यों में बुनियादी हेर-फेर हो जाते हैं। और जो सत्यों को नहीं देख पाते, वे सिर्फ मृत तथ्यों को संगृहीत कर लेते हैं। इसलिए मेरा मानना है कि महावीर का विवाह जरूर हुआ होगा, लेकिन वे बिल्कुल अविवाहित की भांति रहे होंगे। और इसलिए यह संभव हो सकी है बात। उनका विवाह हुआ ही, लेकिन वे अविवाहित की भांति रहे। जिन्होंने तथ्य देखा, उन्होंने कहा, विवाह जरूर हुआ; और जिन्होंने सत्य देखा, उन्होंने कहा, वह आदमी अविवाहित था, अनमैरिड था। अविवाहित होना एक सत्य है और विवाहित होना सिर्फ एक तथ्य है। कोई व्यक्ति बिना विवाहित हुए विवाहित हो सकता है--मन से, चित्त से, वासना से।
और विवाहित होने की वासना क्या है, उसे हम समझ लें। विवाहित होने की वासना है कि मैं अकेला काफी नहीं हूं, पर्याप्त नहीं हूं, दूसरा भी चाहिए जो आए और मुझे पूरा करे। मैरिड होने का मतलब क्या है? विवाहित होने का मतलब क्या है? विवाहित होने का गहरा मतलब यह है कि मैं अपने में पर्याप्त नहीं हूं, जब तक कि कोई मुझे मिले और जोड़े और पूरा न करे।
पुरुष अपर्याप्त है अपने में, आधा है, स्त्री जुड़े--यह विवाहित होने
की कामना है, यह विवाहित होने का चित्त है। स्त्री अधूरी है अपने में, पुरुष के बिना खाली-खाली है, पुरुष आए और उसे भरे और पूरा करे--यह विवाहित होने की कामना है।
तो दिगंबरों को मैं कहता हूं, उन्होंने ठीक ही कहा कि महावीर अविवाहित थे। क्योंकि उस व्यक्ति में किसी से पूरे होने की कोई कामना न बची थी, वह पूरा था। कहीं कोई अधूरापन न था, जो किसी और से उसे पूरा करना है।

इसलिए मैं मानता हूं कि श्वेतांबरों से दिगंबरों की आंख गहरी पड़ी, बहुत गहरी पड़ी। बहुत गहरा देखा उन्होंने, कि यह आदमी अविवाहित है। इस साधारण से तथ्य के लिए कि एक स्त्री से इसका विवाह हुआ, इसको विवाहित कहना एकदम अन्याय हो जाएगा।
आप मेरा मतलब समझ रहे हैं न? एकदम अन्याय हो जाएगा इस आदमी को विवाहित कहना, क्योंकि यह आदमी बिल्कुल अविवाहित है। और इसलिए यह संभव हो सका कि जिन्होंने गहरे देखा, उन्हें वह अविवाहित दिखाई पड़ा, और जिन्होंने तथ्य देखा, वह विवाह का तथ्य तो ठीक था। विवाह तो हुआ था।
और यह आदमी अपने में इतना पूरा था कि दूसरा इसके पास हो सकता है, दूसरा इसके निकट हो सकता है, दूसरा चाहे तो इससे अपने को भर भी सकता है, लेकिन इस आदमी को दूसरे की अपेक्षा नहीं है। इस आदमी को अपेक्षा नहीं है। इसलिए यह भी हो सकता है कि पत्नी ने पति पाया हो, लेकिन महावीर ने पत्नी नहीं पाई। इसलिए वह दिगंबरों की आंख गहरी है। वे कहते हैं, पत्नी नहीं थी इस आदमी के पास। यह हो सकता है पत्नी ने पति पाया हो। यह भी हो सकता है कि पत्नी ने इससे पुत्र पाया हो। लेकिन महावीर पिता नहीं थे और न पति थे। यह घटना घटी भी हो, तो अत्यंत बाह्य तल पर घटी है। लेकिन भीतर यह आदमी पूरा था।
यह जो होलनेस है इस आदमी की, इस पर जोर देने के लिए दिगंबरों ने कहा कि नहीं, इस आदमी ने कभी शादी की ही नहीं। मगर उनसे भी, जैसे-जैसे बात आगे बढ़ी, भूल होती चली गई। वे भी तथ्य को इनकार करने लगे। उनको भी ख्याल न रहा इस बात का कि तथ्य तो था कि शादी की थी।
और मैं मानता हूं कि यह भी बात अर्थपूर्ण है कि महावीर ने इनकार नहीं किया शादी के लिए। असल में जो शादी के लिए आतुर है वह, और जो शादी का इनकार करता है वह, वे दोनों स्त्रियों को अर्थ देते हैं। इनकार करने वाला भी स्त्री को अर्थ देता है। इनकार करने वाला भी भय जाहिर करता है। इनकार करने वाला भी पलायन करता है। इनकार करने वाला भी मानता है कि स्त्री कुछ है, जो पास होगी तो मैं कुछ और हो जाऊंगा।
महावीर ने न भी न की होगी, इसलिए शादी हो गई होगी। न कर देते तो शादी रुक सकती थी। लेकिन न तक न की होगी। आदमी इतना पूरा था कि न करने तक का उपाय न था। ठीक है, स्त्री आती थी तो आए, न आए तो न आए। ये दोनों बातें अर्थहीन थीं। और यह और घटनाओं से भी लगता है कि यह बात सच रही होगी।
महावीर ने आज्ञा चाही है पिता से कि मैं संन्यासी हो जाऊं? पिता ने कहा, मेरे रहते नहीं। मैं जब तक जीवित हूं, तब तक तुम बात ही मत करना दुबारा। तो अब महावीर चुप हो गए।
अदभुत आदमी रहा होगा। जिसको संन्यास लेना हो, वह ऐसा काम करे कि आज्ञा मांगे, पहली तो बात। जिसको संन्यास लेना है, वह आज्ञा क्यों मांगे? संन्यास का मतलब ही है, जो मोह-बंधन तोड़ रहा है। संन्यास लेना--संन्यास की भी आज्ञा मांगनी पड़ती है?
जैसे कोई आत्महत्या करने की आज्ञा मांगे कि मैं आत्महत्या करना चाहता हूं, आप आज्ञा देते हैं? तो कौन आज्ञा देगा? संन्यास की कभी आज्ञाएं दी गई हैं? संन्यास लिया जाता है। और महावीर ने आज्ञा मांगी संन्यास की कि मैं संन्यास ले लूं? कौन पिता राजी होगा?
और महावीर जैसे बेटे का! ऐसे बेटे हैं, जिनका पिता संन्यास के लिए राजी हो जाए। लेकिन महावीर जैसे बेटे का कोई पिता राजी होगा संन्यास के लिए?
इनकार किया, कहा कि मैं मर जाऊं, तब यह बात करना, यह बात ही मत करना मुझसे। और मजा यह है, घटना यह है, पिता तो बिल्कुल स्वाभाविक है, लेकिन यह लड़का बहुत अदभुत है, यह चुप हो गया और फिर इसने बात ही न की। निश्चित ही संन्यास लेने, न लेने से कोई बुनियादी फर्क न पड़ता होगा इसको। इसलिए जोर भी नहीं है कोई, कि ठीक है, नहीं भी हुआ तो भी चलेगा।
पिता मर गए, तो मरघट से लौटते वक्त अपने बड़े भाई से कहा कि मुझे आज्ञा
दे दें--अब तो पिता चल बसे--कि अब मैं संन्यासी हो जाऊं। तो बड़े भाई ने कहा, तुम पागल हो गए हो! एक तो पिता के मरने का दुख, और तुम अभी मुझे छोड़ कर चले

जाओगे! और घर भी नहीं पहुंचे हो अभी, रास्ते पर हो। मुझसे यह बात कभी मत करना।
तो बड़ी मजेदार घटना है कि महावीर ने फिर बात ही नहीं की, फिर वे घर में
ही रहने लगे। लेकिन थोड़े दिन में ही घर के लोगों को पता चला कि महावीर जैसे नहीं हैं--हैं घर में, और नहीं हैं! उनका होना न होने के बराबर है। न वे किसी के मार्ग पर आड़े आते हैं, न वे किसी की तरफ देखते हैं, न कोई उन्हें देखे इसकी आतुरता रह गई है। वे ऐसे हैं जैसे उस बड़े भवन में अकेले हैं, जैसे कोई है ही नहीं। कोई उनसे पूछे, हां और न में जवाब मांगे, तो भी नहीं देते हैं, किसी पक्ष और विपक्ष में नहीं पड़ते हैं, किसी वाद-विवाद में रस नहीं लेते। घर में क्या हो रहा है, नहीं हो रहा है, उन्हें कुछ प्रयोजन नहीं है। अतिथि हो गए हैं।
तो घर के लोगों को लगने लगा कि वे तो गए ही, सिर्फ शरीर रह गया है। तो
घर के लोगों ने कहा, शरीर को रोकना भी उचित नहीं। जो जा ही चुका है, हम इतने भी रोकने के भागीदार क्यों बनें! तो घर के लोगों ने प्रार्थना की कि अब आपकी मर्जी, तो आप संन्यास ले लें, क्योंकि हमारी तरफ से तो संन्यास लगता है, पूरा हो ही गया। आप घर में हैं या नहीं, बराबर हो गया। हम क्यों इस पाप के भागीदार हों कि आपको रोकते हैं? और महावीर चल पड़े!
ऐसा जो व्यक्ति है--इसकी शादी के वक्त इसने यह भी नहीं कहा होगा कि नहीं करनी है। क्योंकि नहीं करने में भी तो हम स्त्री को मूल्य देते हैं, दूसरे को मूल्य देते हैं, डरते हैं कि नहीं करनी है। पर शादी के बाद यह ऐसे रहा होगा जैसे कि शादी के पहले रहता था। कुछ फर्क ही न पड़ा होगा। इसलिए जिन्होंने गहरे देखा, उन्होंने माना कि अविवाहित हैं।
जैसा मैंने कल कहा कि जीसस की मां कुंआरी है, और बेटे को जन्म दिया। क्योंकि उतने कुंआरेपन में ही पैदा हो सकता है जीसस जैसा बेटा।
महावीर जैसा व्यक्ति पति हो कैसे सकता है? यानी पति होने की जो धारणा है, वह हम थोड़े सोचें कि महावीर जैसा व्यक्ति पति कैसे हो सकता है?
पति में पहली तो मालकियत है। और जो व्यक्ति जड़ वस्तु पर भी मालकियत नहीं रखना चाहता, वह किसी जीवित व्यक्ति पर मालकियत रखेगा, यह असंभव है। यह कल्पना ही असंभव है। यानी जो धन को भी नहीं कह सकता कि इसका मैं मालिक हूं, वस्तु के साथ भी ऐसा दुर्व्यवहार नहीं कर सकता--मालिक होने का, वह किसी जीवित स्त्री के साथ मालिक होने का दुर्व्यवहार असंभव है। पति होना एक तरह का दुर्व्यवहार है, एक मालकियत है, ओनरशिप है, पजेशन है। महावीर पति नहीं हो सकता।
और महावीर पिता भी कैसे हो सकता है? हां, लड़की जन्मी हो, यह हो सकता है। महावीर पिता कैसे हो सकता है? अब पिता की कामना क्या है, वह भी हम ठीक से समझ लें। पिता की कामना क्या है?
पिता की कामना है स्वयं को, स्वयं की देह को, स्वयं के अस्तित्व को दूसरों के माध्यम से आगे जारी रखना। पिता की कामना का अर्थ क्या है? आखिर कोई पिता होना क्यों चाहता है? कामना यह है कि मैं तो नहीं रहूंगा, कोई फिकर नहीं, लेकिन मेरा अंश रहेगा, रहेगा, और रहेगा। इसलिए बांझ पिता दुखी है, बांझ मां दुखी है। दुख क्या है? दुख एक है, खतम हो गई रेखा जहां हम समाप्त हो रहे हैं, जहां से हममें से कुछ भी नहीं बचेगा जीवित। जैसे एक शाखा, जिसके आगे अब पत्ते आने बंद हो गए। सब सूख गया।
पिता की आकांक्षा क्या है? पिता की आकांक्षा है कि चाहे यह शरीर मर जाए, लेकिन इस शरीर का एक अंश फिर शरीर निर्मित कर लेगा और रहेगा। मैं जीऊंगा दूसरों में। इसलिए तो बाप बेटे को बनाने के लिए इतना आतुर है। बेटे में बाप की महत्वाकांक्षा और अहंकार जीना चाहते हैं, बेटे के रूप में वे बने रहना चाहते हैं।
महावीर जैसे व्यक्ति को बने रहने की आकांक्षा का सवाल ही नहीं। न अहंकार है, न होने की तृष्णा है। न होने का अनुभव करके लौटा हुआ आदमी है यह। जहां सब खो जाता है, वहां से लौटा हुआ आदमी है यह। तो इसको ख्याल हो सकता है कि पिता बनूं? हां, यह हो सकता है लड़की पैदा हुई हो।
इस बात को ठीक से समझना। अब यही गड़बड़ हो जाती है, कठिनाई यही हो जाती है। जब लड़की पैदा हुई तो महावीर पिता हैं--ऐसा तथ्य को पकड़ने वाले को

दिखेगा। जो सत्य को पकड़ने जाता है, उसके लिए लड़की का होना न होना अप्रासांगिक है। हो सकता है महावीर की पत्नी, जो अपने को पत्नी मानती रही हो, मां भी बनना चाही हो और मां बन गई हो। लेकिन महावीर पिता नहीं बन पाए। और इसलिए एक धारा में जिन्होंने देखा, उन्होंने बिल्कुल इनकार कर दिया कि यह आदमी ऐसा था ही नहीं, यह बात ही झूठ है। लेकिन उन्होंने भी तथ्य को इनकार किया और दूसरों ने तथ्य को पकड़ लिया। और सत्य को देखना बहुत मुश्किल होता है, तथ्य आवरण बन जाता है।
एक छोटी कहानी मुझे याद पड़ती है।
एक गांव के बाहर एक नग्न मुनि ठहरा हुआ है। सम्राट की पत्नियां उसे भोजन कराने गांव के बाहर जा रही हैं। नदी पूर पर है। कोई पुल नहीं, कोई नाव नहीं। तो वे अपने पति से, सम्राट से पूछती हैं, हम क्या करें? कैसे पार जाएं?
तो वे कहते हैं, तुम जाकर नदी से कहना कि मुनि अगर जीवन भर के उपासे हों, तो मार्ग मिल जाए। नदी मार्ग दे दे, अगर उस पार ठहरा हुआ मुनि जीवन भर का उपवास किया हुआ है। तो उन्होंने जाकर कहा है। और कहानी है कि नदी ने मार्ग दे दिया!
वे बहुत बहुमूल्य भोजन बना कर, बहुत स्वादिष्ट मिष्ठान बना कर ले गई हैं। मुनि के सामने रख दिए हैं। मुनि उनकी सारी थालियां साफ कर गए हैं, कुछ भी नहीं बचा है। जब वे लौटने को हुईं, तब वे बड़ी चिंतित हुई हैं कि अभी तो नदी को कह कर हम लौट आए थे कि मुनि अगर जीवन भर के उपासे हों... अब क्या करेंगे? तो वे मुनि से पूछती हैं कि अब हम क्या करें? अभी तो हम कह कर आ गए थे कि आप जीवन भर के उपासे हों, लेकिन अब तो यह नहीं कह सकते। सामने ही भोजन कर लिया है।
तो मुनि ने कहा, इससे क्या फर्क पड़ता है? तुम जाओ, नदी से वही कहो कि अगर मुनि जीवन भर के उपासे हैं तो नदी राह दे दे!
उन स्त्रियों को बड़ी मुश्किल हो गई। क्योंकि भोजन थोड़ा भी नहीं, बहुत ज्यादा--पूरा ही मुनि कर गए हैं। कुछ छोड़ा भी नहीं है पीछे। और फिर भी सहज कहते हैं कि जाओ नदी से कह दो! बड़ी शंका में, बड़े संदेह में, नदी से जाकर कहा है। खुद पर हंसी आती है कि यह कैसे संभव है अब। लेकिन नदी ने फिर मार्ग दे दिया है!
तो वे लौट कर अपने पति से पूछती हैं कि जाते वक्त जो घटा, वह बहुत छोटा चमत्कार था; लौटते वक्त जो घटा है उस चमत्कार का मुकाबला ही नहीं। जाते वक्त भी चमत्कार हुआ था कि नदी ने मार्ग दिया, लेकिन वह बहुत छोटा हो गया अब। लौटते में भी मिला! और वे मुनि जो कि सब खा गए हैं और फिर भी उपवासे हैं!
उनके पति ने कहा, जो उपवासा ही है, उसी को हम मुनि कहते हैं। भोजन से उपवास का कोई संबंध ही नहीं।
असल में भोजन करने की तृष्णा एक बात है, और भोजन करने की जरूरत बिल्कुल दूसरी बात है। भोजन की तृष्णा एक बात है। वह न भोजन करो तो भी हो सकती है। और भोजन करना और उसकी जरूरत बिल्कुल दूसरी बात है। वह करो, तो भी हो सकता है तृष्णा न हो। और जब तृष्णा टूट जाती है, और सिर्फ जरूरत रह जाती है शरीर की, तो आदमी उपवासा है। जैसा मैंने सुबह कहा, वह भीतर वास किए चला जाता है। शरीर की जरूरत है, सुन लेता है, कर देता है, इससे ज्यादा कोई प्रयोजन नहीं है। खुद कभी भी उसने भोजन नहीं किया है।
तो अगर यह हो सकता है, तो फिर महावीर पिता हो सकते हैं। पिता नहीं होंगे, लड़की हो तो भी। और पति नहीं होंगे, पत्नी हो तो भी।
तथ्य अक्सर सत्य को ढांक लेते हैं। और हम सब तथ्यों को ही देख पाते हैं, फैक्ट्स को। और हमारा ख्याल होता है कि तथ्य बड़े कीमती हैं। और तथ्य के बहुत पहलू हो सकते हैं।
मैंने सुना है, एक अदालत में एक मुकदमा चला। एक आदमी ने एक हत्या कर दी है। और आंखों देखे एक गवाह ने कहा है कि खुले आकाश के नीचे यह हत्या की गई है। जब हत्या की गई, मैं मौजूद था, और आकाश में तारे थे।

और दूसरे आदमी ने कहा है कि यह हत्या मकान के भीतर की गई है। मैं मौजूद था, चारों तरफ दीवाल से बंद परकोटा था। द्वार पर मैं खड़ा था, चारों तरफ दीवाल थी, मकान था, जिसके भीतर हत्या की गई है।
उस न्यायाधीश ने कहा, मुझे बहुत मुश्किल में डाल दिया है तुमने। क्योंकि एक कहता है, खुले आकाश के नीचे! और दूसरा कहता है, मकान के भीतर! और एक तीसरे, आंख वाले गवाह ने जिसने खुद ने देखा था, उसने भी कहा कि दोनों ही ठीक कहते हैं--मकान अधूरा बना था, अभी सिर्फ दीवालें उठी थीं। ऊपर आकाश में तारे थे। छप्पर नहीं था मकान पर। और ये दोनों ही ठीक कहते हैं। आकाश में तारे थे और खुले आकाश के नीचे ही हत्या हुई है। और चारों तरफ दीवाल थी और मकान था, यह भी सच है।
जीवन बहुत जटिल है। और एक तो तथ्य ही, एक तो तथ्य ही हम बहुत तरह से देख सकते हैं, और फिर दूसरी गहराई यह कि तथ्य जरूरी नहीं कि सत्य हो। सत्य कुछ और भी हो सकता है, जो तथ्य से विपरीत भी हो सकता है। लेकिन हम चूंकि तथ्यों को ही जानते हैं और सत्यों से हमारा कोई संबंध नहीं, इसलिए अक्सर तथ्यों को पकड़ लेते हैं और तब मुश्किल में पड़ जाते हैं। बड़ी कठिनाई पैदा हो जाती है। बहुत कठिनाई पैदा हो जाती है।
जैसे कि एक उल्लेख है, जैनों के एक तीर्थंकर हैं, श्वेतांबर मानते हैं
कि वह स्त्री है और दिगंबर मानते हैं कि वह पुरुष है। ऐसा झगड़ा कैसे हो सकता है? ऐसा झगड़ा भी हो सकता है कि एक व्यक्ति के संबंध में यह झगड़ा भी हो जाए दो परंपराओं में कि वह स्त्री है या पुरुष? अब ये तो बड़ी सीधी तथ्य की बातें हैं। इनमें भी झगड़े हो सकते हैं लेकिन, क्योंकि तथ्य बड़ा झूठ बोल सकते हैं और जब कभी सत्य विपरीत होता है तो और मुश्किल हो जाती है।
यह हो सकता है कि जिस तीर्थंकर के बाबत यह ख्याल है, वह स्त्री हो-- शरीर से। लेकिन तीर्थंकर हो ही नहीं सकता कोई व्यक्ति, जब तक कि आक्रामक न हो, जब तक कि पुरुष-वृत्ति न हो, जब तक कि संघर्ष और संकल्प न हो। और यह भी हो सकता है कि संघर्ष, संकल्प और आक्रमण ने पूरे व्यक्तित्व को बदल दिया हो। और यह भी हो सकता है कि जब वह संन्यास लिया हो तो स्त्री रहे हों, और जब मुक्त हुए हों तब पुरुष हो गए हों। इसलिए मेरा मतलब समझ लेना। यानी यह पूरा का पूरा फिजिकल ट्रांसफार्मेशन भी संभव है।
ऐसा अभी रामकृष्ण के वक्त में हुआ कि रामकृष्ण ने सारी साधनाएं कीं, जितनी साधनाएं थीं। और सब मार्गों से जाना चाहा, और देखना चाहा कि यह मार्ग ले जा सकता है कि नहीं! तो उन्होंने ईसाइयों की, सूफियों की, वैष्णवों की, भक्तिमार्गियों की, योगियों की, हठयोगियों की, सब तरह की साधनाएं कीं। उसमें उन्होंने एक सखी-संप्रदाय की भी साधना की, जिसमें व्यक्ति अपने को कृष्ण की स्त्री मान लेता है, परिपूर्ण भाव से, सखी हो जाता है, गोपी बन जाता है--पुरुष भी हो, तो भी। वह रात कृष्ण की मूर्ति लेकर साथ सोता है--पति की तरह, पत्नी होकर।
तो रामकृष्ण तो समग्रभाव से स्वीकार कर लिए, और कुछ महीनों तक वे स्त्री का भाव और कामना किए। बड़ी अदभुत घटना घटी। घटना यह घटी कि रामकृष्ण के उस साधना के काल में आवाज बदल गई, और स्त्री की आवाज हो गई! चाल बदल गई! वे फिर पुरुष जैसे न चल सकते थे, वे स्त्रियों जैसे चलने लगे! उनके स्तन उभर आए। और तब घबड़ाहट हुई कि कहीं उनका पूरा शरीर तो रूपांतरित नहीं हो जाएगा, कहीं उनका पूरा का पूरा लैंगिक रूपांतरण न हो जाए! और उन्हें रोका उनके मित्रों ने, भक्तों ने। लेकिन वे तो जा चुके थे, वे कहते थे, कैसा पुरुष? कौन पुरुष? कौन रामकृष्ण? वह तो अब नहीं रहा।
साधना पूरी हो जाने पर भी छह महीने तक उन पर स्त्री के चिह्न रहे। छह महीने तक उनको देख कर लोग बड़े हैरान हो जाते थे कि इनको क्या हो गया, यह क्या हो गया? अगर यह संभव है, तो फिर कोई अगर उन दिनों में उनको देखा हो तो लिख सकता है, वे स्त्री थे।
अब मेरा अपना जानना ऐसा है कि वह व्यक्ति स्त्री ही रही होगी, जब वह साधना के जगत में प्रविष्ट हुई। लेकिन जो साधना चुनी, वह पुरुष की साधना है। और उस साधना ने पूरा का पूरा रूपांतरण किया होगा। न केवल व्यक्तित्व, बल्कि देह भी। और अब तो हम जानते हैं वैज्ञानिक ढंग से भी कि देह बदल सकती है, तीव्र मनोभावों से देह बदल सकती है। और पूर्ण मनोभाव से तो पूरी देह

बदल सकती है। तो जिन्होंने तथ्य पकड़ा होगा, उन्होंने देखा होगा कि स्त्री थी। तो स्त्री रही उनकी किताब में। और जिन्होंने रूपांतरण देखा होगा, उनके लिए पुरुष हो गई।
तथ्य को एकदम से अंधे की तरह पकड़ लेना खतरनाक है। सत्य पर नजर होनी चाहिए, तथ्य रोज बदल जाते हैं। यह तथ्य है कि आप पुरुष हैं या स्त्री हैं, यह सत्य नहीं है। सत्य वह है, जो नहीं बदलता। पुरुष स्त्री हो सकते हैं, स्त्रियां पुरुष हो सकती हैं। और बहुत गहरे में कोई आदमी अलग-अलग नहीं होता, स्त्री भी होती है भीतर, पुरुष भी होता है भीतर, मात्रा में फर्क होता है। जिसको हम पुरुष कहते हैं, वह साठ प्रतिशत पुरुष, तो चालीस प्रतिशत स्त्री होता है। जिसको हम स्त्री कहते हैं, तो वह साठ प्रतिशत स्त्री और चालीस प्रतिशत पुरुष होती है।
यह मात्रा बहुत कम भी हो सकती है। यह बहुत सीमांत पर भी हो सकती है। यह इक्यावन प्रतिशत जैसी स्थिति में भी हो सकती है। और तब जरा सा फर्क चित्त का, और रूपांतरण हो जाएगा। दो प्रतिशत की बदलाहट और पूरा व्यक्तित्व बदल जाएगा।
लेकिन मनुष्य-जाति को हमेशा बाधा पड़ी है इस बात से कि वह तथ्यों को बिल्कुल अंधे की तरह जकड़ कर पकड़ लेता है। और तथ्य बड़ा झूठ बोल सकते हैं। महावीर के संबंध में भी जो बातें कही जाती हैं... अब जैसे एक वर्ग मानता है कि वे वस्त्र पहने हुए हैं--चाहे वह देवताओं का दिया हुआ वस्त्र हो, चाहे वह आंखों से न दिखाई पड़ने वाला वस्त्र हो--लेकिन वे वस्त्र पहने हुए हैं, नग्न नहीं हैं। और एक वर्ग मानता है कि वे बिल्कुल नग्न हैं। वस्त्र उन्होंने छोड़ दिए हैं। किसी तरह का वस्त्र उनकी देह पर नहीं है। और ये दोनों बातें एक साथ सच हैं।
यह बिल्कुल सच है कि महावीर ने वस्त्र छोड़ दिए हैं, वे बिल्कुल नग्न
हो गए हैं। लेकिन उनकी नग्नता भी ऐसी है कि उसे ढांकने के लिए और वस्त्रों की जरूरत नहीं है, वह खुद ही वस्त्र है।
अब इसे थोड़ा समझना जरूरी होगा। एक आदमी इस भांति वस्त्र पहन सकता है
कि नंगा हो। एक आदमी इस भांति के वस्त्र पहन सकता है कि नग्नता को प्रकट करे। यानी वस्त्र ढांकें न, उघाड़ें। सच तो यह है कि नंगा शरीर इतना नंगा नहीं होता, जितना वस्त्र उसे नंगा कर सकते हैं।
जानवरों को देख कर हमें शायद ही ख्याल आता हो कि वे नंगे हैं। लेकिन आदमी और स्त्रियां इस तरह के वस्त्र पहन सकते हैं कि उनके वस्त्र पहनने से तत्काल ख्याल आए उनके नंगेपन का। और आदमी ने ऐसे वस्त्र विकसित कर लिए हैं कि वे उसके शरीर को उघाड़ते हैं, ढांकते नहीं। जो वस्त्र ढांकता है, उसे कौन पसंद करता है? जो वस्त्र उघाड़ता है! हां, इतना उघाड़ता है कि और उघाड़ने की इच्छा जगे। इतना नहीं उघाड़ देता कि उघाड़ने की इच्छा मिट जाए। उघाड़ता है और उघाड़ने की इच्छा जगाता है। तो ऐसा व्यक्ति वस्त्र पहने हुए भी नंगा है। ठीक इससे उलटा भी हो सकता है, कि एक व्यक्ति नंगा खड़ा हो गया है और इतना उघाड़ा हो गया है कि उघाड़ने को भी कुछ नहीं बचा। उघाड़ने की कोई इच्छा भी नहीं है उसको। उघड़े हुए होने की कोई कामना भी नहीं है। कोई उघाड़ कर देखे, यह आमंत्रण भी नहीं है। तो उसकी नग्नता भी वस्त्र बन जाए। जब कोई वस्त्रों में नंगा हो सकता है, तो कोई नग्नता में वस्त्रों में क्यों नहीं हो सकता है?
महावीर बिल्कुल नग्न थे, लेकिन उनकी नग्नता किसी को भी नग्नता जैसी नहीं लगी है। इसलिए यह स्वाभाविक था यह कहानी का बन जाना कि जरूर वे कोई ऐसे वस्त्र पहने हुए हैं जो दिखाई नहीं पड़ते, जो देवताओं के दिए हैं, देवदूत से हैं। देवताओं ने ऐसे वस्त्र दे दिए हैं उनको, जो दिखाई भी नहीं पड़ते और फिर भी उनकी नग्नता नहीं मालूम पड़ती। तो कहीं कुछ अदृश्य वस्त्र उनको छिपाए हुए हैं। यह धारणा पैदा हो जानी बिल्कुल स्वाभाविक थी।
पर महावीर निपट नग्न हैं। असल में निपट नग्न आदमी ही नग्नता से मुक्त
हो सकता है। वस्त्रों में ढंके हुए आदमी का नग्नता से मुक्त होना बड़ा मुश्किल है, बड़ा कठिन है। क्योंकि वस्त्रों में जिसे वह ढांकता है, वह उसकी ढांकने की चेतना स्पष्ट है। और जिसे हम ढांकते हैं सचेतन, वह उघड़ जाता है। जिसे हम चेतन रूप से ढांकते हैं, हमारी चेतना, हमारी कांशसनेस उस

अंग को उघड़ा हुआ अंग बना देती है। क्योंकि जब हम चेतन होकर उसे ढांकते हैं, तो चेतन होकर दूसरा उसे उघड़ा हुआ देखना चाहता है।
सिर्फ नग्न आदमी ही नंगेपन से मुक्त हो सकता है। अब यह बड़ी उलटी बात मालूम पड़ेगी। वस्त्र से ढंका हुआ आदमी कैसे नंगेपन से मुक्त होगा? कहीं न कहीं, कहीं न कहीं, कहीं न कहीं--कठिन है वह। संभव है, क्योंकि बुद्ध या क्राइस्ट कपड़े पहने हुए हैं। संभव तो है, लेकिन बहुत कठिन है, एकदम कठिन है।
संभव इसलिए है कि जब मैं वस्त्र पहनता हूं तो मैं दो कारणों से पहन सकता हूं। कारण मेरे आंतरिक हो सकते हैं, कि कुछ है, जो मैं छिपाना चाहता हूं; कुछ है, जो मैं नहीं दिखाना चाहता; या कुछ है, जो मैं भयभीत हूं कि दिख न जाए। कारण मेरे आंतरिक हो सकते हैं वस्त्र पहनने में। कारण मेरे एकदम बाह्य भी हो सकते हैं कि अकारण तुम्हें वह क्यों देखना पड़े, जो तुम नहीं देखना चाहते हो। तब मुझसे कोई प्रयोजन नहीं रह गया वस्त्रों का। तब एक अर्थ में मैं वस्त्र नहीं पहने हुए हूं, तुम्हें मैंने वस्त्र पहना दिए। ये बुद्ध या क्राइस्ट जैसे लोग, जो वस्त्र पहने हुए हैं, ये भी नग्न होने की उतनी ही हैसियत रखते हैं, जितनी महावीर। इनके भीतर कुछ छिपाने को नहीं है। लेकिन हो सकता है दूसरा नग्नता न देखना चाहे, तो दूसरे पर आक्रमण भी क्यों करना! तो दूसरे की आंख पर उन्होंने वस्त्र डाला हुआ है, अपने शरीर पर नहीं। और दूसरे की आंख पर भी वस्त्र डालने का सबसे सरल उपाय यही है कि अपने शरीर पर डाल दो।
क्योंकि मैंने सुना है कि जब सबसे पहले जमीन पर कांटों ने तकलीफ दी,
तो एक सम्राट ने बुद्धिमान लोगों को बुला कर पूछा कि क्या करें? कैसे बचें?
तो बुद्धिमानों ने कहा कि एक काम करें, सारी पृथ्वी को चमड़े से ढंक दें। इसलिए कि हम चमड़े पर चलें और कांटे न गड़ें। सम्राट ने कहा, इतना चमड़ा कहां से लाओगे? पृथ्वी बहुत बड़ी है।
बड़ी मुश्किल में पड़ गए बुद्धिमान लोग। बहुत सोचा। बुद्धिमानों को बड़ी चीजें जल्दी सूझ जाती हैं, छोटी चीजों से चूक जाते हैं। तब राजा के एक नौकर ने कहा कि आप भी कैसी पागलपन की बातों में पड़े हैं! और ये इतने-इतने बड़े बुद्धिमान होकर बैठ कर सोच रहे हैं। मैं तो बोलता नहीं इस डर से कि मैं गंवार और कैसे बोलूं! लेकिन यह पागलपन की बात है, अपने पैर को क्यों नहीं चमड़े से ढंका जा सकता! अपने पैर को चमड़े से ढंक लें, सारी पृथ्वी पर चमड़ा है। आप जहां जाओगे वहां चमड़ा होगा। इस पंचायत में क्यों पड़ते हैं आप कि सारी पृथ्वी को ढंकें!
तो आपकी आंख पर वस्त्र डालने की सबसे तरकीब अच्छी, बेहतर यही है कि अपने शरीर पर वस्त्र डाल लो। और क्या उपाय सरल हो सकता है! सबकी आंख पर डालने जाओ तो बहुत बड़ी पृथ्वी है और बड़ी मुश्किल पड़ जाए। तो कुछ लोग इसलिए वस्त्र पहन सकते हैं कि वे आपकी आंख पर वस्त्र डाल देना चाहते हैं, क्योंकि अभी आपकी आंख नग्न को देखने की हिम्मत नहीं जुटा सकती।
लेकिन यह कठिन है। महावीर की नग्नता पर इसीलिए दो मत खड़े हो गए। महावीर निश्चित ही नग्न हैं। इसमें कोई दूसरा विकल्प नहीं है। लेकिन बहुत लोगों को महावीर अत्यंत वस्त्र वाले मालूम पड़े होंगे।
मेरे एक मित्र हैं, वे विंध्य प्रदेश के शिक्षा मंत्री थे। एक अमरीकन मूर्तिकार खजुराहो देखने आया। तो भारतीय सरकार ने उन मेरे मित्र को लिखा कि आप विशेष रूप से ले जाएं मूर्तिकार को--वे विंध्य प्रदेश के मंत्री थे-- तो उन्हें ठीक से खजुराहो दिखाएं। वे मेरे मित्र बड़े परेशान हुए। वे खजुराहो के पास के ही रहने वाले हैं, निकट दस-बीस मील दूर रहते हैं। खजुराहो को बचपन से जानते हैं। वे बहुत भयभीत हुए कि वह अमरीकन मूर्तिकार क्या विचार लेकर जाएगा! और वह सिर्फ खजुराहो देख कर सीधा वापस लौट जाने को है। सीधा दिल्ली से खजुराहो, और वापस। तो वह भारतीय संस्कृति के संबंध में क्या सोचेगा कि ऐसे मंदिर! और ऐसी नग्न मूर्तियां! ऐसे अश्लील दृश्य!
तो वे बहुत डरे हुए हैं, बड़े भयभीत हैं और बड़ी तैयारी करके गए हैं कि
यह जवाब दूंगा, यह जवाब दूंगा, यह जवाब दूंगा, वह पूछेगा तो इस तरह समझाएंगे। बता देंगे कि यह कोई भारतीय-धारा की मूल शाखा नहीं है, यह

किनारे से कुछ विक्षिप्त लोगों की, कुछ पागलों की, कुछ नासमझों की, कुछ भोगियों की, कुछ तांत्रिकों की, वाममार्गियों की--ये मंदिर हैं। यह मंदिर कोई ऐसा मंदिर नहीं है कि भारत का मंदिर है। भारत का मंदिर ही नहीं है एक अर्थों में यह।
और भारत के जो, भारत के मन की जो मूल धारा है, वह तो यही कहती है--टंडन कहते थे, पुरुषोत्तमदास टंडन, कि उसको मिट्टी से ढांक दो खजुराहो को, उसको उघाड़ो ही मत! गांधीजी तक राजी थे कि उसको ढंकवा दो! वह तो अगर रवींद्रनाथ बीच में न कूद पड़ते तो वह तो ढंक ही जाता मंदिर। तो मूल धारा तो गांधी और पुरुषोत्तमदास टंडन की ही है। वे ही ठीक कह रहे हैं।
तो वे सब समझ-बूझ कर गए हैं, बड़ी तैयारी करके गए हैं। लेकिन वह आदमी कुछ पूछता ही नहीं। एक-एक मूर्ति गुजरती जाती है, एकदम नग्न मूर्तियां, एकदम मैथुन चित्र। और वे तैयारी में जुटे हैं कि वह पूछे, लेकिन वह कुछ पूछता ही नहीं। वह मंत्रमुग्ध देखता है, आगे बढ़ जाता है। वह पूरे मंदिर में घूम कर निकल आया। वह सीढ़ियां उतर आया, वह गाड़ी में चढ़ने लगा। उसने कुछ कहा ही नहीं कि अश्लील हैं, कि भद्दी हैं, वह तो ऐसा भावविभोर है कि कहीं और खो गया है।
लेकिन मित्र ने कहा कि फिर भी वह ख्याल तो ले ही जाएगा--न कहे, शायद शिष्टता, शिष्टाचार के कारण न कहता होगा। तो उन्होंने कहा, सुनिए, आप यह मत सोचिए कि ये अश्लील मूर्तियां कोई भारत की प्रतीक हैं।
उसने कहा, अश्लील! तो मुझे फिर से देखना पड़ेगा। क्योंकि इतनी सुंदर मूर्तियां मैंने कभी देखी नहीं। तो उनके सौंदर्य से मैं ऐसा अभिभूत हो गया कि मैं नहीं देख पाया कि वे अश्लील भी थीं। फिर मुझे वापस ले चलो, अब मैं गौर से देखूंगा कि अश्लील वे कहां हैं? क्योंकि मैं तो अभिभूत था। इतना अभिभूत था उनके सौंदर्य से, उनकी लयबद्धता से, और उनके चेहरों पर प्रकट ज्योति से कि मैं नहीं देख पाया कि वे नंगी हैं। मित्र तो बहुत घबड़ाए कि मूर्तियां नंगी हैं, आप नहीं देख पाए!
हो सकता है, महावीर के पास बहुत लोग आए होंगे, और महावीर के चेहरे में ऐसे डूब गए होंगे, और महावीर की आंखों में, कि हो सकता है लौट गए हों और पता न चला हो कि महावीर नंगे थे। क्योंकि मनुष्य में हमें वही दिखाई पड़ता है, जो उसमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। अगर किसी व्यक्ति में तुम्हें उसका सेक्स दिखाई पड़ता है, तो वह उसमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण है, तो दिखाई पड़ता है। अगर उससे बड़ी घटनाएं उसके जीवन में घट गई हों, और उससे बड़ी रोशनी उसमें निकलने लगी हो... ।
तो हो सकता है, सैकड़ों लोग महावीर को देख कर गए हों, और उन्होंने गांव में खबर जाकर की हो कि कौन कहता कि महावीर नंगे हैं? फिर से देखना पड़ेगा। जरूर कोई अदृश्य वस्त्र उन्हें घेरे हैं। ख्याल तो आता है कि कुछ नंगे थे, देह पर कुछ था नहीं, लेकिन फिर भी नंगे थे, ऐसा दिखाई नहीं पड़ा। ऐसी चोट नहीं हुई कि नंगे हैं। कोई अदृश्य वस्त्र उन्हें घेरे होंगे। कोई देवताओं के वस्त्र उन्हें घेरे हैं, कि वे नग्न हैं और फिर भी नग्न नहीं मालूम पड़ते, नग्नता छिपी है। और तब कहानियां बनती हैं। और तब तथ्य टूटते चले जाते हैं और सत्य देखना मुश्किल हो जाता है।
ये सब बातें इसलिए कह रहा हूं कि हमारे मस्तिष्क में एक बात बहुत साफ
हो जाए कि तथ्यों पर जोर सिर्फ नासमझ देते हैं, समझदार का जोर सदा सत्य पर है। और सत्य कुछ ऐसी चीज है कि तथ्य के भीतर से आप देख सकते हैं, लेकिन तथ्य को पकड़ लें तो कभी नहीं देख सकते। फिर आप वहीं रुक जाते हैं। दरवाजा इस कमरे के भीतर लाता है, लेकिन छोड़ दें तो! और दरवाजे को पकड़ लें तो? तो आप द्वार पर रह जाते हैं, आप कमरे के भीतर नहीं आते।
तथ्य के सब द्वार सत्य में जाते हैं, लेकिन जो तथ्य को पकड़ लेता है, वह वहीं अटक कर रह जाता है। और द्वार मकान नहीं है, सिर्फ मकान में आने की खाली जगह है। तथ्य सत्य नहीं है, सिर्फ ओपनिंग है, जहां से आप जा सकते हैं। लेकिन अगर वहीं रुक गए, तो सदा के लिए अटक सकते हैं। और हमारी आंखें तथ्यों को ही देखती हैं।
असल में मैं पदार्थवादी उसको कहता हूं, जो तथ्यों को ही देखता है।
मेरी दृष्टि में मैटीरियलिज्म का और कोई मतलब नहीं है--जो तथ्यों को ही

देखता है। जो कहता है, इतना रहा तथ्य, बाकी सब फिक्शन है, यह फैक्ट है। तथ्य को गिन लेता है और जोड़ बना लेता है और कहता है, इसके आगे कुछ भी नहीं। लेकिन मजे की बात यह है कि तथ्य सत्य की सबसे बाहरी परिधि है, सबसे बाहरी परकोटा है। जो भी है, उसके भीतर है। और जितने हम भीतर जाएंगे, उतना तथ्य छूटता चला जाएगा, और सत्य निकट आता जाएगा।
और इसीलिए सत्य को कहने की भाषा तथ्य की नहीं हो पाती। इसलिए सत्य को कहने के लिए नई भाषा खोजनी पड़ती है, जो मिथ की है। सत्य को तथ्य की भाषा में नहीं कहा जा सकता। कहें तो इतिहास बन जाता है।
अब जैसे कि बड़े मजे की बात है, महावीर कभी बूढ़े नहीं हुए! न कोई और दूसरा तीर्थंकर कभी बूढ़ा हुआ! न बुद्ध कभी बूढ़े हुए, न राम, न कृष्ण! इनकी कोई बुढ़ापे की मूर्ति आपने देखी कि ये बूढ़े हो गए हों? यह क्या मामला है? क्या ये लोग जवान ही रह गए? जवानी के आगे नहीं गए? गए तो जरूर होंगे। यह तो असंभव है कि न गए हों। तथ्य तो यही होगा कि महावीर को बूढ़ा होना पड़ेगा। बूढ़े हुए ही होंगे। जब मरना पड़ता है तो बूढ़ा होना पड़ेगा।
लेकिन सत्य यह कहता है कि वह आदमी कभी बूढ़ा नहीं हुआ होगा। जो उसने पा लिया है, वह इतना युवा है, वह इतना सदा जीवन है कि वहां कैसा बुढ़ापा! तो जिन लोगों ने तथ्य पर जोर दिया होता, वे महावीर को बूढ़ा अंकन भी करते। लेकिन सत्य पर जिन्होंने आंख रखी है, तो फिर मिथ बनानी पड़ी कि महावीर कभी बूढ़े नहीं होते। वे कभी बूढ़े ही नहीं होते।
अब कभी आपने ख्याल किया कि ये कोई भी कभी बूढ़े नहीं हुए? यह युवा होने की, यह संभावना कहां है? तथ्य में तो नहीं है, इतिहास में तो नहीं है, लेकिन मिथ में है।
और इसलिए मैं कहता हूं, इतिहास से ज्यादा गहरा घुस जाती है माइथॉलाजी। उसकी पकड़ ज्यादा गहरी है। क्योंकि वह उन सत्यों को--लेकिन उनको कहने के लिए उसे फैक्ट छोड़ देने पड़ते हैं, और फिक्शन और कहानी गढ़नी पड़ती है। तो वह कहेगी कि नहीं-नहीं, कृष्ण कभी बूढ़े नहीं होते। बच्चे होते हैं, जवान होते हैं, बस फिर ठहर जाते हैं। फिर बूढ़े नहीं होते।
असल में जो चित्त सदा नया है, और जो चित्त सत्य को जान गया है, वह कैसे वृद्ध होगा? वह कैसे क्षीण होगा? वह क्षीण होता ही नहीं। वह सदा के लिए उस हरियाली को पा गया, जो अब कभी नहीं मिटती। इसलिए युवा होने तक तो यात्रा है उसकी। यानी जब तक कि वह सत्य पाकर युवा नहीं हो गया, तब तक तो वह होता है। बच्चा होता है, पैदा होता है, बड़ा होता है। लेकिन युवा जैसे हो जाता है, जैसे वह पहुंच गया उस बिंदु पर जहां सत्य पा लिया जाता है--जो सदा जवान है, जो कभी बूढ़ा नहीं होता--वैसे ही फिर उसकी यात्रा शरीर की रुक जाती है।
शरीर की तो नहीं रुकती, शरीर तो बूढ़ा होगा और मरेगा, लेकिन हम उस तथ्य
को इनकार कर देते हैं। हम कहते हैं, वह तथ्य गौण है, उसका कोई मतलब नहीं है।
वह आदमी भीतर जवान है, वह जवान ही रह गया, वह अब कभी बूढ़ा नहीं होता।
इसीलिए बहुत से इन अदभुत लोगों की मृत्यु का कोई उल्लेख नहीं है।
मृत्यु का ही उल्लेख नहीं है कि वे मरे कब। और वह उल्लेख इसीलिए नहीं है कि जन्म तक तो बात ठीक है, मरना उनका होता नहीं। तथ्य में तो वे मरे हैं।
इसलिए जैसे-जैसे दुनिया ज्यादा तथ्यगत होती गई, वैसे-वैसे हमारे पास रिकार्ड उपलब्ध होने लगा। जैसे महावीर का रिकार्ड है हमारे पास कि वे कब मरे, लेकिन ऋषभ का नहीं है रिकार्ड उपलब्ध। दुनिया और भी मिथ के ज्यादा करीब थी। अभी लोग तथ्य पर जोर ही नहीं दे रहे थे।
राम का कोई रिकार्ड नहीं है वे कब मरे। इसका कारण यह नहीं है कि वे न मरे होंगे। जिन्होंने सारी जिंदगी की कहानी लिख दी, वे इस एक बात को भर चूक गए! जो कि बड़ी भारी घटना रही होगी मरने की! यानी जन्म का सब ब्यौरा लिखते हैं, बचपन का ब्यौरा लिखते हैं--शादी है, विवाह है, लड़ाई है, झगड़ा है--सब है। सब आता है, सब जाता है, सिर्फ एक बात चूक जाते हैं कि यह आदमी मरा कब!
नहीं, मिथ उसको इनकार कर देती है। वह कहती है, ऐसा आदमी मरता नहीं, ऐसा आदमी परम जीवन को उपलब्ध हो जाता है, इसलिए मृत्यु की बात ही मत लिखो।
इसलिए इस मुल्क में हम जन्म-दिन मनाते हैं, पश्चिम में मृत्यु-दिन।
पश्चिम में जो मरने का दिन है, वह बड़ी कीमत रखता है। पूरब में जो जन्म का दिन है, वह बड़ी कीमत रखता है। और उसका कारण है।

उसका कारण है कि हम जन्म को स्वीकार करते हैं, हम मृत्यु को इनकार ही
कर देते हैं। पश्चिम में जन्म जितना स्वीकृत है, मृत्यु उससे ज्यादा स्वीकृत है। क्योंकि जन्म तो पहले हो चुका, मृत्यु तो बाद में हुई है। जो बाद में हुआ है, ज्यादा ताजा है, ज्यादा कीमती है।
हम जन्म-दिन की ही बात किए चले जाते हैं। और उसका कारण है कि हम जन्म
को तो मानते हैं--बर्थ है, मृत्यु नहीं है। जीवन है, मृत्यु नहीं है।
ये सारे तथ्य अगर तथ्य की तरह पकड़े जाएं, तो मुश्किल हो जाती है। लेकिन अगर हम इनकी गहराई में उतर जाएं और इनके मिथ की जो कोड लैंग्वेज है, जो गुप्त भाषा है उसे खोल दें, तो बड़े रहस्य के पर्दे उठने लगते हैं।
जैसे अब गांधी की हमने मरण-तिथि मनानी शुरू की है, वह पश्चिम की नकल है। अगर महावीर जैसे व्यक्ति का हम मृत्यु-दिन मनाते भी हैं, तो भी उसे मृत्यु-दिवस नहीं कहते, उसे निर्वाण-दिवस कहते हैं। मरता नहीं है वह, सिर्फ निर्वाण को उपलब्ध हो जाता है। उसको भी मृत्यु-दिवस नहीं कहते हैं। उसको भी कहेंगे निर्वाण-दिवस। मरता नहीं है, और परम जीवन में चला जाता है। निर्वाण-दिवस का मतलब हुआ कि छोटे जीवन से और बड़े जीवन में चला जाता है। लेकिन इधर जिन लोगों ने तथ्यों पर बहुत सी व्यर्थ की बातों में उलझा दिया है कि जिसका हिसाब लगाना मुश्किल है। और उनके समक्ष वे लोग जो निरंतर सत्य पर जोर देते हैं, आज इस तरह हारे हुए खड़े हैं कि उसे भी समझना बड़ा बेबूझ है। और वे हारे इसलिए खड़े हुए हैं कि वे खुद ही तथ्य से अनुगत हो गए हैं, वे खुद ही तथ्य से हार गए हैं, और उनको भी लग रहा है कि कोई बड़ी भूल-चूक हो गई है, कि तथ्य का हिसाब नहीं रहा, यह बड़ी भूल-चूक हो गई।
मेरी दृष्टि में, तथ्यों का क्या मूल्य है? अगर वे सत्यों को बता पाएं
तो ठीक, अन्यथा कोई भी मूल्य नहीं है। शाश्वत की तरफ उनसे इशारा हो जाए तो ठीक, अन्यथा कोई भी मूल्य नहीं है। मील के पत्थर हैं, जो हमें कहते हैं और आगे चले जाओ। लेकिन कुछ नासमझ मील के पत्थरों को पकड़ कर रुक जाते हैं। मील के पत्थरों का क्या मूल्य है, सिवाय इसके कि वे कहें और आगे, और आगे, और आगे! तथ्य भी मील के पत्थर हैं--सत्य की यात्रा में।
और इसलिए, अगर महावीर के जीवन की प्रारंभिक सारी घटनाओं को उनकी गहराई में, उनकी खोल को छोड़ कर, उनके इसेंस में और सार में पकड़ लिया जाए, तो ही महावीर का उदघाटन होगा। और तो ही हम बाद में, महावीर क्या हो पाते हैं, कैसे हो पाते हैं, उसको हम समझ पाएंगे। उसको समझने की दृष्टि मिल सकती है।

महावीर: मेरी दृष्टि में चौथा प्रवचन

संयम नहीं--महावीर-विवेक

प्रश्नः आपके कल के प्रवचन में एक बात विशेष नई थी, वह यह कि तीर्थंकर पहले जन्म में ही कृतकृत्य हो चुके होते हैं और करुणावश संसार में दुबारा आते हैं। अगर ऐसा है तो महावीर को इस जन्म में जिसकी हम चर्चा कर रहे हैं, इसके बाद अगले जन्म में भी करुणावश आने से क्या चीज रोक पाई? यूं तो फिर आते ही रहना चाहिए था। और जो वापस करुणावश आते हैं तो क्या वे अपनी मर्जी से आते हैं कि यह भी आटोमैटिक होता है?

यह बात बहुत महत्वपूर्ण है। मेरी दृष्टि में, जिसके जीवन का कार्य पूरा हो चुका है, वह ज्यादा से ज्यादा एक ही बार वापस लौट सकता है। और वापस लौटने का कारण है। जैसे कोई आदमी साइकिल चलाता हो, पैडल चलाना बंद कर दे, तो पिछले मोमेंटम से साइकिल थोड़ी देर बिना पैडल चलाए आगे जा सकती है, लेकिन बहुत देर तक नहीं। तो जैसे एक व्यक्ति के जीवन-कार्य पूरे हो चुके तो उसके अनंत जीवन की वासनाओं ने जो मोमेंटम दिया है, जो गति दी है, वह ज्यादा से ज्यादा सौ वर्षों तक, ज्यादा से ज्यादा, उसे एक बार और लौटने का अवसर दे सकती है, उससे ज्यादा नहीं। जैसे पैडल बंद कर दिए हैं तो भी साइकिल थोड़ी दूर तक चलती जा सकती है, लेकिन बहुत दूर तक नहीं।
और यह भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के साथ भिन्न-भिन्न समय की अवधि होगी। क्योंकि पिछले जीवन की कितनी गति और कितनी शक्ति चलने की शेष रह गई है, वह प्रत्येक की अलग-अलग होगी। इसलिए बहुत बार ऐसा भी हो सकता है कि कोई करुणा से लौटना चाहे और न लौट सके।
तो इसलिए महीपाल जी जो दूसरा प्रश्न पूछते हैं वह भी विचारणीय है, ‘क्या वे अपनी मर्जी से लौटते हैं?’
लौटते तो वे अपनी मर्जी से हैं। लेकिन ऐसा जरूरी नहीं है कि सिर्फ मर्जी से ही लौट आएं। अगर थोड़ी शक्ति शेष रह गई है तो मर्जी सार्थक हो जाएगी। और अगर शक्ति शेष नहीं रह गई है तो मर्जी निरर्थक हो जाएगी। उस स्थिति में करुणा दूसरे रूप ले सकती है, लेकिन लौट नहीं सकते हैं वे।
और यह भी समझ लेना उचित है, जैसे मैंने कहा कि साइकिल चलाते वक्त पैडल बंद हो जाएं, जिस दिन वासना क्षीण हो गई, उस दिन पैडल चलने बंद हो गए। लेकिन चाक थोड़ी दूर और चल जाएंगे--अपनी ही मर्जी से। अगर वह व्यक्ति साइकिल से नीचे उतर जाना चाहे तो उसे कोई रोकने वाला नहीं है, वह अपनी ही मर्जी से अब भी बैठा हुआ है, पैडल चलाने बंद कर दिए हैं, वासना क्षीण हो गई है। लेकिन अब भी देह के वाहन का वह उपयोग करता है। तो थोड़ी दूर तक। लेकिन ऐसा भी हो सकता है कि अब देह के वाहन को चलाने की कोई शक्ति शेष ही न बची हो।
तो अक्सर इसीलिए ऐसा हो जाता है कि इस तरह की आत्माओं के दूसरे जन्मों
का जीवन अति क्षीण होता है। शंकराचार्य जैसे व्यक्ति, जो कि तीस-पैंतीस साल ही जी पाते हैं, उसका और कोई कारण नहीं है, मोमेंटम बहुत कम है। अक्सर ऐसा होता है कि इस तरह की आत्माओं का जीवन अत्यल्प होता है, जैसे जीसस क्राइस्ट, अत्यल्प जीवन मालूम होता है। यह जो अत्यल्प जीवन है, वह इसी कारण है, और कोई कारण नहीं है। मोमेंटम ही इतना है।
अपनी ही मर्जी से लौट सकते हैं, न लौटना चाहें तो कोई लौटाने वाला नहीं है। लेकिन लौटना चाहें तो अगर शक्ति शेष है तो ही लौट सकते हैं।
फिर मैंने कहा कि लेकिन करुणा से कोई नहीं रोक सकता है। शरीर नहीं उपलब्ध होगा, तब दोहरी बातें हो सकती हैं। या तो वैसा व्यक्ति किसी दूसरे के शरीर का उपयोग करे, जैसा कि मक्खली गोशाल ने किया।
यह भी संदर्भ में महावीर के है, इसलिए समझ लेना उचित है। कहानियां कहती हैं कि मक्खली गोशाल बहुत वर्षों तक महावीर के साथ रहा, फिर उसने साथ छोड़ दिया। फिर वह महावीर के विरोध में स्वतंत्र विचारक की हैसियत से खड़ा हुआ। लेकिन जब महावीर ने शिष्यों को कहा कि मक्खली गोशाल तो मेरा शिष्य रह चुका है, मेरे साथ रहा है, तो उसने स्पष्ट इनकार किया। उसने कहाः वह मक्खली

गोशाल जो आपके साथ था, मर चुका है। यह तो मैं बिल्कुल ही एक दूसरी आत्मा उसके शरीर का उपयोग कर रही हूं। मैं वह व्यक्ति नहीं हूं।
यह बात साधारणतया महावीर के अनुयायी समझते रहे हैं कि झूठ है, लेकिन
यह झूठ नहीं है। यह बात बिल्कुल ही सच है। मक्खली गोशाल नाम का जो आदमी महावीर के साथ रहा था, वह अति साधारण व्यक्ति था। किन्हीं कारणों से असमय में उसकी मृत्यु हुई और उसकी देह का उपयोग एक दूसरी स्वतंत्र चेतना ने किया, जो तीर्थंकर की ही हैसियत की थी। लेकिन अपना शरीर उपलब्ध करने में असमर्थ थी, तो उसने मक्खली गोशाल के शरीर का उपयोग किया। और इसीलिए इस व्यक्ति का, जो अब यह नया व्यक्ति बना पुराने शरीर में, मक्खली गोशाल, इसका महावीर से कोई मेल नहीं हो सका। यह एक बिल्कुल स्वतंत्र चेतना थी, जिसका अलग अपना काम था और वह अपना काम किया उसने। और इसलिए मक्खली गोशाल भी तीर्थंकर होने का एक दावेदार था।
उस युग में अकेले महावीर या बुद्ध ही नहीं थे, मक्खली गोशाल था, अजित केशकंबल था, संजय वेलट्ठीपुत्त था, प्रबुद्ध कात्यायन था, पूर्ण काश्यप था--ये सबके सब तीर्थंकर की हैसियत के लोग थे। लेकिन सब अलग-अलग परंपराओं के तीर्थंकर थे। उसमें से सिर्फ दो की परंपराएं पीछे शेष रह गईं--एक महावीर की और एक बुद्ध की। बाकी सब परंपराएं खो गईं।
तो एक रास्ता तो यह है कि वैसा व्यक्ति प्रतीक्षा करे असमय में किसी
के शरीर के छूट जाने की और उसमें प्रवेश कर जाए। अब उसकी शरीर ग्रहण करने की कोई उसमें शक्ति नहीं है। तो एक तो उपाय यह है। यह भी कई बार प्रयोग किया गया है। दूसरा उपाय यह है कि वह व्यक्ति अशरीरी रह कर थोड़े से संबंध स्थापित करे और अपनी करुणा का उपयोग करे। उसका भी उपयोग किया गया है, कि कुछ चेतनाओं ने अशरीरी हालत से संदेश भेजे हैं, संबंध स्थापित किए हैं। और जो कल-परसों बात छूट गई थी थोड़ी, जो मैंने कहा कि मूर्तियों का सबसे पहले प्रयोग पूजा के लिए नहीं किया गया है। उसकी तो पूरी साइंस है। मूर्ति का सबसे पहले प्रयोग अशरीरी आत्माओं से संपर्क स्थापित करने के लिए किया गया है।
जैसे महावीर की मूर्ति है। इस मूर्ति पर अगर कोई बहुत देर तक चित्त एकाग्र करे और फिर आंख बंद कर ले तो मूर्ति का निगेटिव आंख में रह जाएगा। जैसे कि हम दरवाजे पर बहुत देर तक देखते रहें, फिर आंख बंद कर लें, तो दरवाजे का एक निगेटिव, जैसा कि कैमरे की फिल्म पर रह जाता है, वैसा दरवाजे का निगेटिव आंख पर रह जाएगा। और उस निगेटिव पर भी ध्यान अगर केंद्रित किया जाए तो उसके बड़े गहरे परिणाम हैं।
तो महावीर की मूर्ति या बुद्ध की मूर्ति का जो पहला प्रयोग है, वह उन लोगों ने किया है, जो अशरीरी आत्माओं से संबंध स्थापित करना चाहते हैं। तो महावीर की मूर्ति पर अगर ध्यान एकाग्र किया और फिर आंख बंद कर ली और निरंतर के अभ्यास से निगेटिव स्पष्ट बनने लगा तो वह जो निगेटिव है, महावीर की अशरीरी आत्मा से संबंधित होने का मार्ग बन जाता है। और उस द्वार से अशरीरी आत्माएं भी संपर्क स्थापित कर सकती हैं। यह अनंत काल तक हो सकता है। इसमें कोई बाधा नहीं है।
तो मूर्ति पूजा के लिए नहीं है, एक डिवाइस है। और बड़ी गहरी डिवाइस है, जिसके माध्यम से जिनके शरीर खो गए हैं और जो शरीर ग्रहण नहीं कर सकते हैं, उनमें एक खिड़की खोली जा सकती है, उनसे संबंध स्थापित किया जा सकता है। तो फिर रास्ता यह है कि अशरीरी आत्माओं से कोई संबंध खोजा जा सके। अशरीरी आत्माएं भी संबंध खोजने की कोशिश करती हैं।
तो करुणा फिर यह मार्ग ले सकती है। और आज भी जगत में ऐसी चेतनाएं हैं,
जो इन मार्गों का उपयोग कर रही हैं। थियोसाफी का सारा का सारा जो विकास हुआ, वह अशरीरी आत्माओं के द्वारा भेजे गए संदेशों पर निर्भर है। थियोसाफी का पूरा केंद्र इस जगत में पहली दफा बहुत व्यवस्थित रूप से-- ब्लावट्स्की, अल्काट, एनीबीसेंट, लीडबीटर--इन चार लोगों ने पहली दफे अशरीरी आत्माओं से संदेश उपलब्ध करने की अदभुत चेष्टा की है। और जो संदेश उपलब्ध हुए हैं, वे बहुत हैरानी के हैं।
संदेश तो कभी भी उपलब्ध हो सकते हैं, क्योंकि अशरीरी चेतना कभी भी नहीं खोती। लेकिन तब तक आसानी है उस अशरीरी चेतना से संबंध स्थापित करने

की, जब तक करुणावश वह भी संबंध स्थापित करने को उत्सुक है। धीरे-धीरे करुणा भी क्षीण हो जाती है। करुणा अंतिम वासना है। है वासना ही। सब वासनाएं जब क्षीण हो जाती हैं तो करुणा ही शेष रह जाती है। लेकिन अंततः करुणा भी क्षीण हो जाती है।
इसलिए पुराने शिक्षक, पुराने मास्टर्स, धीरे-धीरे खो जाते हैं। करुणा
भी जब क्षीण हो जाती है, तब उनसे संबंध स्थापित करना अति कठिन हो जाता है। उनकी करुणा शेष रहे तब तक संबंध स्थापित करना सरल है, क्योंकि वे भी आतुर हैं। लेकिन जब उनकी करुणा क्षीण हो गई, अंतिम वासना गिर गई, तब फिर संबंध स्थापित करना निरंतर मुश्किल होता चला जाता है। जैसे कुछ शिक्षकों से अब संबंध स्थापित करना करीब-करीब मुश्किल हो गया है।
महावीर से संबंध स्थापित करना अब भी संभव है। लेकिन उसके पहले के तेईस तीर्थंकरों से किसी से भी संबंध स्थापित नहीं किया जा सकता। और इसीलिए महावीर कीमती हो गए और तेईस एकदम से गैर-कीमती हो गए। उसका बहुत बुनियादी जो कारण है, वह यह है कि अब उन तेईस से कोई संबंध स्थापित नहीं किया जा सकता है--किसी तरह का भी।

प्रश्नः तो इसका अर्थ यह हुआ कि यह जो मोक्ष कहलाता है, जहां आत्मा चली गई है और सारे जगत में लीन हो गई है, फिर उस आत्मा से कैसे संबंध स्थापित हो?

हूं-हूं, इसको थोड़ा समझना पड़ेगा। इसे थोड़ा समझना पड़ेगा। यह मैं पूरी बात कर लूं, फिर आपको कहूं।
तेईस तीर्थंकर इसीलिए एकदम गैर-ऐतिहासिक हो गए मालूम पड़ते हैं। उनके गैर-ऐतिहासिक हो जाने का और कोई कारण नहीं है, वे बिल्कुल ऐतिहासिक व्यक्ति थे। लेकिन आध्यात्मिक लोक में उनके अंतिम संबंध का सूत्र भी क्षीण हो जाने के कारण अब उनसे लौट कर कोई संबंध स्थापित नहीं किया जा सकता।
महावीर से अभी भी संबंध स्थापित हो सकता है। और इसलिए महावीर अंतिम होते हुए सर्वाधिक महत्वपूर्ण हो गए--उस धारा में। बुद्ध से अभी भी संबंध स्थापित किया जा सकता है। जीसस से अभी भी संबंध स्थापित किया जा सकता है। कृष्ण से अभी भी संबंध स्थापित किया जा सकता है। हमें पच्चीस सौ वर्ष बहुत लंबे मालूम पड़ते हैं, क्योंकि हमारा कालमान बहुत छोटा है। शरीर से छूट जाने पर पच्चीस सौ वर्ष ऐसे हैं, जैसे क्षण गुजरा हो। मोहम्मद से अभी भी संबंध स्थापित हो सकता है।
इसलिए जिन परंपराओं के शिक्षकों से अभी संबंध स्थापित हो सकता है, वे परंपराएं फैलती-फूलती हैं। जिन परंपराओं के शिक्षकों से अब कोई संबंध स्थापित नहीं हो सकता, वे एकदम सूख कर नष्ट हो जाती हैं, क्योंकि उनका मूल स्रोत से संबंध ही टूट जाता है। और इसीलिए नए शिक्षक जीतते हुए मालूम पड़ते हैं, पुराने शिक्षक हारते हुए मालूम पड़ते हैं।
अब यह बड़ी हैरानी की बात है कि महावीर से पहले तेईसवें तीर्थंकर को ज्यादा वक्त नहीं हुआ, ढाई सौ वर्ष का ही फासला है, लेकिन उस तीर्थंकर से भी संबंध स्थापित करना मुश्किल हो गया था। इसलिए उस तीर्थंकर के निकट जीने वाले को भी महावीर के पास आ जाना पड़ा। लेकिन एक बुनियादी विरोध भीतर छूट गया, जिसने पीछे परंपरा को दो खंडों में तोड़ने में हाथ बंटाया। क्योंकि मूलतः वे शिक्षक पार्श्व से संबंधित थे, और उनका प्रेम, और उनका समर्पण और उनका द्वार पार्श्व के प्रति खुला था। लेकिन, चूंकि पार्श्व खो गए बहुत जल्दी और उनसे कोई संबंध स्थापित करना संभव न हुआ, इसीलिए महावीर के पास वे आए। लेकिन उनका मन, उनका ढंग, उनका व्यक्तित्व पार्श्व के अनुकूल था। इसलिए दो धाराएं फौरन टूटनी शुरू हो गईं। वे आ गए पास, लेकिन भेद थे।
और इसलिए किसी ने पूछा है कि एक ही समय में दो तीर्थंकर क्यों नहीं होते?
उसका कोई कारण नहीं है। उसका--एक परंपरा में एक ही समय में दो तीर्थंकर नहीं होते, उसका कुल कारण इतना है कि अगर एक तीर्थंकर काम कर रहा

है उस परंपरा का, तो दूसरा तत्काल विलीन हो जाता है, उसकी कोई जरूरत नहीं होती। जैसे एक ही कक्षा में एक ही समय में दो शिक्षक की कोई जरूरत नहीं होती। बेमानी है, एकदम बेमानी है, मीनिंगलेस है। उससे सिर्फ बाधा ही पैदा होगी और कुछ भी न होगा। एक उपद्रव ही होगा कि एक ही कक्षा में दो-चार शिक्षक एक ही पीरियड में उपस्थित हो जाएं। तो उसकी वजह से सिर्फ कन्फ्यूजन फैलेगा। एक शिक्षक पर्याप्त होता है। इसलिए एक शिक्षक अगर काम कर रहा है तो दूसरा शिक्षक अगर होने की स्थिति में भी है तो विलीन हो जाता है। उसकी कोई जरूरत नहीं होती।
करुणा पीछे भी काम कर सकती है और पीछे भी संबंध स्थापित किए जा सकते हैं।
तिब्बत चीन के हाथ में चले जाने से जो बड़े से बड़ा नुकसान हुआ है, वह भौतिक अर्थों में नहीं नापा जा सकता। वह सबसे बड़ा नुकसान यह हुआ है कि बुद्ध से तिब्बत के लामाओं का प्रतिवर्ष एक दिन निकट संपर्क स्थापित होता रहा था। वह परंपरा को घात पहुंच गया।
प्रतिवर्ष बुद्ध पूर्णिमा के दिन पांच सौ विशिष्ट भिक्षु और लामा एक विशेष पर्वत पर, मानसरोवर के निकट, उपस्थित होते रहे थे। यह अत्यंत सीक्रेट, अत्यंत गुप्त व्यवस्था थी। और ठीक पूर्णिमा की रात, ठीक समय पर, बुद्ध का साक्षात्कार पांच सौ व्यक्तियों को निरंतर हजारों वर्षों से होता रहा था। और इसलिए तिब्बत का बौद्ध भिक्षु जितना जीवंत और जितना गहरा था, उतना दुनिया का कोई बौद्ध भिक्षु नहीं था। क्योंकि और किसी के जीवित संपर्क नहीं थे बुद्ध से। एक वर्ष की शर्त पूरी होती रही थी निरंतर--वह बुद्ध पूर्णिमा के दिन। और यह इन दिनों को मनाने का भी कारण यह है कि उन दिनों पर संपर्क आसानी से स्थापित हो सकता है। वे दिन उस चेतना की स्मृति में भी महत्वपूर्ण दिन हैं। और उन महत्वपूर्ण दिनों पर वह ज्यादा करुणा विगलित हो सकती है और वह भी आतुर हो सकती है कि किसी प्यासे से संबंधित हो जाए।
तो ऐसा नहीं कि ठीक पांच सौ भिक्षुओं के समक्ष बुद्ध अपने पूरे रूप में ही प्रकट होते रहे थे। यह भी संभव है। क्योंकि हमारा यह शरीर गिर जाता है, इससे ही ऐसा मत मान लेना कि हमारे सब शरीर की होने की संभावना गिर जाती है। सूक्ष्म शरीर कभी भी रूप-आकार ले सकता है। और अगर बहुत से लोग आकांक्षा करें तो सूक्ष्म शरीर के रूप-आकार ले लेने में कठिनाई नहीं है। ऐसा होगा सूक्ष्म शरीर कि अगर तलवार उसमें से निकालो तो तलवार निकल जाएगी, कुछ कटेगा नहीं। अत्यंत सूक्ष्म अणुओं का बना हुआ शरीर होगा। मनो- अणुओं का ही कहना चाहिए, साइकिक एटम्स का।
अब तक विज्ञान तो पहुंच सका है जिन अणुओं पर वे मैटीरियल एटम्स हैं, भूत-अणु हैं। लेकिन जिन्होंने और आंतरिक जीवन में खोज की है, वे उन अणुओं की भी खबर दिए हैं, जिनको साइकिक एटम्स कहना चाहिए, मनो-अणु। मनो-अणुओं की भी एक देह है, मनो-काया भी है एक, मेंटल-बॉडी जैसी चीज भी है।
तो अगर बहुत लोग आकांक्षा करें और एकाग्र-चित्त होकर प्रार्थना करें
और करुणा शेष रह गई हो किसी चेतना में, अब शरीर नहीं पकड़ सकती है जो, तो वह मनो-देह में प्रकट हो सकती है।
सब मूर्तियां बहुत गहरे में उस मनो-देह को प्रकट करने की एक उपाय मात्र हैं। सब प्रार्थनाएं, सब आकांक्षाएं उस चेतना को विगलित करने के उपाय मात्र हैं कि उससे किसी तरह का संबंध स्थापित हो सके। और यह बहुत इसोटेरिक टेक्नीक्स की बात है।
तो इसलिए मंदिर-मस्जिद में जो सब हो रहा है, वह है तो सब कचरा जो हो रहा
है अब, लेकिन जो व्यवस्था है पीछे वह बड़ी अर्थपूर्ण है। और उस अर्थपूर्ण व्यवस्था का उपयोग जो जानते हैं, वे करते ही रहे हैं और आज भी करते हैं। क्षीण होती जाती है निरंतर वह संभावना, क्योंकि वे हमें ख्याल ही मिटते जाते हैं कि हम क्या करें।
ऐसा ही है जैसे कि समझें कि तीसरा महायुद्ध हो जाए, दुनिया खतम हो जाए, कुछ लोग बच जाएं और हमारा यह बिजली का पंखा उनको मिल जाए। तो वे अतीत के संस्मरण की तरह इसे रखे रहें कि पता नहीं यह किस काम का था। लेकिन उन्हें कुछ भी समझ में न आ सके कि यह हवा भी करता रहा होगा। क्योंकि न उनके पास

बिजली का ज्ञान रह जाए, न उनके पास प्लग का ज्ञान रह जाए, न इस पंखे की आंतरिक व्यवस्था को समझने की उनकी अक्ल रह जाए।
तो हो सकता है, वे अपने म्यूजियम में इस पंखे को रख लें। तार को रख लें। रेल के इंजन को संभाल कर रख लें। और हो सकता है कि पूजा भी करने लगें अतीत के रेलिक्स, अतीत के स्मरणों की तरह। लेकिन उन्हें कोई पता न होगा कि यह रेल का इंजन हजारों लोगों को खींच कर भी ले जाता रहा होगा, क्योंकि न पटरियां बचें, न इंजीनियरिंग के शास्त्र बचें, न कोई खबर देने वाला बचे कि कैसे चलता होगा, कैसे क्या होता होगा। क्योंकि कोई भी व्यवस्था हजारों विशेषज्ञों पर निर्भर करती है।
हो भी सकता है कि एक आदमी ऐसा बच जाए जो कहे कि मैं रेल में बैठा था, और
यह इंजन जो था, रेल के डिब्बे खींचने का काम करता था। लेकिन लोग उससे कहें कि तुम चला कर बता दो, तो वह कहे कि मैं सिर्फ बैठा था, मैं चला कर नहीं बता सकता हूं। बाकी इतना मुझे पक्का स्मरण है कि मैं इस गाड़ी में बैठा था, इसमें हजारों लोग बैठते थे और यह गाड़ी एक गांव से दूसरे गांव जाती थी। लेकिन मैं चला कर नहीं बता सकता, मैं बैठा था, इतना पक्का है। और यह बैठने वाला चिल्लाता रहे और किताबें भी लिखे कि यह रेल का इंजन है, इसमें लोग बैठते थे, चलाते थे। लेकिन कोई इसकी सुनेगा नहीं, क्योंकि यह चला कर नहीं बता सकेगा।
तो हर दिशा में--बाह्य या आंतरिक--हजारों उपाय खोजे जाते हैं। लेकिन कभी-कभी आमूल सभ्यताएं नष्ट हो जाती हैं, खो जाती हैं अंधकार में। और खो जाती हैं अगर उनके विशेषज्ञ खो जाएं। हजार कारण होते हैं खो जाने के।
आज मंदिर और मस्जिद बचे हुए हैं; तंत्र, यंत्र, मंत्र, सब बचे हुए हैं बहुत-बहुत रूपों में। लेकिन कुछ उनका मतलब नहीं है। क्योंकि उनसे क्या हो सकता था, इसका कुछ पता नहीं है; वह कैसे हो सकता था, इसका भी कुछ पता नहीं है। और तब जैसे रेल के इंजन की पूजा करे कोई जाति आगे भविष्य में, ऐसा हम मंदिरों में मूर्तियों की पूजा कर रहे हैं।
हां, कुछ लोगों को स्मृति रह गई थी कि कुछ होता था, उनके पीछे वालों को
भी वे कह गए हैं कि कुछ होता था, वे आज भी मंदिरों के घेरे में उनकी सुरक्षा के लिए खड़े हुए हैं। लेकिन उनके पास कुछ भी बताने को नहीं है कि क्या होता था, क्या हो सकता था। वे करके कुछ भी नहीं बता सकते।
चेतनाएं जैसे ही मुक्त होती हैं, मुक्ति के पहले सारी वासनाएं समाप्त
हो जाती हैं। इसे थोड़ा ठीक से समझ लेना चाहिए। मुक्ति होती ही उस चेतना की है, जिसकी सारी वासनाएं समाप्त हो गईं।
लेकिन अगर सारी वासनाएं समाप्त हो जाएं तो अमुक्त स्थिति और मुक्त स्थिति के बीच सेतु क्या होगा? दोनों को जोड़ता कौन होगा? तो वह तो आत्मा अपने को पहचान ही न सकेगी, क्योंकि उसने अपने को वासना में ही जाना था। और अगर सारी वासनाएं एक क्षण में समाप्त हो जाएं और दूसरे क्षण कोई वासना न रह जाए तो वह आत्मा अपने को पहचान ही नहीं सकेगी कि मैं वही हूं।
इसलिए जब सारी वासनाएं समाप्त हो जाती हैं, तब सिर्फ सेतु की तरह एक वासना शेष रह जाती है, जिसको मैं करुणा कह रहा हूं--कंपैशन शेष रह जाता है। यही उसका पुराने जगत से एकमात्र सूत्र होता है, ब्रिज होता है। अमुक्त आत्मा और मुक्त आत्मा के बीच जो एक सेतु है, वह करुणा का है। लेकिन अंततः सेतु के पार हो जाता है सब और करुणा भी चली जाती है।
तो तीर्थंकर का होना करुणा की वासना से होता है। और एक जन्म से ज्यादा असंभव है इस मोमेंटम में जाना, इस गति में जाना। इसलिए एक जन्म से ज्यादा नहीं हो सकते हैं। और जैसा मैंने कहा कि सभी ज्ञानियों को ऐसा हो जाता है, ऐसा भी नहीं है।
इसलिए महावीर की स्थिति में अनेक लोग पहुंचते हैं, लेकिन सभी तीर्थंकर नहीं हो जाते। क्योंकि मुक्ति का आकर्षण इतना तीव्र है, मुक्ति का आनंद इतना तीव्र है कि बहुत बलशाली लोग ही वापस लौट सकते हैं, एक जन्म के लिए ही सही। और ये बलशाली लोग एक जन्म में लौट कर इतना इंतजाम कर जाते हैं, पूरा इंतजाम कर जाते हैं, यानी उनके लौटने का प्रयोजन ही यह होता है असल में कि वे पूरा इंतजाम कर जाते हैं कि जब वे शरीर ग्रहण नहीं कर

सकेंगे, तब उनसे कैसे संबंध स्थापित किया जा सकेगा। अब इसकी बहुत व्यवस्था है।
इसलिए... जैसे समझ लें कि एक पिता है, उसके छोटे-छोटे बच्चे हैं और वह लंबी यात्रा पर जा रहा है, जहां से वह कभी नहीं लौटेगा। तो वह अपने बच्चों के लिए इंतजाम कर जाता है सब तरह का। उन्हें कह जाता है कि इस-इस पते पर चिट्ठी लिखना तो मुझे मिल जाएगी। वह घर में अपना एक चित्र भी छोड़ जाता है कि जब तुम बड़े हो जाओ तो तुम पहचानना कि मैं ऐसा था।
वह उन बच्चों के लिए स्मृति भी छोड़ जाता है कि तुम जब बड़े हो जाओ तो जो मैं तुमसे कहना चाहता था, वह इसमें लिखा है, वह तुम समझ लेना। और जब भी मुझसे संबंध स्थापित करना चाहो तो यह मेरा फोन नंबर होगा। इस विशेष फोन नंबर पर तुम मुझसे संपर्क स्थापित कर सकोगे। मैं नहीं लौट सकूंगा अब। अब लौटना असंभव है।
तो प्रत्येक करुणापूर्ण शिक्षक, एक बार लौट कर सारा इंतजाम कर जाता
है कि पीछे उससे कैसे संबंध स्थापित किए जा सकेंगे। जब शरीर खो जाएगा तो उसका कोड नंबर क्या होगा, जिस विशेष मनःस्थिति में जिस मनस-विशेष कोड नंबर पर उससे संपर्क स्थापित हो जाएगा।
सारे धर्मों के विशेष मंत्र कोड नंबर हैं। जिन मंत्रों के निरंतर उच्चारण से ध्यानपूर्वक, चित्त एक विशेष ट्यूनिंग को उपलब्ध होता है और उस ट्यूनिंग में विशेष शिक्षकों से संबंध स्थापित हो सकते हैं। वे बिल्कुल कोड नंबर हैं, वे बिल्कुल टेलीफोनिक नंबर हैं कि चित्त अगर उसी ध्वनि में अपने को गतिमान करे तो एक विशिष्ट ट्यूनिंग पर उपलब्ध हो जाता है। और वह कोड नंबर किसी एक शिक्षक का ही है, वह दूसरे के लिए काम में नहीं आ सकता। दूसरे के लिए वह उपयोगी नहीं है। और इसीलिए इन कोड नंबरों को अत्यंत गुप्त रखने की व्यवस्था की गई। इसलिए चुपचाप अत्यंत गुप्तता में ही वे दिए जाते हैं।
संबंध स्थापित हो सके, इसलिए बहुत उपाय छोड़ जाते हैं, चिह्न छोड़ जाते हैं, मूर्तियां छोड़ जाते हैं, शब्द छोड़ जाते हैं, मंत्र छोड़ जाते हैं, विशेष आकृतियां, जिनको तंत्र कहें, वे छोड़ जाते हैं। यंत्र छोड़ जाते हैं, जिन आकृतियों पर चित्त एकाग्र करने से विशिष्ट दशा उपलब्ध होगी चित्त की, उस दशा में उनसे संबंध स्थापित हो सकेगा।
लेकिन वह सब खो जाता है। और धीरे-धीरे, धीरे-धीरे उनसे संपर्क स्थापित होना बंद होता चला जाता है। तो जब उनसे पूरा संपर्क टूट जाता है, तब उनके पास कोई उपाय नहीं रह जाता। और तब वैसे शिक्षक धीरे-धीरे खो जाते हैं, विलीन हो जाते हैं।
ऐसे अनंत शिक्षक मनुष्य-जाति में पैदा हुए हैं। सभी शिक्षकों का अपना काम था, वह उन्होंने पूरा किया और पूरी मेहनत भी की है। कुछ जीवंत परंपराएं हैं, जिनमें कि वह चलता है। जैसे कि तिब्बत का लामा है--दलाई लामा है। बड़ी अदभुत बात है, लेकिन बड़ी कीमत की है।
जब एक दलाई लामा मरता है तो वह सब चिह्न छोड़ जाता है कि मेरा अगला जन्म
जो होगा, उसमें तुम मुझे कैसे पहचान सकोगे। वह सारे चिह्न छोड़ जाता है। मेरा अगला जन्म होगा तो तुम मुझे कैसे पहचान सकोगे, ये-ये मेरे चिह्न होंगे। और ये सवाल तुम मुझसे पूछना तो ये जवाब मैं तुम्हें दूंगा। तब तुम पक्का मान लेना कि मैं वही आदमी हूं। नहीं तो तुम पहचानोगे कैसे, तुम मानोगे कैसे कि मैं वही हूं!
तो पिछला दलाई लामा मरा था, जो अभी दलाई लामा है इसका पहला गुरु जब मरा--यह वही आत्मा है--तो वह चिह्न छोड़ कर गया था कि पूरे तिब्बत में खोज-बीन करना इतने वर्षों के बाद और जो लड़का इन चीजों का यह जवाब दे दे समझना कि वह मैं हूं। और वे बातें अत्यंत गुप्त हैं, वे सीलबंद मुहर उत्तर हैं उनके, वह कोई खबर किसी को मिल नहीं सकती।
फिर सारे तिब्बत में खोज शुरू हुई। और सारे तिब्बत में सैकड़ों-हजारों बच्चों से पूछे गए वही सवाल, लेकिन कोई बच्चा कैसे जवाब देता! इस बच्चे ने सब जवाब दे दिए। तो स्वीकृत कर लिया गया कि वह पुरानी आत्मा उसमें उतर आई है। और तब उसको फिर जगह पर बिठा दिया गया। सिर्फ शरीर नया हो गया, आत्मा वही है।

शिक्षक यह भी करते रहे ताकि वे अनंत जन्मों तक निरंतर उपयोगी हो सकें। जब खो जाएं वे जन्मों से, तब भी वे उपयोगी हो सकें, इसकी भी व्यवस्था करते रहे।
तो एक जन्म से ज्यादा तो नहीं हो सकता यह। लेकिन जन्म बंद हो जाने के बाद बहुत समय तक संबंध स्थापित रह सकते हैं। संबंध स्थापित रहने के दो सूत्र रहेंगेः उस शिक्षक की करुणा की वासना शेष रह गई हो जितनी दूर तक और जितने दूर तक उससे संबंध होने के सूत्र साफ और स्मरण में रह गए हों। इसीलिए जैसा मैंने कल कहा कि तीन-चार सौ, पांच सौ, छह सौ वर्ष तक तो जरूरत नहीं पड़ती है लिखने की कि क्या कहा था, क्योंकि बार-बार संबंध स्थापित करके जांच की जा सकती है कि यही कहा था कि नहीं कहा था। लेकिन जब वे सूत्र क्षीण होने लगते हैं और संबंध स्थापित करना मुश्किल होने लगता है, तब लिखने की बारी आती है।
इसलिए पुराना कोई भी महत्वपूर्ण ग्रंथ सैकड़ों वर्षों तक नहीं लिखा गया, क्योंकि तब तक वे सूत्र थे जिनसे कि संबंध जोड़ कर हम पूछ सकते थे, जान सकते थे कि यही कहा है, यही कहा था? तो लिखने की कोई जरूरत न थी। लेकिन जब संबंध क्षीण होने लगे और वे अंतिम शिक्षक मरने लगे जिनका संबंध हो सकता था, तो फिर उनसे कहा कि अब लिख दिया जाए। अब पूरी बात लिख दी जाए।
जैसे कि सिक्खों के मामले में हुआ। दसवें गुरु के बाद कोई व्यक्ति नजर नहीं आया जो कि ग्यारहवां गुरु हो सकेगा। तो जरूरी हुआ कि ग्रंथ लिख दिया जाए, क्योंकि अब संभावना नहीं है कि कांटैक्ट हो सकेगा। बाकी दस गुरु की जो उनकी परंपरा है, उसमें निरंतर संपर्क स्थापित है। इसलिए वह नानक से टूटती नहीं है। उसमें कोई कठिनाई नहीं पड़ती है। नानक निरंतर उपलब्ध हैं, संबंध जोड़ा जा सकता है। गद्दी पर बिठालने की जो बात थी, वह बात धीरे-धीरे पीछे तो बड़ी स्वार्थ की बात हो गई, लेकिन बड़ी अर्थ की थी। बहुत अर्थ की थी। लेकिन हम सभी अर्थ की बातों को व्यर्थ कर सकते हैं।
अब जैसे कि शंकराचार्य की गद्दियों पर जो शंकराचार्य बैठे हैं, उन्हें कुछ भी पता नहीं, कुछ भी मतलब नहीं। अब उनका गद्दी पर बैठना बिल्कुल पोलिटिकल इलेक्शन जैसा मामला है। लेकिन प्राथमिक रूप से शंकराचार्य अपनी जगह उस आदमी को बिठाल गया है, जिससे वह संबंध स्थापित रख सकेगा। और कोई मतलब नहीं है उसका। अपनी जगह उस आदमी को बिठाल दिया जा रहा है, जिससे कि अब वह संबंध स्थापित रख सकेगा। मर कर भी वह मरेगा नहीं इस जगत में। उसका एक संबंध-सूत्र कायम रहेगा। एक व्यक्ति मौजूद रहेगा, जिससे कि वह काम जारी रखेगा। और उस व्यक्ति को वह कह कर जाएगा, समझा कर जाएगा कि वह कैसे व्यक्ति को चुन कर बिठा देगा, ताकि इस व्यक्ति के खो जाने पर भी संबंध-सूत्र जारी रहेगा।
पर वे संबंध-सूत्र खतम हो गए। अब शंकराचार्य से किसी शंकराचार्य का कोई संबंध-सूत्र नहीं है, कांटैक्ट टूट गया। इसलिए अब सब फिजूल बात हो गई। अब उसमें कोई मूल्य नहीं रह गया। अब वह मामला सिर्फ धन-संपत्ति, पद-प्रतिष्ठा का है कि कौन आदमी बैठे।
तो झगड़े हैं, अदालत में मुकदमे भी चलते हैं और सब निर्णय अदालत करती
है कि कौन आदमी हकदार है, गद्दी का हकदार कौन है!
यह निर्णय करने की बात ही नहीं है। यह प्रश्न ही नहीं है निर्णय करने का। क्योंकि यह निर्णय कौन करेगा? यह निर्णय पुराना शिक्षक कर सकता था, पिछला शिक्षक कर सकता था। और तब कई बार ऐसा हुआ है कि बिल्कुल ऐसे लोगों के हाथ में गद्दी सौंप दी गई है, जिनके बाबत किसी को कोई ख्याल ही न था।
एक शिक्षक मर रहा था चीन में। पांच सौ उसके भिक्षु थे। उसने खबर भेजी
कि जो भी भिक्षु चार पंक्तियों में मेरे दरवाजे पर आकर लिख जाए धर्म का सार, उसको मैं अपनी जगह बिठा जाऊंगा, क्योंकि मेरा वक्त विदा का आ गया, अब मैं जाता हूं। तो पांच सौ थे, बड़े ज्ञानी पंडित थे उसमें। और सबको पता था कि कौन जीतेगा, क्योंकि सबसे बड़ा जो पंडित था, वही जीतेगा। उस पंडित ने जाकर द्वार पर लिख दिया है शिक्षक के धर्म को चार सूत्रों में। लिख दिया है कि मनुष्य की आत्मा एक दर्पण की भांति है, उस पर विकार की, विचार की धूल जम जाती है, उस धूल को पोंछ डालने का जो साधन है, वह धर्म है। मनुष्य की

आत्मा दर्पण की भांति है, उस पर विकार की, विचार की धूल जम जाती है, उसे पोंछ डालने का जो साधन है, वह धर्म है।
सारे लोग पढ़ गए हैं और सबने कहा कि अदभुत है, बात तो पूरी हो गई। और तो कुछ होता ही नहीं आत्मा में, सिर्फ धूल जम जाती है, उसको सिर्फ झाड़ देने का... । लेकिन गुरु सुबह उठा है, बूढ़ा गुरु अस्सी वर्ष का, उसने देखा। उसने कहा कि यह किस नासमझ ने दीवाल खराब की है, उसको पकड़ कर लाया जाए इसी वक्त! तो वह पंडित तो एकदम भाग गया। वह इसलिए भाग गया कि उसने कहा कि वह तो गुरु पकड़ लेगा फौरन, क्योंकि यह तो सब किताबों से पढ़ कर उसने लिखा था। सारे आश्रम में चर्चा हुई कि... वह दस्तखत भी नहीं कर गया था नीचे इसी डर से कि अगर गुरु पसंद करेगा तो कह दूंगा जाकर कि मैंने लिखा है, अगर वह नापसंद करेगा तो झंझट के बाहर हो जाएंगे। सारे आश्रम में चर्चा चल पड़ी कि क्या हो गया, इतने अदभुत वचन!
तो एक आदमी आज से कोई बारह साल पहले आया था और बारह साल पहले इस बुड्ढे
के पैर को पकड़ कर उसने कहा था कि संन्यासी होना है मुझे। तो इस बूढ़े आदमी ने पूछा था कि तुझे संन्यासी दिखना है या कि होना है? तो इसने कहा था, दिख कर क्या करेंगे? और दिखना होता तो आपसे पूछने की क्या जरूरत थी? हम दिख जाते। होना है!
तो उसने कहा, तो होना फिर बहुत मुश्किल है। होना है तो फिर एक काम कर। आश्रम में पांच सौ भिक्षु हैं, उनका जो चौका है, जहां चावल बनता है, खाना बनता है, तू चावल कूटने का काम कर। और अब दुबारा मेरे पास मत आना। आना ही मत। जरूरत होगी तो मैं तेरे पास आऊंगा। न किसी से बात करना, न किसी से चीत करना, न कपड़े बदलना, चुपचाप जैसा तू है उस आश्रम के चौके के पीछे चावल कूटने का काम कर। और दुबारा आना मत भूल कर अब मेरे पास। जरूरत होगी तो मैं आ जाऊंगा, नहीं जरूरत होगी तो बात खतम हो गई है।
वह युवक बारह साल पहले से आश्रम के पीछे जाकर चावल कूटता रहा था। लोग धीरे-धीरे उसको भूल ही गए थे, क्योंकि वह और कोई काम ही नहीं करता था। वह आश्रम के पीछे चावल कूटता रहता था। न किसी से बोलता था। सुबह उठता था, चावल कूटता था; शाम थक जाता था, सो जाता था। बारह साल हो गए थे। न कभी गुरु उसके पास गया, न कभी वह दुबारा पूछने आया।
आज सारे आश्रम में एक ही चर्चा थी, तो भोजनालय में भी भिक्षु वही चर्चा कर रहे थे। वह चावल कूट रहा था। उसके पास से दो-तीन भिक्षु चर्चा करते निकले कि बड़ी हद्द कर दी गुरु ने, इतने सुंदर वचनों को, इतने श्रेष्ठ वचनों को कह दिया कचरा हैं। तो वह चावल कूटने वाला जो बारह साल से चुपचाप चावल कूटता था... लोग उसको भूल ही गए थे, उसके पास से भी निकलते थे तो कौन ध्यान देता था! फिर वे सब बड़े भिक्षु थे, ज्ञानी थे। वह साधारण चावल कूटने वाला था। तो चावल कूटते-कूटते वह भी हंसने लगा। तो उन भिक्षुओं ने रुक कर उसको देखा कि तुम भी हंसते हो! किस बात से हंसते हो? तो उसने कहा कि ठीक ही गुरु ने कहा, क्या कचरा लिखा है। तो उन्होंने कहा कि अरे, तू एक चावल कूटने वाला, बारह साल से सिवाय चावल तूने कुछ और कूटा नहीं, और तू भी वक्तव्य दे रहा है इस पर! तो तुझको पता है कि धर्म क्या है?
उसने कहा, मुझे पता तो है, लेकिन लिखना भूल गया हूं। पता तो मुझे हो गया है, लेकिन लिखना भूल गया है, लिखें कैसे? और धर्म क्या लिखा जा सकता है! इसलिए मैं अपना चावल ही कूटता रहता हूं। खबर तो मुझको भी मिल गई थी कि वह दरवाजे पर लिखने के लिए कहा है, लेकिन एक तो यह कि कौन गद्दी की झंझट में पड़े! और दूसरा यह कि लिखें कैसे?
तो उन भिक्षुओं ने कहा कि अच्छा--वह सिर्फ मजाक में उसको, कि चलो अब यह भी, इसको भी ले चलो--हम लिख देंगे, तू बोल दे। तो उसने कहा कि यह हो सकता है। धर्म के साथ अक्सर यह हुआ है, बोला किसी ने, लिखा किसी ने। यह हो सकता है, क्योंकि हम जिम्मेवार न रहे। हमसे कोई न कह सकेगा कि तुमने लिखा। हम सिर्फ बोले।
चल कर उसने कहा कि मैं बोल देता हूं। उसने बोल दिया और उन भिक्षुओं ने दीवाल पर लिख दिया। वह जो चार पंक्तियां लिखी थीं, जो काट दी थीं गुरु ने, उसके बगल में उसने दूसरी चार पंक्तियां लिखीं। उसने कहा, कौन कहता है कि आत्मा दर्पण की भांति है! जो दर्पण की भांति है, उस पर तो धूल जम ही जाएगी।

आत्मा का कोई दर्पण ही नहीं है, धूल जमेगी कहां? जो इस सत्य को जान लेता है वह धर्म को उपलब्ध हो जाता है।
गुरु भागा हुआ आया और उसको पकड़ लिया और कहा कि तू भाग मत जाना, क्योंकि ऐसे लोग निकल कर भाग जाते हैं। तूने ठीक बात लिख दी। उसने कहा, लेकिन मुझसे गलती हो गई। मैं अपना चावल ही कूटना चाहता हूं। मैं किसी का गुरु वगैरह नहीं होना चाहता।
लेकिन उसके गुरु ने कहा कि तेरे बिना कोई चारा नहीं। तुझसे मेरा संबंध हो सकेगा पीछे भी। उसको अपनी गद्दी दे गया और उसने कहा कि मैं जानता था--उसके बूढ़े गुरु ने कहा कि मैं जानता था--अगर कोई लिख सकेगा तो वह एक चावल कूटने वाला है, जो बारह साल से लौटा नहीं है, चावल ही कूट रहा है। और जिसने इतनी शिकायत भी नहीं की एक बार कि गुरु अब तक नहीं आया, मर जाएंगे तब आएगा क्या? तो मैं जानता था कि उसको मिल ही गया है, इसलिए नहीं लौटा।
तो उसने कहा कि सब मिल गया था। इसलिए आपके आने की प्रतीक्षा भी न थी, आने की जरूरत भी न थी। क्योंकि चावल कूटता रहा, कूटता रहा, कूटता रहा। कुछ दिन तक विचार चले पुराने, क्योंकि नए विचार का कोई उपाय ही न था; न किसी से बात करता, न कुछ पढ़ता। चावल ही कूटता। अब चावल कूटने से विचार कहीं पैदा होते हैं! तो धीरे-धीरे सब विचार मर गए, चावल कूटना ही रह गया। जब सब विचार मर गए और सिर्फ चावल कूटना रह गया तो मैं इतने तेजी से जागा, जिसका कोई हिसाब न था। सारी चेतना मुक्त हो गई।
यह जो खो गया शिक्षक है, वह करुणावश कुछ रास्ते तो छोड़ जाता है पीछे। लेकिन सभी चीजें क्षीण हो जाती हैं। और सभी संपर्क-सूत्र शिथिल पड़ जाते हैं और खो जाते हैं।

प्रश्नः एक दूसरी आपने जो बात कही वह भी कुछ विचित्र लगी। आपने उपवास
की जो तुलना दी थी--भोजन कर लिया पर भोजन न करे के समान, विवाह कर लिया पर विवाह न करे के समान। इतना तक समझ में आया, पर संतान उत्पत्ति कर दी और संतान उत्पत्ति न करे के समान! मैथुन किया पर न करे के समान! वह प्रक्रिया तो ऐसी नजर आती है कि बिना वासना और तृष्णा के हो ही न पाए शायद।

नहीं, सवाल तो एक ही है सदा। अगर बिना वासना और तृष्णा के भोजन हो सके
तो मैथुन क्यों नहीं? सवाल क्या किया, यह नहीं है। सवाल कैसे किया, यही है। अगर किसी भी क्रिया को करते समय पीछे साक्षी खड़ा है और देख रहा है तो कोई भी क्रिया बंधनकारी नहीं है। भोजन करते समय अगर साक्षी पीछे देख रहा है कि भोजन किया जा रहा है और मैं अलग खड़ा हूं तो भोजन सिर्फ शरीर में जा रहा है। पीछे अछूता कोई खड़ा है, जिसको कुछ भी नहीं छू सकता, जो सिर्फ द्रष्टा है भोजन किए जाने का।
अब ध्यान रखें, भोजन शरीर में जा रहा है और मैथुन में शरीर से कुछ बाहर
जा रहा है। उसका भी साक्षी हुआ जा सकता है। साक्षी तो किसी भी क्रिया का हुआ जा सकता है, चाहे वह अंतर्गामी हो चाहे बहिर्गामी। असल में जो भोजन में शरीर में जा रहा है, वही मैथुन में शरीर के बाहर जा रहा है। भोजन में क्या जा रहा है भीतर? उसी का सारभूत फिर मैथुन से बाहर जा रहा है। लेकिन यह जा रहा है शरीर में, आ रहा है शरीर में। और अगर चेतना साक्षी हो सके तो बात समाप्त हो गई। तब नदी से गुजर सकते हो और ऐसे कि पांव न भीगें। पांव तो भीग ही जाएंगे। नदी से गुजरोगे तो पांव तो भीगेंगे। लेकिन बिल्कुल ऐसे जैसे पांव न भीगें। अगर पीछे कोई साक्षी रह गया है तो बात खतम हो गई।
इसलिए गहरे में प्रश्न साक्षी-भाव का है, टु बी ए विटनेस, सिर्फ, और कुछ भी नहीं। फिर कौन सी क्रिया है, इससे कोई संबंध नहीं है। जैसे ही क्रिया के साक्षी हुए, कर्ता मिट गया। कर्ता मिटा कि कर्म मिट गया, क्रिया रह गई सिर्फ। अब यह क्रिया हजारों कारणों से उदभूत हो सकती है।
तो वह जो तुम कहते हो संतति, बिल्कुल ही, बिल्कुल ही उसमें कोई वासना न हो। और सच तो यह है कि जब ऐसी संतति पैदा होती है जिसमें कोई वासना न हो, तब केवल शरीर एक उपकरण बना है एक क्रिया का, इससे ज्यादा कुछ भी नहीं हुआ है।
चेतना उपकरण नहीं बनी।

लेकिन साधारणतः मैथुन में आदमी बिल्कुल खो जाता है, होश तो रह ही नहीं जाता, बेहोश हो जाता है। तब केवल शरीर ही उपकरण नहीं बनता, भीतर आत्मा सो गई होती है, मूर्च्छित हो गई होती है। और मैथुन का जो विरोध है, वह सिर्फ इसीलिए है कि आत्मा की मूर्च्छा सर्वाधिक मैथुन में होती है। अगर वहां आत्मा अमूर्च्छित रह जाए तो बात खतम हो गई। कोई बात ही न रही।
और प्रश्न भोजन का नहीं है। वह भी एक क्रिया है। किसी भी क्रिया में-- जैसे अभी तुम मुझे सुन रहे हो, सुनना एक क्रिया है। अगर तुम साक्षी हो जाओ तो तुम पाओगे कि सुना भी जा रहा है और तुम दूर खड़े होकर सुनने को देख भी रहे हो। जैसे मैं बोल रहा हूं और मैं साक्षी हूं, तो मैं बोल भी रहा हूं और पूरे वक्त मैं जानता हूं कि मेरे भीतर अबोला भी कोई खड़ा हुआ है। और असल में अबोला जो खड़ा है, वही मैं हूं। जो बोला जा रहा है, वह सिर्फ उपकरण है, वह साधन है। वह मैं नहीं हूं।
चल रहे हो रास्ते पर और अगर जाग जाओ तो तुम पाओगेः चल भी रहे हो, और कुछ भीतर अचल भी खड़ा है, जो नहीं चल रहा है, जो कभी चला ही नहीं, जो चल ही नहीं सकता है। और अगर चलने की क्रिया में तुम पूरे जाग गए हो तो तुम पाते हो कि चलने की क्रिया हो रही है और भीतर कोई अचल भी खड़ा है। और इस अचल का बोध हो जाए तो तुम किसी दिन कह सकते हो कि मैं कभी चला ही नहीं। और हजारों लोगों ने तुम्हें चलते देखा होगा। और रिकार्ड होंगे तुम्हारे चलने के और फोटोग्राफ होंगे तुम्हारे चलने के कि तुम चले थे, यह रहा फोटो, और अदालत निर्णय देगी कि हां तुम चले थे। लेकिन इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। तुम कहोगे कि वह सिर्फ दिखाई पड़ा था तुम्हें कि हम चले थे। लेकिन भीतर मैं अचल था, कोई नहीं चला था।
तो कौन सी क्रिया है, यह सवाल नहीं है महत्वपूर्ण। क्या क्रिया के भीतर तुम जागे हुए हो? अगर जागे हुए हो तो तुम क्रिया से भिन्न हो गए। और तब क्रिया जगत के बृहत इस जाल का एक हिस्सा हो गई। जैसे श्वास चल रही है और अगर तुम देख रहे हो तो श्वास का चलना न चलना जगत की विराट व्यवस्था का हिस्सा हो गया और तुम बिल्कुल बाहर होकर देखने लगे कि श्वास चल रही है। जैसे तुमने सूरज को उगते और डूबते देखा; सूरज दूर है, लेकिन श्वास कोई बहुत पास थोड़े ही है। फासला इतना ही है। श्वास जरा पास चल रही है।
एक पक्षी मैथुन कर रहा है। वह देह तुमसे थोड़ी दूर है, लेकिन तुम्हारी देह उससे कुछ तुम्हारे पास थोड़े ही है। एक पक्षी को मैथुन करते देख कर तुम यह तो नहीं कहते कि मैं मैथुन कर रहा हूं। तुम कहते हो, मैं देख रहा हूं, पक्षी मैथुन करता है। तुम बाहर हो गए।
एक तल पर जिस दिन चेतना संपूर्ण रूप से साक्षी हो जाती है, यह शरीर दूर खड़े पक्षी से ज्यादा अर्थ का नहीं रह जाता। उतना ही फासला हो जाता है। और तब तुम कह सकते हो--शरीर से हो रहा है।
कठिन मालूम पड़ता है हमें। कठिन इसलिए मालूम पड़ता है कि हम मैथुन में निरंतर मूर्च्छित हुए हैं, भोजन में मूर्च्छित हुए हैं। सब चीजों में मूर्च्छित हुए हैं।
गुरजिएफ एक फकीर था अभी, तो उसका काम था कि लोग उसके पास आएं... तो बहुत अदभुत था वह व्यक्ति। इस सदी में जो थोड़े से दो-चार लोग जानते हैं, उनमें से एक आदमी था। तो वह लोगों को ऐसी चीजें सिखाता था कि तुम सोच ही नहीं सकते। लोगों को कहता, क्रोध करो! और ऐसा अवसर पैदा कर देता कि उनको क्रोध करवाता। जैसे कि आप आए हो तो वह ऐसे उपद्रव खड़े करवा देगा आपके चारों तरफ कि आप क्रोधित हो ही जाओ और आप चिल्लाने लगो और आगबबूला हो जाओ। और सारा इंतजाम होगा कि आपको आगबबूला किया जाए। और फिर वह एकदम से कहेगाः देखो, क्या हो रहा है!
और तुम चौंक गए हो। आंखें लाल हैं और हाथ कंप रहे हैं। और तुम हंसने लगे हो। तुम्हारा हाथ अब भी कंप रहा है और आंखें लाल हैं। तुम्हारे ओंठ फड़क रहे हैं, तुम्हारा मन किसी की गर्दन दबा देने का है। और उसने कहा कि देखो! और तुम्हें याद आ गया कि उसने क्रोध का इंतजाम करवाया सब पूरा का पूरा। अब तुमने देखा और तुम एक क्षण में अलग हो गए हो, क्रोध इधर रह गया है, तुम अलग खड़े हो। और तब सब शांत हो गया है भीतर। शरीर अब भी कंप रहा है।

जैसा कभी तुमने देखा हो, रात सपना देखा हो, डर गए हो, नींद खुल गई, हाथ कंप रहे हैं, सांस तेजी से चल रही है। नींद खुल गई है और सपना टूट गया और अब तुम जानते हो, अब तुम हंसते हो कि सपना था। लेकिन अभी हाथ कंप रहे हैं, अभी सांस धड़क रही है और अभी डर मौजूद है। और तुम जानते हो कि अब तुम जग गए हो और वह सपना था सिर्फ। लेकिन सपने का इंपैक्ट इतने जल्दी थोड़े ही चला जाएगा। शरीर को वक्त लगेगा शांत होने में।
तो वह सब तरह के उपाय करता और लोगों को उन उपायों के बीच में कहता कि जागो! और अगर उस वक्त सुनाई पड़ जाए बात और आदमी जाग जाए... ।
तंत्र ने इसके उपाय किए बहुत। नग्न स्त्री को सामने बिठाया हुआ है, और साधक उसे देख रहा है और खोता चला जा रहा है। आंखों में उसके सम्मोहन आता चला जा रहा है, वह भूला चला जा रहा है। तभी कोई चिल्लाता है कि जागो! और वह एक क्षण में जाग कर देखता है। और सब शिथिल हो गया है। नग्न स्त्री सामने रह गई है चित्रवत। उसका कंपता हुआ मन और शरीर रह गया है दूर। और भीतर कोई जाग गया है और देख रहा है। और वह हंसता है कि क्या पागलपन था!
यह सारी की सारी व्यवस्था किसी भी क्षण जागने में उपयोगी हो सकती है।
तो ऐसी कोई क्रिया नहीं है, जिसमें न जागा जा सके। हां, मैथुन सर्वाधिक कठिन है। उसका कारण है। उसका कारण है कि मैथुन ऐसी क्रिया है जो मनुष्य के ऊपर प्रकृति ने नहीं छोड़ी। अगर छोड़ दी जाए तो शायद कोई पुरुष, कोई स्त्री कभी मैथुन करने को राजी ही न हो। अगर मनुष्य पर छोड़ दी जाए तो कोई कभी राजी ही न हो। क्योंकि ऐसी एब्सर्ड, ऐसी व्यर्थ, ऐसी बेमानी क्रिया है। तो प्रकृति ने उसके लिए बहुत गहरी हिप्नोसिस डाली है भीतर, इतना गहरा सम्मोहन और मूर्च्छा डाली है कि उसी मूर्च्छा के प्रभाव में ही कोई कर सकता है, नहीं तो कर नहीं सकता। मुश्किल पड़ जाए। तो वह मूर्च्छा गहरी डाली है।
मैं इस पर बहुत प्रयोग करता था और बड़े हैरानी के अनुभव हुए। एक युवक मेरे पास था। तो उस पर मैंने वर्षों हिप्नोसिस के, सम्मोहन के प्रयोग किए। उसको मैंने सम्मोहित करके बेहोश किया है। पास में एक तकिया पड़ा है। और उससे मैं बेहोशी में कहता हूं कि उठने के पंद्रह मिनट बाद तू इस तकिए को चूमना चाहेगा और कोई उपाय नहीं कि तू इसको चूमने से रुक जाए। तुझे इसे चूमना ही पड़ेगा।
अब उसे होश वापस लौटा दिया है। वह होश में आ गया है। अब वह बैठा है। और
अब सब लोगों को पता है। पंद्रह लोग अगर बैठे हैं, सबको पता है। अब वह लड़का बार-बार चोरी से उस तकिए को देखता है, जैसे कोई किसी स्त्री को देखता हो। अब वे पंद्रह ही जाग कर उसको देख रहे हैं कि क्या मामला है। वह कभी मौका मिल जाए तो चुपचाप उसे छू लेता है फिर। और उसके मन में इतनी गहरी हिप्नोसिस है कि तकिए ने एक सेक्सुअल अर्थ ले लिया है। और वह खुद भी संकोच कर रहा है कि यह क्या पागलपन है कि वह तकिए को देखूं! लेकिन अब उसका भीतर पूरा मन तकिए की तरफ डोला चला जा रहा है।
अब तकिया यहां रखा है, वह वहां बैठा है। तो वह किसी भी बहाने आकर, यहां पास आकर बैठ गया है। बहाना बिल्कुल दूसरा है। क्योंकि तकिए के पास आकर बैठने के लिए वह कैसे कह सकता है? वह कहता है कि मुझे वहां से सुनाई नहीं पड़ता, तो मैं ठीक से आपके पास आकर बैठ जाता हूं।
मैंने तकिया उठा कर इस तरफ रख लिया है। वह इधर तकिए के पास आकर बैठ गया है। अब वह बड़ा बेचैन है। अब वह कहता है कि वहां जरा दीवार से टिक कर बैठना मुझे ठीक होगा। वह आकर दीवार से टिक कर बैठ गया है। वह तकिए की तलाश में है। मैंने तकिया उठाकर, जाकर अलमारी में बंद करके लॉक कर दिया है। और पंद्रह मिनट पूरे हुए जाते हैं और वह बेचैन है, बिल्कुल तड़फ रहा है। और वह कहता है, चाबी दीजिए। उस अलमारी में मेरा फाउंटेन पेन रखा हुआ है। तकिए का वह कैसे कहे! वह खुद भी नहीं सोच पा रहा है कि तकिए के लिए मैं कैसे कहूं! और हम सब बैठे हैं। उसको चाबी दे दी गई है। उसने जाकर ताला खोला है। वह
सब तरफ देख रहा है। फाउंटेन पेन उठाता है और झुक कर तकिए को चूम लेता है और एकदम रिलैक्स्ड हो जाता है। अब हम उससे पूछते हैं कि तुम यह क्या कर रहे हो? वह कहता है--एकदम रोने लगता है--कि मेरी समझ के बाहर है कि यह मैं क्या

कर रहा हूं। लेकिन वह परेशान है, इस तकिए से मेरा क्या हो गया है! लेकिन मैं इसको चूम कर बड़ा हलका हो गया हूं।
तकिए के प्रति तक यह हालत पैदा की जा सकती है। किसी भी चीज के प्रति हिप्नोसिस दी जा सकती है।
तो प्रकृति ने मैथुन के साथ एक हिप्नोसिस डाली हुई है, एक सम्मोहन डाला हुआ है। उसी सम्मोहन के प्रभाव में सारा खेल चलता है। और इसलिए आदमी बिल्कुल विवश पाता है। जब एक सुंदर चेहरा उसे खींचता है तो वह अपनी सामर्थ्य में, होश में नहीं है, बिल्कुल बेहोश है।
इस हिप्नोसिस को तोड़ा जाए, इसको तोड़ने की विधियां हैं। और इस हिप्नोसिस को तोड़ने की सबसे बड़ी, सम्मोहन को तोड़ने की सबसे बड़ी विधि साक्षी होना है। तो सम्मोहन एकदम टूट जाता है, कट जाता है एकदम।
और जब सम्मोहन कट जाता है तो महावीर जैसे व्यक्ति को स्त्री में कोई आकर्षण नहीं है, कोई अर्थ नहीं है। लेकिन स्त्री को हो सकता है अर्थ और आकर्षण। महावीर को पिता बनने में कोई अर्थ और आकर्षण नहीं है, लेकिन स्त्री को हो सकता है अर्थ और आकर्षण। और महावीर बिल्कुल पैसिव आनलुकर की तरह मैथुन से भी गुजर सकते हैं। इसमें कोई, इसमें कोई कठिनाई नहीं है। एक दफा हिप्नोसिस टूट जाए, बस। सम्मोहन टूट जाए, तब तो किसी भी क्रिया से आदमी देखता हुआ गुजर सकता है।
और जिस दिन मैथुन से कोई देखता हुआ गुजर जाता है, उसी दिन मैथुन से मुक्त हो जाता है। फिर मैथुन में कोई मतलब न रहा, क्योंकि हिप्नोसिस पूरी तरह टूट गई। लेकिन ऐसा व्यक्ति इनकार करने का भी कोई कारण नहीं मानता है। यही हमें ख्याल में... ऐसा व्यक्ति इनकार करने का भी कोई कारण नहीं मानता। क्योंकि ऐसे व्यक्ति को इनकार करने में भी कोई अर्थ नहीं है।
जैसे कि उस युवक से कहो कि तुम तकिए को चूमना चाहते हो? तो वह कहेगा, नहीं-नहीं, मैं नहीं चूमना चाहता। क्योंकि बात एब्सर्ड मालूम पड़ती है कि तकिए को और चूमूं! वह इनकार करेगा। हो सकता है वह त्याग करके मंदिर में कसम खा ले कि मैं कसम खाता हूं भगवान की, तकिए को कभी नहीं चूमूंगा। लेकिन तकिए के प्रति उसका पागलपन जारी है। इस कसम में भी वह छिपा है।
इसलिए ब्रह्मचर्य काम से छूट जाना नहीं है, काम से जाग जाना है। तब हम कृष्ण जैसे व्यक्ति को भी ब्रह्मचर्य कहते हैं, ब्रह्मचर्य को उपलब्ध! और अदभुत है वह। उसकी उपलब्धि बहुत अदभुत है। कितनी हजार-हजार स्त्रियां उसे घेरे हुए हैं, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। इससे कृष्ण को कोई फर्क नहीं पड़ता। इससे कोई संबंध ही नहीं है।
इसलिए वह लीला हम उसे कहते हैं कि वह लीला है, खेल है। जस्ट ए प्ले। और
वह पूरे वक्त जागा हुआ है, उसे कोई मतलब नहीं होता है।
जीवन में जीना है तो दो रास्ते हैं। सोकर जीओ--तो भोजन भी सोकर करोगे तुम नींद में, कपड़े भी सोए हुए पहनोगे, प्रेम भी सोए हुए करोगे, सेक्स से भी सोए हुए गुजरोगे। दूसरा एक रास्ता है, जागे हुए--प्रत्येक क्रिया जागे हुए। सेक्स सर्वाधिक गहरी क्रिया है, क्योंकि बायलॉजी और जीव-विज्ञान और पूरी प्रकृति उसमें उत्सुक है कि संतति जारी रहे। इसलिए बहुत गहरी मूर्च्छा डाली है।
लगता है हमें कठिन, लेकिन कुछ भी कठिन नहीं है। साक्षी के लिए कुछ भी कठिन नहीं है। इसलिए मैंने ऐसा कहा कि महावीर की पत्नी है, लेकिन अविवाहित; महावीर को पुत्री हुई है, लेकिन निःसंतान। महावीर की कोई संतान नहीं है। महावीर की कोई पत्नी भी नहीं है।
हमें दो बातें बड़ी सरलता से समझ में आ जाती हैं। स्त्री की तरफ भागता हुआ आदमी समझ में आ जाता है। स्त्री से भागता हुआ आदमी भी समझ में आ जाता है। स्त्री की तरफ मुंह किए समझ में आ जाता है, स्त्री की तरफ पीठ किए समझ में आ जाता है।
लेकिन ऐसा व्यक्ति जिसके लिए स्त्री ही मिट गई है, चुपचाप खड़ा आदमी हमें समझ में बहुत मुश्किल से आता है। न भागता, न जाता। न स्त्री के प्रति उन्मुख है, न स्त्री से विमुख है। न राग में है, न विराग में है।
इसलिए महावीर के लिए शब्द जो उपयोग हुआ है, वीतराग, बड़ा अदभुत है।
वीतराग का मतलब विरागी नहीं है। और जो लोग विरागी समझ रहे हैं, वे समझ ही

नहीं पा रहे हैं। वीतराग का मतलब है राग से ही मुक्त। राग में विराग है। राग और विराग एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। यह हो सकता है, एक आदमी राग की दुश्मनी में विरागी हो जाए, विराग की दुश्मनी में रागी हो जाए।
लेकिन वीतरागी का मतलब है कि जिसका राग और विराग गया, जो सहज खड़ा रह गया। न भागता है, न आता है। न बुलाता है, न भयभीत है। वीतराग का मतलब ही यह है कि जहां न राग है, न विराग है।
और महावीर के पीछे चलने वाला जो साधक है, वह राग से विराग को पकड़ता है। राग को बदलता है विराग में। विरागी सिर्फ उलटा रागी है, शीर्षासन करता हुआ रागी, सिर्फ सिर के बल खड़ा हो गया है। रागी कहता हैः छुऊंगा, स्पर्श करूंगा, प्रेम करूंगा, जीऊंगा। विरागी कहता हैः छुऊंगा नहीं, स्पर्श नहीं करूंगा, प्रेम नहीं करूंगा, जीऊंगा ही नहीं। भय है, खतरा है बंध जाने का। एक बंधने को आतुर है, एक बंधने से भयभीत है। लेकिन बंधन दोनों के केंद्र में है, दोनों की नजर में बंधन है। इसलिए रागी विरागी की पूजा करने में निकल जाएंगे।
वीतरागी को पहचानना बहुत मुश्किल है, क्योंकि वीतरागी हमारी कटेगरी से, नाप-जोख से बाहर पड़ जाता है एकदम। तराजू के इस पलड़े पर रखो तो भी तौल हो जाती है, तराजू के उस पलड़े पर रखो तो भी तौल हो जाती है। तराजू से उतर जाओ तो तौल कहां? राग एक पलड़ा है, विराग दूसरा पलड़ा है। दोनों पर तौल हो सकती है। लेकिन वीतराग की तौल क्या होगी? वीतराग को कैसे तौलोगे?
महावीर को सताए जाने का जो लंबा उपक्रम है, उस लंबे उपक्रम में वीतरागता कारण है। विरागी को इस मुल्क ने कभी नहीं सताया, यह ध्यान में रहे। और महावीर के जमाने में कोई विरागियों की कमी न थी। विरागी सदा आदृत रहा है। विरागी को कभी नहीं सताया, क्योंकि रागी विरागी को कभी सता ही नहीं सकते।
रागी सदा विरागी को पूजते हैं, क्योंकि रागी को लगता है कि मैं कैसी गंदगी में उलझा हूं! विरागी कैसा मुक्त हो गया है सारी गंदगी से! लेकिन वीतरागी को दोनों सताते हैं--रागी भी और विरागी भी। क्योंकि रागी को लगता है कि यह आदमी कैसा है, यह तो--और विरागी को लगता है कि यह सब तोड़े जा रहा है, सब नष्ट किए जा रहा है।
महावीर को दो तरह के दुश्मन सता रहे हैं। एक जो रागी है, वह सता रहा है,
वह पत्थर मार रहा है, वह कह रहा है, यह आदमी विरागी नहीं है। एक विरागी भी सता रहा है। वह कह रहा है, यह आदमी कैसा विरागी है!
वीतरागी को पहचानना ही मुश्किल है। द्वंद्व को हम पहचान सकते हैं, निर्द्वंद्व को नहीं। द्वैत को हम पहचान सकते हैं, अद्वैत को नहीं। और महावीर की पूरी वृत्ति वीतराग की है, पूरा भाव वीतराग का है। और प्रत्येक स्थिति में। क्योंकि वीतरागी के लिए स्थिति का सवाल नहीं है। स्थिति, वह रागी कहता है कि ऐसी स्थिति चाहिए। और विरागी कहता है कि ऐसी स्थिति चाहिए।
रागी कहता हैः स्त्री हो, धन हो, पैसा हो, यह सब होना चाहिए, इसके बिना मैं जी नहीं सकता। विरागी कहता हैः स्त्री न हो, धन न हो, पैसा न हो, इसके साथ मैं जी नहीं सकता। यानी जीने की दोनों की कंडीशन है, शर्त है। एक की शर्त ऐसी है, एक की शर्त वैसी है। लेकिन दोनों का जीना कंडीशनल है। वीतरागी कहता हैः जो हो, जो हो! उससे कुछ लेना-देना नहीं है। वह अछूता खड़ा है। जो आदमी अछूता खड़ा है वह बेशर्त होगा। बेशर्त आदमी को पहचानना बहुत मुश्किल हो जाएगा।
इसलिए महावीर का जमाना महावीर को बिल्कुल नहीं पहचान पाया। बहुत मुश्किल था पहचानना, कठिन था। इसलिए महावीर को निरंतर यातना दी जा रही है, निरंतर सताया जा रहा है।
उस आदमी को हम सताएंगे ही जो हमारे सब मापदंडों से अलग खड़ा हो जाए, जिस
पर हम तौल न कर सकें, लेबल न लगा सकें कि यह है कौन। लेबल लगा लें तो हमें सुविधा हो जाती है। एक लेबल लगा दिया कि यह आदमी फलां है, तो फिर हम लेबल के साथ व्यवहार करते हैं, आदमी के साथ नहीं। पक्का पता लगा लिया कि यह आदमी संन्यासी है, लिख दिया संन्यासी है। फिर संन्यासी के साथ जो करना है, हम इसके साथ करते हैं। लिख दिया रागी है, तो जो रागी के साथ करना है, वह हम

इसके साथ करते हैं। लेकिन एक आदमी ऐसा है कि जिस पर लेबल लगाना मुश्किल है कि कौन है--यह है कौन!
तो महावीर बरसों तक इस हालत में घूमे हैं कि लोग पूछ रहे हैं, यह है कौन! यह आदमी कैसा है! और महावीर कोई उत्तर नहीं दे रहे, महावीर मौन हैं। क्योंकि है कौन, इसका क्या उत्तर देना है! कोई लेबल होता तो वे उत्तर दे देते। तो महावीर निरंतर मौन हैं। लोग जो कहते हैं, वे चुपचाप खड़े हैं। सब सह लेते हैं।
एक गांव के पास खड़े हैं। गाय चराने वाला अपनी गाय और बैल को उनके पास छोड़ जाता है और कहता है, जरा देखना! मैं अभी लौट कर आता हूं, मेरी कोई गाय खो गई है। तो वे यह भी नहीं कहते कि मैं नहीं देखूंगा, इतना कह दें तो मामला खतम हो जाए। वे यह भी नहीं कहते कि मैं देखूंगा, इतना कह दें तो भी बात खतम हो जाए। वह आदमी एक लेबल लगा ले, झंझट के बाहर हो जाए। महावीर खड़े रहते हैं, जैसे कि सुना अनसुना किया, जैसे प्रश्न पूछा नहीं गया, ऐसे ही खड़े रह जाते हैं।
वह आदमी चला गया खोजने। वह सांझ होते-होते खोज कर लौट कर आता है तो गाय-बैल जो बैठे थे, महावीर के पीछे छोड़ गए थे, वे उठ कर जंगल में चले गए। तो उस आदमी ने महावीर को पूछा कि वे गाय-बैल कहां गए? तब भी वे वैसे ही खड़े हैं, क्योंकि आने-जाने का हिसाब ही नहीं रखते वे। वे वैसे ही खड़े हैं। वह कहता है कि तुमने उसी वक्त क्यों नहीं कह दिया था? तब भी वे वैसे ही खड़े हैं। तब वह आदमी समझता है कि इसने चुरा लिए, इसने कहीं छिपा दिए, आदमी बेईमान है। वह मार-पीट करता है। वे मार-पीट को भी सह रहे हैं। फिर भी वैसे ही खड़े हैं। लेकिन थोड़ी देर में वे गाय-बैल लौट आए हैं जंगल के बाहर, सांझ होने लगी, धूप ढल गई है तो वापस लौट रहे हैं। तो वह आदमी बहुत दुखी होता है, वह क्षमा मांगता है, तब भी वे वैसे ही खड़े हैं!
यह आदमी कोई शर्त में नहीं, कोई लेबल में नहीं, जो हो रहा है, उसमें वैसे ही खड़ा है। अब यह अदभुत घटना है। जो भी हो रहा है। कुछ भी हो रहा हो, इसे इससे मतलब ही नहीं कि क्या हो रहा है। यह हर हालत में वैसे ही खड़ा है और सब चीजों को देख रहा है। इस व्यक्ति को समझने में बड़ी कठिनाई है।
तो पीछे जिन्होंने शास्त्र लिखे, उन्होंने कहा, महावीर बड़े क्षमावान हैं, उन्होंने क्षमा कर दिया है, कोई मारता है तो उसको क्षमा कर देते हैं! वे समझ नहीं पाए लोग। क्षमा सिर्फ वही करता है, जो क्रोधित हो जाता है। क्षमा जो है, वह क्रोध के बाद का हिस्सा है। महावीर को क्षमावान कहना महावीर को समझना ही नहीं है। महावीर को क्रोध ही नहीं उठ रहा है, क्षमा कौन करेगा? किसको करेगा? महावीर देख रहे हैं। वे ऐसा ही देख रहे हैं कि इस आदमी ने ऐसा-ऐसा किया, पहले मारा, फिर क्षमा मांगी। देख रहे हैं कि ऐसा-ऐसा हुआ। थिंग्स आर सच। और खड़े हैं चुपचाप। और सब देख रहे हैं, इसमें कोई चुनाव भी नहीं कर रहे हैं, वे च्वाइस भी नहीं कर रहे हैं कि ऐसा होना था और ऐसा नहीं होना था।
ऐसे निरंतर-निरंतर-निरंतर वे राग और विराग के बाहर हो गए हैं, चुनाव
के बाहर हो गए हैं, अच्छे-बुरे के बाहर हो गए हैं, कौन क्या कहता है, इसके बाहर हो गए हैं।
यह वीतरागता परम उपलब्धि है, जो जीवन में संभव है। यानी जीवन की यात्रा में जो परम बिंदु है, वह वीतरागता का है। वह जीवन का अंतिम बिंदु है, क्योंकि उसके पार फिर मुक्ति की यात्रा शुरू हो गई। वीतराग हुए बिना कोई मुक्त नहीं है। रागी मुक्त नहीं हो सकता, विरागी मुक्त नहीं हो सकता।
दोनों बंधे हैं।
लेकिन हम, जो समझते नहीं हैं, तो हम वीतराग का मतलब विरागी करते हैं कि
जो राग से छूट गया।
नहीं, विराग राग ही है, सिर्फ उलटा राग है। जो राग मात्र से छूट गया।
राग शब्द बड़ा अच्छा है, समझने जैसा है। राग का मतलब होता हैः कलर, रंग। कहते हैं न, राग-रंग! राग का मतलब होता है, रंग। विराग का मतलब होता हैः उससे उलटा रंग। आंखें हमारी हमेशा रंगी हैं, कुछ रंग है आंख पर, कोई कलरिंग है। उस रंग से ही हम देखते हैं। तो चीजें हमें वैसी दिखाई पड़ती हैं, जो हमारा रंग होता है। चीजें हमें वैसी दिखाई पड़ती हैं, जो हमारा रंग होता है

आंख का। चीजें वैसी नहीं दिखाई पड़तीं, जैसी वे हैं। तो रंगी आंख कभी सत्य को नहीं देख सकती हैं।
अब एक रागी है, तो उसे राह से एक स्त्री जाती हुई दिखाई पड़ती है तो लगता है स्वर्ग है। स्त्री सिर्फ स्त्री है। रागी को लगता है स्वर्ग है। विरागी बैठा है वहीं एक दरख्त के नीचे, उसको लगता है नरक जा रहा, आंख बंद करो। स्त्री सिर्फ स्त्री है। विरागी को दिखता है नरक जा रहा है। इसलिए विरागी लिखता है अपनी किताबों में--स्त्री नरक का द्वार है। और रागी लिखता है कि स्त्री स्वर्ग है, वही मुक्ति है, वही आनंद है। स्त्रियां सोचेंगी, वे भी ऐसा ही लिखेंगी।
रागी स्त्री को स्वर्ग बना लेता है, एक रंग है उसकी आंख पर। विरागी स्त्री को नरक बना लेता है, एक रंग है उसकी आंख पर। वीतरागी खड़ा रह जाता हैः स्त्री स्त्री है। वह अपने रास्ते जाती है, जाती है; मैं अपनी जगह खड़ा हूं, खड़ा हूं। न वह स्वर्ग है, न वह नरक है। वह उसके बाबत कोई निष्कर्ष नहीं लेता, क्योंकि उसकी आंख में कोई रंग नहीं है, रंग-मुक्त है। इसलिए जो जैसा है, वैसा उसे दिखाई पड़ता है। बात खतम हो जाती है। वह कुछ भी प्रोजेक्ट नहीं करता। वह कुछ भी अपनी तरफ से नहीं ढालता। न वह कहता है सुंदर है किसी को, न वह कहता है असुंदर है। क्योंकि सुंदर और असुंदर हमारे रंग हैं, जो हम थोपते हैं। चीजें सिर्फ चीजें हैं। न तो कुछ सुंदर है, न कुछ असुंदर है। हमारा भाव है, जो हम उनमें ढाल देते हैं।
अब जैसे हम देखते हैं कि आज सुशिक्षित घर, सुरुचिपूर्ण घर में कैक्टस लगा हुआ है। कैक्टस!

प्रश्न: कांटे वाले पौधे?

हां, कांटे वाले पौधे, मरुस्थल में उगने वाले, गांव के बाहर लगते थे-- धतूरा, नागफनी--वह आज घर के बैठकखाने में लगा हुआ है! आज से सौ साल पहले अगर उसे कोई बैठकखाने में ले आता तो उस आदमी को हम पागलखाने ले गए होते कि तुम्हारा दिमाग खराब हो गया है! नागफनी घर में लगाने की चीज है? लेकिन गुलाब एकदम बहिष्कृत हो गया है, नागफनी आ गई उसकी जगह। सुशिक्षित आदमी के घर में नागफनी लगी हुई है। क्या हो गया? नागफनी एकदम सुंदर हो गई। जो कभी सुंदर न थी। जो कुरूपता का साकार रूप थी सदा, वह आज एकदम सौंदर्य की अनुभूति बन गई! क्या हो गया?
रंग बदल गया। एकदम रंग बदल गया। और हर बार हम रंग से ऊब जाते हैं तो बदल लेते हैं, क्योंकि एक ही रंग में देखते-देखते ऊब हो जाती है। गुलाब-गुलाब को हजार साल तक सुंदर-सुंदर कहते वह ऊब हो गई, कि छोड़ो बाहर करो, इसको घर के बाहर करो। ब्राह्मण-ब्राह्मण को आदर देते बहुत ऊब हो गई, तो अब शूद्र को बिठाओ।
नागफनी शूद्र थी बहुत दिन तक, अब एकदम ब्राह्मण हो गई। गांव के बाहर-- अंत्यज। जैसे शूद्र रहता था वैसे नागफनी भी रहती थी बेचारी। एकदम से अभिजात हो गई, घर के भीतर आ गई।
ऊब हो जाती है। और ऊब का मजा है कि ऊब सदा अति पर ले जाती है। जब भी हम
एक चीज से ऊबते हैं तो ठीक उससे उलटी चीज पर चले जाते हैं।
जो आदमी नाच-गाने से ऊब जाएगा, एकदम मंदिर चला जाएगा। खाने से ऊब जाएगा, उपवास करने लगेगा। कपड़ों से ऊब जाएगा, त्याग करने लगेगा। धन से ऊब जाएगा, धर्म की तरफ चला जाएगा। मधुशाला से ऊबेगा, मंदिर जाएगा। मंदिर से ऊबा हुआ आदमी मधुशाला की खोज में निकलता है। जहां से हम ऊबते हैं, उलटे हो जाते हैं। राग से ऊब जाते हैं तो विराग पकड़ लेता है। विराग से ऊब जाते हैं तो राग पकड़ने लगता है।
और अगर हम रागियों और विरागियों के मस्तिष्क को खोल कर देख सकें तो बड़ी हैरानी होगी कि उनके भीतर हमें उलटे आदमी मिलेंगे। रागी के भीतर निरंतर विरागी होने का भाव मिलेगा। बुरी से बुरी स्थिति में भी रागी के भीतर विरागी का भाव मिलेगा।
इसलिए रागी विरागी की पूजा करते हैं। वह उनका गहरा भाव है। वे भी होना चाहते हैं यही। और विरागी के भीतर अगर हम झांकें तो रागी के प्रति ईर्ष्या

मिलेगी। जैसे रागी के मन में विरागी के प्रति आदर मिलेगा, विरागी के मन में रागी के प्रति ईर्ष्या मिलेगी।
इसलिए विरागी निरंतर रागियों को गाली दे रहा है। वह गाली ईर्ष्या- जन्य है। भीतर मन में उसके भी यही कामना है। जो-जो उसकी कामना है, उस-उस के लिए रागी को गाली दे रहा है कि तुम यह-यह पाप कर रहे हो, नरक में सड़ोगे। वह डरा रहा है, धमका रहा है, लेकिन भीतर उसके कामना वही है।
मुझे बड़े से बड़े साधु मिलते हैं। सामने तो आत्मा-परमात्मा की बात करते हैं, एकांत में सिवाय सेक्स के दूसरी बात ही नहीं उनके चित्त में होती। और बड़े घबड़ाते हैं और कहते हैं, कैसे इससे छुटकारा हो, बस यही घेरे हुए है। चौबीस घंटे परमात्मा की और मोक्ष की चर्चा चल रही है, लेकिन भीतर वासना का दौर चल रहा है पूरे वक्त!
और यह हो सकता है कि मधुशाला में बैठा हुआ, वेश्या के घर में बैठा हुआ
एक आदमी कई बार संन्यासी हो जाता हो मन में कि छोड़ो सब बेकार है।
उलटा खींचता रहता है। रागी विरागी हो जाता है, विरागी रागी हो जाता है। जो इस जन्म में रागी है, अगले जन्म में विरागी हो जाए; जो इस जन्म में विरागी है, अगले जन्म में रागी हो जाए।
यह जान कर मैं बहुत हैरान हुआ हूं। इधर कुछ बहुत से गहरे प्रयोगों ने कुछ अजीब से नतीजे दिए हैं, जो कि चौंकाने वाले हैं। जैसे कि एक आदमी है, जो बिल्कुल ही राग-रंग में पड़ा हुआ है। उसके पिछले जन्म में उतरने की कोशिश करो तो तुम दंग रह जाओगे कि वह संन्यासी रह चुका है। और संन्यासी रहते वक्त उसने इतना विरोध पाल लिया संन्यासी होने से कि यह जन्म उसका रागी का हो गया।
एक स्त्री मेरे पास आती थी और उसे बड़ी आतुरता थी कि किसी तरह पिछले जन्मों में उतर जाए। मैंने उसे बहुत कहा कि यह आतुरता छोड़, क्योंकि इसमें कठिनाई में पड़ सकती है। उसको बड़ा सती-साध्वी होने का ख्याल! और उसे इतना उसका भाव पकड़ा कि मुझे शक ही था कि पिछले जन्म में वह वेश्या रह चुकी होनी चाहिए, नहीं तो इतने जोर से सती-साध्वी होने का भाव नहीं पकड़ता है। वह जिससे ऊब गई है, वह नए जन्म की शुरुआत बन जाती है। फिर भी वह नहीं मानी तो मैंने कहा कि ठीक है, तू प्रयोग कर।
वह छह महीने तक पिछले जन्म में उतरने का, जाति-स्मरण करने का प्रयोग करती थी। और एक दिन आकर एकदम चिल्लाने-रोने लगी और कहा कि मुझे किसी तरह भुलाओ, क्योंकि मैं तो दक्षिण के किसी मंदिर में देवदासी थी, वेश्या थी। और मैं इसको भूलना चाहती हूं, मैं इसे याद ही नहीं करना चाहती हूं कि ऐसा कभी हुआ।
मैंने कहा, जो याद आ गया, उसे भूलना मुश्किल है।
इसलिए प्रकृति ने सारी व्यवस्था की है कि पिछला आपको याद न आए, क्योंकि पिछले आप निरंतर रूप से उलटे रहे होंगे। आमतौर से लोग सोचते हैं कि इस जन्म में जो संन्यासी है, उसने पिछले जन्म में संन्यासी होने का अर्जन किया होगा। ऐसा मामला नहीं है। इस जन्म में जो विरागी है, वह पिछले जन्म में राग के चक्कर में घूम चुका, उस अति को छू चुका, और अब ऊब गया था और नए जन्म में उसने नई व्यवस्था को पकड़ा है।
राग और विराग के बीच हम अनेक जन्मों में घूम चुके हैं। ऐसा नहीं है कि राग-राग में ही घूमते रहे हैं। बहुत बार राग हुआ है, बहुत बार विराग हुआ है, वीतराग कभी नहीं हो सका है और वह कभी होगा भी नहीं, क्योंकि एक अति पर जाकर ठीक पेंडुलम दूसरी अति पर जाना शुरू हो जाता है।
इसलिए मैं कहता हूं कि इसकी फिक्र मत करें कि हमें क्या होना है--रागी
कि विरागी। फिक्र इसकी करें कि हम जो भी हों, उसी में हम जागें। हम कुछ होने की चिंता छोड़ दें। तो वह जो जागना है, वह वीतरागता में ले जाएगा। और वह वीतरागता बिल्कुल ही भिन्न बात है।
और इसी संदर्भ में यह भी जैसा मैंने कहा जाति-स्मरण का, पिछले स्मरण का, महावीर की बड़ी से बड़ी देनों में अगर कोई देन है तो वह जाति-स्मरण है-- पिछले जन्मों का स्मरण। बड़ी से बड़ी जो देन है, वह उस तरह की ध्यान-पद्धतियां हैं, जिनसे व्यक्ति अपने पिछले जन्मों में उतर जाए।

और एक व्यक्ति अगर अपने पिछले जन्मों में उतर जाए और दो-चार जन्म भी जान ले तो बहुत हैरान हो जाएगा। फिर वह वही आदमी नहीं हो सकता जो अभी था। क्योंकि वह पाएगा यह सब तो मैं बहुत बार कर चुका, इससे उलटा भी कर चुका--यह सब मैं बहुत बार कर चुका और कुछ भी नहीं पाया। हर बार घूम कर जैसे कि चाक के स्पोक घूम कर फिर अपनी जगह आ जाते हैं, ऐसे ही मैं घूमा और अपनी जगह आ गया। कई बार लगा चाक को कि ऊपर पहुंच गया हूं, लेकिन जब उसे लग रहा था ऊपर पहुंचा हूं, तभी नीचे आना शुरू हो गया था। कई बार चाक को लगा कि बिल्कुल नीचे गिर गया हूं नरक में, और जब उसको लगा था कि बिल्कुल नीचे गिर गया हूं, तभी ऊपर चढ़ना शुरू हो गया। बहुत बार स्वर्ग छुआ, बहुत बार नर्क छुआ। बहुत बार दुख छुए, बहुत बार सुख छुए। बहुत बार राग छुआ, बहुत बार विराग छुआ, सब द्वंद्वों में चक्र घूम चुका है। अगर एक दस-पांच जीवन स्मरण आ जाएं तो यह सब इतनी बार हो चुका है कि अब इसी में चुनाव का कोई मतलब नहीं है।
तो जाति-स्मरण का मतलब यह है कि यह द्वंद्व हम बहुत बार भोग चुके हैं,
इन दोनों से हम जाग सकें, इन दोनों में चुनाव का कोई उपाय नहीं। लेकिन मन का नियम यह है कि जो वह करता है, उससे उलटे को चुनता है। इसलिए संन्यासियों के पास रागियों की भीड़ होती है। जो वह चुनता है, अभी कर रहा है, उसके अनकांशस में, अचेतन में उलटे का इकट्ठा होना शुरू हो जाता है। जब वह सेक्स में होता है, तब उसको ब्रह्मचर्य की बातें ख्याल में आने लगती हैं। और जब वह ब्रह्मचर्य साधता है, तब सेक्स की बातें ख्याल आने लगती हैं। जब वह भोजन कर रहा होता है, तब वह सोचता है कि भोजन त्याग कैसे करूं और जब भोजन त्याग करता है तब भोजन का स्मरण आने लगता है।
इतना अदभुत है यह मामला हमारा--द्वंद्व में घूमने की व्यवस्था--और हम
एक बार एक ही जगह होते हैं, इसलिए दूसरा हमें आकर्षित करता रहता है उलटा। अगर दो-चार जन्मों का यह स्मरण आ जाए कि हम दोनों तरफ घूम चुके हैं तो फिर तीसरा उपाय है। और वह जो तीसरा उपाय है, वही महावीर का उपाय है--वीतरागता। इन दोनों में कोई अर्थ नहीं, तो अब क्या करूं, तीसरा क्या रास्ता है? अगर भोग नहीं, अगर योग नहीं, तो तीसरा क्या रास्ता है?
तीसरा रास्ता सिर्फ यह है कि दोनों के प्रति जाग जाऊं। तो त्रिकोण बन जाता है। जैसे कि एक ट्राएंगल है। उस ट्राएंगल की, उस त्रिकोण की, त्रिभुज की नीचे की एक रेखा है, जिस पर दो द्वंद्व हैं--इधर राग है, उधर विराग है। जो इधर होता है, वह उधर आना चाहता है; जो उधर होता है, वह इधर जाना चाहता है। और इन्हीं दोनों के बीच हम घूमते रहते हैं। जो इन दोनों से जागता है, वह जो ट्राएंगल का, त्रिभुज का ऊपर का छोर है, वहां पहुंच जाता है।
वह वीतराग है। वह दोनों के पार हो गया, न वह राग में है, न वह विराग में है। लेकिन जो राग में खड़ा है और जो विराग में खड़ा है, उन दोनों के लिए बेबूझ हो जाता है कि यह आदमी कहां है। क्योंकि हमारे होने की परिभाषा में दो ही बिंदु हैं--राग और विराग; यह आदमी कहां है? और इस आदमी को समझना मुश्किल हो जाता है। लेकिन समझने का प्रश्न नहीं है। यह आदमी हम दोनों को समझ पाता है और हम दोनों इस आदमी को बिल्कुल नहीं समझ पाते।
जाति-स्मरण का प्रयोग महावीर की बड़ी से बड़ी देन है। और मैं समझता हूं
उस पर कोई काम नहीं हो सका। असली बात वही है। उस साधना से गुजार कर किसी भी व्यक्ति को वीतरागता में लाया जा सकता है--किसी भी व्यक्ति को! और जब तक उस साधना से कोई नहीं गुजरता, तब तक वह यही होगा कि अगर रागी है तो विरागी हो जाएगा और विरागी है तो रागी हो जाएगा। और ये दोनों एक से मूढ़तापूर्ण हैं, इन दोनों में कोई चुनाव का सवाल नहीं है।
और हमें रोज दिखाई पड़ता है यह कि हम विरोधी को अनजाने चुनने लगते हैं। महलों में जो आदमी बैठा हुआ है, वह निरंतर यह कहता है कि झोपड़ी का मजा यहां कहां! और ईर्ष्या करता है झोपड़ी के आदमी से कि उसकी नींद, उसकी मौज! झोपड़ी में जो बैठा है, वह पूरे वक्त महल के लिए ईर्ष्यालु है कि जो महल में हो रहा है वह यहां कहां! झोपड़ी में मरे जा रहे हैं। झोपड़ी वाला महल की तरफ जा रहा है, महल वाला झोपड़ी की तरफ आ रहा है। बड़े शहर वाला छोटे गांव की तरफ भाग रहा है, छोटे गांव वाला बड़े शहर की तरफ भाग रहा है। पूरे समय जहां हम हैं, उससे विपरीत की तरफ हम जा रहे हैं; क्योंकि जहां हम हैं, वहां हम ऊब जाते हैं,

वहां हम बोरडम से भर जाते हैं। और जिससे हम ऊब गए हैं, उससे उलटे की तरफ हम जाते हैं।
जैसे पूरब भौतिकवाद की तरफ जाएगा, क्योंकि अध्यात्म से ऊब गया है। और पश्चिम अध्यात्म की तरफ आएगा, क्योंकि भौतिकवाद से ऊब गया है। तो पश्चिम में इस वक्त जो जोर से चिंतना है, वह यह कि क्या है अध्यात्म? कैसे हम आध्यात्मिक हो जाएं? और पूरब की जो इस वक्त चिंतना है पूरी की पूरी, वह यह है कि हम कैसे वैज्ञानिक हो जाएं? कैसे धन आए? कैसे समृद्धि आए? कैसे अच्छे मकान? कैसे अच्छी मशीन?
पूरब का व्यक्तित्व भौतिकवाद की तरफ जा रहा है, पश्चिम का व्यक्तित्व अध्यात्म की तरफ आ रहा है। वही भूल। यह बहुत दफे हो चुका। व्यक्ति में भी वही होता है, समाज में भी वही होता है, राष्ट्र में भी वही होता है। अति, दूसरी अति हमें पकड़ लेती है।
महावीर कहते हैं कि दोनों अतियों में बहुत बार हम घूम चुके, दोनों विरोधों में हम बहुत बार घूम चुके। क्या कभी हम जागेंगे और उस जगह खड़े हो जाएंगे, जहां कोई अति नहीं है, कोई विरोध नहीं है, द्वंद्व नहीं है?
इस स्थिति का नाम वीतरागता है। और यह सभी में है। ध्यान रखें, सभी में है।
जैसे एक आदमी क्रोध कर रहा है। तो क्रोध करके आपने कभी ख्याल किया कि
आप क्रोध करने के बाद क्या करते हैं? आप पछतावा करते हैं। ऐसा आदमी खोजना कठिन है, जो क्रोध के बाद पछतावा न करता हो। और अगर मिल जाए तो बहुत अदभुत है। क्रोध करके पछतावा! पछतावा अब दूसरी अति है। क्रोध किया कि पछतावा आया। पछतावे के वक्त आदमी सोचता है कि हम बड़े भले आदमी हैं, देखो हमने क्रोध कर लिया, लेकिन पछतावा भी करते हैं। क्रोध किया कि क्षमा पीछे आएगी। विपरीत आता रहेगा सारे जीवन के सब तलों पर।
यह कभी आपने ख्याल किया कि जिसको आप प्रेम करेंगे उसके प्रति आपकी घृणा इकट्ठी होने लगती है? फ्रायड ने पहली दफा इस तथ्य की तरफ सूचना दी कि जिसको आप प्रेम करते हैं, उसके प्रति आपकी घृणा इकट्ठी होने लगती है।
क्योंकि प्रेम तो आप कर लेते हैं, फिर प्रेम से ऊबने लगते हैं, अब करेंगे क्या? और जिस व्यक्ति से आप घृणा करते हैं पूरी, उससे बहुत संभावना है कि उसके प्रति आपका प्रेम इकट्ठा होने लगे।
एक यहूदी फकीर था। उसने एक किताब लिखी और किताब बड़ी क्रांतिकारी थी।
तो यहूदियों का जो सबसे बड़ा धर्मगुरु था, जो रब्बी था, उसने वह किताब अपने एक मित्र के हाथ उसको भेंट भेजी कि जाकर रब्बी को मेरी किताब भेंट कर आ! और उस यहूदी फकीर ने--हसीद था वह, बगावती फकीर था--उसने कहा कि सिर्फ इतना ही ख्याल रखना कि जब तुम रब्बी को किताब दो तो रब्बी क्या कहते हैं, क्या करते हैं, उसे जरा ध्यान से देख लेना। तुम्हें कुछ करने की जरूरत नहीं, तुम सिर्फ नोट कर लाना कि उन्होंने क्या कहा, क्या किया, गुस्से में आए, नाराज हुए, किताब फेंकी, कैसा चेहरा था, क्या, सब खबर ले आना।
वह आदमी गया, उसने किताब दी। उसने कहा कि यह फलां-फलां फकीर ने किताब भेजी है। रब्बी ने किताब को तो देखा भी नहीं, हाथ में उठा कर दरवाजे के बाहर फेंक दिया और कहा कि भागो यहां से! इस तरह की किताबों को छूना भी अधर्म और पाप है।
रब्बी की औरत पास में बैठी थी। उसने कहा कि ऐसा क्यों करते हैं! फेंकना भी हो तो वह आदमी चला जाए तो पीछे फेंक सकते हैं। और फिर इतनी हजारों किताबें घर में हैं, एक कोने में उसको भी रख दें, न पढ़ना हो न पढ़ें। लेकिन ऐसा क्यों करते हैं? पर रब्बी आगबबूला हो गया, लाल हो गया।
उस आदमी ने नमस्कार किया, वापस आया। उस फकीर ने पूछा, क्या हुआ?
उसने कहा कि ऐसा-ऐसा हुआ है। रब्बी तो बड़ा खतरनाक है। उसकी पत्नी बहुत भली है। रब्बी ने तो किताब बाहर फेंक दी और कहा कि हटो यहां से, भाग जाओ यहां से। आग हो गया एकदम।
उस फकीर ने कहा, और उसकी पत्नी जो बहुत भली है, जिसको तुम कहते हो, उसने क्या किया? कहा, उसने कहा कि किताब को उठा लाओ। उसने नौकर से किताब बुलवा ली और कहा, घर में इतनी किताबें हैं, यह भी रखी रहेगी, ऐसा भी क्या! और अगर फेंकनी हो तो पीछे फेंक देना, लेकिन सामने ऐसा क्यों करते हो?

तो उस फकीर ने कहा कि रब्बी से तो अपना कभी मेल हो सकता है, लेकिन उसकी पत्नी से कभी नहीं। उस फकीर ने कहा कि रब्बी से तो अपना मेल हो ही जाएगा।
रब्बी को तो किताब पढ़नी ही पड़ेगी। वह तो किताब पढ़ेगा ही, मगर पत्नी उसकी कभी नहीं पढ़ेगी।
तो उस आदमी ने पूछा कि आप तो उलटी बात कह रहे हैं। रब्बी बड़ा नाराज था, एकदम आगबबूला हो गया था।
उसने कहा, वह नाराज हुआ था तो थोड़ी देर में नाराजगी शिथिल होगी। नाराज कोई कितनी देर रहेगा? और जब कोई आग में चढ़ जाता है ऊपर तो वापस उसे शांति में लौटना पड़ता है। जब कोई श्रम करता है तो विश्राम करना पड़ता है। जब कोई जागता है तो सोना पड़ता है। उलटा तो जाना ही पड़ता है। तो रब्बी कितनी देर क्रोध में रहेगा? आखिर डिग्री नीचे आएगी, शांत होगा, किताब उठा कर लाकर पढ़ेगा। लेकिन उसकी पत्नी, उससे कोई आशा नहीं, क्योंकि उसकी कोई डिग्री ही नहीं। वह क्रोध में नहीं गई तो क्षमा में भी नहीं लौटेगी। उसने चीजों को इतनी तटस्थता से लिया है कि उससे अपना कोई संबंध नहीं बन सकता।
जब हम क्रोध कर रहे हैं, तभी क्षमा इकट्ठी होनी शुरू हो जाती है। जब हम क्षमा कर रहे हैं, तभी क्रोध इकट्ठा होना शुरू हो जाता है। जब हम प्रेम कर रहे हैं, तभी घृणा इकट्ठी होने लगती है। जब हम घृणा कर रहे हैं, तभी प्रेम इकट्ठा होने लगता है। और यही द्वंद्व है आदमी का कि जिसको प्रेम करता है, उसको घृणा करता है; जिसको घृणा करता है, उसको भी प्रेम करता है। मित्र सिर्फ मित्र ही नहीं होते, शत्रु भी होते हैं। और शत्रु सिर्फ शत्रु ही नहीं होते, मित्र भी होते हैं। और इसलिए निरंतर यह होता है... ।
इधर मैं निरंतर अनुभव करता हूं कि अगर कोई आदमी मुझे बहुत जोर से प्रेम करने लगे तो मैं जानता हूं कि यह आदमी जल्दी जाएगा, क्योंकि इसकी घृणा इकट्ठी होने लगेगी। और मैं उसके लिए चिंतित हो जाता हूं कि यह आदमी जाएगा। और अब इसके बिना जाए लौटने का कोई उपाय नहीं होगा। और कोई आदमी अगर जोर से मुझे घृणा करने लगे, क्रोध करने लगे, तो मैं जानता हूं कि वह आएगा, क्योंकि इतनी घृणा में कैसे जीएगा, वह तो लौटना पड़ेगा।
महावीर कहते हैं, सब द्वंद्व बांधता है। दूसरे से, उलटे से बांध देता है। इसलिए द्वंद्व के प्रति जागने से वीतरागता उपलब्ध होती है। न काम, न ब्रह्मचर्य; तब सच में ही ब्रह्मचर्य उपलब्ध होता है। न क्रोध, न क्षमा; तब सच में ही क्षमा उपलब्ध होती है, क्योंकि उससे विपरीत फिर होता ही नहीं। न हिंसा, न अहिंसा; तब सच्ची अहिंसा उपलब्ध होती है, क्योंकि फिर उसके विपरीत कुछ होता ही नहीं।
और इसलिए बहुत भूल हो जाती है। महावीर की अहिंसा को समझना मुश्किल हो जाता है, क्योंकि महावीर की अहिंसा वह अहिंसा नहीं है जो हिंसा के विपरीत है। हिंसा के विपरीत जो अहिंसक है, वह तो आज नहीं कल हिंसक हो ही जाएगा। महावीर की अहिंसा को समझना मुश्किल है, क्योंकि वह हिंसा के विपरीत नहीं है। जहां न हिंसा रह गई है, न अहिंसा रह गई है, वहां जो रह गया है, उसको महावीर अहिंसा कह रहे हैं।
तो फिर जब अहिंसा पर बात करेंगे तो ख्याल में आ सकेगी। कुछ और हो तो पूछें।

प्रश्नः आपने जो अशरीरी आत्मा के बारे में कहा है, उससे ऐसा लगता है
कि इस पर स्वतंत्र रूप से फिर कभी विचार करने की भी आवश्यकता है। कारण है कि उसमें कई प्रश्न हमारे सामने उठते हैं। और हमारी कई आस्थाएं और कई विश्वास, ऐसा लगता है जैसे खंडित हो जाते हैं। और सबसे बड़ी बात--जो विश्वास खंडित होता है, वह बुद्ध पर होता है कि बुद्ध ने मृत्यु और जीवन के रहस्य को जानने के लिए और जीवन और मृत्यु से अभय प्राप्त करने के लिए इतनी साधना की। लेकिन वही बुद्ध दलाई लामा के रूप में केवल अपने जीवन को बचाने के लिए ही चीनियों के उस चंगुल से भाग करके यहां पर आता है! वही बुद्ध जिसने अभय भव, अप्प दीपो भव, वह कहा। वही बुद्ध दलाई लामा के रूप में आकर के एक कावर्ड के रूप में हमारे सामने आ जाता है! तो ये कुछ ऐसी चीजें हैं, जिससे लगता है कि या तो वे बुद्ध झूठ थे या यह दलाई लामा जो उनके चिह्न-रूप में आए हैं, ये झूठ हैं। ऐसे कई प्रश्न हैं।

समझा मैं। यह प्रश्न बहुत अच्छा है, इसको तो ले ही लें। असल में चीजें जैसी हमें दिखाई पड़ती हैं, वैसी ही नहीं होतीं। दलाई लामा को समझना बहुत मुश्किल है, क्योंकि जिस भाषा में हम सोचने के आदी हैं, उसमें निश्चय ही वह भागा अपने को बचाने को, कायर मालूम पड़ता है। लड़ना था, जूझना था, भागना क्या था! ऐसा ही हमें दिखाई पड़ता है, जो बिल्कुल सीधा और साफ है।
लेकिन मैं आपसे कहता हूं कि दलाई लामा के भागने में बहुत और अर्थ है। ऊपर से यही दिखाई पड़ता है कि दलाई भागा, बचाया अपने को--बड़ा कायर है। सचाई इतनी नहीं है। सचाई ऊपर से ही इतनी दिखाई पड़ रही है। दलाई लामा का भागना अत्यंत करुणापूर्ण, महत्वपूर्ण है। दलाई अगर वहां लड़ता तो हमारी नजरों में वह बहुत बहादुर हो जाता। लेकिन दलाई लामा को कुछ और बचा कर भागना था, जो हमें दिखाई ही नहीं पड़ रहा है, जो कि लड़ने में नष्ट हो सकता था।
समझ लें कि एक मंदिर है और एक पुजारी है। और यह पुजारी किन्हीं गहरी संपत्तियों का अधिकारी भी है, जो इसके मरते ही एकदम खो जा सकती हैं। खो जा सकती हैं इस अर्थों में कि उनसे संबंध का फिर कोई सूत्र नहीं रह जाएगा। और जरूरी है कि इसके पहले कि यह मरे, वे सारे सूत्र और वह सारी संपत्तियों की खबर किन्हीं को दे दे।
दलाई लामा के पास बहुत इसोटेरिक सूत्र हैं, जिसे इस समय जमीन पर मुश्किल से चार-पांच लोग समझ सकें। दलाई लामा का भाग आना अत्यंत जरूरी था। तिब्बत का उतना मूल्य नहीं है, जितना मूल्य दलाई लामा जो जानता है और जो वह किसी को दे सकता है, उसका है। और तिब्बत की हार भी निश्चित थी।
यह भी बहुत समझने जैसी बात है। तिब्बत की हार बिल्कुल निश्चित थी। तिब्बत का चीन में डूबना निश्चित था। यह भी दलाई लामा को दिखाई पड़ सकता है, जो दूसरे को दिखाई नहीं पड़ सकता। और अगर ऐसा साफ दिखाई पड़ता हो तो उचित लड़ना नहीं है, उचित चुपचाप हट जाना है--उस सबको लेकर जो बचाना ज्यादा कीमती है। और तिब्बत तो बचेगा नहीं और वह सब बच सकता है भागने से।
और आज दलाई बैठ कर वह सारा प्रयोग कर रहा है। दस-पच्चीस लोगों को साथ लेकर, जिनको लेकर वह भाग आया है कीमती लोगों को, उनको सारी संपदा जो भी वह जानता है, वह दे रहा है। उसके मरने का तो कोई सवाल ही नहीं है। वह तो मरेगा ही। वह तिब्बत में भी मर सकता था, यहां भी मरेगा, मरने से बचने का प्रश्न ही नहीं है।
बहुत बार ऐसा हुआ है। यह पहली बार नहीं हुआ। हिंदुस्तान में बौद्ध भिक्षुओं को भागना पड़ा हिंदुस्तान से। एक वक्त आया कि हिंदुस्तान से बौद्ध भिक्षुओं को भागना पड़ा। और भागना इसलिए जरूरी हो गया कि यहां भूमि बिल्कुल बंजर हो गई उनके लिए। उनको ग्रहण करने के लिए, जो उनके पास था, कोई नहीं बचा। अपनी जान का सवाल न था। लेकिन जो वे जानते थे, जो बीज उनके पास थे, जो किसी भूमि में अंकुरित हो सकते थे, उनको भाग कर सारे एशिया में खोज करनी पड़ी कि कहीं और हो सकता है कुछ!
और उन्होंने बड़ी कृपा की कि वे चीन चले गए, तिब्बत चले गए, बर्मा चले गए, थाई चले गए और जाकर उन्होंने वहां बीज आरोपित कर दिए। फिर उनके बीजों से आज फिर बीज लौटने की संभावना बन सकती है।
लेकिन यह हो सकता था, उस वक्त वे भी भिक्षु जो भागे इस मुल्क से कायर मालूम पड़े होंगे। लड़ना था यहां, जाना कहां था! लेकिन जिनके पास कुछ है वे लड़ने से ज्यादा उसको बचाने की फिक्र करेंगे। जैसे कि बुद्ध जिस वृक्ष के नीचे बैठे और बोधि को प्राप्त हुए, वह मूल वृक्ष नष्ट हो गया, लेकिन उसकी एक शाखा अशोक ने लंका भेज दी थी, वह लंका में सुरक्षित रही। अब वापस उसकी एक शाखा उस वृक्ष की जगह आ गई। मूल वृक्ष तो नष्ट हो गया। नष्ट किया ही गया होगा, क्योंकि जब बौद्धों के पैर उखड़ गए तो सब नष्ट कर दिया गया।
आप हैरान होंगे जान कर कि बुद्ध का जो मंदिर है, उसका पुजारी भी ब्राह्मण है, वह बौद्ध नहीं है। वह संपत्ति भी एक ब्राह्मण पुजारी की है-- वह मंदिर और सारी व्यवस्था। वह सब नष्ट हो गया। लेकिन अशोक के द्वारा भेजी गई उस वृक्ष की एक शाखा लंका में पल्लवित हो गई। उस शाखा की फिर एक शाखा लाकर हम लगा सके। वह उस वृक्ष का एक बच्चा मौजूद है।

यह तो वृक्ष का मैंने इसलिए कहा कि प्रतीक की तरह ख्याल में आ जाए। तिब्बत में फिर वह हालत आ गई कि तिब्बत चीन के हाथ में जाएगा। और कम्युनिज्म जितनी जोर से दुनिया से इसोटेरिक साइंस को खतम कर सकता है, उतनी कोई चीज खतम नहीं कर सकती।
यह आपको ख्याल में नहीं है। कम्युनिज्म, जो भी आंतरिक सत्य हैं और उनके जो भी सूत्र हैं, उनको जड़-मूल से काटने में उत्सुक है। और जहां भी जाएगा, वहां सबसे पहले जो काम करेगा, वह उस मुल्क की जो आंतरिक संपदा है, उसको बिल्कुल तोड़ डालेगा।
तो तिब्बत कम्युनिस्टों के हाथ में जाने के बाद तिब्बत में जो सबसे पहली चोट होने वाली थी, वह चोट थी उनकी जो... । और तिब्बत बहुत अदभुत था इस अर्थों में कि दुनिया में तिब्बत के पास सर्वाधिक बहुमूल्य संपत्ति है आंतरिक सत्यों की, क्योंकि दुनिया से कटा हुआ जीया। दुनिया की उसे कोई खबर न थी, दुनिया का कोई संबंध न था उसको। दुनिया का तालमेल उससे न था। वह दूर अकेले में, एकांत में चुपचाप पड़ा था। और अतीत की जो भी संपदा थी जानने की, वह सब उसने संरक्षित कर ली थी।
दलाई का भागना बहुत जरूरी था। लेकिन मुश्किल है कि कोई आदमी इसकी तारीफ कर सके, लेकिन मैं तारीफ करता हूं। और मैं मानता हूं दलाई वहां लड़ता--दो कौड़ी की बात थी वह लड़ना न लड़ना। कायर नहीं है आदमी, लेकिन जो बचा कर ले आया है, उसे आरोपित कर देना जरूरी है।
लेकिन इस मुल्क में लोगों को ख्याल भी नहीं है कि दलाई के साथ एक बहुत बड़ी मूल शाखा वापस लौटी है, जो यह मुल्क उससे फायदा उठा सकता है। लेकिन मुल्क को कोई मतलब नहीं है! मुल्क को कोई मतलब ही नहीं है! कोई संबंध ही नहीं है दलाई से मुल्क का! वह आपके मुल्क में है, यह घटना बहुत महत्वपूर्ण है। यह आसान न था, उसको ले आना आसान न था। यह बिल्कुल अवसर है, वक्त है, समय है कि उसको यहां आ जाना पड़ा है और उसका हम फायदा ले सकते हैं। बहुत से इसोटेरिक, बहुत से गुह्य सत्य हैं, जो उससे पता चल सकते हैं।
लेकिन हमें कोई मतलब नहीं है, हमें कोई प्रयोजन नहीं है! और हमको दिखता ऊपर से यही है... मैं ऐसा नहीं मानता। मैं ऐसा नहीं मानता।
अगर समझ लीजिए कि यहां मैं हूं और मुझे लगे कि इस देश में उस बात से कोई मतलब नहीं हल होने वाला है, नहीं हैं वे लोग... । अब ये बहुत सी बातें हैं, और बहुत और तरह की बातें हैं। अब मैं आपको कहूं कि जिन लोगों से मेरे इस जीवन में संबंध बन रहे हैं, उनमें से मैं बहुतों को पहचानता हूं, जिनसे मेरे पिछले जीवन में संबंध थे। और उनके लिए सारी मेहनत करूं। और कल मुझे ऐसा लगे... चालीस करोड़, पचास करोड़ के मुल्क से मुझे कोई मतलब नहीं है। मतलब दो-चार सौ लोगों से है। चालीस-पचास करोड़ के साथ भी जो मेहनत कर रहा हूं, उन दो-चार सौ लोगों को अपने पास ले आऊं उसके लिए। और कल मुझे ऐसा लगे कि वे दो- चार सौ लोग मेरे करीब आ गए हैं। और कल मुझे ऐसा लगे कि मुल्क समझो कम्युनिस्टों के हाथ में जाता है या ऐसे लोगों के हाथ में जाता है, जो कि जड़ काट देंगे, तो मैं चार सौ लोगों को लेकर कहीं भी भाग जाना पसंद करूंगा। आप मेरा मतलब समझ रहे हैं न? मैं उन चार सौ लोगों को लेकर भाग जाना पसंद करूंगा। पचास करोड़ से मुझे कोई प्रयोजन ही नहीं है। मैं उन चार सौ लोगों को लेकर भाग जाऊंगा कहीं भी दूर जंगल में। दुनिया को यही लगेगा कि यह आदमी भाग गया, कुछ लड़ा नहीं, वक्त पर काम नहीं आया। लेकिन मैं जानता हूं कि मुझे क्या करना चाहिए।
वह दलाई लामा थोड़े से लोगों को लेकर भाग आया है। और उन थोड़े से लोगों में उन कीमती लोगों को बचा लाया है, जो कि आगे शाखाएं सिद्ध हो सकें। और हो सकता है, दो सौ वर्ष बाद, सौ वर्ष बाद, पचास वर्ष बाद तिब्बत की हवाएं ठीक हो जाएं और दलाई लामा जो बचा ले, वह वापस तिब्बत में आरोपित हो सके। इसकी आशा में लगा हुआ है। जो सारी आशा और आकांक्षा है, जिसके पीछे इतना कष्ट झेलता है कोई, वह आशा और आकांक्षा यह है कि चीज बच जाए। और अगर पचास साल बाद या सौ साल बाद--क्योंकि कोई जिंदगी एक सी थोड़े ही चलती रहती है। पचास, एक सौ साल में सारी चीजें बदल जाएंगी, तो तिब्बत में फिर वापस लौट आया जा सकता है। वे चीजें फिर तिब्बत वापस पहुंच सकती हैं।

लेकिन वे सत्य हमें दिखाई नहीं पड़ते, वह संपदा हमारी आंखों की संपदा नहीं है। वे सारे बहुमूल्य ग्रंथ अपने साथ ले आया है, जो सिर्फ तिब्बती में ही सुरक्षित रहे हैं। वे सब ग्रंथ अपने साथ ले आया है दलाई, जो सिर्फ तिब्बती में सुरक्षित हैं, संस्कृत में नष्ट हो गए हैं। सिर्फ दलाई की संपदा हैं वे और उनको किसी भी हालत में बचाना जरूरी है।
अब यह हम सोचें कि जो आदमी हिंदुस्तान से भिक्षु भाग कर गया तिब्बत या चीन... । हिंदुस्तान में ग्रंथों का सफाया किया गया बुरी तरह से, बौद्धों के सारे सूत्र-ग्रंथ यहां नष्ट किए गए। जो लोग यहां से भाग गए ग्रंथों को लेकर, वे आज चीनी में, तिब्बती में, बर्मी में सुरक्षित हैं। अब वे फिर वापस लौटाए जा सकते हैं। अब ऐसे-ऐसे अदभुत ग्रंथ हमने खो दिए, जिनका कोई हिसाब नहीं है। हमने ही उनको जला डाला, उनका कोई हिसाब नहीं है।
तो उस दिन तो ऐसा ही लगा होगा कि बोधिधर्म चीन क्यों जा रहा है? भागता
है जिंदगी से? लेकिन बोधिधर्म ने ध्यान की जो मूल शाखा थी बुद्ध की, उसको नष्ट नहीं होने दिया। उस एक आदमी पर निर्भर था वह मामला। वह एक आदमी मर जाए रास्ते में तो इतनी बड़ी संपदा नष्ट होती थी, जिसका कोई हिसाब लगाना मुश्किल था।
बुद्ध के जीवन में एक बहुत अदभुत घटना है। एक दिन सुबह-सुबह बुद्ध एक फूल लेकर आए हैं। ऐसा कभी नहीं आते हैं। किसी ने रास्ते में फूल दे दिया है, वे उसको लेकर आकर मंच पर बैठ गए हैं, फिर चुप बैठे रहे हैं। बड़ी देर हो गई, फिर भिक्षु राह देखते-देखते थक गए हैं कि वे बोलें, बोलें, बोलें। फिर बेचैनी शुरू हो गई कि चुप क्यों हैं? बोलते क्यों नहीं? तब वे हंसने लगे हैं। उनकी हंसी सुन कर एक महाकाश्यप नाम का भिक्षु जोर से हंसा है।
यह आदमी कभी बोला ही नहीं था इसके पहले। यह चुप ही रहता था। यह कभी बोलता ही नहीं था। यह जोर से हंसा है। बुद्ध ने उसे बुलाया और उसको हाथ में वह फूल दे दिया और भिक्षुओं से कहा कि जो मैं बोल कर दे सकता था, वह मैंने तुम्हें दिया, जो मैं बोल कर नहीं दे सकता था, वह मैं महाकाश्यप को देता हूं।
कोई चीज ट्रांसफर की गई, जो दिखाई नहीं पड़ती। बुद्ध ने कहा कि जो मैं नहीं दे सकता था शब्द से, वह मैं महाकाश्यप को दिए देता हूं। हजारों साल से यह पूछा जाता रहा कि महाकाश्यप को दिया क्या? कौन सी चीज ट्रांसफर की गई थी? लेकिन अगर शब्द में बुद्ध कह सकते तो वे खुद ही कह दिए होते। तो अब कौन कहे कि क्या हुआ?
महाकाश्यप बुद्ध की आंतरिक संपदा का, इसोटेरिक साइंस का अधिकारी बना।
और महाकाश्यप का कोई नाम नहीं होगा, क्योंकि न उसने कोई किताब लिखी। महाकाश्यप का बौद्ध-ग्रंथों में ही नाम खोजना मुश्किल हो जाता है, क्योंकि उसके नाम का कोई कारण नहीं। लेकिन वह इतनी घटना है। और महाकाश्यप के पास जो था, वह खोज-खोज कर किन्हीं व्यक्तियों को देता रहा, क्योंकि वह मामला देने का था, वह मामला समझाने का नहीं था। जब कोई उस योग्यता में था, तब वह ट्रांसफर कर दिया गया।
महाकाश्यप की परंपरा में भिक्षु था बोधिधर्म। बोधिधर्म हिंदुस्तान
से भागा, क्योंकि हिंदुस्तान में उसे कोई आदमी नहीं मिला जिसको वह ट्रांसफर कर दे; जो उसके पास था वह मर जाएगा। वह मर जाएगा, तो हिंदुस्तान से भागा और चीन में एक आदमी को ट्रांसफर किया।
चीन में वह परंपरा कुछ पीढ़ियों तक चली और अंततः उस परंपरा को जापान ट्रांसफर करना पड़ा, क्योंकि कोई आदमी चीन में उपलब्ध नहीं हुआ। अब वह जापान में जिंदा है। अब वह जापान में जिंदा है। जो झेन है, वह महाकाश्यप पहला गुरु है झेन का। और अब वह जापान में है, सुजुकी जापान में उसका आखिरी गुरु है अभी। लेकिन अब ऐसा डर हो गया है कि वह जापान में भी कोई ले सकता है कि नहीं।
तो सुजुकी पूरी जिंदगी से यूरोप और अमरीका में मेहनत कर रहा है किसी
को ट्रांसफर कर देने के लिए। रिसेप्टिव माइंड चाहिए न! और जापान में आशा नहीं बनती है अब, क्योंकि जापान एकदम मैटीरियलिस्टिक हुआ है, सारी चेतना जड़ता से भर गई है।

तो एक तरफ जो विकास होता है, दूसरी तरफ पतन हो जाता है कई बार। अब जापान एकदम आधुनिक है, अत्याधुनिक है। तो किसको वह दिया जाए? अब वह बूढ़ा आदमी, हद बूढ़ा आदमी सुजुकी पूरी जिंदगी से यूरोप में भटक रहा है। लेकिन दो- तीन आदमी उसको मिल गए। फ्रांस में एक फ्रेंच है हूबर्ट बिनायट, एक अमेरिकन है अलेन वाट्स, उसने उनको दे दिया। अब उसका छुटकारा हो गया। अब वे जानेंगे, समझेंगे।
महाकाश्यप के पास जो था, वह हूबर्ट बिनायट के पास है, अलेन वाट्स के पास है। कुछ चीजें इतनी गुह्य हैं, इतनी गहरी हैं कि उसको रिसीव करने के लिए आदमी चाहिए न! पर वह तो सब हमें दिखाई पड़ता नहीं कि वह सब कैसे चलता है। वह सब कैसे जाता है, हमें दिखाई नहीं पड़ता। और जिसके पास है, वह जानता है उसकी तकलीफ को कि क्या करे, वह उसको कैसे पहुंचा दे कि वह बच जाए। मैं तो मर जाऊं, लेकिन कुछ मेरे पास है, तो वह बच जाए। वह मुझसे ज्यादा कीमती है, वह बचना चाहिए, वह कहीं किसी के काम आता रहेगा पीढ़ियों-पीढ़ियों तक।
इसलिए उसको ऐसा मत लें। ऐसा नहीं है मामला।

प्रश्नः जो आपने बोला साक्षी का, तो भोजन शरीर की मांग है; मैथुन, जो सेक्स है, वह अनुभूति है। जब मूर्च्छा होती है, तब यह अनुभूति पैदा होती है। जब साक्षी होता है, तब यह मूर्च्छा हो ही नहीं सकती और अनुभूति हो ही नहीं सकती, तो मैथुन कैसे हो सकता है?

साधारणतः ठीक कह रहे हो। साधारणतः बिल्कुल ठीक कह रहे हो, बिल्कुल ठीक कह रहे हो। लेकिन कोई भी क्रिया दो तरह से हो सकती हैः या तो उस क्रिया में डूबो तो, या उस क्रिया के बाहर खड़े रह जाओ तो।
जब डूबोगे तुम उस क्रिया में, तब तुम मूर्च्छित हो जाओगे। जब तुम क्रिया के बाहर खड़े रहोगे तो तुम साक्षी रहोगे। पहली हालत में मैथुन तुम्हारी जरूरत होगी, दूसरी हालत में कोई और जरूरत हो सकती है। और बहुत तरह की जरूरत--जैसा मैंने अभी कहा कि ज्ञान को ट्रांसफर करने की बात है। अब यह तुम हैरान होओगे कि कुछ लोग जो इस स्थिति में पहुंच जाएं, जहां मैथुन बिल्कुल अनावश्यक हो गया, फिर भी जिस शरीर की संभावना उनके पास है, उसको वे ट्रांसफर करना चाहें। वे उस शाखा को भी तोड़ न देना चाहें, वह शाखा भी कीमत की है। जैसे बुद्ध जैसा व्यक्ति या महावीर जैसा व्यक्ति।
एक तो आत्मा की यात्रा है, लेकिन एक शरीर भी चाहिए, जो उतनी कीमती आत्मा को पकड़ता हो। वैसे व्यक्ति यह भी न चाहें... क्योंकि महावीर तक आते- आते जो वीर्य-अणु विकसित हुआ है, वह साधारण नहीं है। आत्मा असाधारण है, ऐसा तो है ही, लेकिन जो वीर्य-अणु महावीर तक आते-आते विकसित हुआ है, वह भी साधारण नहीं है। वे उसको भी ट्रांसफर करना चाहें।
तब मैथुन अर्थपूर्ण नहीं है। मैथुन उनका रस नहीं है। तब मैथुन भी एक जैसे भोजन या स्नान या सोना या उठना या बैठना, वैसी ही एक बाह्य जरूरत की चीज है और उपयोगी हो सकती है। बिल्कुल उपयोगी हो सकती है। बल्कि हो सकता है कि हजार, दो हजार वर्ष बाद जब कि हमारा ज्ञान जेनेटिक्स का और बढ़ जाएगा-- अभी बहुत बढ़ गया है--तो शायद हम नाराज हों जीसस पर कि वह जो वीर्य-अणु की उतनी लंबी यात्रा थी, जो जीसस पर आकर इस भांति फलीभूत हुई, वह वीर्य-अणु की संपदा जारी क्यों न रखी? हम नाराज हो सकते हैं। क्योंकि वह दुबारा नहीं संभव है। वह करोड़ों-लाखों वर्षों की यात्रा के बाद उस तरह का वीर्य-अणु, विशिष्ट वीर्य-अणु जीसस के शरीर में है और जीसस के शरीर के साथ खो जाती है वह शाखा।
मेरा मतलब समझ रहे हो न तुम? यानी यह हो सकता है। अभी तो संभव नहीं था पहले, लेकिन आज से हजार साल बाद, बल्कि पांच सौ साल बाद, बल्कि शायद पचास साल बाद यह संभव हो जाएगा कि बहुत महत्वपूर्ण व्यक्तियों के वीर्य-अणुओं को हम सुरक्षित रख सकें।
आइंस्टीन जैसे आदमी के वीर्य-अणु को सुरक्षित रखने की जरूरत है, क्योंकि यह संभावना मुश्किल से फलीभूत होती है। यह साधारण संभावना नहीं है। आइंस्टीन जैसे व्यक्ति का वीर्य-अणु सुरक्षित रखने की जरूरत है। और कभी आइंस्टीन जैसी स्त्री उपलब्ध हो जाए, आइंस्टीन के मरने के दो सौ साल

बाद--अब तो वीर्य-अणु सुरक्षित रह सकता है--तो उस स्त्री के अणु से इस अणु के संयोग से जो व्यक्ति पैदा किया जा सके, वह ऐसा अनूठा होगा, जैसा आइंस्टीन भी नहीं था।
तो वह तो जैसे-जैसे समझ हमारी बढ़ती है, वैसे-वैसे हम श्रेष्ठ लोगों के वीर्य-अणुओं को नष्ट नहीं होने देंगे, उनको हम बचा कर रखेंगे। और उस वक्त तो कोई और उपाय नहीं था, अब तो यह उपाय है।
अब तो यह उपाय है कि मैथुन अनिवार्य नहीं है, वीर्य-अणु सुरक्षित किया
जा सकता है। बिना मैथुन के वीर्य-अणु सक्रिय हो सकता है और उससे संतति हो सकती है। लेकिन उस वक्त यह उपाय नहीं था।
तो मेरा मानना है कि यह भी ध्यान में हो सकता है। बुद्ध ने भी एक बेटे
को जन्म दिया, महावीर ने एक बेटी को। और यह ख्याल हो सकता है पीछे। लेकिन बहुत कांबिनेशंस की बात है। वह भी संरक्षित रहना चाहिए। पर तब मैथुन रस नहीं है आपका। समझे आप? मैं कह रहा हूं मैथुन में जब रस है, तब आप डूबते हैं; जब रस नहीं है, तब कोई बात नहीं है, तब वह एक बिल्कुल यांत्रिक क्रिया है।

प्रश्नः वह बायोलॉजिकल कैसे हो सकता है? बायोलॉजिकल क्या है कि मूर्च्छित होने से पीछे अनुभूति होती है। और बिना अनुभूति के सेक्स कैसे हो सकता है? बायोलॉजिकल कैसे हो सकता है?

अनुभूति वगैरह कुछ नहीं होती आपको। जो होता है कुल जमा, वह इतना होता
है कि आपके चित्त का तनाव शरीर से शक्ति के बाहर निकल जाने से रिलैक्स हो जाता है, और कुछ नहीं होता आपको। उस रिलैक्सेशन को आप बड़ी अनुभूति समझ लेते हैं। अनुभूति वगैरह कुछ नहीं होती आपको। फिर तनाव इकट्ठा हो जाता है, फिर बोझ इकट्ठा हो जाता है; फिर वीर्य की शक्ति से बाहर निकल जाता है, आप फिर रिलैक्स हो जाते हैं। अनुभूति क्या खाक होती है आपको! अनुभूति हुई क्या है कभी!
अनुभूति हो सकती है, लेकिन उसके सब उपाय दूसरे हैं, वह मामला फिर सेक्स का नहीं। बायोलॉजिकली तो सिर्फ आपके टेंशन को रिलैक्स कर देता है। इसलिए बहुत रिलैक्स लोगों के लिए उसकी जरूरत भी नहीं रह जाती, बहुत टेंस लोगों के लिए जरूरत बढ़ जाती है। जितना टेंशन बढ़ता है, उतना सेक्स बढ़ता है। पश्चिम में जो इतनी सेक्सुअलिटी है, उसका और कोई कारण नहीं है, चित्त अत्यंत तनावग्रस्त हो गया है, उस तनाव को शिथिल करने के लिए अब एक ही उपाय है कि शरीर से शक्ति बाहर हो जाए। वह रिलीजिंग वाल्व है आपकी शक्ति का, और कुछ नहीं है इससे ज्यादा। तो बहुत जिसको कहें कनसनट्रेटेड शक्ति एकदम से बाहर हो जाती है। सारे शरीर के स्नायु शिथिल हो जाते हैं। उतनी कनसनट्रेटेड शक्ति के निकलने पर शिथिल होना ही पड़ेगा। और यह जो शिथिलता आपको मालूम पड़ती है, आप समझते हैं कि यह आपको सेक्स का अनुभव हो रहा है। यह सिर्फ आया हुआ रिलैक्सेशन काम कर रहा है। दो दिन बाद आप फिर टेंस हो जाते हैं, दस दिन बाद फिर टेंस हो जाते हैं, फिर रिलैक्स होने की जरूरत पड़ जाती है। जैसे कि आपके कुकर में या हीटर में वाल्व लगा हुआ है, ज्यादा गर्मी हो गई तो उस वाल्व से निकल जाती है, वैसा वाल्व है सिर्फ। और बायोलॉजी उसका उपयोग कर लेती है।
इसमें कोई... अनुभूति क्या हो जाती है? अनुभूति कुछ भी नहीं होती। मजा
यह है, अनुभूति कुछ भी नहीं होती। लेकिन जब तनाव बढ़ जाता है तो फिर जरूरत हो जाती है तो फिर वह हो जाता है।
इसलिए जो लोग जितने शिथिल, शांति से जीते हैं, उनके लिए उतनी ही अनावश्यक हो जाती है बात। उस स्थिति में भी उनके लिए दूसरे कारण प्रभावित कर सकते हैं, विचार दे सकते हैं और वे मैथुन का भी एक क्रिया की तरह उपयोग कर सकते हैं। वह जो मैं कह रहा हूं, उनके लिए कोई अनुभव वगैरह की बात नहीं है उसमें, कोई अनुभव की बात नहीं है।

प्रश्नः एक जो बात आपने आज कही वह शायद ज्यादा महत्वपूर्ण है और बहुत दिनों से, जो भी जैन धर्म पर सोचते हैं, उनके मन में चक्कर काटती है। आपने

कहा, महावीर वीतराग हैं, न रागी हैं, न वैरागी। लोग इसे दूसरी तरह से भी कहते हैंः वे राग-द्वेष दोनों से मुक्त हैं। पर प्रश्न यह है कि मान लीजिए स्त्री का आकर्षण, यह भी व्यर्थ है, स्त्री की रिपल्शन, यह भी व्यर्थ है। समाज की व्यवस्था के लिए यह उपदेश आपका जो है वीतरागता का, वह सामान्य स्तर पर बरता जा सके, इसकी बहुत कम आशा है। यानी चालीस करोड़, पैंतालीस करोड़ लोग वीतराग हो जाएंगे, इसकी आशा बहुत कम है। और जो समाज का नियंत्रण है, उसके लिए संयम चाहे वह ऊपरी भी क्यों न हो, आवश्यक सा प्रतीत होता है। महावीर ने या आपने स्वयं ने इसके लिए क्या सोचा है? क्या समाज की व्यवस्था के लिए वह नियंत्रण जो ऊपरी है और अध्यात्म की दृष्टि से व्यर्थ सा भी है, पर समाज की दृष्टि से तो बहुत उपयोगी है। उस नियंत्रण के बारे में क्या तो महावीर कहना चाहते थे और क्या आप कहना चाहेंगे?

समझा। पहली बात तो यह कि वीतरागता करोड़ों लोगों के लिए कठिन तो है, असंभव नहीं। और कठिन होने का बड़े से बड़ा कारण यह है कि कठिन मान ली गई है-- बड़े से बड़ा कारण! यह हमारी धारणा है कि कठिन है--किसी चीज के प्रति--तो वह कठिन हो जाती है। हमारी धारणा ही चीजों को कठिन और सरल बनाती है। जब मैं कहता हूं कठिन है, असंभव नहीं, तो मेरा मतलब यह है कि कठिन भी इसलिए नहीं है कि वीतरागता की प्रक्रिया कठिन है, बल्कि हमारे राग और विराग की पकड़ कठिन है। इसलिए उसे छोड़ने में मुश्किल हो जाती है।
यानी जैसे एक आदमी पहाड़ चढ़ रहा है, और बड़ा बोझ लिए हुए है, गट्ठर बांधे हुए है, पत्थर बांधे हुए है और चढ़ रहा है। और वह आदमी कहता है, पहाड़ पर चढ़ना बहुत कठिन है। तो हम उससे कहें, पहाड़ पर चढ़ना इतना कठिन नहीं है, जितना कठिन तुम्हारा बोझ है, तुम इसे छोड़ सको तो पहाड़ पर तुम बड़ी सरलता से चढ़ सकते हो। असली सवाल पहाड़ पर चढ़ने की कठिनाई का नहीं है, जितना कि तुम बोझ बांधे हुए हो, जिसके साथ तुम नहीं चढ़ सकते, और उसे तुम छोड़ना नहीं चाहते, इसलिए कठिन हुआ जा रहा है। मेरा मतलब समझे न?
एक-एक आदमी जिस तरह के मानसिक बोझ को पकड़े हुए है, उसकी वजह से वीतरागता कठिन है। और अगर वह यह भी मान ले कि कठिन है तो वह बोझ को तो छोड़ता ही नहीं, बल्कि बोझ को और पकड़ लेता है, ताकि सिद्ध हो जाए कि बिल्कुल कठिन है, वह सरल है ही नहीं मामला।
सच्चाई में तो यह है हालत कि राग और विराग बहुत ही कठिन है, असंभव है, असंभव है। न तो तुम राग से कुछ उपलब्ध कर पाते हो कभी भी और न विराग से कुछ उपलब्ध कर पाते हो।

प्रश्नः समाज व्यवस्था भी नहीं बन पाती।

मैं बात करता हूं न!
राग से तुम कभी भी कुछ उपलब्ध नहीं कर पाते हो, सिर्फ राग से तुम विराग
की प्रवृत्ति उपलब्ध कर पाते हो और विराग से राग की प्रवृत्ति उपलब्ध कर पाते हो। यानी राग की उपलब्धि ही क्या है--सिर्फ विराग को पकड़ा देना। और विराग की उपलब्धि है राग को पकड़ा देना। और यह वीसियस सर्किल है। इसकी उपलब्धि कुछ है ही नहीं। तुम स्वयं को तो कभी उपलब्ध कर ही नहीं सकते दोनों हालत में। तो व्यक्ति ही नहीं बन पाते हो तुम, अगर राग और विराग में पड़े हुए हो तो।
और वह जो लोग कहते हैं कि राग और द्वेष से छूट जाना वीतरागता है, वह बड़ी गलत व्याख्या कर रहे हैं। वे विराग को बचा जाते हैं। राग और द्वेष से मुक्त हो जाना अगर वीतरागता का अर्थ उन्होंने किया, तो वे विराग को बचा जाते हैं। और वह तरकीब है बहुत, शरारत है।
राग का ठीक विरोधी विराग है, द्वेष नहीं। द्वेष तो राग का ही हिस्सा है, विरोधी नहीं है, विरोधी तो विराग है। द्वंद्व विराग का है राग से, द्वेष से नहीं। तो वे तरकीब से बचा गए। उन्होंने विरागी को बचा लिया और विरागी और वीतरागी को उन्होंने सीढ़ी बना दिया, कि विराग से फिर वीतराग की सीढ़ी जाती है।

मैं यह कह रहा हूंः चाहे राग से जाओ, चाहे विराग से, वीतराग होने का फासला दोनों से बराबर है।

प्रश्नः इसे वे निश्चय-दृष्टि कहते हैं, पर व्यवहार-दृष्टि में कहते हैं अंतर है!

इसे हम समझें।
तो दूसरी बात यह कि अगर यह कठिन नहीं है, क्योंकि जो स्वभाव है, वह अंततः कठिन नहीं हो सकता, विभाव ही कठिन हो सकता है। और जो स्वभाव है, वह इतना आनंदपूर्ण है कि उसकी एक झलक मिलनी शुरू हो जाए तो हम कितने ही पहाड़ उसके लिए चढ़ जाते हैं। बस झलक जब तक नहीं मिलती, तब तक कठिनाई है। और झलक राग और विराग मिलने नहीं देते हैं। ये जरा ही सा हटें तो उसकी झलक मिलनी शुरू हो जाती है। जैसे आकाश में बादल घिरे हुए हैं और सूरज की किरण भी दिखाई नहीं पड़ती, जरा सा बादल सरके और किरण झांकने लगती है। राग और विराग के द्वंद्व की जरा सी भी झांक टूट जाए--खिड़की, तो वीतरागता का आनंद एकदम बहने लगता है। और वह बहने लगे तो कितनी ही यात्रा पर जाना संभव है, कठिन नहीं है।
लेकिन हम क्या करते हैं? हम राग से विराग में जाते हैं, विराग से राग में आते हैं। वे दोनों ही एक से घेरने वाले बादल हैं। इसलिए कभी संध भी नहीं मिलती उसको जानने की। राग-विराग में डोलते हुए मनुष्यों का जो समाज है, वह नियम बनाएगा। बनाएगा ही, क्योंकि राग-विराग में डोलता हुआ आदमी बहुत खतरनाक आदमी है। उसके लिए नियम बनाने पड़ेंगे। और नियम कौन बनाएगा? वही राग-विराग में डोलते हुए आदमी नियम भी बनाएंगे। राग-विराग में डोलते हुए लोग खतरनाक हैं, राग-विराग में डोलते हुए नियम बनाने वाले और भी खतरनाक हैं।
यानी मामला ऐसा है जैसे पागलों का पागलखाना है एक, तो पागलों के लिए कुछ नियम बनाने पड़ेंगे। और नियम बनाने वाले भी पागल हों, तो नियम और खतरनाक होंगे, क्योंकि पागल नियम बनाएंगे--और पागलों के लिए! तो पागल ही खतरनाक हैं, फिर पागल नियम बनाते हैं, तब और खतरा शुरू हो जाता है। तो समाज ऐसे ही खतरे में जी रहा है।
और जब हम यह कहते हैं कि वीतरागता की तरफ जाना है, जो हम यह नहीं कहते
कि नियम तोड़ देना है। हम यह नहीं कह रहे। मैं तो यह कह रहा हूं कि जो व्यक्ति थोड़ी सी भी वीतरागता की तरफ गया, उसके लिए नियम अनावश्यक है। यानी वह जीता ही ऐसा है कि उससे किसी को कभी दुख, पीड़ा--यह सब सवाल नहीं है। हां, कोई उससे दुख लेना ही चाहे तो बात अलग है। उसकी मुक्ति है उसे।
महावीर तो ऐसे जीते हैं कि उनसे किसी को दुख-सुख का सवाल नहीं है, लेकिन कोई दुख-सुख लेना चाहता है तो वह लेता है। लेकिन पूरा जिम्मा लेने वाले पर ही है। महावीर का देने का कोई हाथ नहीं है उसमें जरा भी। कोई दुख लेगा, कोई सुख लेगा, वह उस लेने वाले पर निर्भर है। महावीर तो जैसे जीते हैं, वे जीते हैं।
जितना वीतराग चित्त होगा, उतना विवेकपूर्ण होगा। पूर्ण वीतरागता पूर्ण विवेक है। और विवेक के लिए किसी संयम की जरूरत नहीं, किसी नियम की जरूरत नहीं, क्योंकि विवेक स्वयं ही संयम है। अविवेक के लिए संयम की जरूरत है। इसलिए सब संयमी अविवेकी होते हैं। जितनी बुद्धिहीनता होगी, उतना संयम बांधना पड़ता है। यानी बुद्धि की कमी को पूरा वे संयम से करने की कोशिश करते हैं। लेकिन संयम से बुद्धि की कमी पूरी नहीं होती। और अब तक हमने जो समाज बनाया है, वह बुद्धि की कमी को संयम से पूरा करने की कोशिश कर रहा है। इसलिए हजारों साल हो गए, लेकिन कुछ फर्क नहीं पड़ा है।

प्रश्नः पर समाज तो बड़ा है, उसे तोड़ दें तो समाज ही... ।

यह मैं नहीं कह रहा हूं। यह मैं नहीं कह रहा हूं। यह वैसी ही बात है जैसे पागलखाने के लोग कहें कि अगर हम ठीक हो जाएंगे तो पागलखाने का क्या होगा?

फिर पागलखाना ही टूट जाएगा न! अगर लोग विवेकपूर्ण हो जाएं तो समाज तो नहीं होगा, जैसा हम समाज समझते रहे हैं, बिल्कुल बुनियादी फर्क हो जाएंगे। लेकिन पहली दफा ठीक अर्थों में समाज होगा।
अभी क्या है--समाज है और व्यक्ति नहीं है। और समाज जो है वह सब व्यक्तियों को अपने घेरे में कसे हुए है। और समाज केवल व्यवस्था का नाम है। व्यवस्था वजनी है और व्यक्ति कमजोर है। व्यवस्था छाती पर बैठी है और व्यक्ति नीचे दबा है।
कल भी व्यवस्था होगी, जिस व्यक्ति की मैं बात कर रहा हूं अगर वह बढ़ जाए--विवेकपूर्ण व्यक्ति, वीतराग चित्त से भरा हुआ व्यक्ति, जीवन के आनंद से भरा हुआ व्यक्ति--तो भी व्यवस्था होगी। लेकिन व्यक्ति की छाती पर नहीं होगी, व्यक्ति के लिए ही व्यवस्था होगी।
अभी हालत यह हो गई है कि व्यवस्था के लिए व्यक्ति हो गया है। और तब भी समाज होगा, लेकिन तब समाज दो व्यक्तियों, दस व्यक्तियों, हजार व्यक्तियों के बीच के इंटर-रिलेशनशिप का नाम होगा, अंतर्संबंध का नाम होगा। व्यक्ति केंद्र होगा, समाज गौण होगा। और समाज केवल हमारे अंतर्व्यवहार की व्यवस्था होगी। और विवेकपूर्ण व्यक्ति का अंतर्व्यवहार किसी बाहरी संयम और नियम से नहीं चलेगा, एक आंतरिक अनुशासन से चलता है। तो जब तक ऐसा नहीं हो जाता है, तब तक जो समाज है, वह चल रहा है, वह चलेगा।
यह ऐसा ही है कि जैसे हम कहें कि सब लोग स्वस्थ हो जाएंगे तो डाक्टरों
का और अस्पतालों का क्या होगा?
लोग स्वस्थ हो जाते हैं तो उनकी कोई जरूरत नहीं रह जाती। यह कोई अच्छा काम नहीं है जो डाक्टर और अस्पताल को करना पड़ रहा है। अच्छा लग रहा है, क्योंकि हम बीमार होने का काम किए चले जाते हैं। अच्छा नहीं है, क्योंकि जो हम गलत करते हैं, उसको पोंछने का काम करना पड़ता है सिर्फ, और तो कुछ करना नहीं पड़ता।
तो जैसे-जैसे विवेक विकसित हो, वीतरागता विकसित हो, तो समाज होगा, अंतर्संबंध होंगे, लेकिन वे बड़े गौण हो जाएंगे, व्यक्ति प्रमुख हो जाएगा।
और उसका अंतर-अनुशासन असली बात होगी।
इसलिए मेरा कहना यह है कि समाज की व्यवस्था में व्यक्ति को संयम देने
की चेष्टा कम होनी चाहिए, विवेक देने की व्यवस्था ज्यादा होनी चाहिए।
विवेक से संयम आएगा और संयम से विवेक कभी नहीं आता है।

प्रश्नः पर जब तक विवेक न हो, संयम की आवश्यकता समाज के लिए है?

बनी ही रहेगी। वह ऐसा ही है जैसे कि... ।

प्रश्नः महावीर भी ऐसा ही समझते थे?

समझेंगे ही। इसके सिवाय कोई उपाय ही नहीं है, इसके सिवाय कोई उपाय ही नहीं है। यानी जब तक विवेक नहीं है, तब तक किसी न किसी तरह के नियमन की व्यवस्था बनी रहेगी। लेकिन यह ध्यान में रहे कि किसी नियम की व्यवस्था से विवेक आने वाला नहीं है। इसलिए विवेक को जगाने की सतत कोशिश जारी रखनी पड़ेगी। और संयम और नियम की व्यवस्था को सिर्फ नेसेसरी ईविल, आवश्यक बुराई समझना होगा। वह कोई गौरव की बात नहीं है।
चौरस्ते पर एक पुलिस वाला खड़ा है, इसलिए लोग बाएं-दाएं चल रहे हैं, यह कोई सौभाग्यपूर्ण बात नहीं है। लोगों को दाएं-बाएं चलना चाहिए और पुलिस वाले को विदा होना चाहिए, व्यर्थ एक आदमी को हम परेशान कर रहे हैं। और किस काम के लिए परेशान कर रहे हैं कि वह लोगों को दाएं-बाएं चलाता रहे! और लोग कैसे बुद्धिहीन हैं कि अगर इस चौरस्ते पर पुलिस वाला न हो तो वे बाएं-दाएं भी नहीं चलेंगे!
तो उसका मतलब यह है कि समाज ने बुद्धि पैदा करने की कोशिश ही नहीं की
है अब तक! और पुलिस वाले से काम ले रहा है विवेक का! करोड़ों लोग निकल रहे हैं इस सड़क से और एक पुलिस वाला सब्स्टीट्यूट हो गया करोड़ों लोगों के विवेक का! यह पुलिस वाला भी विवेकहीन आदमी है। तो वह किसी तरह चला लेता है

बाएं-दाएं। लेकिन फर्क क्या पड़ता है? बस बाएं-दाएं चलना हो जाता है, एक्सीडेंट थोड़े कम होते हैं सड़क पर।
लेकिन अगर हमने समझा कि विवेक की कमी इसने पूरी कर दी तो हम गलती में
हो गए हैं। यह सिर्फ सूचक है कि विवेक नहीं है। और हमें कोशिश करनी चाहिए कि विवेक आ जाए, ताकि हम इसको विदा कर दें।
नीति, संयम, नियम धीरे-धीरे विदा हो सकें, ऐसा विवेक हमें जगाना चाहिए। जिस समाज में कोई नियम नहीं होगा, कोई संयम नहीं होगा, लोग विवेक से जीते होंगे, वह पहली दफा समाज बना, नहीं तो समाज का सिर्फ धोखा चल रहा है।

प्रश्नः नहीं, इसमें सहमति है, जो आप कह रहे हैं। जहां मतभेद मुझे लगा, जैन-विचारकों के मतभेद, वह जिसको आप कह रहे हैं नियम, यद्यपि वे अंततोगत्वा छोड़ने के लिए हैं और व्यर्थ हैं, उसे वे व्यवहार-दृष्टि नाम देते हैं। तो उस व्यवहार-दृष्टि की कोई आंशिक उपयोगिता है या सर्वथा नहीं है, इस पर मतभेद चलता है जैन-विचारकों में।

वह चलेगा उनमें, वह उनमें चलेगा, क्योंकि विचारक द्रष्टा नहीं है। और
वह जो चला रहा है, जैसे कि उन्होंने मान रखा है कि एक व्यवहार-दृष्टि और एक निश्चय-दृष्टि, ऐसी कोई चीज ही नहीं होती। दृष्टि तो एक ही है, निश्चय-दृष्टि। व्यवहार को दृष्टि कहना ऐसा ही है जैसे कि यह कहना कि कुछ लोगों की आंख की दृष्टि होती है, कुछ लोगों की अंधी दृष्टि होती है, ऐसे ही कहना है। हम कहें कि अंधे की भी आंख तो होती है, सिर्फ देखती नहीं; और आंख वाले की भी आंख होती है, सिर्फ देखती है, इतना ही फर्क है; बाकी आंख तो दोनों में ही होती है--तो एक अंधी आंख होती है और एक देखने वाली आंख होती है। व्यवहार-दृष्टि अंधे की आंख है। वह दृष्टि है ही नहीं। दृष्टि तो एक
ही है, जहां से दर्शन होता है, वह तो निश्चय है। व्यवहार की जो सारी बातचीत है और ऐसा दो हिस्से करना कि यह भी एक दृष्टि है और इसकी भी जरूरत है, यह सिर्फ अंधे अपने को तृप्ति देने की कोशिश कर रहे हैं। यानी अंधा यह भी मानने को राजी नहीं है कि मैं अंधा हूं। वह कहता है कि मेरा अंधा होना भी बहुत जरूरी है, आंख की तरफ जाने के लिए मेरे अंधे होने की बड़ी आवश्यकता है, वह यह कह रहा है!
कोई दृष्टि नहीं हैं दो। दृष्टि तो एक ही है। व्यवहार-दृष्टि सिर्फ समझौता है। और अंधों के विचारक हैं अपने। अंधों के ही विचारक होते हैं। आंख मिल गई, वहां से दर्शन शुरू होता है, विचार खतम होता है। वहां कोई सोचता-वोचता नहीं, वहां देखता है। और तब दो टुकड़े हो गए, तब दो टुकड़े हो गए हैं।
और ये दो टुकड़ों ने बड़ा नुकसान किया है। क्योंकि वह व्यवहार-दृष्टि वाला कहता है कि यह भी जरूरी है, पहले तो इसको ही पूरा करना पड़ेगा, फिर इसके बाद दूसरी बात उठेगी, साधते-साधते। व्यवहार-दृष्टि साधते-साधते निश्चय-दृष्टि उपलब्ध होगी--इससे ज्यादा गलत बात नहीं हो सकती। व्यवहार-दृष्टि छोड़ते-छोड़ते निश्चय-दृष्टि उपलब्ध होती है।

प्रश्नः (अस्पष्ट रिकार्डिंग)

साधने का सवाल ही नहीं है, छोड़ने का सवाल है। यानी अंधेपन को साधते- साधते आंख मिलेगी, ऐसा नहीं है। अंधेपन को छोड़ते-छोड़ते आंख मिलेगी। व्यवहार-दृष्टि छोड़नी है, क्योंकि वह दृष्टि नहीं, दृष्टि का धोखा है। उपलब्ध तो निश्चय-दृष्टि करनी है। और इसलिए मैं फिर दो भी शब्द नहीं लगाना पसंद करता, क्योंकि वह निश्चय लगाना बेमानी है। वह तो व्यवहार के खिलाफ लगाना पड़ता है। इसलिए मैं कहता हूं अंधापन छोड़ना है, दृष्टि उपलब्ध करनी है। निश्चय का क्या सवाल है? ऐसी भी कोई दृष्टि होती है जो अनिश्चित हो? तो फिर उसको दृष्टि कहना फिजूल है।
और व्यवहार की कोई दृष्टि नहीं होती। ऐसा ही है जैसे एक अंधा आदमी है, अपनी लकड़ी को टेक-टेक कर रास्ता बना लेता है, दरवाजा खोज लेता है। अब वह आदमी कहता है कि लकड़ी की भी बड़ी जरूरत है। ठीक ही कहता है; क्योंकि अंधा

है। लेकिन उसे ध्यान रखना चाहिए, वह अगर कहे कि आंख मिल जाए तो भी लकड़ी की जरूरत है, तो हम उसे कहेंगे कि तुम फिर पागल हो, तुम्हें पता ही नहीं कि आंख मिलने से क्या होता है।
व्यवहार-दृष्टि हमारी स्थिति है--अंधेपन की। निश्चय-दृष्टि हमारी संभावना है--आंख की। और जितना हम इसे छोड़ेंगे, जितना हम जागेंगे, उतनी वह उपलब्ध होगी। इसलिए व्यवहार-दृष्टि सीढ़ी नहीं है, जिससे निश्चय-दृष्टि पर पहुंचना है। व्यवहार-दृष्टि बाधा है, जिसे तोड़ना है, ताकि निश्चय-दृष्टि उपलब्ध हो सके।

महावीर: मेरी दृष्टि में पांचवां प्रवचन

सत्य की महावीर-उपलब्धि

महावीर के बचपन के संबंध में थोड़ी सी बातें कल सोचीं। जैसा मैंने कहा, तीर्थंकर की चेतना का व्यक्ति पूर्णता को छूकर लौटा होता है। इसका अर्थ यह हुआ कि महावीर के लिए इस जीवन में करने को कुछ भी बाकी नहीं रहा है, सिर्फ देने को बाकी रहा है, पाने को कुछ भी बाकी नहीं रहा है। यह बात अगर समझ में आए तो इस बात की बड़ी गहरी निष्पत्तियां होंगी। पहली निष्पत्ति तो यह होगी कि साधारणतः महावीर के संबंध में जो समझा जाता है कि उन्होंने त्याग किया, वह बिल्कुल व्यर्थ हो जाएगी।
आज इस बात को समझ लेना ठीक से जरूरी है कि महावीर ने कभी भी भूल कर कोई त्याग नहीं किया है। त्याग दिखाई पड़ा है, महावीर ने कभी भी नहीं किया है। और जो दिखाई पड़ता है, वही सत्य नहीं है, क्योंकि जो दिखाई पड़ता है वह देखने वालों पर ज्यादा निर्भर होता है बजाय इसके कि जो उन्होंने देखा।
भोग से भरे हुए लोगों को किसी भी चीज का छूटना त्याग मालूम पड़ता है।
और इसलिए महावीर के जीवन पर जिन्होंने लिखा, उन्होंने रत्ती-रत्ती एक-एक चीज का हिसाब बताया है कि क्या-क्या छोड़ा, कितने बड़े महल थे, कितना बड़ा राज्य था, कितने हाथी थे, कितने घोड़े थे, कितने मणि-माणिक्य थे--उस सबका एक-एक हिसाब दिया है! यह हिसाब देने वाले भोगी चित्त के लोग थे, इतना तो निश्चित होता है, क्योंकि इन्हें हीरे, मणि-माणिक्य, घोड़े-हाथी और महल बहुत मूल्यवान मालूम होते थे। इनको महावीर ने छोड़ा, यह घटना इनके लिए बहुत चमत्कारपूर्ण मालूम हुई होगी। क्योंकि भोगी चित्त कुछ भी छोड़ने में समर्थ नहीं है, वह सिर्फ पकड़ सकता है, छोड़ नहीं सकता। हां, उससे छुड़ाया जा सकता है, लेकिन छोड़ नहीं सकता। और जब वह देखता है कि कोई व्यक्ति सहज ही छोड़ कर जा रहा है तो इससे ज्यादा महत्वपूर्ण और चमत्कारपूर्ण घटना उसे मालूम नहीं हो सकती।
लेकिन महावीर जैसी चेतना कुछ भी छोड़ती नहीं है, क्योंकि उस तल पर कुछ
भी पकड़ने का भाव ही नहीं रह जाता है। जो पकड़ते हैं, वे छोड़ भी सकते हैं। जो पकड़ते ही नहीं हैं, जिनकी कोई क्लिंगिंग नहीं है, उनके छोड़ने का भी कोई सवाल नहीं है।
महावीर ने कुछ भी नहीं त्यागा है। जो व्यर्थ है, उसके बीच से वे आगे बढ़
गए हैं। लेकिन हम सबको दिखाई पड़ेगा कि बहुत बड़ा त्याग हुआ। और ऐसा दिखाई पड़ने में हम पकड़ने वाले चित्त के परिग्रही लोग हैं, यही सिद्ध होगा, और कुछ भी सिद्ध न होगा। महावीर त्यागी थे, ऐसा तो नहीं है, लेकिन महावीर को जिन लोगों ने देखा, वे भोगी थे, इतना सुनिश्चित है। भोगी के मन में त्याग का बड़ा मूल्य है। उलटी चीजों का ही मूल्य होता है। बीमार आदमी के मन में स्वास्थ्य का बड़ा मूल्य है, स्वस्थ आदमी को पता भी नहीं चलता। बुद्धिहीन के मन में बुद्धिमत्ता बड़ी मूल्यवान है, लेकिन बुद्धिमान को कभी पता भी नहीं चलता। जो हमारे पास नहीं है, उसका ही हमें बोध होता है। और जो हम पकड़ना चाहते हैं, उसे कोई दूसरा छोड़ता हो तो भी हम आश्चर्य से चकित रह जाते हैं।
लेकिन यहां मैं महावीर के भीतर से चीजों को कहना चाहता हूं। महावीर कुछ भी नहीं छोड़ रहे हैं। और जो व्यक्ति कुछ छोड़ता है, छोड़ने के बाद उसके पीछे छोड़ने की पकड़ शेष रह जाती है। जैसे एक आदमी लाख रुपए छोड़ दे, तो लाख रुपए छोड़ देगा, लेकिन लाख रुपए मैंने छोड़े, यह पकड़ पीछे शेष रह जाएगी। यानी भोगी चित्त त्याग को भी भोग का ही उपकरण बनाता है। भोगी चित्त धन को ही नहीं पकड़ता, त्याग को भी पकड़ लेता है। असल सवाल तो क्लिंगिंग माइंड का है, पकड़ने वाले चित्त का है। वह अगर सब कुछ त्याग कर दे तो वह इस सबका हिसाब-किताब रख लेगा अपने मन में कि क्या-क्या मैंने त्यागा है, कितना मैंने त्यागा है। ऐसे त्याग का कोई भी मूल्य नहीं है। यह भोग का ही दूसरा रूप है, परिग्रह का ही दूसरा रूप है।

लेकिन एक और तरह का त्याग है, जहां चीजें छूट जाती हैं, क्योंकि चीजों
को पकड़ने से हमारे भीतर की कोई तृप्ति नहीं होती, बल्कि चीजों को पकड़ने से हमारे भीतर का विकास अवरुद्ध होता है।
हम चीजें पकड़ते क्यों हैं? चीजों को पकड़ने का कारण क्या है? हम चीजों
को पकड़ते हैं, क्योंकि चीजों के बिना एक इनसिक्योरिटी, एक असुरक्षा मालूम पड़ती है। अगर मेरा कोई भी मकान नहीं है तो मैं असुरक्षित हूं, किसी दिन सड़क पर पड़ा हो सकता हूं, हो सकता है मर रहा होऊं और मुझे कोई छप्पर न मिले। तो असुरक्षित हूं, इनसिक्योरिटी है, इसलिए मकान को जोर से पकड़ता हूं। धन को जोर से पकड़ता हूं, क्योंकि कल का क्या भरोसा! तो कल के लिए कुछ इंतजाम चाहिए।
जिस व्यक्ति के मन में जितनी असुरक्षा का भाव है, वह उतना चीजों को जोर से पकड़ेगा। लेकिन जिस चेतना को यह पता हो गया है कि चेतना के तल पर कोई असुरक्षा है ही नहीं, वहां न कोई भय है, वहां न कोई पीड़ा है, न कोई दुख है, वहां न कोई मृत्यु है--ऐसा जिसे पता चल गया है, वह कुछ भी नहीं पकड़ता। पकड़ता था असुरक्षा के कारण, असुरक्षा न रही तो पकड़ भी न रही। और जो अपने भीतर प्रविष्ट हुआ है वह तो प्रतिक्षण और प्रतिपल इतने आनंद से भर गया है कि कल का सवाल कहां है कि कल क्या होगा! आज काफी है!
जीसस निकलते थे एक बगीचे के पास से और बगीचे में फूल खिले हैं। और जीसस ने अपने शिष्यों से कहाः देखते हो इन फूलों को! सोलोमन, खुद सोलोमन भी, अपनी पूरी समृद्धि में इतना शानदार न था।
एक बड़ा सम्राट सोलोमन जिसने सारी पृथ्वी के धन को इकट्ठा कर लिया था।
वह भी अपनी पूरी समृद्धि में और साम्राज्य में इन साधारण से फूलों के मुकाबले न था। देखते हो इनकी शानदार चमक, इनकी मुस्कुराहट, इनका नाच! और साधारण से गरीब लिली के फूल हैं! तो किसी शिष्य ने पूछा है, कारण क्या है? राज क्या है इसका कि सोलोमन लिली के फूलों से भी ज्यादा शानदार न था?
तो जीसस ने कहा, फूल अभी जीते हैं, सोलोमन कल के लिए जीता था। फूल अभी हैं, उन्हें कल की कोई भी चिंता नहीं। आज काफी है। और तुम भी फूलों की तरह हो रहो कि आज काफी हो जाए।
तो जिसके लिए आज का, अभी का यह क्षण काफी है, आनंद से भरा है, वह कल के क्षण की चिंता नहीं करता। इसलिए कल के क्षण के लिए इकट्ठा करने का पागलपन भी उसके भीतर नहीं है। वह जीता है। तो ऐसा व्यक्ति कुछ पकड़ता नहीं, छोड़ने का सवाल ही नहीं है। छोड़ना तो आता है पीछे। त्याग तो आता है पीछे। जब पकड़ आ जाए तो सवाल उठता है कि छोड़ो। ऐसा व्यक्ति पकड़ता ही नहीं।
और ध्यान रहे, जिसको पकड़ आ गई है, अगर वह छोड़ेगा तो पकड़ तो बाकी रहेगी, छोड़ने को पकड़ लेगा। वह पकड़ तो उसकी आदत का हिस्सा हो गई है। उसने धन पकड़ा था, अब वह त्याग पकड़ लेगा। उसने मित्र पकड़े थे, अब वह परमात्मा पकड़ लेगा। पति-पत्नी पकड़े थे, अब वह पुण्य-पाप-धर्म इत्यादि पकड़ लेगा। कल खाते-बही पकड़े थे, अब वह शास्त्र पकड़ लेगा। शास्त्र भी खाते-बही ही हैं। और धर्म भी सिक्का है, जो कहीं और चलता है। और पुण्य भी मोहरें हैं, जो कहीं काम पड़ती हैं। अब वह उनको पकड़ लेगा।
इसलिए ध्यान देने की यह बात है कि जो व्यक्ति पकड़ने के चित्त से भरा है, वह अगर त्याग करेगा तो भी त्याग नहीं होने वाला है। इसलिए सवाल त्याग करने का नहीं है, सवाल पकड़ने वाले चित्त की वस्तुस्थिति को समझ लेने का है। अगर हमारी समझ में आ गया कि यह है चित्त पकड़ने वाला और पकड़ना व्यर्थ हो गया, तो पकड़ विलीन हो जाएगी--त्याग नहीं होगा--पकड़ विलीन हो जाएगी और चीजें ऐसे दूर हो जाएंगी, जैसे वे दूर हैं ही।
कौन सा मकान किसका है? एक पागलपन तो यह है कि पहले मैं यह मानूं कि यह मकान मेरा है। और फिर दूसरा पागलपन यह है कि मैं इसका त्याग करूं कि इस मकान का मैं त्याग करता हूं।
लेकिन ध्यान रहे, अगर यह मकान मेरा नहीं है तो मैं त्याग करने वाला कौन हूं? त्याग में भी मेरी मालकियत तो शेष है। मैं कहता हूं, यह मकान मैं त्याग करता हूं। मैं ही त्याग करता हूं न! और त्याग मैं कर सकता हूं उसका, जो मेरा है ही नहीं? तो त्याग करने वाला यह मान कर ही चलता है कि यह मकान मेरा है।

और वस्तुतः जो त्याग की घटना घटती है, वह इस सत्य से घटती है कि किसी
को पता चलता है कि यह मकान, यह मेरा है ही नहीं, तो त्याग कैसा! मेरा नहीं है, यह बोध पर्याप्त है, कुछ छोड़ना नहीं पड़ता। जो मेरा नहीं है, वह छूट गया। और चीजें थोड़े ही हमें बांधे हुए हैं, चीजें और हमारे बीच में मेरे का एक भाव है जो बांधे हुए है।
एक मकान है, उसमें आग लग गई है। और घर का मालिक रो रहा है, चिल्ला रहा है। और फिर भीड़ में से कोई कहता है, आप क्यों परेशान हो रहे हैं? आपको पता नहीं, आपके बेटे ने मकान बेच दिया है, और पैसे मिल गए हैं। बेटे ने खबर नहीं दी आपको? और वह आदमी एकदम हंसने लगा। और उसने कहा, ऐसा है क्या?
अब भी वही मकान जल रहा है। अब भी आदमी वही है, सब भीड़ वही है, लेकिन अब
वह उसका मकान नहीं रह गया है। मकान बेचा जा चुका है, अब वह मेरा नहीं है। वह हंस रहा है और अब वह ऐसी हलकी बातें कर रहा है जैसी कि और सारे लोग कर रहे थे कि बहुत बुरा हो गया, कि मकान जल गया है।
लेकिन तभी उसका बेटा भागा हुआ आता है। वह कहता है, वह आदमी बदल गया है। रुपए अभी मिले नहीं थे, सिर्फ बेचा था, लेकिन वह आदमी बदल गया है। और वह आदमी फिर चिल्लाने लगा है कि मैं मर गया, मैं लुट गया, अब क्या होगा! एक क्षण में मेरा फिर जुड़ गया है--मकान मेरा ही है और जल रहा है!
तो मकान के जलने की पीड़ा है या मेरे के जलने की? और अगर मेरे के जलने
की पीड़ा है तो जो आदमी कहता है मेरा मकान, उसकी भी पकड़ है, जो आदमी कहता है मेरा मकान, मैं त्याग करता हूं, उसकी भी पकड़ है। लेकिन जो आदमी कहता है कौन सा मकान मेरा है! कोई मकान मुझे पता नहीं चलता कि मेरा कौन सा मकान है। मेरा कोई मकान ही नहीं है, मैं बिल्कुल बिना मकान के हूं। अगृही का मतलब यह है। अगृही का मतलब यह नहीं है कि जिसने घर छोड़ दिया। अगृही का मतलब यह है कि जिसने पाया कि कोई घर है ही नहीं। इसे ठीक से समझ लेना।
संन्यासी को हम कहते हैं अगृही, गृहस्थ नहीं। लेकिन कौन है अगृही? जिसने घर छोड़ दिया? उसका घर बाकी है। वह चाहे पहाड़ों में, चाहे हिमालय में चला जाए, उसका घर बाकी है। जिस घर को छोड़ आया है, वह भी उसका घर है। अगृही का मतलब है जिसने पाया कि घर तो कहीं है ही नहीं। होमलेस! घर है ही नहीं। यहां घर कहीं है ही नहीं। कोई घर मेरा नहीं है।
संन्यासी का मतलब यह नहीं है कि जिसने पत्नी का त्याग किया। संन्यासी
का मतलब है कि जिसने पाया कि पत्नी कहां है? संन्यासी का मतलब यह नहीं है कि जिसने साथी छोड़ दिए। संन्यासी का मतलब जिसने पाया कि साथी कहां है? खोजा और पाया कि नोव्हेयर, साथी तो कहीं भी नहीं है कोई, बिल्कुल अकेला हूं।
यह दोनों बातों में बुनियादी भेद है। पहले में हम कुछ पकड़ कर छोड़ने की कोशिश कर रहे हैं, दूसरे में हम पाते हैं कि पकड़ का उपाय ही नहीं है, किसको पकड़ें? कहां पकड़ने जाएं?
तो महावीर कुछ त्याग नहीं रहे हैं। जो उनका नहीं है, वह दिखाई पड़ गया है। इसलिए कोई पकड़ नहीं है। इसलिए यह कहना बिल्कुल व्यर्थ की बात है कि वे सब छोड़ कर जा रहे हैं। वे जान कर जा रहे हैं कि कुछ भी उनका नहीं है। और अगर हम इस बात को समझ लेंगे तो महावीर के बाबत, समस्त त्याग के बाबत हमारी दृष्टि ही दूसरी हो जाएगी। तब हम लोगों को यह न समझाएंगे कि तुम छोड़ो और तुम त्याग करो। हम लोगों को समझाएंगे तुम देखो कि तुम्हारा है क्या? तुम्हारा है कुछ?
एक सम्राट था--इब्राहिम। उसके द्वार पर एक संन्यासी सुबह से ही बड़ा शोरगुल मचा रहा है और पहरेदार से कहता है, मुझे भीतर जाने दो, मैं इस सराय में ठहरना चाहता हूं। और वह पहरेदार कहता है, तुम पागल हो गए हो! संन्यासी हो कि पागल हो? यह सराय नहीं, यह सम्राट का महल है, उनका निवास स्थान है। तो वह कहता है, फिर मैं उसी सम्राट से बात कर लूं, क्योंकि हम तो सराय समझ कर इसे आए हैं और इसमें ठहरना चाहते हैं।
वह धक्का देकर भीतर चला जाता है। सम्राट भी आवाज सुन रहा है, सब बातें सुन रहा है और उससे कहता है, तुम आदमी कैसे हो! यह मेरा निजी महल है, मेरा निवास है, यह सराय नहीं, सराय दूसरी जगह है।

वह संन्यासी कहता है, मैं समझा कि पहरेदार ही नासमझ है। आप भी नासमझ हैं! पहरेदार क्षमा के योग्य था। आखिर बेचारा पहरेदार ही था। आपको भी यही ख्याल है कि आपका निवास-स्थान है, आपका घर है?
सम्राट ने कहा, ख्याल! यह मेरा है। ख्याल नहीं है यह मेरा, यह मेरा है ही।
संन्यासी ने कहा, बड़ी मुश्किल में पड़ गया मैं। कुछ दो-चार-दस साल पहले मैं आया था, तब भी यही झंझट हो गई थी। और मैंने कहा कि मैं इस सराय में ठहर जाऊं, तब तुम्हारी जगह एक दूसरा आदमी बैठा हुआ था और वह कहता था, यह मेरा महल है। यह मकान मेरा है!
तो उस इब्राहिम ने कहा, वे मेरे पिता थे। उनका अब देहावसान हो गया।
उस फकीर ने कहा, मैं उनके पहले भी आया था, तब एक और बुड्ढे को पाया था।
वह भी इसी जिद्द में था कि यह उसका है! जब यहां हर बार मकान के मालिक बदल जाते हैं, रहने वाले बदल जाते हैं, तो इसको सराय कहना चाहिए कि निवास? और मैं फिर आऊंगा कभी, पक्का है कि तुम मिलोगे? वायदा करते हो? और तुम न मिले तो फिर बड़ी दिक्कत हो जाएगी। फिर कोई मिलेगा, वह कहेगा मेरा है। तो मुझे ठहर ही जाने दो। यह सराय ही है, किसी की नहीं है। जैसे तुम ठहरे हो, वैसे मैं भी ठहर सकता हूं।
इब्राहिम उठा सिंहासन से, उस फकीर के पैर छुए और कहा कि तुम ठहरो, लेकिन अब मैं जाता हूं। उसने कहा, लेकिन कहां जाते हो? उसने कहा कि मैं तो इसी भ्रम में ठहरा हुआ था कि यह मकान है। अगर सराय हो गया तो बात खतम हो गई। जो मैं ठहरा था तो इन दीवालों की वजह से थोड़े ही ठहरा था। ठहरा था इस वजह से कि मेरा है, मकान है, निवास है। लेकिन अब तुम कहते हो सराय है; तो ठीक है, तुम ठहरो, मैं जाता हूं।
वह सम्राट छोड़ कर चला गया। इस सम्राट ने त्याग किया? नहीं, मकान नहीं था, सराय थी--यह दिखाई पड़ गया, बात खतम हो गई। सराय का कोई त्याग करता है? सराय का कोई त्याग नहीं करता। सराय में ठहरता है और विदा होता है।
ऐसा बोध महावीर जन्म के साथ लेकर पैदा हुए हैं। ऐसा बोध हम चाहें तो
इस जन्म में भी उपलब्ध हो सकता है। और ऐसे बोध के लिए जो जरूरी है, वह संपत्ति का त्याग नहीं, संपत्ति के सत्य का अनुभव है। संपत्ति का त्याग हो सकता है उतना ही अज्ञानपूर्ण हो, जितना संपत्ति का संग्रह था। इसलिए प्रश्न संग्रह और त्याग का नहीं है, प्रश्न सत्य के अनुभव का है। संपत्ति क्या है? है कुछ मेरी?
यह बोध त्याग बनता है। लेकिन ऐसा त्याग किया नहीं जाता। इसलिए ऐसे त्याग के पीछे कर्ता का भाव इकट्ठा नहीं होता। ऐसे त्याग के पीछे कर्ता का भाव इकट्ठा नहीं होता। और जिस कर्म के पीछे कर्ता का भाव इकट्ठा नहीं होता, उस कर्म से कोई बंधन पैदा नहीं होता है। और जिस कर्म से भी कर्ता का भाव पैदा होता है, वह कर्म बंधन का कारण हो जाता है। यानी कर्म कभी नहीं बांधता, कर्म के साथ कर्ता का भाव जुड़ा हो तो ही बांधता है। और कर्ता का जो भाव है, वही हमारा कारागृह है--अहंकार।
तो महावीर से अगर कोई कहे कि यह तुमने त्याग किया? तो वे हंसेंगे, कहेंगे, किसका त्याग? जो मेरा नहीं था, वह नहीं था, यह मैंने जान लिया। त्याग कैसे करूं? त्याग दोहरी भूल है--भोग की दोहरी भूल। भोग पीछा नहीं छोड़ रहा है।
तो पहली तो बात यह समझ लें कि महावीर जैसे व्यक्ति को त्यागी कहने की भ्रांति में कभी नहीं पड़ना चाहिए, सिर्फ अज्ञानी त्यागी हो सकते हैं, ज्ञानी कभी त्यागी नहीं होते। ज्ञानी इसलिए त्यागी नहीं होते, क्योंकि ज्ञान तो त्याग है ही, उसे त्यागी होना ही नहीं पड़ता। उसके लिए कोई प्रयास, कोई इफर्ट, कोई श्रम नहीं उठाना पड़ता। अज्ञानी को त्याग करना पड़ता है और श्रम लेना पड़ता है, संकल्प बांधना पड़ता है, साधना करनी पड़ती है। अज्ञानी को त्याग करना पड़ता है। अज्ञानी के लिए त्याग एक कर्म है। और इसलिए अज्ञानी का जब त्याग होता है तो अज्ञानी त्याग किया, ऐसे कर्ता का निर्माण कर लेता है। यह कर्ता उसका पीछा करता है। और यही कर्ता गहरे में हमारा परिग्रह है। संपत्ति हमारा परिग्रह नहीं है--कर्ता, वह जो डुअर है, मैंने किया, वही हमारा... ।

कभी आपने सोचा, रात आप सपना देखते हैं और नींद में आपने एक आदमी की हत्या कर दी। सुबह आप उठे और आपको याद आया कि सपने में एक आदमी की हत्या कर दी है। फिर क्या आप ऐसा कहते हैं कि यह हत्या मैंने की? चूंकि ऐसा नहीं कहते, इसलिए कोई पश्चात्ताप भी नहीं पकड़ता है। आप सुबह बिल्कुल हलके- फुल्के हैं। एक आदमी की हत्या की है रात, और सुबह आप मस्त हैं। क्योंकि सपने में आप द्रष्टा रहे, कर्ता नहीं हो पाए। सुबह आप जानते हैं सपना देखा था। सुबह आप जानते हैं--सपना देखा था। इसलिए रात हत्या कर दी है, तो अब सुबह से हाथ-पैर नहीं धो रहे हैं, पछता नहीं रहे हैं और घबड़ा भी नहीं रहे हैं कि पाप हो गया। आप जानते हैं कि देखा था सपना। या हो सकता है सपने में आप संन्यासी हो गए हों, सब त्याग कर दिया हो, लेकिन सुबह आप हंसते हैं, क्योंकि फिर द्रष्टा हो गए आप। आप द्रष्टा हो गए फिर।
हां, हो सकता है सपने में जब सोए रहे हों तो हत्या करके भागे हों, छाती धड़क गई हो, पसीना छूट गया हो, छिप गए हों कि अब फंसे, अब फंसे। और हो सकता है सपने में जब त्याग किया हो तो अकड़ कर चले हों, फूलमालाएं पहनी हों, रास्ते पर जुलूस निकले हों, स्वागत- सत्कार हुआ हो और अकड़ कर समझा हो कि हां मैंने सब कुछ त्याग कर दिया। लेकिन सुबह जाग कर आप कहते हैं सपना था। सपना था का मतलब यह कि मैं द्रष्टा था।
अब इस बात को ठीक से समझ लेना कि जिस चीज के हम द्रष्टा हो जाते हैं, वह सपना हो जाती है। जिस चीज के भी हम द्रष्टा हो जाते हैं, वह सपना हो जाती है। और जिस चीज के हम कर्ता हो जाते हैं, वह सत्य हो जाती है। चाहे वह सपना ही हो, जब हम कर्ता हो जाते हैं सपने में, तो वह सत्य हो जाता है सपना। और चाहे जीवन का सत्य ही क्यों न हो, जब हम द्रष्टा हो जाते हैं, तब वह सपना हो जाता है।
यानी सपने को अगर सत्य बनाना हो तो कीमिया, जो केमिकल फार्मूला है, वह
यह है कि आप द्रष्टा भर मत होना। अगर सपने को सत्य बनाना हो तो उसकी केमिस्ट्री यह है कि आप द्रष्टा भर मत होना, आप कर्ता हो जाना, तो सपना बिल्कुल सत्य हो जाएगा। और ठीक इससे उलटी कीमिया यह है कि आप जिसको सत्य कहते हैं, उसके आप द्रष्टा हो जाना, कर्ता भर मत बनना, और सब सत्य एकदम सपना हो जाएगा।
तो महावीर छोड़ कर इसलिए नहीं जा रहे हैं कि अपना था और छोड़ना है, और छोड़ रहे हैं। नहीं, एक सपना टूट गया और द्रष्टा हो गए हैं और बाहर हो गए हैं। अब कोई लौट कर उनसे कहे भी कि कितनी संपदा थी जो वह छोड़ी? तो वे कहेंगे, सपने की कोई संपदा होती है? सपने में कोई त्याग होता है?
भोग भी सपना है, त्याग भी सपना है, क्योंकि दोनों हालत में कर्ता मौजूद है। इसलिए ज्ञानी न त्यागी है, न भोगी है, सिर्फ द्रष्टा रह गया है। और इसलिए जो भी द्रष्टा रह जाए उसके जीवन से भोग और त्याग दोनों एक साथ विदा हो जाते हैं। ऐसा नहीं कि त्याग बच रहता है और भोग विदा हो जाता है। भोग और त्याग एक ही सिक्के के दो पहलू थे, वह फिंक जाता है। और दूसरी दृष्टि से देखें तो इसका अर्थ ही वीतराग हुआ।
अगर मैं कर्ता नहीं हूं तो वीतरागता फलित हो जाएगी और अगर मैं कर्ता हूं तो या राग फलित होगा या विराग फलित होगा, या भोग होगा या त्याग होगा, या दुख होगा या सुख होगा। द्वंद्व में सब कुछ होगा, लेकिन निर्द्वंद्व कुछ भी नहीं हो पाएगा।
तो महावीर त्याग करते हैं, ऐसी धारणा है। जो उन्हें मानते हैं, उनके अनुयायी हैं, उनके पीछे चलते हैं, उन सबकी ऐसी धारणा है कि वे त्याग करते हैं, महात्यागी हैं। और मुझे लगता है, इसमें वे केवल अपने भोग की वृत्ति की खबर दे रहे हैं, महावीर का उन्हें कुछ भी पता नहीं है। और यह सवाल महावीर का नहीं है, दुनिया में जब भी किसी व्यक्ति से त्याग हुआ है तो वह ऐसे ही हुआ है।
मैंने सुना है, एक फकीर रात एक सपना देखा। और सुबह उठा, तो जो शिष्य उसका पास से गुजरता था, उसने कहा, सुनो जरा, मैंने एक सपना देखा है, क्या तुम उसकी व्याख्या करोगे? तुम व्याख्या कर सकोगे? मैंने एक बहुत अदभुत सपना देखा है। उसने कहा, ठहरिए, मैं अभी व्याख्या किए देता हूं। वह शिष्य गया और पानी का भरा हुआ घड़ा उठा लाया। उसने कहा, जरा आप अपनी आंख धो डालिए।

वह गुरु खूब हंसने लगा है। तभी एक दूसरा शिष्य गुजर रहा है, उसने कहा, सुनो- सुनो, एक मैंने बहुत अदभुत सपना देखा है और इस नासमझ को मैंने कहा था कि व्याख्या कर, तो यह पानी का घड़ा ले आया और कहता है कि मुंह धो डालिए। तुम व्याख्या करोगे?
उसने कहा, एक दो क्षण रुकें, मैं अभी आया। वह एक कप में चाय लेकर आ गया
है और कहा, अगर मुंह धो लिया हो तो थोड़ा चाय पी लें। तो गुरु खूब हंस रहा है और वह कहता है कि अगर आज यह घड़ा न लाया होता तो इसको मैंने कान पकड़ कर बाहर कर दिया होता और अगर आज तू चाय लेकर न आ गया होता तो अब इस आश्रम में ठहरने का उपाय न था। सपने की कहीं व्याख्या करनी होती है? सपना सपना दिख गया, बात खतम हो गई। सपने की भी कहीं व्याख्या करनी होती है? तो ठीक ही किया कि पानी ले आया, उसने कहा, हाथ-मुंह धो डालिए, बात खतम हो गई, अब क्या मामला है। अब हाथ-मुंह धो डालना ही काफी है। अब और कोई व्याख्या की जरूरत नहीं।
सपने की कोई व्याख्या नहीं करनी होती। व्याख्या सदा सत्य की होती है, सपने की नहीं हो सकती। सपने की क्या व्याख्या? सपने का बोध त्याग है। सपने का बोध! जो जीवन हम जी रहे हैं, वह एक सपने की भांति है--इस बात का बोध, फिर कहां कुछ पकड़ता है?
मैंने सुना है, एक सम्राट का बेटा मर रहा है। वह उसकी खाट के पास बैठा है। चार दिन, पांच दिन, दस दिन बीत गए हैं और बेटा रोज डूबता जा रहा है। और एक ही लड़का है और बचने की कोई उम्मीद नहीं। वही आशा थी बुढ़ापे की, वही भविष्य था। वह सम्राट न सो पाता है, न जग पाता है, बेचैन है, परेशान है। और चिकित्सकों ने कह दिया है कि आज रात बेटे के बचने की कोई उम्मीद नहीं।
तो सम्राट उसी के पास कुर्सी रखे बैठा है, कब बेटे की सांस टूट जाए, कुछ पता नहीं। जितनी देर साथ रह लें, उतना ही अच्छा। कई दिन का जगा है, कोई रात दो बजे सम्राट की नींद लग गई है। और उसने एक सपना देखा है कि उसके बारह बेटे हैं, इतने सुंदर, इतने स्वस्थ, जैसे कभी देखे नहीं, जैसे कभी किसी के हुए नहीं। बड़ा चक्रवर्ती सम्राट है, सारी पृथ्वी का राजा है। अदभुत स्फटिक के महल हैं। स्वर्ण-पथ हैं। सुंदर नारियां हैं, सुंदर पत्नियां हैं, सब सुख हैं। कोई सुख की कमी नहीं।
और तभी वह जो बेटा बाहर पड़ा था, वह मर गया है। राजा की पत्नी चिल्ला कर रोई है। सपना टूट गया है। और राजा चुपचाप बैठा रह गया है। थोड़ी देर चुप रहा, फिर हंसने लगा, फिर रोने लगा, फिर हंसने लगा। उसकी पत्नी ने कहा, आपको क्या हो गया! आप पागल तो नहीं हो गए?
उसने कहा, पागल? कह नहीं सकता पहले पागल था कि अब पागल हो गया हूं। मैं बड़ी मुश्किल में पड़ गया हूं। रानी ने कहा, मुश्किल? मुश्किल की क्या बात है? और क्या मुश्किल है, बेटा मर गया है, यही बड़ी मुश्किल है।
उसने कहा, यह सवाल न रहा। अब मैं दिक्कत में हूं कि मेरे बारह बेटे मर गए, उनके लिए रोऊं कि मेरा एक बेटा यह मर गया मैं इसके लिए रोऊं--मैं रोऊं किसके लिए? या तेरह के लिए इकट्ठा रोऊं? तो तेरह के लिए इकट्ठा रोना बड़ा मुश्किल है, क्योंकि तेरह होते नहीं। वे बारह एक सपने के थे और जब मैं उस सपने में था, तब यह था ही नहीं लड़का, कहां गया था मुझे पता नहीं, खो गया था। और अब जग गया हूं तो यह एक ही बचा है, अब वे बारह खो गए हैं। और जैसे उन बारह के साथ यह एक बिल्कुल भूल गया था, वैसे इस एक के साथ वे बारह बिल्कुल भूल गए हैं। क्या सच है क्या झूठ है, मैं इस मुश्किल में पड़ गया हूं। रोऊं तो किसके लिए रोऊं? उन बारह के लिए रोऊं या इस एक के लिए रोऊं? या तेरह के लिए रोऊं? और तेरह का जोड़ नहीं बनता। और या फिर किसी के लिए न रोऊं। क्योंकि एक सपना बनता है, एक टूट जाता है, एक बनता है, दूसरा बन जाता है। रोऊं किसके लिए? मैं पागल था। अब मैं पागल नहीं हूं।
तो इस राजा को हम यह न कहेंगे कि इसने अपने बेटे का मोह त्याग दिया। नहीं, यह बात ही व्यर्थ होगी अब। अब हम यह न कहेंगे कि इसने बेटे का मोह त्याग दिया, यह अनासक्त हो गया, यह निर्मोही हो गया। नहीं, यह हम कुछ भी न कहेंगे। अब हम सिर्फ इतना ही कहेंगे कि बेटा सत्य न रहा। निर्मोही होने के लिए भी बेटे का सत्य होना जरूरी है। मोही होने के लिए भी बेटे का सत्य होना जरूरी है। अब हम इतना ही कहेंगे, बेटा एक सपना हो गया, बात खतम हो गई। अब यह राजा को बेटे का मोह छूट गया, ऐसा नहीं; बेटा सत्य ही न रहा।

और अगर बेटा सत्य न रहे तो क्या बाप सत्य रह जाएगा? इससे हम और थोड़ा भीतर जाएंगे तो पता चलेगा कि जब बेटा असत्य हो गया तो बाप की क्या सत्यता रह जाएगी? उन बारह बेटों के साथ वह बाप भी तो मर गया, जो सपने में था, वह अब कहां है? इस बेटे के साथ इसका बाप भी मर गया, वह अब कहां है?
अगर जीवन का एक कोना भी सपना हो जाए--इसे ध्यान से ले लें--अगर जीवन का
एक कोना भी सपना हो जाए तो आप फिर पूरे जीवन को सपना होने से न बचा सकेंगे, क्योंकि सब इंटरलिंक्ड है। अगर बेटा असत्य है तो बाप असत्य हो गया। फिर सत्य क्या बचेगा? सब संबंध असत्य हो गए। अगर जीवन का एक कोना भी दिखने लगे कि सपना है तो वह सपना पूरे जीवन पर फैल जाएगा और सपने का एक कोना अगर दिखने लगे यह सत्य है तो वह सत्य पूरे सपने पर फैल जाएगा।
यहां जिंदगी के जो अनुभव हैं, वे टोटल हैं, खंड-खंड नहीं हैं। ऐसा नहीं
कह सकता कोई आदमी कि एक चीज भर मेरे लिए जीवन में सपना होगी, बाकी सब सत्य है। अगर ऐसा कोई आदमी कहता है तो वह गलती में पड़ा हुआ है, सपना उसे कुछ भी नहीं हुआ है। सपना होगा तो पूरा सपना हो जाता है। और सत्य होगा तो पूरा सत्य रहता है। सपने और सत्य के बीच कोई समझौता नहीं हो सकता--बारह बेटे और एक बेटे को जोड़ा नहीं जा सकता, तेरह नहीं हो सकते।
महावीर को ऐसा जो बोध है, वह बोध उनका त्याग बन गया है। ऐसा हमें दिखा
कि त्याग बन गया है, क्योंकि हम भोगी हैं और हम सिर्फ त्याग की भाषा समझ सकते हैं। और इसलिए हैरानी होगी, त्यागियों के पास भोगी इकट्ठे हो जाते हैं, क्योंकि सिर्फ भोगी ही त्याग को पकड़ पाते हैं। और यह अदभुत बात है कि महावीर जैसे अपरिग्रही के लिए, अगृही के लिए, महावीर जैसे सब कुछ त्याग में खड़े व्यक्ति के पीछे जो वर्ग इकट्ठा हुआ, वह अत्यंत भोगी, अत्यंत परिग्रही है! अब महावीर के पीछे जैनों की जो परंपरा खड़ी है, वह जैनों से ज्यादा धनी, परिग्रही, सब इकट्ठा करने वाले लोग इस मुल्क में दूसरे नहीं हैं।
यह थोड़ा विचारणीय है। इसके पीछे अर्थ है। इसके पीछे अर्थ यह है कि त्याग की भाषा भोगी को बहुत पकड़ती है और भोगी आस-पास इकट्ठा खड़ा हो जाता है। और एक उलटा जाल बन जाता है। और यह सदा हुआ है।
अब जीसस जैसे आदमी के पीछे--जो कहता है, जो तुम्हारे एक गाल पर चांटा मारे दूसरा कर देना; जो कहता है, कोई तुम्हारा कोट छीने तो कमीज भी दे देना--उस आदमी के पीछे जो लोग इकट्ठे हुए, उन्होंने जितनी तलवार चलाई जमीन पर और जितना खून किया, उसका हिसाब लगाना मुश्किल है।
असल में, जो बहुत घृणा से भरे हैं उन्हें प्रेम की भाषा एकदम पकड़ लेगी। वह उनकी कमी है। वे उसे पूरा कर लेना चाहते हैं। भोगी त्याग से अपने को पूरा कर लेना चाहता है। खुद नहीं त्याग कर सकता, कोई बात नहीं, त्यागी को पकड़ लेता है। प्रेम की जिनके मन में कमी है, वे कुछ नहीं कर सकते खुद तो एक प्रेम का संदेश देने वाले को पकड़ लेते हैं। सारी दुनिया में सदा ऐसा हुआ है। अनुयायी अक्सर गुरु से उलटे होते हैं, क्योंकि उलटी चीजें लोगों को आकर्षित करती हैं और पास बुला लेती हैं। और ये जो उलटे लोग हैं, ये जो भी रिकार्ड स्थापित करते हैं, वह एकदम गलत होता है, क्योंकि वह इनका सूचक होता है।
इसलिए दुनिया के उन सारे लोगों के संबंध में... मन का जो द्वंद्व है और उलटा होना है, उसमें एक-दो बातें और समझ लेनी जरूरी हैं। हम सबके मन दो खंडों में बंटे हुए हैं--चेतन और अचेतन में बंटे हुए हैं। एक मन जिसे हम जानते हैं और एक मन जिसे हम खुद भी नहीं जानते हैं। और मन के रहस्यों में जो सबसे कीमती रहस्य है, वह यह है कि जो हमारे चेतन मन में होता है उससे ठीक उलटा हमारे अचेतन मन में होता है।
अगर चेतन मन में कोई आदमी बहुत विनम्र है, बहुत हंबल, तो अचेतन मन में बहुत ईगोइस्ट, बहुत अहंकारी होगा। यानी चेतन मन से ठीक उलटा उसका अचेतन होगा। अचेतन उलटा ही होता है। और हमें उसका कोई पता नहीं होता कि हमारा ही मन का बड़ा हिस्सा पीछे छिपा हुआ हमसे उलटा है। और वह अचेतन ही इसलिए हो जाता है कि हम उलटे हिस्से को दबाते जाते हैं, वह पीछे अंधेरे में छिपता चला जाता है। जो हमें प्रीतिकर है, उसे हम चेतन में बचा लेते हैं; और जो

अप्रीतिकर है, उसे पीछे हटा देते हैं। यह जो पीछे हमारे मन बैठा हुआ है, यह ठीक उलटा होता है--जैसे हम ऊपर से दिखाई पड़ते हैं, उससे।
तो ऊपर से जो आदमी त्याग की बहुत प्रशंसा कर रहा हो, उसके अचेतन में भोग की आकांक्षा होती है। और अगर किसी आदमी ने जान कर त्याग किया, चेष्टा करके त्याग किया, तो त्याग करते से ही उसका मन भोग की आकांक्षा में लीन हो जाएगा। क्योंकि वह पीछे छिपा हुआ मन अपनी मांग शुरू कर देगा। और इसलिए आप कोई भी काम करके देखें, हमेशा मन उलटी बातें करता रहेगा।
अगर कोई आपको गाली दे और आप झगड़ा करके लड़ लें तो घर लौट कर आप पाएंगे
कि पश्चात्ताप हो रहा हैः यह ठीक नहीं किया, यह बुरा किया कि गाली का जवाब गाली से दिया कि क्रोध किया। लेकिन आप ऐसा मत सोचना कि आपने इससे उलटा किया होता तो कोई फर्क पड़ने वाला था।
अगर कोई ने गाली दी होती और आप बिना गाली दिए हुए चुपचाप घर लौट आए होते तो मन कहता कि बहुत बुरा किया, ऐसे चुपचाप लौट आना ठीक है क्या? जब उसने गाली दी थी तो अन्याय को सहना उचित है क्या? आप जो करके आएंगे, मन उलटे का सुझाव पीछे से देना शुरू करेगा। आप जो भी निर्णय लेंगे, उससे उलटा निर्णय भी आपके मन में संगृहीत होगा।
इसलिए गुरजिएफ एक फकीर था, तो जब भी कोई साधक उसके पास आता तो आठ-दस दिन तो उसे खिलाना-पिलाना, और इतनी शराब पिलाना जिसका कोई हिसाब नहीं। उसकी बड़ी बदनामी हो गई, इसलिए कोई उसके पास न जाए कि वह शराब पहले पिलाएगा। और वह तो नियम था। जो शराब पीने को इनकार करे, उसे तो वह सीमा के भीतर न घुसने दे, अपने पास न आने दे। और आठ-दस दिन रात दो-दो बज जाएंगे, तीन-तीन बज जाएंगे, वह शराब पर शराब पिलाए जाएगा अपने हाथ से। और इन आठ-दस दिनों में जब वह आदमी बार-बार बेहोश हो जाएगा, तभी गुरजिएफ उसका अध्ययन करेगा कि वह आदमी है कैसा। क्योंकि जो वह ऊपर से दिखला रहा है, उससे ठीक उसका उलटा भीतर बैठा हुआ है।
तो वह यह कहता था कि मैं तुम्हारे फाल्स फेस से, तुम्हारे झूठे चेहरे
के साथ मेहनत नहीं करूंगा। तुम्हारे भीतर क्या है, उसे मुझे जान लेना जरूरी है।
अब वह जो आदमी बड़ी अच्छी-अच्छी बातें कर रहा था, वह शराब पीकर एकदम गालियां बक रहा है। ये गालियां बकने वाला आदमी भीतर बैठा है।
कभी आपने सोचा, शराब गालियां बना सकती है? शराब के पास कोई ताकत नहीं
है कि गालियों को निर्मित कर दे। गालियां भीतर दबा ली हैं और सदवचन ऊपर इकट्ठे कर लिए हैं। तो जब शराब पीते हैं तो चेतन मन बेहोश हो गया। अब वह जो भीतर है, वह निकलना शुरू हो गया।
यह बड़े आश्चर्य की बात है, अगर साधु-संतों को शराब पिलाई जाए तो उनके भीतर से हत्यारे, व्यभिचारी निकलेंगे। और अगर व्यभिचारियों को शराब पिलाई जाए तो उनके भीतर से साधु-संत की झलक भी मिल सकती है, क्योंकि उलटा भीतर बैठा हुआ है। वह जो आदमी निरंतर पाप कर रहा है, वह निरंतर आकांक्षा कर रहा हैः कब छुटकारा होगा इससे? कैसे इससे बाहर निकलूंगा? यह सब क्या हो रहा है? इससे मैं कैसे बाहर जाऊं?
यह जो बात है कि हम अपने से उलटा अपने भीतर इकट्ठा कर लेते हैं, अगर यह हमारे ख्याल में हो तो हम महावीर को भूल कर त्यागी नहीं कहेंगे। भूल कर त्यागी कहेंगे ही नहीं। क्योंकि महावीर जैसा व्यक्तित्व इंटिग्रेटेड होता है, उसके भीतर दो खंड नहीं होते, एक ही होता है। अगर वह भोग करेगा तो पूरा, अगर त्याग करेगा तो पूरा, इसमें दो हिस्से नहीं होते। वह जो भी करेगा, उसमें पूरा मौजूद होगा। जैसे हम समुद्र को कहीं से भी चखें और वह खारा होगा, ऐसे महावीर जैसे व्यक्ति को हम कहीं से भी पकड़ें, वह वही होगा, जैसा है।
हम ऐसे नहीं हैं। हमें अलग-अलग कोनों से पकड़ा जाए तो हममें से अलग-अलग आदमी निकलेंगे। मंदिर में हममें से एक आदमी निकलता है, शराबखाने में हममें से दूसरा आदमी निकलता है, मित्र के साथ तीसरा निकलता है, दुश्मन के साथ चौथा निकलता है, दुकान पर पांचवां निकलता है, ताश खेलते वक्त छठवां निकलता है। हमारे भीतर के आदमी का हिसाब नहीं है कि हमारे कितने चेहरे हैं, जो हम वक्त-वक्त पर निकाल लेते हैं।

ठीक अर्थों में त्याग उसी व्यक्ति से फलित हो सकता है, जिसका व्यक्तित्व पूरा अखंड हो गया। ऐसे व्यक्ति का भोग भी त्याग ही है, क्योंकि ऐसे व्यक्ति में दो हिस्से ही नहीं हैं। इसमें उलटे हिस्से नहीं हैं इस व्यक्ति के भीतर। इसलिए इसमें दूसरे व्यक्तित्व के उदय होने की कभी कोई संभावना नहीं है।
लेकिन हमने तो द्वंद्व की भाषा में सब सोचा है। दो में तोड़े बिना हम सोच नहीं सकते। तो हम कहेंगेः महावीर त्यागी हैं, भोगी नहीं। हम कहेंगेः क्षमावान हैं, क्रोधी नहीं। हम कहेंगेः अहिंसक हैं, हिंसक नहीं। हम कहेंगेः दयापूर्ण हैं, क्रूरतापूर्ण नहीं। हम दो हिस्सों में तोड़-तोड़ कर चलेंगे। और तब हम महावीर जैसे व्यक्ति को कभी भी नहीं समझ पा सकते हैं। अखंड व्यक्ति में द्वंद्व विलीन हो जाता है। न वहां त्याग है, न वहां भोग। वहां एक नई ही घटना घटी है, जिसके लिए शब्द खोजना मुश्किल है। या तो हम उसे त्यागपूर्ण भोग कहें या भोगपूर्ण त्याग कहें। एक ऐसी घटना घटी है, जिसे एक शब्द से चुन कर नहीं पकड़ा जा सकता। या तो हम उसे क्रोधपूर्ण क्षमा कहें या क्षमापूर्ण क्रोध कहें। दो टुकड़ों को अलग करके नहीं कहा जा सकता। और क्रोधपूर्ण क्षमा का क्या मतलब होता है? क्षमापूर्ण क्रोध का क्या मतलब होता है? कोई मतलब नहीं होता। वे मीनिंगलेस हैं, अर्थहीन हैं। जिसे हम कहें मित्रतापूर्ण शत्रु या शत्रुतापूर्ण मित्र, इसका क्या मतलब होगा? इसका कोई मतलब नहीं होगा। या तो शत्रु का मतलब होता है या मित्र का मतलब होता है। इन दोनों को मिला देने से कोई मतलब नहीं होता।
इसलिए ठीक रास्ता यह है कि हम दोनों का निषेध कर दें, वहां दोनों नहीं हैं। न वहां त्याग है, न वहां भोग है। लेकिन हमारा मन होता है कि वहां है क्या? वहां कुछ तो होना चाहिए! वहां है क्या? न वहां घृणा है, न वहां प्रेम है। न वहां हिंसा है, न वहां अहिंसा है। फिर वहां है क्या?
तो चूंकि हम समझने में मुश्किल हो जाएंगे कि वहां क्या है, इसलिए हमने उचित समझा है कि जो बुरा है, उसे इनकार कर दो, जो भला है, उसे स्थापित कर दो। कह दोः महावीर भोगी नहीं हैं, त्यागी हैं; कह दोः हिंसक नहीं हैं, अहिंसक हैं; क्रोधी नहीं हैं, क्षमावान हैं। लेकिन द्वंद्व को बचा लो।
अब हमने कभी सोचा ही नहीं है कि जो आदमी क्रोधी नहीं है, वह क्षमा कैसे करेगा? जिसे कभी क्रोध नहीं हुआ, वह क्षमा कैसे करेगा? किसको क्षमा करेगा? कैसे क्षमा करेगा? क्षमा के पहले क्रोध अनिवार्य है। और जो आदमी भोगी नहीं है, वह त्यागी का उसका क्या अर्थ होता है? कोई अर्थ ही नहीं होता। क्योंकि भोगी ही सिर्फ त्यागी हो सकता है। वे दोनों जुड़े हैं साथ-साथ, इकट्ठे हैं। लेकिन हमारी कल्पना में चूंकि यह नहीं आता, इसलिए हम एक खंड को हटा कर एक को बचा लेना चाहते हैं।
असल में वह हमारी आकांक्षा का सबूत है, महावीर के सत्य का नहीं। हम चाहते हैं कि हमारे भीतर क्रोध न हो, क्षमा हो; हिंसा न हो, अहिंसा हो; परिग्रह न हो, अपरिग्रह हो; बंधन न हो, मोक्ष हो। यह हमारी चाहना है। और हमारी चाहना बताती है कि क्या है। घृणा है, चाहते हैं हम प्रेम हो! हिंसा है, चाहते हैं अहिंसा हो! बंधन है, चाहते हैं मुक्ति हो! हमारी चाह दो बातें बताती है। हमारी चाह का मतलब ही होता है, जो नहीं है, उसकी ही चाह होती है। हम हैं कुछ और, और चाहते ठीक उलटे को हैं, इसी को हम थोप लेते हैं। जिन्हें हम आदर्श पुरुष बना लेते हैं, उन पर थोप देते हैं। और उस व्यक्ति को समझना मुश्किल हो जाता है।
क्या यह संभव नहीं है कि एक व्यक्ति में दोनों न हों? इसमें कठिनाई क्या है? इसमें कठिनाई क्या है कि एक व्यक्ति में न प्रेम हो, न घृणा हो? जरूरी क्यों है कि इन दो में से कोई एक हो ही? न भोग हो, न त्याग हो। जरूरी क्या है कि दोनों में से कोई एक हो ही? लेकिन हमारी कंसेप्शन में, हमारी धारणा में आना मुश्किल हो जाएगा कि ऐसा आदमी कैसा होगा, जिसमें दोनों नहीं हैं।
और जिसमें दोनों नहीं हैं, वही अखंड हो सकता है, नहीं तो खंड-खंड होगा, टुकड़े-टुकड़े में होगा। और जिसमें दोनों नहीं हैं, वही मुक्त हो सकता है, क्योंकि द्वंद्व में कोई मुक्ति कभी संभव नहीं है। और इसलिए महावीर जैसे व्यक्ति बेबूझ हो जाते हैं, हमारी पकड़ के बाहर हो जाते हैं।

चीन में एक दस चित्र हैं। और किसी अदभुत चित्रकार ने वे दस चित्र बनाए हैं। पहला चित्र है, जिसमें एक आदमी अपने घोड़े पर सवार जंगल की तरफ जा रहा है। पहले चित्र में घोड़े पर सवार एक आदमी जंगल की तरफ जा रहा है। लेकिन कुछ बात ऐसी है कि आदमी कहीं और जाना चाहता है, घोड़ा कहीं और जाना चाहता है, इसलिए बड़ा तनाव है। और घोड़ा वहां कैसे जाना चाहे, जहां आदमी जाना चाहता है? घोड़ा घोड़ा है, आदमी आदमी है। और आदमी को घोड़ा कैसे समझे? घोड़े को आदमी कैसे समझे? तो घोड़ा किसी और रास्ते पर जाना चाहता है, आदमी किसी और रास्ते पर जाना चाहता है। बड़े तनाव में दोनों उस चित्र में हैं।
दूसरे चित्र में घोड़ा आदमी को पटक कर भाग गया है। असल में आदमी ने घोड़े पर चढ़ने की कोशिश की तो घोड़ा आदमी को पटकेगा। अब जिस पर हम चढ़ेंगे, वह हमको पटकेगा। तो आदमी को पटक कर घोड़ा भाग गया। आदमी पड़ा है परेशान और घोड़ा भाग गया है!
तीसरे चित्र में आदमी घोड़े को खोजने निकला है। घोड़े का कहीं कोई पता नहीं चल रहा है। जंगल ही जंगल है और आदमी घोड़े को खोजने निकला है।
चौथे चित्र में घोड़े की पूंछ एक वृक्ष के पास भर दिखाई पड़ती है--सिर्फ पूंछ। पांचवें चित्र में आदमी पास पहुंच गया है और पूरा का पूरा घोड़ा दिखाई पड़ता है। और छठवें चित्र में आदमी ने घोड़े की पूंछ पकड़ ली है। और सातवें चित्र में आदमी फिर घोड़े पर सवार हो गया है। और आठवें चित्र में फिर घोड़े पर सवार होकर घर की तरफ वापस लौट रहा है। नौवें चित्र में घोड़े को बांध दिया है, आदमी उसके पास बैठा है, घोड़ा बिल्कुल शांत है, आदमी बिल्कुल शांत है। दसवें चित्र में दोनों खो गए हैं, सिर्फ जंगल रह गया है--न घोड़ा है, न आदमी है।
ये दस चित्र पूरी साधना के चित्र हैं। लेकिन आखिरी चित्र में दोनों
खो गए हैं। लड़ाई ही खो गई है, द्वंद्व ही खो गया है। नौ चित्रों में बहुत तरह से लड़ाई चली है। और जब तक लड़ाई चलती रही है, जब तक दोनों हैं, तब तक कुछ न कुछ उपद्रव होता रहा है। लेकिन आखिरी चित्र में दोनों ही खो गए हैं; अब न घोड़ा है, न घोड़े का मालिक है, कोई भी नहीं है, खाली चित्र रह गया है। जिंदगी में द्वंद्व की लड़ाई है। क्रोध से हम लड़ रहे हैं, घृणा से हम लड़ रहे हैं, हिंसा से हम लड़ रहे हैं, भोग से हम लड़ रहे हैं। तो जिससे हम लड़ रहे हैं, उस पर हम सवार होने की कोशिश कर रहे हैं। और जिस पर हम सवार होने की कोशिश कर रहे हैं, वह हमको पटके दे रहा है, बार-बार पटक रहा है। तो भोगी त्यागी होने की कोशिश करता है, रोज-रोज पटकें खा जाता है, फिर गिर जाता है, फिर परेशान हो जाता है।
एक घर में मैं मेहमान था कलकत्ते में। उस घर के बूढ़े आदमी ने मुझसे कहा कि मैंने ब्रह्मचर्य की जीवन में तीन बार प्रतिज्ञा की। बहुत व्यंग्यपूर्ण बात थी यह, क्योंकि ब्रह्मचर्य की अगर तीन बार प्रतिज्ञा लेनी पड़े तो ऐसा ब्रह्मचर्य है कैसा? क्योंकि एक ही बार लेनी चाहिए प्रतिज्ञा ब्रह्मचर्य की। तो मैं तो खूब हंसने लगा, लेकिन मेरी बगल का आदमी नहीं समझ सका जो वहां पास बैठा था। उसने कहा, आपने बड़ी साधना की!
वह बूढ़ा भी हंसने लगा। तो उस आदमी ने पूछा कि फिर बस तीन ही बार ली, फिर चौथी बार नहीं ली? तो उस बूढ़े आदमी ने कहा कि तुम यह मत सोचना कि तीसरी बार सफल हो गया। नहीं, तीन बार असफल होकर फिर मैंने हिम्मत ही छोड़ दी, चौथी बार नहीं ली।
और उस बूढ़े आदमी ने मुझे कहा कि जब मैंने बिल्कुल छोड़ दिया ख्याल ही
कि लड़ना ही नहीं है--क्योंकि तीन दफा हार चुका, बहुत हो चुका--तो मैं एकदम हैरान हुआ, मुझ पर सेक्स की इतनी कम पकड़ कभी भी नहीं थी। जिस दिन मैंने यह तय किया कि अब लड़ना ही नहीं, अब जो है सो ठीक है--और मेरी पकड़ एकदम ढीली हो गई। और मेरी पकड़ बड़ी जोर से थी, क्योंकि मैं इतना संकल्प कर रहा था, इतना व्रत कर रहा था।
असल में व्रत, संयम, त्याग, संघर्ष कर किससे रहे हैं हम? जिससे हम कर रहे हैं, उसको हमने मान लिया। जिससे हम लड़ने लगे, उसको हमने समान स्वीकृति दे दी। और अगर हम उस पर कभी किसी बेमौके चढ़ भी जाएंगे तो कितनी देर चढ़े रहेंगे? अगर आप एक दुश्मन की छाती पर बैठ भी जाएं तो जिंदगी भर तो नहीं बैठे रहेंगे, कभी तो उसकी छाती छोड़ेंगे। और दुश्मन अगर कोई दूसरा होता तो

अपने घर चला जाता। यह दुश्मन ऐसा नहीं है कि दूसरा है, अपना ही हिस्सा है। जिस दिन आप छोड़ेंगे, वह वापस लौट कर खड़ा हो जाता है।
और एक मजे की बात है कि जिसको आप दबाते हैं--तो आपके ही दो हिस्से, आप
ही दबाने वाले, आप ही दबने वाले तो जिसे आप दबाते हैं वह तो विश्राम कर लेता है हिस्सा और जो दबाता है, वह थक जाता है। तो थोड़ी देर में उलटा सिलसिला शुरू हो जाता है। इसलिए जिस चीज को आप दबाइएगा थोड़े दिन में आप पाएंगे कि आप उससे दबे हुए हैं। क्योंकि जो हिस्सा दब गया, वह विश्राम कर रहा है। और जो दबा रहा है, उसको श्रम करना पड़ रहा है। श्रम करने वाला थकेगा, विश्राम करने वाला सबल हो जाएगा। इसलिए रोज उलटा परिवर्तन हो जाता है। लड़ेंगे तो हारेंगे। और दबाएंगे तो गिरेंगे। लेकिन खोज बिल्कुल दूसरी बात है।
पहले चित्रों में वह आदमी घोड़े पर जबरदस्ती सवार हो रहा है। दूसरे चित्रों में वह खोज पर निकला है। खोज लड़ाई नहीं है। तो एक आदमी क्रोध से लड़ रहा है, यह एक बात है। और एक आदमी क्रोध की खोज में निकला है कि क्रोध क्या है, यह बिल्कुल दूसरी बात है। और जब वह खोज पर निकला है, तब उसे पूंछ दिखाई पड़ गई है। थोड़ा सा दिखा है। फिर पूंछ के करीब और चला गया है तो पूरा घोड़ा दिखाई पड़ गया है। फिर उसने घोड़े को पकड़ लिया है, क्योंकि जिसे हम समझ लेते हैं, उससे लड़ना नहीं पड़ता, उसे हम ऐसे ही सहज पकड़ लेते हैं, क्योंकि वह अपना ही हिस्सा है। उससे लड़ना क्या है? वह अपना ही हाथ है। बाएं को दाएं हाथ से लड़ाएं तो क्या फायदा होगा? वह घोड़े को लेकर घर की तरफ चल पड़ा है। उसने घोड़े को लाकर घोड़े की जगह बांध दिया है, वह उसके पास चुपचाप बैठा हुआ है। वह अब लड़ नहीं रहा है, न सवार हो रहा है। अब कोई संघर्ष ही नहीं है, घोड़ा अपनी जगह है, वह अपनी जगह है। क्रोध अपनी जगह बैठा है, आदमी अपनी जगह बैठा है। चुपचाप दोनों अपनी जगह बैठे हैं। और दसवें चित्र में दोनों विलीन हो गए हैं। क्रोध भी विलीन हो गया है, क्रोध से लड़ने वाला भी विलीन हो गया है। तब क्या रह गया है? एक खाली चित्र रह गया है। दसवां चित्र बहुत अदभुत है, वह कोरा ही कैनवस है, उसमें कुछ भी नहीं है।
इसलिए कई बार ऐसा हुआ कि वे दस चित्र जब किसी को भेंट किए गए, किसी ने किए, तो उसने कहा कि नौ तो ठीक हैं, दसवें की क्या जरूरत है? क्योंकि वह बिल्कुल खाली कैनवस का टुकड़ा है। तो उसे कहा गया कि दसवां ही सार्थक है, बाकी नौ तो सिर्फ तैयारी है। बाकी नौ में कुछ नहीं है, जो है वह इस दसवें में है। तो आदमी पूछता है, लेकिन इसमें कुछ भी तो नहीं है!
उस चेतना में कुछ भी नहीं है, कोई द्वंद्व नहीं, सब खो गया है, रिक्तता
रह गई है, खाली आकाश रह गया है, शून्य रह गया है। कोई द्वंद्व नहीं है, सब अखंड हो गया है।
ऐसा अखंड व्यक्ति ही देने में समर्थ है। खंडित व्यक्ति देने में समर्थ नहीं है। और इसलिए ऐसा अखंड व्यक्ति ही तीर्थंकर जैसी स्थिति में हो सकता है। मेरा कहना है, यह महावीर लेकर ही पैदा होते हैं। और जो हमें दिखाई पड़ रहा है, वह हमारी भ्रांतियों की कथा है।
और हम कभी चीजों के बहुत पास जाकर नहीं देखे हैं, सदा दूर से देखे हैं। बहुत फासले से हम देखते हैं चीजों को। पास से हम देख भी नहीं सकते, क्योंकि पास से देखना हो तो खुद ही गुजरना पड़े उनसे। इसके पहले देख भी नहीं सकते। यानी महावीर घर से कैसे गए हैं, इसे हम कैसे देख सकते हैं, क्योंकि वैसे हम कभी अपने घर से गए ही नहीं। यह हमारे लिए देखना मुश्किल है। मुश्किल इसलिए है सिर्फ कि हम पास से कभी गुजरे ही नहीं किसी चीज के कि हम भी देख लेते। बहुत फासला है। कोई गुजरता है और हम देखते हैं, भूल हो जाती है। क्योंकि जब कोई गुजरता है तो उसकी बाह्य व्यवस्था भर दिखाई पड़ती है। उसका भीतरी अनुभव दिखाई नहीं पड़ता। और सब कथाएं, जो भी लिखा गया है, वे एकदम बाहर से खींचे गए चित्र हैं।
और बाहर से यही दिखाई पड़ता है कि महल था, महल छोड़ दिया; धन था, धन छोड़ दिया; पत्नी थी, पत्नी छोड़ दी; प्रियजन, रिश्तेदार, निकट-मित्र, सब छोड़ दिए। यही दिखता है। यही दिख सकता है। और तब त्याग की एक व्यवस्था हम खड़ी करेंगे और उस त्याग की व्यवस्था में बहुत से लोग छोड़ने की कोशिश करेंगे और मर

जाएंगे और दिक्कत में पड़ जाएंगे। बहुत लोग यही कोशिश करेंगे कि हम भी छोड़ दें मकान को, लेकिन मकान पीछा करेगा।
एक जैन मुनि थे। वे बीस वर्ष पहले अपनी पत्नी को छोड़ कर गए। उनकी जीवन-कथा किसी ने लिखी तो मेरे पास वह लाया। तो यूं ही मैं उसे उलटा-पलटा कर देखता था। तो उसमें एक वाक्य मुझे पढ़ने को मिला। बीस साल हो गए हैं पत्नी को छोड़े हुए, काशी में रहते हैं। पत्नी मरी है, तार आया है, तो उन्होंने तार पढ़ कर कहा कि चलो, झंझट छूटी। तो उस जीवन-कथा लिखने वाले ने लिखा हैः कैसा परम त्यागी व्यक्ति, कि पत्नी मरी तो सिर्फ एक वाक्य मुंह से निकला कि चलो झंझट छूटी। और कुछ भी न निकला।
मैंने--वे लेखक खुद किताब लेकर आए थे--मैंने उनसे कहा कि इस किताब को बंद करो, किसी को बताना मत। उसने कहा, क्यों? मैंने कहा, तुमको यह पता नहीं कि तुम क्या लिखे हो इसमें! अगर ऐसा ही हुआ है तो फिर बीस साल पहले जिस पत्नी को छोड़ कर तुम्हारा मुनि चला गया था, उसकी झंझट बाकी थी? यानी अब उसके मरने से कहता है, झंझट छूटी! तो झंझट बाकी थी। किसी न किसी चित्त के तल पर झंझट जारी थी। यह पत्नी के मरने की प्रतिक्रिया नहीं है, यह प्रतिक्रिया चित्त के भीतर झंझट चलने की है। झंझट खतम हुई पत्नी के मरने से! पत्नी के छोड़ने से भी पूरी न हुई वह झंझट? क्योंकि वह पत्नी है, यह भी न मिटा। क्योंकि उस पत्नी को छोड़ा है, यह भी न मिटा। क्योंकि उस पत्नी का क्या होता होगा, यह भी न मिटा। यह कुछ भी न मिटा। तो अब वह मर गई तो झंझट छूटी।
मैंने कहा, और यह भी हो सकता है कि तुम्हारे इस मुनि ने कई दफे चाहा हो
कि पत्नी मर जाए, क्योंकि इसका यह कहना इसकी भीतरी आकांक्षा का सबूत भी हो सकता है। इसने कई बार चाहा हो कि यह मर जाए। शायद छोड़ने के पहले इसने चाहा हो कि यह मर जाए, वह नहीं मरी, तो इसने शायद बाद में भी कई दफे सोचा हो कि यह मर जाए। क्योंकि यह शब्द बड़ा अदभुत है और इसके पूरे अचेतन की खबर लाता है। एक दूसरी घटना सुनाता हूं। एक फकीर गुजर गया है। उसका एक शिष्य है, जिसकी बड़ी ख्याति है। इतनी ख्याति है, गुरु से भी ज्यादा। और लोग कहते हैं, वह परम ज्ञान को उपलब्ध हो गया है--शिष्य जो है, वह परम ज्ञान को उपलब्ध हो गया है। लाखों लोग इकट्ठे हुए हैं, गुरु मर गया है। वह शिष्य मंदिर के द्वार पर ही बैठा छाती पीट-पीट कर रो रहा है। तो लोग बड़े चौंके हैं, क्योंकि ज्ञानी और रोए!
तो दो-चार जो निकट हैं, उन्होंने कहा, यह आप क्या कर रहे हो? सब जिंदगी
भर की इज्जत पर पानी फिर जाएगा। आप और रोते हो! ज्ञानी और रोए!
तो उस आदमी ने आंखें ऊपर उठाईं और कहा, ऐसे ज्ञानी से छुटकारा चाहता हूं, जो रो भी न सके। नमस्कार! इतनी भी आजादी न बचे तो ऐसा ज्ञानी मुझे नहीं होना। क्योंकि ज्ञान की खोज हम आजादी के लिए किए हैं। ज्ञान एक नया बंधन बन जाए और मुझे सोचना पड़े कि क्या कर सकता हूं, क्या नहीं कर सकता हूं, तो मैं क्षमा चाहता हूं। तुमसे कहा किसने कि मैं ज्ञानी हूं?
फिर भी उन लोगों ने कहा कि ठीक है, यह तो ठीक है। लेकिन आप ही तो समझाते
थे कि आत्मा अमर है और आत्मा नहीं मरती। आप काहे के लिए रो रहे हैं? उसने कहा, आत्मा के लिए, पागल, रो कौन रहा है? वह शरीर भी बहुत प्यारा था। वह शरीर भी बहुत प्यारा था। और वैसा शरीर अब दोबारा नहीं हो सकेगा। अद्वितीय था वह। आत्मा के लिए रो कौन रहा है? शरीर कुछ कम था क्या प्यारा!
फिर उस आदमी ने कहा, उस फकीर ने कहा कि तुम मेरी चिंता मत करो, क्योंकि मैंने ही अपनी चिंता छोड़ दी है। अब तो जो होता है, सो होता है। हंसी आती है तो हंसता हूं, रोना आता है तो रोता हूं। अब मैं रोकता ही नहीं कुछ, क्योंकि अब रोकने वाला भी कोई नहीं है। कौन रोके? किसको रोके? क्या रोकना है? क्या बुरा है, क्या भला है? क्या पकड़ना है, क्या छोड़ना है? सब जा चुका है। जो होता है, होता है। जैसे हवा चलती है तो वृक्ष हिलते हैं, वर्षा आती है तो बादल आते हैं, सूरज निकलता है तो फूल खिलते हैं--बस ऐसा ही है। न तुम फूल से जाकर कहते हो कि क्यों खिले हो, और न तुम बादल की बदलियों से कहते हो कि तुम क्यों आई हो, और न तुम सूरज से कहते हो कि क्यों निकले हो। तो मुझसे क्यों पूछते हो कि क्यों रो रहे हो? कोई मैं रो रहा हूं! रोना आ रहा है। मैं कोई रोने वाला नहीं हूं।

वे तो बहुत मुश्किल में पड़ गए हैं। और किसी एक ने कहा कि आप तो कहते थे,
सब माया है, सब सपना है।
तो वह कहता है, अभी मैं कब कह रहा हूं कि सब माया नहीं, सब सपना नहीं! मेरा रोना--अगर उतनी ठोस देह भी सत्य साबित न हुई, उतनी ठोस देह भी सत्य साबित न हुई, तो मेरे ये तरल आंसू कितने सत्य हो सकते हैं? वह आदमी यह कह रहा है, उतनी ठोस देह भी असत्य हो गई, सपना हो गई, तो मेरे तरल आंसू कितने सत्य हो सकते हैं!
इसे समझना हमें मुश्किल हो जाएगा। उस मुनि को समझना बहुत आसान है, जिसने कहा कि झंझट छूटी। क्योंकि हमारा चित्त भी वैसा ही है, वह द्वंद्व में ही जीता है। इतना निर्द्वंद्व होना बहुत मुश्किल है कि जहां रोना भी क्रिया न रह जाए, जहां उसके भी हम कर्ता न रह जाएं, जहां उसके भी हम द्रष्टा हो जाएं, जहां उसे भी हम रोकें न, टोकें न, कुछ बंधन न डालें, कुछ व्यवस्था न बांधें; जो होता हो, होता हो। जैसे वृक्षों में पत्ते आते हों और जैसे आकाश में तारे निकलते हों, ऐसा ही सब हो जाए। ऐसा अखंड व्यक्ति ही सत्य को उपलब्ध होता है और ऐसे अखंड व्यक्ति से ही सत्य की अभिव्यक्ति हो सकती है। लेकिन इतना अखंड हो जाना ही सत्य की अभिव्यक्ति के लिए काफी नहीं है। अखंड व्यक्ति भी, हो सकता है, सत्य को बिना अभिव्यक्त किए मर जाए। और बहुत से अखंड व्यक्ति सत्य को बिना प्रकट किए ही समाप्त हो जाते हैं। यह ऐसा ही है जैसे कि सौंदर्य को जान लेना सौंदर्य को निर्मित करना नहीं है।
एक आदमी सुबह के उगते सूरज को देखता है और अभिभूत हो गया सौंदर्य से, लेकिन यह अभिभूत हो जाना पर्याप्त नहीं है कि वह एक चित्र बना दे सुबह के सूरज उगने का। अभिव्यक्त कर दे इसको, जरूरी नहीं है। तुम सुबह बैठे हो वृक्ष के नीचे और एक पक्षी ने गीत गाया और तुम डूब गए संगीत में। तुमने अनुभव किया है संगीत, लेकिन जरूरी नहीं कि वीणा उठा कर तुम गीत को पुनर्जन्म दे दो।
यानी सत्य की अनुभूति एक बात है और अभिव्यक्ति बिल्कुल दूसरी बात है। बहुत से अनुभूति-संपन्न व्यक्ति बिना अभिव्यक्ति दिए समाप्त हो जाते हैं।
दुनिया में कितने लोग हैं जो सौंदर्य को अनुभव नहीं करते। लेकिन कितने कम लोग हैं, जो सौंदर्य को चित्रित कर पाते हैं। कितने लोग हैं, जिनके प्राणों को आंदोलित नहीं कर देता संगीत। लेकिन कितने कम लोग हैं, जो संगीत को अभिव्यक्त कर पाते हैं। कितने लोग हैं, जिन्होंने प्रेम नहीं किया! लेकिन प्रेम की दो कड़ियों में, प्रेम की दो कड़ी लिख पाना बिल्कुल दूसरी बात है।
तो यहां दो-तीन बातें कहूं, ताकि आगे का सिलसिला ख्याल में रह सके। पहली बात, अनुभूति हो जाना अखंड की पर्याप्त नहीं है अभिव्यक्ति के लिए, कुछ और करना पड़ता है अभिव्यक्ति के लिए--अनुभूति के अतिरिक्त। और अगर वह और न किया जाए तो अनुभूति होगी और व्यक्ति खो जाएगा। तीर्थंकर वैसा अनुभवी है, जो कुछ और करता है--अभिव्यक्ति के लिए।
इसलिए महावीर की जो बारह वर्ष की साधना है, वह मेरे लिए सत्य-उपलब्धि
के लिए नहीं है। सत्य तो उपलब्ध है, उसकी अभिव्यक्ति के सारे माध्यम खोजे जा रहे हैं उन बारह वर्षों में। और ध्यान रहे, सत्य को जानना तो कठिन है ही, सत्य को प्रकट करना और भी कठिन है। सत्य को उपलब्ध करना तो कठिन है, उससे भी ज्यादा कठिन है यह कि सत्य को कम्युनिकेट करना। तो महावीर की... ।
आप पूछ सकते हैं कि अगर महावीर को सब मिल गया है तो फिर यह तपश्चर्या,
यह साधना, यह उपवास, यह बारह वर्षों का लंबा काल, यह क्या हो रहा है? क्या कर रहे हैं वे? अगर मैं कहता हूं कि वे तो पाकर लौटे हैं, तो यह क्या कर रहे हैं?
तो जितना गहरा मैंने देखने की कोशिश की, उतना मैं इस नतीजे पर पहुंचा हूं कि ये अभिव्यक्ति के सब उपकरण खोजे जा रहे हैं। और अभिव्यक्ति बहुत तलों पर महावीर ने करने की कोशिश की है, जिसकी कि कम शिक्षकों ने फिक्र की है कभी भी। यानी जीवन के जितने तल हैं और जीवन के जितने रूप हैं, सब रूपों तक सत्य की खबर पहुंचाने की अदभुत तपश्चर्या महावीर ने की है।

यानी मनुष्य से ही नहीं बोल देना है, क्योंकि मनुष्य तो सिर्फ जीवन की
एक छोटी सी घटना है। जीवन की यात्रा की मनुष्य सिर्फ एक सीढ़ी है। एक ही सीढ़ी पर सत्य नहीं पहुंचा देना है, मनुष्य के पीछे की सीढ़ियों पर भी पहुंचा देना है। मनुष्य से भिन्न सीढ़ियों पर भी पहुंचा देना है। यानी पत्थर से लेकर और देवता तक भी सुन सकें, इसकी सारी व्यवस्था खोजने में बारह वर्ष व्यतीत हुए हैं। जो चेष्टा है, वह यह है कि जीवन के सब रूपों से कम्युनिकेशन और संवाद हो सके, सब रूपों पर अभिव्यक्त किया जा सके। तो वह तपश्चर्या सत्य-उपलब्धि के लिए नहीं है, वह तपश्चर्या सत्य की अभिव्यक्ति खोजने के लिए है। और तुम हैरान होओगे, सुबह सूरज को देख कर सौंदर्य को अनुभव कर लेना बहुत सरल है, लेकिन उगते हुए सूरज को चित्रित करने में हो सकता है जीवन लग जाए, तब आप समर्थ हो पाएं।
विनसेंट वानगॉग ने अंतिम जो चित्र चित्रित किया है, वह है सूर्यास्त का। यह इधर मनुष्य-जाति में हुए दो-चार बड़े चित्रकारों में एक है वानगॉग। और अंतिम चित्र उसने सूर्यास्त का... और सूर्यास्त का चित्र पूरा करके ही उसने आत्महत्या कर ली थी। और लिख गया था कि जिसे चित्रित करने के लिए जीवन भर से कोशिश कर रहा था, वह काम पूरा हो गया। और अब सूर्यास्त ही चित्रित हो गया। अब और रहने का अर्थ क्या है? और इतनी आनंदपूर्ण घड़ी से मरने के लिए और अच्छी घड़ी अब न मिल सकेगी। सूर्यास्त चित्रित हो गया है। और वह मर गया है। और इस चित्र को चित्रित करने के लिए--आप हैरान हो जाएंगे कि इस चित्र
को चित्रित करने के लिए उसने कैसी मुश्किलें उठाईं। उसने सूर्य को कितने रूपों में देखा। सुबह से भूखा खेतों में पड़ा रहा, जंगलों में पड़ा रहा, पहाड़ों पर पड़ा रहा। सूरज की पूरी यात्रा, उसके भिन्न-भिन्न चेहरे, उसकी भिन्न-भिन्न स्थितियां, उसके भिन्न-भिन्न रंग, उसका भिन्न-भिन्न--वह तो प्रतिपल भिन्न होता चला जा रहा है। उगने से लेकर डूबने तक उसकी सारी यात्रा।
ओरिलीज में, जहां यूरोप में सबसे ज्यादा सूरज तपता है, वहां एक वर्ष तक--थोड़ा नहीं--एक वर्ष तक वह सूरज का उगना और डूबना देखता रहा। पागल हो गया। क्योंकि इतनी गर्मी सहना असंभव हो गई। एक वर्ष तक निरंतर आंखें सूरज पर टिकीं, आंखों ने जवाब दे दिया और सिर घूम गया। एक साल पागलखाने में रहा। जब पागलखाने से वापस हुआ तो उसने कहा, अब चित्रित कर सकूंगा। क्योंकि जब जीया ही न था, उसे देखा ही न था, उसके साथ ही न रहा था तो कैसे चित्रित करता? एक सूर्यास्त को चित्रित करने के लिए एक आदमी एक वर्ष तक सूरज को देखे, पागल हो जाए, तब चित्रित कर पाए, तो सत्य को--जिसका कि कोई प्रकट रूप नहीं दिखाई पड़ता--उसे कोई जाने, फिर शब्द में, और-और माध्यमों से उसे पहुंचाने की कोशिश करे, तो उसके लिए लंबी साधना की जरूरत पड़ेगी।
महावीर की जो साधना है, वह अभिव्यक्ति के उपकरण खोजने की साधना है। कठिन है, बहुत ही कठिन है। तो उसे समझने की हम कोशिश करेंगे कि वे उस साधना में कैसे वह अभिव्यक्ति के लिए एक-एक, एक-एक सीढ़ी खोज रहे हैं, एक-एक मार्ग खोज रहे हैं, कैसे वे संबंध बना रहे हैं अलग-अलग जीवन की स्थितियों से, योनियों से, कैसा संबंध स्थापित कर रहे हैं।
वह हमारे ख्याल में आ जाएगा तो पूरी दृष्टि और हो जाएगी, सोचने की बात
ही और हो जाएगी।

महावीर: मेरी दृष्टि में छठवां प्रवचन

अभिव्यक्ति की महावीर-साधना

प्रश्नः जैसा आपने कल बताया कि महावीर का बारह वर्ष का साधना-काल, जो कुछ उन्होंने पिछले जन्म में परमावस्था तक प्राप्त किया था, उसे विश्व के सभी तलों को लाभ हो, उसकी अभिव्यक्ति की खोज थी। तो फिर उनके पिछले जन्मों- जन्मों की साधना या तप क्या था, जिससे उनके बंधन कट कर उन्हें सत्य की उपलब्धि हो सकी?

इस संबंध में सबसे पहली बात तो यह समझ लेनी जरूरी है कि तप या संयम से बंधनों की समाप्ति नहीं होती, बंधन नहीं कटते। तप और संयम कुरूप बंधनों की जगह सुंदर बंधनों का निर्माण भर कर सकते हैं। लोहे की जंजीरों की जगह सोने की जंजीरें आ सकती हैं, लेकिन जंजीर मात्र नहीं कट सकती है। क्योंकि तप और संयम करने वाला व्यक्ति वही है जो अतप और असंयम कर रहा था, उस व्यक्ति में कोई फर्क नहीं पड़ा है।
एक आदमी व्यभिचार कर रहा है। इसके पास जो चेतना है, इसी चेतना को लेकर अगर कल यह ब्रह्मचर्य की साधना करने लगे तो व्यभिचार बदल कर ब्रह्मचर्य होगा, लेकिन इस व्यक्ति की भीतर की चेतना जो व्यभिचार करती थी, वही ब्रह्मचर्य साधेगी। और इसलिए व्यभिचार जैसे एक बंधन था, वैसे ब्रह्मचर्य भी एक बंधन ही सिद्ध होने वाला है।
इसलिए सवाल तप और संयम का नहीं है, बंधन की निर्जरा उनसे नहीं होगी। सवाल है चेतना के रूपांतरण का, चेतना के बदल जाने का। और चेतना को बदलने के लिए बाहर के कर्म का कोई भी अर्थ नहीं है। चेतना को बदलने के लिए भीतर की मूर्च्छा के टूटने का प्रश्न है।
चेतना के दो ही रूप हैं--मूर्च्छित और अमूर्च्छित। जैसे कर्म के दो रूप हैं--संयमी और असंयमी। बदलाहट अगर कर्म में की गई तो संयम आ सकता है असंयम की जगह, लेकिन चेतना इससे अमूर्च्छित दशा में नहीं पहुंच जाएगी मूर्च्छित से। भीतर व्यक्ति सोया हुआ है, प्रमाद में है, वह अप्रमाद में कैसे पहुंचे?
महावीर की पिछले जन्मों की साधना अप्रमाद की साधना है, अवेयरनेस की साधना है। भीतर हमारी जो जीवन चेतना है, वह कैसे परिपूर्ण रूप से जागी हुई हो, वह सोई हुई न हो। महावीर ने इसे विवेक कहा है। इसलिए वे कहते हैंः विवेक से उठे, विवेक से बैठे, विवेक से चले, विवेक से भोजन करे, विवेक से सोए भी। अर्थ यह है कि उठते-बैठते, सोते, खाते-पीते, प्रत्येक स्थिति में चेतना जाग्रत हो, मूर्च्छित नहीं।
इसे थोड़े गहरे में समझना उपयोगी होगा। हम रास्ते पर चलते हों, तो शायद
ही हमने कभी ख्याल किया हो कि चलने की जो क्रिया हो रही है, उसके प्रति हम जागे हुए हैं। हम भोजन कर रहे हैं, तो शायद ही हमें स्मरण रहा हो कि भोजन करते वक्त जो भी हो रहा है, उसके प्रति हम सचेत हैं। चीजें यंत्रवत हो रही हैं। रास्ते के किनारे खड़े हो जाएं और लोगों को रास्ते से गुजरते देखें। तो ऐसा लगेगा मशीनों की तरह वे चले जा रहे हैं। ऐसे लोग भी दिखाई पड़ेंगे जो हाथ हिला कर किसी से बातें कर रहे हैं और साथ में कोई भी नहीं है। ऐसे लोग भी मिलेंगे, जिनके ओंठ हिल रहे हैं और बात चल रही है, लेकिन साथ में कोई भी नहीं है। किसी स्वप्न में खोए हुए, निद्रा में डूबे हुए ये लोग मालूम पड़ेंगे। दूसरे के लिए ही नहीं है ऐसा, हम अपने को भी देख सकें, अपना भी ख्याल कर सकें तो यही प्रतीत होगा।
जीवन में हम ऐसे जीते हैं, जैसे किसी गहरी मूर्च्छा में पड़े हों। हमने जिन्हें प्रेम किया है, वह मूर्च्छा में। हमें पता नहीं क्यों। हम नहीं बता सकते कोई कारण। हमने जिनसे घृणा की है, वह मूर्च्छा में। हम जब क्रोध किए हैं, तब मूर्च्छा में। हम जैसे भी जीए हैं, उस जीने को एक सजग व्यक्ति का जीना तो नहीं कहा जा सकता--एक सोए हुए व्यक्ति का जीना है।

कुछ लोग हैं जो रात्रि में, नींद में भी उठ आते हैं। एक बीमारी है निद्रा में चलने की--सोम्नाबुलिज्म। नींद में उठते हैं, खाना खा लेते हैं, घर में घूम लेते हैं, किताब पढ़ लेते हैं, फिर सो जाते हैं। सुबह उनसे पूछिए, वे कहेंगे, कौन उठा! कोई भी नहीं उठा।
अमरीका में एक आदमी था जो रात निद्रा में उठ कर अपनी छत से पड़ोसी की छत
पर कूद जाता था, फिर वापस कूद आता था। अस्सी-नब्बे मंजिल के मकानों की छत पर से कूदना और बीच में दस-बारह फीट का फासला! यह रोज चल रहा था। धीरे-धीरे पड़ोसियों को पता चला कि वह रोज रात यह करता है। एक दिन लोग, सौ-पचास लोग नीचे इकट्ठे रहे रात देखने के लिए। वह तो बेचारा नींद में करता था। होश में तो वह भी नहीं छलांग लगा सकता था, जागा हुआ। वह तो नींद में करता था। जैसे ही वह छलांग लगाने को हुआ, नीचे के लोगों ने जोर से आवाज की और उसकी नींद टूट गई और वह बीच खड्ड में गिर गया और प्राणांत हो गया। और यह वह वर्षों से कर रहा था, लेकिन वह कभी मानता नहीं था कि मैं यह करता हूं। निद्रा में बहुत से काम हम करते हैं, लेकिन जागे हुए भी हम किसी सूक्ष्म निद्रा में जीते हैं। इसे महावीर ने प्रमाद कहा है। जागे हुए भी, चलते हुए भी, होश से भरे हुए भी हमारे भीतर एक धीमी सी तंद्रा का जाल फैला हुआ है।
जैसे एक आदमी ने आपको धक्का दे दिया और आप क्रोध से भर गए। कभी आपने सोचा कि यह क्रोध आपने जान कर किया है या कि हो गया है? जैसे बिजली की बटन दबाई है और पंखा चल पड़ा है, तो हम पंखे को नहीं कह सकते कि पंखा चल रहा है। पंखा सिर्फ चलाया जा रहा है। और एक आदमी ने आपको धक्का दिया और आपके भीतर क्रोध चल पड़ा, तो हम यह नहीं कह सकते कि आपने क्रोध किया है। हम इतना ही कह सकते हैं कि बटन किसी ने दबाई और क्रोध चल पड़ा। आप भी नहीं कह सकते कि मैं क्रोध कर रहा हूं। क्योंकि जो आदमी यह कह सकता है, मैं क्रोध कर रहा हूं, उस आदमी को कभी क्रोध करना संभव नहीं है। क्योंकि वह अगर मालिक है तो करेगा ही नहीं। अगर मालिक नहीं है तो ही कर सकता है।
हमारी सारी जीवन की क्रिया सोई-सोई है। स्लीप वाकर्स हैं हम सब। नींद में चल रहे हैं। इसे महावीर ने कहा है प्रमाद। यह है मूर्च्छा। और साधना एक ही है कि कैसे हम क्रिया मात्र में जागे हुए हो जाएं। क्योंकि जैसे ही हम जागेंगे, वैसे ही रूपांतरण चेतना का शुरू हो जाएगा।
आपने कभी ख्याल किया कि रात जब आप सोते हैं, तब आपकी चेतना बिल्कुल दूसरी हो जाती है, वही नहीं रहती जो जागने में थी! सुबह जब आप जागते हैं तो चेतना वही नहीं रहती, जो सोने में थी। चेतना मूल रूप से दूसरे तलों पर पहुंच जाती है निद्रा में, रात को। जो आपने कभी सोचा नहीं था, वह आप कर सकते हैं रात। जो कभी आप कल्पना नहीं कर सकते थे कि पिता को मार डालें, वह आप रात में हत्या कर सकते हैं। और जरा भी दंश नहीं होगा मन को। और दिन में जो भी आप थे, जो आपके संबंध थे, वे सब खो गए निद्रा में। एक करोड़पति निद्रा में वैसा ही साधारण हो गया है, जैसा एक दरिद्र भिखमंगा सड़क पर सोया हुआ।
एक फकीर था। उसके गांव का सम्राट एक दिन उसके पास से निकल रहा था, तो
उस सम्राट ने उससे पूछा कि हममें और तुममें फर्क क्या है? और फर्क तो निश्चित है। तुम भिखारी हो एक गांव के सड़क पर भीख मांगने वाले, मैं सम्राट हूं। उस आदमी ने कहा, जरूर फर्क है, लेकिन जहां तक जागने का संबंध है, वहीं तक। सोने के बाद हममें तुममें कोई फर्क नहीं, क्योंकि सोने के बाद न तुम्हें ख्याल रह जाता है कि तुम सम्राट हो और न मुझे ख्याल रह जाता है कि मैं भिखारी हूं। तो खेल जगने का है।
कभी आपको ख्याल है कि सोने में आपको यह भी पता नहीं रह जाता कि आप कौन हैं। जो आप जागने में थे, उसका भी पता नहीं रह जाता। आपकी उम्र क्या है, यह भी पता नहीं रह जाता। आपका चेहरा कैसा है, यह भी पता नहीं रह जाता। आप बीमार हैं कि स्वस्थ, यह भी पता नहीं रह जाता। निश्चित ही चेतना किसी और ही तल पर सक्रिय हो जाती है, इस तल से एकदम हट जाती है।
तो नींद और जागने की साधारण स्थितियों से हम जान सकते हैं कि अगर हम जागने को भी समझें कि वह भी एक तंद्रा है, तो वह तंद्रा जिसकी टूट जाती होगी, वह बिल्कुल ही नए लोक में प्रवेश कर जाता है।

साधना का एक ही अर्थ है कि हम कैसे सोए-सोए जीने से जागे-जागे जीने में प्रवेश कर जाएं। और महावीर की पूरी साधना ही इतनी है कि सोना नहीं है, जागना है। जागने की प्रक्रिया क्या होगी? जागने की प्रक्रिया जागने का ही प्रयास होगी!
जैसे किसी आदमी को हमें तैरना सिखाना है तो वह हमसे कहे कि तैरना सीखने का कोई रास्ता बताएं; क्योंकि मैं तो तभी पानी में उतरूंगा, जब मैं तैरना सीख जाऊं, बिना तैरना सीखे मैं पानी में कैसे उतर सकता हूं! तो बात तो वह बिल्कुल दलील की कह रहा है और ठीक कह रहा है, बिना तैरना जाने पानी में उतरना खतरनाक है। लेकिन सिखाने वाला कहेगा कि अगर तुम बिना तैरे पानी में उतरने को राजी नहीं हो तो तैरना कैसे सिखाया जा सकता है? क्योंकि तैरना सीखने की एक ही तरकीब है कि तैरो। तैरना सीखने की और कोई तरकीब नहीं है। तैरने के अलावा कोई तरकीब नहीं है, तैरना शुरू करना पड़ेगा। पहले हाथ-पैर तड़फड़ाओगे, उलटा-सीधा गिरोगे, डूबोगे-उतराओगे, लेकिन तैरना शुरू करना पड़ेगा। उसी शुरुआत से धीरे-धीरे तैरना व्यवस्थित हो जाएगा और तैर सकोगे। लोग भी पूछते हैं, जागने की तरकीब क्या है? जागने की कोई तरकीब नहीं है--जागना ही पड़ेगा। पहले हाथ-पैर तड़फड़ाने पड़ेंगे, गलत-सही होगा, डूबना- उतराना होगा, क्षण भर को जागेंगे फिर सो जाएंगे, ऐसा होगा, लेकिन जागना ही पड़ेगा। निरंतर जागने की धारणा से धीरे-धीरे जागना फलित हो जाता है।
तो जागने की तरकीब का मतलब सिर्फ इतना ही है कि हम जो भी करें, यह हमारा प्रयास हो, यह हमारा संकल्प हो कि हम उसे जागे हुए करेंगे। और अगर आप इसकी कोशिश करेंगे तो आप पाएंगे कि नींद बड़ी गहरी है, एक क्षण भी नहीं जाग पाते हैं कि नींद पकड़ लेती है।
जैसे एक छोटा सा काम है रास्ते पर चलने का, और आप तय करके चलें कि आज मैं रास्ते पर जागा हुआ ही चलूंगा, तब आपको पता चलेगा कि निद्रा कितनी गहरी है और निद्रा का क्या मतलब है! आप एक सेकेंड एकाध-दो कदम उठा पाएंगे और स्लिप हो जाएगा दिमाग, चलने की क्रिया से हट जाएगा, और कहीं चला जाएगा। फिर आपको ख्याल आएगा कि मैं तो फिर से सो गया, जागना तो भूल गया था, यह चलना तो भूल गया था। क्षण भर को भी पूरी तरह जाग कर चलना मुश्किल है, क्योंकि नींद बहुत गहरी है। लेकिन हमें नींद का पता नहीं चलता, क्योंकि हमें जागने का कोई पता ही नहीं है। तो तुलना नहीं है हमारे पास।
अभी जिसको हम जागना और सोना कहते हैं, जिस आदमी की नींद... समझो एक आदमी ऐसा पैदा हो जो रात सो न सके, तो उसे कभी पता नहीं चलेगा कि वह जिस हालत में है, वह जागी हुई हालत है। इस सोए और जागने में उसे कोई फर्क तभी हो सकता है, जब वह दूसरी स्थिति को भी समझ ले।
जब महावीर जैसे लोग कहते हैं कि हम सोए हुए जी रहे हैं तो हमारी समझ में नहीं पड़ती बात, क्योंकि जाग कर जीने का क्षण भर का अनुभव भी हमें नहीं है, तुलना कहां से हो? कंपेरिजन कैसे हो? कहां तौलें? तो इसका तो थोड़ा सा प्रयास करेंगे। एक क्षण को भी अगर जाग कर चल लेंगे दो कदम, तो आप पाएंगे कि एक बिल्कुल ही अलग चित्त की दशा है। लेकिन क्षण भर में खो जाती है और नींद फिर पकड़ लेती है। जैसे बादल जरा सी देर को हटते हैं, सूरज दिख भी नहीं पाता कि फिर घिर जाते हैं।
और नींद का हमारा लंबा अभ्यास है। और अकारण नहीं है नींद का अभ्यास, कारण हैं उसमें। कारण हैं उसमें। पहला कारण तो यह है कि सोए हुए जीना बड़ा सुविधापूर्ण है, कन्वीनिएंट है, बहुत सुविधापूर्ण है।
इसलिए सुविधापूर्ण है कि सोए हुए जीने में क्या हो रहा है, क्या नहीं
हो रहा है; क्या कर रहे हैं, क्या नहीं कर रहे हैं; इसकी कोई विभेदक रेखा नहीं खिंचती। जागे हुए व्यक्ति को फौरन विभेद-रेखा खड़ी हो जाती है कि यह करने जैसा, यह न करने जैसा। और फिर जो न करने जैसा है उसे करने में वह एकदम असमर्थ हो जाता है।
और अभी जिसे हम जिंदगी कह रहे हैं उसमें निन्यानबे प्रतिशत ऐसा है, जो
न करने जैसा है--जिसे हम सोए रहें तो ही कर सकते हैं, जागे तो नहीं कर सकेंगे; जो जाग जाता है, वह नहीं कर पाता है। तो भीतर कहीं भय भी है कि जैसे हम हैं, उसमें कहीं सब आमूल उपद्रव न हो जाए। इसलिए सोए हुए चलना ही ठीक मालूम पड़ता है।

दूसरी बात है कि सोए हुए लोगों के साथ सोए हुए होने में ही सरलता पड़ती है। चारों तरफ लोग सोए हुए हों और एक आदमी जाग जाए तो उसकी कठिनाई आप नहीं समझ सकते कि उसकी कठिनाई कैसी होगी।
मेरे एक मित्र, वे पागल हो गए। पागल हो गए उन्नीस सौ छत्तीस के करीब।
तो घर से भाग गए और एक अदालत में पकड़े गए, कुछ उन पर मुकदमे चले। लेकिन मजिस्ट्रेट ने कहा, वह पागल है। तो उन्हें छह महीने की सजा दी गई, लेकिन सजा उनकी पागलखाने में कटे। और लाहौर के पागलखाने में वे भेज दिए गए।
वे मुझे कहते हैं कि दो महीने तो मेरे बड़े आनंद से कटे, क्योंकि मैं भी पागल था और सब वहां पागल थे, कोई तीन सौ पागलों का एक जमाव था। बड़ा आनंद ही आनंद था। बल्कि बाहर मैं कष्ट में था। क्योंकि मेरा तालमेल ही नहीं बैठता था किसी से। क्योंकि सब ठीक थे, मैं पागल था। तो मैं जो करता, उनको न जंचता, वे जो करते, मुझको न जंचता। पागलखाने में पहुंच कर जैसे मैं स्वर्ग में पहुंच गया। जाकर मैंने जो पहला काम किया, वह परमात्मा को, उस मजिस्ट्रेट को धन्यवाद दिया, जिसने मुझे पागलखाने भेज दिया। सब अपने जैसे लोग थे, बहुत ही बढ़िया था।
लेकिन दो महीने बाद बड़ी मुसीबत हो गई। छह महीने की सजा हुई थी और दो महीने बाद पागलखाने में कहीं एक डब्बा मिल गया रखा हुआ फिनायल का, और वे उसको उठा कर पी गए। पागल आदमी थे, वे फिनायल पी गए पूरा। फिनायल पीने से उनको पंद्रह दिन तक इतने कै-दस्त हुए कि सारी सफाई हो गई और सब गर्मी निकल गई और वे बिल्कुल ठीक हो गए। पंद्रह दिन बाद वे बिल्कुल ठीक हो गए। यानी उस पागलखाने में वे गैर-पागल हो गए। और वे डाक्टरों को कहने लगे कि अब मैं बिल्कुल ठीक हो गया हूं और अब मेरी बड़ी मुसीबत हो गई है।
लेकिन वहां कौन मानता था! क्योंकि डाक्टरों ने कहा, यहां सभी पागल यह कहते हैं कि हम ठीक हैं, यहां कोई--यह कोई बात है, यह तो सब पागल रोज ही कहते हैं कि हम ठीक हैं, कोई पागल कभी मानता है कि हम पागल हैं! उन्होंने जितना ही समझाने की कोशिश की, कोई समझने को राजी ही नहीं था। छह महीने की सजा पूरी करनी पड़ी।
वे मुझसे कहते थे कि चार महीने मेरे इतने कष्ट में कटे कि ऐसा नरक में कोई किसी को न डाले। क्योंकि सब थे पागल और मैं हो गया ठीक, कोई मेरी टांग खींच रहा है, कोई मेरा कान घुमा रहा है, कोई धक्का ही मार देता है, कोई पानी ही डाल देता है ऊपर लाकर, सो रहा हूं तो कोई घसीट कर दो कदम चार कदम आगे कर जाता है। यह मैं भी करता रहा होऊंगा दो महीने, लेकिन तब हम सब साथी थे, तब कभी ख्याल न आया था कि यह गलत कर रहा है।
अब बड़ी मुश्किल हो गई। और अब मैं करने में असमर्थ हो गया कि मैं भी यही करूं। अब मैं किसी की टांग न खींच सकता और किसी पर पानी न डाल सकता। मैं बिल्कुल ठीक था और वे सब पागल थे और उनकी जो मर्जी आती, वे करते। कोई चलते चपत ही मार जाता, कोई बाल ही खींच जाता। जो जिसकी मर्जी। कोई आकर कंधे पर बैठ जाता, कोई गोदी में बैठ जाता। चार महीने निरंतर यही भगवान से प्रार्थना रही कि या तो जल्दी बाहर कर या फिर पागल कर दे। क्योंकि यह तो बड़ा इनकन्वीनिएंट हो गया, यह तो बड़ा असुविधापूर्ण हो गया।
पागलखाने में किसी आदमी के ठीक हो जाने की जो तकलीफ है, वही सोए हुए जगत के बीच जागने की तकलीफ है। क्योंकि वह आदमी फिर सोए हुए आदमी के ढंग, व्यवहार नहीं कर सकता। और सोया हुआ आदमी तो अपने ढंग जारी रखता है।
तो महावीर जैसे लोग जिस कष्ट में पड़ जाते हैं, उस कष्ट का हम हिसाब नहीं लगा सकते। हम हिसाब ही नहीं लगा सकते, क्योंकि हमें पता ही नहीं है कि वह कष्ट कैसा है। क्योंकि हम सोए हुए लोगों के बीच में एक आदमी जाग गया। हमारी उसकी भाषा बदल गई। हमारी उसकी चेतना बदल गई। वह एकदम अजनबी हो गया-- ऐसा स्ट्रेंजर, ऐसा अजनबी, जो कि कोई अजनबी नहीं होता।
अगर एक तिब्बती भारत में आ जाए या आप तिब्बत में चले जाएं तो जो अजनबीपन है, वह सिर्फ भाषा के शब्दों का है, बहुत ऊपरी अजनबीपन है, भीतर के आदमी एक जैसे हैं। क्रोध उसको आता है, क्रोध आपको आता है। घृणा उसको आती है, घृणा आपको आती है। ईर्ष्या में वह जीता है, ईर्ष्या में आप जीते हैं। फर्क है तो इतना कि ईर्ष्या का आपका शब्द अलग है, ईर्ष्या का उसका शब्द अलग

है। थोड़े दिन में पहचान हो जाएगी कि ये सब शब्द हमारे हैं। मेल खा जाएंगे और अजनबीपन मिट जाएगा।
यानी साधारणतः पृथ्वी के अलग-अलग कोनों पर रहने वाले को हम स्ट्रेंजर कहते हैं, अजनबी कहते हैं, लेकिन वह अजनबीपन बड़ा छोटा है, सिर्फ भाषा का है। आदमी-आदमी एक जैसे हैं। लेकिन जब कोई आदमी सोई हुई पृथ्वी पर जागा हुआ हो जाता है, तो जो अजनबीपन शुरू होता है, उसका हिसाब लगाना मुश्किल है। क्योंकि अब भाषा का भेद नहीं है, अब तो सारी चेतना का भेद पड़ गया। सब आमूल बदल गया है। अगर हमें कोई गाली देता है तो हमारे भीतर क्रोध उठता है, उसे अगर कोई गाली देता है तो उसके भीतर करुणा उठती है। इतनी चेतना का फर्क हो गया है। क्योंकि उसे दिखाई पड़ता है कि एक आदमी बेचारा गाली देने की स्थिति में आ गया, कितनी तकलीफ में न होगा! और उसके भीतर से करुणा बहनी शुरू होती है।
और हमारे लिए समझना आसान है, अगर आप मुझे गाली दें और मैं भी आपको गाली दूं तो आपका मैं मित्र हूं, क्योंकि आपकी ही दुनिया का निवासी हूं। आप मुझे गाली दें और मैं आपको प्रेम करूं तो आप जितना क्रोध से भरेंगे मेरे प्रति, उतना गाली देने वाले के प्रति नहीं भरेंगे।
नीत्शे ने एक बहुत अजीब बात और बड़ी अदभुत, लेकिन मजाक में कही है। नीत्शे ने कहा है कि जीसस कहते हैं कि जो आदमी तुम्हारे गाल पर एक चांटा मारे, दूसरा तुम उसके सामने कर देना। तो नीत्शे ने कहा है कि इससे बड़ा अपमान दूसरे आदमी का कोई और हो सकता है? एक आदमी तुम्हारे गाल पर चांटा मारे और तुम दूसरा उसके सामने कर दोगे, तो इससे ज्यादा इंसल्टिंग, इससे ज्यादा अपमानजनक और कोई स्थिति दूसरे आदमी के लिए हो सकती है? तुमने तो उसको कीड़ा-मकोड़ा बना दिया। यानी तुमने उसकी आदमियत भी स्वीकार न की। तुमने इतना भी न कहा कि ठीक है, तूने एक चांटा मारा, एक चांटा हम भी मारेंगे। तो तुम बराबर हो गए होते। तुम तो एकदम आसमान में चले गए और वह एकदम जमीन पर रेंगता हुआ कीड़ा हो गया। यह अपमान बरदाश्त नहीं किया जा सकता।
नीत्शे ने लिखा हैः यह अपमान बरदाश्त के बाहर है। तुमने उस आदमी को तो बिल्कुल ही मिटा दिया, आदमी भी स्वीकार न किया तुमने। और तुमने ऐसा दुर्व्यवहार किया उसके साथ, जिसका कोई हिसाब नहीं। यह सदव्यवहार न हुआ, नीत्शे कहता है, यह तो बहुत दुर्व्यवहार हो गया। सदव्यवहार तो यही था कि समानता के साथ एक चांटा तुमने भी मारा होता, तो हम दोनों बराबर तो हो गए होते, हम एक ही तल पर होते। तुम पहाड़ पर खड़े हो गए, हम खाई में पड़ गए।
वह ठीक कह रहा है। गाली देने वाला उत्तर में आई गाली से इतना नाराज न होगा, क्योंकि यह उसकी अपनी भाषा है। गाली आनी चाहिए, गाली दी इसलिए गई है। लेकिन अगर उत्तर में करुणा लौटे तो उसके क्रोध का हिसाब नहीं रह जाएगा। उसके अपमान और उसकी पीड़ा को हम नहीं समझ सकते हैं। वह इसका बदला लेगा।
तो सोए हुए आदमियों के भीतर एक अनजानी स्वीकृति है इस बात की कि अगर जीना है सबके साथ तो चुपचाप सोए रहो। पागलों के साथ रहना है तो पागल बने रहो। और भीतरी भी हमें डर है, क्योंकि सब बदल जाएगा, सब बदलने की हम हिम्मत नहीं जुटा पाते।
इसलिए साधक का पहला लक्षण है--अनजान, अपरिचित, अनहोनी के लिए हिम्मत जुटाना। उसके लिए हम हिम्मत नहीं जुटा पाते हैं, साहस ही नहीं जुटा पाते हैं। हम कहते भी हैं कि हमको शांति चाहिए, हमको सत्य चाहिए, लेकिन हम सब ये बातें इस तरह करते हैं कि जैसे हम हैं, वैसे में ही सब मिल जाए। हमें बदलना न पड़े। हमने जो व्यवस्था कर रखी है, जो मकान बना रखा है, जो संबंध बना रखे हैं, उनमें कोई हेर-फेर न करना पड़े, सब जैसा है वैसा रहे, और कुछ मिल जाए। लेकिन हमें यह पता ही नहीं है कि अगर अंधे आदमी को आंख मिलेगी तो उसके
सब संबंध बदल जाएंगे, क्योंकि कल के संबंध अंधे आदमी के संबंध थे। कल वह जिस आदमी का हाथ पकड़ कर रास्ता चलता था, अब हाथ पकड़ने से इनकार कर देगा। और हो सकता है, जिसका हाथ पकड़ कर वह चला था उसे हमेशा यह ख्याल रहा था
कि मैं उसका सहारा हूं। कल वह हाथ पकड़ने के लिए इनकार कर देगा। वह कहेगा, क्षमा करो, मेरे पास आंख है, मैं चल सकता हूं। तो यह आदमी भी नाराज होगा,

जिसका उसने सदा हाथ पकड़ा था, क्योंकि अब वह सहारा नहीं मांगता है। सहारा देने का भी सुख है। सहारा देने का भी अहंकार है।
तो अंधे आदमी ने एक तरह के संबंध बनाए थे और आंख वाला आदमी दूसरे तरह
के संबंध बनाएगा। सोए हुए आदमी ने एक तरह की दुनिया बसाई है, जागा हुआ आदमी उस दुनिया को बिल्कुल ही अस्तव्यस्त कर देगा। तो वह भी डर है भीतर हमारे। वह साहस भी नहीं है।
लेकिन अगर थोड़ा सा साहस हम जुटा पाएं तो जागना कठिन नहीं है। क्योंकि
जो सो सकता है, वह जाग सकता है, चाहे कितनी ही गहरी नींद में सोया हो, जो सोया है, उसमें जागने की क्षमता शेष है। एक आदमी यहां कितनी ही गहरी नींद में सोया हुआ है, हम उसके पास जागे हुए बैठे हैं। हम दोनों बिल्कुल भिन्न हालत में हैं। अगर उस सोए हुए आदमी पर खतरा आएगा तो उसको पता नहीं चलेगा, जागे हुए आदमी पर खतरा आएगा तो उसे पता चलेगा।
इस मकान में आग लग गई है तो सोए हुए आदमी को कोई पता नहीं चलेगा कि मकान में आग लग गई है, जब तक कि वह जाग न जाए। लेकिन जागे हुए आदमी को फौरन पता चला है कि आग लग गई। ये दोनों आदमी इस मकान में हैं--एक सोया है, एक जागा है। मकान में आग लग गई, सोया हुआ आदमी सोया हुआ है निश्चिंत, जागे हुए आदमी को चिंता पकड़ गई है। लेकिन फिर भी ये दोनों आदमियों में बुनियादी भेद नहीं है, क्योंकि सोया हुआ आदमी एक क्षण में जाग सकता है और जागा हुआ आदमी एक क्षण में सो सकता है।
यह जो साधारण तल पर जागना और सोना है, ठीक ऐसे ही जो व्यक्ति जाग गया है, वह जानता है कि जो सोए हैं, वे जाग सकते हैं। लेकिन वहां एक फर्क है। इस साधारण तल पर जागने और सोने में बुनियादी फर्क नहीं है। क्योंकि जिसे हम जागना कह रहे हैं, वह थोड़ी सी कम डिग्री में सोना ही है और जिसको हम सोना कह रहे हैं, वह थोड़ी कम डिग्री में जागना ही है। उन दोनों में डिग्री का ही भेद है। लेकिन उस तल पर, परम जागरण के तल पर, निद्रा और जागने में डिग्री का भेद नहीं है, मौलिक रूपांतरण का भेद है। इसलिए सोया हुआ आदमी जाग सकता है, लेकिन जागा हुआ आदमी सो नहीं सकता। उस तल पर कोई जागा हुआ आदमी फिर कभी नहीं सो सकता।
यह रूपांतरण ऐसे है जैसे कि हम दूध को चाहें तो दही बना सकते हैं, लेकिन फिर दही से वापस दूध नहीं बना सकते। लेकिन पानी को हम बर्फ बना सकते हैं, बर्फ को हम फिर पानी बना सकते हैं। क्योंकि बर्फ और पानी में क्रम का भेद है, सिर्फ गर्मी के क्रम का भेद है, रूपांतरण नहीं हो गया है। जो बर्फ है, वह कल पानी था, वह कल फिर पानी हो सकता है, सिर्फ गर्मी का फर्क पड़ जाए। जो अभी पानी है वह कल बर्फ हो सकता है, भाप हो सकता है। वे सब एक ही चीज की क्रमिक अवस्थाएं हैं।
लेकिन दूध अगर दही हो जाए तो फिर वापस दूध बनाने का कोई उपाय नहीं है, क्योंकि दही सिर्फ दूध की एक अवस्था नहीं है, मौलिक रूपांतरण है। वह चीज ही नई हो गई है। सब बदल गया। लेकिन दूध दही हो सकता है, दही दूध नहीं हो सकता।
निद्रा से जागरण आ सकता है, लेकिन जागरण से फिर निद्रा का कोई उपाय नहीं। यह जागरण की जो विधि है, वह विधि सिर्फ एक है कि हम जागने की कोशिश करें। जो भी हम कर रहे हैं उसमें हम जागे हुए होने की कोशिश करें।
जैसे अभी आप मुझे सुन रहे हैं तो आप दो तरह से सुन सकते हैं--बिल्कुल सोए हुए सुन सकते हैं। सोए हुए सुनने में--मैं बोल रहा हूं, आपके कानों पर चोट पड़ रही है, आप मौजूद नहीं हैं। सोए हुए सुनने का मतलब है, मैं बोलूंगा, सुनेंगे भी आप और नहीं भी सुनेंगे। सुनेंगे इस अर्थों में कि आपके पास कान हैं, तो कानों पर आवाज की चोट पड़ती रहेगी। आवाज की चोट पड़ती रहेगी, भीतर ध्वनि गूंजती रहेगी, आप समझेंगे कि सुनाई पड़ रहा है। लेकिन आप अगर मौजूद नहीं हैं, आप एब्सेंट हो सकते हैं, आप भीतर से अनुपस्थित हो सकते हैं, आप कहीं और हों, तो आप यहां सो गए। आप यहां सो गए।
एक युवक खेल रहा है, हाकी खेल रहा है। पैर में चोट लग गई, खेल में मस्त है। पैर से खून बह रहा है। सारे दर्शकों को दिखाई पड़ रहा है कि पैर से खून टपक रहा है, जगह-जगह बिंदुओं की कतार बन गई है, लेकिन उसे कोई पता नहीं। उसका ही पैर है, उसे पता नहीं है, बात क्या है?

वह पैर के पास अनुपस्थित है। वह खेल में उपस्थित है। जहां ध्यान है, जहां उपस्थिति है, वहां वह है। जहां ध्यान नहीं है, जहां उपस्थिति नहीं है, वहां निद्रा है। खेल खतम हुआ है और एकदम से उसने पैर पकड़ लिया है कि उफ, मैं तो मर गया, कितनी चोट लग गई, कितना खून बह गया। इतनी देर मुझे पता क्यों नहीं चला?
पता हमें सिर्फ उसका चलता है जहां हम उपस्थित होते हैं। अगर ठीक से समझें तो ध्यान की अनुपस्थिति ही निद्रा है। तो जो हम कर रहे हैं, अगर ध्यान वहां अनुपस्थित है तो निद्रा है और ध्यान अगर वहां उपस्थित है तो जागरण है। प्रत्येक क्रिया में ध्यान उपस्थित हो जाए, अटेंशन उपस्थित हो जाए, तो जागरण शुरू हो गया।
महावीर जिसे विवेक कहते हैं, उसका यही अर्थ है। क्रिया मात्र में ध्यान की उपस्थिति का नाम विवेक है। क्रिया में ध्यान की अनुपस्थिति का नाम प्रमाद है।
महावीर का एक भक्त उनसे मिलने आया, एक सम्राट उनसे मिलने आया है। रास्ते में ही उस सम्राट के बचपन का एक साथी महावीर से दीक्षित होकर संन्यासी हो गया है, वह भी रास्ते में तपश्चर्या कर रहा है। तो सम्राट ने सोचा अपने उस मित्र को भी देखते चलें। जब वह मित्र के पास गया है तो वह राजा--जो कभी राजा था अब संन्यासी हो गया है--नग्न खड़ा है, आंखें बंद हैं, एकदम शांत है। उसके मित्र सम्राट ने खूब नमस्कार किया और मन में बहुत कामना की कि कब ऐसी शांति मुझे भी उपलब्ध होगी!
फिर वह महावीर से मिलने गया। महावीर से उसने पूछा कि मैंने प्रसन्नचंद्र को देखा खड़े हुए, वे अत्यंत शांत हैं, कितने अदभुत हो गए हैं वे! ईर्ष्या होती है मन में। मैं पूछता हूं आपसे कि इस शांत अवस्था में अगर उनकी देह छूट जाए तो वे कहां जाएंगे?
तो महावीर ने कहा, जिस समय तुम वहां से गुजरते थे, अगर उस वक्त प्रसन्नचंद्र की देह छूट जाए तो वह सातवें नरक में गिरेगा।
तो वह सम्राट तो एकदम हैरान हो गया। उसने कहा, क्या कहते हैं आप-- सातवें नरक में! तो हमारा क्या होगा? सातवें नरक के नीचे और कोई नरक है? हां, हमारा क्या होगा? अगर वह शांत मुद्रा में खड़ा हुआ प्रसन्नचंद्र सातवें नरक में गिरेगा, तो हमारा क्या होगा?
महावीर ने कहा, नहीं, तुम समझे नहीं मेरा मतलब। जब तुम आए, तब प्रसन्नचंद्र ऊपर से शांत दिखाई पड़ रहा था, भीतर बड़ी कठिनाई में पड़ा था। तुमसे पहले ही तुम्हारे वजीर निकले थे, तुम्हारे सैनिक निकले थे। उन्होंने भी खड़े होकर प्रसन्नचंद्र को देखा था। और एक वजीर ने कहा कि देखो मूरख, सब छोड़-छाड़ कर यहां खड़ा है! छोटे-छोटे बच्चे हैं इसके, वजीरों के हाथ में सब छोड़ आया है। वे सब हड़पे जा रहे हैं। जब तक बच्चे बड़े होंगे, तब तक सब समाप्त ही हो गया होगा। इसने किया है विश्वास और उधर विश्वासघात हो रहा है। और यह मूढ़ बना यहां खड़ा है! ऐसा उसके सामने कहा था। ऐसा जैसे ही उसने सुना था कि उसका हाथ तलवार पर चला गया--जो अब नहीं थी। लेकिन सदा थी तलवार उसके बगल में, हाथ तलवार पर चला गया भीतर। तलवार उसने बाहर निकाल ली। उसने कहा कि वे वजीर क्या समझते हैं अपने को, अभी मैं जिंदा हूं! अभी प्रसन्नचंद्र मर नहीं गया! एक-एक की गर्दन उतार दूंगा। और जब तुम उसके पास आए तब वह गर्दनें उतार रहा था। उस वक्त अगर वह मर जाता तो वह सातवें नरक में पड़ जाता, क्योंकि वह जहां था, वहां नहीं था। वह गहरी निद्रा में चला गया था। चेहरा उसका जो दिखाई पड़ रहा था, वह एक जगह था और वह कहीं और जगह चला गया था। सब सो गया था। वह बिल्कुल निद्रा में था। वह सपना देख रहा था, क्योंकि न तलवार थी हाथ में, न वजीर थे सामने, लेकिन गर्दनें काट डालीं उसने। तो तुम जब निकले थे, तब वह सातवें नरक में गिर जाता। लेकिन अब अगर पूछते हो इस वक्त तो वह श्रेष्ठतम स्वर्ग पाने का हकदार हो गया है।
उसने कहा, अभी तो घड़ी भर भी नहीं हुई हमें वहां से गुजरे! महावीर ने कहा, जब उसने तलवार रख दी नीचे तो जैसी उसकी सदा आदत थी युद्धों के बाद अपने मुकुट को संभालने की, उसने मुख--सिर पर हाथ ले गया, लेकिन सिर पर तो घुटी हुई खोपड़ी थी, वहां कोई मुकुट न था। तब एक सेकेंड में वह जाग गया, सारी निद्रा से वापस आ गया, सब स्वप्न खंड-खंड हो गया। और उसने कहा कि यह मैं

क्या कर रहा हूं! न तलवार है पास में, न वजीर हैं। और मैं प्रसन्नचंद्र नहीं हूं अब, जो तलवार उठा सके। उसके उठाने का तो मैं ख्याल छोड़ कर आया हूं। और क्षण में वह लौट आया है। इस समय वह बिल्कुल वहीं खड़ा है। अभी वह स्वर्ग का हकदार है।
हम सोए हैं तो हम नरक में हो जाते हैं, हम जागे हैं तो हम स्वर्ग में हो जाते हैं। यह जागने की चेष्टा हमें सतत करनी पड़ेगी। जन्म-जन्म भी लग सकते हैं। एक क्षण में भी हो सकता है। कितनी तीव्र हमारी प्यास है, कितना तीव्र संकल्प है, इस पर निर्भर करेगा।
तो महावीर ने अपने पिछले जन्मों में अगर कुछ भी साधा है तो साधा है विवेक, साधा है ध्यान। और इस जागरण की जितनी गहराई बढ़ती चली जाती है, उतने ही हम मुक्त होते चले जाते हैं, क्योंकि बंधने का कोई कारण नहीं रह जाता; उतने ही हम पुण्य में जीने लगते हैं, क्योंकि पाप का कोई कारण नहीं रह जाता; उतने ही हम अपने में जीने लगते हैं, क्योंकि दूसरे में जीना भ्रामक हो जाता है। उतना ही व्यक्ति शांत है, उतना ही आनंदित है, जितना जागा हुआ है। जिस दिन पूर्ण जागरण की घटना घट जाती है, एक्सप्लोजन हो जाता है, चेतना के कण-कण, कोने-कोने से निद्रा विलीन हो जाती है, उस दिन के बाद फिर लौटना नहीं है, उस दिन के बाद फिर परिपूर्ण जागना है। ऐसी परिपूर्ण जागी हुई चेतना ही मुक्त चेतना है। सोई हुई चेतना बंधी हुई चेतना है।
इसलिए ध्यान से समझना, पाप नहीं बांधता है कि हम पुण्य से उसको मिटा सकें, मूर्च्छा बांधती है। मूर्च्छित पाप भी बांधता है, मूर्च्छित पुण्य भी बांधता है। असंयम नहीं बांधता है, मूर्च्छा बांधती है। मूर्च्छित असंयम भी बांधता है, मूर्च्छित संयम भी बांधता है। और इसलिए यह बहुत समझ लेने जैसा है कि कोई अगर असंयम को संयम बनाने में लग गया है तो कुछ भी न होगा, पाप को पुण्य बनाने में लग गया है तो कुछ भी न होगा, क्रूरता को दान बनाने में लग गया है तो कुछ भी न होगा--क्योंकि वह सिर्फ क्रिया बदल रहा है और भीतर की चेतना वैसी की वैसी अमूर्च्छित बनी है।
और कई बार उलटा भी हो जाता है। उलटे का मतलब यह है कि कई बार लोहे की जंजीर ही ठीक है, क्योंकि उसे तोड़ने का मन भी करता है और सोने की जंजीर गलत है, क्योंकि उसे संभालने का मन करने लगता है। क्योंकि सोने की जंजीर को जंजीर समझना बहुत मुश्किल है, सोने की जंजीर को अक्सर आभूषण समझ लेना आसान है।
इसलिए पापी भी कई बार जागने के लिए आतुर हो जाता है और जिसको हम साधु कहते हैं, वह जागने को आतुर नहीं होता। फर्क ऐसा ही है, जैसे कि कोई आदमी दुखद स्वप्न देख रहा है, सपना ही है; और एक आदमी सुखद स्वप्न देख रहा है, सपना ही है; लेकिन सुखद सपना देखने वाला जागना नहीं चाहता। चाहता है और थोड़ी देर सो लूं! सपना बहुत सुखद है, कोई तोड़ न दे, और थोड़ी देर सो लूं। लेकिन दुखद स्वप्न वाला, नाइटमेयर वाला, एकदम जाग जाता है हड़बड़ा कर। पापी दुखद स्वप्न देख रहा है, पुण्यात्मा सुखद स्वप्न देख रहा है। इसलिए बहुत बार डर है कि पापी जाग जाए और पुण्यात्मा रह जाए।
इसलिए मैं यह कहता हूं कि इसकी फिक्र ही मत करना कि पाप को हम कैसे पुण्य बनाएं, असंयम को संयम कैसे बनाएं, हिंसा को अहिंसा कैसे बनाएं, कठोरता को दया कैसे बनाएं। इस चक्कर में ही मत पड़ना। सवाल यह है ही नहीं कि हम क्रिया को कैसे बदलें, सवाल यह है कि कर्ता कैसे रूपांतरित हो। अगर कर्ता बदल जाता है तो क्रिया अनिवार्यरूपेण बदल जाती है, क्योंकि तब कुछ चीजें करने में असमर्थ हो जाता है और कुछ चीजें करने में समर्थ हो जाता है। भीतर से कर्ता बदला, चेतना बदली... तो फिर मैं कहता हूं, पाप वह है, जो सजग व्यक्ति नहीं कर सकता है। मेरी पाप की परिभाषा यह है कि पाप वह है, जो जागा हुआ व्यक्ति करने में असमर्थ है; और पुण्य वह है, जो जागे हुए व्यक्ति को करना ही पड़ता है। पुण्य वह है, जो जागे हुए व्यक्ति की अनिवार्यता है, इनएविटेबिलिटी है। और पाप वह है, जो सोए हुए व्यक्ति की अनिवार्यता है। इसलिए ऐसे भी पुण्य हैं जो छिपे हुए पाप हैं, क्योंकि आदमी सोया हुआ है। दिखता पुण्य है, वह होगा पाप ही, क्योंकि आदमी सोया हुआ है। सोया हुआ आदमी पुण्य कर कैसे सकता है? इसलिए पुण्य दिखाई पड़ेगा, लेकिन भीतर पाप छिपा होगा। और ऐसा भी संभव है कि जागा हुआ व्यक्ति कुछ ऐसे काम करे, जो

आपको पाप समझ में आएं और वे पाप न हों, क्योंकि जागा हुआ व्यक्ति पाप कर ही नहीं सकता है। इसलिए दोनों तरह की भूलें संभव हैं।
कबीर को एक रात ऐसा हुआ। कबीर थोड़े से जागे हुए लोगों में से एक है। रोज लोग आते हैं कबीर के घर सुबह, भजन-कीर्तन चलता है। कबीर के पास बैठते हैं। फिर जाने लगते हैं तो कबीर कहता है, खाना तो खा जाओ! कभी दो सौ, कभी चार सौ, गरीब आदमी है! कबीर का बेटा और पत्नी परेशान हो गए और उन्होंने कहा कि हमारे बरदाश्त के बाहर है, हम यह कैसे संभाल पाएं! कहां से इंतजाम करें! आपने तो इतना कह दिया कि बस भोजन कर जाओ, यह भोजन हम कहां से लाएं?
कबीर ने कहा कि भोजन लाने की व्यवस्था इतनी कठिन नहीं है, जितना घर आए आदमी को खाने के लिए न कहें, यह कठिन है। यह हो नहीं सकता कि कोई घर आए, मैं उसको कहूं खाना मत खाओ। कुछ इंतजाम करो।
आखिर कब तक इंतजाम चलता? उधारी भी ले ली गई। उधारी भी चढ़ गई। फिर एक दिन सांझ लड़के ने कहा कि अब बरदाश्त के बाहर हो गया, कोई हम चोरी करने लगें? कबीर ने कहा, अरे यह तुम्हें ख्याल क्यों न आया अब तक! कबीर ने कहा, यह तुम्हें अब तक ख्याल क्यों न आया!
लड़के ने तो क्रोध में कहा था, लेकिन यह सुन कर लड़का हैरान हुआ कि कबीर कहते हैं यह तुम्हें ख्याल क्यों न आया! तो लड़के ने और बात को सिर्फ जांचने के लिए कहा, तो क्या चोरी करने जाऊं मैं? कबीर ने कहा, हां! अगर मेरी जरूरत हो तो मैं भी चलूं।
तो लड़के ने और जांचने के लिए कहा कि अच्छा ठीक है, मैं चलता हूं, उठो आप। पर उसकी समझ के बाहर हो गई यही बात कि कबीर और चोरी करने! समझ रहे हैं कबीर कि नहीं समझ रहे मैं क्या कह रहा हूं!
फिर जाकर उस लड़के ने एक घर में दीवाल खोद डाली, सेंध लगा दी। वह कबीर
से कहता है, जाऊं भीतर? कबीर कहते हैं, बिल्कुल चला जा। वह भीतर गया है। वह वहां से एक बोरा गेहूं का खिसका कर लाया है बाहर। बाहर बोरा निकल आया है तो कबीर उसे उठाने लगे हैं, और फिर उस लड़के से पूछा, घर के लोगों को कह आया है कि नहीं कि एक बोरा ले जाते हैं?
उसने कहा कि चोरी है यह! यह कोई मांग कर, कोई दान ले जा रहे हैं या किसी
से भेंट ले जा रहे हैं! तो कबीर ने कहा, यह नहीं हो सकता। तू जाकर कह आ घर में। यही कह आ कि हम चोरी करके एक बोरा ले जाते हैं। लेकिन घर के मालिक को खबर तो कर देनी जरूरी है!
बड़ी अदभुत बात है। दूसरे दिन लोगों ने कबीर से पूछा तो कबीर ने कहा कि बड़ी गलती हो गई। गलती ऐसे हो गई कि यह भाव ही चला गया कि क्या मेरा है और क्या उसका है। तब बाद में ख्याल आया कि चोरी तो उसी भाव का हिस्सा था कि वह उसकी चीज है। जब मेरी कोई चीज न रही तो किसी की कोई चीज न रही। पर इतनी बात जरूर थी कि उसके घर से लाते थे, सुबह ढूंढेगा, परेशान होगा। तो इतनी खबर कर देनी चाहिए कि एक बोरा ले जाते हैं।
अब इस आदमी को समझना हमें बहुत मुश्किल हो जाएगा। इसके चोरी करने में
भी इतना अदभुत पुण्य है, क्योंकि उसे यह भाव ही खो गया है कि क्या दूसरे का है, क्या पराया है। कबीर जैसा व्यक्ति अगर चोरी भी करने चला जाए तो भी पुण्य है और हम जैसा व्यक्ति अगर दान भी करता हो तो भी चोरी है। क्योंकि दान में भी हमारी जो वृत्ति है और मूर्च्छा होगी, वह चोरी की ही है। दान में भी हमें लगता है कि मेरा है और मैं दे रहा हूं। और कबीर को चोरी में भी नहीं लगता कि उसका है और मैं ले रहा हूं।
यह जो फर्क है, हमें ख्याल में आ जाए तो ख्याल में आ जाएगा। वह दान हमारा पाप है, क्योंकि उसमें मेरा मौजूद है। और कबीर की चोरी को भी कोई परमात्मा कहीं बैठा हो तो पाप नहीं कह सकता, क्योंकि वहां मेरा नहीं है। हां, इतनी ही बात थी कि घर के लोगों को खबर तो कर देनी चाहिए, नहीं तो सुबह बेचारे ढूंढेंगे। वह जो खबर करवाने भेजा है, वह इसलिए नहीं कि चोरी बुरी चीज है, बल्कि सुबह घर के लोग नाहक ढूंढें, परेशान हों, खोजें कि कहां चला गया बोरा। तो इतना जगा कर तू खबर कर आ, मैं घर चलता हूं। यह जो... ऐसा बहुत बार हुआ है और हमें समझना मुश्किल हो जाता है।
अब जैसे कृष्ण भी हैं। अर्जुन समझ नहीं पाया कृष्ण को। अर्जुन समझ लेता तो बात ही और होती। अर्जुन भाग रहा है कि ये मेरे प्रियजन हैं, ये मर

जाएंगे। तो कृष्ण उसको कहते हैं, पागल, कभी कोई मरता है? न कोई मरता, न कोई मारता। अब कृष्ण किस तल पर खड़े होकर कह रहे हैं, अर्जुन को कुछ खबर नहीं। अर्जुन जिस तल पर खड़ा है, वही समझेगा न! अर्जुन समझ रहा था कि मेरे हैं। कृष्ण कहते हैं, कौन किसका है?
यह दो बिल्कुल अलग तलों पर बात हो रही है। और मैं समझता हूं कि गीता को पढ़ने वाले निरंतर इस भूल में पड़े हैं, क्योंकि यह बिल्कुल, बिल्कुल भिन्न तलों पर यह बात हो रही है।
अर्जुन कहता है, ये मेरे हैं; मेरे प्रियजन हैं, मेरे गुरु हैं, मेरे भाई के रिश्तेदार हैं, मेरे रिश्तेदार हैं; साले हैं, बहनोई हैं, मामा हैं, फूफा हैं; ये सब खड़े हैं; ये मेरे हैं। कृष्ण जिस जगह खड़े हैं, वहां से वे कहते हैं, कौन किसका है? कोई किसी का भी नहीं है। अपने ही तुम नहीं हो, कौन किसका है?
अर्जुन समझ लेता हैः तो फिर ठीक है, जब कोई अपना नहीं तो मारा जा सकता है। पीड़ा तो अपने की थी; अब अपना कोई नहीं है तो मारा जा सकता है।
अर्जुन कहता है कि मर जाएंगे तो पाप लगेगा। कृष्ण कहते हैं, कभी कोई मरा या कभी किसी ने मारा? और शरीर के मारने से कहीं वह मरता है जो भीतर है? यह बिल्कुल और तल से कही जा रही है बात। अर्जुन सोचता है, जब कोई मरता ही नहीं तो मारने में हर्ज भी क्या है? मारो।
और यह भूल निरंतर चलती रही है, यानी मैं मानता हूं कि अगर अर्जुन कृष्ण को समझ जाए तो महाभारत कभी हो न। लेकिन अर्जुन समझा ही नहीं। और समझने की कठिनाई जो थी, वह मैं मानता हूं, कठिनाई सिर्फ यही है कि कृष्ण जिस चेतना में खड़े होकर कह रहे हैं, वह अर्जुन की चेतना नहीं है। सवाल अर्जुन की चेतना के बदलने का है, सवाल अर्जुन को समझाने का नहीं है। और वह जो अर्जुन ने समझा वह उसने किया।
अब अगर कबीर का बेटा कल कबीर मर जाए और कल उसके घर में खाना न हो तो वह चोरी कर लाए, क्योंकि वह कहे कि चोरी में पाप ही क्या है, क्योंकि खुद कबीर ने साथ दिया था चोरी में। लेकिन कबीर जिस चोरी को गया था, वह बात और थी; और कमाल जिस चोरी को चला जाए, उनका बेटा, यह बात और है। ये दो तल की बातें थीं, जिनमें भूल बहुत निश्चित हो जानी संभव है।
और ऐसी ही भूल कृष्ण और अर्जुन के बीच हो गई है और वह भूल अब तक नहीं मिट सकी है। और हजार-हजार टीकाएं लिखी गई हैं गीता पर, लेकिन किसी को भूल ख्याल में नहीं है कि भूल बुनियादी हो गई है।
तो दो अलग चेतनाओं के बीच हुई बात में निरंतर भूल हो गई है, क्योंकि जो कहा जाता है, वह समझा नहीं जाता। जो समझा जाता है, वह कहा ही नहीं गया है। तो इसलिए मेरा जोर निरंतर यह है कि हम कर्म को बदलने के विचार में न पड़ें। हम चेतना को बदलने के विचार में पड़ें, क्योंकि चेतना से कर्म आता है, चेतना बदल जाती है तो कर्म बदल जाते हैं।
महावीर की पूरी साधना विवेक की साधना है, संयम की नहीं। क्योंकि विवेक से संयम छाया की तरह आता है। लेकिन निरंतर यह समझा गया है कि महावीर संयम की साधना कर रहे हैं। और वह बुनियादी भूल है।

प्रश्नः मुक्त आत्माओं में करुणा शेष रह जाती है और करुणा भी वासना
का ही एक सूक्ष्मतम रूप है--ऐसा आपने कहा। वासना में सदा द्वंद्व रहता है, सदा दो रहते हैं, परस्पर-विरोधी दो। ऐसी स्थिति में करुणा का विरोधी कौन सा तत्व है जो मुक्त आत्माओं में शेष रह जाता है?

पहली बात तो यह कि करुणा वासना का सूक्ष्म रूप है, ऐसा नहीं, करुणा वासना का अंतिम रूप है। इन दोनों में भेद है। अंतिम रूप का मतलब मेरा यह है कि वासना और निर्वासना के बीच जो सेतु है। चाहें तो हम करुणा को वासना का अंतिम रूप कह सकते हैं और चाहें तो करुणा को निर्वासना का प्रथम रूप कह सकते हैं। वह बीच की कड़ी है जहां वासना समाप्त होती है और निर्वासना शुरू होती है।
करुणा सूक्ष्म रूप नहीं है वासना का। अगर सूक्ष्म रूप हो तो करुणा में भी द्वंद्व होगा। वासना में सदा द्वंद्व है। वासना में निर्द्वंद्व

कभी भी कोई नहीं हो सकता। इसलिए वासना में दुख है, क्योंकि जहां द्वंद्व है, वहां दुख है। तो वासना चाहे कितनी ही सुखद हो, उसके पीछे उसका दुखद रूप खड़ा ही रहेगा, वह जा ही नहीं सकता।
इसलिए सब वासना एक सीमा पर अपने से विपरीत में बदल जाती है। प्रत्येक वासना का विरोधी तत्क्षण मौजूद ही रहता है, वह कभी अलग होता ही नहीं। क्योंकि जब हम प्रेम की बात करते हैं, तभी घृणा खड़ी हो जाती है। जब हम क्षमा की बात करते हैं, तभी क्रोध खड़ा हो जाता है। जब हम दया की बात करते हैं, तभी कठोरता आ जाती है। यानी अगर ठीक से समझें तो दया जो है, वह कठोरता का ही अत्यंत अत्यंत कम कठोर रूप है। यानी जो फर्क है, वह इस तरह का है, जैसे ठंडे और गर्म में। गर्म और ठंडे में फर्क क्या है? गर्म-ठंडी दो चीजें नहीं हैं। गर्म-ठंडी दो चीजें नहीं हैं, एक ही तापमान के दो तल हैं। इसलिए इसे ऐसा समझें तो बहुत ठीक से समझ में आएगा। एक बर्तन में गर्म पानी रखा है, एक बर्तन में बिल्कुल ठंडा पानी रखा है। आप दोनों में अपने दोनों हाथ डाल दें--एक आइस-कोल्ड ठंडे पानी में और एक उबलते हुए गर्म पानी में। फिर दोनों हाथों को निकाल कर एक ही बाल्टी में डाल दें, जिसमें साधारण पानी रखा है। और तब आप हैरान हो जाएंगे, आपका एक हाथ कहेगा कि पानी बहुत ठंडा है और आपका एक हाथ कहेगा कि पानी बहुत गर्म है। और पानी बिल्कुल एक है बाल्टी में। आपके हाथ की गर्मी और ठंडक पर निर्भर करेगा कि आप इस पानी को क्या कहते हैं और आप बड़ी मुश्किल में पड़ जाएंगे कि इस पानी को क्या कहें। क्योंकि एक हाथ खबर दे रहा है कि ठंडा है, एक हाथ खबर दे रहा है कि गर्म है।
कठोरता और दया इसी तरह की चीजें हैं, इनमें जो भेद है, वह भेद अनुपात
का है। और तब यह भी हो सकता है कि एक बहुत कठोर आदमी को, जो चीज बहुत दयापूर्ण मालूम पड़े, एक बहुत दयापूर्ण आदमी को बहुत कठोर मालूम पड़े। यह रिलेटिव होगा, सापेक्ष होगा।
तैमूरलंग जैसे आदमी को जो बात बहुत दयापूर्ण मालूम पड़े, वह गांधी जैसे आदमी को अत्यंत कठोर मालूम पड़ सकती है। दोनों हाथ हैं, लेकिन कौन ठंडा कौन गर्म, तो पानी की खबर वे वैसी देंगे।
नैतिक पुरुष जो है, वह इसी द्वंद्व में जीता है, इसके बाहर नहीं जाता।
कठोरता छोड़ो, दया पकड़ो; शोषण छोड़ो, दान पकड़ो; हिंसा छोड़ो, अहिंसा पकड़ो। नैतिक व्यक्ति कहता है कि वह जो बुरा है, वह छोड़ो; और जो अच्छा है, उसे पकड़ो। लेकिन वह यह भूल जाता है कि जिसे वह अच्छा कह रहा है, वह उसी बुरे की अत्यंत छोटी, कम, कम विकसित अवस्था है। वह उससे भिन्न और विरोधी नहीं है। लेकिन जैसे ही व्यक्ति वासना से निर्वासना के जगत में प्रवेश करता है
तो बीच की एक बफर-स्टेट जिसको कहना चाहिए, दो अवस्थाओं के बीच का एक खाली रिक्त स्थान, उस रिक्त स्थान में भी सेतु हैं। करुणा वैसा सेतु है। इसलिए करुणा कठोरता का उलटा नहीं है। करुणा और दया समानार्थक नहीं हैं। दया कठोरता की उलटी है।
और इस फर्क को ठीक से समझ लेना उपयोगी होगा। जब मैं किसी व्यक्ति पर दया करता हूं तो ध्यान में दूसरा व्यक्ति होता है, जिस पर मैं दया कर रहा हूं--भूखा है, दीन है, दया योग्य है। दया का जो ध्यान है, वह दूसरे की दीनता पर, दुख पर, दरिद्रता पर है। दूसरा केंद्र में है। और जब मैं कठोर होता हूं तब भी दूसरा केंद्र में है कि दूसरा दुश्मन है, दूसरा बुरा है; उसे मिटाना जरूरी है।
दया और अदया, दोनों में दृष्टि-बिंदु दूसरे पर होता है। करुणा का दूसरे से कोई संबंध नहीं है। करुणा का मतलब है कि दूसरा कैसा है, इससे प्रयोजन ही नहीं है। मैं कैसा हूं, यह प्रयोजन है--मैं करुणापूर्ण हूं। जैसे एक दीया जल रहा है और उससे रोशनी गिर रही है। पास से कौन निकलता है, इससे दीया रोशनी कम और ज्यादा नहीं करता। कौन पास से निकलता है--अच्छा आदमी कि बुरा आदमी, कि दीन कि दरिद्र, कि धनवान, कौन निकलता है पास से--हारा हुआ कि जीता हुआ--दीया जलता रहता है। कोई नहीं निकलता तब भी जलता रहता है, क्योंकि दीए का जलना दूसरे पर निर्भर नहीं है, दीए का जलना उसकी अंतर-अवस्था है।

एक भिखारी सड़क पर निकला तो आप दयापूर्ण होंगे, लेकिन एक सम्राट निकला
तो फिर कैसे दयापूर्ण होंगे? अगर भिखारी निकला तो आप दयापूर्ण होंगे और सम्राट निकला तो आप दया की आकांक्षा करने लगेंगे, क्योंकि दया जो थी, वह दूसरे से बंधी थी, आप पर निर्भर नहीं थी। लेकिन महावीर जैसे व्यक्ति के पास से कोई निकले, दीन, भिखारी कि सम्राट, उससे कोई फर्क नहीं पड़ता, करुणा बरसती रहेगी। करुणा बरसती रहेगी--सम्राट पर भी उतनी ही करुणा है, भिखारी पर भी उतनी ही करुणा है। क्योंकि करुणा दूसरे पर निर्भर नहीं है। महावीर का अपना दीया है, जो जल रहा है, जिससे रोशनी गिर रही है।
तो इसलिए करुणा को निरंतर शब्दकोश में दया का जो पर्यायवाची बनाया जाता है, वह बुनियादी भूल है, एकदम भूल है। दया बात ही और है। और दया कोई बहुत अच्छी चीज नहीं है। हां, बुरी चीजों में अच्छी है। बुरी चीजों में अच्छी है। वह कोई बहुत अच्छी चीज नहीं है।
करुणा बात ही और है। करुणा के विपरीत कुछ भी नहीं है। करुणा में द्वंद्व नहीं है। दया में विपरीत सदा मौजूद है; क्योंकि दया जो है सकारण है, उसमें कारण है, कंडीशन है कि वह आदमी दीन है इसलिए दया करो; वह आदमी भूखा है, इसलिए रोटी दो; वह आदमी प्यासा है, इसलिए पानी दो। उसमें कंडीशन है। उसमें दूसरे आदमी की शर्त है।
करुणा अनकंडीशनल है। वह दूसरा कैसा है, इससे कोई संबंध नहीं है। मैं करुणा ही दे सकता हूं। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि वह कैसा है, कौन है, क्या है। इससे कोई संबंध नहीं है। अगर कोई भी नहीं है तो करुणापूर्ण व्यक्ति अगर अकेले में खड़ा है, अगर महावीर एक वृक्ष के नीचे अकेले खड़े हैं और दिन बीत जाते हैं और कोई नहीं निकलता वहां से, तो भी करुणा झरती रहती है और प्रतीक्षा करती है। इससे कोई संबंध नहीं है।
एक फूल खिला है एक निर्जन में और उसकी सुगंध फैल रही है। रास्ते से कोई निकलता है तो उसे मिल जाती है, कोई नहीं निकलता तो भी सुगंध झरती रहती है। फूल का सुगंध देना स्वभाव है, राहगीर को देख कर नहीं कि कौन निकल रहा है, इसको जरूरत है कि नहीं! यह सवाल ही नहीं है। यह फूल का आनंद है।
करुणा जो है, वह अंतस-अवस्था है, इनर स्टेट ऑफ माइंड है। दया जो है, वह
एक रिलेशनशिप है। वह मेरी अवस्था नहीं है, मैं किससे जुड़ा हूं, इस पर निर्भर करती है। तो दया उधर से भी ले सकता हूं, इधर से भी दे सकता हूं। किससे जुड़ा हूं, इस पर निर्भर करेगी बात।
करुणा अंतर-अवस्था है और वासना का अंतिम छोर कहें। अंतिम छोर इस अर्थों में कि उसके बाद फिर निर्वासना का जगत शुरू होता है, या निर्वासना का प्रथम छोर कहें, इस अर्थों में कि उसके बाद निर्वासना शुरू होती है। और वासना का जगत द्वंद्व का जगत है। वासना का जगत द्वंद्व का जगत है।
यह थोड़ा समझने जैसा होगा। वासना द्वैत का जगत है, जहां दो के बिना काम नहीं चलेगा, सब चीजें विरोधी पर होंगी--अंधेरा तो प्रकाश और जन्म तो मृत्यु, ऐसा विरोध जहां होगा। वासना द्वैत का जगत है। और वासना और निर्वासना के बीच में जो सेतु है, वह अद्वैत का है। वासना है द्वैत, जहां हम स्पष्ट कहेंगे दो हैं; और बीच का जो सेतु है, वह है अद्वैत, जहां हम कहेंगे दो नहीं हैं। अभी हम दो का उपयोग करेंगे। पहले कहते थे दो हैं, अब हम कहेंगे दो नहीं हैं। और निर्वासना का जो जगत है, वहां तो हम यह भी नहीं कह सकते कि अद्वैत, क्योंकि वहां दो का शब्द भी उठाना गलत है।
वासना है द्वैत और निर्वासना में तो संख्या का सवाल ही नहीं है। यानी
यह भी कहना गलत है वहां कि दो नहीं। बीच का जो सेतु है, वहां हम कह सकते हैं दो नहीं। क्योंकि वासना छूट गई और निर्वासना अभी आती है। बीच का जो छोटा अंतराल है, उस अंतराल में करुणा है। करुणा अद्वैत है। अद्वैत के भी ऊपर एक लोक है, जहां से यह भी कहना गलत है कि अद्वैत है, जहां हम कहें दो नहीं। दो हैं, ऐसी एक सार्थकता थी, फिर दो नहीं, ऐसी एक सार्थकता थी। और अब कुछ भी कहना मुश्किल है, मौन हो जाना ही ठीक है। अब एक और दो और तीन का कोई सवाल ही नहीं उठता, वह है निर्वासना।
लेकिन इसके पहले कि हम संख्या से असंख्या में पहुंचें, सीमा से अ-सीमा में पहुंचें, बीच में निषेध का एक क्षण, निषेध की एक यात्रा है, वह करुणा

है। करुणा, कंपैशन का विरोधी कोई भी नहीं है। दया का विरोधी है, करुणा का विरोधी कोई भी नहीं है।
बुद्ध ने उसे करुणा कहा है। महावीर उसे ही अहिंसा कहते हैं। जीसस उसे
ही लव, प्रेम कहते हैं। ये शब्दों की पसंदगियां हैं। लेकिन वे सेतु पर इंगित कर रहे हैं। करुणा से गुजरना पड़ेगा--बुद्ध कहते हैं। अहिंसा से गुजरना पड़ेगा--महावीर कहते हैं। प्रेम से गुजरना पड़ेगा--जीसस कहते हैं। ये सिर्फ शब्द-भेद हैं। सेतु एक ही है। दो सेतु भी नहीं हैं वहां, एक ही सेतु है, जहां से हम द्वंद्व से छूटते हैं और द्वंद्व-मुक्त में जाते हैं। बीच में एक जगह है--उसे मैंने कहा करुणा, अहिंसा, प्रेम, जो भी हम कहना चाहें-- इसका विरोधी कोई भी नहीं है।
सब चीजों के विरोधी हैं, कुछ चीजों के विरोधी नहीं हैं। और जिनके विरोधी नहीं हैं, वे ही सेतु बनते हैं। और फिर आगे तो न पक्ष है, न विपक्ष है; कोई भी नहीं है। आगे तो कोई भी नहीं है। वहां न पक्ष है, न विपक्ष है। विरोधी का सवाल ही नहीं उठता, क्योंकि वह भी नहीं है जिसका विरोधी हुआ जा सके।

प्रश्नः द्रष्टा-भाव में संसार स्वप्न ही है, ऐसा आपका कहना है। किंतु यह व्यक्तिपरक, सब्जेक्टिव दृष्टिकोण की बात हुई। वस्तुपरक, आब्जेक्टिव दृष्टि से संसार क्या स्वप्न ही है? इस संबंध में महावीर की दृष्टि शंकराचार्य के मायावाद से कहीं भिन्न है?

असल में स्वप्न हम देखते हैं... ।

प्रश्नः जरा प्रश्न समझा दें सरल भाषा में।

हां, वह उन्होंने यह पूछा है... कल मैंने रात कहा कि अगर स्वप्न में कर्ता-भाव आ जाए तो स्वप्न सत्य हो जाता है। इससे ठीक उलटे, जिसे हम सत्य कहते हैं, यथार्थ, उसमें अगर कर्ता-भाव खो जाए तो वह सत्य भी स्वप्न हो जाता है। यानी अहंकार जो है, वही सूत्र है, चाहो तो स्वप्न को सत्य बना लो और चाहो तो सत्य को भी स्वप्न कर दो।
वह मैंने कल कहा, वह उसी संबंध में उन्होंने पूछा है कि इसका क्या यह मतलब हुआ कि अगर समझ लें कि मुझे दिखाई पड़ने लगे कि जगत स्वप्न है तो क्या सचमुच ही जगत नहीं है या कि यह स्वप्न होने का भाव सिर्फ सब्जेक्टिव है, मेरा आत्मपरक है? मुझे ऐसा लग रहा है कि यह मकान नहीं है, सब सपना है। लेकिन क्या इसका यह मतलब मान लिया जाए कि सच में ही मकान नहीं है, आब्जेक्टिवली? खाली जगह है यहां, मकान है ही नहीं? जैसा कि रात सपने का मकान खो जाता है, ऐसा ही यह मकान भी क्या इतना ही असत्य है? तो फिर शंकर के मायावाद में कि सब जगत माया है, इल्यूजन है और महावीर के द्वैतवाद में-- क्योंकि महावीर जगत को माया नहीं कहते हैं--क्या फर्क है?
इसमें बहुत बातें समझने जैसी होंगी। पहली बात तो यह समझने जैसी होगी
कि स्वप्न भी असत्य नहीं है, स्वप्न भी सत्य है। स्वप्न का भी अपना होना है। स्वप्न का भी अपना अस्तित्व है, एक्झिस्टेंस है। जब आप रात सपना देखते हैं तो साधारणतः हम सुबह जाग कर कहते हैं कि सब सपना था, कुछ भी न था, लेकिन जो न हो तो सपने तक में नहीं हो सकता है।
स्वप्न के बाबत बड़ी भ्रांति है। स्वप्न असत्य नहीं है, स्वप्न की अपनी तरह की सत्ता है, अपने तरह का सत्य है उसका। वह अत्यंत सूक्ष्म परमाणुओं का लोक है, अत्यंत तरल परमाणुओं का लोक है, अत्यंत साइको-एटम्स का, मनो-परमाणुओं का लोक है। असत्य नहीं है। असत्य का मतलब है, जो है ही नहीं।
तो तीन चीजें हैं। असत्य, जो है ही नहीं। सत्य, जो है। और इन दोनों के बीच में एक स्वप्न है, जो न तो उस अर्थों में नहीं है, जिस अर्थों में खरगोश के सींग या बांझ मां का बेटा, जो इस अर्थों में नहीं है ऐसा नहीं कह सकते और न इस अर्थों में कह सकते हैं कि है जैसे पहाड़, जो दोनों के बीच है। जो है भी किसी सूक्ष्म अर्थ में और जो नहीं भी है किसी सूक्ष्म अर्थ में।

शंकर का भी माया से यही मतलब है। शंकर के साथ बड़ी भूल हुई है। शंकर का
भी इल्यूजन या माया से यही मतलब है। शंकर कहते हैं, तीन यथार्थ हैं--सत्, असत और मध्य का माया।

प्रश्नः तो उसे मिथ्या कहें?

हां, मिथ्या कहें। उससे कोई फर्क नहीं पड़ता, लेकिन मिथ्या से भी लोगों
को ख्याल होता है कि जो नहीं है।
एक तो ऐसी चीज है, जो है ही नहीं। और एक ऐसी चीज है, जो बिल्कुल है। और
एक ऐसी चीज है जो दोनों के बीच में है; जिसमें दोनों की क्वालिटीज मिलती हैं, दोनों के गुण मिलते हैं। स्वप्न असत्य नहीं है। हां, जागरण जैसा सत्य नहीं है, और तल का सत्य है।
तो पहले तो स्वप्न असत्य नहीं है, स्वप्न का अपना सत्य है। और अगर स्वप्न के सत्य की खोज में कोई जाए तो जितना सत्य उसे बाहर की दुनिया में मिल सकता है, इतना ही सत्य वहां भी मिल सकता है। लेकिन हम तो बाहर की दुनिया में ही नहीं जा पाते तो स्वप्न की दुनिया में जाना तो बहुत मुश्किल है। स्वप्न की दुनिया में प्रवेश भी बहुत मुश्किल है, क्योंकि बिल्कुल छायाओं का लोक है, जहां अत्यंत तरल चीजें हैं, जिन पर मुट्ठी बांधना मुश्किल है।
स्वप्न में भी खोज की जा सकती है, की गई है, की जाती रही है। और जो लोग स्वप्नलोक की गहराइयों में गए हैं, वे बहुत हैरान हो गए हैं। वे हैरान हो गए हैं कि जिसको हम स्वप्न कहते हैं, वह बहुत गहरे अर्थों में हमारे सत्य के लोक से बहुत ज्यादा जुड़ा है। एकदम असत्य नहीं है।
बहुत से स्वप्न तो हमारे पिछले जन्मों की स्मृतियां हैं, जो कभी सत्य थे। बहुत से स्वप्न हमारे भविष्य की झलक हैं, जो कभी सत्य होंगे। और बहुत से स्वप्न हमारी अंतर्यात्राएं हैं मनो-जगत में, जिनका हमें कोई पता नहीं चलता। क्योंकि इस देह से वे यात्राएं नहीं होतीं, वे और सूक्ष्म देहों से यात्राएं होती हैं।
तो एक तो स्वप्न को असत्य नहीं मैं कहता हूं। फर्क इतना ही कर रहा हूं
कि स्वप्न में जितना सत्य दिखाई पड़ता है, वह सत्य स्वप्न के सत्य होने से नहीं आता, वह सत्य हमारे कर्ता होने से आता है। और अगर हमारा कर्तापन मिट जाए तो हमारे लिए स्वप्न मिट जाएगा। स्वप्न का सत्य तो बना ही रहेगा, हमारे लिए स्वप्न मिट जाएगा।
मेरा मतलब समझे आप? अगर हमारा कर्तापन का भाव मिट जाए, अगर मैं नींद में जाग जाऊं और मुझे ख्याल आ जाए कि यह स्वप्न है और मैं तो सिर्फ देख रहा हूं तो स्वप्न एकदम विलीन हो जाएगा। इसका यह मतलब नहीं है कि स्वप्न के सत्य नष्ट हो गए। स्वप्न के सत्य अपने तल पर बने रहेंगे। जैसे समझ लें कि मैंने एक दूरबीन लगाई और दूरबीन से मैंने आकाश देखा और मुझे वे तारे दिखाई पड़े जो खाली आंख से दिखाई नहीं पड़ते थे। फिर मैंने दूरबीन हटा दी, अब मुझे वे तारे फिर नहीं दिखाई पड़ रहे हैं, तो मैं यह तो नहीं कहूंगा कि वे तारे मिट गए मेरी दूरबीन हटाने से। नहीं, दूरबीन होने से प्रकट हुए थे, अब अप्रकट हो गए।
कर्ता-भाव से स्वप्न में सत्य प्रकट हुआ था, अब अप्रकट हो गया। ठीक ऐसे ही जागने में जो चीजें हमें दिखाई पड़ रही हैं, वे हैं, उनकी अपनी सत्ता है, वे इल्यूजरी नहीं हैं, उनकी अपनी सत्ता है। और महावीर को भी निकलना हो, शंकर को भी निकलना हो तो दरवाजे से ही निकलेंगे, दीवाल से नहीं निकल जाएंगे। शंकराचार्य को भी निकलना हो तो दीवाल से नहीं निकलेंगे, कि इल्यूजरी दीवाल है, वह क्या करेगी? निकलेंगे दरवाजे से ही।
इल्यूजरी कहने का मतलब बहुत दूसरा है, माया कहने का मतलब बहुत दूसरा है, स्वप्नवत कहने का मतलब बिल्कुल दूसरा है। मतलब दूसरा यह है कि दीवाल का अपना एक सत्य है, आब्जेक्टिव वस्तु का अपना एक सत्य है। लेकिन वह सत्य एक बात है और हम कर्ता होकर, मोहग्रस्त होकर, अहंग्रस्त होकर उस पर और सत्य प्रोजेक्ट कर रहे हैं, जो उसमें कहीं भी नहीं है।

जैसे यह मकान है, इस मकान का तो अपना सत्य है, लेकिन यह मकान ‘मेरा’ है,
यह बिल्कुल ही सत्य नहीं है। यह ‘मेरा’ बिल्कुल मेरे प्रोजेक्शन की बात है। यह मकान को पता भी नहीं होगा। और तीन काल में इसको पता नहीं चलेगा कि मैं किसका था।
और कई बार--इसकी भ्रांतियां गहरी हैं--जैसे हम कहते हैं, यह देह मेरी है। और आपको ख्याल होना चाहिए कि इस देह में करोड़ों कीटाणु जी रहे हैं और वे सब समझ रहे हैं, यह देह उनकी है। और उनमें से किसी को पता नहीं कि आप भी इसमें हैं एक, आपका बिल्कुल पता नहीं है। जब आपको कैंसर हो गया और एक, या एक घाव हो गया, एक नासूर हो गया और दस कीड़े उसमें पल रहे हैं, तो आप सोच रहे हैं कि ये मेरी देह को खाए जा रहे हैं। कीड़ों को ख्याल भी नहीं हो सकता, कीड़ों की अपनी देह है। वे इसमें जी रहे हैं। और जब आप उन्हें हटाते हैं तो उनके स्वत्व से वंचित कर रहे हैं। आप समझ रहे हैं कि आपकी देह है।
इस देह में कितने लोग देह बनाए हुए हैं! अरबों-खरबों कीटाणु, सेल्स देह बनाए हुए हैं। और सब यह मान रहे हैं कि उनकी देह है।
तो जब हम यह कह रहे हैं कि वस्तु की तो अपनी सत्ता है, इस देह की अपनी सत्ता है, लेकिन मेरी है, यह बिल्कुल स्वप्नवत है। और जिस दिन आप जागेंगे तो देह रह जाएगी, मेरा नहीं रह जाएगा। और अगर मेरा न रह जाए तो देह बहुत और अर्थों में प्रकट होगी, जिस अर्थों में कभी प्रकट नहीं हुई थी। वह मेरे की वजह से उसने दूसरा ही रूप ले लिया था, एकदम दूसरा रूप ले लिया था।
तो जब मैं कह रहा हूं कि अगर हम जाग जाएं और कर्ता मिट जाए, साक्षी रह जाए तो भी वस्तुओं का सत्य रहेगा, लेकिन तब वह वस्तु-सत्य रह जाएगा, तब मैं उसमें कुछ प्रोजेक्ट नहीं करूंगा, प्रक्षेप नहीं करूंगा।
और तब एक बहुत बड़ी दुनिया मिट जाएगी एकदम से। जिसको आप अपना बेटा कह रहे हैं, उसको आप अपना बेटा नहीं कह सकेंगे, शायद बेटा भी नहीं कह सकेंगे। अगर आप बिल्कुल साक्षी हो गए तो आप सिर्फ एक पैसेज रह जाएंगे--सिर्फ पैसेज रह जाएंगे, एक द्वार रह जाएंगे, जिससे वह व्यक्ति आया। लेकिन आप पिता नहीं रह जाएंगे।
और बहुत गहरे में देखेंगे तो आपका शरीर का मैल आपने झाड़ दिया, इस मैल
के आप पिता नहीं कहलाते, तो आप अपने वीर्य-अणुओं के कैसे पिता हो सकते हैं? यह मैल भी शरीर में उसी तरह पैदा होता है जैसे वीर्य-अणु पैदा होते हैं। ये नाखून आप काट कर फेंक देते हैं और कभी नहीं कहते कि मैं इनका पिता हूं। ये बाल आप काट कर फेंक देते हैं और कभी नहीं कहते कि मैं इनका पिता हूं। कभी लौट कर नहीं देखते। जिस शरीर ने ये सब पैदा किए हैं, उसी शरीर ने वीर्य-अणु भी पैदा किए हैं। आप कौन हैं? आप कहां हैं? यानी मैं यह कह रहा हूं कि अगर हमें ठीक से साक्षी-भाव हो जाए तो कौन पिता है! कौन मालिक है! क्या मेरा है! यह सब एकदम विदा हो जाएगा।
और ये अगर सारे अंतर्संबंध एकदम से विदा हो जाएं तो जगत बिल्कुल दूसरे अर्थों में प्रकट होगा। तब जगत होगा, आप होंगे, लेकिन बीच में कोई संबंध नहीं होगा। जो हम बांधते हैं, वह सब विदा हो जाएगा।
तो जब मैं यह कहता हूं कि आप अगर जाग जाएंगे तो जगत स्वप्नवत हो जाएगा, इसका मेरा मतलब यह नहीं है कि जगत झूठा हो जाएगा, कि जगत रहेगा ही नहीं। जगत और अर्थों में रहेगा, जिन अर्थों में आज है, उन अर्थों में नहीं रह जाएगा। स्वप्न भी बचता है, वह भी कहीं खो नहीं जाता, उसकी भी अपनी सार्थकता है। और आप हैरान होंगे कि अगर थोड़ी चेष्टा करें तो एक ही स्वप्न में हजार बार प्रवेश कर सकते हैं।
हमको क्यों स्वप्न इल्यूजरी मालूम पड़ता है? उसका कारण है कि आप एक ही स्वप्न में दुबारा प्रवेश नहीं कर पाते। और एक ही मकान में दुबारा जग जाते हैं, तो यह मकान सच्चा मालूम होने लगता है, क्योंकि बार-बार इसी मकान में आप जगते हैं रोज सुबह। यही मकान फिर, यही मकान फिर, यही मकान फिर। यही दुकान, यही मित्र, यही पत्नी, यही बेटा, तो यह बार-बार... ।
अगर समझ लें कि हर बार सुबह आप जागें और मकान दूसरा हो जाए तो आपको मकान का सत्य भी उतना ही झूठा हो जाएगा जितना सपने का हो जाता है, कि इसका क्या भरोसा, कल सुबह क्या हो जाए! और सपने में आप एक ही दफे जा पाते हैं, दुबारा उस सपने को आप कंटिन्यू नहीं कर पाते। क्योंकि आप जागने में ही

अपने मालिक नहीं हैं, सोने की मालकियत तो बहुत दूर की बात है, तो आप उसी सपने में फिर कैसे जा सकते हैं?
लेकिन उस तरह की पद्धतियां और व्यवस्थाएं हैं कि एक ही स्वप्न में बार-बार जाया जा सकता है। और तब आप हैरान हो जाएंगे कि स्वप्न इतना ही सत्य मालूम होगा जितना यह मकान। क्योंकि आज स्वप्न में अगर एक स्त्री आपकी पत्नी थी तो कल वह नहीं रह जाएगी, कल आप खोजें कितना ही, तो भी पता नहीं चलेगा वह कहां गई। लेकिन अगर ऐसा हो सके--और ऐसा हो सकता है--कि रोज रात आप सोएं और एक निश्चित स्त्री रोज रात सपने में आपकी पत्नी होने लगे, ऐसा दस वर्ष तक चले, तो आप ग्यारहवें वर्ष पर यह कह सकेंगे कि रात झूठ है? आप कहेंगे, जैसा दिन सच्चा है, ऐसे रात भी सच्ची है।
स्वप्न को स्थिर करने के भी उपाय हैं। उसी स्वप्न में रोज-रोज प्रवेश किया जा सकता है, तब वह सच्चा मालूम होने लगेगा। और अगर हम गौर से देखें तो रोज-रोज हम उसी मकान में सुबह जागते भी नहीं हैं जिसमें हम कल सोए थे, क्योंकि मकान बुनियादी रूप से बदल जाता है। अगर हमारी दृष्टि उतनी भी गहरी हो जाए कि बदलाहट को हम देख सकें तो जिस पत्नी को आपने कल रात सोते वक्त छोड़ा था, सुबह आपको वही पत्नी उपलब्ध नहीं होती है। उसका शरीर बदल गया, उसका मन बदल गया, उसकी चेतना बदल गई, उसका सब बदल गया।
लेकिन उतनी सूक्ष्म दृष्टि भी नहीं है हमारी कि हम उतनी गहरी दृष्टि
से जांच कर सकें कि सब बदल गया है, यह तो दूसरा व्यक्ति है। इसलिए आप कल की अपेक्षा करके झंझट में पड़ जाते हैं। कल शांत थी वह बड़ी और बड़ी प्रसन्न थी और सुबह से नाराज हो गई है। तो आप कहते हैं, ऐसा कैसे हो सकता है? क्योंकि आप अपेक्षा कल की लिए बैठे हुए हैं। कल उसने बहुत प्रेम किया था और आज बिल्कुल पीठ किए हुए है, तो आपको लगता है कि यह तो कुछ गड़बड़ हो रहा है। लेकिन आपको ख्याल नहीं है कि सब चीजें बदल गई हैं।
जिस दिन हम बहुत गहरे में इधर घुस जाएं, यानी मैं यह कह रहा हूं कि अगर गहरे स्वप्न में जाएं तो स्वप्न भी मालूम होगा वही है, और अगर गहरे इस सत्य में जाएं तो पता चलेगा कि वही कहां है, रोज बदलता चला जा रहा है। कहने का मेरा प्रयोजन इतना ही है कि इन सारी स्थितियों में--चाहे स्वप्न, चाहे जागरण--अगर साक्षी जग जाए तो एक बिल्कुल ही नई चेतना का आरंभ होता है, लेकिन उससे कोई जगत मिथ्या हो जाता है, झूठ हो जाता है, ऐसा नहीं। उससे सिर्फ इतना ही हो जाता है कि जो कल तक का जगत हमने बनाया था, वह विदा हो जाता है और एक बिल्कुल नया जगत, पहली दफे आब्जेक्टिव, पहली दफे वस्तुपरक सत्य सामने आता है। जो हमने बनाया था, वह विदा हो जाता है। जो हमने क्रिएट किया है, खुद सृजन कर लिया है, वह नदारद हो जाता है, वह विदा हो जाता है। महावीर इसीलिए उसको माया का उपयोग नहीं करना चाहते, क्योंकि माया से ऐसा लगता है कि जैसे सब झूठ है। इसलिए वे उपयोग नहीं करते हैं। वे कहते हैं, वह भी सत्य है, यह भी सत्य है। लेकिन दोनों सत्यों के बीच में हमने बहुत से झूठ गढ़ रखे हैं, वे विदा हो जाने चाहिए। तब पदार्थ भी अपने में सत्य है और परमात्मा भी अपने में सत्य है। और बहुत गहरे में दोनों एक ही सत्य के दो छोर हैं।
शंकर उसके लिए माया का उपयोग करते हैं, उसमें भी कुछ हर्ज नहीं है, वह
भी उपयोग किया जा सकता है। क्योंकि जिसमें हम जी रहे हैं, वह बिल्कुल इल्यूजरी है, बिल्कुल माया जैसी बात है।
एक आदमी है, रुपए गिन रहा है और गिन-गिन कर ढेर लगाता जा रहा है, तिजोड़ी बंद करता जा रहा है। रोज गिनता है, तिजोड़ी बंद करता है। अगर हम उसके मनो- जगत में उतरें तो वह रुपयों की गिनती में जी रहा है। और बड़े मजे की बात है कि रुपए में क्या है जिसकी गिनती में कोई जीए! कल सरकार बदल जाए और वह कह दे पुराने सिक्के खतम और उस आदमी का पूरा का पूरा मनो-लोक एकदम तिरोहित हो गया। वह एकदम नंगा खड़ा रह गया, अब कोई गिनती नहीं है उसके पास।
मेक-बिलीफ के जगत में हम जी रहे हैं। और ऐसे ही सिक्के हमने सब तरफ बना रखे हैं--परिवार के, प्रेम के, मित्रता के--सब ऐसे ही सिक्के बना रखे हैं। कल सुबह एकदम सब नियम बदल जाएं... ।
मुझे एक मित्र ने एक पत्र लिखा। बहुत बढ़िया पत्र लिखा। कुछ लोग जो मेरे साथ थे, वे साथ नहीं रह गए, तो उन्होंने मुझे पत्र लिखा। और हम सबको यह

भ्रांति होती है कि जो साथ है, वह सदा साथ हो। यह बिल्कुल पागलपन है। जितनी देर साथ है, बहुत है। जिस दिन अलग हो गया, अलग हो गया। जैसे साथ होना एक सत्य था, वैसे अलग होना एक सत्य है। साथ ही बना रहे, तो फिर हम एक माया के जगत में जीना शुरू कर देते हैं, एक्सपेक्टेशंस के, अपेक्षाओं के। आप मेरे मित्र हैं, तो बात काफी है इतना। लेकिन कल भी आप मेरे मित्र हों, तो फिर मैंने कल्पना के जगत में जीना शुरू कर दिया। फिर मैं दुख भी पाऊंगा, पीड़ा भी पाऊंगा। अपेक्षा मैंने बना ली। कल का कौन जानता है! कल क्या हो जाए! रास्ते कभी हमारे पास आ जाते हैं, कभी दूर चले जाते हैं। कभी एक-दूसरे का रास्ता कटता भी है। कभी बड़े फासले हो जाते हैं।
तो कुछ मित्र मुझे छोड़ कर चले गए हैं, तो एक मित्र ने मुझे एक कहानी लिखी। उसने लिखा कि यूनान में एक बार ऐसा हुआ कि एक साधु था। एथेंस नगर में उस साधु पर मुकदमा चला। उसकी बातों को एथेंस नगर के न्यायाधीशों ने कहा कि ये लोगों को बिगाड़ देने वाली हैं, इसलिए हम तुम्हें नगर-निकाला देते हैं, नगर से बाहर कर देते हैं।
साधु नगर से निकाल दिया गया। वह एथेंस छोड़ कर दूसरे नगर में गया। दूसरे नगर के लोगों ने उसका बड़ा स्वागत किया, क्योंकि उस साधु की जो मान्यताएं थीं, उस नगर के लोगों से मेल खा गईं।
उस नगर का एक नियम था कि जो भी नया आदमी उस नगर में मेहमान बने, सारा नगर मिल कर उसका मकान बना दे। तो राज ने ईंटें जोड़ दीं, ईंट बनाने वाले ने ईंटें ला दीं, पत्थर वाला पत्थर लाया, बढ़ई लकड़ी लाया, खपड़ा लाने वाला खपड़ा लाया। सारे गांव के लोगों ने श्रम किया, जल्दी ही उसका एक बहुत शानदार मकान बन गया।
वह उस मकान में जिस दिन प्रवेश करने को था, मकान बन गया है, प्रवेश होने की तैयारी हो रही है, साधु द्वार पर आया है, तभी गांव एकदम से पूरे मकान पर टूट पड़ा। छप्पर वाला छप्पर ले गया, ईंट वाले ने ईंट निकाल ली, दरवाजे वाला अपना दरवाजा निकालने लगा। सब चीजें एकदम अस्तव्यस्त हो गईं, सारा मकान टूटने लगा।
तो उस साधु ने खड़े होकर पूछा कि यह क्या बात है? मुझसे कोई गलती हो गई क्या?
तो जो लोग सामान लिए जा रहे थे, उन्होंने कहा, नहीं, तुम्हारी गलती का सवाल नहीं, हमारा कांस्टिट्यूशन बदल गया। यानी कल तक हमारे विधान में यह बात थी कि जो भी नया आदमी गांव में आए और रहे, उसका हम मकान बनाएं। रात की धारा-सभा में वह हमने खतम कर दिया। हमारा विधान जो है, वह बदल गया। दि कांस्टिट्यूशन हैज चेंज्ड। इसलिए हम अपना-अपना सामान लिए जा रहे हैं, बात खतम हो गई। अब यह तुम्हारा प्रवेश हो जाता तो मुश्किल पड़ता, इसलिए हमें जल्दी करनी पड़ रही है। क्योंकि तुम्हारे प्रवेश के बाद पुराना कांस्टिट्यूशन लागू हो जाता। अभी तुम्हारा प्रवेश नहीं हुआ, इसलिए हम इसे लिए चले जाते हैं।
उन मित्र ने मुझे यह कहानी लिखी और मुझे पूछा, वाज़ साधु ऐट फाल्ट? क्या साधु की कोई भूल थी?
तो मैंने उनको उत्तर दिया कि साधु की एक ही भूल थी कि उसने आदमियों के बनाए हुए नियम को ज्यादा मूल्य दे दिया था। जो आदमी नियम बनाते हैं, वे कभी भी तोड़ सकते हैं। यानी जो मकान बनाने का तय करते हैं, कल गिराने का तय कर सकते हैं।
साधु की भूल इतनी ही थी कि उसने यह भी क्यों पूछा दरवाजे पर खड़े होकर
कि क्या मुझसे कोई भूल हो गई? यह भी नहीं पूछना था। उसे जानना चाहिए था कि ठीक है, जो मकान बनाते हैं, वे गिरा सकते हैं। नियम बदल गया था। और साधु ने नियम को अपना सम्मान समझ लिया, यह भूल हो गई थी उससे। वह उसका सम्मान नहीं था, वह सिर्फ नियम का सम्मान था। नियम बदल गया, सारी बात खतम हो गई।
हम एक जिंदगी में जीते हैं, जो हमारे बनाए हुए नियमों, बनाई हुई मान्यताओं, बनाई हुई व्यवस्थाओं की है। वह जैसे ही हम जागेंगे, वे एकदम इल्यूजरी मालूम पड़ेगी।
पत्नी एकदम इल्यूजरी मालूम पड़ेगी, स्त्री सत्य रह जाएगी। स्त्री होगी एक, लेकिन पत्नी एकदम माया मालूम पड़ेगी। वह हमारी बनाई हुई व्यवस्था है।

एक युवक रह जाएगा, लेकिन बेटा होना उसका एकदम खो जाएगा। मकान रह जाएगा, लेकिन मेरा होना एकदम तिरोहित हो जाएगा। धन का ढेर रह जाएगा, लेकिन फिर गिनती का रस एकदम खो जाएगा, उसका कोई मतलब नहीं रह जाएगा। जगत होगा वस्तुपरक, लेकिन हमने सब्जेक्टिवली, आत्मा से उसमें जो उंडेल दिया है और मान लिया है कि वहां है, वह एकदम तिरोहित हो जाएगा। जैसे कोई जादू की दुनिया से एकदम जाग गया हो, और सब खो जाए; वृक्ष और वृक्ष में लगे फल, सब विदा हो जाएं; और चीजें जैसी हैं, वैसी रह जाएं। वस्तु रह जाएगी, लेकिन हमारी कल्पित वस्तु एकदम विदा हो जाएगी।
इस अर्थ में मैंने कहा कि स्वप्न भी सत्य बन जाता है, अगर हम उसमें लीन
हो जाते हैं। और जिसे हम सत्य कहते हैं वह भी स्वप्नवत हो जाएगा, अगर हम अपनी लीनता को तोड़ लेते हैं।

प्रश्नः महावीर पूर्व-जन्म में ही पूर्ण हो गए, यह आपका कहना है। किंतु वर्तमान जीवन में अभिव्यक्ति के साधन खोजने के लिए उन्हें तपश्चर्या करनी पड़ी। पूर्ण में यह अपूर्णता कैसी? क्या पूर्णता में ही अभिव्यक्ति के साधनों की उपलब्धि शामिल नहीं है?

नहीं, पूर्णता की उपलब्धि में अभिव्यक्ति के साधन सम्मिलित नहीं हैं। अभिव्यक्ति की पूर्णता उपलब्धि की पूर्णता से बिल्कुल अलग पूर्णता है। असल में पूर्णता भी एक नहीं है, अनंत पूर्णताएं हैं। इससे हमें बड़ी कठिनाई होती है। पूर्णता एक चीज नहीं है, अनंत पूर्णताएं हैं। पूर्णताएं भी अनंत हैं। अनंतानंत महावीर तो कहते हैं। एक दिशा में एक आदमी पूर्ण हो जाता है, इसका यह मतलब नहीं है कि वह और सब दिशाओं में पूर्ण हो गया।
एक आदमी चित्र बनाता है और चित्र बनाने में पूर्ण हो गया। इसका यह मतलब नहीं है कि वह संगीत बजाने में पूर्ण हो जाएगा, कि वीणा बजा सकेगा। वीणा की अपनी पूर्णता है। वीणा की अपनी दिशा है। और कोई अगर वीणा बजाने में पूर्ण हो गया तो इसका यह मतलब नहीं है कि वह नाचने में पूर्ण हो जाएगा। नाचने की अपनी पूर्णता है। मल्टी डायमेंशनल है पूर्णता जो है। बहुआयाम हैं पूर्णता के।

प्रश्नः क्या बहुआयामी पूर्णता किसी को मिली है?

नहीं, असंभव ही है। असंभव ही है कि कोई व्यक्ति समस्त पूर्णताओं में पूर्ण हो जाए। इसलिए असंभव है कि कुछ पूर्णताएं तो ऐसी हैं कि एक में होंगे तो दूसरे में फिर हो ही नहीं सकेंगे, वे विरोधी पूर्णताएं हैं। जैसे समझ लें कि एक पुण्यात्मा पूर्ण हो जाए, तो फिर पाप की पूर्णता में पूर्ण नहीं हो सकता। पाप की भी अपनी पूर्णता है। यानी पाप की भी अपनी पूर्णता है! और कोई अगर पाप में पूर्ण हो जाए तो वह कैसे पुण्य में पूर्ण होगा? तो न केवल पूर्णताएं अनंत हैं, पूर्णताएं विरोधी भी हैं। तो सब... कोई यह तो सोच ही नहीं सकता कि कोई व्यक्ति समस्त दृष्टि से पूर्ण हो जाए। ऐसा नहीं हो सकता।
परमात्मा की जो धारणा है, वह धारणा इस लिहाज से कीमती है। इसीलिए परमात्मा की धारणा का जो मतलब है, वह यह है कि सिर्फ परमात्मा सब दिशाओं में पूर्ण है। क्योंकि परमात्मा कोई व्यक्ति नहीं है, वह सब व्यक्तियों में से अनंत दिशाओं में पूर्णता प्राप्त कर रहा है। परमात्मा अगर कोई व्यक्ति हो तो वह भी पूर्ण नहीं हो सकता सब दिशाओं में। लेकिन पापी से भी वह एक तरह की पूर्णता पा रहा है, पुण्यात्मा से दूसरी तरह की पूर्णता पा रहा है।
तो परमात्मा के अनंत-अनंत जो हाथ हम चित्रों में देखते हैं, उसका कारण कुल इतना है। अनंत हाथों से वह पूर्ण हो रहा है, इसलिए हो सकता है। हम दो हाथों से कैसे पूर्ण होंगे? सब हाथ उसके ही हों, तब तो ठीक है, फिर कोई कठिनाई नहीं रह गई। फिर अगर महावीर एक दिशा में पूर्ण हों और हिटलर दूसरी दिशा में पूर्ण हो जाए तो कोई परमात्मा को कठिनाई नहीं पड़ती, क्योंकि हिटलर के हाथ भी उसके हैं और महावीर के हाथ भी उसके।

परमात्मा को छोड़ कर और कोई सब दिशाओं में पूर्ण नहीं हो सकता। और परमात्मा व्यक्ति नहीं है, इसीलिए। वह शक्ति है--सबकी ही शक्ति का समग्रीभूत नाम है। इसलिए उसको तो छोड़ दें, लेकिन कोई भी व्यक्ति कभी भी इस अर्थ में पूर्ण नहीं होता। उसकी अपनी दिशा होती है, उसमें वह पूर्ण हो जाता है।
अनुभूति की एक दिशा है और अभिव्यक्ति की बिल्कुल दूसरी। और अनुभूति
के लिए जो करना पड़ता है, अभिव्यक्ति के लिए करीब-करीब उससे उलटा करना पड़ता है। इसलिए दोनों साधी जा सकती हैं, लेकिन एक साथ नहीं। एक सध जाए तो फिर दूसरी साधी जा सकती है।
इसलिए कभी अनुभूति की पूर्णता के साथ अभिव्यक्ति की पूर्णता नहीं होती, क्योंकि अनुभूति में जाना पड़ता है भीतर और अभिव्यक्ति में आना पड़ता है बाहर। और ये बिल्कुल ही उलटे आयाम हैं। अनुभूति में छोड़ना पड़ता है सबको, और हो जाना पड़ता है बिल्कुल स्व, सब छोड़ कर बिल्कुल एक बिंदु। और अभिव्यक्ति में फैलना पड़ता है, सबको जोड़ना पड़ता है। अभिव्यक्ति में दूसरा महत्वपूर्ण है, अनुभूति में स्वयं ही महत्वपूर्ण है। उलटी दिशाएं हैं बिल्कुल। जानना मौन में है और बताना वाणी में है। तो जो जानेगा, उसको मौन होना पड़ेगा और जब बताने जाएगा तो फिर शब्द की साधना करनी पड़ेगी।
इसलिए जरूरी नहीं है कि जो अभिव्यक्ति दे रहा हो, वह जानता भी हो। यह जरूरी नहीं है। हो सकता है सिर्फ अभिव्यक्ति हो, तब वह उधार हो जाएगी। किसी और ने जाना होगा, वह सिर्फ अभिव्यक्ति दिए चला जा रहा है। इसलिए बहुत बार ऐसा होता है कि अकेली अभिव्यक्ति वाला आदमी भी बड़ा ज्ञानी मालूम पड़ता है। उसके पास अनुभूति कोई भी नहीं है। सिर्फ उसने उधार अनुभूतियां बटोर ली हैं। पंडित ऐसे ही आदमी को मैं कहता हूं, जिसके पास अभिव्यक्ति है, अनुभूति नहीं। ऐसे भी लोग हैं जिनके पास अनुभूति है, लेकिन अभिव्यक्ति नहीं।
बुद्ध से एक दिन किसी ने जाकर पूछा कि आप इतने वर्षों से समझाते हैं, कितने ऐसे लोग हैं जो उसी सत्य को उपलब्ध हो गए हों जिसको आप हो गए हैं? बुद्ध ने कहा, बहुत। यहीं बैठे हुए हैं। उस आदमी ने पूछा, लेकिन आप जैसा तो इनमें से कोई भी नहीं दिखाई पड़ता--आप जैसा महिमाशाली! तो बुद्ध ने कहा, थोड़ा ही सा फर्क है। मैंने अभिव्यक्ति भी साधी है। अनुभूति में तो वे मेरी जगह पहुंच गए हैं। अभिव्यक्ति! तो जब तक अभिव्यक्ति न साधें, तुम्हें उनका पता भी नहीं चलेगा। क्योंकि जब वे तुमसे कहेंगे, तब तुम जानोगे। उन्हें हो गया है, इससे थोड़े ही जानोगे।
केवल-ज्ञानी और तीर्थंकर में यही फर्क है। तीर्थंकर भी केवल-ज्ञानी
से ज्यादा नहीं है, सिर्फ अभिव्यक्ति और है उसके पास। केवल-ज्ञानी तीर्थंकर से इंच भर कम नहीं है; अनुभूति में वहीं है, जहां वह है; सिर्फ अभिव्यक्ति नहीं है उसके पास।

प्रश्नः केवल-ज्ञानी के पास?

अभिव्यक्ति नहीं है। अभिव्यक्ति साध ले तो वह भी टीचर हो जाता है, वह
भी शिक्षक हो जाता है। अभिव्यक्ति न साधे तो अनुभूति तो होती है, सिद्ध होता है, लेकिन बंद हो जाता है; सब तरफ फैला नहीं पाता कि जो उसने जाना है, उसे कह दे।
तो अनुभूति की पूर्णता तो महावीर को पिछले जन्म में हुई है, अभिव्यक्ति की पूर्णता के लिए उन्हें इस जन्म में साधना करनी पड़ी। और मैं कहता हूं कि अनुभूति की पूर्णता उतनी कठिन चीज नहीं है, जितनी अभिव्यक्ति की पूर्णता कठिन चीज है। बहुत ही कठिन है। क्योंकि अनुभूति में मैं अकेला ही हूं, जो भी मुझे करना है, अपने से ही करना है। अभिव्यक्ति में दूसरा सम्मिलित हुआ जा रहा है। इसलिए दूसरे को जानना, समझना, दूसरे तक पहुंचाना; दूसरे की भाषा है, दूसरे का अनुभव है, दूसरे का व्यक्तित्व है; करोड़-करोड़ तरह के व्यक्तित्व हैं, करोड़-करोड़ योनियों में बंटा हुआ प्राण है, उन सब पर प्रतिध्वनि हो सके, उन सब तक खबर पहुंच सके; पत्थर भी सुन ले और देवता भी सुन ले; उस सबकी फिक्र साधना बहुत बड़ी बात है।

इसलिए केवल-ज्ञान तो बहुत लोगों को उपलब्ध होता है, लेकिन तीर्थंकर बहुत कम लोग बन पाते हैं। उसका कारण यह है, केवल-ज्ञान तो अनंत-अनंत लोगों को उपलब्ध होता है, परिपूर्ण ज्ञान की अनुभूति तो करोड़ों लोगों को होती है, लेकिन जिसको हम शिक्षक कह सकें, तीर्थंकर कह सकें--जो बता भी सके कि ऐसे हुआ है--ऐसा मुश्किल से कभी होता है।
इसलिए मैंने कल कहा, वह पहले जन्म में तो... पर हमारा क्या होता है, हम पूर्णता को बड़े टोटेलिटेरियन सेंस में लेते हैं।

प्रश्नः इसीलिए गड़बड़ हो जाती है?

हां, इसलिए गड़बड़ हो जाती है।

प्रश्नः तो पूर्णता कहते हुए अलग-अलग कहना पड़ेगा?

बिल्कुल अलग कहना पड़े, बिल्कुल अलग कहना पड़े... ।

प्रश्नः तो जब आप पूर्णता कहते हैं, तो उसमें अलग-अलग करना पड़ेगा?

अलग-अलग करना ही पड़े, क्योंकि कोई व्यक्ति अनुभूति में पूर्ण हो सकता
है और अभिव्यक्ति बिल्कुल न हो। अनेक लोग जाने हैं और मौन रह गए, फिर कहा ही नहीं उन्होंने। खोज ही नहीं सके मार्ग कहने का वे। खोज ही नहीं सके। जैसा मैंने कल कहा। जैसे कि आप अभी जाएंगे डल झील पर और सौंदर्य को देखेंगे। और हो सकता है कि सौंदर्य का पूर्ण अनुभव आपको हो जाए, लेकिन इससे यह मतलब नहीं कि आप आकर एक पेंटिंग बना सकें जिसमें आप डल झील को पेंट कर दें। इससे यह मतलब नहीं है। और यह भी हो सकता है कि आपसे कम अनुभव किसी को हो और वह आकर पेंट कर दे, क्योंकि पेंट की कुशलता अलग बात है। मेरा मतलब समझे न आप?
पेंटिंग की कुशलता बिल्कुल अलग बात है अनुभूति की कुशलता से। अनुभूति
तो आपको हो सकती है डल झील पर जाकर सौंदर्य की, सारा प्राण भीग जाए, लेकिन आपसे कोई कहे कि रंग उठा कर और ब्रुश उठा कर जरा पेंट कर दें, तो आप कहें, यह मुझसे नहीं हो सकेगा।

प्रश्नः दोनों होता तो पूर्णता कहते उसको?

और भी दिशाएं हैं न! और भी दिशाएं हैं, और भी दिशाएं हैं, क्योंकि जब आप
डल झील पर गए थे तो आपने सोचा होगा कि आप सिर्फ देख रहे हैं। वह सौंदर्य सिर्फ देखने का नहीं था। अगर आप बहरे होते तो इतना सौंदर्य आपको दिखाई न पड़ता।
उसमें चिड़ियों की आवाज भी छिपी थी, उसमें लहरों की छप-छप भी छिपी थी, उसमें सब था जुड़ा हुआ। अगर आप बहरे होते तो आप देख तो लेते, लेकिन आपके देखने में कमी रह गई होती। उसमें आस-पास जो सुगंध आ रही थी, वह भी उस सौंदर्य का हिस्सा थी।
हमको कभी पता नहीं चलता कि जब कोई एक आदमी किसी स्त्री को प्रेम करता
है तो वह कभी नहीं सोचता कि उसके शरीर की गंध भी उसमें कोई तीस परसेंट हिस्सा लेती है, कम नहीं। यानी वह कितनी ही सुंदर हो, अगर उसकी गंध उसको मेल नहीं खाती है तो वह बिल्कुल ही तालमेल नहीं बैठ सकता, कभी तालमेल नहीं बैठ सकता। उसके शरीर की एक गंध है जो उसे भीतर से आकर्षित करती है। और पर्टिकुलर गंध है, जो पर्टिकुलर लोगों को आकर्षित करती है, नहीं तो नहीं करती। यानी वह कितनी ही सुंदर हो, जरा सी गंध उसकी विपरीत हो, तो कभी तालमेल नहीं होगा, विरोध बना ही रहेगा, झंझट खड़ी ही रहेगी और आप कभी सोच भी नहीं पाएंगे कि उसके शरीर की गंध बाधा दे रही है।
तो जैसे कि सौंदर्य बड़ी चीज है, उसमें गंध भी सम्मिलित थी, उसमें ध्वनि भी सम्मिलित थी, उसमें रंग भी सम्मिलित थे, उसमें सब सम्मिलित था। वह एक टोटल बात थी। आप आकर अगर पेंट भी कर लो और मैं आपसे कहूं कि झील पर जो

संगीत अनुभव हुआ था, वह बजाओ। आप कहोगे, वह मैं नहीं कर सकता हूं। तब भी आप पेंट करके सिर्फ आंख से जो देखा गया था, वही पेंट कर पा रहे हो; कान से जो जाना गया था, वह आप नहीं कर पा रहे हो; नाक से जो जाना गया था, वह आप नहीं कर पा रहे हो। तो भी पूर्णता पूर्णता नहीं है।
तब फिर मेरा कहना ऐसा है कि अगर हम संपूर्णता के लिए रुकेंगे तो शायद कोई आदमी कभी पृथ्वी पर संपूर्ण नहीं रहा और न हो सकता है। असंभव है। और असंभव के बहुत भीतरी कारण हैं, वे हमें दिखाई नहीं पड़ते। जैसे जिस आदमी की आंख रंगों को देखने लगेगी बहुत गहराई में, उस आदमी के कान धीमे-धीमे शक्ति खो देते हैं। इसलिए अंधों के पास कान की जो शक्ति होती है, आंख वालों के पास कभी नहीं होती। इसलिए अंधा जैसा संगीतज्ञ हो सकता है, आंख वाला कभी नहीं हो सकता। उसका कारण है कि भीतर शक्ति की सीमा है। अगर वह पूरी आंख से बहने लगती है तो दूसरी इंद्रियों से खींच लेती है; अगर पूरे कान से बहने लगती है तो दूसरी इंद्रियों से खींच लेती है।
तो अंधे के पास कान की ताकत सदा ज्यादा होती है, क्योंकि आंख की जो शक्ति बच गई है, वह क्या करे, वह कानों से बह जाती है। तो अगर कोई व्यक्ति संगीत में बहुत कुशल हो जाए तो कान तो ट्रेंड हो जाएगा, लेकिन आंखें मंदी हो जाएंगी, स्पर्श क्षीण हो जाएगा। और दिशाओं में वह एकदम सिकुड़ जाएगा। शक्ति सीमित है और अनुभूति अनंत है। इसलिए सिर्फ परमात्मा को छोड़कर,
जो कि सभी शक्ति का जोड़ है, कोई व्यक्ति कभी संपूर्ण नहीं होगा। हां, लेकिन एक-एक दिशा में पूर्णता पा लेने से वह परमात्मा में लीन हो जाता है और परमात्मा में लीनता पाने से वह समग्र में पूर्ण हो जाता है। वह बिल्कुल दूसरी बात है।
इसे थोड़ा ख्याल में लेना चाहिए। जैसे कोई नदी कभी पूर्ण नहीं होगी, लेकिन सागर में खोकर पूर्ण हो जाती है। नदी रहते नहीं होगी पूर्ण, क्योंकि उसके किनारे होंगे, तट होंगे। लेकिन सागर में होकर वह पूर्ण हो जाती है। जब तक कोई व्यक्ति है, तब तक वह एक दिशा में ही पूर्ण हो सकता है, दो दिशा में हो सकता है, तीन दिशा में हो सकता है, लेकिन समस्त पूर्णताओं को नहीं पकड़ सकता। लेकिन एक दिशा में भी कोई पूर्ण हो जाए तो वह उस द्वार पर खड़ा हो जाता है, जहां से परमात्मा में प्रवेश संभव है--एक दिशा में भी पूर्ण हो जाए। यानी पूर्णता जो है वह किसी भी दिशा से लाई गई हो, परमात्मा के द्वार पर खड़ा कर देती है। और अगर वहां से वह अपने को छोड़ दे और खो जाए तो वह परमात्मा के साथ एक हो गया। उस अर्थ में वह अब संपूर्ण हो गया। लेकिन अब वह रहा ही नहीं। अब वह नदी रही नहीं, अब वह सागर ही हो गई है।
अनंत-अनंत पूर्णताओं की दृष्टि अगर हमारे ख्याल में हो तो हम और बहुत
सी बातें समझ सकेंगे। तब हम समझ सकेंगे कि सर्वज्ञ का क्या मतलब होगा। तब हम पागलपन में नहीं पड़ेंगे। तब हम इतना ही कहेंगे कि महावीर, स्वयं को जानने में जो भी जाना जा सकता था, वह सब जान लिए हैं। सर्वज्ञ का यह मतलब होगा। फिर यह मतलब नहीं होगा कि वह साइकिल का टायर फट जाए तो उसको जोड़ना भी जानते हैं। उसका यह मतलब नहीं होगा कि आदमी को टी.बी. हो जाए तो उसकी दवाई भी जानते हैं। सर्वज्ञ का यह मतलब नहीं होगा।
लेकिन महावीर को पकड़ने वालों ने सर्वज्ञ का कुछ ऐसा मतलब पकड़ लिया है
कि जो भी जाना जा सकता है, वह सब वे जानते हैं। आइंस्टीन को भी वे जानते हैं, मोजार्ट को भी वे जानते हैं, बीथोवन को भी वे जानते हैं, सबको वे जानते हैं। यह बिल्कुल फिजूल, गलत बात है।
सर्वज्ञ का इतना ही मतलब है कि जिस पूर्णता की एक दिशा को उन्होंने पकड़ा है, उसमें वे सर्वज्ञ हो गए हैं। आत्मज्ञान की दिशा में वे सर्वज्ञ हैं। जो भी आत्मज्ञान की दिशा में जाना जा सकता है, वह सब उन्होंने जान लिया है। लेकिन इसका यह मतलब नहीं है, इसका यह मतलब नहीं है कि वे आपको कोई बीमारी है तो वह जानते हैं; भविष्य में क्या होगा, वह जानते हैं; कल क्या होगा, वह जानते हैं; कल क्या हुआ था, वह जानते हैं! इन सब बातों से कोई मतलब नहीं है। इनसे कोई मतलब नहीं है।
और इस तरह बहुत तरह के लोग सर्वज्ञ हो सकते हैं, चूंकि मैंने कहा कि पूर्णताएं अनंत हैं, तो अनंत तरह के लोग सर्वज्ञ हो सकते हैं।

प्रश्नः इसी तरह हमारे केवल-ज्ञान भी फलित पैदा हुआ। वह भी एक ही... ।

उसका हां, उसका मतलब ही इतना ही है। केवल-ज्ञान तो शब्द ही बहुत अदभुत है, हमें ख्याल में नहीं आता। केवल-ज्ञान का मतलब है... केवल-ज्ञान का मतलब क्या होता है? उसका मतलब सिर्फ इतना होता है कि जहां ज्ञेय न रहा, जहां ज्ञाता न रहा, बस ज्ञान रह गया। जस्ट नोइंग। केवल-ज्ञान का मतलब है, जस्ट नोइंग। न कुछ जानने को शेष रहा, न कोई जानने वाला शेष रह गया। बस ज्ञान ही शेष रह गया। जानने की क्षमता ही सिर्फ शेष रह गई।

प्रश्नः वह हर चीज की... ?

नहीं, बिल्कुल नहीं, बिल्कुल नहीं। वह हर चीज से हम जोड़ कर ही दिक्कत में पड़ जाते हैं। जानने की शुद्ध क्षमता शेष रह गई है उसमें। यह क्षमता पूर्ण है। पूर्ण इस अर्थ में नहीं कि वह सब जानता है, पूर्ण इस अर्थ में कि जैसे समझ लें। समझ लें कि एक आदमी है, वह गीत गाने की पूर्ण क्षमता को उपलब्ध हो गया है। इसका यह मतलब नहीं कि उसने सब गीत गाए, क्योंकि गीत अनंत हैं। इसका यह मतलब भी नहीं कि वह सब गीत गाएगा, क्योंकि गीत अनंत हैं। इसका यह मतलब नहीं कि इस वक्त वह गा रहा है। लेकिन गीत गाने की पूर्णता को उपलब्ध हो गया है।
उसका मतलब यह है कि अब वह जो भी गीत गाना चाहे, गा सकता है। लेकिन जब वह
एक गीत गाएगा तब दूसरा गीत न गा पाएगा। तब एक गीत बांध लेगा उसको। जब तक वह कुछ नहीं गा रहा है, तब तक वह कोई भी गीत गा सकता है। सिर्फ क्षमता है यह।
यानी केवल-ज्ञान जो है, वह जस्ट नोइंग--क्षमता है।

प्रश्नः जान सब गया।

न-न-न! जान सकता है।

प्रश्नः जान सकता है!

हां, जानने की क्षमता उसकी शुद्ध निर्मल हो गई है, वह कुछ भी जान सकता है।

प्रश्नः उसकी प्रकटता क्या है? बाहर के लोगों को कैसे मालूम पड़ेगा?

हां, उसकी अपन पीछे बात करेंगे।
वह सिर्फ जानने की... जैसे कि आईना है। आईने का क्या मतलब है? उसके पास
एक क्षमता है कि वह दर्पण हो सकता है। जरूरी नहीं है कि इस वक्त उसमें कोई छाया बन रही हो, किसी आदमी का चेहरा बन रहा हो, वह खाली पड़ा हो। लेकिन कोई भी चेहरा सामने आए तो जाना जा सकता है। दर्पण जाने जा सकने की क्षमता रखता है। वह उसकी पोटेंशियलिटी है। जरूरी नहीं है कि इस वक्त कोई उसके सामने खड़ा हो, वह जाने। हां, कोई भी खड़ा हो जाए तो वह जानेगा। लेकिन एक खड़ा हो जाए तो दूसरे को जानना मुश्किल हो जाएगा और दो खड़े हो जाएं तो तीसरे को जानना मुश्किल हो जाएगा। और दस आदमी उसको घेर लें तो पीछे करोड़ों की भीड़ हो तो उसको जानना मुश्किल हो जाएगा। लेकिन इनमें से कोई भी आदमी उसके सामने खड़ा हो तो वह जान सकेगा।
केवल-ज्ञान का मतलब है ज्ञान की शुद्धता उपलब्ध हो गई है। ज्ञान नहीं, नालेज नहीं--नोइंग। समझ लेना चाहिए जो फर्क है। नालेज नहीं उपलब्ध हो गई है--नोइंग। हां, जानने की क्षमता उपलब्ध हो गई है। अब वह जिस दिशा में भी लगा देगा, उसी दिशा में पूर्णता को जान लेगा। हां, पूर्णता को जान लेगा, जिस दिशा में लगा देगा। लेकिन एक दिशा में लगाएगा, तो दूसरी दिशाओं से तत्काल वंचित हो जाएगा।

और मजा यह है कि शुद्ध ज्ञान की क्षमता में जीना इतना आनंदपूर्ण है कि फिर उसे कोई लगाता नहीं। यह जो मामला है न, शुद्ध दर्पण होना इतना आनंदपूर्ण है कि कौन प्रतिबिंब बनाए!
इसलिए केवल-ज्ञानी सब जानना छोड़ देता है। जानने की जैसे ही शुद्धता उपलब्ध होती है, जानना ही छोड़ देता है। क्योंकि अब सब जानना उसके जानने की क्षमता पर ऊपर छाएगा और उसके जानने की क्षमता को अशुद्ध करेगा, आवरण बनेगा।
तो अब यह बड़े मजे की बात है, केवल-ज्ञानी जो कि जान सकता है किसी भी चीज को, सब जानना छोड़ देता है। जानता ही नहीं फिर वह। फिर जानने की क्षमता में ही रम जाता है। वह इतना आनंदपूर्ण है कि कौन सी बाधा ले वह! जानने की क्षमता ही इतनी आनंदपूर्ण है कि वह क्यों जानने जाए किसी को? अज्ञान जानने जाता है और ज्ञान ठहर जाता है। अज्ञान जानने जाता है, क्योंकि अज्ञान में जिज्ञासा है कि जानूं। और जब ज्ञान की क्षमता उपलब्ध होती है तो ज्ञान ठहर जाता है, वह जानने जाता ही नहीं है, क्योंकि जानने का कोई सवाल भी नहीं रह जाता!
अज्ञान भटकाता है, यात्रा करवाता है। ज्ञान ठहरा देता है। अब यह मजे
की बात है, अज्ञानी इसलिए जानते हुए मिल जाएंगे और केवल-ज्ञानी बिल्कुल ही मौन हो जाएगा, जानता हुआ भी नहीं मालूम पड़ेगा। क्योंकि अज्ञानी चेष्टा कर रहा है निरंतर--यह जानूं, यह जानूं, यह जानूं।
तो यह केवल-ज्ञान की तो धारणा ही बहुत अदभुत है, लेकिन उसको इस तरह विकृत किया हुआ है जिसका कोई हिसाब नहीं। उसका हमने कुछ ऐसा मतलब निकाल लिया है कि जो सब जानता है! नहीं, जो सब जान सकता है! इन दोनों में बिल्कुल भिन्नता है। और जो जान सकता है, वह जानेगा, यह जरूरी नहीं है। आमतौर से तो यही जरूरी है कि वह जानेगा ही नहीं। अब इस झंझट में ही नहीं पड़ेगा। अब वह झंझट में ही नहीं पड़ेगा।
इसलिए अगर मैं आपसे कहूं कि केवल-ज्ञानी सब जान सकता है और कुछ भी नहीं जानता है, तो आप इसमें विरोध मत समझना। सब जान सकता है और कुछ भी नहीं जानता है। अब वह किसी दिशा में जाता ही नहीं, वह चुप खड़ा हो जाता है।
यह खड़ा होना ही इतना आनंदपूर्ण है, इतना मुक्तिदायी है! और अगर वह किसी दिशा में गया तो परमात्मा में नहीं जा सकेगा, यह बात और समझ लेनी चाहिए। किसी भी दिशा में गया हुआ व्यक्ति परमात्मा में नहीं जा सकेगा, क्योंकि परमात्मा सब दिशाओं का जोड़ है। और एक दिशा में गया हुआ व्यक्ति शेष दिशाओं के विपरीत पड़ जाता है।
इसलिए जिस व्यक्ति को परिपूर्ण ज्ञान की क्षमता उपलब्ध होगी, वह तत्काल सब दिशाएं छोड़ देगा और परमात्मा में लीन हो जाएगा। परमात्मा का मतलब है, नो व्हेयरनेस। और दिशा का मतलब होता है, समव्हेयर। अगर किसी भी दिशा में जा रहे हैं तो कहीं जा रहे हैं। और परमात्मा का मतलब है कहीं नहीं जा रहे हैं, सब कहीं में लीन हो गए हैं। तो जो उस पूर्ण स्थिति पर पहुंचता है, जहां सिर्फ जानना ही शेष रह जाता है, वह एकदम डूब जाता है।

प्रश्नः वह सर्वव्यापी हो गया?

हो ही गया, हो ही गया। जैसे कि एक बूंद सागर में गिरी और सर्वव्यापी हो गई, क्योंकि वह सागर से एक ही हो गई। और जब तक वह दिशा पकड़े रहता है, तब तक वह सर्वव्यापी नहीं हो सकता।
जीसस ने कहा है, जो अपने को बचाएंगे, वे नष्ट हो जाएंगे। जो अपने को खो देंगे, वे सब पा लेंगे। बचाओ मत अपने को, खो दो। लेकिन खो वही सकता है, जिसका अब कोई किनारा नहीं, किनारे खोने की हिम्मत होनी चाहिए। नदी यदि किनारा पकड़े रहे तो सागर में कैसे जाए? तो फिर डेल्टा पर खड़ी हो जाए, कि यह तो खोना हुआ जा रहा है, सब किनारा छूटा जा रहा है!
दिशाओं के तो किनारे होते हैं और परमात्मा जो है, वह डायमेंशनलेस, आयाम-शून्य है, इसलिए वहां कोई किनारा नहीं है। उतनी खोने की क्षमता--उस क्षमता का ही नाम केवल-ज्ञान है, जहां सिर्फ जानना शेष रह जाता है और आदमी डूब जाता है। फिर वह जानने की कोशिश में नहीं पड़ता।

यहां दो संभावनाएं हैं, या तो वह डूब जाए परमात्मा में, जो सामान्यतया होता है, या एक जीवन के लिए वह लौट आए और जहां पहुंचा है उस क्षमता की खबर दे जाए। उसी को मैं करुणा कह रहा हूं। और वह करुणा हो तो उसे अभिव्यक्ति की पूर्णता पानी पड़े। वह एक दूसरा उपाय करना पड़े उसे, क्योंकि अब उसे दूसरे से कहना है।
गूंगा भी जान सकता है सत्य को, लेकिन कह नहीं सकता। गूंगा भी प्रेम कर सकता है, लेकिन कह नहीं सकता। और गूंगे को अगर कहना हो अपनी प्रेयसी को कि मैं तुझे प्रेम करता हूं, तो वाणी सीखनी पड़े। प्रेम करने के लिए वाणी सीखने की जरूरत नहीं है। प्रेम करना एक और बात है। वह गूंगा भी कर सकता है प्रेम। गूंगा इशारों से कुछ बातें कर भी सकता है। लेकिन अगर उसे कहना हो, बताना हो, क्या जाना है उसने प्रेम में, तब फिर उसे और एक दूसरी तरह की पूर्णता पानी पड़े।
महावीर इस जन्म में उस दूसरी तरह की पूर्णता की साधना में लगे हैं।
उस पर रात अपन बात करेंगे कि वह साधना कैसी है।
फिर कल और बात करेंगे।

महावीर: मेरी दृष्टि में सातवां प्रवचन

अनुभूति की महावीर-अभिव्यक्ति

सत्य की अनुभूति को अभिव्यक्ति कैसे मिले, यही बड़े से बड़ा सवाल महावीर के सामने इस जन्म में था। और यह सवाल इतना बड़ा न होता, क्योंकि महावीर पहले शिक्षक नहीं हैं, जिनके सामने अभिव्यक्ति की बात उठी हो। जिन्होंने भी सत्य को जाना है, उन सभी के सामने यही सवाल है। लेकिन महावीर के सामने सवाल कुछ और बहुत ही गहरे रूप में उपस्थित हुआ था, जैसा कभी नहीं हुआ था। और महावीर के व्यक्तित्व की विशेषताओं में एक विशेषता यह भी है कि उन्होंने सत्य की जो अनुभूति हुई है, उसकी अभिव्यक्ति को जीवन के समस्त तलों पर प्रकट करने की कोशिश की है।
मनुष्य तक कुछ बात कहनी हो, कठिन तो बहुत है, लेकिन फिर भी बहुत कठिन नहीं है। लेकिन महावीर ने एक चेष्टा की जो अनूठी है और नई है। और वह चेष्टा यह है कि पौधे, पशु-पक्षी, देवी-देवता, सब तक--जीवन के जितने तल हैं, सब तक-- उन्हें जो मिला है उसकी खबर पहुंच जाए! फिर महावीर के बाद ऐसी कोशिश करने वाला, ठीक वैसी कोशिश करने वाला दूसरा आदमी नहीं हुआ। असीसी के संत फ्रांसिस ने थोड़ी सी कोशिश की है पक्षियों और पशुओं तक बात पहुंचाने की यूरोप में। और अभी-अभी श्री अरविंद ने बड़ी कोशिश की है पदार्थ तक, मैटर तक चेतना के स्पंदन पहुंचाने की। लेकिन महावीर जैसा प्रयास न तो पहले कभी हुआ था, न महावीर के बाद हुआ है।
तो वे जो बारह वर्ष आमतौर से सत्य की साधना के लिए समझे जाते हैं, वे सत्य की उपलब्धि जो हुई है उसकी अभिव्यक्ति के लिए साधन खोजने के वर्ष हैं। और इसीलिए ठीक बारह वर्षों बाद महावीर सारी साधना का त्याग कर देते हैं। नहीं तो साधना का कभी त्याग नहीं किया जा सकता। सत्य की उपलब्धि की जो साधना है, उसका तो कभी त्याग किया ही नहीं जा सकता। क्योंकि सत्य की उपलब्धि की जो साधना है, वह ऐसी नहीं है कि सत्य उपलब्ध हो जाए तो व्यर्थ हो जाए।
जैसा मैंने सुबह कहा कि सत्य की उपलब्धि का मार्ग हैः अमूर्च्छित चेतना, अप्रमाद, विवेक, जागरण, अवेयरनेस। तो ऐसा नहीं है कि जिसको सत्य उपलब्ध हो जाए वह अवेयरनेस, जागरण, अप्रमाद का त्याग कर दे। यह असंभव है। क्योंकि जो सत्य उपलब्ध होगा, उस सत्य की उपलब्धि में जागरण अनिवार्य हिस्सा होगा। यानी वह सत्य भी जागी हुई चेतना का एक रूप ही होगा। इसलिए फिर ऐसा नहीं है कि जागरण छोड़ दिया जाए।
साधना सिर्फ वही छोड़ी जा सकती है, जो परम उपलब्धि की तरफ न हो, बल्कि मीन्स की तरह, साधन की तरह उपयोग की गई हो। जैसे आप यहां एक बैलगाड़ी में बैठ कर आएं, तो यहां उतर कर बैलगाड़ी को छोड़ देंगे, क्योंकि बैलगाड़ी कहीं पहुंचाने का साधन थी, इसके बाद व्यर्थ हो जाती है।
जो साधन कहीं जाकर व्यर्थ हो जाते हैं, वे साध्य के हिस्से नहीं होते, इसलिए व्यर्थ हो जाते हैं। लेकिन जो साधन अनिवार्यतः साध्य में विकसित होते हैं, वे कभी भी व्यर्थ नहीं होते हैं। विवेक कभी भी व्यर्थ नहीं होगा। सत्य की पूर्ण उपलब्धि पर विवेक व्यर्थ नहीं होगा, बल्कि विवेक पूर्ण होगा।
लेकिन महावीर बारह वर्ष की साधना के बाद सब छोड़ देते हैं! और यह भी उनके पीछे चलने वाले चिंतक कभी नहीं विचार कर पाए कि यह कैसी बात है! इसका कोई उत्तर भी नहीं दे पाए। न दे पाने का कारण था, क्योंकि वे समझ ही न सके कि यह केवल अनुभूति को अभिव्यक्त करने के साधन खोजने का इंतजाम था, आयोजन था। वे माध्यम मिल गए हैं और आयोजन व्यर्थ हो गया है। यानी आयोजन शाश्वत नहीं था, सामयिक था, जरूरत का था, इससे ज्यादा उसका मूल्य नहीं था।
क्या किया जीवन के समस्त तलों तक अपनी अनुभूति की प्रतिध्वनि, तरंग पैदा करने के लिए?
तीन बातें समझ लेनी जरूरी हैं। एक तो अस्तित्व का मूक अंग है--जैसे पत्थर है, पौधा है, पक्षी हैं, पशु हैं। यह अस्तित्व का मूक अंग है। इसमें

फर्क हैं, पत्थर में और पशु में बहुत। लेकिन यह एक विभाग है, जहां पशु और पत्थर के बीच का फासला है, लेकिन मूक है अंग। अगर इस मूक अंग से संबंधित होना हो किसी व्यक्ति को और अपने अनुभव को इस तक पहुंचाना हो, तो उसे परम जड़ अवस्था, परम मूक अवस्था में उतरना पड़ेगा, तभी उसका तालमेल, सामंजस्य इस लोक से हो सकेगा।
उदाहरण के लिए, अगर कोई व्यक्ति वृक्ष के पास बैठ कर परिपूर्ण मूक हो जाए, ऐसा जैसे कि जड़ हो गया, जैसे कि अब उसका शरीर कोई जीवित वस्तु नहीं है, और चेतना उसकी परिपूर्ण शांत होती चली जाए और उस जगह पहुंच जाए जहां एक शब्द नहीं है, तो इस परिपूर्ण मूक अवस्था में वृक्ष से संवाद संभव है। रामकृष्ण निरंतर ऐसी अवस्था में उतरते रहे, जिसे रामकृष्ण की मैं जड़ समाधि कहता हूं। जहां वे दिनों बीत जाते और बेहोश पड़े रहते। उस बेहोश अवस्था में वे चारों तरफ का जो बेहोश अस्तित्व का हिस्सा है, उससे संबंधित हो जाते।
एक दिन बहुत अदभुत घटना घटी। वे एक नाव से जा रहे हैं, नाव पर बैठे हैं, आंख उनकी बंद है और वे किस क्षण खो जाते हैं, कुछ पता नहीं। आंख बंद है और एकदम से वे चिल्लाए हैं कि मत मारो! मुझे क्यों मारते हो? मैंने क्या बिगाड़ा है? मुझे मारते क्यों हो?
चारों तरफ नाव पर बैठे उनके मित्र और भक्त हैरान हो गए हैं कि उन्हें कौन मार रहा है! और कोई उन्हें मारेगा कैसे! और मारने का कारण भी नहीं कुछ! और कोई मौजूद भी नहीं है! वे उन्हें हिलाते हैं और कहते हैं, क्या हुआ आपको? कहते हैं, कोई मुझे बहुत कोड़े मारता है। चादर उतारी है तो कोड़े के चिह्न हैं पीठ पर। तब तो और हैरानी हो गई! लोगों ने उनसे कहा, लेकिन हम सब मौजूद हैं, किसी ने आपको मारा नहीं! रामकृष्ण ने हाथ उठाया नदी के उस पार, कहा, देखते नहीं वे सब मिल कर मुझे मार रहे हैं।
एक आदमी को कुछ लोग मार रहे हैं। कोड़ों से मार रहे हैं। जब नाव उस तरफ लगी है तो जाकर हैरानी हुई है कि उस आदमी की पीठ पर, जहां कोड़ों के निशान हैं, वहीं रामकृष्ण की पीठ पर कोड़ों के निशान हैं।
यह कैसे संभव हुआ? यह किस अवस्था में संभव हुआ? और यह इतनी अभूतपूर्व घटना है और इतनी ज्यादा पुरानी भी नहीं और इतने आंखों देखे गवाह इसके थे। यह हुआ एक ऐसी चित्त की अवस्था में, जब मूक स्थिति में आस-पास के समस्त जगत से एक तादात्म्य हो जाता है।
और यह ध्यान रहे कि पूछा जा सकता है कि जिस आदमी को मारा गया था, उसी से तादात्म्य हुआ? जो मार रहे थे, उनसे नहीं? और वृक्ष थे, पौधे थे, सड़कों पर चलते लोग थे, नावों में बैठे लोग थे, उनसे नहीं?
तो भी थोड़ी समझने की बात है। आपके पैर में कांटा गड़ जाए तो आपकी चेतना
का तादात्म्य कांटे के बिंदु से हो जाता है। सारे शरीर को भूल जाती है चेतना और जहां कांटा गड़ा है, वहीं चेतना खड़ी हो जाती है। पैर में कांटा नहीं गड़ा था तो आपको पैर का पता भी नहीं था। और पैर में कांटा गड़ा है तो अब शरीर में किसी हिस्से का पता नहीं है, बस उसी का पता रह गया है।
तो जब विराट तादात्म्य भी उपलब्ध होता है तो भी जहां दुख है, जहां गड़न है, जहां पीड़ा है, बस वहां तादात्म्य सबसे ज्यादा स्पष्ट और प्रखर हो जाता है।
महावीर ने इस दिशा में मनुष्य-जाति के इतिहास में सबसे गहरे प्रयोग किए हैं। और आप जान कर हैरान होंगे कि महावीर की अहिंसा की जो बात निकली है, वह अहिंसा की बात किसी तत्व-विचार से नहीं निकली है, और न वह अहिंसा की बात इस बात से निकली है कि अहिंसक जो होगा, वह मोक्ष जाएगा। वह अहिंसा की बात निकली है नीचे के जगत से तादात्म्य से। और उस तादात्म्य में जो पीड़ा उन्होंने अनुभव की है नीचे के जगत की, उस पीड़ा की वजह से अहिंसा उनके जीवन का परम तत्व बन गया।
इसमें दो बातें समझने जैसी हैं। आमतौर से यही समझा जाता है कि जो अहिंसक है, वह मोक्ष की साधना कर रहा है। अहिंसा से जीएगा तो मोक्ष जाएगा। लेकिन ऐसे लोग मोक्ष चले गए हैं, जो अहिंसा से नहीं जीए हैं। न तो क्राइस्ट अहिंसक हैं, न रामकृष्ण, न मोहम्मद। ऐसे लोग मोक्ष चले गए हैं, जो अहिंसा से नहीं जीए हैं।

इसलिए जिनको यह ख्याल है कि अहिंसा से जीने से मोक्ष जाएंगे, वे महावीर को समझ नहीं पाए हैं। बात बिल्कुल ही दूसरी है। महावीर ने नीचे के, मनुष्य से नीचे का जो मूक जगत है, उससे जो तादात्म्य किया है और उसकी जो पीड़ा अनुभव की है, वह पीड़ा इतनी सघन है कि अब उसे और पीड़ा देने की कल्पना भी असंभव है। उसे जरा सी भी पीड़ा पहुंचानी महावीर के लिए असंभव है। इतनी असंभव किसी के लिए भी नहीं रही कभी भी, जितनी महावीर के लिए असंभव हो गई। और यह जिस अनुभव से आया है वह अनुभव था उस जगत को अपने प्राणों में जो अनुभव हुआ है, उसे विस्तीर्ण करने का प्रयोग था।
इस प्रयोग में अहिंसा निर्मित होने में दो बातें बनीं। एक तो यह कि जो पीड़ा अनुभव की, जो सफरिंग उन्होंने अनुभव की नीचे के जगत की, वह इतनी ज्यादा है कि उसमें जरा भी कोई बढ़ती करे किसी भी कारण से तो असह्य है। और दूसरी बात उन्होंने यह अनुभव की कि अगर व्यक्ति पूर्ण अहिंसक न हो जाए तो नीचे के जगत से तादात्म्य स्थापित करना बहुत मुश्किल है। यानी हम तादात्म्य उसी से स्थापित कर सकते हैं, जिसके प्रति हमारा समस्त हिंसक-भाव, आक्रामक-भाव विलीन हो गया हो और प्रेम-भाव का उदय हो गया हो। तादात्म्य सिर्फ उसी से संभव है। तो अगर मूक जगत से तादात्म्य स्थापित करना है तो अहिंसा शर्त भी है, नहीं तो वह तादात्म्य स्थापित नहीं हो सकता।
जैसे मैंने संत फ्रांसिस का नाम लिया। इस आदमी ने पशुओं के साथ संबंध स्थापित करने में बेजोड़ काम किया है, अदभुत काम किया है। तो इस बात की आंखों देखी गवाहियां हैं कि अगर संत फ्रांसिस नदी के किनारे खड़ा हो जाता तो सारी मछलियां तट पर इकट्ठी हो जातीं, सारी नदी खाली हो जाती! तट पर फ्रांसिस का बैठना कि सारी मछलियां... और न केवल मछलियां इकट्ठी हो जातीं बल्कि छलांग लगातीं फ्रांसिस को देखने के लिए। जिस वृक्ष के नीचे बैठ जाता, उस जंगल के सारे पक्षी उस वृक्ष पर आ जाते। न केवल वृक्ष पर आ जाते, उसकी गोद में उतरने लगते, उसके सिर पर बैठ जाते, उसके कंधों को घेर लेते। संत फ्रांसिस से जब भी किसी ने पूछा कि यह कैसे संभव है, तो उसने कहा,
और कोई कारण नहीं है, वे भलीभांति जानते हैं कि मेरे द्वारा उनके लिए कोई भी नुकसान कभी नहीं पहुंच सकता।
और पक्षियों के पास एक इंट्यूटिव फोर्स है, एक अंतःप्रज्ञा है, जो हमने बहुत पहले खो दी है। जान कर आप हैरान होंगे कि जापान में एक ऐसी चिड़िया है--साधारण चिड़िया है, जो गांव में आमतौर से होती है और दिन भर गांव में दिखाई पड़ती है--भूकंप आने के चौबीस घंटे पहले वह चिड़िया गांव छोड़ देती है! अभी हमने भूकंप की जांच-पड़ताल के जितने भी उपाय किए हैं, वे भी दो-ढाई घंटे से पहले खबर नहीं दे सकते, और वह खबर भी बहुत विश्वसनीय नहीं होती। लेकिन वह चिड़िया चौबीस घंटे पहले एकदम गांव छोड़ देती है! उस चिड़िया का गांव में न दिखाई पड़ना और पक्का है कि चौबीस घंटे के भीतर भूकंप आ जाएगा। बड़ी कठिनाई की बात रही कि वह चिड़िया कैसे जान पाती है! क्योंकि चिड़िया के पास जानने के कोई यंत्र नहीं हैं, कोई शास्त्र नहीं है, कोई विधि नहीं है। ऊपर उत्तरी ध्रुव पर रहने वाले सैकड़ों पक्षी हैं, जो प्रतिवर्ष सर्दी
के दिनों में जब बर्फ पड़ेगी तो आकर यूरोप के समुद्र के तटों पर आएंगे। बर्फ जब पड़नी शुरू हो जाती है, तब अगर वे यात्रा शुरू करें तो उनका आना बहुत मुश्किल है, इसलिए बर्फ गिरने के महीने भर पहले वे पक्षी उड़ान शुरू कर देते हैं। और यह बड़े आश्चर्य की बात है कि वे जिस दिन उड़ान शुरू करते हैं, उसके ठीक एक महीने बाद बर्फ गिरनी शुरू होती है। फिर वे हजारों मील का फासला तय करके यूरोप के समुद्र-तटों पर आते हैं। और बर्फ गिरनी बंद हो इसके महीने भर पहले, वे वापस यात्रा शुरू कर देते हैं! वे कभी नहीं भटकते हैं। यह हजारों मील के रास्ते पर वे कभी नहीं भटकते हैं! वे जहां से आते हैं, ठीक अपनी जगह वापस लौट जाते हैं!
पक्षियों के और पशुओं के जगत में जिन लोगों ने और प्रवेश किया है, वे बहुत हैरान हुए हैं कि उनके पास एक अंतःप्रज्ञा है, एक इंट्यूशन है, जो बिना बुद्धि के उन्हें चीजों को साफ कर देती है। इसलिए वे मित्र के पास सुरक्षित हो जाते हैं और शत्रु के पास असुरक्षित हो जाते हैं--इसे कहने की जरूरत नहीं होती। यह जो हमारे हृदय में भाव की धारा उठती है, प्रेम की या

घृणा की, उसके स्पंदन काफी हैं कि वे उन्हें स्पर्श कर लेते हैं और वे हमसे सचेत हो जाते हैं।
महावीर ने अहिंसा के तत्व पर जो इतना बल दिया है, उस बल का और कोई कारण नहीं है। एक तो कारण यह है कि नीचे के मूक जगत से पूर्ण अहिंसक वृत्ति के बिना संबंधित होना असंभव है। और दूसरा कारण यह है कि जब उससे संबंधित हो जाएं तो उस मूक जगत की इतनी पीड़ाओं का बोध होता है, इतनी अंतहीन अनंत पीड़ाएं हैं उसकी कि उसमें हम किसी भी भांति थोड़ा भार हलका कर सकें तो शुभ है। भार न बढ़े इसकी भावना भी पैदा हो जानी स्वाभाविक है।
बुद्ध भी इस बात को नहीं समझे। गौतम बुद्ध का भी सत्य के अनुभव को संवादित करने का जो प्रयोग है, वह मनुष्यों से ज्यादा गहराई पर नहीं गया। वह मनुष्य से ज्यादा गहराई पर नहीं गया। असल में सच बात यह है कि न जीसस ने, न बुद्ध ने, न जरथुस्त्र ने, न मोहम्मद ने, किसी ने भी मनुष्य-तल से नीचे जो एक मूक जगत का फैलाव है, जहां से हम आ रहे हैं, जहां हम कभी थे, जिससे हम पार हो गए हैं... ।
महावीर की दृष्टि यह है कि जहां हम कभी थे और जहां से हम पार हो गए हैं,
उस जगत के प्रति भी हमारा एक अनिवार्य कर्तव्य है कि हम उसे पार होने का रास्ता बता दें। और उसे खबर पहुंचा दें कि वह कैसे पार हो सकता है।
और मेरी समझ यह है कि महावीर ने जितने पशुओं और जितने पौधों की आत्माओं को विकसित किया है, उतना इस जगत में किसी दूसरे आदमी ने कभी नहीं किया है। यानी आज पृथ्वी पर जो मनुष्य हैं, उनमें से बहुत से मनुष्य सिर्फ इसलिए मनुष्य हैं कि उनकी पशु-योनि में या उनकी पौधे की योनि में या उनके पत्थर होने में महावीर जैसे किसी व्यक्ति ने संदेश भेजे और उन्हें बुलावा भेज दिया था। इस बात की भी खोज-बीन की जा सकती है कि कितने लोगों को उस तरह की प्रेरणा उपलब्ध हुई और वे आगे आए।
यह इतना अदभुत कार्य है कि अकेले इस कार्य की वजह से महावीर मनुष्य के मनस और जीवन के मनस के बड़े से बड़े ज्ञाता बन जाते हैं। यानी अगर उन्होंने अकेले सिर्फ एक ही यह काम किया होता तो भी मनुष्य-जाति के मुक्तिदाताओं में, बल्कि जीवन-शक्ति के मुक्तिदाताओं में उनका स्मरण चिरस्मरणीय होगा-- अगर इतना ही काम सिर्फ किया होता।
यह काम बड़ा कठिन है। क्योंकि नीचे के तल पर तादात्म्य स्थापित करना अत्यंत दुरूह बात है। उसके दो कारण हैं। हमसे जो ऊपर है, उससे तादात्म्य स्थापित करना हमेशा सरल है। क्योंकि पहली तो बात यह है कि हमारे अहंकार को तृप्ति मिलती है उसके तादात्म्य से। जो हमसे ऊपर है, उससे तादात्म्य स्थापित करना बहुत सरल है। यह कहना बहुत सरल है कि मैं परमात्मा हूं, लेकिन यह कहना बहुत कठिन है कि मैं पशु हूं।
चूंकि नीचे अहंकार को चोट लगती है, ऊपर अहंकार को तृप्ति मिलती है। ऊपर तादात्म्य स्थापित कर लेना इसलिए भी आसान है कि हम सब ऊपर जाना चाहते हैं, हमारी गहरी आकांक्षा ऊपर जाने की है। तो हमारे चित्त की ऊपर की तरफ उन्मुखता होती है, खुलाव होता है। जैसे नदी समुद्र की तरफ भाग रही है। समुद्र की तरफ भागना बहुत आसान है, क्योंकि ढाल उस तरफ है, उन्मुखता उस तरफ है। लेकिन कोई नदी, गंगा गंगोत्री की तरफ जाने का विचार करे तो बड़ी मुश्किल में पड़ जाए, क्योंकि वहां चढ़ाव है और वहां सागर भी नहीं है। महावीर की यह चेष्टा कि पीछे के लोक, मनुष्य से पीछे की स्थितियों की तरफ लौटना और वहां जो जाना गया है, उसकी तरंगें पहुंचा देना, बड़ा कठिन है। एक तो पीछे का हमें कभी ख्याल ही नहीं आता। ध्यान रहे, पीछे का हमें कभी ख्याल नहीं आता। हमें सदा आगे का ख्याल आता है। जो हम रह चुके हैं, वह हम भूल चुके होते हैं, उससे कोई संबंध भी नहीं रह जाता।
और भूलने का भी कारण है, क्योंकि जो अपमानजनक है, उसे हम स्मरण नहीं रखना चाहते हैं। असल में अतीत जन्मों को भूल जाने का जो कारण है गहरे से गहरा, वह यही है कि हम उन्हें स्मरण रखना नहीं चाहते हैं। क्योंकि हम नीचे से, नीचे से आ रहे हैं, उसको हम भूल जाना चाहते हैं।
एक गरीब आदमी है, वह अमीर हो जाए। तो सबसे पहला काम अमीर होकर जो वह करना चाहता है, वह सब स्मृति के सब चिह्न मिटा देना चाहता है, जो उसकी गरीबी को कभी भी बता सकें कि यह कभी गरीब था। यहां तक कि गरीबी के दिनों

में जिनसे उसकी दोस्ती थी, उनसे वह मिलने से कतराने लगता है, क्योंकि उनकी दोस्ती, उनकी पहचान सबको खबर देती है कि आदमी कभी गरीब था। वह अब नए संबंध बनाता है, नई दोस्तियां कायम करता है। वह नीचे को भूल जाता है।
तो जब अमीर आदमी गरीब मित्रों तक को छोड़ सकता है तो पीछे की पशु- योनियां, पक्षियों की योनियां, पौधों की योनियां, पत्थरों की योनियां जो रही हों, उन्हें आकर भूल जाना चाहे, तो आश्चर्य नहीं। फिर उनसे तादात्म्य स्थापित करने की कौन फिक्र करे?
महावीर ने पहली बार चेष्टा की है। और चेष्टा की जो विधि है, उसको भी थोड़ा समझ लेना जरूरी है। अगर किसी भी व्यक्ति को पीछे की अविकसित स्थितियों से तादात्म्य बनाना है तो उसे अपनी चेतना को, अपने व्यक्तित्व को उन्हीं तलों पर लाना पड़ता है, जिन तलों पर वे चेतनाएं हैं। जिन तलों पर वे चेतनाएं हैं, उन्हीं तलों पर लाना पड़ता है।
यह जान कर आप हैरान होंगे कि महावीर का चिह्न सिंह है। और उसका कारण शायद आपको कभी भी ख्याल में नहीं आया होगा, और न आ सकता है। और उसका कुल कारण इतना है कि पिछली चेतनाओं से तादात्म्य स्थापित करने में महावीर को सबसे ज्यादा सरलता सिंह से तादात्म्य करने में मिली। कोई और कारण नहीं है। उनका व्यक्तित्व भी सिंह जैसा है। वे पिछले जन्मों में सिंह रह चुके हैं। और इसलिए लौट कर उससे तादात्म्य बनाना उनके लिए एकदम सरल हो गया। यानी सच तो ऐसा है कि जब उनका सिंह से तादात्म्य हुआ तो उन्होंने पूरी तरह जाना होगा कि मैं सिंह हूं। और यह उनका प्रतीक बन गया, चिह्न बन गया।
और उनके व्यक्तित्व में वे बातें भी हैं, जो सिंह में हों। सिंह के व्यक्तित्व की अपनी कुछ बातें हैं--जैसे झुंड में नहीं चलेगा, भीड़ में नहीं चलेगा; अकेला, एकदम अकेला खड़ा रहेगा। महावीर में वैसा गुण है। सिंह में जो आक्रमण है, जीत का, विजय का जो अदम्य भाव है, वह महावीर में है। सिंह में जैसा अभय, फियरलेसनेस है, वह महावीर की साधना का प्रथम सूत्र है। यह चिह्न आकस्मिक नहीं है।
कोई चिह्न कभी आकस्मिक नहीं है। उस चिह्न के पीछे बहुत साइकिक मामला है। पीछे जुंग ने बहुत काम किया इस संबंध में। और उसने आर्च टाइप खोज निकाले। और उसने इस बात की खोज की कि प्रत्येक व्यक्ति के मनस में कुछ चिह्न हैं, जो उस व्यक्तित्व के चिह्न हैं। और अगर उन चिह्नों को समझा जा सके तो हम उस व्यक्तित्व को उघाड़ने में बड़े सफल हो सकते हैं। यह जो महावीर के नीचे सिंह बना हुआ है, यह उस व्यक्तित्व की पहचान की कुंजी है।
पीछे उतर कर तादात्म्य स्थापित करना, चेतना को निरंतर-निरंतर शिथिल, शिथिल और शिथिल, और चेतना को उस स्थिति में ले आना है जहां चेतना में कोई गति नहीं रह जाती, जहां चेतना बिल्कुल शिथिल, शांत और विराम को उपलब्ध हो जाती है, और शरीर बिल्कुल जड़ अवस्था को। शरीर में कोई कंपन नहीं रह जाता और चेतना बिल्कुल ही शिथिल, शून्य हो जाती है। शरीर जब जड़ हो और चेतना शिथिल, शून्य हो तब किसी भी वृक्ष, पशु, पौधे से तादात्म्य स्थापित किया जा सकता है।
और एक मजे की बात है कि अगर वृक्षों से तादात्म्य स्थापित करना हो तो किसी खास वृक्ष से तादात्म्य स्थापित करने की जरूरत नहीं है। एक वृक्षों की पूरी जाति से एक साथ तादात्म्य स्थापित हो सकता है। क्योंकि वृक्षों के पास व्यक्तित्व अभी पैदा नहीं हुआ, अभी इंडिविजुअलटी पैदा नहीं हुई, अभी वे स्पेसीज की तरह जीते हैं।
यानी जैसे कि गुलाब के पौधे से तादात्म्य स्थापित करने का मतलब है, समस्त गुलाबों से तादात्म्य स्थापित हो जाना। क्योंकि किसी पौधे के पास अभी व्यक्ति का भाव नहीं है, अभी अहंकार और अस्मिता नहीं है।
लेकिन मनुष्यों से अगर तादात्म्य स्थापित करना हो तो बहुत कठिन बात है। हां, आदिवासी जातियों से इकट्ठा तादात्म्य स्थापित अभी भी हो सकता है। क्योंकि वे कबीले की तरह जीते हैं। उनका कोई व्यक्ति नहीं है, एक-एक व्यक्ति नहीं है। लेकिन जितना सभ्य समाज होगा, जितना सुसंस्कृत होगा, उतना मुश्किल हो जाएगा।
जैसे अगर बर्ट्रेंड रसेल से तादात्म्य स्थापित करना हो तो वह सीधा एक व्यक्ति से तादात्म्य स्थापित करना है। अंग्रेज जाति से तादात्म्य

स्थापित करने में और किसी से भी तादात्म्य स्थापित हो जाए, बर्ट्रेंड रसेल छूट जाएगा बाहर। उसके पास अपना व्यक्तित्व है।
जितने नीचे हम उतरते हैं, उतना व्यक्तित्व नहीं है, इसलिए एक अर्थ में तादात्म्य पूरी जाति से होता है। और यह जो तादात्म्य है, इस तादात्म्य की स्थिति में जो भी भाव संकल्प किया जाए, वह प्रतिध्वनित होकर उन सारे लोगों तक व्याप्त हो जाता है। जैसे गुलाब के पौधों की जाति से तादात्म्य, आइडेंटिटी स्थापित की गई हो तो उस क्षण में जो भी भाव-तरंग पैदा की जाए, वह समस्त गुलाबों तक संक्रमित हो जाती है।
ऐसी अवस्था में महावीर ने बहुत समय गुजारा। और ऐसी अवस्था को उपलब्ध करने में उन्हें बहुत सी बातें करनी पड़ीं, जो कि पीछे समझाने वालों को बहुत मुश्किल होती चली गईं। जैसे महावीर खड़े हैं और कोई उनके कानों में खीले ठोंक दे, तो महावीर को पता नहीं चलता। पता न चलने का कारण यह है कि जैसे हम पत्थर में खीला ठोंक दें, तो पत्थर को पता चलता है? पत्थर को पता नहीं चलता। क्योंकि चेतना उस जगह है, जहां ऐसी चीजें पता नहीं चलतीं। सब करीब-करीब अचेतन है।
तो महावीर के कान में जब खीले ठोंके जा रहे हैं तो उनको पता नहीं चलता। पता न चलने का कारण यह है कि उस समय वे वैसी चीजों से तादात्म्य कर रहे हैं, जिनको पता नहीं चल सकता खीले ठोंके जाने से।
आप मेरा मतलब समझ रहे हैं? जिस प्राणी-जगत से वे संबंध स्थापित किए हुए खड़े हैं, उस प्राणी को कान में खीला ठोंके जाने से पता नहीं चलेगा, इसलिए महावीर को भी अभी पता नहीं चल सकता है। अगर महावीर का कोई इस वक्त हाथ भी काट लेगा तो उन्हें पता नहीं चलेगा, जैसे कोई वृक्ष की एक शाखा को काट ले। यह इस बात पर निर्भर करता है कि उनका तादात्म्य क्या है।
हम सब जानते हैं कि लोग अंगारों पर कूद सकते हैं। तादात्म्य किससे है,
इस पर सब बात निर्भर करती है। अगर उस व्यक्ति ने किसी देवता से तादात्म्य किया हुआ है, तो वह अंगारे पर कूद जाए, जलेगा नहीं; क्योंकि वह देवता नहीं जल सकता है। जो सीक्रेट है, वह कुल इतना है, वह आदमी तो फौरन जल जाएगा, लेकिन अगर उसने अपना तादात्म्य किसी देवता से किया हुआ है, उसके साथ अपने को एक मान लिया है और उसकी धुन में नाचता हुआ चला जा रहा है, तो उसके नीचे अंगारों के ढेर लगा देने पर भी उसके पांव पर फफोला भी नहीं आएगा। क्योंकि जिससे उसका तादात्म्य है, चेतना उस वक्त वैसा ही व्यवहार करना शुरू कर देती है।
हमारे तादात्म्य पर निर्भर करता है कि हम कैसा व्यवहार करेंगे। ये जो
हम मनुष्य हैं अभी, यह भी गहरे में हमारा तादात्म्य ही है। इसलिए मनुष्य को कैसे व्यवहार करना चाहिए, वैसा हम व्यवहार करते हैं। गहरे में यह भी हमारी मनोभूमि की पकड़ है कि मैं मनुष्य हूं, तो फिर हम मनुष्य जैसा व्यवहार कर रहे हैं।
इस संबंध में बहुत सी घटनाएं ख्याल में मुझे आती हैं। महावीर के तो जीवन में बहुत जगह हैं जहां समझना मुश्किल हो जाता है। नहीं समझने की वजह से हम कहते हैं आदमी क्षमावान है, अक्रोधी है, क्रोध नहीं करता, क्षमा... । यह सब ठीक है--क्रोध न करे, क्षमा करे। लेकिन कान में खीला ठुंके और पता न चले, यह अकेले अक्रोधी और क्षमावान को नहीं होने वाला है। कितना ही अक्रोधी हो, अक्रोध अलग बात है, लेकिन कान में खीला ठुंके और पता न चले, यह बिल्कुल अलग बात है। यह तभी हो सकता है जब महावीर बिल्कुल चट्टान की तरह हों उस हालत में।
सुकरात एक रात खो गया। घर के लोग रात भर परेशान रहे। सुबह मित्र खोजने निकले। तो वह एक वृक्ष के नीचे, जहां बर्फ पड़ी है, सब बर्फ से ढंका हुआ है-- उसके घुटने-घुटने तक बर्फ में डूबा हुआ है! वह वृक्ष से टिका हुआ खड़ा है! उसकी आंखें बंद हैं! और वह बिल्कुल ठंडा है, सिर्फ धीमी सी सांस चल रही है! तो उसे हिलाया है। बामुश्किल वह होश में आया है। उसके हाथ-पैर पर मालिश की है। उसे गर्म किया है। कपड़े पहनाए हैं। फिर जब वह थोड़ा होश में आया है, उससे पूछा कि तुम क्या कर रहे थे?
उसने कहा कि बड़ी मुश्किल हो गई। रात जब मैं खड़ा हुआ तो सामने कुछ तारे
थे, मैं उनको देख रहा था। और कब मेरा तारों से तादात्म्य हो गया, मुझे याद

नहीं। और कब मैंने ऐसा जाना कि मैं तारा हूं, मुझे कुछ पता नहीं। और तारे तो ठंडे होते ही हैं, इसलिए मैं ठंडा होता चला गया। और चूंकि मैं तारा समझ रहा था अपने को, इसलिए कोई बात ही नहीं उठी। घर लौटने का सवाल नहीं था। वह तो तुमने जब मुझे हिलाया है, तब मैं जैसे एक दूसरे लोक से वापस लौटा हूं। हम जहां तादात्म्य कर लेते हैं, वही हो जाते हैं। तादात्म्य की कला बड़ी अदभुत बात है। और जरा सी चूक हो जाए तादात्म्य में तो सब गड़बड़ हो जाए। महावीर पहला जो अभिव्यक्ति का उपाय खोज रहे हैं, वह है भूत, जड़, मूक जगत; उस सब में तरंगें पहुंचाने का। और ये तरंगें अब तो वैज्ञानिक ढंग से भी अनुभव की जा सकती हैं।
तीर्थ और मंदिर जिस दिन पहली बार खड़े हुए, उनके खड़े होने का कारण बहुत
ही अदभुत था, वह यही था। अगर महावीर जैसा व्यक्ति इस कमरे में रह जाए कुछ दिन तो इस कमरे से उसका तादात्म्य हो जाता है। और इस कमरे के रग-रग पर, कण-कण पर उसकी तरंगें अंकित हो जाती हैं। फिर इस कमरे में बैठना किसी दूसरे के लिए बड़ा सार्थक हो सकता है, बड़ा सहयोगी हो सकता है।
इस कमरे में अगर एक आदमी ने किसी की हत्या कर दी हो या आत्महत्या कर ली हो, तो आत्महत्या के क्षण में इतनी तीव्र तरंगों का विस्फोट होता है-- क्योंकि आदमी मरता है, टूटता है--इतनी तीव्र तरंगों का विस्फोट होता है कि सैकड़ों वर्षों तक इस कमरे की दीवाल पर उसकी प्रतिध्वनियां अंकित रह जाती हैं।
और यह हो सकता है, एक रात आप इस कमरे में आकर सोएं और रात आप एक सपना देखें आत्महत्या करने का। वह आपका सपना नहीं है। वह सपना सिर्फ इस कमरे की प्रतिध्वनियों का आपके चित्त पर प्रभाव है। और यह भी हो सकता है कि इस कमरे में रहने से आप किसी दिन आत्महत्या कर गुजरें। यह भी बहुत कठिन नहीं है।
तो इससे उलटा भी हो सकता है कि अगर महावीर या मीरा जैसा कोई व्यक्ति
इस कमरे में बैठ कर एक तरंगों में जीया हो तो यह कमरा उसकी तरंगों से भर जाएगा। इसके कण-कण में... क्योंकि उधर जो कण दिखाई पड़ रहा है हमें मिट्टी का और इधर जो हममें कण है, उनमें कोई बुनियादी भेद नहीं है। वे सब एक से ही विद्युत के कण हैं। और सब विद्युत के कण तरंगों को पकड़ सकते हैं और तरंगों को दे सकते हैं। कमजोर आदमी को वे तरंगें दे देते हैं और शक्तिशाली आदमी से उनको तरंगें लेनी पड़ती हैं।
मैंने परसों बोधिवृक्ष की बात की थी। इस वृक्ष को इतना आदर देने का और
तो कोई भी कारण नहीं है। वृक्ष ही है, बुद्ध उसके नीचे बैठ कर अगर निर्वाण को भी उपलब्ध हुए तो क्या मतलब है? लेकिन मतलब है। मतलब निश्चित है। इस वृक्ष के नीचे निर्वाण की घटना घटी, तो उस क्षण में इतनी तरंगें बुद्ध के चारों तरफ विस्फोट की तरह फैली हैं कि यह वृक्ष उसका सबसे बड़ा गवाह है। और इस वृक्ष के कण-कण में उसकी तरंगों का अंकन है। और आज भी जो उसकी सीक्रेट साइंस जानता है, वह उस वृक्ष के नीचे बैठ कर आज भी उन तरंगों को वापस अपने में बुला ले सकता है।
तो आकस्मिक नहीं था कि हजार-हजार, दो-दो हजार, तीन-तीन हजार मील का बौद्ध भिक्षु चक्कर लगा कर उस वृक्ष के पास, दो क्षण उस वृक्ष के पैरों में पड़े रहने को आते रहे। आकस्मिक नहीं है। पीछे तो सारी की सारी विज्ञान की बात है। सम्मेद शिखर है या गिरनार है या काबा है या काशी है या जेरुसलम है-- उन सबके साथ कुछ संकेत और कुछ गहरी लिपियों में कुछ खुदा हुआ है उनकी तरंगों में।
धीरे-धीरे नष्ट हुआ है। धीरे-धीरे नष्ट हुआ है। करीब-करीब इस समय पृथ्वी पर कोई भी जीवित तीर्थ नहीं है--जीवित तीर्थ! सब तीर्थ मर गए हैं। क्योंकि उनकी सब तरंगें नष्ट हो गई हैं या इतनी तरंगों का उनके ऊपर और आघात हो गया है, इतने लोगों के आने-जाने का, कि वे करीब-करीब कट गई हैं और समाप्त हो गई हैं। लेकिन इस बात में तो अर्थ था ही, इस बात में तो अर्थ है ही। जड़ से जड़ वस्तु पर भी तरंगें क्रांतिकारी परिवर्तन ला सकती हैं।
अभी एक नवीनतम प्रयोग बहुत हैरानी का है। वह प्रयोग यह है कि जैसे- जैसे हम अणु को तोड़ कर और परमाणुओं को तोड़ कर इलेक्ट्रांस की दुनिया में

पहुंचे हैं, तो वहां जाकर एक नया अनुभव आया है, जो बहुत घबड़ाने वाला है और जिसने विज्ञान की सारी व्यवस्था उलट दी है।
वह अनुभव यह है कि अगर इलेक्ट्रांस को बहुत खुर्दबीनों से आब्जर्व किया जाए, निरीक्षण किया जाए, तो जैसा वह अनिरीक्षित व्यवहार करता है, निरीक्षण करने पर उसका व्यवहार बदल जाता है, वह वैसा व्यवहार नहीं करता! कोई उसे नहीं देख रहा है तो वह एक ढंग से गति करता है और खुर्दबीन से देखने पर वह डगमगा जाता है और गति बदल देता है!
अब यह बड़ी हैरानी की बात है कि पदार्थ का अंतिम अणु भी मनुष्य की आंख
और आब्जर्वेशन से प्रभावित होता है। ऐसे ही जैसे आप अकेले सड़क पर चले जा रहे हैं, कोई नहीं है सड़क पर, फिर अचानक किसी खिड़की में से कोई झांकता है और आप बदल गए। आप दूसरी तरह चलने लगे। अभी जिस शान से आप चल रहे थे, वैसा नहीं चल रहे हैं। अभी गुनगुना रहे थे, गुनगुनाना बंद हो गया।
अपने बाथरूम में आप स्नान कर रहे हैं। गुनगुना रहे हैं या नाच रहे हैं
या आईने के सामने मुंह बना रहे हैं। और अचानक आपको पता चले कि बगल के छेद से कोई झांकता है, आप दूसरे आदमी हो गए।
लेकिन आब्जर्वेशन आदमी को फर्क ला दे, यह समझ में आता है; लेकिन अणु भी, परमाणु भी निरीक्षण से डगमगा जाएं, तो बड़ी हैरानी की बात है। और इस बात की खबर देते हैं कि हम कुछ गलती में हैं। वहां भी प्राण, वहां भी आत्मा, वहां भी देखने से भयभीत होने वाला, देखने से सचेत हो जाने वाला, देखने से बदलने वाला मौजूद है।
इन परमाणुओं तक भी महावीर ने खबर पहुंचाने की कोशिश की है। इस खबर पहुंचाने के लिए ही जैसा मैंने कहा, पहले तो वे अनेक बार ऐसी अवस्थाओं में पाए गए, जहां हम कहेंगे कि वे जीवित हैं या मृत हैं, कहना मुश्किल है। और ये अवस्थाएं लाने के लिए उन्हें कुछ और प्रयोग करने पड़े, वे भी हमें समझ लेने चाहिए।
महावीर का चार-चार महीने तक, पांच-पांच महीने तक भूखा रह जाना बड़ा असाधारण है। कुछ न खाना और शरीर को कोई क्षीणता न हो, शरीर को कोई नुकसान न पहुंचे, शरीर वैसा का वैसा ही बना रहे!
शायद ही आपने कभी सोचा हो या जो जैन मुनि और साधु-संन्यासी निरंतर उपवास की बात करते हैं, उनमें से--ढाई हजार वर्ष होते हैं महावीर को हुए-- एक भी यह नहीं बता सकता कि तुम चार महीने, पांच महीने का उपवास करो तो तुम्हारी क्या गति होगी! यह महावीर को क्यों नहीं हो रहा है ऐसा? चार-चार, पांच-पांच महीने तक यह आदमी नहीं खा रहा है, बारह वर्ष में मुश्किल से जोड़-तोड़ कर एकाध वर्ष भोजन किया है न! यानी बारह दिन के बाद एक दिन तो निश्चित ही, कभी दो दिन, कभी दो महीने बाद, कभी-कभी--इस तरह चलाया है।
लेकिन इसके शरीर को कोई क्षीणता उपलब्ध नहीं हुई है। इसका शरीर परिपूर्ण स्वस्थ है--असाधारण रूप से स्वस्थ है, असाधारण रूप से सुंदर है। क्या कारण है?
अब मेरी अपनी जो दृष्टि है, जैसा मैं देख पाता हूं, वह यह है कि जो व्यक्ति नीचे के तल पर पदार्थ के परमाणुओं, पौधों के परमाणुओं, पक्षियों के परमाणुओं को इतना बड़ा दान दे रहा है, अगर ये परमाणु उसे प्रत्युत्तर देते हों तो आश्चर्य नहीं। यह प्रत्युत्तर है। यह परमाणु जगत का प्रत्युत्तर है। जो आदमी पास में पड़े हुए पत्थर की आत्मा को भी जगाने का उपाय कर रहा हो, जो पास में लगे वृक्ष की चेतना को भी जगाने के लिए कंपन भेज रहा हो, अगर ऐसे व्यक्ति को सारे पदार्थ-जगत से प्रत्युत्तर में बहुत सी शक्तियां मिलती हों तो आश्चर्यजनक नहीं है। और उसे वे शक्तियां मिल रही हैं।
आखिर वृक्ष को हम भोजन बना कर लेते हैं। काटते हैं, पीटते हैं, आग पर पकाते हैं। फिर वह जो वृक्ष है, वह जो वृक्ष का पत्ता है या फल है, इस योग्य होता है कि हम उसे पचा सकें और वह हमारा खून और हड्डी बन जाए। बनता तो वृक्ष ही है। और वृक्ष क्या है? मिट्टी ही है। और मिट्टी क्या है? सूरज की किरणें ही हैं। वे सब चीजें मिल कर एक फल में आती हैं, फल हम लेते हैं, हमारे शरीर में पचता है और पहुंच जाता है।

आज नहीं कल विज्ञान इस बात को खोज लेगा कि जो किरणों को पीकर वृक्ष का
फल डी विटामिन लेता है, क्या जरूरत है कि इतनी लंबी यात्रा की जाए कि हम फल को लें और फिर डी विटामिन हमें मिले। सूरज की किरण से सीधा क्यों न मिले! या सूरज की किरण को हम एक छोटे कैप्सूल में क्यों न बंद करें और वह आदमी को दे दें। ताकि वह पचास फल खाने में जितना डी विटामिन इकट्ठा कर पाए, एक कैप्सूल उसको पहुंचा दे।
आज नहीं कल विज्ञान उस दिशा में गति करता है। लेकिन विज्ञान की गति और तरह की है, वह छीन-झपट की है। वह छीन-झपट की है। महावीर की भी एक तरह की गति है। और वह गति भी किसी दिन खुल जाएगी। वह गति भी किसी दिन स्पष्ट हो सकेगी कि क्या यह संभव नहीं है--आखिर पानी ही तो हमें बचाता है, हवा बचाती है, सूरज बचाता है, यही सब तो हमारा भोजन बनते हैं--क्या यह संभव नहीं है कि बहुत गहरे प्रतिदान में जो आदमी इन सबके लिए एकात्म साध रहा हो, उसको इनसे भी प्रत्युत्तर में कुछ मिलता हो, जो हमें कभी नहीं मिलता, या मिलता है तो बहुत श्रम से मिलता है!
इस तरह की दो घटनाएं और घटी हैं। अभी यूरोप में एक औरत जिंदा है, जिसने तीस साल से भोजन नहीं किया है! और वह परिपूर्ण स्वस्थ है! और मजे की बात यह है कि वह वैसी ही सुंदर है और वैसी ही स्वस्थ है, जैसे महावीर रहे होंगे! और तीस साल से उसने कुछ भी नहीं लिया, उसके शरीर में नहीं गया। उसके सब एक्स-रे हो चुके हैं, सब जांच-पड़ताल हो चुकी है, उसका पेट सदा से खाली है। तीस साल से उसने कुछ भी नहीं लिया। लेकिन उसका एक छटांक भर वजन भी नहीं गिरता है नीचे! वह परिपूर्ण स्वस्थ है! न केवल वजन नहीं गिरता है बल्कि एक और अदभुत घटना है, जो उसके साथ चलती है।
ईसाइयों में, ईसाई फकीरों में एक तादात्म्य का प्रयोग है, जो स्टिगमेटा कहलाता है। जैसे जीसस को जिस दिन सूली लगी, शुक्रवार के दिन, तो उनके दोनों हाथों पर खीले ठोंके गए। तो जो ईसाई फकीर, जो ईसाई साधक जीसस से तादात्म्य कर लेते हैं, शुक्रवार के दिन वे ऐसा हाथ फैला कर बैठ जाते हैं, और हजारों लोगों के सामने उनके हाथों में अचानक छेद हो जाते हैं और खून बहने लगता है। वह जीसस से तादात्म्य के आधार पर। यानी उस क्षण में वे भूल गए हैं कि मैं हूं, वे जीसस हैं। शुक्रवार का दिन आ गया, और सूली पर वे लटका दिए गए, उनके हाथ फैल जाते हैं। हजारों लोग देख रहे हैं, उनकी गद्दी फटती है और खून बहना शुरू हो जाता है।
इस औरत को, तीस साल से खाना तो लिया नहीं है इसने और तीस साल से प्रति शुक्रवार को सेरों खून इसके हाथ से बह रहा है! दूसरे दिन हाथ ठीक हो जाता है और सब घाव विलीन हो जाते हैं! और उसके वजन में कमी नहीं आती! तो पश्चिम में घटना घटे तो वहां तो बहुत वैज्ञानिक चिंतन चलता है किसी बात पर--बहुत चिंतन, लेकिन उनकी पकड़ में अब तक नहीं आ सका कि बात क्या हो सकती है। बंगाल में एक औरत थी, उसे मरे कुछ दिन हुए हैं। वह कोई चालीस वर्ष, पैंतालीस वर्ष तक उसने कोई भोजन नहीं किया। बहुत स्वस्थ वह नहीं थी, पर साधारण स्वस्थ थी। पैंतालीस वर्ष भोजन न करने से कोई असुविधा नहीं आ गई थी। चलती-फिरती थी, बूढ़ी औरत थी, सब ठीक था।
उसका पति जिस दिन मरा, उस दिन उसने भोजन नहीं लिया। और घर के लोगों ने कहा, समझाया-बुझाया, भोजन ले लो। उसने कहा, मैं पति के मरने के बाद भोजन कैसे ले सकती हूं! तो घर के लोगों ने और मित्रों ने भी कहा कि ठीक है, एक-दो दिन रहने दो। ठीक भी कहती है, वह कैसे ले सकती है! दो दिन बीत गए, तब फिर लोगों ने कहा। तो उसने कहा कि अब तो पति के मरने के बाद ही सब दिन हैं। यानी अब इससे क्या फर्क पड़ता है कि एक दिन कि दो दिन कि तीन दिन, अब तो बाद में ही सब हैं। और जब उस दिन राजी हो गए थे तो अब तुम राजी ही रहो। अब बाद में मैं कैसे भोजन ले सकती हूं? अब बात खतम हो गई है।
वह पैंतालीस साल जिंदा रही। उसने कोई भोजन नहीं लिया। लेकिन वैज्ञानिक उसकी भी चिंतना करते रहे, विचार करते रहे, उनको साफ नहीं हो सका कि बात क्या है।
मेरी अपनी समझ यह है, और महावीर से ही वह समझ मेरे ख्याल में आती है... ।

प्रश्नः जोधपुर के पास ऐसी ही एक औरत है।

हां, हो सकती है। हो सकती है, कोई कठिनाई नहीं है। सिर्फ सीक्रेट हमारे ख्याल में नहीं है। किसी न किसी तरह से परमाणुओं का जगत, सूक्ष्म जगत, सीधा भोजन देता हो, इसके अतिरिक्त और कोई बात नहीं है। वह कैसे देता हो, किस ढंग से देता हो, वे दूसरी बातें हैं। लेकिन सूक्ष्म जगत से सीधा भोजन मिलता हो, और बीच में माध्यम न बनाना पड़ता हो।
महावीर को ऐसा भोजन मिला है। और इसलिए महावीर के पीछे जो भूखे मर रहे हैं, वे बिल्कुल पागल हैं। वे निपट शरीर को गला रहे हैं और नासमझी कर रहे हैं। इसलिए महावीर के उपवास को मैं कहता हूं, वह उपवास है, और बाकी जो पीछे लोग अनशन कर रहे हैं, वह सिर्फ मांसाहार है--अपना ही मांस पचा जाते हैं। एक दिन के उपवास में एक पौंड मांस पच जाता है।
तो चाहे हम दूसरे का मांस खाएं कि अपना खाएं, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। वह मांसाहार ही है। क्योंकि शरीर की जरूरत है उतने की। उतनी कैलरी चाहिए, उतनी गर्मी चाहिए, उतनी शक्ति चाहिए, वह शरीर लेगा। अगर आप बाहर से नहीं देते हैं तो वह शरीर से ही पचा लेगा। तो उतनी चर्बी पचा जाएगा। उस पचाने में आप उपवास समझेंगे। वह उपवास नहीं है।
शरीर में कोई फर्क न आए, शरीर जैसा था वैसा रहे, तब तो जानना चाहिए कि भोजन के सूक्ष्म मार्ग उपलब्ध हो गए हैं। सिर्फ भोजन बंद नहीं किया गया है, भोजन के अति सूक्ष्म मार्ग उपलब्ध हो गए हैं।
और महावीर जो तीन-चार महीने के बाद एकाध दिन भोजन लेते हैं, वह इसलिए नहीं लेते हैं कि एक दिन के भोजन लेने से कोई फर्क पड़ जाएगा। क्योंकि जब चार महीने भोजन के बिना एक आदमी रह सकता है, तो आठ महीने क्यों नहीं? वह भोजन लेना सिर्फ इस बात को छिपाने के लिए है कि जो हो गया है, उसकी बात न करनी पड़े। वह निपट धोखा है। निपट धोखा है वह। वह सिर्फ इस सीक्रेट को छिपाने के लिए है कि अगर साल, दो साल भूखा रह जाए आदमी, तो लोग पूछेंगे यह हुआ कैसे!
और यह हर किसी को बताना खतरनाक भी हो सकता है। सभी बातें सभी को बताने
के लिए नहीं भी हैं। सभी बातें सभी को बताने के लिए नहीं भी हैं--यह ध्यान में रखना चाहिए। इसलिए जो बातें भी मैं कह रहा हूं, उनमें कुछ सूत्र छोड़े जा रहा हूं। इसलिए उनका कभी प्रयोग नहीं किया जा सकता। आप उनका प्रयोग नहीं कर सकते हैं।
वह सिर्फ इसलिए कि लोगों को यह सांत्वना रहे कि ठीक है, वे खाना ले लेते हैं। और एक दिन खाना ले लेते हैं दो-चार महीने में, बात खतम हो जाती है।
महावीर पाखाना नहीं जाते, पेशाब नहीं जाते। बड़ी चिंतना की बात रही है
कि यह कैसे हो सकता है! महावीर को पसीना नहीं बहता। यह कैसे हो सकता है? अगर भोजन लेंगे तो यह सब होगा, क्योंकि यह भोजन से जुड़ा हुआ हिस्सा है। अगर आप भीतर डालेंगे तो बाहर निकालना पड़ेगा। लेकिन अगर सूक्ष्मता से भोजन मिलने लगे तो इसका कोई मतलब ही नहीं रह जाता। निकालने को कुछ है ही नहीं। इतना सूक्ष्म है भोजन कि निकालने लायक कुछ भी उसमें से बचता नहीं है। वह सीधा विलीन हो जाता है।
तो महावीर की अहिंसा को भी इस तरफ से समझने की कोशिश करनी जरूरी है, और तरफ से भी हम समझने की कोशिश करेंगे। महावीर के लंबे उपवास समझ लेने जरूरी हैं कि वह सूक्ष्म भोजन प्राप्त करने की प्रक्रिया उन्हें उपलब्ध है। काशी में एक संन्यासी था, विशुद्धानंद। और उसने एक अत्यंत प्राचीन विज्ञान को, जो एकदम खो गया था, फिर से पुनरुज्जीवित कर लिया था--वह है सूर्य-किरण विज्ञान। उस आदमी ने इस तरह के लेंस बनाए थे कि एक मरी हुई चिड़िया को ले जाकर आप रख दें, वह उस लेंस से सूरज की किरणों को पकड़ेगा और उस चिड़िया पर डालेगा, थोड़ी देर कुछ करता रहेगा बैठा हुआ और आपके सामने चिड़िया तड़फड़ाएगी और जिंदा हो जाएगी!
और ये प्रयोग पश्चिम के डाक्टरों के सामने भी किए गए और यूरोप से आने वाले ना-मालूम कितने लोगों ने ये प्रयोग अपनी आंख के सामने देखे। जिंदा चिड़िया को बिठाल दें, वह फिर लेंस को रखेगा, फिर कुछ और ढंग से किरणें डालेगा, और कुछ करेगा और चिड़िया मर जाएगी!

उसका कहना था कि सूर्य की किरण से सीधा जीवन और मृत्यु आ सकती हैं, बीच में कुछ और लेने की जरूरत नहीं। सीधा जीवन आ सकता है, सीधी मृत्यु आ सकती है।
और बात में गहरी सच्चाइयां हैं। सारा जीवन जो हमें पृथ्वी पर दिखाई
पड़ रहा है, वह सूरज की किरण से बंधा हुआ है। सूरज अस्त हो जाए, सारा जीवन अभी अस्त हो जाएगा। न पौधे होंगे, न फूल होंगे, न पक्षी होंगे, न आदमी होगा-- कोई भी नहीं होगा। प्राणी हो सकते हैं, सूरज न हो तब भी, लेकिन देह नहीं होगी। देह और प्राण का संबंध सूरज की किरण से ही जुड़ा है। अदेही हो सकेंगे, देहहीन हो सकेंगे, लेकिन देह नहीं होगी।
और अभी चांद से लौटते वक्त जो एक घटना घटी है, वह विचारणीय है--बहुत ज्यादा विचारणीय है। चांद से वे लौट आए हैं और चांद पर कोई नहीं पाया गया है। कोई पाने को है भी नहीं ऐसे। लेकिन लौटते वक्त उनके नीचे के जो ट्रांसमीटर्स हैं और जो रेडियो स्टेशंस हैं, जहां वे पकड़ रहे हैं, वहां इतने जोर की चीख-पुकार, इतना कोलाहल, इतना रोना, इतना हंसना सुना गया है कि जैसे करोड़-करोड़ भूत-प्रेत एकदम से चिल्ला रहे हों! ये तीन आदमी अगर कोशिश भी करें चिल्लाने की, रोने की, तो भी कोई स्थिति में ये करोड़-करोड़ भूत-प्रेतों की आवाजों का भ्रम पैदा नहीं कर सकते। और उनसे लौटने पर पूछा गया तो उन्होंने कहा, हमें तो कुछ भी पता नहीं! हम तो विश्राम करते चले आ रहे हैं!
यह इस बात की गहरी सूचना है और खबर है कि चांद पर कोई देहधारी तो नहीं है, क्योंकि चांद पर अभी वह स्थिति नहीं पैदा हुई, जहां देह प्रकट हो सके, लेकिन चांद पर अदेही आत्माओं की पूरी उपस्थिति है।
सूर्य की किरणों ने यहां देह और प्राण को जोड़ने में बड़ा उपाय किया है।
तो सूर्य की किरणों से सीधा भी कुछ हो ही सकता है। आंख से भी सूरज की किरणें पी जा सकती हैं और जीवनदायी हो सकती हैं। त्राटक के बहुत से प्रयोग सीधे सूरज से जीवन खींचने के प्रयोग हैं। वे सिर्फ एकाग्रता के प्रयोग नहीं हैं। सीधा सूरज से जीवन खींचने के प्रयोग हैं। और एक दफे वह उतर जाए ख्याल तो सूरज से कहीं से भी जीवन खींचा जा सकता है।
तिब्बत में एक विशेष प्रकार का योग होता है, जिसको सूर्य-योग ही कहते हैं। तिब्बत में तो भयंकर सर्दी है। सूरज कभी दिखता है, नहीं दिखता है। बर्फ ही बर्फ जमी है। नंगा फकीर भी उस बर्फ पर बैठा रहेगा और आप पाएंगे उसके शरीर से पसीना चू रहा है! नंगा बैठा हुआ है, सारे तरफ से पसीना झर रहा है! बर्फ पर ही नंगा बैठा हुआ है--रात, सूरज का कोई पता नहीं है और पसीना टपक रहा है! उसकी प्रक्रिया है कि सूर्य कहीं भी हो, उससे संबंधित हुआ जा सकता है! उससे संबंधित होते ही ऊष्णता पूरे शरीर में व्याप्त होनी शुरू हो जाती है। बर्फ भी कुछ कर नहीं सकती है।
यह जो मैं कह रहा हूं, वह इस ख्याल से कह रहा हूं ताकि आपके ख्याल में आ सके कि महावीर ने नीचे के जगत से जो संबंध स्थापित किए तो नीचे के जगत ने भी उत्तर दिए हैं। महावीर को नीचे के जगत ने भी उत्तर दिए हैं। फिर कहानियों में हमने इन्हें पिरो कर लिखा है जो कि कविताएं बन जाती हैं। कहानी है, कविता है, यह कहती है कि महावीर चलते हों तो कांटा अगर सीधा पड़ा हो तो महावीर को देख कर तत्काल उलटा हो जाता है।
ये हमारी कहानियां हैं। और एक बात बहुत गहरी उसमें कहने की कोशिश की
गई है, वह यह कि प्रकृति भी महावीर के प्रतिकूल होने की कोशिश नहीं करती, अनुकूल होने की कोशिश करती है। क्योंकि जिसने इतना प्रकृति को प्रेम दिया हो, इतना तादात्म्य दिया हो, वह प्रकृति कैसे उसके प्रतिकूल होने की कोशिश करे!
मोहम्मद के संबंध में कहा जाता है कि मोहम्मद चलते हैं, तो एक बदली उनके ऊपर छाया की तरह चलती रहती है। ऐसा कोई बदली चले, यह जरूरी नहीं है। चल भी सकती है। लेकिन बात जो कहना जरूरी है, वह यह है कि जरूर जो लोग जहां से संबंध बनाते हैं, वहां से कुछ हो सकता है। उत्तर जरूर मिलेंगे। सड़क के किनारे पड़ा हुआ पत्थर भी आपके प्रेम का उत्तर देता ही है। उत्तर चारों तरफ से आते हैं।

और ध्यान रहे, उत्तर वही होते हैं, जो हम फेंकते हैं--वे ही गूंजते हैं, प्रतिध्वनित होते हैं, लौट आते हैं। तो महावीर की अहिंसा का उत्तर अगर अहिंसा की तरह चारों तरफ से लौटे, तो आश्चर्य की बात नहीं है।
तो पहली तो बात यह है कि महावीर ने नीचे के तल से संबंध स्थापित किए, मूक जगत से। नीचे मूक जगत है। फिर बीच में मनुष्य का जगत है, जो शब्द का जगत है। और फिर मनुष्य के ऊपर देवताओं का जगत है, जो मौन जगत है। ये तीन जगत हैं। मूक का मतलब--जहां वाणी अभी प्रकट नहीं हुई। शब्द का जगत--जहां वाणी प्रकट हो गई। मौन का जगत--जहां वाणी वापस खो गई। देवताओं के पास कोई वाणी नहीं है।

प्रश्नः शरीर भी नहीं है?

शरीर भी नहीं है। पशुओं के पास भी कोई वाणी नहीं है। लेकिन शरीर है। वाणी अभी प्रकट नहीं हुई। यंत्र है पशुओं के पास, वाणी प्रकट हो सकती है।

प्रश्नः पशुओं की अपनी भाषा है?

कहने मात्र को। भाषा नहीं है, सिर्फ संकेत हैं। संकेत कामचलाऊ हैं और बड़े सीमित हैं। यानी जैसे कि मधुमक्खियों के कोई चार संकेत हैं उनके पास। तो वे चार संकेत दे सकती हैं।

प्रश्नः पक्षियों के ऊपर तो हमारे शास्त्र हैं!

हूं?

प्रश्नः पक्षियों की आवाजों के लिए तो ग्रंथ हैं!

हां, हां, पक्षियों से बात की जा सकती है, लेकिन पक्षियों के पास अपनी वाणी नहीं है। आप संबंध जोड़ सकते हैं। पक्षियों के पास अपनी कोई वाणी नहीं है। पक्षी आपसे कुछ कह नहीं सकता है। लेकिन पक्षी कुछ अनुभव कर सकता है। और अगर आप अनुभव के तल पर उससे संबंध जोड़ लें, तो आप जान सकते हैं वह क्या अनुभव कर रहा है। वह आपसे कुछ कहता नहीं, सिर्फ आप उसके अनुभव को जान सकते हैं कि वह क्या कर रहा है।
जैसे एक कुत्ता रो रहा है। तो कुत्ता रोकर आपसे कुछ कह नहीं रहा है। कुत्ते के तो भीतर कुछ हो रहा है, जिससे वह रो रहा है। लेकिन अगर आप संबंध जोड़ सकें उसके भीतर से तो शायद आप पता लगा सकते हैं कि पड़ोस में कोई मरने वाला है, इसलिए रो रहा है। लेकिन कुत्ते को यह भी पता नहीं है कि पड़ोस में कोई मरने वाला है, इसलिए रो रहा है। यह रोने की घटना तो उसके चित्त में इस तरह की तरंगें लग रही हैं पास से आकर कि कहीं मृत्यु, कहीं मृत्यु। और यह बिल्कुल मूक अनुभव है। इस मूक अनुभव में वह रो रहा है, चिल्ला रहा है। आपसे कुछ कह सकता नहीं है। कहने का कोई उपाय नहीं है उसके पास। और आप भी उसके चिल्लाने से कुछ नहीं समझ सकते हैं।
तो जो हम कहते हैं कि पशुओं की या पक्षियों की भाषा सीखने के संबंध में बड़े प्रयोग किए गए हैं। निश्चित किए गए हैं और बहुत दूर तक सफलता पाई गई है। लेकिन उसमें उनकी कोई वाणी नहीं पकड़ लेता है। उनके पास कोई शब्द, वर्ण, अक्षर से निर्मित कोई वाणी नहीं है। अनुभूति के तल जरूर हैं।
अनुभूति की तरंगें हैं। वे अगर आप पकड़ लें तो आप उन कोड को खोल सकते हैं। आप खोल सकते हैं कि उसको क्या एहसास हो रहा होगा।
तो तीन तल में मैं बांट देता हूं जीवन को। एक मूक, जहां वाणी प्रकट हो सकती है, अभी प्रकट नहीं हुई, जहां सिर्फ अनुभव है, भाव है, शब्द नहीं हैं।
दूसरा मनुष्य का जगत, जहां शब्द प्रकट हो गया है, जहां हम शब्द के द्वारा काम करने लगे हैं, बात करने लगे हैं, विचार करने लगे हैं, संवाद करने लगे हैं। तीसरा मनुष्य से ऊपर देवताओं का जगत, जहां वाणी खो गई है, व्यर्थ हो

गई है, अब उसकी कोई जरूरत नहीं रही, अब बिना शब्द के ही बातचीत हो सकती है, मौन ही संभाषण बन सकता है।
ये तीन जगत हैं। इनमें सर्वाधिक कठिन पशुओं का जगत मालूम पड़ता है, पौधों का, पक्षियों का, पत्थरों का। लेकिन सर्वाधिक कठिन वह नहीं है। इसमें कठिन देवताओं का जगत भी मालूम पड़ सकता है, क्योंकि जहां शब्द नहीं हैं, वहां अभिव्यक्ति कैसे होती होगी--मौन।
मगर वह भी इतना कठिन नहीं है। सबसे ज्यादा कठिन संभाषण का जगत मनुष्य
का है। जिसने संवाद के लिए शब्द ईजाद कर लिए हैं। और शब्द इस तरह ईजाद कर लिए हैं उसने कि करीब-करीब शब्दों के कारण ही संवाद होना मुश्किल हो गया है। सबसे सरल देवताओं का जगत है, जहां मौन विचार हो सकता है।
इसलिए यह जो कहा जाता है कि महावीर के समोशरण में पहली उपस्थिति देवताओं की है, उसका अर्थ सिर्फ इतना ही है। सबसे सरल संभाषण उनसे हो सकता है। शब्द बीच में बाधा नहीं हैं। शब्द बीच में माध्यम ही नहीं हैं। सीधा जो भाव यहां उठे, वह संप्रेषित हो जाता है। बीच में किसी को यात्रा करने की जरूरत नहीं रह जाती।
जैसे हम देखते हैं कि टेलीफोन है, तो टेलीफोन में एक वायर की व्यवस्था है, जो दूसरे फोन से जुड़ा हुआ है। फिर वायरलेस है, जिसमें बीच में कोई वायर नहीं है, सीधा कांटैक्ट है। वायर को बीच में लाने की कोई जरूरत नहीं है। सीधा संप्रेषण हो जाता है। ऐसे ही एक संभाषण शब्द के द्वारा है, जहां शब्द मुझे और आपको जोड़ता है। और एक संभाषण ऐसा भी है, जहां शब्द भी बीच में नहीं हैं, सिर्फ मौन है और मौन में जो अनुभव होता है, वह संप्रेषित हो जाता है। तो देवताओं के साथ सत्य की वार्ता सबसे ज्यादा सरल है। इसलिए पहली उपस्थिति उनकी रही हो तो यह आश्चर्य की बात नहीं है। यह स्वाभाविक है।

प्रश्नः ये देवी-देवता सब हुए हैं?

हैं ही। हुए हैं नहीं, हैं ही। उसकी हम धीरे-धीरे बात कर सकेंगे कि क्या उस संबंध में भी थोड़ी बात जान लेनी उचित होगी। पशु-पक्षी भी महावीर के समोशरण में उपस्थित हैं। उन्हें सुनने को उपस्थित हैं। यह भी बड़ी हैरानी की बात मालूम पड़ती है कि पशु-पक्षी सुनने को उपस्थित होंगे। मनुष्य भी उपस्थित हैं।
पशु-पक्षियों को जो कहा गया है, शायद उन्होंने भी सुना है; देवताओं को
जो कहा गया है, उन्होंने भी सुना है; मनुष्यों को जो कहा गया है, उन्होंने शायद नहीं सुना है। क्योंकि उनके पास शब्द हैं और समझदारी का ख्याल है, जो बड़ा खतरनाक है। मनुष्य को यह ख्याल है कि मैं सब समझ लेता हूं। यह बड़ी भारी बाधा है।
और शब्द सुनता है, और शब्द को पकड़ने का, संग्रह करने का उसने उपाय ईजाद
कर लिया है--भाषा। वह सब संगृहीत कर लेता है। वह कहता है, यही कहा है न, यह सब लिखा हुआ है। शब्द पकड़ लेता है। फिर शब्दों की वह व्याख्या कर लेता है। और भटक जाता है।
इसलिए मनुष्य के साथ बड़ी कठिनाई है। क्योंकि मनुष्य पशु है, लेकिन पशु रह नहीं गया है। मनुष्य देवता हो सकता है, लेकिन अभी हो नहीं गया है। वह बीच की कड़ी है। अगर ठीक से हम समझें तो मनुष्य ठीक अर्थों में प्राणी नहीं है, सिर्फ कड़ी है। पशु से चला आया है वह आगे, लेकिन पशु बिल्कुल खो नहीं गया है।
इसलिए जरूरी जो चीजें हैं, वह अब भी भाषा के बिना करता है। जैसे क्रोध
आ जाए तो वह चांटा मारता है। प्रेम आ जाए तो वह गले लगाता है। जो जरूरी चीजें हैं, वह अभी भी भाषा के साथ नहीं करता, भाषा अलग कर देता है फौरन। उसका पशु एकदम प्रकट हो जाता है। पशु के पास कोई भाषा नहीं है, तो प्रेम है तो गले लगा लेता है, क्रोध है तो चांटा मार देता है। वह नीचे उतर रहा है। वह भाषा छोड़ रहा है। वह जानता है कि भाषा समर्थ नहीं है। इसलिए जो बहुत जरूरी चीजें हैं, उसमें वह गैर-भाषा के काम करता है। या फिर जो बहुत और ज्यादा जरूरी चीजें हैं, जिनमें भाषा बिल्कुल बेकार हो जाती है तो मौन से काम करना पड़ता है।

मनुष्य पशु नहीं रह गया है और अभी देवता भी नहीं हो गया है। वह बीच में खड़ा है। एक तरह का क्रास-रोड, एक तरह का चौरस्ता है, जो सब तरफ से बीच में पड़ता है। और कहीं भी जाना हो तो मनुष्य से हुए बिना जाने का कोई उपाय नहीं है। इस मनुष्य को समझाने की चेष्टा ही सबसे ज्यादा कठिन चेष्टा है। देवता समझ लेते हैं, जो कहा जाता है वैसा ही, क्योंकि बीच में कोई शब्द नहीं होते, व्याख्या करने का कोई सवाल नहीं होता। पशु समझ लेते हैं, क्योंकि उनसे कहा ही नहीं जाता, व्याख्या की कोई बात ही नहीं होती, सिर्फ तरंगें प्रेषित की जाती हैं, तरंगें पकड़ ली जाती हैं।
जैसे कि अब यह टेपरिकार्डर मुझे सुन रहा है। यह भी मुझे सुन रहा है, आप
भी मुझे सुन रहे हैं। इस कमरे में कोई देवता भी उपस्थित हो सकता है। यह टेपरिकार्डर कोई व्याख्या नहीं करता, यह सिर्फ रिसीव कर लेता है, सिर्फ तरंगों को पकड़ लेता है। इसलिए कल इसको बजाएंगे तो जो उसने पकड़ा है, वह दोहरा देगा।
पदार्थ के तल पर और पशु के तल पर जो रिसेप्टिविटी है, वह इसी तरह की सीधी है। सिर्फ तरंगें संप्रेषित हो जाती हैं। देवता के तल पर अर्थ सीधे प्रकट हो जाते हैं। मनुष्य के तल पर तरंगें पहुंचती हैं, अर्थ वह खुद खोजता है। तब बड़ी मुश्किल हो जाती है। तब उसकी सब व्याख्याएं खड़ी हो जाती हैं। व्याख्याओं पर व्याख्याएं खड़ी हो जाती हैं।
जैसा मैंने कहा कि महावीर शायद अकेले व्यक्ति हैं जिन्होंने न मालूम कितने पशुओं, न मालूम कितने पक्षियों, न मालूम कितने पौधों को आमंत्रित किया है मनुष्य की तरफ। दूसरी बात भी समझ लेनी जरूरी है। वे ही शायद अकेले ऐसे व्यक्ति हैं--और लोगों ने भी चेष्टा की है, बहुत लोगों ने सफलता पाई है--जिन्होंने देवताओं को भी मनुष्य की तरफ आकर्षित किया है। इस पर हम पीछे बात करेंगे। मनुष्यों से कैसे संप्रेषण किया है, वह कल हम बात करेंगे; और देवताओं से कैसे संप्रेषण हो सकता है, वह हम बात करेंगे। बारह वर्ष की पूरी साधना अभिव्यक्ति संप्रेषण की साधना है--कैसे पहुंचाया जा सके जो पहुंचाना है। और जैसे ही वह उनकी साधना पूरी हो गई है, वह उन्होंने छोड़ दी है और वे पहुंचाने के काम में लग गए हैं।
दो छोटे सूत्र अंत में ख्याल रख लेने चाहिए। पशु के पास संप्रेषण करना हो तो मूक होना पड़ेगा। मूक का मतलब यह है कि वाणी खो ही देनी पड़ेगी, रह ही नहीं जाएगी भीतर, करीब-करीब मूर्च्छित और जड़ जैसा मालूम पड़ने लगेगा व्यक्ति। लेकिन शरीर जड़ होगा, मन जड़ होगा, चेतना पूरी भीतर जागी होगी, जाग्रत होगी। अगर मनुष्य से संबंध जोड़ना है तो दो उपाय हैं। जो मनुष्य साधना से गुजरें, उनके साथ बिना शब्द के संबंध जोड़ा जा सकता है। क्योंकि साधना से गुजर कर उन्हें उस हालत में लाया जा सकता है, जहां देवता होते हैं। तब वे मौन में समझ सकते हैं। जैसा मैंने कल कहा कि महाकाश्यप को बुद्ध ने कहा कि वह मैंने तुझे दे दिया है, जो मैं शब्दों से दूसरों को नहीं दे सका। और या फिर सीधी वाणी है, जो सीधी उनसे कही जाए, वे उसे सुनें, समझें। लेकिन वे नहीं समझ पाते।
इसलिए महावीर की कथा यह है कि महावीर कहते हैं, गणधर सुनते हैं, गणधर लोगों को समझाते हैं। यह बड़ा खतरनाक मामला है। महावीर किसी को कहते हैं, वह सुनता है, फिर वह जैसा समझता है, वह व्याख्या करके लोगों को समझाता है। बीच में एक मध्यस्थ खड़ा हो जाता है। और महावीर से सीधा संबंध नहीं जुड़ पाता, क्योंकि हम शब्दों को समझ सकते हैं, अनुभूतियों को नहीं। और या फिर हम अनुभूतियों में प्रवेश करें, ध्यान में जाएं, समाधि में उतरें और उस जगह खड़े हो जाएं, जहां शब्द के बिना तरंगें पकड़ी जा सकती हैं। एक रास्ता वह है। और नहीं तो फिर, फिर जो मध्यस्थ होंगे, व्याख्याएं होंगी, शब्द होंगे-- सब भटक जाएगा, सब खो जाएगा।
जो भी शास्त्र निर्मित हैं, वे आदमियों को बोले गए शब्दों के द्वारा निर्मित हैं। वे शब्द भी सीधे महावीर के नहीं हैं। वे शब्द भी बीच में किए गए कंमेंटेटर्स के, टीकाकारों के हैं। और फिर हमने अपनी समझ और बुद्धि के अनुसार उनको संगृहीत किया है, अपनी व्याख्या की है। और इसलिए सब लड़ाई-झगड़ा है, सब उपद्रव है।

महावीर ने मौन में क्या कहा है, उसे पकड़ने की जरूरत है। या उन्होंने जिनसे मौन से बोला जा सकता था, उन ध्यानियों से या देवताओं से क्या कहा है, उसे पकड़ने की जरूरत है। या जिनके साथ शब्द का उपयोग असंभव था, उन पक्षियों, पौधों, पत्थरों को क्या कहा, उसे पकड़ना जरूरी है। और जो मैंने पहले दिन कहा, वह सब किसी गहनतम अस्तित्व की गहराइयों में सुरक्षित है। वह सब वापस पकड़ा जा सकता है। सिर्फ उन स्टेट्स ऑफ माइंड में हमें उतरना पड़े, तो हम उसे फिर पकड़ ले सकते हैं।

महावीर: मेरी दृष्टि में
आठवां प्रवचन

तीर्थंकर महावीरः अनुभूति और अभिव्यक्ति

प्रश्नः महावीर के पहले जो तेईस तीर्थंकर रहे तो महावीर के फेमिली वाले या तो किसी के अनुयायी रहे होंगे--महावीर तो किसी के अनुयायी थे नहीं--तो वे पार्श्वनाथ के अनुयायी थे या किसी के थे, तो यह कैसे हुआ कि महावीर ने जो अपना पथ स्वतः निर्माण किया, जो किसी के अनुयायी नहीं रहे, उनका पथ पार्श्वनाथ के पथ से या उस परंपरा के पथ से मेल खा गया? क्योंकि उनका पथ तो पहले से ही था! और जैन नाम जो है संप्रदाय का, वह महावीर के साथ ही साथ जुड़ा है, उसके पहले वे जो लोग थे, वे क्या कहलाते थे?

इसमें दो-तीन बातें समझने जैसी हैं। पहली बात तो यह कि महावीर के साथ
ही पहली बार विचार की एक धारा संप्रदाय बनी। महावीर के पहले विचार की एक धारा थी। उस विचार की धारा का आर्य परंपरा से कोई पृथक अस्तित्व न था। वह आर्य परंपरा के भीतर पैदा हुई एक धारा थी। उसका नाम श्रमण था। जैन वह नहीं कहला रही थी तब तक। और श्रमण कहलाने का कारण था। वह कारण यह था, जैसा मैंने पीछे कहा आपको।
मैंने पीछे आपको कहा कि ब्राह्मण-धारा इस बात पर श्रद्धा नहीं रखती
है कि श्रम के माध्यम से, साधना के माध्यम से, तप के माध्यम से परमात्मा को पाया जा सकता है। परमात्मा को पाया ही जा सकता है अति विनम्र-भाव में, प्रार्थना में, ह्यूमिलिटी में, अत्यंत दीन-भाव में, जहां हम बिल्कुल असहाय हैं, हेल्पलेस हैं, जहां हम कुछ भी नहीं कर सकते हैं, करने वाला वही है, जहां इस परिपूर्ण दीनता में... जिसको जीसस ने पावर्टी ऑफ दि स्प्रिट कहा है, जो आत्मा में इतना दीन और दरिद्र है, जो यह कहता है कि मैं कर ही क्या सकता हूं--बस मैं मांग सकता हूं, मैं अपने को हाथ जोड़ कर समर्पण कर सकता हूं।
ऐसी एक धारा थी, जो परमात्मा को या सत्य को अत्यंत दीन, अत्यंत विनम्र-भाव से मांगती थी। उससे ठीक भिन्न और विपरीत एक धारा चलनी शुरू हुई, जिसका आधार श्रम था, प्रार्थना नहीं। जिसका आधार यह नहीं था कि हम प्रार्थना करेंगे, पूजा करेंगे और मिल जाएगा। जिसका आधार यह था कि श्रम करेंगे, संकल्प करेंगे, साधना करेंगे। श्रम और संकल्प से जीता जाएगा।
तो आर्य जीवन-दर्शन बड़ी बात है। उस आर्य जीवन-दर्शन में श्रमण सम्मिलित है, ब्राह्मण सम्मिलित है। आर्य पूरी जीवन-दृष्टि की ये दो धाराएं हैं। महावीर पर आकर उस धारा ने अपना पृथक अस्तित्व घोषित किया। महावीर के पहले तक वह धारा पृथक नहीं है।
इसीलिए आदिनाथ का नाम तो वेद में मिल जाएगा, लेकिन फिर महावीर का नाम किसी हिंदू ग्रंथ में नहीं मिलेगा। पहले तीर्थंकर का नाम तो वेद में उपलब्ध होगा पूरे समादर के साथ, लेकिन फिर महावीर का नाम उपलब्ध नहीं होगा। महावीर पर आकर विचार की धारा संप्रदाय बन गई और उसने आर्य जीवन-पथ से अलग पगडंडी तोड़ ली। तब तक वह उसी पथ पर थी। अलग चलती थी, अलग धारा थी चिंतना की, लेकिन थी उसी पथ पर। उस पथ से भेद नहीं खड़ा हो गया था।
और एकदम से भेद खड़ा होता भी नहीं है, वक्त लग जाता है। जैसे जीसस पैदा हुए, तो जीसस के वक्त ही ईसाई धारा अलग नहीं हो गई। जीसस के मर जाने के भी दो-तीन सौ वर्ष तक यहूदी फोल्ड के भीतर ही जीसस के विचारक चलते रहे। लेकिन जैसे-जैसे भेद साफ होते गए और दृष्टि में विरोध पड़ता गया, कोई जीसस के तीन सौ, चार सौ, पांच सौ साल बाद क्रिश्चियन धारा अलग खड़ी हो पाई। जीसस तो यहूदी ही पैदा हुए और यहूदी ही मरे। जीसस ईसाई कभी नहीं थे।
जैनों के पहले तेईस तीर्थंकर आर्य ही थे, और आर्य ही पैदा हुए, और आर्य
ही मरे। वे जैन नहीं थे। लेकिन महावीर पर आकर धारा बिल्कुल ही पृथक हो गई, बलशाली हो गई, अपनी ठीक सुचिंतित उसकी दृष्टि हो गई। और इसलिए फिर वह श्रमण न कहला कर जैन कहलाने लगी।

जैन कहलाने का और भी एक कारण हो गया, क्योंकि श्रमण भी बड़ी धारा थी। सभी श्रमण जैन नहीं हो गए फिर। श्रम और संकल्प पर आस्था रखने वाले आजीवक भी थे, बुद्ध भी हैं, और भी दूसरे विचारक थे। तो जब महावीर ने अलग पूरी दृष्टि को दे दिया, पूरा दर्शन दे दिया, तो फिर यह श्रमण-धारा की भी एक धारा रह गई। फिर बुद्ध की धारा भी श्रमण-धारा है, पर वह अलग हो गई। इसलिए फिर इसको एक नया नाम देना जरूरी हो गया और वह महावीर के साथ जुड़ गया। क्योंकि महावीर--जैसे बुद्ध को हम कहते हैं, बुद्धा दि एनलाइटेंड, गौतम बुद्ध जाग्रत पुरुष, वैसे महावीर जिन, महावीर दि कांकरर। कांकरर! महावीर, विजेता, जिसने जीता और पाया।
तो महावीर के साथ पहली दफा... जिन तो बहुत पुराना शब्द है। वह बुद्ध के लिए भी उपयुक्त हुआ है। जिन का तो मतलब जीतना ही है। लेकिन फिर भेदक-रेखा खींचने के लिए जरूरी हो गया कि जब गौतम बुद्ध के अनुयायी बौद्ध कहलाने लगे तो महावीर के अनुयायी जिन के कारण जैन कहलाने लगे। जिन शब्द और जैन शब्द महावीर के साथ प्रकट हुआ। और दो स्थितियां हुईं। एक तो आर्य मूल-धारा से श्रमण-धारा अलग टूट गई और श्रमण-धारा में भी कई पंथ हो गए, जिनमें जैन एक पंथ बना।
इसलिए महावीर के पहले के तीर्थंकर हिंदू फोल्ड के भीतर हैं, वे बाहर नहीं हैं। महावीर पहले तीर्थंकर हैं जो हिंदू फोल्ड के बाहर खड़े होते हैं। समय लगता है किसी विचार को पूर्ण स्वतंत्रता उपलब्ध करने में। वह समय लगा।
दूसरी बात यह कि महावीर निश्चित ही किसी के अनुयायी नहीं हैं, न उनका कोई गुरु है। पर उन्होंने जो कहा, उनसे जो प्रकट हुआ, उन्होंने जो संवादित किया, वे जो तेईस तीर्थंकरों के अनुयायी चले आते थे, उनसे बहुत दूर तक मेल खा गया। महावीर को चिंता भी नहीं है कि वह मेल खाए; वह मेल खा गया, यह संयोग की बात है। नहीं मेल खाता तो कोई चिंता की बात न थी। वह मेल खा गया और वे अनुयायी धीरे-धीरे महावीर के पास आ गए। जैसे आचार्य केशी और दूसरे लोग, जो पार्श्व की परंपरा से जीवित थे, वे महावीर के करीब आ गए। बहुत बार ऐसा होता है।
ऐसा भी नहीं है कि महावीर सब वही कह रहे हैं, जो पिछले तेईस तीर्थंकरों ने कहा हो। बहुत कुछ नया भी कह रहे हैं। जैसे किसी पिछले तीर्थंकर ने ब्रह्मचर्य की कोई बात नहीं की है। और पार्श्वनाथ का जो धर्म है वह चातुर्याम है; उसमें ब्रह्मचर्य की कोई बात नहीं है। महावीर पहली बार ब्रह्मचर्य की बात कर रहे हैं। और बहुत सी बातें हैं जो महावीर पहली बार कर रहे हैं। लेकिन वे बातें पिछले तेईस तीर्थंकरों के विरोध में नहीं हैं। चाहे और उनको आगे बढ़ाती हों, कुछ जोड़ती हों, लेकिन उनके विरोध में नहीं हैं। उनसे भिन्न हो सकती हैं, लेकिन विरोध में नहीं हैं। उनसे ज्यादा हो सकती हैं, लेकिन उनके विरोध में नहीं हैं। इसलिए स्वभावतः उस धारा से संबद्ध लोग महावीर के निकट इकट्ठे हो गए हैं। और महावीर जैसा बलशाली व्यक्ति किसी धारा को मिल जाए तो वह धारा अनुगृहीत ही होगी।
और सच तो यह है कि महावीर के पहले के तेईस तीर्थंकर बड़े साधक थे, सिद्ध थे, लेकिन जिसको सिस्टम मेकर कहें, जो एक दर्शन निर्मित करता है, ऐसा उनमें कोई भी न था। वह महावीर ही व्यक्ति है, जो उनको उपलब्ध हुआ। इसलिए चौबीसवां होते हुए भी वह करीब-करीब प्रथम हो गया। यानी सबसे अंतिम होते हुए भी उसकी स्थिति प्रथम हो गई। अगर आज उस विचारधारा का कुछ भी जीवंत अंश शेष है, तो सारा श्रेय महावीर को उपलब्ध होता है।
सिस्टम-मेकर एक बिल्कुल अलग बात है, व्यवस्था और दर्शन बनाने वाला। बहुत तरह के विचारक होते हैं। कुछ विचारक तो हमेशा फ्रैगमेंटरी होते हैं, जो खंड-खंड में सोचते हैं, एक-एक टुकड़े में सोचते हैं, और कभी भी सारे टुकड़ों को इकट्ठा जोड़ कर एक समग्र दर्शन स्थापित नहीं कर पाते हैं। महावीर ने जो इन तेईस तीर्थंकरों की हजारों वर्षों की यात्रा में जो सारे खंड थे, उन सारे खंडों को एक सुसंबद्ध रूप देकर एक दर्शन का रूप दिया, इसलिए जैन-दर्शन पैदा हो सका।
निश्चित ही, जैसा आप पूछते हैं, महावीर के घर-परिवार के लोग किसी पंथ को, किसी विचार को मानते रहे होंगे। लेकिन कोई भी पंथ और कोई भी विचार था,

वे सब आर्य-जीवन पथ के ही हिस्से थे। उसमें कोई भेद, कोई भिन्नता नहीं थी। इसलिए यह हो सकता था कि कृष्ण का एक चचेरा भाई तीर्थंकर हो सके और कृष्ण हिंदुओं के परम अवतार हो सके। इसमें कुछ बाधा न थी। विचार-पद्धतियां थीं ये। अभी ये संप्रदाय न थे।
जैसे कि समझें आज, आज कोई कम्युनिस्ट है या कोई सोशलिस्ट है या कोई फैसिस्ट है तो ये विचार-पद्धतियां हैं। एक ही घर में पैदा हुआ एक आदमी कम्युनिस्ट हो सकता है, एक आदमी सोशलिस्ट हो सकता है, एक आदमी फैसिस्ट हो सकता है। लेकिन कभी ऐसा हो सकता है कि जब ये संप्रदाय बन जाएं, तो कम्युनिस्ट का बेटा कम्युनिस्ट हो और सोशलिस्ट का बेटा सोशलिस्ट हो। तब विचार-पद्धतियां न रहीं, तब जन्म से बंधे हुए संप्रदाय हो गए।
महावीर के पहले भारत में विचार-पद्धतियां थीं और आर्य जीवन-दृष्टि सबको घेरती थी। उसमें वेद के क्रियाकांडी लोग थे और ठीक उनके विरोध में उपनिषद के विचारक थे, लेकिन इससे वह कोई अलग बात नहीं हो जाती थी। अब मजा है, यह वेदांत शब्द जो है, वह उसका मतलब ही यह है कि जो मानते यह हैं कि जहां वेद का अंत हो जाता है, वहीं सत्य का प्रारंभ होता है। यानी वेद तक तो सत्य है ही नहीं, जहां वेद समाप्त हुआ, वहां से सत्य शुरू होता है। अब ये वेदांत की दृष्टि वाले लोग भी आर्य जीवन-दृष्टि के हिस्से थे। इससे कोई झगड़ा नहीं था।
उपनिषद इतना ही विरोधी है वेद का, जितना कि बौद्ध विचारक या जैन विचारक--महावीर या बुद्ध। उपनिषद के ऋषि वेद के इतने ही विरोध में हैं। और इतनी सख्त बातें कही हैं कि हैरानी होती है। ऐसी सख्त बातें कही हैं वेद के क्रियाकांडी ब्राह्मणों के लिए उपनिषद तक ने कि आश्चर्य होता है। लेकिन तब तक कोई संप्रदाय नहीं हैं। तब तक सभी एक परिवार के सभी तरह के विचारक हैं। वे सभी एक परिवार की शाखाएं हैं, जो लड़ते भी हैं, झगड़ते भी हैं, विरोध भी करते हैं, लेकिन अभी कोई जन्मना--ऐसा भेद नहीं पड़ गया है कि आदमी जन्म से किसी संप्रदाय का हिस्सा हो गया।
महावीर के साथ पहली दफा आर्य जीवन-पद्धति में एक अलग रास्ता टूट गया। फिर श्रमण जीवन-पद्धति में भी बुद्ध के साथ अलग रास्ता टूट गया। ऐसे ही जैसे एक वृक्ष होता है। नीचे पीड़ होती है, वह तो एक ही होती है। फिर पीड़ एक जगह से दो शाखाओं में टूट जाती है। फिर एक-एक शाखा भी बहुत सी शाखाओं में टूट जाती है। अब हम जो शाखाओं पर बैठे हों, तो हम पूछ सकते हैं कि पीड़ के समय में हमारी शाखा कहां थी? थी जरूर, पर पीड़ में इकट्ठी एक ही जगह थी।
तो भारत में भी जो विचार का विकास हुआ है, वह वृक्ष की भांति है। उसमें पीड़ तो आर्य जीवन-पद्धति है। फिर उसमें दो शाखाएं टूटीं--एक हिंदू, एक श्रमण। फिर श्रमण में भी दो शाखाएं टूट गईं--बौद्ध और जैन। और फिर हिंदुओं में भी जीवन-दर्शन की अनेक शाखाएं टूटी हैंः सांख्य, वैशेषिक, योग, मीमांसा, वेदांत--ये सब टूटी हैं।

प्रश्नः अब यह संप्रदाय जो आपने कहा, संप्रदाय तो महावीर के बाद में मालूम होता है।

हां-हां, वही मैं कह रहा हूं न!

प्रश्नः महावीर के टाइम पर तो नहीं?

नहीं-नहीं, महावीर के साथ ही टूट गया। अनुभव बहुत बाद में होता है हमें। महावीर के साथ ही टूट गया। महावीर पहले सुसंबद्ध चिंतक हैं जैनों के इस तीर्थंकरों की धारा में।
और महावीर के समय में यह भी भारी विवाद था कि चौबीसवां तीर्थंकर कौन। इसके लिए गोशाला भी दावेदार था। दावेदार था वह कि चौबीसवां मैं हूं। क्योंकि तेईस तीर्थंकर हो गए थे और चौबीसवें की तलाश थी कि चौबीसवां कौन! और जो भी व्यक्ति चौबीसवां सिद्ध हो सकता था, वह निर्णायक होने वाला था, क्योंकि वह अंतिम होने वाला था--एक। दूसरा--उसके वचन सदा के लिए आप्त हो जाने वाले थे, क्योंकि पच्चीसवें तीर्थंकर की बात नहीं थी। तो भारी विवाद

था महावीर के समय में। उसमें ये जितने--अजित केशकंबल और संजय और मक्खली गोशाल--ये सब के सब दावेदार थे चौबीसवें तीर्थंकर होने के। परंपरा अपना अंतिम व्यक्ति खोज रही थी कि उसको अंतिम सुसंगति देने वाला व्यक्ति उपलब्ध हो जाए।
तो बुद्ध के और महावीर के समय में कोई आठ तीर्थंकर के दावेदार थे। इन
आठ में महावीर विजेता हो गए। परंपरा ने उनमें सब पा लिया जो उसे पाने जैसा लगता था। और वह सील-मोहर बन गए।
संप्रदाय तो फिर धीरे-धीरे बनता है। महावीर के मन में संप्रदाय का सवाल भी नहीं है। कि महावीर संप्रदाय बना रहे हैं, ऐसा सवाल भी नहीं है। नहीं, लेकिन बनाने वाले महावीर ही हैं। महावीर के मन में है या नहीं, यह सवाल नहीं है। महावीर ने जितनी सुसंबद्ध रूप-रेखा दे दी श्रमण जीवन-दृष्टि को, उतनी ही धारा बंध गई।
फिर तो पीछे से घोषणा करने वाले आएंगे अलग होने की। महावीर को अलग होने की घोषणा भी नहीं है। लेकिन अलग होने की घोषणा और न घोषणा का सवाल नहीं है, सवाल यह है कि उन्होंने जितना सुसंबद्ध रूप दे दिया, उससे वह संप्रदाय बना।
संप्रदाय शब्द बहुत पीछे जाकर बदनाम हुआ। शब्द तो बहुत बढ़िया है, संप्रदाय शब्द बहुत बढ़िया है। अंग्रेजी के सेक्ट से उसका मतलब नहीं है। यह तो बहुत पीछे जाकर गंदा हुआ। बहुत पीछे जाकर गंदा हुआ, नहीं तो गंदगी की कोई बात न थी। संप्रदाय का कुल मतलब इतना था कि जहां से मुझे जीवन-दृष्टि मिलती है, जहां से मुझे मार्ग मिलता है, जहां से मुझे प्रकाश मिलता है, तो मुझे हक है उस प्रकाश की धारा में बहने का और चलने का। जो मुझे सत्य दिखाई पड़ता है, उसे मुझे मानने का हक है।
फिर महावीर की बात तो बहुत अदभुत है। यानी महावीर से ज्यादा गैर-सांप्रदायिक चित्त खोजना कठिन है। लेकिन संप्रदाय के जन्मदाता वे ही हैं। गैर-सांप्रदायिक चित्त का मतलब यह होता है, गैर-सांप्रदायिक चित्त और ही बात है, नॉन-सेक्टेरियन माइंड। महावीर के पास सांप्रदायिक चित्त नहीं है। क्योंकि शायद सारी पृथ्वी पर ऐसा दूसरा आदमी ही नहीं हुआ, जिसके पास इतना गैर-सांप्रदायिक चित्त हो। क्योंकि जो किसी भी बात को सापेक्ष दृष्टि से सोचता हो, उसके चित्त में सांप्रदायिकता नहीं हो सकती। बहुत बाद में आइंस्टीन ने रिलेटिविटी की बात कही है। विज्ञान के जगत में सापेक्ष की बात आइंस्टीन ने अब कही, धर्म के जगत में महावीर ने पच्चीस सौ साल पहले कही। बहुत कठिन था उस वक्त यह कहना, क्योंकि उस वक्त आर्य-धारा बहुत टुकड़ों में टूट रही थी। और प्रत्येक टुकड़ा पूर्ण सत्य का दावा कर रहा था।
असल में सांप्रदायिक चित्त का मतलब यह है कि जो यह कहता हो कि सत्य यहीं है और कहीं नहीं। सांप्रदायिक चित्त का मतलब यह होता है कि सत्य का ठेका मेरे पास है और किसी के पास नहीं। और सब असत्य है, सत्य मैं ही हूं-- ऐसा जहां आग्रह हो, वहां सांप्रदायिक चित्त है। लेकिन जहां इतना विनम्र निवेदन हो कि मैं जो कह रहा हूं, वह भी सत्य हो सकता है, उससे भी सत्य तक पहुंचा जा सकता है, तो संप्रदाय निर्मित होगा लेकिन सांप्रदायिक चित्त नहीं होगा वहां। संप्रदाय तो निर्मित होगा। निर्मित होगा इन अर्थों में कि कुछ लोग जाएंगे उस दिशा में, खोज करेंगे, पाएंगे, चलेंगे, अनुगृहीत होंगे उस पंथ की तरफ, उस विचार की तरफ।
महावीर एकदम ही गैर-सांप्रदायिक चित्त हैं। बहुत ही अदभुत है उनकी दृष्टि तो। वे तो जहां बिल्कुल ही कुछ न दिखाई पड़ता हो वहां भी कहते हैं कि कुछ न कुछ होगा। चाहे दिखाई न पड़ता हो तो भी कुछ न कुछ सत्य होगा। क्योंकि वे कहते यह हैं कि पूर्ण सत्य भी नहीं होता, पूर्ण असत्य भी नहीं होता। असत्य से असत्य में भी सत्य का अंश होता है। सत्य से सत्य में भी असत्य का अंश होता है। वे कहते यह हैं कि इस जगत पर, इस पृथ्वी पर पूर्ण जैसी चीज नहीं होती। यहां तो सब चीजें अपूर्ण होती हैं।
तो अगर उनसे कोई पूछे कि ऐसा है? तो वे कहेंगे हां है, और साथ ही यह भी कहेंगे कि नहीं भी हो सकता है! और यह भी कहेंगे, हो भी सकता है, नहीं भी हो सकता है!

और यह भी एक कारण बना, महावीर की जो सापेक्षता है, वह भी कारण बना कि महावीर के अनुयायियों और प्रेमियों की संख्या बहुत नहीं बढ़ सकी। क्योंकि संख्या बढ़ने में फैनेटिसिज्म जरूरी हिस्सा है। संख्या तब बढ़ती है, जब दावा पक्का और मजबूत हो कि जो हम कह रहे हैं, वही सही है; और जो दूसरे लोग कह रहे हैं, सब गलत है। तब पागल इकट्ठे होते हैं, क्योंकि इस दावे में उनको रस मालूम होता है। लेकिन एक आदमी कहेः यह भी सही, वह भी सही, तुम जो कहते हो वह भी ठीक, हम जो कहते हैं वह भी ठीक; तीसरा जो कहता है वह भी ठीक; तो ऐसे आदमी के पास पागल इकट्ठे नहीं हो सकते; क्योंकि वे कहेंगे इस आदमी की बातों में क्या मतलब है! यानी यह तो सभी को ठीक कहता है। यह कहता है नास्तिक भी ठीक है, आस्तिक भी ठीक है; क्योंकि दोनों में ठीक का कोई अंश है। तो इसके पास पागल समूह इकट्ठा नहीं हो सकता।
अगर फैनेटिक्स इकट्ठे करने हों तो दावा पक्का मजबूत होना चाहिए। और दावा इतना पक्का मजबूत होना चाहिए कि उसमें संशय की जरा भी रेखा न हो। क्योंकि महावीर की बातों में संशय की रेखा मालूम पड़ती है; वह संशय नहीं है, प्रोबेबिलिटी है, डाउट नहीं है। लेकिन साधारण आदमी को समझना मुश्किल होता है कि संभावना और संशय में क्या फर्क है।
महावीर से कोई कहे, ईश्वर है? तो महावीर कहेंगे, हो भी सकता है, नहीं
भी हो सकता है। किसी अर्थ में हो सकता है, किसी अर्थ में नहीं हो सकता है। यह महावीर सिर्फ सब सत्यों की संभावनाओं की बात कर रहे हैं। वे यह नहीं कह रहे हैं कि मुझे संशय है कि ईश्वर है या नहीं। वे यह नहीं कह रहे कि आई डाउट, कि मैं संशय करता हूं कि ईश्वर है या नहीं। वे यह कह रहे हैं कि प्रोबेबिलिटी है, संभावना है ईश्वर के होने की भी, न होने की भी। संभावना इस कारण है, संभावना इस कारण नहीं है। अगर कोई ऐसा मानता हो कि आत्मा परम शुद्ध होकर परमात्मा हो जाती है, तो ठीक ही कहता है, ऐसा है। और अगर कोई ऐसा मानता हो कि परमात्मा कहीं दूर बैठा हुआ हम सबको खिलौनों की तरह नचा रहा है, तो ऐसा नहीं है। जब वे कहते हैं कि ईश्वर है और ईश्वर नहीं है--दोनों एक साथ--तो ईश्वर के अर्थों में वे भेद करते हैं।
लेकिन महावीर की इतनी सूक्ष्म दृष्टि फैनेटिक नहीं बनाई जा सकती, क्योंकि दूसरे को गलत एकदम से नहीं कहा जा सकता। और जहां दूसरे को एकदम से गलत न कहा जा सकता हो, वहां अनुयायी इकट्ठे करना बहुत मुश्किल है, एकदम असंभव है। क्योंकि अनुयायी पक्का मान कर आना चाहता है। अनुयायी सिक्योरिटी पूरी चाहता है। वह यह चाहता है कि यह आदमी खुद ही संदिग्ध दिखता है। यह आदमी कहता है, कभी ऐसा है, कभी वैसा है; इस आदमी को खुद ही पक्का अभी पता है या नहीं? यह गुरु होने के योग्य भी है या नहीं? इसकी बात का भरोसा क्या? सुबह कुछ कहता, दोपहर कुछ कहता, सांझ कुछ कहता है! तो अभी इसका खुद का ही कुछ ठिकाना नहीं हो पाया है तो हम इसके पीछे कैसे जाएं?
जब एक आदमी जोर से टेबल पर घूंसा मार कर कहता है कि जो मैं कहता हूं, वह परम सत्य है और बाकी सब गलत है, तो जितने हमारे भीतर कमजोर बुद्धि के लोग हैं, वे उससे एकदम प्रभावित हो जाते हैं।
कमजोर बुद्धि के लिए दावा चाहिए, मजबूत सर्टेन्टी चाहिए। बहुत बुद्धिमान आदमी सर्टेन्टी से चौंक जाता है। बहुत बुद्धिमान आदमी, अगर कोई आदमी दावे से कहे कि यही ठीक है, तो बहुत बुद्धिमान आदमी जरा चौंक जाएगा कि यह आदमी कुछ गलत होना चाहिए, क्योंकि ठीक का इतना दावा बुद्धिमान आदमी नहीं करता। बुद्धिमान आदमी हेजीटेट करता है, झिझक लाता है, क्योंकि जिंदगी बड़ी जटिल है। वह इतनी सरल नहीं है कि हमने कह दिया कि बस ऐसा है। जिंदगी इतनी जटिल है कि उसमें विरोधी के भी सच होने की सदा संभावना है। इसलिए जो आदमी जितना बुद्धिमान होता चला जाता है, उतने उसके वक्तव्य स्यात होते चले जाते हैं। वह कहता है, स्यात ऐसा हो। फिर वह एकदम से ऐसा नहीं कह देता, ऐसा है ही। लेकिन बुद्धिमान की यह जो बात है, इसे समझने को भी बुद्धिमान ही चाहिए। बुद्धिहीनों को यह बात नहीं जंचेगी।
तो दुनिया में जिन्होंने जितने ज्यादा बुद्धिहीन दावे किए, उनकी संख्या उतनी ज्यादा हो गई। बुद्धिहीन दावा चाहिए, एकदम फैनेटिक असर्शन चाहिए आम आदमी के लिए कि एक ही अल्लाह है और उसके सिवाय दूसरा कोई अल्लाह नहीं। तो फिर आदमी को समझ में आता है कि यह पक्का जानने वाला आदमी है, जो

साफ दावा कर रहा है, और जिसके हाथ में तलवार भी है कि अगर तुमने गलत कहा तो हम सिद्ध कर देंगे तलवार से कि तुम गलत हो। कमजोर बुद्धि के लोगों को तलवार भी सिद्ध करती है। बुद्धिमान आदमी तो जिसके हाथ में तलवार देखेगा उसको गलत मान ही लेगा कि तलवार से कहीं सिद्ध होना है कि क्या सही है और क्या गलत है!
तो दुनिया में जितने दावेदार पैदा हुए, उतनी ज्यादा उन्होंने संख्या इकट्ठी कर ली। महावीर संख्या इकट्ठी नहीं कर सके। संख्या इकट्ठी करना बहुत मुश्किल था, एकदम असंभव ही था। क्योंकि महावीर किसको प्रभावित करेंगे?
जो आदमी आता है... गुरु के पास आदमी आता इसलिए है कि आश्वासन मिल जाए पक्का। तो जो गुरु उससे कहता है कि लिख कर चिट्ठी देते हैं हम तुम्हें कि स्वर्ग में तुम्हारी जगह निश्चित रहेगी, वह गुरु समझ में आता है। जो गुरु कहता है कि पक्का रहा, मैं तुझे बचाने वाला रहूंगा, जब सब नरक में जा रहे होंगे, तब मुझे जो मानता है, वह बचा लिया जाएगा, तब वह मानता है कि यह आदमी ठीक है, इसके साथ चलने में कोई अर्थ है।
महावीर का कोई भी दावा नहीं है। इतना गैर-दावेदार आदमी ही नहीं हुआ है। कोई दावा ही नहीं है। आप जो भी कहें... और उसने तो सत्य को इतने कोणों से देखा है, जितना किसी ने कभी नहीं देखा।
त्रिभंगी दुनिया में महावीर से पहले थी। चीजों में तीन संभावनाओं की स्वीकृति महावीर से पूर्व से चली आती थी। जैसे कि कोई कहे यह घड़ा है, तो त्रिभंगी का मतलब यह था कि घड़ा है, घड़ा नहीं भी है। क्योंकि मिट्टी ही तो है, घड़ा कहां है? घड़ा है भी, नहीं भी है। घड़े के अर्थ में घड़ा है भी और मिट्टी के अर्थ में नहीं भी है। मिट्टी के अर्थ में मिट्टी ही है, घड़ा नहीं है। तो हम क्या अर्थ लेते हैं... एक आदमी कह सकता है कि यह तो मिट्टी है, घड़ा कहां? तो उसको गलत कैसे कहोगे? मिट्टी ही तो है। जैसे एक आदमी कहे कि नहीं मिट्टी है ही नहीं, यह तो घड़ा है। क्योंकि मिट्टी तो वह पड़ी बाहर, उसमें इसमें भेद है। तो उसे भी सही मानना पड़ेगा। तो सत्य के तीन कोण हो सकते हैंः है, नहीं है, दोनों है--नहीं भी और है भी। यह तो महावीर के पहले थी।
महावीर ने त्रिभंगी को सप्तभंगी किया। कहा कि तीन से काम नहीं चलेगा, सत्य और भी जटिल है। इसमें चार स्यात और जोड़ने पड़ेंगे। तो बहुत ही अदभुत बात बनी। लेकिन बात कठिन होती चली गई और उलझ गई और साधारण आदमी के पकड़ के बाहर हो गई। ये तीन बातें ही पकड़ के बाहर हैं, लेकिन फिर भी समझ में आती हैं।
घड़ा सामने रखा है। कोई कहता है, घड़ा है। हम कहते हैं, हां, घड़ा है। लेकिन हम एकदम ऐसा नहीं कहते कि हां, घड़ा है। हम कहते हैं, स्यात घड़ा है, क्योंकि दूसरी संभावना बाकी है कि कोई कहे कि मिट्टी ही है, घड़ा कहां। तो हम सिद्ध न कर पाएंगे कि घड़ा कहां है। तो हम कहते हैं, स्यात घड़ा है। स्यात घड़ा नहीं भी है। स्यात घड़ा है भी और नहीं भी है।
महावीर ने इसमें चौथा--चौथी भंग जोड़ी और कहा, स्यात अनिर्वचनीय है। स्यात कुछ ऐसा भी है, जो नहीं कहा जा सकता। यानी इतने से ही काम नहीं चलता है। मिट्टी है, घड़ा है, यह भी ठीक है, लेकिन कुछ बात ऐसी भी है जो नहीं कही जा सकती, जिसे कहना ही मुश्किल है। क्योंकि घड़ा अणु भी है, परमाणु भी है, इलेक्ट्रान भी है, प्रोटान भी है, विद्युत भी है--सब है। और इस सबको इकट्ठा कहना मुश्किल है। घड़ा जैसी छोटी चीज भी इतनी ज्यादा है कि इसको अनिर्वचनीय कहना पड़ेगा।
और एक बात तो पक्की है कि घड़े में जो है-पन है, जो एक्झिस्टेंस है, जो होना है, वह तो अनिर्वचनीय है ही। क्योंकि है की क्या परिभाषा? एक्झिस्टेंस का क्या अर्थ? अस्तित्व का क्या अर्थ? घड़े का भी अस्तित्व है। और अस्तित्व अनिर्वचनीय है। अस्तित्व तो ब्रह्म है।
तो महावीर ने चौथा जोड़ाः स्यात घड़ा अनिर्वचनीय है। पांचवां जोड़ा कि स्यात है और अनिर्वचनीय है। छठवां जोड़ा कि स्यात नहीं है और अनिर्वचनीय है। और सातवां जोड़ा कि स्यात है भी और नहीं भी है और अनिर्वचनीय है। अब यह बात इतनी जटिल होती चली गई, इसलिए अनुयायी खोजना मुश्किल है।

प्रश्नः इसे दुबारा स्पष्ट कर दीजिए!

यह सत्य को सात कोणों से देखा जा सकता है, यह महावीर का कहना है। और बड़ी अदभुत बात है, आठवें कोण से नहीं देखा जा सकता। सात अंतिम कोण हैं। इसलिए सप्तभंग, सात दृष्टियों से सत्य को देखा जा सकता है। और जो एक ही दृष्टि का दावा करता है, वह छह अर्थों में असत्य दावा करता है। क्योंकि छह दृष्टियां वह नहीं कह रहा है। और जो एक ही दृष्टि को कहता है यही पूर्ण सत्य है, वह जरा अतिशय कर रहा है, वह सीमा के बाहर जा रहा है। वह इतना ही कहे कि एक दृष्टि से यह सत्य है, तो महावीर को किसी से झगड़ा ही नहीं है--किसी से भी। यानी ऐसा कोई विचार ही नहीं है, जिससे महावीर का झगड़ा हो। अगर वह विचार इतना कहे कि इस दृष्टि से मैं यह कहता हूं, तो महावीर कहेंगे, इस दृष्टि से यह सत्य है। लेकिन इससे उलटा आदमी आए और वह कहे कि इस दृष्टि से यह मैं कहता हूं असत्य है, तो महावीर उससे कहेंगे, तुम भी ठीक कहते हो। इस दृष्टि से यह असत्य है।
लेकिन तीन की दृष्टि बहुत पुरानी थी। साफ था कि तीन तरह से सोचा जा सकता हैः है, नहीं है, दोनों है--है भी, नहीं भी। महावीर ने इसमें चार और दृष्टियां जोड़ी हैं। चौथी दृष्टि ही कीमती है, फिर बाकी तो उसी के ही रूपांतरण हैं, वह अनिर्वचनीय की दृष्टि। कि कुछ है, जो नहीं कहा जा सकता। कुछ है, जिसे समझाया नहीं जा सकता। कुछ है, जो अव्याख्य है। कुछ है, जिसकी कोई व्याख्या नहीं हो सकती। वह छोटे से घड़े में भी है। वह कुछ यानी अस्तित्व। वह अस्तित्व बिल्कुल ही व्याख्या के बाहर है। उसकी हम क्या व्याख्या करें?
अब यह बड़े मजे की बात है। उपनिषद कहते हैं, ब्रह्म की व्याख्या नहीं
हो सकती। बाइबिल कहती है, ईश्वर की व्याख्या कैसे हो सकती है! लेकिन महावीर कहते हैं ईश्वर, ब्रह्म तो बड़ी बातें हैं, घड़े की भी व्याख्या नहीं हो सकती। यानी ईश्वर और ब्रह्म को छोड़ दो, क्योंकि घड़े में भी एक तत्व है ऐसा, अस्तित्व, जो उतना ही अव्याख्य है जितना ब्रह्म। छोटी से छोटी चीज में वह मौजूद है जो अनिर्वचनीय है। इसलिए वह चौथी भंग जोड़ते हैं कि स्यात अनिर्वचनीय है। लेकिन उसमें भी स्यात लगाते हैं। जो खूबी है महावीर की वह बहुत ही अदभुत है। वे ऐसा भी नहीं कह देते कि अनिर्वचनीय है। क्योंकि वे कहते हैं, यह भी दावा ज्यादा हो जाएगा। इसलिए ऐसा कहो, मे बी, स्यात। स्यात से कभी भी महावीर कोई वचन नीचे नहीं उतारते, वे जो भी कहते हैं, स्यात पहले लगा ही देते हैं। लेकिन स्यात का मतलब शायद नहीं है। स्यात का मतलब शायद नहीं है, शायद में संदेह है। नहीं, महावीर जब कहते हैं कि स्यात, तो उसका मतलब है, ऐसा भी हो सकता है, इससे अन्यथा भी हो सकता है। स्यात शब्द में दो बातें जुड़ी हैं--ऐसा है, इससे अन्यथा भी है। इसलिए कोई दावा नहीं है। इसलिए कोई दावा नहीं है।
और तब वह अनिर्वचनीय पर फिर तीन भंगियों को वापस दोहरा देते हैं। वे कहते हैं, है और अनिर्वचनीय है। कोई चीज है और अनिर्वचनीय है। लेकिन ऐसा भी हो सकता है, कोई चीज नहीं है और अनिर्वचनीय है, जैसे शून्य। शून्य है तो नहीं। शून्य का मतलब ही है, जो नहीं है। लेकिन शून्य अनिर्वचनीय है। सिर्फ इसलिए कि नहीं है, तुम ऐसा मत समझ लेना कि उसकी व्याख्या हो सकती है। न होते हुए भी वह अव्याख्य है। और सातवां वे जोड़ते हैं--है भी, नहीं भी है और अनिर्वचनीय भी है।
तो इन सात कोणों से सत्य को देखा जाने पर, इन सातों ही कोणों से जो व्यक्ति बिना किसी दृष्टि से बंधे देखने में समर्थ है, वह पूरे सत्य को जानने में समर्थ हो जाएगा। लेकिन बोलने में समर्थ नहीं होगा। पूरा सत्य तो जब भी बोला जाएगा, तब इन्हीं भंगियों में बोलना पड़ेगा।
इसलिए महावीर से आप पूछने जाएं, ईश्वर है? तो वे सात उत्तर देते हैं!
तो आप चुपचाप घर चले आते हैं कि इस आदमी से क्या लेना-देना। हम साफ उत्तर चाहते हैं। हम पूछने गए हैं, ईश्वर है? तो हम चाहते हैं कि कोई कहे है, कोई कहे नहीं है--बात खतम करे।

आप महावीर से पूछने जाते हैं, वे कहते हैं, स्यात है भी, स्यात नहीं भी है। स्यात है भी, नहीं भी, स्यात अनिर्वचनीय है। स्यात है, अनिर्वचनीय है; स्यात नहीं है, अनिर्वचनीय है। स्यात है भी, नहीं भी है, अनिर्वचनीय है। आप घर लौट आते हैं कि इस आदमी से कुछ लेना-देना नहीं है। क्योंकि इस आदमी से हम उतने ही उलझे लौटे, जितने हम गए थे। क्योंकि इस आदमी से हम उत्तर लेने गए थे, इस आदमी ने उत्तर दिया है, लेकिन इतना पूरा उत्तर देने की कोशिश की है कि कम बुद्धि को वह उत्तर पकड़ में नहीं आ सकता।
इसलिए महावीर का अनुगमन नहीं बढ़ सका। महावीर के अनुयायी बढ़े ही नहीं। महावीर के जीवन में जो लोग महावीर से प्रभावित हुए थे, फिर उनकी संतति भर ही महावीर के पीछे चलती रही अंधे की तरह। नए लोग नहीं आ सके, क्योंकि महावीर जैसा व्यक्ति ही पैदा नहीं कर सकी वह परंपरा फिर। क्योंकि उसके लिए बड़ा अदभुत व्यक्ति चाहिए जो इतने भिन्न कोणों से लोगों को आकर्षित कर सके। सीधी-सीधी बात से आकर्षित करना बहुत सरल है। इतनी जटिल बात में आकर्षित करना बहुत कठिन है।
इसलिए महावीर के सीधे संपर्क में जो लोग आए थे, फिर उनके बच्चे ही पीछे खड़े होते चले गए। और जन्म से कोई धर्म का संबंध नहीं है। इसलिए जैन जैसी कोई चीज है नहीं दुनिया में। वे महावीर के साथ ही खतम हो गए। जन्म से कोई संबंध ही नहीं है। इसलिए इस समय पृथ्वी पर जैन जैसी कोई जाति नहीं है। ये सब जन्म से जैन लोग हैं। इनको कुछ पता ही नहीं है।
और बड़े मजे की बात तो यह है कि ये जो जन्म से जैन हैं, ये ऐसे दावे करते हैं, जो महावीर सुन लें तो बहुत हंसें। इनके दावे सब ऐसे हैं, जो महावीर के उलटे हैं। क्योंकि ये कहेंगे कि महावीर तीर्थंकर हैं। खुद महावीर कहेंगे, स्यात हो भी सकता है, स्यात नहीं भी हो सकता है।

प्रश्नः ऐसा हर धर्म में होगा?

हां, हर धर्म में है। लेकिन जैनों में बहुत ज्यादा है। उसका कारण है
कि जो बात थी, वह इतनी जटिल है कि उसे सिर्फ जन्म से नहीं पकड़ा जा सकता किसी भी हालत में। जैसे मैं मानता हूं, एक आदमी जन्म से मुसलमान हो सकता है, क्योंकि बात बहुत सरल है, बात में कुछ ज्यादा गहराई नहीं है, बहुत गहराई नहीं है। इसलिए एक आदमी जन्म से भी मुसलमान हो सकता है। बात ही बहुत गहरी नहीं है। जन्म से कोई सूफी नहीं हो सकता, क्योंकि बात बहुत गहरी है। सूफी मुसलमानों का ही फकीरों का एक हिस्सा है, लेकिन जन्म से कोई सूफी नहीं हो सकता। सूफी होने के लिए तो होना ही पड़ेगा। कोई यह कहे कि मेरे बाप सूफी थे, इसलिए मैं सूफी हूं, तो कोई नहीं मानेगा। मुसलमान हो सकता है, कोई दम नहीं है उसमें।
जन्म से जैन होना बिल्कुल ही मुश्किल है मामला, असंभव ही है। उसका कारण यह है कि वह मामला ही सूफियों जैसा है। वह बिल्कुल ही साधना से उपलब्ध हो, जिन बन जाओ, तो ही जैन बन सकते हो। यानी वह जीत न लो जब तक, बनने का उपाय नहीं है कुछ। और बात इतनी जटिल है, इतनी जटिल है जिसका कोई हिसाब नहीं, जटिलतम है। क्योंकि जीवन ही जटिल है। महावीर कहते हैं कि जीवन ही इतना जटिल है, हम उसको सरल करें, झूठ हो जाता है।
जैसे कि अरस्तू का तर्क है। दुनिया में दो ही तर्क हैं, एक अरस्तू का तर्क है और एक महावीर का तर्क है। दुनिया में कोई तीसरा तर्क नहीं है। दो ही लाजिक हैं दुनिया में, एक अरस्तू का और एक महावीर का। सारी दुनिया अरस्तू के तर्क को मानती है, महावीर के तर्क को कोई मानता नहीं। क्योंकि अरस्तू का तर्क सीधा है, यद्यपि झूठ है।
अरस्तू का तर्क यह है कि अ अ है और अ कभी ब नहीं हो सकता। ए इज़ ए एंड ए कैन नाट बी बी। बी इज़ बी एंड बी कैन नाट बी ए। तर्क यह है कि अ अ है--साफ। और अ कभी ब नहीं हो सकता। ब ब है, ब कभी अ नहीं हो सकता। यह अरस्तू का तर्क है। सारी दुनिया अरस्तू के तर्क को मानती है। वह मानती यह है कि पुरुष पुरुष है, स्त्री स्त्री है; पुरुष स्त्री नहीं हो सकता, स्त्री पुरुष नहीं हो सकती। तर्क यह है, काला काला है, सफेद सफेद है; सफेद काला नहीं, काला सफेद नहीं। अंधेरा अंधेरा है, उजाला उजाला है, ऐसा साफ डिस्टिंक्शन है अरस्तू

का। वह चीजों को तोड़ कर अलग-अलग कर देता है। वह कहता है, तर्क का मतलब ही यह है कि सफाई पैदा हो।
महावीर कहते हैं, अ अ भी हो सकता है, अ ब भी हो सकता है। अ यह भी हो सकता
है कि अ भी न हो, ब भी न हो, और अ अनिर्वचनीय है। महावीर कहते ही यह हैं। महावीर का... दो ही तर्क हैं जगत में। महावीर कहते हैं कि स्त्री स्त्री भी है, पुरुष भी है। पुरुष पुरुष भी है, स्त्री भी है। पुरुष स्त्री भी हो सकती है, स्त्री पुरुष भी हो सकता है। और अनिर्वचनीय भी है, हो भी सकते हैं, नहीं भी हो सकते हैं। इस तर्क को समझना बहुत मुश्किल मामला है। लेकिन सच महावीर ही हैं।
जिंदगी इतनी सरल नहीं है, जैसा अरस्तू समझता है। जिंदगी में कोई चीज न काली है, न सफेद है; जिंदगी में सब चीज ग्रे हैं। काले और सफेद का भेद बिल्कुल काल्पनिक है। कोई स्थान ऐसा नहीं है, जो बिल्कुल अंधेरा है; और कोई स्थान ऐसा नहीं है, जो बिल्कुल प्रकाशित है। असल में गहरे से गहरे प्रकाश में भी अंधकार की मौजूदगी है और अंधकार से अंधकार जगह में भी प्रकाश की मौजूदगी है। ठीक तौला नहीं जा सकता। जिंदगी बिल्कुल घुली-मिली है। कौन सी चीज ऐसी है जो बिल्कुल ठंडी है और गरम नहीं है? और कौन सी ऐसी चीज है जो बिल्कुल गरम है और ठंडी नहीं है? बिल्कुल सापेक्ष बातें हैं। ऐसा कुछ भी नहीं है साफ टूटा हुआ।
तो महावीर कहते हैं, जिंदगी बिल्कुल जुड़ी है, एकदम जुड़ी है। एक पैर जिंदगी है, दूसरा पैर मौत है और दोनों पैर साथ चल रहे हैं। ऐसा नहीं है कि एक आदमी जिंदा है और एक आदमी मरा है। मरना और जीना बिल्कुल साथ-साथ चल रहा है। अंधेरा और प्रकाश बिल्कुल एक ही चीज के हिस्से हैं।
अरस्तू के तर्क से गणित निकलता है, क्योंकि गणित सफाई चाहता है कि दो
और दो चार होने चाहिए। और महावीर के गणित से तो दो और दो चार नहीं होते, कभी पांच भी हो सकते हैं, कभी तीन भी हो सकते हैं। ऐसा पक्का नहीं है कि दो और दो चार ही होंगे। जिंदगी इतनी तरल है, इतनी ठोस नहीं है, ऐसी मुर्दा भी नहीं है। तो वहां दो और दो कभी पांच भी हो जाते हैं, कभी दो और दो तीन भी रह जाते हैं।
तो महावीर के तर्क से मिस्टिसिज्म निकलता है, और अरस्तू के तर्क से निकलती है मैथेमेटिक्स। अरस्तू के तर्क से आता है गणित और महावीर के तर्क से आता है रहस्य। क्योंकि रहस्य का मतलब ही यह है कि जहां हम साफ-साफ न बांट सकें कि ऐसा है।
तो महावीर की इस इतनी गहरी दृष्टि में उतरने के लिए केवल किसी के घर में जन्म लेना बिल्कुल ही व्यर्थ है। इससे कोई मतलब ही नहीं जुड़ता। इतनी गहरी दृष्टि के लिए तो इस गहरी दृष्टि में उतरने की ही जरूरत है। कोई उतरे तो ही उसे ख्याल में आ सके।
तो महावीर के पीछे जो वर्ग खड़ा हुआ, महावीर के इमीजिएट सीधे संपर्क में जो लोग आए थे, वे लोग महावीर से प्रभावित हुए होंगे। अब उनके बच्चों और उनके बच्चों के बच्चों का कोई संबंध नहीं है इस बात से। कोई संबंध ही नहीं है। और इसलिए वे यह भी भूल जाते हैं कि वे कह क्या रहे हैं। जैसे कि अगर कोई जैन मुनि कहता है कि जैन-दर्शन ही सत्य है तो वह भूल रहा है, उसको पता ही नहीं है कि यह तो महावीर कभी नहीं कह सकते। यानी अगर कोई जैन अनुयायी यह कहता है कि महावीर जो कहते हैं, वह ठीक है, तो उसे पता नहीं कि खुद महावीर इसको इनकार कर देंगे। महावीर खुद इसको इनकार कर देंगे।
यानी इतना अदभुत मामला है कि कोई अगर महावीर से यह भी पूछे कि जिस स्यातवाद की, जिस थिअरी ऑफ रिलेटिविटी की आप बात कर रहे हैं, क्या वह पूर्ण सत्य है? तो वे कहेंगे, स्यात। इसमें भी वे स्यात का ही उपयोग करेंगे। वे यह नहीं कह देंगे कि जो स्यातवाद मैंने कहा, यह जो थिअरी ऑफ प्रोबेबिलिटी समझाई कि हर चीजों के सात कोण हैं और सात तरह से देखा जा सकता है--कोई अगर पूछे कि यह तो परम सत्य है? तो महावीर कहेंगे, स्यात। हो भी सकता है, नहीं भी हो सकता है, अनिर्वचनीय है। इसके लिए भी वे यही कहेंगे।
तो यह जो जटिलता है, उसकी वजह से अनुयायी का आना बहुत कठिन हो गया, एकदम कठिन हो गया।

फिर महावीर की और भी बातें हैं, जो अनुयायी को आने में एकदम बाधा हैं। जैसे महावीर नहीं कहते कि मैं तुम्हारा कल्याण कर सकूंगा। वे कहते हैं, तुम ही अपना कर लो तो काफी। मैं कैसे कर सकूंगा? कोई किसी का नहीं कर सकता। अपना ही करना होगा। अनुयायी आता है इसलिए कि कोई कर दे। तो जब कोई कहता है कि मेरी शरण आ जाओ, मैं तुम्हें मोक्ष पहुंचा दूंगा, तो अनुयायी आता है। अब यह आदमी कहता है कि मेरी शरण से तुम मोक्ष नहीं पहुंच सकोगे। कोई किसी की शरण से कभी मोक्ष पहुंचा नहीं। तो कौन इसके पास आए? प्रयोजन क्या? स्वार्थ क्या? लाभ क्या? हम तो पूछते हैं, लाभ क्या है, प्रयोजन क्या है, हित कैसे सिद्ध होगा? यह आदमी कहता है कि अपने सिवाय और कोई किसी का हित सिद्ध कर नहीं सकता।
महावीर ने गुरु नहीं बनाया, यह बड़ी मूल्यवान बात है। सच बात यह है कि महावीर खुद भी किसी के गुरु बनना नहीं चाहते। गुरु का कोई प्रयोजन नहीं है। कोई प्रयोजन नहीं है। महावीर की दृष्टि ज्यादा से ज्यादा कल्याण मित्र बनने की है, कि मैं तुम्हारे कल्याण में मित्र बन सकता हूं, बस इससे ज्यादा नहीं। गुरु कोई किसी का नहीं बन सकता। क्योंकि गुरु चलता है आगे, शिष्य चलता है पीछे, मित्र चलता है साथ। यानी ज्यादा से ज्यादा तुम मेरे साथ चल सकते हो। मैं तुम्हारे आगे नहीं चल सकता, तुम मेरे पीछे नहीं चल सकते। और यह अपमान भी कोई किसी का कैसे करे कि किसी को पीछे चलाए!
मुल्ला नसरुद्दीन के जीवन में एक बहुत अदभुत कहानी है। मुल्ला नसरुद्दीन को उसके गांव के कुछ लड़कों ने, मदरसे के लड़कों ने आकर कहा कि हमारे स्कूल में आपका प्रवचन करवाना है, आप चलें। मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा, हम बिल्कुल तैयार हैं।
मुल्ला नसरुद्दीन अपने गधे पर सवार होकर चलने को हुए। तो लड़के बड़े हैरान हुए कि मुल्ला गधे पर उलटा बैठ गया। गधे का मुंह इस तरफ और मुल्ला का मुंह उस तरफ, और पीछे लड़कों को कर लिया। रास्ते में सब दुकानों के लोग झांक-झांक कर देखने लगे कि मुल्ला का दिमाग खराब हो गया! क्योंकि गधे पर उलटा बैठा हुआ है! और लड़के भी बड़े पेशोपस में पड़ने लगे, क्योंकि उसके साथ वे भी बुद्धू बन रहे हैं।
तो एक लड़के ने कहा कि मुल्ला, अगर सीधे बैठ जाओ तो बड़ा अच्छा हो, क्योंकि बाजार और आगे बड़ा बाजार आता है, सब लोग देखेंगे और हम भी आपके साथ मुश्किल में पड़ गए हैं। तो मुल्ला ने कहा, तुम समझते नहीं हो, कारण है इसका। अगर मैं तुम्हारी तरफ पीठ करके बैठूं तो तुम्हारा अपमान हो जाए। और अगर तुम मेरे आगे चलो तो भी तुम्हें संकोच लगे कि वृद्ध के आगे कैसे चलें! तो फिर मैंने सोचा, यही तरकीब उचित है कि मैं गधे पर उलटा बैठ जाऊं, आमने- सामने होना अच्छा है। कोई किसी का अपमान नहीं करेगा।
यह जो मुल्ला है, यह बहुत अदभुत आदमी है। इसकी छोटी से छोटी मजाक में
भी बड़े गहरे से गहरे सत्य हैं। ऐसे वह बिल्कुल सीधा मजाक कर रहा है, लेकिन वह कह यह रहा है कि जो तुम्हारे आगे चलता है, वह भी अपमान करता है, और तुम अगर आगे चलते हो तो तुम उसका अपमान कर देते हो।
महावीर को बिल्कुल पसंद नहीं है। न तो उनके आगे किसी को रखना पसंद है, इसलिए कोई गुरु नहीं बनाया, न अपने पीछे किसी को रखना पसंद है, इसलिए किसी को अनुयायी नहीं बनाया। वे कहते हैं, कोई किसी का कल्याण नहीं कर सकता, कोई किसी को स्वर्ग नहीं ले जा सकता, कोई किसी का मुक्तिदाता नहीं है। प्रत्येक को स्वयं होना पड़ेगा। इसलिए अनुयायी होने के सारे रास्ते तोड़े डाल रहे हैं। साथ हो सकते हैं। अनुगमन नहीं हो सकता, सहगमन हो सकता है। इसलिए जो महावीर का अनुयायी है, वह तो समझ ही नहीं पाएगा। क्योंकि अनुयायी होकर ही उसने सब गलती कर दी है। और महावीर के साथ होना बड़ी हिम्मत की बात है। पीछे होना बड़ी सरल बात है। साथ होना बड़ी हिम्मत की बात है। साथ होने का मतलब है, उन सबसे गुजरना पड़ेगा जिससे महावीर गुजरते हैं। तो हम पीछे ही होना चाहते हैं। इसमें कुछ नहीं करना पड़ता। महावीर को चलना पड़ता है, हम पीछे होते हैं। और पीछे होने की वजह से कभी हम पर कोई इल्जाम भी नहीं हो सकता, क्योंकि हम तो सिर्फ अनुयायी हैं।
तो महावीर के आस-पास बड़ी संख्या नहीं उपस्थित हो सकी। छोटी संख्या उपस्थित हुई, बहुत छोटी संख्या उपस्थित हुई और वह निरंतर छोटी होती चली

गई। और अब करीब-करीब शाखा सूख गई बिल्कुल। अब उसमें कोई प्राण नहीं रह गए। अब वह बिल्कुल सूखी शाखा की तरह चल रहा है। जैसे बहुत दिन तक पत्ते गिर जाते हैं, शाखा सूख जाती है, फिर भी वृक्ष खड़ा रहता है, ऐसा हो गया है।
यह तोड़ा जा सकता है, अगर महावीर को ठीक से समझा जा सके तो यह फिर से तोड़ा जा सकता है। फिर इसमें नए अंकुर आ सकते हैं। और मैं मानता हूं, नए अंकुर आने चाहिए, क्योंकि महावीर... मैं किसी का अनुयायी नहीं, फिर भी चाहता हूं कि इस शाखा में नए अंकुर आने चाहिए। जैसे मैं चाहता हूं कि लाओत्से की शाखा में नए अंकुर आएं, जीसस की शाखा में आएं, क्योंकि ये सब वृक्ष बड़े अदभुत थे। और इन सब वृक्षों के नीचे न मालूम कितने लोगों को छाया मिल सकती है। ये सूख जाते हैं तो वह छाया मिलनी बंद हो जाती है। लेकिन मजा यह है कि जो इन वृक्षों के नीचे ठहर गए हैं, वे ही इनको सुखाने के कारण हैं। क्योंकि वे पानी नहीं देते वृक्ष को, पूजा करते हैं। अब पूजा से कहीं वृक्ष बढ़ते हैं? पूजा से वृक्ष सूखते हैं। पानी देने से वृक्ष बढ़ते हैं। पानी वे देते नहीं, वे सिर्फ पूजा करते हैं।
तो सब वृक्ष सूख गए हैं। चूंकि इस प्रसंग में महावीर की बात चलती है, इसलिए मैं कहता हूं कि कोई जैन नहीं है। एक सूखा हुआ वृक्ष है, एक स्मृति में, उसके नीचे खड़े हुए लोग हैं, जो पूजा कर रहे हैं।
और वे जो भी कर रहे हैं, उसका महावीर से कोई तालमेल नहीं है। क्योंकि महावीर जैसे अदभुत व्यक्ति से तालमेल बिठाना भी बहुत मुश्किल बात है। और अगर महावीर की जो मैंने समझाई स्यात की दृष्टि, हम समझ लें। और अगर यह स्यात की दृष्टि को ठीक से प्रकट किया जा सके तो आने वाले भविष्य में महावीर के वृक्ष के नीचे बहुत लोगों को छाया मिल सकती है। क्योंकि स्यात की भाषा रोज-रोज महत्वपूर्ण होती चली जाएगी। क्योंकि विज्ञान ने तो उसे एकदम ही स्वीकार कर लिया है।
आइंस्टीन की स्वीकृति बहुत अदभुत है। और इतने अदभुत मामलों में स्वीकार किया है कि हमारी कल्पना के बाहर है। जैसे अब तक समझा जाता था कि जो अणु है, जो अंतिम अणु है, परमाणु है--वह अणु है, एटम है। एटम का मतलब एक बिंदु है, जिसमें लंबाई-चौड़ाई नहीं है। लेकिन फिर प्रयोगों से पता चला कि कभी तो वह बिंदु की तरह व्यवहार करता है, एटम की तरह, और कभी वह लहर की तरह व्यवहार करता है, वेव की तरह। तो बड़ी मुश्किल हो गई। उसको क्या कहें हम? स्यात अणु है, स्यात लहर है। तो एक नया शब्द बनाना पड़ा क्वांटा। क्वांटा का मतलब है, जो दोनों है--बिंदु भी और लहर भी।
यह हो नहीं सकता। अगर हम कहें कि एक चीज बिंदु भी है और लकीर भी तो यूक्लिड आ जाएगा, उसकी आत्मा कहेगी, यह तुम क्या कर रहे हो? बिंदु बिंदु होता है, लकीर लकीर होती है, बिंदु लकीर कैसे हो सकता है? लकीर बिंदु कैसे हो सकती है? लेकिन क्वांटा का मतलब है कि जो परम अणु है, वह बिंदु भी है और लकीर भी। वह कण भी है और लहर भी। ये दोनों बातें कैसे हो सकती हैं? कण लहर कैसे हो सकता है? और लहर तो कण नहीं हो सकती।
लेकिन आइंस्टीन ने कहा कि दोनों संभावनाएं एक साथ हैं, इसलिए रिलेटिविटी। इसलिए ऐसा मत कहो कि बिंदु ही है, कण ही है। ऐसा कहो, स्यात बिंदु है, स्यात लहर है। आइंस्टीन ने वहां रिलेटिविटी को इतने जोर से सिद्ध कर दिया है कि सब चीजें डगमगा गई हैं। जो कल तक एब्सोल्यूट ट्रस्ट पर खड़ी थीं, जो निरपेक्ष सत्य का दावा करती थीं, वे सब डगमगा गई हैं। विज्ञान तो सापेक्ष के भवन पर खड़ा हो गया।
और इसीलिए मैं कहता हूं कि महावीर की स्यात की भाषा को अगर प्रकट किया
जा सके तो आने वाले भविष्य में महावीर ने जो कहा है, वह परम सार्थकता ले लेगा, जो उसने कभी नहीं ली थी। यानी आने वाले पांच सौ, हजार वर्षों में महावीर की विचार-दृष्टि बहुत ही प्रभावी हो सकती है। लेकिन उसके स्यात को प्रकट करना पड़े। वह जो उसमें प्रोबेबिलिटी की बात है, उसको प्रकट करना पड़े।
उससे जैनी खुद डरेगा। क्योंकि अनुयायी हमेशा स्यात से डरता है, क्योंकि स्यात सब डगमगा देता है। यानी उसका मतलब यह हुआ कि मधुशाला के लिए अगर कोई पूछे कि मधुशाला बुरी है? तो कहना पड़ेगा, स्यात बुरी है, स्यात अच्छी है; जाने वाले पर निर्भर है कि वह क्या करता है। कोई पूछे, मंदिर

अच्छा है? तो कहना पड़े, स्यात अच्छा है, स्यात बुरा है; जाने वाले पर निर्भर करता है कि वह मंदिर में क्या करता है।
महावीर तो ऐसा बोलेंगे, लेकिन अनुयायी ऐसे कैसे बोले? तब तो वह कहेगा
कि मधुशाला और मंदिर में फर्क करना मुश्किल हो जाएगा।
तो उसे तो पक्का कहना पड़ेगा, मधुशाला बुरी है और मंदिर अच्छा है। लेकिन तभी वह स्यात से मुक्त हो गया और निश्चय पर आ गया, सर्टेन्टी पर आ गया और बात खतम हो गई। महावीर के साथ चलना मुश्किल है, एकदम मुश्किल है। और इसलिए अनुयायी खड़े हो जाते हैं। और अनुयायी कभी भी किसी अर्थ के नहीं होते।

प्रश्नः मैं मानता ऐसा हूं कि जो कुछ आपने आज तक कहा, वह सब एक ही प्रश्न को विशेष रूप से जन्म देता है। और वह प्रश्न यह है कि आप जो कुछ कह रहे हैं, वह जैन परिभाषा में सम्यक दर्शन के नाम से कहा गया है। और आप इसी पर पूर्ण बल दे रहे हैं--आंतरिक विवेक, जागरूकता। पर एक सम्यक चारिष्य भी उसका अंग है और वह चारिष्य बाह्य रूप में भी प्रकट होता है। चाहे वह आता दर्शन में से ही है, पर उसका स्वयं का स्वरूप कुछ बाह्य में भी होता है। जैसे आप अगर अपरिग्रह को लें तो एक असंपृक्ति का अभाव यह तो उसका मूल है, मूर्च्छा का अभाव यह तो उसका मूल है, पर बाह्य में वह बाह्य पदार्थों की सीमा बंधती चली जाए, इस रूप में प्रकट भी होना चाहिए, ऐसा जैन-दर्शन की मुझे मान्यता लगती है। इसी आधार पर तो अणुव्रत और महाव्रत का भेद हुआ। आज मेरी मूर्च्छा टूट गई, पर सब पदार्थ मुझसे आज छूट नहीं जाते अचानक, क्योंकि मेरी आवश्यकताएं जो हैं, वे धीरे-धीरे ही छूटने वाली हैंः कर्म या संस्कार, उनका बंधन, वह धीरे-धीरे ही टूटने वाला है। और वही आचरण के रूप में आज अणुव्रत से प्रारंभ होगा, कल महाव्रत के रूप में समाप्त होगा। तो आप अगर यह भेद ही न मानें, केवल मूर्च्छा टूटना ही अपरिग्रह कर लें तो फिर अणुव्रत, महाव्रत का कोई भेद नहीं! और कोई क्रम नहीं और चारिष्य नहीं, केवल दर्शन ही है!

इसमें भी दो-तीन बातें समझनी चाहिए। एक तो, अणुव्रत से कोई कभी महाव्रत तक नहीं जाता, महाव्रत की उपलब्धि से अनेक अणुव्रत पैदा होते हैं।

प्रश्नः दोनों शब्दों का अर्थ?

हां, मैं बताता हूं। महाव्रत का अर्थ है, जैसे पूर्ण अहिंसा। पूरे अहिंसक ढंग से जीने का अर्थ हुआ महाव्रत--पूर्ण अपरिग्रह, पूर्ण अनासक्ति। अणुव्रत का मतलब है, जितनी सामर्थ्य हो। एक आदमी कहता है कि मैं पांच रुपए का परिग्रह रखूंगा, यह अणुव्रत है। एक आदमी कहता है, मैं नग्न रहूंगा, मैं कोई परिग्रह नहीं रखूंगा, यह महाव्रत है।
साधारणतः ऐसा समझा जाता है कि अणुव्रत से महाव्रत की यात्रा होती है
कि पहले पांच रुपए का रखो, फिर चार का रखो, फिर तीन का रखो, फिर दो का, फिर एक का, फिर बिल्कुल मत रखना। साधारणतः ऐसा समझा जाता है कि हम छोटे से छोटे का अभ्यास करते-करते बड़े की तरफ जाएंगे।
यह बात ही गलत है। यह हो सकता है कि एक आदमी दस रुपए की जगह पांच रुपए
का रखने का अभ्यास कर ले। यह अभ्यास होगा, मूर्च्छा नहीं टूट जाएगी। क्योंकि अगर मूर्च्छा टूट गई होती तो महाव्रत उपलब्ध होता है। मूर्च्छा के टूटते ही महाव्रत उपलब्ध होता है।
महाव्रत का जीवन-व्यवहार में अणुव्रत दिखाई पड़ सकता है। लेकिन मूर्च्छा टूटते ही अणु उपलब्ध नहीं होता, महा उपलब्ध होता है। और अगर एक आदमी के पास दस रुपए थे और उसने अभ्यास करके पांच का अणुव्रत साध लिया, कल अभ्यास करके चार का साध लिया, परसों तीन का साध लिया, फिर दो का, फिर एक का, और आखिर में उसने अपरिग्रह भी साध लिया, तो भी मूर्च्छा नहीं टूटी है। क्योंकि साधना हमें उसे पड़ता है, जिसकी हमारी मूर्च्छा नहीं टूटती। जिसकी मूर्च्छा टूट जाती है, उसे हमें साधना नहीं पड़ता, वह सहज आता है।

मूर्च्छा टूटी या नहीं इसका एक ही सबूत है कि जो आपसे हो रहा है, वह आपको साधना पड़ा है या कि आया है? अगर आया है तो मूर्च्छा टूटी और अगर साधना पड़ा है तो मूर्च्छा नहीं टूटी। क्योंकि साधना किसके खिलाफ करनी पड़ती है? अपनी ही मूर्च्छा के खिलाफ। मेरा मन तो कहता है दस रुपया रखो और मेरा व्रत कहता है कि पांच रखने चाहिए। तो मैं लड़ता किससे हूं? अपने मन से लड़ता हूं, जो कहता है दस रखो। मन तो दस का है और व्रत पांच का है, तो लड़ता अपने से हूं। मूर्च्छा टूट जाए तो मन ही टूट जाता है। दस का नहीं, पांच का नहीं, दो
का नहीं, एक का नहीं--मन परिग्रह का ही टूट जाता है। उस हालत में भी एक आदमी पांच रुपए रख सकता है, लेकिन तब वह सिर्फ जरूरत होगी उसकी, मूर्च्छा नहीं। उस हालत में भी पांच रुपए रख सकता है। क्योंकि जीवन-व्यवहार में, जीवन में जहां हम जी रहे हैं, मूर्च्छा टूट जाने पर भी एक आदमी मकान में सो सकता है, लेकिन मकान उसका परिग्रह नहीं है।
मूर्च्छा टूटने का मतलब यह नहीं कि चीजें छूट जाएंगी। मूर्च्छा टूटने
का मतलब यह है कि चीजों से हमारा जो लगाव है, वह छूट जाएगा। एक आदमी मकान में सो रहा है। यह मकान मेरा है, मूर्च्छा इस मेरे में है। मूर्च्छा मकान में सोने में नहीं है। तुम्हारे खीसे में पांच रुपए हैं, इसमें मूर्च्छा नहीं है।
मैंने सुना है, एक नदी के किनारे दो फकीर हैं, उनमें विवाद हो रहा है।
एक फकीर है जो कहता है, कुछ भी रखना ठीक नहीं पास। वह एक पैसा पास नहीं रखता है। दूसरा फकीर है, जो कहता है कि कुछ न कुछ पास होना जरूरी है, नहीं तो बड़ी मुश्किल पड़ती है। फिर वे नदी के तट पर आए, सांझ हो गई, सूरज ढल रहा है। नाव वाला है, और नाव वाला उनसे कहता है कि एक रुपया लेंगे तो हम पार कर देते हैं, नहीं तो अब मैं जाता नहीं। मेरा गांव इसी तरफ है। मैं तो नाव बांध कर अब घर जा रहा हूं। अब रात हो गई। दिन भर का काम, थक गया हूं।
उन फकीरों को उस तरफ जाना है, जरूरी है। रात वहां पहुंच जाना जरूरी है। उस तरफ लोग प्रतीक्षा करते होंगे। वे परेशान होंगे, हैरान होंगे। इस तरफ घना जंगल है, कहां पड़े रहेंगे! तो वह फकीर एक रुपया निकालता है जो कहता था, कुछ रखना जरूरी है। एक रुपया देता है, वे नाव में दोनों सवार होकर उस तरफ पहुंच जाते हैं। वह फकीर कहता है कि देखो, मैंने कहा था, कुछ रखना जरूरी है, नहीं तो हम उसी पार रह गए होते। वह जो फकीर कहता था, कुछ भी रखना जरूरी नहीं है, छोड़ना जरूरी है, वह कहता है कि तुम रखने की वजह से इस पार नहीं पहुंचे, तुम एक रुपया छोड़ सके, इसलिए हम इस पार पहुंचे। सिर्फ रखने से नहीं इस पार पहुंचे, छोड़ने से ही इस पार पहुंचे।
फिर विवाद शुरू हो जाता है। क्योंकि बड़ी मुश्किल हो गयी। जिसने एक रुपया दिया था, उसने सोचा था कि विवाद जीत गए। उस पार नदी के फिर विवाद चलने लगा है। और अब इस विवाद का कोई अंत नहीं हो सकता। क्योंकि वह दूसरा फकीर यह कहता है कि हम इस पार आए ही इसलिए कि तुम एक रुपया छोड़ सके। छोड़ने से हम इस पार आए। और वह फकीर कहता है, हम आते ही नहीं अगर एक रुपया हमारे पास न होता।
अब मेरा मानना यह है कि कोई तीसरे फकीर की वहां जरूरत है जो कहे कि हो, तभी छोड़ा जा सकता है, न हो तो छोड़ा भी नहीं जा सकता। इसलिए मैं जो कहता हूं, वह यह कहता हूं कि चीजें हों और तुममें छोड़ने की सतत सामर्थ्य हो बस इतनी ही बात है। चीजें न हों, यह सवाल नहीं है। चीजें न हों, यह सवाल नहीं है; सवाल यह है कि तुममें सतत छोड़ने की सामर्थ्य हो।
एक और तुम्हें कहानी कहूं, उससे शायद समझ में आ जाए। एक सम्राट एक संन्यासी से बहुत प्रभावित था। वह नग्न पड़ा रहता संन्यासी एक नीम के वृक्ष के नीचे। उस सम्राट का आदर बढ़ता गया और एक दिन उसने कहा कि यहां नहीं, मेरे पास इतने बड़े महल हैं, आप यहां क्यों नीचे पड़े हैं? आप महल में चलें। सोचा था उसने, संन्यासी इनकार करेगा कि मैं महल में नहीं जा सकता, मैं अपरिग्रही! संन्यासी ने कहा, जैसी मर्जी! वह उठा कर डंडा खड़ा हो गया। सम्राट के मन में बड़ी मुश्किल हुई, सोचा था कि अपरिग्रही है, इनकार करेगा। वह एकदम डंडा उठा कर खड़ा हो गया! कहा, जैसी मर्जी! चलो, महल चले चलते हैं! तब तो सम्राट को बड़ी शंका आने लगी मन में, संदेह आने लगा कि कुछ भूल हो गई मुझसे। आदमी दिखता है महल की प्रतीक्षा ही कर रहा था। सिर्फ नीम के नीचे

शायद इसीलिए पड़ा हो कि कोई महल में ले जाने वाला मिल जाए। इसने एक दफा इनकार भी न किया! ऐसा कैसा अपरिग्रही है! अपरिग्रही को तो कहना था, कभी नहीं जा सकता महल में। महल पाप है। वहां मैं कैसे जा सकता हूं?
वह चला आया महल में! फिर भी सम्राट ने कहा, देखें, कोशिश करें, जांच-पड़ताल करें। तो अपना ही, जो उसका कमरा था, जिसमें बहुमूल्य से बहुमूल्य सामान थे, श्रेष्ठ से श्रेष्ठ गद्दियां थीं, मखमलें थीं, कीमती कालीन थे। उसने ही कहा कि आपको यहां... ठहर सकेंगे न? उसने कहा, बिल्कुल मजे से! वह जैसा नीम के नीचे सोया था, वैसे ही वह उस मखमली गद्दे पर सो गया। सम्राट ने अपना सिर ठोंका। उसने कहा, कुछ गलती एकदम हो गई। हम एकदम गलत आदमी को ले आए। क्योंकि परिग्रही को अपरिग्रही तब समझ में आता है, जब वह परिग्रह की दुश्मनी में हो। परिग्रही को, जिसको चीजों से पकड़ है, उसे सिर्फ वही समझ में आता है जो चीजों को पकड़ने से ऐसा डर कर हाथ फैला दे कि नहीं, मैं छू नहीं सकता, ये चीजें पाप हैं। जिसको रुपए से मोह है, वह रुपए को लात मारने वाले को ही आदर देता है। परिग्रही सिर्फ उसको ही समझ सकता है, जो उलटा, ठीक उससे उलटा करे।
सम्राट बहुत मुश्किल में पड़ गया, छह महीने बीत गए हैं। वह फकीर ऐसे रहने लगा जैसे सम्राट रहता है। छह महीने बीत गए हैं, एक सुबह वे अपने बगीचे में टहलते हैं। और सम्राट ने उस फकीर से पूछा कि अब तो मुझमें और आपमें कोई भेद नहीं मालूम पड़ता, बल्कि शायद आप ही ज्यादा सम्राट हैं। यानी मुझे चिंता, फिक्र और सब इंतजाम भी करना पड़ता है। आप तो बिल्कुल मजे में हैं! तब तो एक फर्क था जब आप नीम के नीचे पड़े थे, आप संन्यासी थे, मैं सम्राट था। अब तो कोई फर्क नहीं मालूम पड़ता, बल्कि आप ही ज्यादा सम्राट हैं। तो क्या मैं पूछ सकता हूं कि कोई फर्क बाकी है?
तो उस संन्यासी ने कहा, फर्क पूछते हो? चलो, थोड़ा आगे चले चलें, थोड़ा आगे बताएंगे। बगीचा पार हो गया, गांव निकल गया। सम्राट ने कहा, बता दें। उसने कहा, थोड़ा और आगे चलें। गांव की नदी आ गई, वे नदी के पार हो गए। सम्राट ने कहा, कब बताएंगे? धूप चढ़ी जाती है! उसने कहा, चले चलो। अभी अपने आप पता चल जाएगा। सम्राट ने कहा, क्या मतलब? उस फकीर ने कहा कि अब मैं लौटूंगा नहीं। अब मैं लौटूंगा नहीं! अब तुम चले ही चलो मेरे साथ। सम्राट ने कहा, मैं कैसे चल सकता हूं? मेरा मकान, मेरा महल, मेरा राज्य।
उस फकीर ने कहा, तो तुम लौट जाओ, लेकिन अब हम जाते हैं। अगर फर्क दिख जाए तो दिख जाए। उस फकीर ने कहा कि अगर फर्क दिख जाए तो दिख जाए, क्योंकि अब हम लौटने वाले नहीं। मगर यह मत समझना कि हम कोई तुम्हारे महल से डर गए हैं। तुम अगर कहो कि लौट चलो तो हम लौट जाएं, लेकिन तुम्हारी शंका फिर पैदा हो जाएगी। इसलिए अब हम जाते हैं। अब तुम अपना महल सम्हालो। उस सम्राट से उसने कहा कि इसमें फर्क तुम्हें दिखता है कि हम जा सकते हैं किसी भी क्षण! अपरिग्रह का मतलब यह नहीं है कि चीजें न हों। क्योंकि चीजें न होने पर जोर जो है, वह चीजें होने पर जो जोर था, उसका ही प्रतिरूप है। चीजें हों या न हों, यह सवाल नहीं है अपरिग्रह का। अपरिग्रह का सवाल यह है कि व्यक्ति चीजों के सदा बाहर है। उसके भीतर कोई चीज नहीं है।
उस फकीर ने कहा कि हम तुम्हारे महल में थे, लेकिन तुम्हारा महल हममें नहीं है। बस, इतना ही फर्क है। तुम महल में कम हो, महल तुममें ज्यादा है। तो हम छोड़ कर कहीं भी जा सकते हैं। हमारे भीतर नहीं है मामला। हम उसके भीतर थे, निकल सकते हैं। कोई महल हमको पकड़ सकता है? और जैसे हम नीम के नीचे सोते थे, वैसे ही तुम्हारे महल में भी सोए। वही आदमी, वैसे ही सोया।
तो महाव्रत से अणुव्रत फलित हो सकते हैं, लेकिन अणुव्रतों के जोड़ से कभी महाव्रत नहीं निकलता। क्योंकि अणुव्रत की कोशिश ही मूर्च्छित चित्त की कोशिश है। और महाव्रत की तुम कोशिश ही नहीं कर सकते। वह तो अमूर्च्छा लाओ तो महाव्रत उपलब्ध होगा। मेरा मतलब समझ लेना! महाव्रत प्रयास से नहीं आ सकता, तुम्हारी मूर्च्छा टूट जाए तो महाव्रत फलित होता है, तुम्हारा चित्त महाव्रती हो जाता है। लेकिन जीवन में हजार तरह से अणुओं में प्रकट होगा वह महाव्रत, हजार-हजार अणुओं में।

लेकिन साधक जिसको हम कहते हैं आमतौर से, वह अणुव्रत से चलता है महाव्रत पर पहुंचने की कोशिश में। वह कभी नहीं पहुंचता। वह अणुओं के जोड़ पर पहुंच जाएगा, महाव्रत पर नहीं।
महाव्रत अणुओं का जोड़ नहीं है, महाव्रत विस्फोट है, एक्सप्लोजन है।
और जब चेतना पूरी की पूरी विस्फोट होती है, तब उपलब्ध होता है।
महावीर महाव्रती हैं। जीवन तो अणुव्रती होगा। क्योंकि कहीं जाकर भिक्षा मांगेंगे, दो रोटी खा लेंगे। किसी विश्राम के लिए किसी छाया के तले रुकेंगे; चलेंगे, फिरेंगे, बात करेंगे। इस सब में अणु होंगे। लेकिन भीतर जो विस्फोट हो गया, वहां महा होगा।
फिर जो दूसरी बात पूछी है, वह भी इससे संबंधित समझ लेनी चाहिए।
तीन शब्द हैं महावीर के--सम्यक दर्शन, सम्यक ज्ञान, सम्यक चारिष्य। लेकिन अनुयायियों ने बिल्कुल उलटा किया हुआ है। वे कहते हैं, सम्यक चारिष्य, सम्यक ज्ञान, सम्यक दर्शन। वे कहते हैं, पहले चरित्र साधो, तब ज्ञान थिर होगा। जब ज्ञान थिर होगा तो दर्शन होगा। पहले चरित्र को बनाओ, जब चरित्र शुद्ध हो जाएगा तो मन थिर होगा, फिर मन में ज्ञान होगा। जानोगे तुम, जानने से दर्शन उपलब्ध होगा, तो मुक्त हो जाओगे।
स्थिति बिल्कुल उलटी है। सम्यक दर्शन पहले है, विज़न पहले मिलना चाहिए, दर्शन पहले होना चाहिए। जिसका हमें दर्शन होता है, उसका हमें ज्ञान होता है। दर्शन है शुद्ध दृष्टि, देखना। जैसे तुम एक फूल के पास से निकले और तुम खड़े हो गए और तुम्हें दर्शन हुआ फूल का। अभी ज्ञान नहीं हुआ। जब दर्शन को तुम समझने की कोशिश करोगे, तुम कहोगे, गुलाब का फूल है, बड़ा सुंदर है, यह ज्ञान हुआ। जब दर्शन को तुम बांधते हो, तब वह ज्ञान बन जाता है। और फिर तुमने फूल तोड़ा और उसकी सुगंध ली, यह चरित्र हुआ। दर्शन जब बंधता है तो ज्ञान बन जाता है, ज्ञान जब प्रकट होता है तो चरित्र हो जाता है। चरित्र अंतिम है, प्रथम नहीं। दर्शन प्रथम है।
तो पहले तो जीवन का सत्य क्या है, इसका दर्शन चाहिए। वह ध्यान से होगा, समाधि से होगा। इसलिए साधना ध्यान और समाधि की है। दर्शन उसका फल होगा। जब दर्शन हो जाएगा और तुम सचेत होओगे दर्शन के प्रति तो ज्ञान निर्मित होगा। और जब ज्ञान निर्मित होगा तो तुम उससे अन्यथा आचरण नहीं कर सकते हो।
तुम्हारा आचरण सम्यक हो जाएगा।

प्रश्नः वह आचरण किस रूप में होगा, यही मेरी जिज्ञासा है!

वह बहुत रूप में हो सकता है। क्योंकि आचरण बहुत सी चीजों पर निर्भर है, वह सिर्फ तुम पर निर्भर नहीं है। वह आचरण बहुत रूप में हो सकता है। जीसस में एक तरह का होगा, कृष्ण में एक तरह होगा, महावीर में एक तरह होगा। दर्शन बिल्कुल एक होगा, ज्ञान में फर्क पड़ जाएगा फौरन। क्योंकि उस दर्शन को ज्ञान बनाने वाला प्रत्येक व्यक्ति अलग-अलग है। ज्ञान में भेद पड़ जाएगा, दर्शन बिल्कुल एक होगा। जगत के जितने भी अनुभूति उपलब्ध व्यक्ति हैं, सबका दर्शन एक है, लेकिन ज्ञान सबका अलग होगा। ज्ञान अलग का मतलब यह कि उनकी भाषा, उनके सोचने का ढंग, उनकी शब्दावली, वह सब की सब ज्ञान बनेगी। फिर ज्ञान आचरण बनेगा और आचरण भी भिन्न होगा।
जैसे, जैसे समझ लें कि अगर आज महावीर न्यूयार्क में पैदा हों तो वे नंगे खड़े नहीं होंगे। क्योंकि न्यूयार्क में नंगे खड़े होने का एक ही परिणाम होगा कि वह पागलखाने में बंद करके उनका इलाज किया जाएगा। न्यूयार्क में वे नंगे खड़े नहीं होंगे। क्योंकि न्यूयार्क की परिस्थिति नंगे होने को पागलपन से समानार्थक मानती है। तो इस परिस्थिति में महावीर का आचरण नग्न होने का नहीं होगा, नहीं हो सकता। जिस परिस्थिति में भारत में वे थे, उस दिन नग्नता पागलपन का पर्यायवाची नहीं थी, परम संन्यास का पर्यायवाची थी।

प्रश्नः उत्तरी ध्रुव में वे मांस भी खा सकते हैं, अगर आज पैदा हों?

संभव है। मैं जो बात कर रहा हूं, उसे समझ लें। संभव है, लेकिन मैंने कल रात जो बात की अगर वह तुमने सुनी है, तो वे उत्तरी ध्रुव में भी मांस नहीं खाएंगे। अगर उन्हें मूक जगत से संबंध स्थापित करना हो तो मांस नहीं खा सकते हैं और अगर न संबंध स्थापित करना हो तो मांस खा सकते हैं।

प्रश्नः और मोक्ष हो सकता है?

और मोक्ष हो सकता है। मांस खाने से मोक्ष का कोई विरोध नहीं है, कोई विरोध नहीं है। लेकिन तब वे मनुष्य से ही संबंध स्थापित कर सकेंगे ज्यादा से ज्यादा, और वह संबंध भी बहुत शुद्ध संबंध नहीं होगा। उस संबंध में भी थोड़ी बाधाएं होंगी। अगर पूर्ण शुद्ध संबंध स्थापित करना है तो इस जगत के प्रति किसी तरह की भी चोट जाने-अनजाने नहीं होनी चाहिए, तब संबंध पूर्ण संवाद का स्थापित हो सकेगा। मुझे अगर तुमसे पूरे संबंध स्थापित करने हैं तो मुझे तुम्हारे प्रति पूर्ण अवैर को साधना ही होगा। नहीं तो जितना मेरा वैर होगा, जितना मैं तुम्हें चोट पहुंचा सकता हूं, जितना तुम्हारा शोषण कर सकता हूं, जितनी तुम्हारी हिंसा कर सकता हूं, उसी मात्रा में मैं तुम्हें जो पहुंचाना चाहता हूं, वह नहीं पहुंचा सकूंगा। प्रेम के अतिरिक्त सत्य को पहुंचाने का और कोई द्वार नहीं है।
इसलिए महावीर अगर उत्तरी ध्रुव में पैदा हों और उनको अगर नीचे के मूक पशु जगत और पदार्थ जगत से संबंध स्थापित करना हो तो वहां भी मांसाहार नहीं कर सकेंगे। नहीं कर सकेंगे। लेकिन अगर न करना हो तो यहां भी कर सकते हैं। आखिर इस देश में भी कर सकते हैं, कोई कठिनाई नहीं है अगर वे संबंध... । इसलिए मैंने जो--अहिंसा की जो मेरी दृष्टि है, वह बात ही और है। यानी अहिंसा को मैं कोई अनिवार्य तत्व नहीं मान रहा हूं मोक्ष जाने का, अहिंसा को अनिवार्य तत्व मान रहा हूं मनुष्य से नीचे की योनियों से संबंध स्थापित करने का।
तो भेद होंगे। भेद होंगे; दर्शन एक होगा, ज्ञान भेद हो जाएगा। और फिर चरित्र तो और भी भेद हो जाएगा। क्यों? क्योंकि दर्शन है शुद्ध स्थिति। न वहां मैं हूं, न वहां कोई और है, सिर्फ विज़न है, सिर्फ दर्शन है, कोई विकार नहीं है वहां। फिर ज्ञान में भाषा आ गई, शब्द आ गए। तो जो भाषा मैं जानता हूं वही आएगी, जो तुम जानते हो वही आएगी।
अब जीसस को पाली-प्राकृत नहीं आ सकती। जब ज्ञान बनेगा तो पाली- प्राकृत या संस्कृत में नहीं बन सकता जीसस का। वह आरमैक में बनेगा। जब कन्फ्यूशियस को भी दर्शन होगा तो दर्शन तो भाषा-मुक्त है, इसलिए वही होगा जो बुद्ध को या महावीर को होगा, लेकिन जब ज्ञान बनेगा तो वह चीनी में बनेगा। इस तल पर ही नहीं, भाषा जो जिस शब्दावली में वह जीया है और पला है! जैसे महावीर को जब मुक्ति अनुभव होगी तो वे उसे मोक्ष कहेंगे, वे उसे निर्वाण नहीं कह सकते हैं। निर्वाण शब्द में वे पले नहीं हैं। वे उस शब्द में पले नहीं हैं, वह उनका शब्द नहीं है। शंकर को जब अनुभूति होगी उसी मुक्ति की, तो वे कहेंगे ब्रह्म-उपलब्धि। वह ब्रह्म-उपलब्धि शब्द है सिर्फ, बात वही है जो महावीर को मोक्ष में होती है, बुद्ध को निर्वाण में होती है, शंकर को ब्रह्म-उपलब्धि में होती है। लेकिन शब्द अलग है, यह तो टर्मिनोलाजी है। ज्ञान तो बिना टर्मिनोलाजी के नहीं होगा। तो ज्ञान में शब्द आ जाएगा। तो विशुद्धि गई, अशुद्धि आनी शुरू हुई। परम अनुभव जो था, अब वह शाखाओं में बंटना शुरू हुआ।
फिर भी ज्ञान सिर्फ शब्दों की वजह से अशुद्ध है। चरित्र तो और भी नीचे उतरना है। चरित्र तो समाज, लोक-व्यवहार, स्थिति, युग, नीति, व्यवस्था, राज्य, इस सब पर निर्भर होगा। क्योंकि जब मैं शुद्ध दर्शन में हूं, तब न मैं हूं, न कोई और है, सिर्फ दर्शन है। जब मैं ज्ञान में आया तो दर्शन और मैं भी आया वापस। और जब मैं चरित्र में आया तो समाज भी आया। चरित्र जो है, वह इंटर-रिलेशनशिप है समाज के साथ। समाज की एक नीति है अगर, तो चरित्र में वह प्रकट होनी शुरू होगी। अगर दूसरी नीति है तो दूसरी तरह से प्रकट होनी शुरू होगी।

प्रश्नः उनमें कोई भी मिथ्या नहीं?

नहीं, कोई भी मिथ्या नहीं है। मिथ्या कोई है ही नहीं। कोई भी मिथ्या नहीं है। क्योंकि लोक, परिस्थिति सारी जगह अलग-अलग है, एकदम अलग-अलग है। और उस परिस्थिति से संबंधित होंगे न आप! तो चरित्र बनेगा। चरित्र मुझसे और दूसरे का संबंध है। चरित्र में मैं अकेला नहीं हूं, आप भी हैं।
तो इसलिए चरित्र तो प्राथमिक नहीं है, सबसे आखिरी प्रतिध्वनि है दर्शन की। लेकिन हां, चरित्र में कुछ बातें प्रकट होंगी। जिसका दर्शन होगा, उसकी कुछ बातें प्रकट होंगी। वे कुछ बातें हमारे ख्याल में ले सकते हैं। लेकिन उनको बहुत बांध कर मत ले लेना, नहीं तो मुश्किल हो जाती है। उनको बांध लेने से मुश्किल हो जाती है। क्योंकि वे किसी न किसी रूप में परिस्थिति में ही प्रकट होंगी न!
जैसे समझ लें कि सूरज की किरणें आ रही हैं और यह जो खिड़की लगी है नीले कांच की है, और यह जो खिड़की लगी है पीले कांच की है, तो पीले कांच की खिड़की जो किरणें भीतर भेजेगी, वे पीली दिखाई पड़ेंगी, नीले कांच की किरणें नीली दिखाई पड़ेंगी।
अगर तुमने यह मान लिया कि सूरज जब निकलता है तो नीले रंग का होता है तो तुम गलती में पड़ जाओगे, या तुमने मान लिया कि पीले रंग का होता है तो तुम गलती में पड़ जाओगे। तुम इतना ही मानना जो ज्यादा एसेंशियल है कि सूरज जब निकलता है तो अनेक रंगों में प्रकट होता है, लेकिन प्रकाश होता है। तो तुम पीले और नीले में भी तालमेल बिठा पाओगे।
महावीर में वह एक तरह से निकलता है, क्योंकि महावीर का व्यक्तित्व एक तरह का है, बुद्ध में दूसरी तरह से निकलता है, क्राइस्ट में तीसरी तरह से निकलता है, कृष्ण में चौथी तरह से निकलता है। हजार तरह से वह निकलता है। ये सब कांच हैं व्यक्तित्व, प्रकाश तो एक है। फिर इनसे निकलता है। फिर तुम देखने वालों के बीच, जिस समाज में वह आदमी जी रहा है, वे देखने वाले भी संबंधित हो जाते हैं। और संबंध तो तुमसे करना है उसे।
प्रत्येक युग में नीति बदल जाती है, व्यवस्था बदल जाती है, राज्य बदल जाता है।

प्रश्नः बेसिक मॉरेलिटी जैसी कोई चीज नहीं है?

बिल्कुल ही नहीं है। बिल्कुल ही नहीं है।

प्रश्नः सत्य भी बेसिक मॉरेलिटी नहीं है?

न, न, न! सत्य मॉरेलिटी का हिस्सा ही नहीं है। सत्य तो अनुभूति का, दर्शन का हिस्सा है, चरित्र का नहीं।

प्रश्नः ब्रह्मचर्य?

नहीं, वह भी बेसिक नहीं है। वह भी बेसिक नहीं है। अब वही मैं कहता हूं। जैसे कि मोहम्मद हैं, मोहम्मद नौ पत्नियों को रखे हुए हैं। और मैं मानता हूं बड़ा दयापूर्ण है। बड़ा दयापूर्ण है। जिस जगह मोहम्मद पैदा हुए, वहां औरतें चार-पांच गुनी ज्यादा हैं पुरुषों से। स्त्रियों की संख्या पांच गुनी ज्यादा है। पुरुष एक है तो स्त्रियां छह हैं, पांच हैं। क्योंकि जो कबीला है, वह लड़ाकू कबीला है, दिन-रात लड़ता है, पुरुष तो कट जाते हैं, स्त्रियां बच जाती हैं। सारा समाज अनैतिक हुआ जा रहा है, क्योंकि जहां स्त्रियां पांच हों, पुरुष एक हो... और वहां अगर मोहम्मद ब्रह्मचर्य का उपदेश दें, तो वह मुल्क सड़ जाएगा बिल्कुल ही। उस मुल्क को मारने वाले सिद्ध होंगे वे। बिल्कुल ही सड़ जाएगा मुल्क, मर ही जाएगा मुल्क। क्योंकि ऐसे ही कठिनाई खड़ी हो गई है, क्योंकि चार स्त्रियों को पति नहीं मिल रहे हैं। तो चार स्त्रियां मजबूरी में व्यभिचार में उतर रही हैं। इन चार स्त्रियों के व्यभिचार में उतरने से जो पुरुष हैं, वे भी सब व्यभिचारी हुए

जा रहे हैं। इन चार स्त्रियों के लिए कोई व्यवस्था करनी जरूरी है, नहीं तो समाज बिल्कुल ही अनैतिक हो जाएगा।
तो अगर महावीर भी वहां हों मोहम्मद की जगह तो मैं मानता हूं कि नौ विवाह करेंगे। क्योंकि उस स्थिति में इसके सिवाय कोई नैतिक तत्व नहीं हो सकता। तो मोहम्मद कहते हैं कि चार विवाह तो प्रत्येक के लिए धर्म है, नीति है। चार तो प्रत्येक करे ही, ताकि कोई स्त्री बिना पति के न रह जाए। और कोई स्त्री बिना पति की पीड़ा न उठाए। और बिना पति की स्त्री व्यभिचार को मजबूर न हो जाए और सारे समाज को गर्हित और कुत्सित रोगों में न घेर दे।
तो मोहम्मद इसके लिए उदाहरण बनते हैं, वे नौ विवाह कर लेते हैं। मेरा मतलब समझ रहे हैं न? यानी मेरी दृष्टि में मोहम्मद जो घटना है... ।

प्रश्नः इसका मतलब चरित्र समाज से आया या सम्यक दर्शन से चरित्र आया?

चरित्र तो आएगा सम्यक दर्शन से, लेकिन प्रकट होगा समाज में। ये दो बातें हैं उसमें न!

प्रश्नः सम्यक दर्शन प्राप्त होने वाले का जो चरित्र होगा वह समाज को प्राप्त होगा या समाज का उसको प्राप्त होगा?

सम्यक दर्शन जिसको प्राप्त हुआ है, उसे एक दृष्टि प्राप्त हुई है करुणा की, कंपैशन की, प्रेम की, दया की। वह दृष्टि प्राप्त हुई है। अब समाज कैसा है? उस दृष्टि को प्रकट होने के लिए जो उपकरण खोजेगा--जैसे मोहम्मद के लिए यही कंपैशन है कि वे चार विवाह का इंतजाम कर दें। और जो चार विवाह का इंतजाम करता हो, अगर वह नौ विवाह खुद करके न बता सके तो चार का इंतजाम करेगा कैसे? आप मेरा मतलब समझ रहे हैं न? मोहम्मद के लिए जो करुणापूर्ण है, वह यही है।
महावीर के लिए यह करुणा की बात नहीं है। महावीर के लिए यह सवाल नहीं है। जिस युग में वे हैं, जहां वे हैं, वहां की यह परिस्थिति नहीं है, इससे कोई संबंध नहीं है। यह कल्पना में भी आना मुश्किल है महावीर के। मोहम्मद के लिए ब्रह्मचर्य कल्पना में आना बहुत मुश्किल है और एकदम बेमानी है। क्योंकि मोहम्मद अगर ब्रह्मचर्य की बात करें तो आप यह समझ लीजिए कि अरब मुल्क सदा के लिए नष्ट हो जाएं, बुरी तरह नष्ट हो जाएं।
तो मैं जो कह रहा हूं, वह यह कह रहा हूं... ।

प्रश्नः लेकिन उत्तर तो एक ही होगा!

सम्यक दर्शन से करुणा आ जाएगी। करुणा क्या उत्तर लेगी, यह बिल्कुल अलग बात है। अब यह हो सकता है कि करुणा यह उत्तर ले कि एक आदमी की टांग सड़ रही है तो उसको काट दे। आप समझ रहे हैं न मेरा मतलब? और दूसरा आदमी कहे कि तुमने टांग काट दी एक आदमी की, तुम्हारी कैसी करुणा है!
गांधीजी के आश्रम में एक बछड़ा बीमार है। और वह इतना तड़फ रहा है, इतना परेशान है। और डाक्टर कहते हैं कि बचेगा नहीं, दो-तीन दिन में मरेगा, उसको कैंसर हो गया है। तो गांधीजी कहते हैं, उसे जहर का इंजेक्शन दे दें। वह इंजेक्शन दे दिया गया तो सारे आश्रम के ही लोग संदिग्ध हो गए। उन्होंने कहा कि यह आप क्या करते हैं? बड़े-बड़े पंडित गांधीजी के पास इकट्ठे हो गए। उन्होंने कहा, यह तो हद हो गई। गौ-हत्या हो गई। गांधीजी ने कहा, वह गौ-हत्या का पाप मैं झेल लूंगा, लेकिन इतना कष्ट मैं नहीं देख सकता। इस कष्ट को मैं बरदाश्त नहीं करता।
अब गौ-हत्या नहीं होनी चाहिए, ऐसा जो जड़-बुद्धि का आदमी है, वह तो कभी नहीं बरदाश्त कर सकता यह। क्योंकि उसके पास अपना कोई विज़न नहीं, अपनी कोई दृष्टि नहीं है, सिर्फ बंधा हुआ नियम है। लेकिन जिसके पास अपना विज़न है, अपनी दृष्टि है, वह अपनी दृष्टि का उपयोग करेगा, चाहे वह नियम के प्रतिकूल जाती हो, इससे भी कोई सवाल नहीं। लेकिन विशेष परिस्थिति ही निर्भर करेगी। गांधीजी किसी अच्छे बछड़े को नहीं जहर पिला दे सकते हैं।

तो मेरा कहना यह है कि विज़न तो आपका होगा, लेकिन परिस्थिति तो बाहर होगी। बछड़ा बीमार पड़ा है, कैंसर से पड़ा है, तो आपको जहर पिलाना पड़ रहा है। करुणा आपसे आ रही है। करुणा क्या रूप लेगी, कहना कठिन है। कभी तलवार उठा सकती है करुणा और कभी तलवार का निषेध कर सकती है करुणा।
मोहम्मद की तलवार पर मोहम्मद ने लिखा हुआ है, कि मैं शांति के लिए लड़ रहा हूं। इस्लाम का मतलब है शांति, शब्द का मतलब भी शांति है। लेकिन मोहम्मद की परिस्थिति में और जिन लोगों से वे घिरे हैं, वे तलवार के सिवाय दूसरी भाषा ही नहीं समझते, यानी दूसरी भाषा बिल्कुल बेमानी है।

प्रश्नः क्राइस्ट ने कोड़े मारे, वह करुणा है?

बिल्कुल ही करुणा है। यह भी संभव है। क्राइस्ट जब पहली दफा यहूदियों
के बड़े त्यौहार पर, वर्ष के बड़े त्यौहार पर गए तो वह जो बड़ा मंदिर था यहूदियों का, जहां सारा देश इकट्ठा होता, वहां सारे देश के बड़े ब्याजखोर इकट्ठे होते। जो कि प्रतिवर्ष जो लोग आते यात्री, उनको ब्याज पर पैसा देते और उनसे ब्याज लेते। और वह बड़ा खर्चीला त्यौहार था, उसमें लोग हजारों रुपए--गरीब आदमी भी उधार लेकर खर्च करता, और फिर जन्मों तक भी न चुका पाता उन ब्याजों को। तो वे ब्याज की दुकानें, मंदिर के सामने हजारों दुकानें ब्याज की लगी रहतीं। तख्तों पर लोग बैठे रहते उधार देने वाले यात्रियों को। और वह मंदिर के सामने दिया गया उधार साधारण उधार नहीं था। वह चुकाना ही पड़ेगा, नहीं तो नरक जाओगे।
तो जब जीसस वहां गए और उन्होंने जब यह सब देखा कि करोड़ों लोगों का यह शोषण चल रहा है। और मंदिर के पुजारी ही के एजेंट उन तख्तों पर बैठे हुए हैं, जो ब्याज पर पैसा दे रहे हैं और वह पैसे सब मंदिर में चढ़ाए जा रहे हैं। और वह सब पैसे फिर ब्याज से दिए जा रहे हैं। यह जब उन्होंने चक्कर देखा तो उन्होंने उठाया कोड़ा और तख्ते उलट दिए और मारे कोड़े लोगों को। और कहा, भाग जाओ, इस मंदिर को खाली करो!
अब तुमको लगेगा कि यह आदमी कैसा है; जो कहता है, एक गाल पर चांटा मारे
तो दूसरा गाल कर देना! यह कोड़ा उठा सकता है?
उठा सकता है। यही आदमी उठाने का हकदार भी है। क्योंकि इसको कोई निजी क्रोध का कोई कारण नहीं है। लेकिन महावीर को कोई ऐसा मौका नहीं है, इसलिए कोड़ा नहीं उठाते हैं, यह दूसरी बात है।
यानी मैं जो कह रहा हूं, वह मैं यह कह रहा हूं कि विज़न तो एक ही होगा, दर्शन तो एक ही होगा, ज्ञान भिन्न होगा क्योंकि शब्द आ जाएगा। और चरित्र और भिन्न होगा, क्योंकि समाज आ जाएगा, परिस्थिति आ जाएगी। उसकी अभिव्यक्ति बदलती चली जाएगी, एकदम बदलती चली जाएगी।

प्रश्नः लेकिन उसमें भी काम तो वही करेगा न?

बिल्कुल ही वही काम करेगा। दर्शन ही काम करेगा। असल में जिनके पास दर्शन नहीं है, उनका चरित्र बिल्कुल जड़ होता है। वह नियमबद्ध होता है। परिस्थिति भी बदल जाती है तो भी वह नियमबद्ध चलता रहता है! क्योंकि उसे कोई मतलब ही नहीं है, उसकी कोई अपनी दृष्टि तो नहीं है। वह तो नियम पक्का है उसका। तो नियम अपना मानता चला जाता है। चरित्र लेकिन तीसरे वर्तुल पर आता है। इसलिए मैं चरित्र को केंद्र नहीं मानता, परिधि मानता हूं, दर्शन को केंद्र मानता हूं।

प्रश्नः कहा तो महावीर ने दर्शन, ज्ञान, चारिष्य ही है।

हां, हां। मगर बन गया बिल्कुल चरित्र प्रथम है। आपका साधु कर क्या रहा है? न तो दर्शन कर रहा है, न ज्ञान कर रहा है; चरित्र साध रहा है। और यह सोच रहा है कि जब चरित्र पूरा हो जाएगा, जब फिर ज्ञान होगा। ज्ञान पूरा होगा, तब दर्शन होगा। वह उलटा चल पड़ा। उससे कभी नहीं होगा, कुछ भी नहीं होगा। वह सिर्फ... ।

प्रश्नः यह बहुत उपयोगी रहेगा कि महावीर के जो अनुयायी आज अपने आपको कहते हैं... महावीर का जो दर्शन है, वह दर्शन तो आज भी उपयोगी है। दर्शन तो बदलता नहीं देश-काल के साथ--सम्यक दर्शन। पर महावीर का जो चरित्र है, वह आज किस रूप में प्रकट हो सकता है? क्या अभिव्यक्ति ले सकता है आज की देश-काल परिस्थिति में? यदि आप इसको थोड़ा सा बताएं तो बहुत उपयोगी रहेगा।

असल में, पहली तो बात यह है कि ऐसा सोचना ही नहीं चाहिए कि महावीर आज होते तो उनका क्या आचरण होता। यह इसलिए नहीं सोचना चाहिए कि महावीर से कोई किसी का बंधन थोड़े ही है कि उनका जैसा आचरण होता, वैसा हमारा हो। जैसा महावीर का आचरण होता, वैसा हमारा हो ही नहीं सकता। जैसा हमारा हो सकता है, महावीर लाख उपाय करें तो वैसा नहीं हो सकता।
इसके कई कारण हैं। क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति अनूठा है। यही तो अर्थ
है प्रत्येक व्यक्ति के आत्मवान होने का। आत्मवान होने का अर्थ यह है कि प्रत्येक व्यक्ति अनूठा है। इसलिए किसी के आचरण का हिसाब ही मत रखो। वही तो दृष्टि गलत है। आचरण से कोई प्रयोजन नहीं है।
दर्शन कैसे उपलब्ध हो, इसकी फिक्र करो। आचरण तो पीछे से आएगा। जैसे कि तुम यहां आए, तो तुम यह फिक्र नहीं करते कि तुम्हारे पीछे तुम्हारी लंबी छाया आ रही कि छोटी छाया आ रही, दोपहर में आते तो कैसी छाया आती, सांझ आते तो कैसी छाया आती, सुबह आते तो कैसी छाया आती। तुम यह फिक्र नहीं करते। तुम आते हो, छाया तुम्हारे पीछे आती है। दोपहर होता तो लंबी हो जाती, छोटी हो जाती, चौड़ी हो जाती; जैसी होती रहती, तुम्हें फिक्र नहीं उसकी।
सवाल असल में गहरे दर्शन का है, चरित्र तो उसकी छाया है। जैसी धूप होगी, वैसी होती रहेगी। उससे कोई संबंध नहीं है, कोई प्रयोजन ही नहीं है उससे, यानी उसको सोचना ही नहीं है। मेरा कहना यह है कि चरित्र बिल्कुल ही अविचारणीय है। उसके विचार की भी जरूरत इसीलिए पड़ती है कि दर्शन का हमें ख्याल नहीं रह गया है। इसलिए उसका हम विचार करते हैं।
विचारणीय है दर्शन। और दर्शन, काल-परिस्थिति आबद्ध नहीं है। दर्शन कालातीत, क्षेत्रातीत है। दर्शन तो तुम्हें जब भी होगा तो वही होगा जो किसी को हुआ हो, महावीर से भी कुछ लेना-देना नहीं है। किसी को भी हुआ हो, वह वही होगा। क्योंकि दर्शन ही तब होगा, जब न तुम होओगे, न कुछ और होगा, सब मिट गया होगा, तब तुम्हें होगा। और वह जब दर्शन होगा तो वह अपने आप अपने को रूपांतरित करता है ज्ञान में, ज्ञान अपने आप रूपांतरित होता है चरित्र में। तो उसकी चिंता ही नहीं करनी है, यानी उसका विचार ही नहीं करना है। नहीं तो फिर दूसरा बंधन शुरू होता है। जैसे कि अगर मैं कहूं तुम्हें कि महावीर ऐसा करते, ऐसा करते, ऐसा करते। तो तुम शायद सोचोगे, ऐसा हमें करना चाहिए। नहीं, तुम्हें करने का सवाल ही नहीं है, क्योंकि तुम्हें वह दर्शन नहीं है। तुम्हें वह दर्शन नहीं है। वही तो जैन साधु और जैन मुनि कर रहा है बेचारा। वह कहता है कि वे ऐसा करते थे तो ऐसा हम करते हैं।
मैं एक गांव में गया, ब्यावर। ब्यावर का कलेक्टर आया, उसने मुझसे कहा
कि एकांत में बात करना चाहता हूं। मैंने कहा, एकांत सही। उसने दरवाजा बंद कर दिया बिल्कुल, सांकल लगा दी। अंदर बैठ कर मुझसे पूछा कि मुझे दो-चार बातें पूछनी हैं। पहली तो यह कि आप जैसा चादर लपेटते हैं, ऐसा लपेटने से मुझे कुछ लाभ होगा?
वह बेचारा बिल्कुल ठीक पूछता है। हम उस पर हंसते हैं, लेकिन हमारा सब साधु क्या कर रहा है? वह महावीर कैसे खड़े, कैसे बैठे, कैसी पिच्छी लिए, कैसा कमंडल लिए, मुंह-पट्टी बांधे कि नहीं बांधे--वह कैसे--इसका पक्का कर लेता है, फिर वैसा करना शुरू कर देता है! चूक गया वह बुनियादी बात से। मैंने उससे कहा कि चादर-वादर से क्या संबंध है! मुझे मौज आ जाए तो कोट-टाई पहन लूं। उसमें क्या दिक्कत है! उससे मैं मैं ही रहूंगा। क्या फर्क पड़ने वाला है? हां, मैंने कहा, तुम्हें फर्क पड़ सकता है मुझे देख कर फिर। तुम समझोगे, अरे, इस आदमी के पास क्या होगा, क्योंकि कोट-टाई बांधे हुए है।
यह हो सकता है। लेकिन मुझे क्या फर्क पड़ने वाला है? मैं जैसा हूं, वैसा का

वैसा रहूंगा। और तुम जैसे हो, वैसे ही रहोगे, चाहे चादर लपेटो, चाहे नंगे हो जाओ, इससे कुछ फर्क नहीं पड़ने वाला। तुम्हें बदलना है।
लेकिन वह बुनियादी भूल है, जो हमें बाहर से--हम सोचते हैं सदा कि बाहर
से भीतर की तरफ जाता है जीवन। जीवन सदा भीतर से बाहर की तरफ आता है। और अगर बाहर से किसी ने भीतर को बदलने की कोशिश की तो भीतर तो वही रह जाएगा, बाहर बदल जाएगा। और उस आदमी के भीतर द्वंद्व पैदा हो जाएगा। दोहरा आदमी हिपोक्रेट, पाखंडी हो जाएगा। जो आदमी आचरण से शुरू करेगा, वह पाखंडी हो जाएगा।

प्रश्नः ज्ञान भी बदलेगा? चरित्र अलग होगा मतलब ज्ञान भी अलग होगा, महावीर का आज का ज्ञान भी अलग होगा?

हां ज्ञान भी अलग होगा, दर्शन भर अलग नहीं होगा। दर्शन भर अलग नहीं होगा, वह शुद्धतम है। ज्ञान अलग होगा, क्योंकि आज की सब भाषा बदल गई है, सोचने के ढंग बदल गए हैं। तो आज जब--और इसीलिए तो मुश्किल हो जाती है पहचानने में। पुराने को पकड़ लेने वाले को नए को पहचानने में मुश्किल हो जाती है। अगर मुझे दर्शन है, तो भी मेरी भाषा वह नहीं होने वाली जो महावीर की होगी। तो महावीर को मानने वाला कहेगा कि इस आदमी से अपना कोई तालमेल नहीं है, क्योंकि यह आदमी तो न मालूम क्या कह रहा है। यह तो न मालूम क्या कहता है। यह तो हमारे महावीर कहते नहीं।
महावीर कह नहीं सकते, क्योंकि पच्चीस सौ साल का फासला हो गया। पच्चीस
सौ साल में सब चीजों ने स्थिति बदल ली, सब कहीं और पहुंच गईं। सारी बात बदल गई है, दृष्टि बदल गई है, सोचने के ढंग बदल गए हैं, भाषा बदल गई है, सारी अभिव्यक्ति बदल गई, सब बदल गया है। इस सबके बदल जाने पर ज्ञान भिन्न होगा। दर्शन भर भिन्न कभी नहीं होगा, क्योंकि दर्शन होता ही तब है, जब हम यह सब छोड़ कर अंदर जाते हैं। भाषा छोड़ देते हैं, समाज छोड़ देते हैं; धर्म, शास्त्र सब छोड़ देते हैं; शब्द, विचार सब छोड़ देते हैं। जहां सब छूट जाता है, वहां दर्शन होता है। इसलिए दर्शन तो हमेशा वही रहेगा। क्योंकि तुम, कुछ भी छोड़े कोई सब छोड़ना पड़ेगा। मुझे कुछ और छोड़ना पड़ेगा, महावीर को कुछ और छोड़ना पड़ेगा।
महावीर ने डार्विन को नहीं पढ़ा था तो डार्विन को नहीं छोड़ना पड़ा होगा। महावीर ने वेद छोड़े होंगे, उपनिषद छोड़े होंगे। मैंने डार्विन को पढ़ा तो मुझे डार्विन को, मार्क्स को छोड़ना पड़ेगा। यह फर्क पड़ेगा। लेकिन जो भी मेरे पास है, वह छोड़ना पड़ेगा। छोड़ कर दर्शन उपलब्ध होगा कभी भी, इसलिए दर्शन हर काल में एक ही होगा। क्योंकि उसका जोर इस पर है कि तुम जो भी जानते हो, जो भी सीखा है, जो भी पकड़ा है, उस सबको अनलर्न कर दो। लेकिन जब दर्शन हो जाएगा और जब आप ज्ञान बनाएंगे उससे, तब आपकी सब लर्निंग आ जाएगी। इसलिए अरविंद जब बोलेंगे तो उसमें डार्विन मौजूद रहेगा। इसलिए अरविंद की सारी भाषा इवोल्यूशनरी हो जाएगी, जो महावीर की नहीं हो सकती। क्योंकि महावीर को डार्विन का कोई पता नहीं। भाषा में डार्विन ने एक जोड़ नहीं दिया है अभी। इसलिए महावीर डार्विन की भाषा नहीं बोल सकते। अरविंद बोलेगा तो डार्विन की भाषा में बोलेगा। तो वह इवोल्यूशन के सारे तत्व ले आएगा पूरे के पूरे।
अब जैसे महावीर मार्क्स की भाषा में नहीं बोल सकते, लेकिन अगर मैं बोलूंगा तो मार्क्स की भाषा बीच में आएगी। तो मैं कहूंगा शोषण पाप है, महावीर नहीं कह सकते। क्योंकि महावीर के युग में शोषण के पाप होने की धारणा ही किसी तरफ से पैदा नहीं हुई थी। उस वक्त तो जिसके पास धन था, वह पुण्य था। धन शोषण है और चोरी है, यह धारणा इधर तीन सौ वर्षों में पैदा हुई। यह धारणा जब इतनी स्पष्ट हो गई तो आज अगर कोई कहेगा कि धन पुण्य है तो आज इस जगत में इसका कोई अर्थ नहीं है, कोई अर्थ ही नहीं है। यानी वह अज्ञानी ही सिद्ध होने वाला है। इससे उसके ज्ञान का कोई मतलब ही होने वाला नहीं।
और इसीलिए अक्सर दिक्कत हो जाती है। न तो हमें पीछे की तरफ लौट कर सोचना चाहिए, नई शब्दावली को पुरानों पर भी नहीं थोपना चाहिए। यानी

महावीर को हम इसलिए कमजोर नहीं कह सकते कि उन्हें विकास की भाषा का कोई पता नहीं है। वह भाषा थी ही नहीं, भाषा नई विकसित हुई है।
और जब जितनी नई चीजें विकसित हो जाएं--आज से हजार साल बाद जो लोग दर्शन
को उपलब्ध होंगे, वे जो भाषा बोलेंगे, उसकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते, क्योंकि इस हजार साल में सब कुछ बदल जाएगा। इस बदली हुई भाषा में फिर ज्ञान पकड़ेगा, फिर ज्ञान प्रकट होगा। अभिव्यक्ति के माध्यम बदल जाएंगे। जैसे समझ लें कि आज से दो हजार, तीन हजार या पांच हजार साल पहले भाषा
भी नहीं थी, शब्द भी नहीं था, तो जो भी कहा जाता था, उसे सिवाय स्मृति में रखने के कोई उपाय नहीं था। तो सारा ज्ञान स्मृति में ही संरक्षित होता था। तो ज्ञान को इस ढंग से बताना पड़ता था कि वह स्मृति में संरक्षित हो जाए। इसलिए पुराने से पुराने जो ग्रंथ हैं, वे सब काव्यमय होंगे। क्योंकि काव्य को स्मरण रखा जा सकता है, गद्य को स्मरण रखना मुश्किल है। कविता स्मरण रखी जा सकती है सुविधा से, गद्य को नहीं रखा जा सकता।
इसलिए जब कि स्मृति के सिवाय और कोई उपकरण न था संरक्षित करने का, तो सारे ज्ञान को पद्य में ही बोलना पड़ता था, उसको गद्य में बोलना बेकार था, क्योंकि गद्य में बोला तो उसको याद रखना बहुत मुश्किल हो जाएगा। तो उसको पद्य में बोलने से वह स्मरण रखने में सुविधा हो जाती थी। आप एक कविता स्मरण रख सकते हैं सरलता से बजाय एक निबंध के, क्योंकि उसमें तुकबंदी है। और वह तुकबंदी आपको गाने की सुविधा दे देती है, गुनगुनाने की सुविधा दे देती है, वह स्मृति में जल्दी बैठ जाती है।
तो इसलिए पुराने से पुराना ग्रंथ हमेशा पद्य में होगा। गद्य बिल्कुल
नई खोज है। जब लिखा जाने लगा, तब पद्य की कोई जरूरत न रही, फिर यह बेमानी हो गया। नाहक की तुकबंदी जोड़ना और जो न कहना हो वह भी उसमें मिलाना-जुलाना, घटाना; फिजूल की बात हो गई। सीधा गद्य में लिखा जा सकता है। तो फिर नए शब्द आए।
इसलिए नई जो भाषाएं हैं, वे काव्यात्मक नहीं हैं, पुरानी भाषाएं काव्यात्मक हैं। जैसे संस्कृत है। संस्कृत एकदम पोएटिक है। साधारण गद्य भी बोलो तो कविता मालूम पड़े। नई जो भाषाएं हैं, वे पोएटिक नहीं हैं, वे साइंटिफिक हैं, कि आप कविता भी बोलो तो गणित का सवाल मालूम पड़े। तो सारा फर्क पड़ता चला जाता है न!
तो जो उपकरण उपलब्ध होंगे, उनमें ज्ञान प्रकट होगा। इसलिए नई कविता बिल्कुल गद्य है। नई कविता पद्य नहीं है। नई कविता को पद्य होने की जरूरत नहीं है। पुराना गद्य भी पद्य है, नया पद्य भी गद्य है। और यह सब बदलते चले जाते हैं रोज-रोज।
तो जो ज्ञान बनेगा, वह दर्शन से उतरेगा नीचे, दूसरी सीढ़ी पर खड़ा होगा
और जो उस युग की ज्ञान-व्यवस्था है, उसका अंग होगा। तो ही सार्थक हो पाएगा, नहीं तो सार्थक नहीं होगा। फिर और नीचे उतरेगा तो चरित्र बनेगा। तो हमारे समाज का जो अंतर्संबंध है, वह उस पर निर्भर होगा। आएगा दर्शन से, उतरेगा चरित्र तक। चरित्र सब से ज्यादा अशुद्ध रूप होगा, क्योंकि उसमें दूसरे सब आ गए। ज्ञान और कम अशुद्ध होगा। दर्शन पूर्ण शुद्ध होगा। और दर्शन की उपलब्धि के रास्ते अलग होंगे। चरित्र उसकी उपलब्धि का रास्ता नहीं है।

प्रश्नः महावीर की नग्नता चरित्र का अंग था या दर्शन का अंग?

बहुत सी बातें हैं। असल में, महावीर को--जैसा मैंने रात कहा--बहुत सी बातें महावीर को करनी पड़ रही हैं, जो हमारे ख्याल में नहीं हैं। वे ख्याल में आ जाएं तो हमें पता चल जाएगा कि किस बात का अंग था। वह महावीर के ज्ञान का अंग है--नग्नता जो है--चरित्र का नहीं।
ज्ञान का अंग इसलिए है कि जैसा मैंने कहा कि अगर यह जो विस्तीर्ण ब्रह्मांड है, यह जो मूक जगत है, इससे संबंधित होना है तो वस्त्र तक बाधा है। वस्त्र इतनी बड़ी बाधा है, जिसका हमें कोई ख्याल भी नहीं आता। और जितने नए वस्त्र पैदा होते जा रहे हैं, उतनी ज्यादा बाधा है। नवीनतम जो वस्त्र हैं, वे चारों तरफ के वातावरण से आपके शरीर को बिल्कुल तोड़ देते हैं। उनमें से बहुत कम भीतर जाता है, बहुत कम बाहर आता है।

अलग-अलग वस्त्र अलग-अलग काम करता है। सूती वस्त्र अलग तरह से तोड़ता है, रेशमी वस्त्र अलग तरह से तोड़ता है, ऊनी वस्त्र अलग तरह से तोड़ता है। नए जो वस्त्र हैं, जिनमें किसी तरह से प्लास्टिक मिला हुआ है या कांच मिला हुआ है, वे और तरह से तोड़ते हैं।
तो जिस व्यक्ति को चारों तरफ के ब्रह्मांड से पूर्ण संपृक्त होना हो उसके लिए किसी तरह के वस्त्र बाधा बन जाएंगे। उसे तो, पूर्ण नग्नता में ही वह एक हो पाएगा। तो महावीर की नग्नता उनके ज्ञान का हिस्सा है, चरित्र का हिस्सा नहीं है। उनको यह साफ समझ में पड़ रहा है कि वह जो कम्युनिकेशन करना है उन्हें, वह इस ब्रह्मांड से बिल्कुल एक होकर ही किया जा सकता है।
जैसे अब हम जानते हैं कि कितनी छोटी-छोटी चीजों से फर्क पड़ता है। आप
एक रेडियो लगाए हुए हैं। सब द्वार-दरवाजे बंद कर दें, हवा बिल्कुल न आती हो, एयरकंडीशन कमरा हो, तो आपका रेडियो बहुत मुश्किल से पकड़ने लगेगा, क्योंकि जो वेव्स आ रही थीं, उन पर बाधा पड़ गई है। एयरकंडीशन कमरे में वह काम करना उसको मुश्किल हो जाएगा, क्योंकि हवा बाहर से आ नहीं रही है, सब बंद है। संपर्क बाहर की तरंगों से उसका टूट गया है। जितने खुले में आप रख रहे हैं, उतना उसका संपर्क बन रहा है। या तो उसे खुले में रखें या एक एरियल बाहर खुले में लगाएं, ताकि एरियल पकड़े और भीतर तक खबर पहुंचा दे।
समझ लो कि हमें कोई ज्ञान न हो रेडियो-शास्त्र का तो हम कहेंगे, यह क्या बात है? रेडियो को बाहर रखने की क्या जरूरत है? एरियल बाहर लटकाने की क्या जरूरत है? अपने घर में रखो। अपने घर में अंदर एरियल लगा लो। सब तरफ द्वार-दरवाजे बंद कर दो।
मनुष्य के शरीर से प्रतिक्षण कंपन बाहर जा रहे हैं और प्रतिक्षण कंपन भीतर आ रहे हैं। महावीर नग्न होकर एक तरह का तादात्म्य साध रहे हैं उस सारे जगत से, जहां वस्त्र भी बाधा बन सकता है। वस्त्र बाधा बनता है। और प्रत्येक वस्त्र अलग तरह की बाधा और सुविधा देता है।
जैसे रेशमी वस्त्र है। अब यह आपको जान कर हैरानी होगी कि जितना रेशमी वस्त्र है, वह आपके शरीर में सेक्सुअल इंपल्स को जल्दी पहुंचाता है बजाय सूती वस्त्र के। तो रेशमी वस्त्र पहने हुए स्त्री ज्यादा सेक्स प्रोवोकिंग है बजाय सूती वस्त्र के। उसी स्त्री को खादी पहना दो तो वह और भी कम सेक्स प्रोवोकिंग है। रेशमी वस्त्र जो है, उसके शरीर में, उसके शरीर से और शरीर के चारों तरफ से जो सेक्स की सारी की सारी वेव्स चल रही हैं, उनको जल्दी से पकड़ता है। वह स्त्रियों को बहुत पहले समझ में आ गया कि रेशमी वस्त्र किस तरह उपयोगी है।
ऊनी वस्त्र जो है, वह बहुत अदभुत है। आप देखते हैं कि सूफी हैं, वह सब सूफी फकीर जो हैं, वे ऊन का वस्त्र ही पहनते हैं। सूफ का मतलब ऊन होता है। जो ऊन के कपड़े पहनते हैं, उनको सूफी कहते हैं। लपेटे हुए हैं कंबल, गर्मी में भी लपेटे रहेंगे कंबल। सर्दी में भी लपेटे रहेंगे, हर वक्त कंबल ही लपेटे रहेंगे।
ऊनी वस्त्र जो है, वह भीतर सब तरह की वेव्स को संरक्षित कर लेता है और इसीलिए आपको ठंड में उपयोगी होता है। ऊनी वस्त्र गर्म नहीं है, सिर्फ आपकी शरीर की गर्मी को बाहर नहीं जाने देता। ऊनी वस्त्र में गर्मी जैसी कोई चीज नहीं है, सिर्फ आपका शरीर जो गर्मी रिलीज करता रहता है प्रतिपल, वह उसको बाहर नहीं निकलने देता, उसके बाहर पार नहीं हो पाती, वह गर्मी भीतर रुक जाती है। बस वह भीतर रुकी हुई गर्मी ऊनी वस्त्र को गरम बना देती है। नहीं तो ऊनी वस्त्र में गरम होने जैसा कुछ भी नहीं है, सिर्फ आपके ही शरीर की गर्मी को बाहर नहीं निकलने देता, रोक देता है।
तो सूफी सैकड़ों वर्षों से ऊनी वस्त्र का उपयोग कर रहे हैं। अनुभव यह
है कि न केवल गर्मी को बल्कि और तरह के सूक्ष्म अनुभवों को भी ऊनी वस्त्र रोकने में सहयोगी होता है, वह शरीर के भीतर रोक देता है। तो जिन लोगों को किसी सीक्रेसी, एसोटेरिक, कुछ गुह्य विज्ञान में काम करना हो, उनके लिए ऊनी वस्त्र उपयोगी हैं। वे कुछ चीजों को भीतर बिल्कुल रोक सकते हैं, जिनको वे प्रकट न करना चाहें।
महावीर की नग्नता बहुत अर्थपूर्ण है, वह उनके ज्ञान का हिस्सा है, चरित्र का नहीं। इसलिए जो लोग चरित्र का हिस्सा समझ कर नंगे खड़े हो जाते

हैं, वे बिल्कुल पागल हैं, उनको पता ही नहीं कि उससे कोई वास्ता नहीं है। वे तो कुछ वेव्स हैं, जो वे पहुंचाना चाहते हैं सारे लोक में, वे नग्न स्थिति में ही पहुंचाई जा सकती हैं। और जब शरीर में उनकी तरंगें पैदा होती हैं, तो वह नग्न स्थिति में पूरी की पूरी हवाएं उन वेव्स को लेकर यात्रा कर जाती हैं। कपड़े में वे वेव्स भीतर रह जाती हैं। ऊनी कपड़े में बिल्कुल भीतर रह जाती हैं। तो सूफी भी जान कर कर रहे हैं, महावीर भी जान कर नग्न खड़े हुए हैं।
लेकिन उस युग की चरित्र-व्यवस्था नग्न खड़े होने की सुविधा देती है।
हर युग में महावीर नग्न नहीं खड़े हो सकते। क्योंकि जिस काम के लिए खड़े हो रहे हैं, अगर उस काम में बाधा ही पड़ जाए नग्न खड़े होने से तो बेमानी हो जाएगा। जैसे आज अगर न्यूयार्क में पैदा हों तो मैं कहता हूं, नग्न खड़े नहीं हो सकते।
अब बंबई में भी होना मुश्किल है, बंबई में भी तो रुकावट है। नंगे आदमी
के सड़क से निकलने में गवर्नर की परमीशन चाहिए। या फिर उसके भक्त उसको घेर कर चलें, वह बीच में रहे, चारों तरफ भक्त घेरे रहें, ताकि जिनको नंगा नहीं देखना है वे नंगा न देख पाएं। न्यूयार्क में तो वह बिल्कुल पकड़ लिया जाएगा, उसको बिल्कुल बंद कर दिया जाएगा। तो वह काम की तो बात अलग हुई, काम में बाधा पड़ जाएगी। तो और कुछ रास्ते खोजने पड़ेंगे।
नई परिस्थिति में नए रास्ते खोजने पड़ेंगे, पुराने रास्ते काम नहीं देंगे। वह उस वक्त बिल्कुल सरल था। हिंदुस्तान में नग्नता बड़ी सरल बात थी। एक तो ऐसे ही आम आदमी अर्ध-नग्न था, एक लंगोटी लगाए हुए था। तो नग्नता में कुछ बहुत ज्यादा नहीं छोड़ना पड़ता था, जैसा हम सोचते हैं अब। वे तो राजपुत्र थे, इसलिए सब कपड़े-वपड़े थे, बाकी आदमी के पास कपड़े वगैरह कहां थे? एक लंगोटी बहुत थी। तो आम आदमी भी लंगोटी उतार कर स्नान कर लेता था। नग्नता बड़ी सरल थी, एकदम सहज बात थी, उसमें कुछ असहज जैसा नहीं था कि यह कोई बात नई हो रही है।
तो वह परिस्थिति मौका देती थी, हिस्सा तो ज्ञान का था। परिस्थिति मौका देती थी। और ज्ञानवान आदमी वह है, जो ठीक परिस्थिति के मौके का पूरा- पूरा, ज्यादा से ज्यादा उपयोग कर सके; वही ज्ञानवान है, नहीं तो नासमझ है। यानी सिर्फ नंगे होने की जिद कर ले और इसलिए सब काम में रुकावट पड़ जाए, कोई मतलब नहीं है उसका। काम के लिए कोई और रास्ते खोजने पड़ेंगे।

प्रश्नः कल की चर्चा में आपने कहा कि महावीर पिछले जन्म में सिंह थे।
और महावीर को पिछले जन्म में अनुभूति हुई। तो क्या प्राणी-मात्र को अवस्था में अनुभूति हो सकती है? या उनको अनुभूति उनके मनुष्य जन्म में हुई?

हां, हां। मैंने पिछले जन्म में जो कहा, सीधे उसका मतलब यह नहीं कि इसके पहले जन्म में।

प्रश्नः इमीजिएट नहीं?

नहीं, इमीजिएट नहीं। अनुभूति बहुत मुश्किल है दूसरे प्राणी-जगत में होना। हो सकती है, बहुत ही कठिन है। कठिन तो मनुष्य योनि में भी बहुत है। यानी यहीं मुश्किल से हो पाती है। संभव तो है ही दूसरी योनियों में भी! संभव है, लेकिन अत्यधिक कठिन है, असंभव के करीब है। मनुष्य योनि में ही असंभव की हालत के करीब है, कभी किसी को हो पाती है। पिछले जन्म से मेरा मतलब अतीत जन्मों में। महावीर का जो सत्य का अनुभव हुआ है, वह तो मनुष्य जन्म में ही। लेकिन संभावना का निषेध नहीं है। आज तक ऐसा ज्ञात भी नहीं है कि कोई पशु योनि से मुक्त हुआ हो, लेकिन निषेध फिर भी नहीं है। यानी यह कभी हो सकता है।
और यह तब हो सकेगा, जब मनुष्य योनि बहुत विकसित हो जाएगी। इतनी ज्यादा विकसित हो जाएगी कि मनुष्य योनि में मुक्ति बिल्कुल सरल हो जाएगी तो मैं मानता हूं कि जो अभी स्थिति मनुष्य योनि की है, वह पिछली नीची योनियों की

हो जाएगी। वहां असंभव होगी, लेकिन कभी-कभी होने लगेगी। यानी मेरा मतलब यह है कि मनुष्य योनि में ही अभी असंभव की स्थिति है। कभी करोड़, दो करोड़, अरब, दो अरब आदमी में एक आदमी उस स्थिति को उपलब्ध होता है। कभी ऐसा आ सकता है वक्त, आना चाहिए विकास के दौर में, जब कि मनुष्य योनि में बड़ी सरल हो जाए यह बात, तो इससे नीचे की योनियों में भी एकाध-दो घटनाएं घटने लगेंगी। अब तक नहीं घटी हैं। अब तक मनुष्य को छोड़ कर किसी योनि से... ।

प्रश्नः देवता योनि में भी नहीं?

देवता योनि में कभी भी नहीं हो सकती, पशु योनि में कभी हो सकती है, असंभव है, निषेध नहीं है। लेकिन देव योनि में बिल्कुल निषेध है। निषेध का कारण यह है कि देव योनि बहुत--एक तो शरीर नहीं है वहां किसी भी तरह का। देव योनि मनोयोनि है, साइकिक।
तो देव योनि में शरीर न होने की वजह से, जैसा पशु योनि में चेतना का अभाव है, ऐसा देव योनि में शरीर का अभाव है। और शरीर भी साधना में अनिवार्य कड़ी है, उसके बिना साधना करनी भी बहुत मुश्किल है, असंभव ही है। जैसे पशु में बुद्धि न होने से मुश्किल हो गई है, ऐसा देव में शरीर न होने से मुश्किल हो गई है। लेकिन पशु में तो कभी बुद्धि विकसित हो सकती है, देव में कभी शरीर विकसित नहीं हो सकता, वह अशरीरी योनि ही है। तो देव को तो जब भी मुक्ति होती है, तब उसको फिर मनुष्य योनि पर वापस लौट आना पड़ता है।
यानी अब तक मुक्ति का जो द्वार रहा है, वह मनुष्य योनि के अतिरिक्त कोई योनि नहीं है। पशुओं को मनुष्य तक आना पड़ता है और देवताओं को पुनः वापस मनुष्य तक लौट आना पड़ता है। इसलिए मैंने कल रात कहा कि मनुष्य क्रास-रोड पर है, चौराहे पर खड़ा है। जैसे मैं आपके घर तक गया चौराहे से, फिर मुझे दूसरी तरफ जाना है, तो चौराहे पर फिर वापस आऊं।
तो देव योनि बड़ी सुखद है, पशु योनि बड़ी दुखद है। सुखद जरूर है वह, लेकिन सुख अपने तरह के बंधन रखता है; दुख अपने तरह के बंधन रखता है। और सुख से भी ऊब जाती है स्थिति, जैसा दुख से ऊब जाती है। और यह बड़े मजे की बात है कि अगर बहुत सुख में कोई आदमी हो तो वह अपने हाथ से दुख पैदा करना शुरू कर देता है।
अब जैसे कि अमरीका से आते हुए बीटल हैं, हिप्पी हैं, ये सब सुखी घरों
के लड़के हैं, अत्यंत सुखी घरों के लड़के हैं। अब इन्होंने दुख अपनी तरफ से पैदा करना शुरू कर दिया, क्योंकि सुख उबाने वाला हो गया।
मुझे बनारस में एक हिप्पी मिला, वह सड़क पर अपना भीख मांग रहा है। करोड़पति घर का लड़का है, दस पैसे मांग रहा है और प्रसन्न है, बहुत प्रसन्न है। झाड़ के नीचे सो जाएगा, दस पैसे मांग कर कहीं होटल में खाना खा लेगा, प्रसन्न है। क्यों प्रसन्न है? वह सुख भी उबाने वाला हो गया। जहां सब सुनिश्चित है, सब सुबह वक्त पर मिल जाता है, सांझ वक्त पर मिल जाता है, सो जाता है, सब सुनिश्चित है। तो आदमी को कोई मौका नहीं रहा जिंदगी अनुभव करने का। तो वह सब तोड़ कर बाहर आ जाएगा।
तो देवता बहुत सुख में हैं, लेकिन सुख उबाने वाला है। और इतनी हैरानी
की बात है कि दुख से ज्यादा उबाने वाला है, यह ध्यान में रहे।

प्रश्नः मनुष्य ही देवता बनते हैं?

हां, हां। सुख ज्यादा उबाने वाला है और इसीलिए दुखी आदमी--बोर्डम में
आप कभी न पाएंगे दुखी आदमी को। गरीब आदमी आपको बोर्डम में नहीं मिलेगा, ऊबा हुआ नहीं मिलेगा। अमीर आदमी ऊबा हुआ मिलेगा। गरीब आदमी परेशान मिलेगा, ऊबा हुआ नहीं, लेकिन जिंदगी में एक रस उसको होगा। अमीर आदमी को रस भी नहीं होगा जिंदगी में, विरस हो जाएगा।
तो देवताओं के जगत में बोर्डम सबसे ज्यादा उपद्रव है। मनुष्यों के जगत में एंग्जाइटी, मनुष्यों के जगत में चिंता सबसे ज्यादा उपद्रव है, देवताओं के जगत में ऊब, बोर्डम। और यह जान कर आप हैरान होंगे कि कोई पशु कभी बोर्डम में नहीं होता। किसी पशु को आप ऊबा हुआ नहीं देख सकते कि आप

किसी कुत्ते को कह सकें कि देखो, बेचारा कितना ऊबा हुआ बैठा है, ऐसा कभी नहीं। कोई पक्षी आपको ऊबा हुआ नहीं दिखाई देगा।

प्रश्नः चिंतित भी नहीं होगा?

चिंतित भी नहीं होगा। न चिंतित है, न ऊब है, क्योंकि चेतना ही नहीं है।
जो बोध होना चाहिए इन चीजों का, वह ही नहीं है। आदमी आपको चिंतित मिलेगा।
गरीब आदमी ज्यादा चिंतित मिलेगा। अमीर आदमी ज्यादा ऊबा हुआ मिलेगा, ऊब ही उसकी चिंता है।
तो देवताओं के जगत में बोर्डम सबसे बड़ा सवाल और समस्या है--ऊब, एकदम ऊब। सब है और चूंकि शरीर नहीं है, मन की इच्छा करते ही पूरी हो जाती है। आपको कल्पना नहीं है कि अगर आप मन में इच्छा करें और तत्काल पूरी हो जाए तो आप दो दिन बाद इतने ऊब जाएंगे, जिसका हिसाब नहीं। क्योंकि आपने चाही जो औरत, वह हाजिर हो गई; आपने चाहा जो भोजन, वह हाजिर हो गया; चाहा जो मकान, वह बन गया। और कुछ भी न करना पड़ा, चाह काफी थी। बस, चाही कि हो गया।
तो आप दो दिन बाद इतने घबरा जाएंगे कि कहेंगे इतने जल्दी नहीं, यह तो
सब व्यर्थ हुआ जा रहा है। क्योंकि पाने का जो रस था, वह तो गया, वह तो गया। उपलब्ध करने का, जीतने का, प्रतीक्षा करने का जो रस था, वह सब गया। वह वहां कुछ भी नहीं है। न प्रतीक्षा है, न उपलब्धि के लिए श्रम है, न चेष्टा है, न कुछ है। आप बैठे हैं, आपने चाहा और हो गया।
अमीर आदमी इसीलिए ऊब जाता है कि वह बहुत सी चीजें चाहता है और तत्काल
हो जाती हैं। गरीब आदमी नहीं ऊबता, क्योंकि चाहता है अभी और पचास साल बाद वे पूरी हो पाती हैं। तो पचास साल तो वह रस में रहता हैः अब पूरी होंगी, अब पूरी होंगी, अब पूरी होंगी।
देव योनि ऊब की योनि है, वहां से--सुख की है, लेकिन ऊब की--तो वहां से लौट आना पड़े मनुष्य पर। मनुष्य ही अभी तक चौराहे पर है, जहां से किसी को भी लौटना पड़े।
इसलिए मनुष्य को मैं योनि नहीं कहता, वह चौराहा है। पशु उधर आते हैं, देवता उधर आते हैं, सब उधर आते हैं, पौधे वहां आते हैं, पत्थर वहां आते हैं, सब वहां आते हैं, वह चौराहा है। कुछ लोग ऐसे हैं, जो चौराहे पर ही रुकने का तय कर लेते हैं तो चौराहे पर रुके रहते हैं। कुछ लोग ऐसे हैं, जो कोई रास्ता चुन लेते हैं तो चुन लेते हैं। वे देवता की तरफ भी जा सकते हैं, वे मुक्ति की तरफ भी जा सकते हैं।

प्रश्नः वापस नहीं लौट सकते?

वापस नहीं लौट सकते। वापस नहीं लौट सकते, उसका कारण है। क्योंकि जो भी हमने जान लिया और जी लिया, उसमें पीछे लौटने का उपाय नहीं रह जाता। जो आपने जान लिया, उसको अनजाना नहीं कर सकते आप। उसे अनजाना करने का असंभव मामला है। और चेतना जितनी आपकी विकसित हो गई, उससे नीचे उसे नहीं गिरा सकते। जैसे कि एक बच्चा पहली क्लास में पढ़ता है तो वह दूसरी क्लास में जा सकता है, पहली क्लास में ही रुक सकता है, लेकिन नीचे नहीं उतर सकता। दूसरी कक्षा में पढ़ता है तो फेल हो जाए तो दूसरी में रुक सकता है, पास हो जाए तो तीसरी में जा सकता है, लेकिन पहली में उतरने का कोई उपाय नहीं है। पहली पास हो चुका। पहली में वापस जाने का कोई उपाय नहीं।
हम तो कर भी सकते हैं उपाय, क्योंकि स्कूल हमारी कृत्रिम व्यवस्था है। लेकिन जीवन की जो व्यवस्था है--जीवन की जो व्यवस्था है, उसमें यह असंभव है। जहां से हम पार हो गए, उत्तीर्ण हो गए, वहां वापस लौटना नहीं।

प्रश्नः शास्त्रों में ऐसे कैसे लिखा है कि इन-इन योनियों में भटकना पड़ता है मनुष्यों को?

सिर्फ भयभीत करने को।

प्रश्नः मेरे मन में एक प्रश्न है तादात्म्य के संबंध में। मैं अब तक ऐसा ही समझता रहा कि जिस व्यक्ति को ज्ञान होता है, उसका तादात्म्य संपूर्ण जगत से युगपत होता है। ऐसा नहीं कि स्थावर से कर लिया तो चेतन से नहीं; चेतन से कर लिया तो स्थावर से नहीं। और आपके कहने से ऐसा लगा जैसे महावीर का तादात्म्य जब जड़ के साथ है, वृक्ष के साथ है, तो मनुष्य के साथ नहीं है। अन्यथा जब उनके कानों में जो व्यक्ति कील ठोंक रहा था, वह कील न ठोंक पाता। तो मैं यही मानता रहा अब तक कि तादात्म्य जब होता है तब युगपत सबके साथ हो जाता है। एक-एक के साथ अलग-अलग होता है... ?

बिल्कुल ठीक, तुम्हारा कहना ठीक ही है। जब पूर्ण तादात्म्य होता है
तो युगपत हो जाता है, लेकिन वह मोक्ष में ही होता है। और जो मैंने कहा कि महावीर उन लोगों में से हैं, जो परिपूर्ण रूप से मोक्ष पाने के पहले वापस लौट आए हैं--वह तादात्म्य तो होता है, लेकिन तब महावीर मिट जाते हैं। पूर्ण तादात्म्य में फिर महावीर नहीं रह जाते। इसलिए संदेश पहुंचाने का भी उपाय नहीं रह जाता।
इसलिए जो मुक्त हो जाता है, वह परमात्मा का हिस्सा हो जाता है। परमात्मा कोई संदेश नहीं पहुंचाता आपको। उसका तादात्म्य आप से है। संदेश पहुंचाने के लिए महावीर लौट आए हैं वापस, एक सीढ़ी पहले। ज्ञान पूरा हो गया है, लेकिन अभी डूब नहीं गए हैं सागर में। जैसे एक नदी पहुंच गई है सागर के किनारे और डूबने के पहले है, कि लौट कर एक आवाज दे दे।
जिब्रान ने इस प्रतीक का उपयोग किया है कि मैं उस नदी की भांति हूं, जो सागर में गिरने के करीब पहुंच गई है, और इसके पहले कि सागर में गिर जाऊं, उन सबका स्मरण आता है, जो मार्ग में पीछे छूट गए हैं। वे पथ, वे पहाड़, वे झीलें, वे तट। और क्या एक बार लौट कर देखने की भी आज्ञा न मिलेगी? कि एक बार इसके पहले कि सागर में गिर जाऊं, लौट कर देख लूं--उस सबको जिसके साथ मैं थी और अब कभी नहीं होऊंगी।
तो उस क्षण पर महावीर हैं, जहां से आगे सागर है, जहां पूर्ण तादात्म्य
हो जाएगा। पूर्ण तादात्म्य का मतलब जहां महावीर नहीं रह जाएंगे। जैसे बूंद सागर में खो जाएगी। खबर पहुंचानी है तो उसके पहले, फिर खबर पहुंचाने का कोई उपाय नहीं है। किसको खबर पहुंचानी? कौन पहुंचाएगा?
इसलिए मैंने कहा, तीर्थंकर का मतलब है, ऐसा व्यक्ति जो मोक्ष के द्वार
से एक बार वापस लौट आया है उनके लिए, जो पीछे रह गए हैं, और उनको खबर देने आता है। तो इस हालत में तादात्म्य सबसे नहीं होगा। इस हालत में तो वह जिससे तादात्म्य चाहेगा और व्यवस्था बनाएगा तादात्म्य की तो ही हो पाएगा। तो वह युगपत नहीं होगा। वह एक विशिष्ट दिशा में एक साथ एक बार होगा, दूसरी दिशा में दूसरी बार होगा, तीसरी दिशा में तीसरी बार होगा। मोक्ष में तो युगपत हो जाएगा। अब महावीर का युगपत है।

प्रश्नः उनकी कोई सेप्रेट एंटाइटी इस समय है मुक्त अवस्था में?

उनकी कोई सेप्रेट एंटाइटी नहीं रह जाती। मोक्ष होते ही किसी व्यक्ति
का कोई व्यक्तित्व नहीं रह जाता। लेकिन हमारा व्यक्तित्व है, जो हम अमुक्त हैं, इसलिए अगर इस तरह के उपाय हैं, जिनके हम उपाय करें, तो हमारे लिए करीब-करीब वे व्यक्ति की तरह उत्तर उपलब्ध हो सकते हैं। उनका कोई व्यक्तित्व नहीं रह गया है।

प्रश्नः अगर उनका व्यक्तित्व नहीं रहा तो उत्तर उपलब्ध कैसे होगा?

असल में हमारी क्या कठिनाई है कि हम एक ही तरह के व्यक्तित्व को जानते हैं। हम एक ही तरह के व्यक्तित्व को जानते हैं--शरीर का है, मन का है। एक व्यक्ति खो गया अनंत में, है मौजूद, अनंत होकर मौजूद है। आप तो सीमित हैं। अगर आप सागर के तट पर भी जाएंगे, तट पर भी खड़े हो जाएंगे, तो भी सीमित चुल्लू भर पानी ही उससे आप भर सकते हैं। आप करेंगे क्या? सागर होगा अनंत, आप तो चुल्लू भर पानी ही भर सकते हैं।

जो नदी सागर में खो गई है, उसका पता लगाना मुश्किल है कि वह नदी कहां
खो गई। गंगा गिर गई सागर में। लेकिन गंगा का कण-कण मौजूद है पूरे सागर में। खो गई है सागर में, मिट नहीं गई, जो था, वह तो है ही अब भी। सीमा की जगह असीम में हो गया है।
ऐसी कुछ व्यवस्था है, ऐसी कुछ विधि है कि सागर के तट पर, जब आप तट पर खड़े होकर गंगा को पुकारें-- उसकी विधि है, वह मैं बात करूंगा--कि जब आप सागर के तट पर खड़े होकर गंगा को पुकारें, तो आपको तो चुल्लू भर ही चाहिए, पूरी गंगा भी नहीं चाहिए, पूरा सागर भी नहीं चाहिए। तो वे अणु जो अनंत सागर में खो गए हैं, उस तट पर आपकी पुकार से इकट्ठे हो जाएं। आप चुल्लू भर गंगा ला सकते हैं सागर से।
यह मैं उदाहरण के लिए कह रहा हूं। यह जो पुकार है आपकी उन अणुओं को-- क्योंकि वे अणु कहीं खो नहीं गए हैं, वे सब सागर में मौजूद हैं। क्या कठिनाई है कि पुकार पर वे अणु चले न आएं और चुल्लू भर पानी गंगा का आपको सागर से मिल जाए! कठिनाई नहीं है।
चेतना के महासागर में महावीर जैसा व्यक्ति कोई खो गया है, लेकिन खोने
के पहले ऐसा प्रत्येक व्यक्ति ऐसे कोड वर्ड्स छोड़ जाता है, जो कभी भी उस अनंत के किनारे खड़े होकर पुकारे जाएं तो उसके अणु आपके लिए उत्तर देने के लिए सामर्थ्यवान हो जाएंगे। इस सबका बड़ा मजा है। इस सबका बड़ा मजा है। इस सबकी पूरी विधि, इस सबका पूरा अपना तकनीक है कि वह कैसे काम करेगा।
वह तकनीक कैसे काम करेगा। जैसे कि समझें, आपने कभी रास्ते पर देखा हो
कि एक मदारी दिखा रहा है, एक लड़के की छाती पर ताबीज रख दिया है, ताबीज रखते ही से लड़का बेहोश हो गया है। वह कहता है कि आपकी घड़ी में कितना बजा है, बताता है, आपके नोट का नंबर बताता, आपका नाम बताता, आपके मन में क्या है बताता है। और फिर इसके बाद वह मदारी ताबीज बेचना शुरू कर देता है कि ये छह-छह आने के ताबीज हैं। और ताबीज की यह शक्ति है, जो देख रहे हैं आप अपनी आंखों के सामने।
आपको भी लगता है कि ताबीज की बड़ी भारी शक्ति है। छह आने देकर आप ताबीज खरीद लेते हैं। घर आकर आप कुछ भी करिए, ताबीज से कुछ नहीं होगा। क्योंकि ताबीज की शक्ति ही न थी, मामला बिल्कुल दूसरा था। उस लड़के को बेहोश करके, बहुत गहरी बेहोशी में यह कहा गया है कि जब भी यह ताबीज तेरी छाती पर रखेंगे, तब तू फिर बेहोश हो जाएगा, जब भी यह ताबीज तेरी छाती पर रखेंगे। इसको कहते हैं पोस्ट हिप्नोटिक सजेशन। अभी बेहोश है वह, अभी उसको कह रहे हैं कि यह ताबीज पहचान ले ठीक से। आंख खोल। वह बेहोश है, उसे कहा, आंख खोल। यह ताबीज पहचान ठीक से। इतनी चौड़ाई का यह लाल रंग का ताबीज जब भी तेरी छाती पर हम रखेंगे, तभी तू तत्काल बेहोश हो जाएगा।
ऐसा महीनों उसको बेहोश किया जाता है और वह ताबीज बता कर उसके मन में
यह सुझाव बिठाया जाता है। फिर उस बच्चे पर जब भी ताबीज रख देते हैं, ताबीज उसने देखा कि वह बेहोशी में गया। वह कोड हो गया। वह ताबीज जो है, कोड लैंग्वेज हो गई। वह सिंबल हो गया, कि ताबीज जैसे ही छाती पर रखा कि वह बेहोश हुआ। तो अब उसको सबके सामने बेहोश नहीं करना पड़ता। नहीं तो बेहोश करने में वक्त लगता है। और फिर कभी होता है, कभी नहीं भी होता है। तो बेहोश करने की शिक्षा पहले दे दी है और ताबीज से एसोसिएशन जोड़ दिया है अब। अब ताबीज जब भी छाती पर रखेंगे, वह बेहोश हो जाएगा।
बेहोश होते ही से वह फैल गया सबमें। वह पढ़ने नहीं आ रहा आपका, अब वह वहीं से पढ़ सकता है आपके खीसे के नोट का नंबर। क्योंकि चेतना बहुत फैली हुई है नीचे। इधर छोटे से चेहरे से दिखाई पड़ रही है, उधर पीछे फैलती चली गई है। अगर यहां से बेहोश कर दी जाए तो वह वहां पूरे से संबंध जोड़ लेती है। जैसा इस बेहोश के साथ ताबीज का संबंध जोड़ा गया है ऐसा प्रत्येक शिक्षक, जो पीछे भी उपयोगी होना चाहता है और जो उसके पीछे भी उसका सहयोग, उसका मार्गदर्शन चाहेंगे, उनके लिए व्यवस्थित सूत्र छोड़ जाता है कि इन सूत्रों से प्रयोग करने से मैं पुनः उपस्थित हो जाऊंगा।
दक्षिण में एक योगी था, ब्रह्मयोगी, अभी कुछ वर्ष पहले ही। ब्रंटन उससे सबसे पहले आकर मिला। तो उसने अपना एक फोटो दे दिया ब्रंटन को। और उसने कहा कि मैं आपको गुरु बनाए लेता हूं, लेकिन मैं तो लंदन चला जाऊंगा।

तो उसने कहा, इससे क्या फर्क पड़ता है? लंदन कोई बहुत दूर तो नहीं। तुम यह फोटो ले जाओ। तुम इस भांति, इस आसन में बैठकर, इस तरह इस फोटो को रख कर एक-दो मिनट एकाग्र होकर फोटो को देखना। और तुम्हें जो प्रश्न पूछना हो तुम पूछ लेना, उत्तर तुम्हें आ जाएगा।
ब्रंटन तो बहुत हैरान हुआ कि यह कैसे होगा! लेकिन वह सारी व्यवस्था की
जा सकती है। और ब्रंटन ने जब लंदन में जाकर पहला काम यह किया कि फोटो सामने रख कर दो मिनट एकाग्र होकर उसने कुछ प्रश्न पूछा, उत्तर एकदम आ गया--ठीक उसी ध्वनि में, उसी शब्दावली में, जिसमें ब्रह्मयोगी बोलता है! उसने वे सब लिख रखे, जब भी उसने जो-जो पूछा। पीछे आकर उसने ब्रह्मयोगी को कहा कि मैंने एक दफा यह पूछा था, आपने क्या कहा था? तो जो उसने लिखा था, उसने बताया कि मैंने यह कह दिया था।
अब यह डिवाइस है, यह उपाय है, जिससे काल और क्षेत्र मिट जाते हैं और संबंध हो जाता है।
जो लोग बिल्कुल खो गए हैं अनंत में, वे भी पीछे डिवाइस और उपाय छोड़ जाते हैं। सभी नहीं छोड़ जाते हैं, यह उनकी मर्जी पर निर्भर है कि वे छोड़ें या न छोड़ें। कुछ शिक्षक कुछ भी नहीं छोड़ जाते हैं, कुछ शिक्षक कुछ छोड़ जाते हैं। महावीर निश्चित छोड़ गए हैं, बिल्कुल निश्चित छोड़ गए हैं कि इस उपाय से संबंध स्थापित हो सकेगा। महावीर का कोई व्यक्तित्व नहीं बनता, लेकिन उस अनंत से उत्तर आ जाता है। उसमें कोई कठिनाई नहीं है।
तो इसलिए मैंने कहा कि महावीर से अभी भी संबंध स्थापित हो सकता है, अभी भी। कुछ शिक्षकों से संबंध स्थापित होना एकदम असंभव होगा। जैसे जरथुस्त्र, उससे कोई संबंध स्थापित नहीं हो सकता है, क्योंकि उसने कोई उपाय नहीं छोड़ा। वह उसकी अपनी समझ है। वह यह कहता है कि पुराने शिक्षक की क्यों फिक्र करनी? नए शिक्षक आते रहेंगे, तुम उनसे संबंध बनाना, जरथुस्त्र से क्या लेना-देना!
अब वह उसकी अपनी समझ है। महावीर की समझ यह है कि क्या फिक्र तुम्हें, मैं ही काम पड़ सकता हूं फिर भी तो मेरा उपयोग किया जा सकता है। यह अपनी समझ की बात है, लेकिन संबंध बिल्कुल ही स्थापित किए जा सकते हैं। लेकिन जो शिक्षक डिवाइस छोड़ गया हो उसी से!

प्रश्नः इसका अर्थ यह हुआ कि महावीर के बाद किसी को भी उन कोड वर्ड्स
का नहीं पता।

कोड वर्ड्स का पता है, लेकिन यह पता नहीं है कि ये कोड वर्ड्स हैं। यानी यह तो पता है कि ये शब्द लिखे हैं, लेकिन ये काहे के लिए हैं और इनकी क्या विधि है, यह पता नहीं है। यानी जैसे कि आपको मैं एक लिख कर दे जाऊं... ।

प्रश्नः सवाल यह है कि आखिर जब वे गए होंगे... ।

हां, कुछ दिन तक पता था, कुछ दिनों तक उसका उपयोग होता रहा। जब तक उपयोग होता रहा, तब तक शास्त्र नहीं लिखे गए। जब तक उपयोग होता रहा तब तक कोई जरूरत न थी शास्त्र की, क्योंकि सीधा कांटैक्ट था। जब उपयोग छूट गया या कुछ लोग खो गए जो जानते थे... ।

प्रश्नः सब झगड़े पीछे चलते हैं।

झगड़े तो पीछे चलने ही वाले हैं, क्योंकि फिर तय करना मुश्किल हो जाता है, पूछना भी मुश्किल हो जाता है।

प्रश्नः आज मतलब महावीर से कांटैक्ट करने वाला कोई नहीं है?

नहीं, कोई नहीं है। लेकिन कांटैक्ट आज भी हो सकता है। उनकी परंपरा में
तो कोई भी नहीं है। उनकी परंपरा में कोई भी नहीं। उनकी परंपरा में कोई भी नहीं, लेकिन और लोगों ने कांटैक्ट स्थापित किए हैं।

प्रश्नः महावीर से?

महावीर से भी! जैन परंपरा में कोई नहीं है। और लोगों ने कांटैक्ट स्थापित किए हैं। कुछ लोग तो निरंतर श्रम कर रहे हैं। ब्लावट्स्की ने करीब-करीब सभी शिक्षकों से संबंध स्थापित करने की कोशिश की है, उसमें महावीर भी एक शिक्षक हैं।

प्रश्नः और किस-किस ने किए हैं?

वह असल में हुआ क्या है कि ब्लावट्स्की के साथ जितने लोगों ने काम किया... ।

प्रश्नः कौन है यह?

यह एक रूसी महिला थी, थियोसाफिस्ट थी, थियोसाफिकल सोसाइटी की जन्मदात्री थी। और उसके साथ था अल्काट, उसने भी संबंध स्थापित किए, एनी बीसेंट ने... ।

प्रश्नः वे तो मर चुके हैं।

वे सब मर चुके हैं।

प्रश्नः आज है कोई ऐसा?

थियोसाफी में भी आज कोई नहीं है, वह स्रोत सूख गया। थियोसाफी में भी कोई नहीं है आज, लेकिन थियोसाफिस्टों ने हजारों साल बाद बड़ी मेहनत की। और जो बड़े से बड़ा काम किया, वह यह किया कि सारे पुराने शिक्षकों से संबंध स्थापित किया, ऐसे शिक्षकों से भी जिनकी कोई किताब भी नहीं बची थी।

प्रश्नः उनको यह मालूम पड़ता है कि वे महावीर के साथ संबंध स्थापित कर रहे हैं या किसी दूसरे के साथ?

हां, वह तो करने की अलग-अलग विधियां हैं प्रत्येक शिक्षक से।

प्रश्नः करने वाले को मालूम पड़ता है?

हां, बिल्कुल ही मालूम पड़ेगा। बिल्कुल अलग-अलग विधियां हैं। कुछ से संबंध स्थापित नहीं हो सका तो या तो विधि गलत है, या करने वाला नहीं कर पा रहा है ठीक से, या कोई विधि नहीं छोड़ी गई है। तो इधर तो मैं चाहता हूं कि इधर कुछ लोग उत्सुक हों तो बराबर इस विधि पर काम करवाया जाए, इसमें कोई कठिनाई नहीं है।

प्रश्नः तब तो महाराज आपने अवश्य किए होंगे!

यह न पूछिए। यह मत पूछिए।

प्रश्नः किसी ने शब्द छोड़े हैं या नहीं, यह कैसे पता चलेगा?

इसके भी उपाय हैं। इसके भी उपाय हैं। उपाय तो सब के हैं।

प्रश्नः वे उपाय क्या हैं?

वह जरा आसान बात नहीं है। वह तो तुम कोशिश करने को तैयार होओ तो मैं बताने को तैयार हूं। समझे न? वह तो आसान बात नहीं।

प्रश्नः महावीर के संबंध में आप जो कुछ कह रहे हैं, वह बहुत मिस्टिकल
और रहस्यवादी बनता चला जा रहा है। आप सायंकाल या किसी और समय ऐसा जो सामान्य व्यक्ति की समझ में भी आ जाए और करने लायक हो महावीर का संदेश, वह कहें। क्योंकि यह जो आप कह रहे हैं, यह बहुत ही थोड़े लोगों के पल्ले पड़ने वाली बात लगती है।

बात ही ऐसी है, इसमें कोई उपाय नहीं है।
असल में जिन्हें भी करना है, उन्हें असाधारण होने की तैयारी दिखानी पड़ती है। कोई सत्य साधारण होने को कभी तैयार नहीं है, व्यक्तियों को ही असाधारण होकर उसे झेलना पड़ता है।
और सत्य को साधारण किया तो असत्य से भी बदतर हो जाता है। यानी सत्य उतर कर तुम्हारे मकान के पास नहीं आएगा, तुम्हें ही चढ़ कर सत्य की चोटी तक जाना पड़ेगा। और सत्य अगर आ गया तुम्हारे मकान के पास तो बाजार में बिकने वाला होगा, उसका कोई मूल्य नहीं होगा।
अब कल बैठेंगे।

महावीर: मेरी दृष्टि में
नौवां प्रवचन

प्रतिक्रमणः महावीर-सूत्र

महावीर ने जो जाना, उसे जीवन के भिन्न-भिन्न तलों तक पहुंचाने की अथक चेष्टा की है। कल हम सोचते थे कि मनुष्य से नीचे जो मूक जगत है, उस तक महावीर ने कैसे संवाद किया, कैसे वह प्रतिध्वनित किया जो उन्हें अनुभव हुआ है। दो बातें छूट गई थीं, वे विचार कर लेनी चाहिए।
एक तो मनुष्य से ऊपर के लोक भी हैं, उन लोकों तक महावीर ने कैसे बात पहुंचाई और मनुष्य तक उन्होंने पहुंचाने के क्या-क्या उपाय खोजे? देवलोक तक बात पहुंचानी सर्वाधिक सरल है, जो हमें सर्वाधिक कठिन मालूम होगी। क्योंकि देव जैसी कोई चीज की स्वीकृति हमें बहुत कठिन मालूम पड़ती है। जो हमें दिखाई पड़ता है वही सत्य है; जो नहीं दिखाई पड़ता वह हमारे लिए असत्य हो जाता है। और देव उस अस्तित्व का नाम है, जो हमें साधारणतः दिखाई नहीं पड़ता। लेकिन थोड़ा सा भी श्रम किया जाए तो उस लोक के अस्तित्व को भी देखा जा सकता है, उससे संबंधित भी हुआ जा सकता है।
और साधारणतः यह ख्याल है--जैसा अभी पूछा भी--साधारणतः यह ख्याल है कि देव कहीं और, प्रेत कहीं और रहते हैं, हम कहीं और। यह बात एकदम ही गलत है। जहां हम रह रहे हैं, ठीक वहीं देव भी हैं, प्रेत भी हैं। प्रेत वे आत्माएं हैं, जो इतनी निकृष्ट हैं कि मनुष्य होने की सामर्थ्य उन्होंने खो दी है और नीचे उतरने का कोई उपाय नहीं है। मनुष्य से नीचे की योनियों में जाने का कोई उपाय नहीं है। और मनुष्य होने की सामर्थ्य भी उन्होंने खो दी है। तो वे एक कठिनाई में हैं, वे नीचे की योनियों में जा नहीं सकतीं, मनुष्य की देह उन्हें उपलब्ध नहीं होती। ऐसी आत्माएं प्रतीक्षा करेंगी तब तक, जब तक या तो उनके योग्य गर्भ उन्हें उपलब्ध हो जाए, या उनके जीवन में परिवर्तन हो, रूपांतरण हो और वे जन्म ग्रहण कर सकें।
देव वे आत्माएं हैं, जो मनुष्य से ऊपर उठ गई हैं, लेकिन मोक्ष को उपलब्ध करने की सामर्थ्य उनकी नहीं है। यह अब प्रतीक्षा में जीवन है। यह कहीं दूर दूसरी जगह नहीं, किसी चांद पर नहीं, ठीक हमारे साथ है। और हमें कठिनाई यह होती है कि अगर हमारे साथ है तो हमें स्पर्श करना चाहिए, हमें दिखाई पड़ना चाहिए। कभी-कभी हमें स्पर्श भी करता है वह अस्तित्व और कभी-कभी किन्हीं क्षणों में दिखाई भी पड़ता है। साधारणतः नहीं, क्योंकि हमारे होने का ढंग और उसके होने के ढंग में बुनियादी भेद है। इसलिए दोनों एक ही जगह मौजूद होकर भी एक-दूसरे को काटने, एक-दूसरे की जगह घेरने का काम नहीं करते। जैसे इस कमरे में दीए जल रहे हैं और दीयों के प्रकाश से सारा कमरा भरा हुआ है। और मैं आऊं और एक सुगंधित इत्र यहां छिड़क दूं, तो कोई मुझसे कहे कि कमरा तो प्रकाश से बिल्कुल भरा हुआ है, इत्र के लिए जगह नहीं है। इत्र पूरे कमरे में फैल कर इत्र भी सुगंध भर दे अपनी। प्रकाश भी भरा था कमरे में, सुगंध भी भर गई कमरे में। न सुगंध प्रकाश को छूती है, न प्रकाश सुगंध को छूता है, न एक-दूसरे को बाधा पड़ती है इससे कि कमरा पहले से भरा है। उन दोनों का अलग अस्तित्व है। प्रकाश का अपना अस्तित्व है, सुगंध का अपना अस्तित्व है, दोनों एक-दूसरे को न काटते, न छूते; दोनों पैरेलल, समानांतर चलते हैं। फिर कोई तीसरा व्यक्ति आए और एक वीणा बजा कर गीत गाने लगे और हम उससे कहें कि कमरा बिल्कुल भरा है, वीणा बज नहीं सकेगी, प्रकाश पूरा घेरे हुए है, सुगंध ने एक-एक कोने को घेर दिया है, अब तुम्हारी ध्वनि को जगह कहां है? लेकिन वह वीणा बजाने लगे और ध्वनि भी इस कमरे को भर ले।
तो ध्वनि को जरा भी बाधा नहीं पड़ेगी इससे कि प्रकाश है कमरे में, कि गंध है कमरे में, क्योंकि ध्वनि का अपना अस्तित्व है। ध्वनि अपनी स्पेस पैदा करती है अलग, उसका अपना आकाश है। गंध का अपना आकाश है, प्रकाश का अपना आकाश है। प्रत्येक वस्तु और प्रत्येक अस्तित्व का अपना आकाश है और दूसरे को काटता नहीं।
इसलिए जब हमें ये सब सवाल उठते हैं कि कहां रहते हैं देवता, कहां जीते हैं प्रेत, तो हम सदा ऐसा सोचते हैं कि हमसे कहीं दूर! वैसी बात ही गलत है।

वे ठीक समानांतर हमारे जी रहे हैं हमारे साथ। और यह बड़ा उचित ही है कि साधारणतः वे हमें दिखाई नहीं पड़ जाते हैं, नहीं तो हमारा जीना बड़ा कठिन हो जाए। और साधारणतः हम उनके स्पर्श में नहीं आते हैं, नहीं तो जीवन बड़ा कठिन हो जाए।
लेकिन किन्हीं घड़ियों में, किन्हीं क्षणों में वे दिखाई भी पड़ सकते हैं, उनका स्पर्श भी हो सकता है, उनसे संबंध भी हो सकता है। और महावीर या उस तरह के व्यक्तियों के जीवन में निरंतर उनका संबंध और संपर्क है, जिसे परंपराएं समझाने में एकदम असमर्थ हैं। यह बातचीत ऐसे ही हो रही है जैसे दो व्यक्तियों के बीच हो रही हो--महावीर की या इंद्र की या और देवताओं की। उस बातचीत में कहीं भी ऐसा नहीं है कि कोई कल्पना-लोक में बात हो रही हो। यह अत्यंत सामने-आमने बात हो रही है।
और किसी एक के साथ ऐसा नहीं हो रहा है, बुद्ध के साथ भी वैसा हो रहा है, जीसस के साथ भी वैसा हो रहा है। जगत के इन सारे व्यक्तियों के साथ, मोहम्मद के साथ वैसा हो रहा है। ऐसा प्रतीत होता है कि हमारे भीतर भी कुछ उनसे संबंधित होने का मार्ग है, लेकिन प्रसुप्त है।
मनुष्य के मस्तिष्क का शायद एक तिहाई भाग काम कर रहा है, दो तिहाई भाग बिल्कुल ही काम नहीं कर रहा है। इससे वैज्ञानिक भी चिंतित हैं। अगर हम एक आदमी की खोपड़ी को काटें तो एक तिहाई हिस्सा केवल सक्रिय है, बाकी दो तिहाई हिस्सा बिल्कुल निष्क्रिय पड़ा हुआ है। शरीर में और कोई चीज निष्क्रिय नहीं है, सब चीजें सक्रिय हैं, सिर्फ मस्तिष्क का दो तिहाई हिस्सा बिल्कुल निष्क्रिय पड़ा हुआ है, जिसका कोई उपयोग नहीं हो रहा है।
वैज्ञानिकों को भी यह ख्याल आना शुरू हुआ है कि यह दो तिहाई हिस्सा जीवन के किन्हीं तलों को स्पर्श करता होगा, अगर सक्रिय हो जाए। अब जैसे उदाहरण के लिए कुछ बातें हम समझें। आपकी आंख देखती है, क्योंकि आंख से जुड़ा हुआ मस्तिष्क का हिस्सा सक्रिय है। अगर वह हिस्सा निष्क्रिय हो जाए, आपकी आंख देखना बंद कर देती है। यह भी हो सकता है अंधे आदमी की आंख बिल्कुल ठीक हो, लेकिन मस्तिष्क का वह हिस्सा, जिससे आंख सक्रिय होती है, निष्क्रिय पड़ा है, तो बिल्कुल ठीक आंख भी नहीं देख सकेगी।
एक लड़की मेरे पास आती थी। उस लड़की का किसी से प्रेम था और घर के लोगों
ने उस विवाह को इनकार कर दिया और उस लड़की को उस युवक को देखने की भी मनाही कर दी, सख्त पाबंदी लगा दी, उसे बिल्कुल घर के भीतर कैद कर दिया। वह लड़की दूसरे दिन अंधी हो गई। उसको सब चिकित्सकों को दिखाया। उन्होंने कहा कि आंख तो बिल्कुल ठीक है। जांच-पड़ताल की, लेकिन यह भी पक्का है कि उसे दिखाई नहीं पड़ता। उसे दिखाई भी नहीं पड़ रहा है और आंख बिल्कुल ठीक है।
वह मित्र मुझे कहे कि बड़ी मुश्किल में हम पड़ गए हैं। पहले तो हमने समझा कि वह सिर्फ धोखा दे रही है, क्योंकि हमने उस पर रुकावट लगाई, इसलिए धोखा दे रही है। लेकिन अब तो डाक्टर भी कहते हैं कि आंख तो ठीक है, लेकिन उसे दिखाई नहीं पड़ रहा।
मानसिक अंधापन है उसे--मेंटल ब्लाइंडनेस है। मानसिक अंधापन का मतलब
यह है कि मस्तिष्क का वह हिस्सा जो आंख से जुड़ कर आंख को दिखाने का काम करता है, बंद हो गया। जैसे ही उस लड़की को कहा कि जिसे वह प्रेम करती है, उसे अब नहीं देख सकेगी, हो सकता है उसके मस्तिष्क को यह ख्याल आया कि अब देखने का कोई अर्थ ही नहीं है। जिसे हम प्रेम करते हैं उसे ही न देख सकें तो अब देखने की भी क्या जरूरत है? और मस्तिष्क का वह हिस्सा बंद हो गया और आंख ने देखना बंद कर दिया।
बहुत से प्राणी हैं, बहुत सी योनियां हैं, जिनके पास मस्तिष्क का वह हिस्सा है जो देख सकता है, लेकिन निष्क्रिय है, तो उन प्राणियों में आंखें पैदा नहीं हो पाई हैं। ऐसे प्राणी हैं जिनके पास कान नहीं हैं, वह हिस्सा है जो सुन सकता है, लेकिन निष्क्रिय है; इसलिए कान पैदा नहीं हो पाए। मनुष्य की पांच इंद्रियां हैं अभी, क्योंकि मस्तिष्क के पांच हिस्से सक्रिय हैं, शेष बहुत बड़ा हिस्सा निष्क्रिय पड़ा हुआ है। अब तो वैज्ञानिक को भी यह ख्याल में आता है कि वह जो शेष हिस्सा निष्क्रिय पड़ा है, अगर उसमें से कुछ भी सक्रिय हो जाए तो नई इंद्रियां शुरू होंगी।

अब जिस आदमी ने कभी प्रकाश नहीं देखा है, वह कल्पना ही नहीं कर सकता कि प्रकाश कैसा है; और जिसने ध्वनि नहीं सुनी है, वह कल्पना भी नहीं कर सकता है कि ध्वनि कैसी है। और हम समझ लें कि एक गांव हो जिसमें कि सब बहरे हों, तो उस गांव में कभी ध्वनि की चर्चा भी नहीं होगी। चर्चा भी नहीं हो सकती, क्योंकि सवाल ही नहीं है, ध्वनि कभी सुनी नहीं गई। और अगर उन बहरों को कोई किताब मिल जाए, जिसमें लिखा हो कि ध्वनि होती थी या कहीं ध्वनि होती है, तो वे सब हंसेंगे और कहेंगे, यह कैसी बात है! ध्वनि यानी क्या? ध्वनि कहां है? किस जगह है? हम कहां ध्वनि को पकड़ें? कहां ध्वनि हमें मिलेगी? उनके सब प्रश्न संगत होते हुए भी व्यर्थ होंगे।
हमारे मस्तिष्क के बहुत से हिस्से हैं, जो निष्क्रिय हैं और अगर वे सक्रिय हो जाएं तो जीवन और अस्तित्व की अनंत संभावनाओं से हमारे संबंध जुड़ने शुरू होते हैं। जैसे कि थर्ड आई की, तीसरी आंख की बात निरंतर हम सुनते हैं। वह अगर सक्रिय हो जाए, वह हिस्सा जो हमारी दोनों आंखों के बीच का निष्क्रिय हिस्सा है अभी, अगर वह सक्रिय हो जाए तो हम कुछ ऐसी बातें देखना शुरू कर देते हैं, जिनकी हमें कल्पना ही नहीं है।
हवाई जहाज में अगर आप बैठ कर इंजन के पास गए हों तो आपने राडार देखा होगा, जो सौ मील या डेढ़ सौ मील आगे तक के चित्र देता रहता है। इसलिए अब पायलट को हवाई जहाज के भीतर बैठ कर बाहर देखने की कोई जरूरत नहीं है और बाहर देखने का कोई प्रयोजन भी नहीं है, क्योंकि हवाई जहाज इतनी गति से जा रहा है कि अगर चालक देख भी ले कि सामने हवाई जहाज है तो भी उसे बचाया नहीं जा सकता टकराने से, क्योंकि जब तक वह बचाएगा तब तक टकरा ही जाएगा। गति इतनी तीव्र है।
तो अब तो उसे डेढ़ सौ, दो सौ मील दूरी की चीजें दिखाई पड़नी चाहिए। दो सौ मील पर उसे दिखाई पड़े कि बादल है तो अभी वह बचा सकता है। और बचाते-बचाते वह दो सौ मील पार कर जाएगा, यानी बचा पाएगा तब तक बादल के आगे या नीचे या ऊपर हो जाएगा। तो राडार है जो दो सौ मील देख रहा है और राडार पर दो सौ मील आगे वर्षा हो रही है कि बादल जा रहे हैं कि हवाई जहाज है कि दुश्मन है कि क्या है, वह सब राडार पर चित्र आ रहा है।
मनुष्य की जो तीसरी आंख है वह राडार से भी अदभुत है, उसमें कोई स्थान
और काल का सवाल ही नहीं है, दो सौ मील का सवाल नहीं है। वह एक बार सक्रिय हो जाए तो कहीं भी क्या हो रहा है, उसके प्रति ध्यानस्थ होकर, उस होने को तत्काल पकड़ा जा सकता है। उस तीसरी आंख की संभावना यह भी है कि आगे क्या होगा, उसकी बहुत सी संभावनाएं पकड़ी जा सकती हैं। पीछे क्या हुआ है, ये संभावनाएं भी पकड़ी जा सकती हैं।
मस्तिष्क का एक और हिस्सा है जो अगर सक्रिय हो जाए, तो हम दूसरे के मन में क्या विचार चल रहे हैं, उनकी झलक पा सकते हैं। और हमारे मन में क्या विचार चल रहे हैं, अगर हम बिना वाणी के उन्हें दूसरे में डालना चाहें तो दूसरे में डाला भी जा सकता है। सवाल है कि मस्तिष्क के हमारे और हिस्से कैसे सक्रिय हो जाएं?
मस्तिष्क का एक हिस्सा है, जो सक्रिय होने से देवलोक से जोड़ देता है।
उस जुड़ जाने के बाद जो हमारा दर्शन है, हम खुद मुश्किल में पड़ जाएंगे, क्योंकि हम दूसरों को बता नहीं सकते कि यह हो रहा है।
स्विडनबोर्ग एक अदभुत व्यक्ति हुआ। आठ सौ मील दूर एक मकान में आग लग
गई है बारह बजे और वह किसी मित्र के घर ठहरा है और वह एकदम से चिल्लाया है कि पानी लाओ, आग लग गई और भागा और बालटी भर कर पानी लेकर आ गया खुद।
तो उन मित्रों ने कहा, कहां आग लगी है?
तब उसने कहा, अरे-अरे, बड़ी भूल हो गई! बालटी नीचे रख दी। उसने कहा, बड़ी भूल हो गई, वह आग तो बहुत दूर लगी है। लेकिन जब मुझे दिखी तो मुझे ऐसा लगा कि यहीं लगी है। वह तो आठ सौ मील दूर लगी है। वह तो वियना में लगी है, फलां- फलां घर बिल्कुल जला जा रहा है। मित्रों ने कहा कि आठ सौ मील दूर का फासला है यहां से, कैसे तुम्हें दिख सकता है? उसने कहा, मुझे दिख रहा है, बिल्कुल जैसे कि यहां आग लगी हो और मुझे दिख रहा है।

तीन दिन लग गए खबर लाने में, लेकिन ठीक जिस जगह उसने बताई थी आग लगी थी
और जिस जगह उसने बताई थी कि उसके बाद मकान पर चोट नहीं पहुंची, उस मकान तक आग लगी और बुझ गई है, वहीं तक चोट पहुंची थी और आग नहीं लगी थी।
उसने देवताओं के संबंध में बहुत अदभुत बातें कही हैं। संभवतः यूरोप में देवलोक के संबंध में जानकारी रखने वाला वह पहला आदमी है। उसने एक किताब लिखी है--हैवन एंड हेल, स्वर्ग और नर्क। और बड़ी अदभुत किताब है, जिसमें उसने आंखों देखे वर्णन दिए हैं। लेकिन उन पर तो भरोसा करने की बात नहीं उठती एकदम से, क्योंकि हमारे लिए तो वह कुछ भी सब बेमानी है कि ऐसा कहीं हो रहा है। लेकिन स्विडनबोर्ग की जिंदगी में और ऐसी घटनाएं थीं जिनकी वजह से लोगों को मजबूर होना पड़ा कि जो वह कहता होगा, वह ठीक कहता होगा।
एक सम्राट ने यूरोप के उसे अपने घर बुलाया और उससे कहा, मेरी पत्नी मर
गई है। तुम उससे संबंध स्थापित करके मुझे कहो कि वह क्या कहती है। उसने दूसरे दिन आकर खबर की कि तुम्हारी पत्नी कहती है कि फलां-फलां अलमारी में ताला पड़ा है, चाबी उसकी खो गई है। वह तुम्हारी पत्नी के वक्त में ही खो गई थी। तो उसका ताला तोड़ना पड़ेगा और उसमें उसने तुम्हारे नाम एक पत्र लिख कर रखा है और उस पत्र में उसने यह-यह लिखा है।
पत्नी को मरे पंद्रह साल हो गए हैं। वह अलमारी कभी खोली नहीं गई थी। बड़ा सम्राट है, बड़ा महल है। चाबी खोजी गई, चाबी नहीं मिल सकी है उसकी, वह पत्नी के पास ही हुआ करती थी। फिर ताला तोड़ा गया है। निश्चित, उसमें एक बंद लिफाफे में पत्र रखा हुआ है, जो पंद्रह साल पहले उसकी पत्नी ने उसे लिखा था। और उसे खोला गया है और जो इबारत स्विडनबोर्ग ने उसे बताई है, वह इबारत उस पत्र में है।
ये जो संभावनाएं हैं मस्तिष्क के और-और तलों के मुक्त हो जाने की, महावीर इन पर अथक श्रम किए हैं, अभिव्यक्ति के लिए। अगर देवलोक के साथ अभिव्यक्ति करनी है तो हमारे मस्तिष्क का एक विशेष हिस्सा टूट जाना चाहिए, एक द्वार खुल जाना चाहिए। वह द्वार न खुल जाए तो उस लोक तक हम कोई खबर नहीं पहुंचा सकते। जैसे मनुष्य तक खबर पहुंचानी हो तो शब्द का द्वार होना चाहिए, नहीं तो पहुंचाना बहुत मुश्किल हो जाएगा--वैसे ही उस लोक से भी मस्तिष्क के कुछ द्वार खुलने चाहिए। और हमें कठिनाई क्या होती है कि जो हमारी सीमा है इंद्रियों की, उससे अन्यथा को स्वीकार करना बहुत मुश्किल हो जाता है।
एक आदमी पिछले महायुद्ध में, दूसरे महायुद्ध में ट्रेन से गिर पड़ा।
और ट्रेन से गिरने के बाद एक अदभुत घटना घटी, जो कभी नहीं घटी थी जमीन पर। ऐसे बहुत लोगों ने कहा था, लेकिन उसका वैज्ञानिक विश्लेषण नहीं हो सका था। गिर जाने से उसे दिन में आकाश में तारे दिखाई पड़ने लगे। उसके मस्तिष्क का एक हिस्सा, जो निष्क्रिय भाग है, वह सक्रिय हो गया चोट लगने से और उसे दिन में आकाश में तारे दिखाई पड़ने लगे। तारे खोते नहीं हैं, वे रहते तो हैं, लेकिन सूरज के प्रकाश में ढंक जाते हैं और हमारी आंख समर्थ नहीं है उनको देखने में। लेकिन उस आदमी को दिन में तारे दिखाई पड़ने लगे।
पहले तो लोगों ने समझा, वह पागल हो गया, लेकिन जो-जो उसने सूचनाएं दीं,
वे बिल्कुल सही थीं! तारे वहां थे और जब प्रयोगशालाओं ने सिद्ध कर दिया कि जहां वह जो बताता है, वहां वह है इस वक्त, तब फिर बड़ा मुश्किल हो गया। लेकिन वह आदमी घबड़ा गया था और उस आदमी को बड़ी मुश्किल हो गई थी। तो उस आदमी के सिर का आपरेशन करना पड़ा, ताकि उसे दिन में तारे दिखाई पड़ने बंद हो जाएं। नहीं तो वह तो बहुत मुश्किल में पड़ गया, उसका तो सब मस्तिष्क चकरा गया।
एक आदमी दूसरे महायुद्ध में युद्ध में चोट खाया, अस्पताल में भर्ती किया गया और उसे ऐसा लगा कि आस-पास कोई रेडियो चला रहा है। तो उसने सब तरफ देखा, अस्पताल में तो कोई रेडियो नहीं चल रहा है, लेकिन उसे साफ सुनाई पड़ रहा है। चोट लगने से कान उसका इस भांति रेडियो-सेंसिटिव हो गया कि वह जिस नगर में था, दस मील के आस-पास के किसी भी स्टेशन को उसका कान पकड़ने लगा और बंद करने का कोई उपाय नहीं था। तो उस आदमी के पागल होने की नौबत आ गई। और जब वह पकड़ने लगा वे ध्वनियां, तो पहले तो शक हुआ। जब उसने नर्सों को, डाक्टरों को कहा, तो उन्होंने कहा, तुम पागल तो नहीं हो गए, यहां तो कोई रेडियो नहीं,

सब सायलेंट है! यह सायलेंस-.जोन है। यहां कोई रेडियो नहीं बजा सकता। यहां कोई आवाज हमको भी आनी चाहिए।
पर उसने कहा, यह फलां-फलां गीत की कड़ी आ रही है, और इसके बाद यह कड़ी आ रही है, इसके बाद यह कड़ी आ रही है। वे गए भागे हुए, सामने के होटल में जाकर रेडियो खोला, वे कड़ियां आ रही थीं। फिर तो उन्होंने तालमेल बिठाया, वह तो जो इस नगर में थी यह घटना, उस नगर के स्टेशन का सब पकड़ लेता था। मस्तिष्क का उसका एक हिस्सा सक्रिय हो गया था, जो हमारा सक्रिय नहीं है। तब उसका आपरेशन करना पड़ा। क्योंकि वह हिस्सा अगर सक्रिय रहे तो उसकी जिंदगी मुश्किल हो जाए। क्योंकि रेडियो को तो हम बंद कर सकते हैं, वह बेचारा बंद नहीं कर सकता। वह तो चलता चला जाए।
हमारे मस्तिष्क की संभावनाएं अनंत हैं, लेकिन हमें तो स्वभावतः जितनी संभावना हमारी प्रकट हुई है, उसके आगे सब अंधकार मालूम पड़ता है। वह मालूम पड़ेगा ही। वह हमें मालूम पड़ेगा ही।
अभी रूस में एक वैज्ञानिक है, फयादेव। उसने एक हजार मील तक टेलीपैथिक संदेश भेज कर नया चमत्कार उपस्थित किया है--और रूस में! इसलिए बहुत महत्वपूर्ण है। क्योंकि रूस इस तरह की बातों पर अनायास विश्वास करने के लिए कतई तैयार नहीं है।
फयादेव ने मास्को में बैठ कर तिफलिस नगर के--एक हजार मील के फासले पर तिफलिस नगर में उसके मित्र एक बगीचे की झाड़ी में छिपे हुए हैं और पूरे वक्त वायरलेस से संबंध है उनका। और वे मित्र उसे कहते हैं कि दस नंबर की बेंच पर एक आदमी आकर बैठा है, तुम उसे मास्को से सुझाव देकर सुला दो। फयादेव कहता है, मैं पांच मिनट में उसे सुला दूंगा। वह पांच मिनट तक मास्को में बैठ कर चित्त को एकाग्र करके एक हजार मील दूर तिफलिस के फलां बगीचे में दस नंबर की बेंच पर जो आदमी बैठा हुआ है उसकी तरफ तीव्र प्रवाह से विचार भेजता है। और वह आदमी पांच मिनट बाद सो जाता है वहीं बेंच पर! लेकिन उसके मित्र कहते हैं कि हो सकता है, वह थका-मांदा हो और अनायास
सो गया हो, तो तुम उसे तीन मिनट के भीतर अगर उठा दो अब वापस। तो वह उसे फिर वापस सुझाव भेजता है उठने के, वह आदमी तीन मिनट के भीतर उठ आता है। वे मित्र उस आदमी के पास जाते हैं और उससे पूछते हैं। वह अजनबी आदमी है। उससे पूछते हैं, तुम्हें कुछ लगा तो नहीं?
उसने कहा, सच में हैरानी की बात है, कुछ लगा जरूर। पहले मैंने ख्याल नहीं किया, जैसे ही मैं बेंच पर आकर बैठा कोई मेरे भीतर जोर से कहने लगा, सो जाओ, सो जाओ, सो जाओ! और मैं बिल्कुल थका-मांदा नहीं था, मैं तो सिर्फ किसी की प्रतीक्षा करने इस बगीचे में आकर बैठा हूं, कोई आने वाला है, उसकी प्रतीक्षा कर रहा हूं। लेकिन इतने जोर से आया यह सो जाने का ख्याल मुझे कि मैं सो गया। और अभी-अभी किसी ने मुझे जोर से कहा है कि उठो, उठो, तीन मिनट के भीतर उठ जाना है। मेरी कुछ समझ में नहीं आ रहा है, क्या बात हो गई है!
फिर तो फयादेव ने बहुत प्रयोग करके बताए, जिनमें उसने यह स्थापित कर दिया कि विचार की तरंगें भी संप्रेषित होती हैं--बिना वाणी के।
सोहन यहां बैठी हुई है। उसके घर में पहली या दूसरी दफा मेहमान था तो
वह रात आकर मेरे बिस्तर के नीचे बिस्तर लगा कर सो गई। और उसने मुझसे कहा कि मैं तो आपसे कभी कुछ पूछती नहीं, सिर्फ एक सवाल मुझे पूछना है, आपकी मां का नाम क्या है?
तो उससे मैंने कहा, यह भी कोई पूछने की बात है! तू आंख बंद कर ले, तुझे
जो पहला नाम आ जाए, बोल दे।
अगर वह कहती कि इससे कैसे होगा, कैसे पता चलेगा, तो फिर मैं उसे बता देता। क्योंकि वैसा कहने वाला व्यक्ति फिर संवेदनशील नहीं हो सकता था। उसने बात मान ली, उसने कुछ भी नहीं पूछा। उसने आंख बंद कर ली और उसने कहा कि सरस्वती! मैंने कहा, वही मेरी मां का नाम है। पर उसे विश्वास न पड़ा। उसने कहा, लेकिन मैं यह कैसे मानूं? पता नहीं, आप कोई भी नाम में हां भर दें, आप किसी भी नाम में हां भर दें। तो मैंने कहा, यह तो इतनी कठिन बात नहीं है। तू मेरी मां से भी मिल लेना और यह तो पता लगाया जा सकता है। यह झूठ कितनी देर चल सकती है?

अब उसमें क्या हुआ? कुछ भी नहीं हुआ। वह जब दो मिनट शांत होकर लेट गई,
तब मैं मन में सरस्वती, सरस्वती दोहराता रहा। और वह चूंकि उत्सुक थी जानने को, इसलिए उसके विचार शांत हो गए हैं और यह शब्द टेलीपैथिकली ट्रांसफर हो गया। यह शब्द उसके मन में प्रतिध्वनित हो गया। उसने कह दिया कि सरस्वती। यह उसको पता नहीं कि कैसे आ गया।
थोड़े से इस पर प्रयोग करके देखना। रास्ते पर आप चले जा रहे हैं। थोड़े
से प्रयोग इसलिए कहता हूं, ताकि आपको कुछ ख्याल हो सके। चीजें तो और बहुत बड़ी हैं आगे, लेकिन छोटे से प्रयोग आपको ख्याल दे सकते हैं। रास्ते पर आप चले जा रहे हैं और सामने एक आदमी जा रहा है। आप दोनों आंखों की पलकें झपकना बंद करके उसकी चैंथी पर देखते रहना थोड़ी देर, पीछे चलते रहना चुपचाप और देखते रहना और फिर जोर से कहनाः पीछे लौट कर देखो! मन में ही। सौ में निन्यानबे मौके पर आदमी लौट कर पीछे देखेगा कि क्या बात है और उसे पता भी नहीं चलेगा कि उसने लौट कर पीछे क्यों देखा।
ठीक गर्दन पर अगर आपकी दोनों आंखें केंद्रित हों तो कोई भी विचार एकदम से संप्रेषित हो जाता है। लेकिन होना चाहिए आपके पास तीव्रता से संप्रेषण करना। यानी आप अगर साथ में ऐसा कहें कि पता नहीं लौट कर देखेगा कि नहीं देखेगा, तो गड़बड़ हो गया। क्योंकि वह भी संप्रेषित हो गया। संप्रेषित होने की जो बात है, अगर आपने कहा कि लौट कर पीछे देखो और साथ में यह कहा कि पता नहीं लौट कर देखता है कि नहीं, तो यह भी संप्रेषित हो गया। वह भी आदमी को पहुंच गया। ये दोनों कट गए। वह आदमी सीधा चला जाएगा। वह लौट कर पीछे नहीं देखेगा।
हमारे मस्तिष्क की और-और संभावनाओं का हमें ठीक-ठीक बोध नहीं है। देवलोक से संबंधित होने के लिए मस्तिष्क का एक विशेष हिस्सा है, जो सक्रिय होना जरूरी है। सक्रिय होते ही से जैसे कि हम दूसरी दुनिया में प्रवेश कर गए। जैसे रात सोते में हम सपने में प्रवेश कर जाते हैं--एक नई दुनिया। सुबह जाग कर फिर एक दूसरी नई दुनिया शुरू हो जाती है। ठीक वैसे ही एक नई दुनिया में हम प्रवेश कर जाते हैं। यह प्रवेश उतना ही उसी भांति का है, जैसे कि रेडियो आपने ऑन किया और जो ध्वनियां यहां चल रही थीं, वह पकड़ाई जानी शुरू हो गईं। कोई ऐसा नहीं है कि रेडियो ऑन करते वक्त ध्वनियां आनी शुरू हो जाती हैं। ध्वनियां तो इस कमरे में दौड़ ही रही हैं, सिर्फ ऑन करते वक्त पकड़ी जाती हैं।
देवता तो प्रतिक्षण उपस्थित हैं ही, सिर्फ आपके मस्तिष्क की एक व्यवस्था खुल जाने पर वे पकड़े जाते हैं, वे देखे जाते हैं। इसके लिए विशेष योग है कि वह मस्तिष्क का हिस्सा कैसे टूट जाए। उस पर दो-तीन बातें ख्याल में लेनी चाहिए। एक बात तो कि अगर कोई व्यक्ति समग्र चेतना से सारे शरीर को छोड़ कर सिर्फ दोनों आंखों के बीच में आज्ञा-चक्र पर ध्यान को स्थिर करता रहे, तो जहां हमारा ध्यान स्थिर होता है, वहीं सोए हुए केंद्र तत्काल सक्रिय हो जाते हैं। ध्यान सक्रियता का सूत्र है। शरीर में किन्हीं भी केंद्रों पर ध्यान जाने से सक्रिय हो जाते हैं।
जैसे एक ही ख्याल हमें है। सेक्स के सेंटर का अधिक लोगों को अनुभव है। कभी आपने ख्याल किया कि जैसे ही आपका ध्यान सेक्स की तरफ जाएगा, विचार जाएगा, सेक्स-सेंटर तत्काल सक्रिय हो जाएगा। जागते में ही नहीं, सोते में भी अगर स्वप्न में भी सेक्स की तरफ ख्याल गया तो सेक्स-सेंटर फौरन सक्रिय हो जाएगा। सिर्फ ध्यान जाते से ही! सिर्फ जरा सी कल्पना उठते से भी वासना की, सेक्स का सेंटर फौरन सक्रिय हो जाएगा। एक सेंटर का हमें सामान्य ख्याल है, इसलिए मैं उदाहरण के लिए कहता हूं। दूसरे सेंटर्स का हमें सामान्यतः बोध नहीं है। फिर भी एक-दो सेंटर का थोड़ा-थोड़ा हमें बोध है।
जैसे कोई आदमी नहीं मिलेगा जो कहे कि मुझे किसी के प्रति प्रेम हो गया
और प्रेम की बात करते वक्त सिर पर हाथ रखे। कोई आदमी नहीं मिलेगा। प्रेम की बात करते वक्त हृदय पर हाथ रखने वाला आदमी मिलेगा। स्त्रियां तो आमतौर से जब प्रेम की बात करेंगी तो उनका हाथ हृदय पर चला जाएगा। वह बिल्कुल ही चला जाएगा, वहां सेंटर है, जो प्रेम का ध्यान आते ही सक्रिय होता है। लेकिन जैसे कोई चिंतित है और विचार में सक्रिय है तो उसका सिर पर हाथ
जा सकता है, माथा खुजा सकता है। चिंतित व्यक्ति को ऐसा नहीं होगा कि कहीं

और चला जाए, क्योंकि चिंतित व्यक्ति जहां विचार सक्रिय होता है, उसी सेंटर के आस-पास उसकी स्मृति का बोध जाएगा।
आज्ञा-चक्र वह जगह है, जिसे लोपसांग रेम्पा या दूसरे लोग जिसे थर्ड आई कहते हैं, वह जो तीसरी आंख की जगह है, अगर सारा ध्यान वहां केंद्रित हो जाए तो करीब-करीब भीतर एक आंख के बराबर का टुकड़ा बिल्कुल ओपन हो जाता है, खुल जाता है, टूट जाता है। ऐसा कोई ऊपर से खोजने जाएगा तो पता नहीं चलेगा, लेकिन भीतर अगर वहां ध्यान केंद्रित हो तो ध्यानी व्यक्ति को निरंतर पता चलेगा कि कोई चीज वहां टूट रही है, कोई छेद वहां हुआ जा रहा है, कोई हैमरिंग वहां चल रही है।
और जिस दिन वह उसे लगता है कि छेद हो गया, उसी दिन उसे वे चीजें, जिन्हें हम देव कहें, प्रेत कहें, उनसे उसके सीधे संबंध स्थापित हो जाते हैं, जो हमारे संबंध नहीं हैं।
तो महावीर की, जिसको हम साधना-काल कह रहे हैं अभिव्यक्ति का माध्यम खोजने के लिए, बहुत समय इस तरह के केंद्रों को सक्रिय और तोड़ने के लिए गया और व्यतीत हुआ। इस तरह के केंद्रों को तोड़ने में जितना ज्यादा ध्यान बिना बाधा के दिया जा सके, उतना उपयोगी है, क्योंकि हैमरिंग का मामला है वह। वह ऐसा है कि अगर आपने पांच चोटें करके आप छोड़ कर चले गए तो दुबारा जब आप आएंगे तो पांच चोटें तब तक विलीन हो चुकीं। यानी आपको फिर अ ब स से शुरू करना पड़ेगा।
यह वजह है कि महावीर को बहुत दिन तक के लिए खाना-पीना, सारे काम, निद्रा सब त्याग कर देनी पड़ी। हैमरिंग सतत होनी चाहिए, इंटेंस होनी चाहिए, सीधी होनी चाहिए, दूसरी कोई भी बाधा बीच में नहीं होनी चाहिए। क्योंकि जैसे ही कोई दूसरी बात आएगी, ध्यान वहां जाएगा। और ध्यान वहां गया कि वहां से जो काम हुआ था, वह अधूरा छूट जाएगा। इस अधूरे काम को न छूट जाए, इसलिए जीवन के सारे काम जो बाधाएं डाल सकते हैं, उन सारे कामों से ध्यान हटा लेना है। सारे ही कामों से ध्यान हटा लेना है, तभी एक केंद्र को पूरी तरह से सक्रिय किया जा सकता है।
तो महावीर जो निरंतर एकांत में खड़े हैं... और यह ध्यान रहे कि महावीर
की साधना का अधिकतम हिस्सा खड़े-खड़े व्यतीत हुआ है। दूसरे साधक बैठ कर साधना किए हैं, महावीर का अधिकतम साधना-काल खड़े-खड़े है। महावीर का जो ध्यान का प्रयोग है, वह भी खड़े-खड़े ही करने के लिए है। कुछ कारण हैं उसमें। बैठा हुआ आदमी सो सकता है, लेटा हुआ आदमी सो सकता है। और एक क्षण को भी वहां से ध्यान हट जाए तो पहला काम एकदम से विलीन हो जाता है उस चक्र पर। उस पर सतत काम चाहिए। तो खड़े होकर ही वह काम किया जा सकता है, क्योंकि खड़े हुए आदमी के सोने की संभावना एकदम न्यून हो जाती है, क्षीण हो जाती है। निद्रा से बचने के लिए बड़े उपाय किए हैं उन्होंने। और कोई कारण नहीं है, सिर्फ कारण इतना है कि उतने देर के लिए ध्यान अलग हो जाएगा और तब हो सकता है कि उतना काम व्यर्थ हो जाए। निद्रा से बचने के लिए भोजन का छोड़ देना बड़ा उपयोगी हिस्सा है--निद्रा से जिसे बचना हो। क्योंकि नींद का पचहत्तर प्रतिशत भोजन से संबंधित है। जैसे ही भोजन पेट में गया तो सारी मस्तिष्क की शक्ति पेट की तरफ आनी शुरू हो जाती है भोजन को पचाने के लिए। इसलिए भोजन करने के बाद नींद का हमला शुरू हो जाता है। ज्यादा भोजन करने के बाद ज्यादा नींद का हमला शुरू हो जाता है। उसका कुल कारण इतना है कि मस्तिष्क में जो शक्ति काम कर रही है, वह इमरजेंसी की हालत है पेट में भोजन का जाना। उसे पचाना पहले जरूरी है, क्योंकि ज्यादा देर वह बिना पचा रह जाए तो वह पायज़न हो जाएगा, जहर होगा। ज्यादा देर बिना पचा रह जाए तो ठंडा हो जाएगा, पचाना मुश्किल हो जाएगा। इसलिए सारे शरीर से पेट एकदम सारी शक्ति को वापस बुला लेता है। और सबसे पहले मस्तिष्क की शक्ति उतर जाती है नीचे, इसलिए आंखें झपकने लगती हैं, नींद आने लगती है।
तो अगर नींद को बिल्कुल ही तोड़ डालना हो तो पेट में कुछ भी नहीं होना चाहिए। इसलिए उपवास के दिन आपको रात में नींद आना मुश्किल बात है। कुछ न खाया हो तो रात नींद आना बहुत मुश्किल बात है, क्योंकि वह शक्ति नीचे आने का उपाय ही नहीं रह जाता। और जो लोग आज्ञा-चक्र पर काम कर रहे हैं, वहां ध्यान देना चाहते हैं, उनकी शक्ति नीचे नहीं आनी चाहिए, वह ऊपर ही लगी रहनी

चाहिए, तो ही वह चक्र खुल सकता है। सत्य की अनुभूति से वह चक्र नहीं खुल जाता है, उसकी अनुभूति से ही चक्र नहीं खुल जाता है। हां, उस अनुभूति को उस चक्र के माध्यम से प्रकट करना हो तो ही उसे खोलने की जरूरत पड़ती है। तिब्बत ने इस दिशा में सर्वाधिक मेहनत की है--उस तीसरी आंख के संबंध में। तोड़ने के लिए अथक श्रम तिब्बत ने किया। और तिब्बत के पास निरंतर ऐसे लोग पैदा होते रहे, जिन्होंने उसका पूरी तरह उपयोग किया है।
आज्ञा-चक्र के टूट जाने के माध्यम से ही देवताओं से जुड़ा जा सकता है, फिर वाणी की कोई जरूरत नहीं है। यहां भीतर भाव पैदा हो और वह आज्ञा-चक्र से प्रतिध्वनित हो जाता है और वह देव-चेतना तक प्रवेश कर जाता है।
ये मैंने दो बातें कहीं। जड़ से संबंधित होना हो तो इतनी शिथिल चेतना चाहिए कि जड़ के साथ तादात्म्य स्थापित हो जाए। और मनुष्य से ऊपर की योनियों से संबंधित होना हो तो इतनी एकाग्र चेतना चाहिए कि आज्ञा-चक्र टूट जाए। सर्वाधिक कठिन मनुष्य के साथ है कठिनाई। मनुष्य से संबंधित होने के लिए महावीर ने कोई तीन प्रयोग किए हैं।
सबसे पहला प्रयोग तो यह है कि किसी भी मनुष्य को हिप्नोसिस की हालत में, सम्मोहन की हालत में, बेहोश हालत में कोई भी संदेश दिया जा सकता है। और उस वक्त संदेश उसके प्राणों के आखिरी कोर तक सुना जाता है। और उस वक्त चूंकि तर्क बिल्कुल काम नहीं करता उसका, विचार काम नहीं करता, चेतना काम नहीं करती, इसलिए न वह विरोध करता है, न विचार करता है। जो कहा जाता है, उसे चुपचाप परिपूर्ण रूप से स्वीकार कर लेता है।
यहां तक कि अगर एक व्यक्ति को बेहोश करके कहा जाए कि तुम घोड़े हो गए हो, तो बराबर चारों हाथ-पैर से खड़ा हो जाएगा! घोड़े की तरह आवाज करने लगेगा! वह यह मान लेगा। उसके बिल्कुल अचेतन, अनकांशस तक यह बात प्रविष्ट अगर हो जाए तो जो उसे हम कहेंगे, वह वही हो जाएगा। उसे कहा जाए कि तुम्हें लकवा लग गया है तो उसके शरीर को एकदम लकवा लग जाएगा! फिर वह हाथ-पैर हिला नहीं सकेगा!
सौ में से तीस व्यक्ति सम्मोहित हो सकते हैं। और सौ में से तीस पुरुष
और सौ में से पचास स्त्रियां सम्मोहित हो सकती हैं। और सौ में से पचहत्तर प्रतिशत बच्चे सम्मोहित हो सकते हैं। जितना सरल चित्त हो, उतनी शीघ्रता से सम्मोहन प्रवेश कर जाता है।
तो महावीर वर्षों तक उस पर भी काम कर रहे हैं कि सम्मोहन के द्वारा संदेश कैसे पहुंचाया जाए। लेकिन अंततः उन्होंने उस प्रक्रिया का उपयोग नहीं किया है, क्योंकि सम्मोहन के द्वारा संदेश तो पहुंच जाता है, लेकिन कुछ सूक्ष्म नुकसान दूसरे व्यक्ति को पहुंच जाते हैं। जैसे उसकी तर्क-शक्ति क्षीण हो जाती है। जैसे वह परवश हो जाता है। वह धीरे-धीरे दूसरे के ही हाथ में जीने लगता है।
मैं भी इधर सम्मोहन पर बहुत प्रयोग किया और इसी दृष्टि से प्रयोग किया, क्योंकि घंटों मेहनत करनी पड़े, तब एक बात नहीं समझाई जा सकती और दो मिनट बेहोश किसी को किया जाए, वह बात उसमें प्रवेश कराई जा सकती है। लेकिन मैं भी इसी नतीजे पर पहुंचा कि वह उस व्यक्ति में कुछ बुनियादी नुकसान पहुंच जाते हैं। संदेश पहुंच जाएगा, लेकिन वह व्यक्ति ऐसे जीने लगेगा, जैसे उसकी कोई स्वतंत्रता नहीं रह गई। परवश। कोई और उसे चला रहा है, ऐसे चलने लगेगा।
रामकृष्ण ने विवेकानंद को जो पहला संदेश दिया है, वह सम्मोहन की विधि
से दिया गया है--जिसमें उनके स्पर्श से विवेकानंद को समाधि हो गई। वह हिप्नोसिस के द्वारा दिया गया संदेश है। और इसीलिए विवेकानंद सदा के लिए रामकृष्ण का अनुगत हो गया। और भी मजे की बात है कि रामकृष्ण से जिस दिन यह स्पर्श के द्वारा विवेकानंद को एक संदेश पहुंच गया तो विवेकानंद के भीतर एक शक्ति का उदय हुआ, जो उसकी अपनी तो नहीं है, किसी दूसरे के दबाव में उसके भीतर आ गई है।
तो वह एक कमरे में बैठे हुए हैं विवेकानंद और उस आश्रम में दक्षिणेश्वर में एक भक्त भी रहता था, गोपाल बाबू उसका नाम था। उस भक्त का काम यह था कि वह सब तरह के भगवानों की मूर्तियां रखे हुए था अपने कमरे में और दिन भर पूजा ही चलती थी, क्योंकि इतने भगवान थे और एक-एक की दो-दो तीन-182

तीन घंटे पूजा करनी पड़ती थी। तो कभी सांझ को भोजन कर पाता, कभी रात भोजन कर पाता। तो ऐसा इतने भगवान और भक्त एक, तो बड़ी मुश्किल तो थी।
विवेकानंद ने कई दफे उससे कहा था कि तू क्या ये पत्थर-वत्थर इकट्ठे करके और सब खराब कर रहा है! जिस दिन विवेकानंद को पहली दफे रामकृष्ण के सम्मोहन-संदेश की उपलब्धि हुई, उस दिन वे कमरे में जाकर बैठे, और उन्हें एकदम से ख्याल आया कि इस वक्त तो अगर मैं गोपाल बाबू को कहूं कि जा, सारी मूर्तियों को बांध कर और गंगा में फेंक आ, तो बराबर हो जाएगा। उस वक्त बड़ी तीव्र उनके पास शक्ति है, जिसको कि वह विस्तीर्ण कर सकते हैं। उन्होंने यह कहा--वह सिर्फ मजाक में--कि गोपाल बाबू, सब भगवानों को बांधो और गंगा में फेंक आओ। गोपाल बाबू ने सब--वह दूसरे कमरे में था--सब भगवान एक चादर में बांधे और गंगा में फेंकने चले।
रामकृष्ण घाट में मिले और कहा कि रुक! गोपाल बाबू को कहा कि वापस चलो। जाकर विवेकानंद का दरवाजा खोला और कहा कि तेरी चाबी मैं अपने हाथ में रख लेता हूं, क्योंकि तू तो कुछ भी उपद्रव कर सकता है। और जो तुझे अनुभव आज हुआ है, अब वह तेरे मरने के तीन दिन पहले ही तुझे फिर हो सकेगा, उसके पहले नहीं।
और विवेकानंद को एक समाधि का अनुभव रामकृष्ण के स्पर्श से हुआ और इसके बाद जिंदगी भर तड़फ रही, फिर कभी नहीं हो सका, क्योंकि वह विवेकानंद के बस की बात नहीं है। वह संदेश हिप्नोटिक है। लेकिन मरने के तीन दिन पहले फिर समाधि का अनुभव हुआ। लेकिन वह भी पोस्ट-हिप्नोटिक है, वह भी विवेकानंद का अपना नहीं है। पोस्ट-हिप्नोटिक का मतलब यह है कि वह भी सम्मोहित अवस्था में कहा गया है कि फलां दिन तुझे फिर हो सकेगा, लेकिन चाबी मेरे पास है। तो फलां दिन हो जाएगा।
मैं एक बच्चे पर सम्मोहन के बहुत से प्रयोग करता था, तो उसे मैंने कहा
कि एक किताब सामने रखी हुई है, इस किताब के बारहवें पन्ने पर तू पेंसिल उठा कर अपने दस्तखत कर देना, लेकिन आज नहीं, पंद्रह दिन बाद, ठीक ग्यारह बजे दिन दोपहर। और कर ही देना, भूल मत जाना।
और बात खतम हो गई है। वह तो होश में आ गया, अपने स्कूल जाना था, स्कूल चला गया। पंद्रह दिन बीत गए हैं, वह किताब वहीं टेबिल पर पड़ी रही है। लेकिन उसने कभी उस किताब पर दस्तखत नहीं किए। पंद्रहवें दिन--उसका दस बजे स्कूल लगता है--उसने मुझसे कहा कि आज मेरा सिर कुछ भारी है, मैं स्कूल नहीं जाना चाहता। मैंने कहा, तुम सुबह तक बिल्कुल ठीक थे! तो उसने कहा, बिल्कुल ठीक है, लेकिन अभी-अभी एकदम सिर भारी हुआ, स्कूल जाने का मेरा मन नहीं। मैंने कहा, तुम्हारी मर्जी।
मैं उसी कमरे में बैठा हूं और टेबिल पर किताब रखी है। वह लड़का भी वहीं लेटा हुआ है। ठीक ग्यारह बजे वह उठा है, पेंसिल उठाई है, जाकर जो पेज मैंने कहा था, उसने खोला है और अपने दस्तखत कर दिए। मैं उसको दस्तखत करते वक्त पकड़ा हूं जाकर कि यह तू क्या कर रहा है? बोला कि मैं समझ में नहीं आता क्या कर रहा हूं, न तो मेरा सिर दुख रहा है और न कुछ है, लेकिन बस सुबह से ही ऐसा लग रहा है कि आज स्कूल मत जाना, कोई जरूरी काम करना है; आज स्कूल मत जाना, कोई जरूरी काम करना है। बस भीतर यही चल रहा है। और जब मैंने दस्तखत कर दिए हैं तो मेरे भीतर से ऐसा बोझ उतर गया है, जैसे पहाड़ उतर गया, सिर मेरा बिल्कुल ठीक हो गया है। बस यह दस्तखत करके मैं बिल्कुल हलका हो गया हूं। पता नहीं यह क्यों दस्तखत मुझे करने थे!
यह पंद्रह दिन पहले दिया गया पोस्ट-हिप्नोटिक सजेशन है, पंद्रह दिन बाद काम करेगा। रामकृष्ण ने एक्जेक्टली यह कहा है कि मरने के तीन दिन पहले तुझे फिर समाधि उपलब्ध होगी, तब तक चाबी मैं रख लेता हूं।
तो रामकृष्ण ने जिस विधि का उपयोग किया, उस विधि को महावीर ने बहुत दूर तक विकसित किया; लेकिन छोड़ दिया, उसका प्रयोग नहीं किया। और मैं भी यह मानता हूं कि विवेकानंद को नुकसान पहुंचा। यानी विवेकानंद कुछ भी अपना कमा कर नहीं जा सके हैं, अपनी कमाई अभी बाकी रह गई। यह हुआ है दूसरे के द्वारा। इसमें विवेकानंद की अपनी कोई उपलब्धि नहीं हो पाई।
इसलिए विवेकानंद बहुत चिंतित और बहुत दुखी थे और बहुत परेशान भी थे।
और एक अर्थ में परेशान भी थे, दुखी भी थे, मुश्किल में भी थे और रामकृष्ण से

बंधे भी थे। आखिरी समय में भी जो पत्र लिखे हैं उन्होंने, वे बड़े दुख के हैं और बड़ी पीड़ा के हैं और बहुत संताप है उनमें, जैसे जिंदगी एकदम व्यर्थ हो गई और कुछ नहीं पा सके।
रामकृष्ण ने ऐसा क्यों किया? अगर महावीर ने इसका प्रयोग नहीं किया तो रामकृष्ण ने क्यों किया?
कुछ कारण हैं। महावीर खुद वाणी में बहुत समर्थ थे। रामकृष्ण वाणी में बिल्कुल असमर्थ थे। और वाणी के लिए विवेकानंद का साधन की तरह उपयोग करना जरूरी हो गया था। नहीं तो रामकृष्ण ने जो जाना था, वह खो जाता। रामकृष्ण ने जो जाना था, वह जगत तक पहुंचाने के लिए रामकृष्ण के पास, खुद के पास वाणी नहीं थी। उस वाणी के लिए विवेकानंद का उपयोग करना जरूरी हो गया। तो विवेकानंद सिर्फ रामकृष्ण के ध्वनि-विस्तारक यंत्र हैं, इससे ज्यादा नहीं। और वह बिल्कुल सम्मोहित अवस्था में सारे जगत में घूम रहे हैं, बिल्कुल सोई अवस्था में। और रामकृष्ण जो बुलवाना चाह रहे हैं, बोल रहे हैं।
विवेकानंद का उपयोग किया गया है एक साधन की भांति। जो जरूरी था रामकृष्ण के लिए, नहीं तो रामकृष्ण को, जो जाना था उन्होंने, वह उसे किसी को भी नहीं दे पाते। इसलिए विवेकानंद का... विवेकानंद से कहा है रामकृष्ण ने कि तुझे मैं समाधि में नहीं जाने दूंगा, क्योंकि तुझे तो अभी एक बहुत बड़ा काम करना है। और जब भी विवेकानंद ने फिर दुबारा उनसे कहा कि परमहंसदेव, वह दिन जो खुशी मिली थी, जो आनंद मिला था, जो प्रकाश मिला था, वह फिर कब मिलेगा, तो उन्होंने बहुत जोर से उसे डांटा है, डपटा है और कहा कि तू बड़ा लोभी है और बड़ा स्वार्थी है! तू अपने ही आनंद के पीछे पड़ा हुआ है? तुझे तो मैं एक बड़ा वृक्ष बनाना चाहता हूं, जिसके नीचे बहुत लोग छाया में विश्राम करें। और तुझे तो एक बड़ा काम करना है, वह कौन करेगा? तू समाधि में जाएगा तो वह काम कौन करेगा?
महावीर को यह कठिनाई नहीं है। यानी महावीर के पास रामकृष्ण का अनुभव
भी है और विवेकानंद की सामर्थ्य भी है। इसलिए दो व्यक्तियों की जरूरत नहीं पड़ती है, एक ही व्यक्ति काफी है।
अक्सर ऐसा हुआ है, अक्सर ऐसा हुआ है। जैसे गुरजिएफ की मैं बात करता हूं निरंतर। गुरजिएफ ने आस्पेंस्की का इसी तरह उपयोग किया, जैसा कि विवेकानंद का उपयोग रामकृष्ण ने किया। गुरजिएफ के पास वाणी नहीं है, बिल्कुल नहीं है। आस्पेंस्की के पास वाणी है, बुद्धि है, तर्क है। आस्पेंस्की का पूरा उपयोग किया। तो गुरजिएफ की किताब आप पढ़ें तो समझ ही नहीं सकते हैं कुछ भी, क्योंकि उसके पास वह अभिव्यक्ति है ही नहीं बिल्कुल। लेकिन आस्पेंस्की से उसने सब लिखवा लिया है जो उसे लिखना था। और आस्पेंस्की की किताबें इतनी अदभुत हैं, जिनका कोई हिसाब नहीं। और वह गुरजिएफ को जो कहना था, वह सब आस्पेंस्की से कहलवा लिया है। तो आस्पेंस्की का उपयोग यहां फिर उसी तरह किया गया। और यह भी बिना सम्मोहन के प्रयोग के नहीं हो सकता है।
महावीर के पास भी वह साधन उन्होंने खोजा, लेकिन पाया कि वह साधन व्यक्ति को नुकसान पहुंचा जाता है। और उन्हें किसी को अपने साधन की तरह उपयोग करने का सवाल नहीं है, वह तो उसके भीतर संदेश भर पहुंचाने का सवाल है। इसलिए उसका प्रयोग तो उन्होंने बहुत किया, समझा, लेकिन उसका उपयोग कभी भी नहीं किया।
दूसरा रास्ता है कि दूसरा व्यक्ति ध्यान को उपलब्ध हो जाए तो फिर मौन में ही बात हो सकती है, फिर कोई जरूरत नहीं है उससे शब्दों का उपयोग करने की, क्योंकि शब्द सबसे असमर्थ चीज है। उससे जो कहा जाए, अक्सर वह पहुंच जाता है जो कहा ही नहीं गया। जो न कहा गया हो, वह उससे पहुंच जाता है। जो समझा जा सकता हो, वह पहुंच जाता है। जो कहा गया हो, वह नहीं पहुंचता है।
तो शब्द के उपयोग से बचा जा सके तो फिर ध्यान का--इसलिए महावीर... ।
अब कभी यह ख्याल में तुम्हें नहीं आया होगा कि महावीर का जो भक्त है, उसको कहते हैं, श्रावक। श्रावक का मतलब है, ठीक से सुनने वाला। और कोई मतलब नहीं है। दि राइट लिसनर। लेकिन सुनते तो हम सब हैं। सुनते हम सभी हैं, तो सभी श्रावक हैं?

नहीं, सभी श्रावक नहीं हैं। श्रावक वह है, जो ध्यान की स्थिति में बैठ
कर सुन सके; उस स्थिति में बैठ कर सुन सके, जहां उसके मन में कोई विचार नहीं है, शब्द नहीं है, कुछ भी नहीं है--मौन है। मौन में जो बैठ कर सुन सके, वह श्रावक है।
यह शब्द आकस्मिक उपयोग नहीं हुआ है। यानी भक्त को श्रावक कहना। श्रोता कहने से काम नहीं चला, क्योंकि श्रोता से मतलब है सिर्फ सुनना। श्रावक का मतलब है, सम्यक श्रवण। लेकिन हम सब सुनते हैं, लेकिन हम श्रावक नहीं हैं। श्रावक हम तब होते हैं, जब हम सिर्फ सुनते हैं और हमारे भीतर कुछ भी नहीं होता। जस्ट लिसनिंग।
गुरजिएफ की मैं अभी बात किया। गुरजिएफ आस्पेंस्की को इसके पहले कि संदेश दे, उसे श्रावक बनाना जरूरी है। वह सुन तो ले, तो वह संदेश को ले जाए। तो आस्पेंस्की को एक जंगल में ले जाकर तीन महीने रहा। उस मकान में तीस व्यक्तियों को वह लाया था, जिनको वह श्रावक बना रहा था, राइट लिसनर्स बना रहा था। तीन महीने उन तीस लोगों को वहां रखा था और उनसे कहा था... एक ही बंगले में जो सब तरफ से बंद कर दिया गया है, जिसमें बाहर जाने का उपाय नहीं है, जिसकी चाबी बाहर से गुरजिएफ खोल कर कभी भीतर आता है, चाबी बंद करके बाहर जाता है। मकान सब तरफ से बंद है। भोजन का इंतजाम है, सारी व्यवस्था है। शर्त यह है कि तीन महीने न तो कोई कुछ पढ़ेगा, न कोई कुछ लिखेगा, न कोई किसी से बात करेगा, न कोई दूसरे को रिकग्नीशन देगा।
तीस आदमी एक मकान के भीतर हैं। और गुरजिएफ ने कहा है कि तुम ऐसे सब समझना कि एक-एक ही यहां हो, तीस यहां नहीं हैं। उनतीस यहां हैं ही नहीं तुम्हारे अलावा। आंख से, गेस्चर से भी मत बताना कि दूसरा है। उसको रिकग्नाइज ही मत करना, प्रत्यभिज्ञा भी न होनी चाहिए। सुबह तुम बैठोगे, कोई निकल रहा है, तो निकलने देना, तुम यह भी मत सोचना कि कोई निकल रहा है। जैसे हवा गुजरती है ऐसे। अगर कोई नमस्कार भी करे तो नमस्कार मत करना, क्योंकि कोई है ही नहीं यहां जिसको तुम नमस्कार कर रहे हो। आंख से भी मत पहचानना कि तुम हो, मुस्कुराना भी मत, भाव भी मत प्रकट करना। और जो आदमी इस तरह के भाव प्रकट करेगा, उसे मैं बाहर निकाल दूंगा, पंद्रह दिन मैं छंटाई करूंगा।
पंद्रह दिन में सत्ताइस आदमी उसने बाहर कर दिए। तीन आदमी भीतर रह गए, उनमें एक रूस का गणितज्ञ आस्पेंस्की भी था। आस्पेंस्की ने लिखा है कि पंद्रह दिन इतनी कठिनाई के थे, दूसरे को न मानना इतना कठिन था, कभी सोचा ही नहीं था यह कि इतनी कठिनाई हो सकती है और दूसरे की उपस्थिति को स्वीकार करने का इतना मन में भाव हो सकता है। इतना कठिन गुजरा, इतना कठिन गुजरा, लेकिन संघर्ष से, संकल्प से, पंद्रह दिन में वह सीमा पार हो गई, दूसरे का ख्याल बंद हो गया।
आस्पेंस्की ने लिखा है, जिस दिन दूसरे का ख्याल बंद हुआ, उसी दिन से पहली दफा अपना ख्याल शुरू हुआ।
अब हम सब अपना ख्याल करना चाहते हैं और दूसरे का ख्याल मिटता नहीं है, अपना ख्याल कभी हो नहीं सकता। जगह खाली नहीं है। कहते हैं आत्म-स्मरण। आत्म-स्मरण कैसे होगा? अनात्म-स्मरण चौबीस घंटे चल रहा है और उसी के बीच आत्म-स्मरण करना चाहते हैं!
तो आस्पेंस्की ने लिखा है कि तब तक मैं समझा ही नहीं था कि सेल्फ-रिमेंबरिंग का मतलब क्या होगा। और बहुत दफे कोशिश की थी अपने को याद करने की, कुछ नहीं होता था। किसको याद करना! तब ख्याल में आया। पंद्रह दिन, वह जो दूसरा, दि अदर है, जब वह विदा हो गया तो जगह खाली रह गई और सिवाय अपने स्मरण के कोई मौका ही नहीं रह गया। क्योंकि अब पहली दफे मैं अपने प्रति जागा। सोलहवें दिन सुबह मैं उठा तो मैं ऐसा उठा, जैसा मैं जिंदगी में कभी नहीं उठा था। पहली दफे मुझे मेरा बोध था। और तब मुझे ख्याल आया, अब तक मैं दूसरे के बोध में ही उठता था। सुबह उठते ही से दूसरे का बोध शुरू हो जाता था। अपना बोध! और तब वह चौबीस घंटे घेरे रहने लगा, क्योंकि अब कोई उपाय न रहा, दूसरे से भरने की जगह न रही।
एक महीना पूरा होते-होते उसने लिखा है कि मैं तो हैरानी में पड़ गया, दिन बीत जाते और मुझे पता न चलता कि जगत भी है, वहां बाहर एक संसार भी है,

बाजार भी है, लोग भी हैं। ऐसे दिन बीत जाते और पता न चलता। सपने विलीन हो गए। जिस दिन दूसरा भूला, उसी दिन सपने विलीन हो गए, क्योंकि सब सपने बहुत गहरे में दूसरे से संबंधित हैं।
जिस दिन सपने विलीन हुए, उसने लिखा, उसी दिन से मुझे रात में भी स्मरण रहने लगा अपना। रात में भी ऐसा नहीं है कि मैं सोया ही हुआ हूं। रात में भी सब सोया है और मैं जागा हुआ हूं, ऐसा होने लगा।
तीन महीने पूरे होने के तीन दिन पहले गुरजिएफ आया, दरवाजा खोला। आस्पेंस्की ने लिखा है, उस दिन मैंने गुरजिएफ को पहली दफे देखा कि यह आदमी कैसा अदभुत है, क्योंकि इतना खाली हो गया था मैं कि अब मैं देख सकता था। भरी हुई आंख क्या देखेगी! उस दिन गुरजिएफ को मैंने पहली दफा देखा कि ओफ यह आदमी और इसके साथ होने का सौभाग्य! कभी नहीं देखा था। जैसे और लोग थे, वैसा गुरजिएफ था। खाली मन में पहली दफा गुरजिएफ को देखा। और उसने लिखा है कि उस दिन मैंने जाना कि वह कौन है।
गुरजिएफ सामने आकर बैठ गया और मुझे एकदम से सुनाई पड़ा, आस्पेंस्की! पहचाने? तो मैंने चारों तरफ चौंक कर देखा, गुरजिएफ चुप बैठा है। आवाज गुरजिएफ की है, शक-शुबहा नहीं है। फिर भी--उसने लिखा है--कि फिर भी मैं चुप रहा। फिर आवाज आई, आस्पेंस्की, पहचाने नहीं? सुना नहीं? तब उसने चौंक कर गुरजिएफ की तरफ देखा, वह बिल्कुल चुप बैठा है। उसके मुंह से एक शब्द नहीं निकल रहा है।
तब वह गुरजिएफ खूब मुस्कुराने लगा और फिर बोला कि अब शब्द की कोई जरूरत नहीं, अब बिना शब्द के बात हो सकती है। अब तू इतना चुप हो गया है कि अब मैं बोलूं तभी सुनेगा? अब तो मैं भीतर सोचूं और सुन लेगा! क्योंकि जितनी शांति है, उतनी सूक्ष्म तरंगें पकड़ी जा सकती हैं।
तुम रास्ते से भागे चले जा रहे हो। तुम्हें किसी ने कहा कि तुम्हारे मकान में आग लग गई है। और रास्ते में मैं तुम्हें मिलता हूं, कहता हूं, नमस्कार। तुमने सुना? तुमने नहीं सुना। तुमने देखा? तुमने नहीं देखा। तुम भागे चले जा रहे हो, तुम्हारे घर में आग लग गई है। दूसरे दिन तुम मुझे मिलते हो, मैं कहता हूं, रास्ते पर मिला था, नमस्कार की, तुमने कोई जवाब नहीं दिया। तुम कहते हो, मैंने तो देखा ही नहीं। मेरे घर में आग लग गई थी। मैं भागा जा रहा था। मुझे न तुम दिखाई पड़े, न मैंने देखा कि तुमने हाथ जोड़े, न मैं इस हालत में था कि हाथ जोड़ सकता था।
अगर मकान में आग लग गई तो तुम्हारा चित्त इतने जोर से चल रहा है कि जोड़े गए हाथ दिखेंगे नहीं, की गई नमस्कार सुनाई नहीं पड़ेगी। अगर चित्त का चक्र धीमा हो गया, धीमा हो गया, धीमा हो गया, ठहर गया, तो जरूरी नहीं है कि मैं बोलूं ही। इतना ही काफी है कि मैं कुछ चाहूं कि तुम तक चला जाए, वह एकदम चला जाता है।
विद्यासागर ने एक संस्मरण लिखा है कि विद्यासागर को बंगाल का गवर्नर
एक पुरस्कार देना चाहता था। और विद्यासागर गरीब आदमी थे, पुराने ढंग से रहने के आदी थे। वही पुराना बंगाली कुर्ता है, धोती है, डंडा है। मित्रों ने कहा, इस वेश में गवर्नर के दरबार में जाना ठीक नहीं है। हम तुम्हें नए कपड़े बनाए देते हैं।
विद्यासागर ने बहुत कहा कि मैं जैसा हूं, ठीक हूं। मित्र नहीं माने तो उन्होंने खूब कीमती नए कपड़े बनवाए। कल सुबह जाना है विद्यासागर को गवर्नर के सामने और वह पुरस्कार लेना है। दरबार भरेगा। सांझ को वे घूमने निकले हैं। समुद्र के तट पर से घूम कर लौट रहे हैं। सामने ही एक आदमी, एक मुसलमान मौलवी अपनी छड़ी लिए बड़ी शान से चुपचाप चला जा रहा है। एक आदमी भागा हुआ आया है और मौलवी से कहा, मीर साहब, तेजी से चलिए, मकान में आग लग गई है!
मीर ने कहा, ठीक है! और फिर वह उसी चाल से चल रहा है। विद्यासागर हैरान
हो गए, क्योंकि सुना है उन्होंने कि आदमी ने अभी आकर कहा है कि आग लग गई है मकान में, वह उसी चाल से चल रहा है! फिर उस आदमी ने घबड़ा कर कहा कि शायद आप समझे नहीं, मकान में आग लग गई! उसने कहा, मैं समझ गया। फिर वह चाल वैसी रखी! तब तो विद्यासागर कदम बढ़ा कर आगे गए और कहा, सुनिए, हद हो गई! मकान में
आग लग गई, आप उसी चाल से चल रहे हैं!

उसने कहा, मेरी चाल से मकान का क्या संबंध? उस आदमी ने कहा, मेरी चाल
से मकान का क्या संबंध? और मकान के पीछे चाल बदल दूं जिंदगी भर की! लग गई है, ठीक है, लग गई है। अब मैं क्या करूंगा?
तो विद्यासागर ने घर आकर कहा कि मुझे वे कपड़े नहीं पहनने हैं। गवर्नर
के यहां जाकर जो पहनने थे, वे मुझे पहनने ही नहीं। जिंदगी भर की चाल छोड़ दूं गवर्नर के लिए? यहां एक आदमी के मकान में आग लग गई है, वह उसी चाल से जा रहा है, वह एक कदम नहीं बढ़ा रहा है!
लेकिन ऐसा आदमी खोजना मुश्किल है और ऐसा आदमी मिल जाए तो ऐसा आदमी श्रावक हो सकता है। समझ रहे हैं न! यह आदमी श्रावक हो सकता है।
तो महावीर की सतत चेष्टा इसमें लगी फिर कि कैसे मनुष्य श्रावक बने, कैसे सुनने वाला बने, कैसे सुन सके। और सुन वह तभी सकता है, जब उसके चित्त की सारी परिक्रमा जो चल रही है विचार की, वह ठहर जाए। तो फिर बोलने की जरूरत नहीं, वह सुन लेगा। ऐसी जो न बोली और सुनी गई वाणी है, उसका नाम दिव्य-ध्वनि है। ऐसी जो न बोली, लेकिन सुनी गई वाणी है, उसका नाम दिव्य-ध्वनि है। दिव्य-ध्वनि का और कोई मतलब नहीं है। बोली नहीं गई है, लेकिन सुनी गई है। दी नहीं गई है, लेकिन पहुंच गई है। सिर्फ भीतर उठी है और संप्रेषित हो गई है।
इस दिशा में बड़ा श्रम करना पड़ा। श्रावक बनाने की कला खोजने के लिए बड़ा श्रम करना पड़ा। अब तो हम किसी को भी श्रावक कहते हैं, जो महावीर को मानता है, वह श्रावक है। श्रावक महावीर के मरने के बाद होना ही मुश्किल हो गया। वह तो जो महावीर के सामने बैठा था, वह श्रावक था। उसमें भी सभी श्रावक नहीं थे, बहुत से श्रोता थे। श्रोता कान से सुनता है, श्रावक प्राण से सुनता है। श्रोता को शब्द बोले जाएं तो भी सुन ले, जरूरी नहीं है; श्रावक को शब्द बोलने की जरूरत नहीं है और सुनता है।
तो यह श्रावक की, राइट लिसनिंग की कला को विकसित किया, जो बड़ी से बड़ी कला है जगत की। क्योंकि जीसस लोगों को नहीं समझा पाए, वह जो कह रहे थे। क्योंकि उन्होंने सिर्फ इसकी फिक्र की कि मैं ठीक-ठीक कहूं, इसकी फिक्र ही नहीं की कि वह ठीक-ठीक सुन सकता है या नहीं सुन सकता है। मोहम्मद इसकी फिक्र नहीं कर रहे हैं कि वह सुन सकेगा कि नहीं, वे इसकी ही फिक्र कर रहे हैं कि जो मैं कह रहा हूं, वह ठीक होना चाहिए।
वह बिल्कुल ठीक है। लेकिन कहना ही ठीक होने से कुछ भी नहीं होता, सुनने वाला ठीक होना चाहिए, नहीं तो कहना सब व्यर्थ हो जाएगा। तुम कहोगे कुछ, सुना कुछ जाएगा, समझा कुछ जाएगा।
इसलिए महावीर के दूसरे बड़े दानों में से मैं श्रावक बनने की कला को मानता हूं, जो बड़े से बड़े कांट्रिब्यूशंस में से एक है कि आदमी श्रावक कैसे बने। तो परिपूर्ण मौन और अभी इन्होंने शब्द उठा दिया--प्रतिक्रमण। प्रतिक्रमण शब्द श्रावक बनने की कला का हिस्सा है। हमें ख्याल में नहीं है कि प्रतिक्रमण का मतलब क्या होता है।
आक्रमण का मतलब हम समझते हैं क्या होता है। आक्रमण से उलटा मतलब होता
है प्रतिक्रमण का। आक्रमण का मतलब होता है दूसरे पर हमला और प्रतिक्रमण का मतलब होता है सब हमला लौटा लेना, वापस लौट जाना।
हमारी चेतना हमलावर है साधारणतः, एग्रेसन में लगी है। प्रतिक्रमण का मतलब है वापस लौट आना, सारी चेतना को समेट लेना वापस। जैसे सूर्य सांझ को अपनी सारी किरणों का जाल समेट ले, ऐसा अपनी फैली हुई चेतना को मित्र के पास से वापस बुला लेना है, शत्रु के पास से वापस बुला लेना है, पत्नी के पास से वापस बुला लेना है, बेटे के पास से वापस बुला लेना है, मकान से वापस बुला लेना है, धन से वापस बुला लेना है। जहां-जहां हमारी चेतना ने खूंटियां गाड़ दी हैं और जहां-जहां वह फैल गई है, उस सारे फैलाव को वापस बुला लेना है। प्रतिक्रमण का मतलब है, दि कमिंग बैक। वापस लौट आना है। आक्रमण का मतलब है, दि गोइंग। और प्रतिक्रमण का मतलब है, दि कमिंग। जाना है आक्रमण, आ जाना है, लौट आना है प्रतिक्रमण। तो जहां-जहां चेतना गई है, वहां-वहां से उसे वापस पुकार लेना है कि आ जाओ।
बुद्ध ने एक कहानी कही है। सांझ कुछ बच्चे नदी के तट पर रेत के घर बना रहे हैं। बहुत से बच्चे हैं, कोई घर बनाता है, कोई पैर के ऊपर घर बनाता है,

कोई कुछ गड्ढा खोद रहा है। फिर किसी बच्चे का किसी के घर में पैर लग जाता है। रेत के घर हैं और जहां इतने बच्चे हों, वहां पैर लग जाना भी संभव है; किसी का घर गिर जाता है, मार-पीट भी होती है, गाली-गलौज भी होती है, बच्चे चिल्लाते हैं कि मेरा घर मिटा दिया! कोई बच्चा चिल्लाता है, मेरा घर बरबाद हुआ जा रहा है, क्यों यहां पैर रख रहे हो? यह सब चिल्लाना चलता है, यह सब पुकारना चलता है। झगड़ते हैं, गालियां देते हैं, मारते हैं, पीटते हैं। फिर सांझ हो जाती है। और नदी के तट से दूर से, घर-घर से बच्चों की मां
की पुकार आने लगती है कि लौट आओ, लौट आओ, अब बहुत खेल हो चुका। और बच्चे जो लड़ते थे इस पर कि मेरे घर को लात मत मार देना, अपने ही घर को लात मार कर, तोड़ कर घर की तरफ भागते हुए वापस लौट गए हैं! घर पड़े रह गए हैं टूटे-फूटे; नदी- तट निर्जन हो गया है; बच्चे घर चले गए हैं। अपने ही घर को लात मार कर, जिस पर लड़े थे कि मेरा घर तोड़ मत देना!
तो बुद्ध कहते हैं, ऐसा एक क्षण आता है जीवन में, जब तुम सब तरफ रेत के घरों को खुद ही लात मार कर घर वापस लौट आते हो।
इसका अर्थ है प्रतिक्रमण। और इसका अगर अभ्यास जारी रहे कि तुम रोज कम
से कम घड़ी भर को प्रतिक्रमण कर जाओ, सब तरफ से चेतना को वापस बुला लो, सब रेत के घरों से आ जाओ वापस अपने भीतर, कहीं से संबंध न रखो, असंग हो जाओ, तो प्रतिक्रमण हुआ।
प्रतिक्रमण ध्यान का पहला चरण है, क्योंकि जब तुम लौटोगे ही नहीं, चेतना को वापस न लाओगे, तो ध्यान कौन लगाएगा? अभी तो चेतना ही नहीं है मौजूद, वह तो घर के बाहर गई है, वह तो किसी दूसरे पर भटक रही है, वह तो कहीं और है। उस चेतना को न लौटाओगे तो ध्यान कैसे करोगे? तो प्रतिक्रमण है पहला चरण। सामायिक है दूसरा चरण। सामायिक यानी ध्यान। सामायिक ध्यान से भी अदभुत शब्द है। असल में सामायिक जैसा शब्द ही नहीं है। ध्यान उतना कीमती शब्द नहीं है। महावीर ने जो शब्द उपयोग किया है, वह ध्यान से बहुत ज्यादा कीमती है।
इसे थोड़ा समझ लेना जरूरी होगा। ध्यान में कहीं न कहीं यह बात छिपी हुई है--जब हम कहते हैं ध्यान करो तो आदमी पूछता है, किसका? ध्यान शब्द में ही कहीं दूसरा छिपा हुआ है। जब हम कहते हैं, ध्यान में जाओ, तो आदमी कहता है, किसके ध्यान में? किस पर ध्यान करें? कहां ध्यान लगाएं? ध्यान कुछ न कुछ रूप में पर-केंद्रित है--शब्द--दि अदर-सेंटर्ड है। उसमें जो सवाल उठता है, किसका ध्यान?
सामायिक को महावीर ने बिल्कुल मुक्त कर दिया इस ‘पर’ से। समय का मतलब होता है आत्मा और सामायिक का मतलब होता है आत्मा में होना, टु बी इन वनसेल्फ।
प्रतिक्रमण है पहला हिस्सा कि दूसरे से लौट आओ, सामायिक है दूसरा कि अपने में हो जाओ। और जब तक दूसरे से न लौटोगे, तब तक अपने में होओगे कैसे? इसलिए पहली सीढ़ी प्रतिक्रमण, दूसरी सीढ़ी सामायिक।
लेकिन वह जो बकवास प्रतिक्रमण के नाम से चलती है, वह कोई प्रतिक्रमण नहीं है। उससे कोई मतलब नहीं है। उससे कोई मतलब ही नहीं है। कि कितने देवी- देवता हैं और कहां कौन बैठा है, उससे प्रतिक्रमण का कोई मतलब नहीं। सबसे लौटा लेना है। कि कितनी योजन क्या दूर है, इससे क्या मतलब है! यह तो दूसरे पर ही भटकना है। सबसे लौटा लेना है।
और प्रतिक्रमण बड़ी अदभुत बात है। चेतना को सब तरफ से असंबंधित कर देना, कि मन में कह देनाः पत्नी अब पत्नी नहीं है, बेटा अब बेटा नहीं है, अब मकान अपना नहीं है, अब यह शरीर अपना नहीं है। सब तरफ से लौटा लेना, सब तरफ से काटते चले जाना कि लौट आए अपने पर।
लौट आए तो फिर दूसरी बात शुरू होती है कि अब अपने में कैसे रम जाए, क्योंकि न रम पाई तो फिर दूसरे पर चली जाएगी। अगर लौटा भी ली, अगर बच्चे सांझ घर भी लौट आए और अगर मां न रमा पाई तो बच्चे फिर लौट जाएंगे नदी के तट पर, वे फिर घर बनाएंगे, वे फिर खेलेंगे और फिर लड़ेंगे। लौट आना सिर्फ सूत्र है, लेकिन लौट आते ही रमे कैसे, ठहर कैसे जाए, उसकी चिंता करनी है। अगर नहीं चिंता की तो लौट भी नहीं पाएगी और वापस लौट जाएगी।

तो प्रतिक्रमण सिर्फ प्रोसेस है, ठहराव नहीं है। प्रतिक्रमण सिर्फ प्रक्रिया है, स्वभाव नहीं है। इसलिए कोई प्रतिक्रमण में ही रुकना चाहे तो नासमझी में है। चेतना इतनी शीघ्रता से आती है और इतनी शीघ्रता से लौट जाती है कि पता नहीं चलता। एक दफे सोचती है कि हां मकान--क्या है मेरा; लौटती है एक क्षण को, लेकिन यहां ठहरने को जगह नहीं पाती, फिर पुनः वहीं लौट जाती है।
तो दूसरा सूत्र है सामायिक। वह हम कल बात करेंगे कि सामायिक यानी क्या, कैसे स्वयं में ठहर जाएं। और वह ख्याल में आ जाए तो सब ख्याल में आ गया। महावीर का जो केंद्र है, वह सामायिक है।
सामायिक शब्द बड़ा अदभुत है। दुनिया में बहुत शब्द लोगों ने उपयोग किए हैं, लेकिन इससे अदभुत शब्द उपयोग नहीं हो सका कोई भी, क्योंकि उसको दूसरे से बिल्कुल ही उखाड़ दिया। समय यानी आत्मा और सामायिक यानी अपने में हो जाना। इसमें दूसरे का... कोई यह नहीं पूछ सकता, सामायिक किसकी? पूछोगे तो गलत ही बात पूछ रहे हो, भाषा से ही गलत पूछ रहे हो। कोई यह नहीं पूछ सकता कि सामायिक किसकी? यह सवाल ही नहीं है। ध्यान हो सकता है किसी का, सामायिक किसकी होगी? किसी की भी नहीं होगी।

प्रश्नः आत्मा को समय किस दृष्टि से कहा?

बात करेंगे! बात करेंगे! कल सुबह बात करेंगे।

महावीर: मेरी दृष्टि में दसवां प्रवचन

अप्रमादः महावीर-धर्म

प्रश्नः वह कल जो आपने बताया कि तिब्बत में कुछ ऐसी धारणा मौजूद है जो
कि तीसरा नेत्र खुलने वाली और उसके द्वारा भविष्य का ज्ञान हो जाने वाली बात, और वह भी कई सौ वर्ष पूर्व आगे की घटना को जानने वाली उनकी शक्ति--अगर ऐसी बात थी तो आज जो तिब्बत पर संकट आया, इसका ज्ञान तो उन्हें बहुत पहले हो गया होगा, तब आज के संकट के लिए उन्होंने पहले से तैयारी क्यों नहीं की? क्या हम यह मान लें कि आसुरी शक्तियां आध्यात्मिक शक्ति पर भी हावी हो जाया करती हैं और यहां तक कि आध्यात्मिक शक्ति का भी कुछ बस नहीं चलता?

पहली बात तो यह कि जितनी श्रेष्ठ शक्ति हो, उतना ही निकृष्ट शक्ति से लड़ना कठिन है। जैसे कितना ही बुद्धिमान व्यक्ति हो, उसके सिर पर एक लट्ठ मार देने से भी सारी बुद्धिमत्ता बिखर जा सकती है। गांधी जैसे कीमती आदमी को भी एक गोली मार देने से सब अंत हो सकता है।
असल में जितनी श्रेष्ठ शक्ति है, उतनी ही बारीक, उतनी ही सूक्ष्म है। जितनी निकृष्ट शक्ति है, उतनी ही स्थूल और प्रकट है। स्थूल के द्वारा सूक्ष्म को नष्ट कर देना बहुत आसान है। और इसलिए अक्सर ऐसा हुआ है कि श्रेष्ठ सभ्यताएं निकृष्ट सभ्यताओं से हार गई हैं, क्योंकि श्रेष्ठ सभ्यताओं ने उतनी सूक्ष्म बातें विकसित की हैं कि वे यह भूल ही गई हैं कि और निकृष्ट बातें भी हैं, जिनकी कि व्यवस्था करनी जरूरी है। तो जब भी निकृष्ट शक्तियों ने या राष्ट्रों ने या सभ्यताओं ने हमला किया है तो श्रेष्ठ सभ्यता हार गई है, निकृष्ट जीत गई है।
अभी भी बुद्धिमान से मूढ़ के, बुद्धिहीन के जीत जाने की संभावना ज्यादा है। बुद्ध जैसे व्यक्ति को भी एक भैंसा सींग पर उठा कर खतम कर सकता है।
तो इसमें दो बातें ध्यान में रखनी जरूरी हैं। एक तो यह कि जितनी श्रेष्ठ शक्ति है, उतनी शिखर पर होती है; जितनी निकृष्ट शक्ति है, उतनी बुनियाद में होती है। अगर नीचे की बुनियाद कमजोर हो जाए तो ऊपर का शिखर गिर जाएगा, वह कितना ही भव्य हो, स्वर्ण का बना हो। और नीचे की जो बुनियाद है, वह ठोस पत्थरों से बनती है और शिखर सोने का बनता है।
तिब्बत के पास एक बड़ी ही आंतरिक सभ्यता थी, लेकिन उस आंतरिक सभ्यता के पास स्थूल साधन बिल्कुल नहीं थे। और अक्सर ऐसा होता है, जिनके पास आंतरिक शांति और आनंद उपलब्ध हो जाता है, वे चिंता भी छोड़ देते हैं बाह्य साधनों की। न वे बड़ी तोप बनाते हैं, न वे बड़ा एटम बनाते हैं। वे उस आंतरिक आनंद और शांति की खोज में ऐसे लीन हो जाते हैं कि बाहर का यह जो सारा समायोजन है, वे कभी भी नहीं कर पाते।
तिब्बत एक अर्थ में सबसे श्रेष्ठ सभ्यताओं में से था और एक अर्थ में सबसे कमजोर सभ्यताओं में से--कि अगर एटम उसके ऊपर गिराया जाएगा तो तिब्बत की बुद्धिमत्ता का कोई अर्थ नहीं हो सकता। जैसे भारत कभी पिछले समयों में बार-बार बर्बरों से हारा, उसका भी कारण यही था कि हम एक भीतर की दुनिया बनाने में लगे थे।
अब एक चित्रकार है, वह अपने घर में श्रेष्ठतम चित्र बना रहा है-- पिकासो है या मोनेट है, या कोई भी है। और एक आदमी जाकर छुरे को छाती में भोंक दे तो कोई भी यह नहीं कहेगा कि इतना बड़ा चित्रकार, इतनी बड़ी चित्र की कला और एक छुरी से जीत नहीं सका! कोई यह नहीं कहेगा, क्योंकि हम कहेंगे यह कि वह बेचारा चित्र बनाने में इतना लीन था कि कभी लट्ठ की और व्यायाम की और तलवार की उसने कोई व्यवस्था नहीं की थी और कभी सोचा भी नहीं था कि यह होगा। तो श्रेष्ठ की तलाश में अक्सर निकृष्ट भूल जाता है। और तिब्बत था आइसोलेटेड, सारे जगत से दूर, अपने में जी रहा था। अपने में जीने की इस सीमा के भीतर उसने कुछ खूबियों की बातें विकसित की थीं। लेकिन कोई भी शारीरिक

सभ्यता, तामसिक सभ्यता, जिसको आप आसुरी कह रहे हैं, वैसी कोई भी सभ्यता उस पर हमला करे तो तिब्बत उससे जीत नहीं सकता था, हार सुनिश्चित थी। एक बात। दूसरी बात, यह बात सच है कि तिब्बत के पास ऐसे लोग थे, हैं, जो भविष्य
के संबंध में सूचनाएं दे सकें। लेकिन भविष्य बड़ी अदभुत बात है। भविष्य के संबंध में जो भी सूचनाएं हैं, वे सदा पत्थर की लकीर की तरह सही नहीं होतीं, वे सिर्फ संभावनाएं होती हैं। संभावना का मतलब है कि ऐसा हो सकता है अगर ये स्थितियां रहें, ऐसा नहीं भी हो सकता अगर ये स्थितियां रहें।
एक उदाहरण से मैं समझाऊं। एक ज्योतिषी काशी से बारह वर्ष ज्योतिष का अध्ययन करके वापस लौटता है अपने गांव। जब वह अपने गांव लौट रहा है तो बड़ी पोथियां लाया है ज्योतिष की, बड़ा अध्ययन करके लौटा है और बड़ा निष्णात हो गया है भविष्यवाणी करने में। जब वह अपने गांव के करीब आ रहा है तो नदी की रेत पर उसने देखे हैं कि किसी व्यक्ति के पैरों के चिह्न बने हैं और पैरों में तो वे चिह्न हैं जो चक्रवर्ती को होना चाहिए! भरी दोपहरी है, साधारण सा गांव है, छोटी सी नदी है, गंदी रेत है, उस पर चक्रवर्ती खुले पैर चला हो इसकी कोई आशा नहीं है!
वह तो बहुत घबड़ा गया। उसने कहा अगर चक्रवर्ती एक साधारण गांव में खुली रेत पर नंगे पांव घूमता हो इस भरी दोपहरी में, तो हो गया हल! फिर मेरे पोथे का क्या होगा? मेरे शास्त्र का क्या होगा? उसे तो ऐसा लगा कि अगर यह चक्रवर्ती का पैर ही है--और चिह्न साफ है--तो इन पोथियों को इसी नदी में डुबा देना चाहिए और घर पहुंच जाना चाहिए कि मैं गलत शास्त्र पढ़ गया हूं। पर उसने कहा, इसके पहले मैं पता तो लगा लूं, यह आदमी कहां है?
तो वह पैरों के चिह्नों के पीछे चल कर जाता है तो एक वृक्ष के नीचे बुद्ध को बैठे पाता है। तो वह बुद्ध को देखता है तो बड़ा मुश्किल में पड़ जाता है, चेहरा तो चक्रवर्ती का है, आंख चक्रवर्ती की है; शरीर तो भिखारी का है, भिक्षा-पात्र बगल में रखा हुआ है, नंगे पैर है आदमी! तो वह जाकर कहता है कि महाराज, मुझे बहुत मुश्किल में डाल दिया, बारह वर्ष की सारी साधना व्यर्थ हुई जा रही है। यह आपके पैर में चक्रवर्ती का चिह्न है और आप हैं भिखारी। तो मैं अपने शास्त्रों को नदी में डुबा दूं?
तो बुद्ध उसे कहते हैं, शास्त्र को नदी में डुबाने की जरूरत नहीं है। मैं चक्रवर्ती हो सकता था, वह मेरी संभावना थी, वह मैंने त्याग कर दी। और जब मैं पैदा हुआ था तो ज्योतिषी ने यह कहा था कि यह लड़का या तो चक्रवर्ती होगा या संन्यासी। तो मेरे पिता ने पूछा कि या क्यों लगाते हैं? ज्योतिष में या क्यों लगा रहे हैं आप? तो कहिए कि चक्रवर्ती होगा या संन्यासी। लेकिन आप कहते हैं कि चक्रवर्ती होगा या संन्यासी। तो उस ज्योतिषी ने कहा कि ज्योतिष सदा भविष्य की संभावनाओं की सूचना है। ज्योतिष कभी भी दो और दो चार जैसा सुनिश्चित नहीं है कि कल ऐसा होगा ही। ज्योतिष सिर्फ इतना कह रहा है कि ऐसा भी हो सकता है, अन्यथा भी हो सकता है।
तो भविष्य की जो दृष्टि है, क्योंकि भविष्य में हजार संभावनाएं हैं।
जो हो चुका है, वह तो सुनिश्चित हो गया। अतीत सुनिश्चित हो गया, क्योंकि वह हो चुका। हजार संभावनाओं में से एक संभावना वास्तविक हो गई। अतीत इसीलिए मर गया। भविष्य में बहुत द्वार खुलते हैं और अनंत कारण हैं, जिनका संबंध है भविष्य से। इस बात की खबर भी दी जा सकती है, निरंतर खबरें दी जाती रही हैं कि ऐसा हो सकता है। लेकिन यह खबर भी तभी सुनिश्चित हो पाती है, जब हो जाता है।
फिर जिन लोगों को ऐसी अंतर्दृष्टि है भविष्य के संबंध में, कोई मुल्क
का मुल्क ऐसी अंतर्दृष्टि वाला नहीं है, सिर्फ दो-चार-दस लोग हैं, वे कहते हैं कि ऐसा हो सकेगा, लेकिन पूरा मुल्क जिसको कि सब अंधकार दिखता है, कुछ सुनता नहीं है, कोई सुनता नहीं। यह तो बहुत कठिन बात है कि अंतर्दृष्टि वाले व्यक्ति की बात हम सुनें और समझें। हां, जब हो जाएगी तो हम कहेंगे कि फलां आदमी ने ठीक कहा था। लेकिन जब तक नहीं हो जाएगी, तब तक वह आदमी भी हमारे लिए एक नासमझ आदमी है, जो व्यर्थ की बातें कर रहा है, जिनसे क्या होने वाला है!
निरंतर यह हुआ है। हिटलर के संबंध में, स्टैलिन के संबंध में, नेहरू के, गांधी के, हजार संबंधों में ज्योतिषियों ने बातें कही हैं। लेकिन तब

तक उनका आपको कभी पता नहीं चलता, जब तक कि वह घटना नहीं घट जाती। फिर और भी कठिनाई है कि एक ज्योतिषी हजार बातें कहता है। हजार ही नहीं घटतीं। जो घट जाती है, वह आप कहते हैं कि घट गई; जो नहीं घट जाती, वह भूल जाती है।
पर ज्योतिष और बात है। जिसको तीसरी आंख कहें, तीसरा नेत्र कहें, उससे ज्योतिष से भी ज्यादा गहराई से भविष्य का दर्शन हो सकता है। लेकिन वह दर्शन भी प्रतीकात्मक होता है। यानी वह दर्शन भी ऐसा नहीं होता कि आपको सीधा तथ्य दिख जाता है। प्रतीक दिखते हैं और प्रतीक की आपको व्याख्या करनी पड़ती है। व्याख्या में अक्सर भूल हो जाती है। फिर भी भूल न भी हो तो कोई सुनने को कभी राजी नहीं होता, कोई सुनने को कभी राजी नहीं होता। नहीं राजी होने का कारण यह है कि हमें तो कुछ दिखाई नहीं पड़ता। और न दिखाई पड़ने वालों की, अंधों की संख्या बड़ी है, उसमें एक आंख वाले की बात जिस तरह खो जाती है, ये बातें भी खो जाती हैं। फिर भी व्यवस्था करने के उपाय किए गए। आकस्मिक रूप से व्यवस्था करना बहुत मुश्किल हुआ होता।
तिब्बत के पास ग्रंथों की बड़ी ही अदभुत संपदा है, लेकिन दलाई करीब-करीब सभी कीमती ग्रंथों को ले आया है। तिब्बत के पास कीमती लोगों की भी एक संख्या थी, करीब-करीब उन लोगों को भी बचा कर लाया जा सका है। और व्यवस्था चल रही थी, कुछ पिछले तीस-पैंतीस वर्षों से व्यवस्था चल रही थी। खतरा आसन्न था। व्यवस्था भी चल रही थी। और उस व्यवस्था का ही फल है कि यह संभव हो सका कि दलाई भी निकल सका, नहीं तो दलाई के भी निकलने की उम्मीद नहीं थी। यह तो आप ठीक कहते हैं, लेकिन सुनता कौन है! बुद्ध ने कहा है कि मेरा धर्म पांच सौ वर्ष से ज्यादा नहीं चलेगा, लेकिन किसी ने नहीं सुना। बुद्ध का नहीं सुना किसी ने। कहा है साफ कि मेरा धर्म पांच सौ वर्ष से ज्यादा नहीं चलेगा। तो इंतजाम कर लेने चाहिए थे! लेकिन कोई इंतजाम नहीं किए गए। और जब मुसीबत आ गई, तभी बौद्ध-ग्रंथों को बचा कर भागना पड़ा इस मुल्क के बाहर। लेकिन पहले से कोई इंतजाम नहीं किया गया। हमारी लिथार्जी, हमारा तमस इतना ज्यादा है कि भविष्य अगर बता भी दिया जाए तो कोई बहुत फर्क पड़ने वाला नहीं है। हम सोचते हैं कि बता दिया जाएगा तो फर्क पड़ेगा। कोई फर्क पड़ने वाला नहीं है।
अभी एक अमेरिकन अर्थशास्त्री ने भविष्यवाणी की है--जो कि बिल्कुल गणित पर खड़ी है, इसलिए बहुत सही होने की उम्मीद है--कि उन्नीस सौ अठहत्तर के करीब भारत में एक महा अकाल पड़ेगा, जिसमें दस करोड़ लोगों से बीस करोड़ लोगों तक के मरने की उम्मीद हो सकती है। लेकिन भारत में किसी को फिक्र नहीं है।
मैंने दिल्ली में एक बड़े नेता से कहा, तो उन्होंने कहा कि उन्नीस सौ अठहत्तर अभी बड़े दूर है। क्या करिएगा? और उसका दावा एकदम गणित पर खड़ा हुआ है, एकदम गणित पर खड़ा हुआ है। दुनिया की भोजन की व्यवस्था, संख्या की व्यवस्था, इन सब पर खड़ा हुआ है। और उसका कहना है कि ऐसा अकाल न कभी दुनिया में पड़ा था पहले और न कभी पीछे पड़ने की उम्मीद है, जितना बड़ा अकाल भारत को झेलना पड़ सकता है।
लेकिन क्या फर्क पड़ रहा है? पूरी किताब लिखी है, छोटा-मोटा नहीं है वक्तव्य, पूरी किताब है, पूरे गणित के सब ब्यौरे के साथ है। लेकिन भारत में कोई परिणाम नहीं है, न किसी पत्र में कोई रिव्यू है, न नेताओं में कोई चर्चा है, न विचारशील लोगों में कोई बात है! हां, जब पड़ जाएगा अकाल उन्नीस सौ अठहत्तर में, तब हम पीछे कहेंगे कि इस आदमी ने बिल्कुल ठीक-ठीक भविष्यवाणी की थी।
हमारा तमस इतना गहरा है। अब तमस की गहराई हम इस तरह नाप सकते हैं, हम सबको पता है कि हम मरेंगे, इसमें किसी को भविष्यवाणी करने की जरूरत नहीं है। हम सब जानते हैं कि एक बात तो निश्चित है कि हम मरेंगे, लेकिन जीते हम इस ढंग से हैं, जैसे कभी नहीं मरेंगे! अब क्या करिएगा? हमें बिल्कुल--इसमें तो कोई शक-शुबहा ही नहीं है, किसी ज्योतिषी को, किसी तीसरी आंख वाले आदमी को आकर आपको बताने की जरूरत नहीं है कि आप मरोगे। यह तो बिल्कुल ही पक्का है। लेकिन इस पक्के में भी जीते हम ऐसे हैं जैसे हम कभी नहीं मरेंगे। जो आदमी कल सुबह मरने वाला है, वह भी आज सांझ इसी तरह जी रहा है, जैसे कभी नहीं मरेगा। तमस हमारा गहरा है। और भविष्य के प्रति अंधापन गहरा है।

महाभारत में घटना है। वह यक्ष ने जो प्रश्न पूछे हैं। तालाब पर पानी लेने गए हैं नकुल, सहदेव और यक्ष प्रश्न पूछता है, वे उत्तर नहीं दे पाते हैं और बेहोश होकर गिर जाते हैं। पीछे युधिष्ठिर गया है। तो उसमें जो एक प्रश्न है, वह यह है कि मनुष्य के जगत में सबसे ज्यादा चमत्कारपूर्ण बात क्या है? युधिष्ठिर कहता है, यही कि मृत्यु है और कोई मानने को राजी नहीं है।
इससे बड़ी चमत्कारपूर्ण बात ही नहीं है कोई। यानी सबसे ज्यादा सुनिश्चित जो है, उसको सबसे ज्यादा अनिश्चित कर रखा है! बाकी सब अनिश्चित है। बाकी एक बात तो निश्चित ही है--मृत्यु। उसमें तो अनिश्चय का कोई उपाय नहीं है। इसमें तो कोई अपवाद ही नहीं हुआ आज तक। अरबों-खरबों लोग पैदा हुए और मरे हैं। फिर भी प्रत्येक व्यक्ति ऐसे तमस में जीता है कि वह मानने को राजी नहीं है कि वह मरेगा! वह तो जिंदा रहेगा ही, ऐसे भाव से ही जीता है। तो क्या करिएगा?
भविष्य पूरा का पूरा बताया जा सके तो भी आप ऐसे ही जीएंगे, जैसे जी रहे हैं, कोई बहुत फर्क पड़ने वाला नहीं है। क्योंकि वह भविष्य आपको दिखाई नहीं पड़ रहा है।

प्रश्नः तमस क्या है--तमस जो कह रहे हैं आप?

तमस का मतलब लिथार्जी है, इतना प्रमाद है।

प्रश्नः अहं नहीं?

नहीं, अहं नहीं। तमस का मतलब लिथार्जी। इतना आलस्य है कि कल क्या होगा, उसकी कहां... क्या करें? जो होगा, होगा। अभी तो चुपचाप चलते चलो। इतना आलस्य है कि जैसे इस कमरे में आकर खबर कर दी जाए कि कल इस मकान में आग लगेगी तो भी हम ऐसे ही जीते चले जाएं जैसे कल आग नहीं लगनी है, क्योंकि अगर इसको हम मान लें कि कल आग लगेगी तो अभी हमें कुछ करना पड़ेगा। वह करना पड़ेगा, वह इतना भारी पड़ता है कि न करने में जैसा चल रहा है, ठीक चल रहा है।
अगर हम यह मान लें कि मृत्यु निश्चित है तो चाहे दस साल बाद, चाहे बीस साल बाद, इससे क्या फर्क पड़ता है, कि पचास साल बाद। अगर यह पक्का हमारे चित्त पर साफ हो जाए कि मृत्यु निश्चित है तो हमें कुछ करना पड़ेगा। हम जैसे जी रहे हैं फिर हम वैसे नहीं जी सकते, हमें फर्क करना पड़ेगा। और फर्क करने में इतना आलस्य है कि ठीक है, कल देखेंगे, जो होगा, होगा।
और इसको मैं तमस कह रहा हूं। तमस का मतलब है कि एक घना अंधकार का बोझ
है हमारे मन पर, जो हमें कुछ भी करने नहीं देता। यानी बता भी दिया जाए तो भी नहीं करने देता, खबर भी कर दी जाए तो भी नहीं करने देता। और नहीं करने का हमारा ऐसा भाव है कि जैसा चल रहा है वैसे रट में हम चुपचाप चलते चले जाते हैं।
इसलिए ऐसा नहीं है कि नहीं बोध है चीजों का। बोध है, लेकिन मुल्क बोध
को पकड़ नहीं पाता। बोध कुछ व्यक्तियों को है। उन्होंने चेष्टा की भी है अपनी तरफ से, सारा जो श्रेष्ठ है, वह बचा कर ले आए हैं। और वहां भी सब उपाय छोड़ आए हैं कि श्रेष्ठ वहां भी किसी तरह से बच सके, उसका भी सारा उपाय कर आए हैं।
लेकिन ऐसा ही मामला है जैसे कि एक गांव डूबने वाला हो दस दिन बाद और दस हजार लोग रहते हों और दस आदमियों को अंदाज लग जाए कि गांव डूबेगा और वे गांव भर में चिल्लाते फिरें, कोई उनकी सुने न, लोग उन पर हंसें, तो दस आदमी कितनी बड़ी डोंगी बना सकते हैं बचाने के लिए? यानी आखिर वे बनाने में भी लग जाएं तो एकाध नाव बना लेंगे दस आदमी दस दिन के भीतर, जिसमें कि वे कुछ बचा कर ले जा सकेंगे, लेकिन पूरा गांव तो नहीं बचेगा। यह तो तभी बच सकता था, जब दस हजार लोग उत्सुक हो जाते।
और यह भी हो सकता है कि जिन्हें आगे का दिखाई पड़ रहा है, उन्हें यह भी दिखाई पड़ता हो कि कितना बचाया जा सकता है और कितना खोएगा ही। यह भी कठिन नहीं है। कितना खोएगा ही, यह तय ही है। तो वह भी साफ दिख रहा है तो उसके लिए

श्रम का कोई अर्थ भी नहीं। जितना बचाया जा सकता है, उतना बचा लिया गया है; और जो खोने वाला है, उसको स्वीकार कर लिया गया है।

प्रश्नः आप जो कुछ जैन-दृष्टि के बारे में कह रहे हैं, उसमें मुझे ऐसा लगा कि दो-तिहाई बातों से सभी लोग सहमत हो जाएंगे, किंतु एक तिहाई अंश ऐसा है, जिससे सहमति कठिन है।

पहली बात जो आप कहते हैं सम्यक-दर्शन की, जिसने थोड़ा भी शास्त्र पढ़ा हो, वह यह जानता है कि सम्यक-दर्शन के बिना चारिष्य का कोई अर्थ नहीं। सम्यक-दर्शन के बिना जो कुछ होता है, वह चारिष्य कहलाता ही नहीं। यह दृष्टि बहुत स्पष्ट है। और यह भी स्पष्ट है कि चारिष्य का और कोई अर्थ नहीं है अतिरिक्त आत्मस्थिति के। आत्मा में स्थित हो जाना, यही चारिष्य का अर्थ है। इन दो अंशों में आपसे सहमति लगती है। पर सम्यक-दर्शन होने के बाद और आत्मस्थिति में पूर्ण स्थिति होने के पहले जो बीच का अंतराल है, उसमें आपकी दृष्टि कुछ मुझे जो परंपरागत दृष्टि है, उससे भिन्न नजर आती है। उसमें ऐसा मानते हैं लोग कि एक चरित्र का क्रमिक विकास है, उस चरित्र का एक बाह्य स्वरूप भी है, जिसे त्रिगुप्ति और पंच समिति इस नाम से अष्टप्रवचनमातृका करके वे कहते हैं--मन, वचन, कार्य का संयम और आहार-व्यवहार में विवेक। यही चारिष्य का स्वरूप मानते हैं। और यह अष्टप्रवचन समिति जो है, यही पंच व्रतों की रक्षा करने के लिए है। तो पंचव्रत और यह अष्टप्रवचनमातृका, इसका भी एक सुनिश्चित स्थान जैन आचार-मीमांसा में है। आप इस संबंध में क्या कहेंगे? यदि यहां आपकी सम्मति कुछ बने निश्चित और परंपरा से मिल सके तो शत-प्रतिशत सहमति हो जाए, पर यहां न मिल सके तो मुझे लगता है कि दो-तिहाई तो सहमति हो पाएगी, एक तिहाई अंश में नहीं।
नहीं, हो पाएगी तो पूरी हो जाएगी, नहीं हो पाएगी तो बिल्कुल ही नहीं हो पाएगी। क्योंकि चरित्र की जैसी धारणा रही है, वैसी धारणा से मैं बिल्कुल ही असहमत हूं। और वैसी धारणा महावीर की भी नहीं थी, ऐसा भी मैं कहता हूं। एक दृष्टि है बाह्य आचरण को व्यवस्थित करने की। असल में बाह्य आचरण
को व्यवस्थित वही करता है, जिसके पास अंतर्विवेक नहीं है। अंतर्विवेक हो तो बाह्य आचरण व्यवस्थित होता है, करना नहीं पड़ता है। जिसे करना पड़ता है, वह इस बात की खबर देता है कि उसके पास अंतस-विवेक नहीं है। अंतस-विवेक की अनुपस्थिति में बाह्य आचरण कैसा भी हो, जिसे हम अच्छा कहें या बुरा कहें, दोनों ही स्थिति में--नैतिक कहें, अनैतिक कहें--अंतस-विवेक नहीं है, तो सब आचरण अंधा है, अंधकारपूर्ण है।
निश्चित ही समाज के लिए फर्क पड़ेगा। एक को समाज अच्छा आचरण कहता है,
एक को बुरा कहता है। समाज अच्छा आचरण उसे कहता है, जिससे समाज के जीवन में सुविधा बनती है; बुरा आचरण उसे कहता है, जिससे असुविधा बनती है।
समाज को व्यक्ति की आत्मा से कोई मतलब नहीं है। समाज को व्यक्ति के व्यवहार से मतलब है। क्योंकि समाज व्यवहार से बनता है, आत्माओं से नहीं। तो समाज की चिंता यह है कि आप सच बोलें, यह चिंता नहीं है कि आप सत्य हों। आप झूठ हों, कोई चिंता नहीं, पर बोलें सच। आप मन में झूठ को गढ़ें, कोई चिंता नहीं, लेकिन प्रकट करें सच को।
समाज को मतलब, आपका जो चेहरा प्रकट होता है, उससे है; आपकी जो आत्मा अप्रकट रह जाती है, उससे नहीं है। इसलिए समाज इसकी चिंता ही नहीं करता कि भीतर आप कैसे हैं। समाज कहता है, बाहर आप कैसे हैं, बस हमारी बात पूरी हो जाती है। बाहर आप ऐसा व्यवहार करें जो समाज के लिए अनुकूल है, समाज के जीवन के लिए सुविधापूर्ण है, सबके साथ रहने में व्यवस्था लाता है, अव्यवस्था नहीं लाता। समाज की चिंता आपके आचरण से है। धर्म की चिंता आपकी आत्मा से है।
इसलिए समाज इतना फिक्र भर कर लेता है कि आदमी का बाह्य रूप ठीक हो जाए,
बस इसके बाद फिक्र छोड़ देता है। बाह्य रूप ठीक करने के लिए वह जो उपाय लाता है, वे उपाय भय के हैं। या तो पुलिस है, अदालत है, कानून है, या पाप-पुण्य का डर है, स्वर्ग है, नरक है। ये सारे भय के रूप उपयोग में लाता है।

अब यह बड़े मजे की बात है कि समाज के द्वारा आचरण की जो व्यवस्था है, वह भय-आधारित है और बाहर तक समाप्त हो जाती है। परिणाम में समाज केवल व्यक्ति को पाखंडी बना पाता है या अनैतिक, नैतिक कभी नहीं। पाखंडी या अनैतिक। पाखंडी इस अर्थों में कि भीतर व्यक्ति कुछ होता है, बाहर कुछ हो जाता है। और जो व्यक्ति पाखंडी हो गया, उसके धार्मिक होने की संभावना अनैतिक व्यक्ति से भी कम हो जाती है। इसे समझ लेना जरूरी है। समाज की दृष्टि में वह आदृत होगा, साधु होगा, संन्यासी होगा; लेकिन पाखंडी हो जाने के कारण वह अनैतिक व्यक्ति से भी बुरी दशा में पड़ गया है। क्योंकि अनैतिक व्यक्ति कम से कम सीधा है, सरल है, साफ है। उसके भीतर गाली उठती है तो गाली देता है और क्रोध आता है तो क्रोध करता है। वह आदमी स्पष्ट है, स्पांटेनियस है एक अर्थों में। सहज है, जैसा है, वैसा है। बाहर और भीतर में उसके फर्क नहीं है।
परम ज्ञानी के भी बाहर और भीतर में फर्क नहीं होता। परम ज्ञानी जैसा भीतर होता है, वैसा ही बाहर होता है। अज्ञानी जैसा बाहर होता है, वैसा ही भीतर होता है। बीच में एक पाखंडी व्यक्ति है, जो भीतर कुछ होता है, बाहर कुछ होता है। पाखंडी व्यक्ति का मतलब है कि बाहर वह ज्ञानी जैसा होता है और भीतर अज्ञानी जैसा होता है। पाखंडी का मतलब है कि भीतर अज्ञानी जैसा-- उसके भीतर भी गाली उठती है, क्रोध उठता है, हिंसा उठती है--और बाहर वह ज्ञानी जैसा होता है, अहिंसक होता है, अहिंसा परमो धर्मः की तख्ती लगा कर बैठता है, सच्चरित्रवान दिखाई पड़ता है, सब नियम पालन करता है, अनुशासनबद्ध होता है। बाहर का उसका व्यक्तित्व लेता है वह ज्ञानी से उधार और भीतर का व्यक्तित्व वही होता है जो अज्ञानी का है।
यह जो पाखंडी व्यक्ति है, जिसको समाज नैतिक कहता है, यह व्यक्ति कभी भी, कभी भी उस दिशा को उपलब्ध नहीं होगा, जहां धर्म है। अनैतिक व्यक्ति उपलब्ध हो भी सकता है। इसलिए अक्सर ऐसा होता है कि पापी पहुंच जाते हैं और पुण्यात्मा भटक जाते हैं, क्योंकि पापी के दोहरे कारण हैं पहुंच जाने के।
एक तो पाप दुखदायी है। प्रकट पाप बहुत दुखदायी है। उसकी पीड़ा है। वह पीड़ा ही रूपांतरण लाती है। दूसरी बात यह है कि पाप करने के लिए साहस चाहिए। समाज के विपरीत जाने के लिए भी साहस चाहिए।
जो पाखंडी लोग हैं, वे मीडियाकर हैं, उनमें साहस बिल्कुल नहीं है।
साहस न होने की वजह से चेहरा वे वैसा बना लेते हैं, जैसा समाज कहता है--समाज के डर के कारण--और भीतर वैसे रहे आते हैं, जैसे वे हैं। अनैतिक व्यक्ति के पास एक करेज है, एक साहस है।
साहस बड़ा आध्यात्मिक गुण है। पाप की एक पीड़ा है और साहस है, ये दो बातें हैं उसके पास। पाप उसे पीड़ा में ले जाएगा। पाप का अनुभव पीड़ा में ले जाएगा। पाप उसे निरंतर, निरंतर पीड़ा और सफरिंग में डालेगा, दुख और पीड़ा में डालेगा। और दुख और पीड़ा में कोई भी नहीं रहना चाहता। और साहस है उसके पास कि जिस दिन भी वह साहस कर ले, वह उस दिन बाहर हो जाए।
मैं एक छोटी कहानी से तुम्हें समझाऊं। एक ईसाई पादरी एक स्कूल में बच्चों को समझा रहा है, मॉरल करेज क्या है, नैतिक साहस क्या है। तो एक बच्चा उससे पूछता है कि कुछ उदाहरण से समझाएं!
तो वह कहता है कि समझ लो कि तुम तीस बच्चे हो, तुम तीसों पिकनिक पर पहाड़ पर गए हो। दिन भर के थक गए हो, नींद आ रही है, सर्द रात है। उनतीस बच्चे जल्दी से बिस्तर में कंबल ओढ़ कर सो जाते हैं, लेकिन एक बच्चा कोने में घुटने टेक कर परमात्मा की रात्रि की प्रार्थना पूरी करता है। तो वह कहता है कि उस लड़के में मॉरल करेज है, उसमें नैतिक साहस है कि जब उनतीस बिस्तर में सो गए हैं, सर्द रात है, दिन भर की थकान है, जब कि टेंपटेशन पूरा है कि मैं भी सो जाऊं, तब भी वह हिम्मत जुटाता है और एक कोने में खड़े होकर भगवान की प्रार्थना करता है सर्द रात में, तब सोता है जब प्रार्थना पूरी कर लेता है।
महीने भर बाद वह पादरी वापस आया, उसने फिर नैतिक साहस पर कुछ बातें कीं और उसने कहा कि अब मैं तुमसे समझना चाहूंगा कि तुम कुछ उदाहरण देकर समझाओ कि नैतिक साहस क्या है।

तो एक लड़के ने कहा कि जैसा आपने उदाहरण दिया था, वैसा ही उदाहरण मैं देता हूं। तीस पादरी एक पहाड़ पर पिकनिक को गए हुए हैं। दिन भर के थके-मांदे लौटते हैं। सर्द रात है। उनतीस पादरी प्रार्थना करने बैठ जाते हैं और एक पादरी कंबल ओढ़ कर सो जाता है। तो वह जो एक पादरी कंबल के भीतर सो जाता है, उसे मैं मॉरल करेज का उदाहरण, नैतिक साहस का उदाहरण कहता हूं। और जो आपने उदाहरण दिया था, उससे यह उदाहरण ज्यादा नैतिक साहस का है। जब उनतीस पादरी प्रार्थना कर रहे हों और कंडेम कर रहे हों कि नरक जाओगे अगर तुम बिस्तर में सोए, तब एक आदमी चुपचाप बिस्तर में सो जाता है।
नैतिक साहस होता ही नहीं जिन लोगों को हम नैतिक व्यक्ति कहते हैं उनमें। और उनकी नैतिकता वस्तुतः साहस की कमी के कारण होती है, साहस के कारण नहीं।
एक आदमी चोरी नहीं करता। तो आमतौर से हम सोचते हैं कि यह आदमी अचोर है। यह बात झूठ है। चोरी न करना ही अचोर होने का लक्षण नहीं है। चोरी न करने का कुल कारण इतना हो सकता है कि आदमी तो चोर है, लेकिन चोरी करने का साहस भी नहीं जुटा पाता। सौ में निन्यानबे मौके पर ऐसा होता है कि चोरी सब करना चाहते हैं, लेकिन साहस नहीं जुटा पाते। चोरी करना साधारण साहस की बात नहीं है। अंधेरी रात में और दूसरे के घर में अपने घर जैसा व्यवहार करना बहुत मुश्किल बात है।
तो जिनको हम नैतिक कहते हैं, अक्सर साहसहीन लोग होते हैं। और धर्म तो परम साहस की यात्रा है। तो ये साहसहीन लोग, जो कि इसलिए नैतिक होते हैं कि साहस नहीं है, कभी धर्म की यात्रा पर भी नहीं निकलते हैं। लेकिन जिनको हम बुरे लोग कहते हैं, उन बुरे लोगों में एक गुण तो बहुत स्पष्ट है कि वे साहसी हैं, पूरे समाज के विरोध में साहसी हैं। जब उनतीस लोग प्रार्थना कर रहे हैं, तब वे सोने चले गए हैं। जब पूरा समाज प्रार्थना कर रहा है, तब वे सोने चले गए हैं। साहस उनमें अदभुत है।
अब सवाल यह है कि यह साहस उनका पाप की तरफ से हट कर और पुण्य की तरफ कैसे जाए। तो आपको ले जाने की जरूरत नहीं है, पाप की पीड़ा ही अपने आप में इतनी सघन है कि वह आदमी को उससे उठने के लिए मजबूर कर देती है। आज नहीं कल, वह आदमी उठता है।
तो मेरी तो अपनी दृष्टि यह है कि पापी की संभावनाएं धर्म के निकट पहुंचने की ज्यादा हैं--जिसको हम नैतिक व्यक्ति कहते हैं उसके पहुंचने से। और जिस दिन पापी धर्म की दुनिया में पहुंचता है तो वह उतनी ही तीव्रता से पहुंचता है, जितनी तीव्रता से वह पाप में गया था।
नीत्शे ने एक बहुत अदभुत वचन लिखा है। नीत्शे की अंतर्दृष्टि बहुत गहरी है, कम लोगों की ऐसी दृष्टि होती है। नीत्शे ने लिखा है कि जब मैंने वृक्षों को आकाश छूते देखा तो मैंने खोज-बीन की, तो मुझे पता चला कि जिस वृक्ष को आकाश छूना हो उस वृक्ष की जड़ों को पाताल छूना पड़ता है। उसने लिखा है कि तब मुझे ख्याल आया कि जिस व्यक्ति को पुण्य की ऊंचाइयां छूनी हों, उस व्यक्ति के भीतर उसकी जड़ों को पाप की गहराइयां छूने की क्षमता चाहिए। अगर कोई पाप का पाताल छूने में असमर्थ है तो पुण्य का आकाश भी नहीं छू सकेगा, क्योंकि ऊपर शिखर उतना ही जाता है, जितनी नीचे जड़ें जा सकती हैं। यह हमेशा अनुपात में जाता है। तो जिस घास की जड़ें भीतर बहुत गहरी नहीं जातीं, वह घास उतना ही ऊपर आता है, जितनी जड़ें जाती हैं।
तो पापी की गति तो है--बुरे की तरफ है--लेकिन जिस दिन अच्छे की तरफ हो जाए, गति उसके पास है, वह अच्छे की तरफ भी जा सकता है।
तो मेरी अपनी दृष्टि यह है कि झूठी नैतिकता--बाहर से थोपी गई--सिखाने
का परिणाम यह हुआ कि दुनिया में धर्म कम होता चला गया। अच्छा तो यही हो कि आदमी सीधा हो, चाहे पापी हो, साफ हो, बजाय झूठे, व्यर्थ के आडंबर थोपने के, वैसा ही हो जैसा है। तो इस आदमी की बदलाहट की बड़ी संभावना है कि जैसा वह है, अगर वह दुखद है तो बदलेगा, करेगा क्या!
लेकिन पाखंडी आदमी ने व्यवस्था कर ली है, जैसा है, वह तो छिपा लिया है
और जैसा नहीं है, वह व्यवस्था कर ली है उसने। तो समाज से आदर भी पाता है, सुख भी पाता है, सम्मान भी पाता है; और जैसा है, वैसा वह है। इसलिए जो गलत होने की पीड़ा है, वह भी नहीं भोग पाता। वही पीड़ा मुक्तिदायी है।

तो मेरी दृष्टि में पाखंडी समाज से तो सीधा ऐंद्रिक समाज ज्यादा अच्छा है। और इसलिए मैं कहता हूं कि पश्चिम में धर्म के उदय की संभावना है, पूरब में अब नहीं है। इसको मैं जैसे भविष्यवाणी कह सकता हूं कि आने वाले सौ वर्षों में पश्चिम में धर्म का उदय होगा और पूरब में धर्म प्रतिदिन क्षीण होता चला जाएगा, क्योंकि पूरब पाखंडी है और पश्चिम स्पष्ट है। पूरब एकदम पाखंडी हो गया है। पश्चिम साफ है। बुरा है तो साफ है।
यह साफ बुरा होना उसको पीड़ा बन जाने वाला है। वह पीड़ा बन गई है और उस पीड़ा से उसको बाहर भी निकलना पड़ेगा। यह हमारा झूठा अच्छा होना पीड़ा भी नहीं बनता है। हम कहीं बाहर भी नहीं निकलते।
असल में पाखंडी आदमी कुनकुनी हालत में होता है, ल्यूकवार्म, कभी भाप नहीं बनता, कभी बर्फ भी नहीं बनता। पापी आदमी बर्फ भी बन सकता है और पापी आदमी भाप भी बन सकता है, क्योंकि ल्यूकवार्म वह होता ही नहीं, कुनकुनी हालत में कभी होता ही नहीं। छोरों पर जीता है। छोरों पर जाने की हिम्मत रखता है।
तो मेरा मानना है कि समाज ने नैतिक शिक्षा देकर समाज को तो किसी तरह सुव्यवस्थित कर लिया है, लेकिन व्यक्ति की आत्मा को भारी नुकसान पहुंचाया है। और यह भी मेरा मानना है कि समाज व्यवस्थित है, यह सिर्फ दिखाई पड़ता है। अगर व्यक्ति झूठे हैं तो व्यवस्था सच्ची कैसे हो सकती है? क्योंकि जो व्यक्ति झूठा है, वह पीछे के रास्ते से तो वह कर ही रहा होगा जो सामने के रास्ते से नहीं कर रहा है। तो समाज इतना ही कर सकता है ज्यादा से ज्यादा कि हर मकान के दो दरवाजे कर देता है। एक सामने का दरवाजा है, जिस पर प्रार्थनाएं, भजन-कीर्तन चलते हैं; एक पीछे का दरवाजा है, जिस पर गाली-गलौज चलती है।
वह पीछे का दरवाजा भी तो समाज का ही हिस्सा है, वह जाएगा कहां? वह उबल-उबल कर बाहर आता रहता है। वे पीछे की गालियां भी बाहर के रास्ते पर गूंजती ही रहती हैं, क्योंकि वे जाएंगी कहां?
झूठे चेहरे कैसे जीए जा सकते हैं? और जब सब आदमी झूठे चेहरे बनाते हों
और सबको यह पता हो कि सब चेहरे झूठे हैं, तो समाज एक मिथ्यात्व हो जाता है, और कुछ भी नहीं। इसलिए अक्सर ऐसा हुआ है कि धार्मिक व्यक्ति को असामाजिक होना पड़ा है, क्योंकि इस झूठे समाज में वह राजी नहीं हो सका है।
तो बुद्ध अपने भिक्षुओं को जो नाम देते हैं, वह है, अनागरिक। उसको नागरिकता छोड़ देनी पड़ी। उसे मिथ्या समाज की व्यवस्था छोड़ देनी पड़ी। तो भिक्षु का एक नाम है, अनागरिक। वह नागरिक नहीं रहा है अब।
असल में भिक्षु या संन्यासी या साधु का मतलब ही यह है कि वह किसी अर्थों में असामाजिक हो गया है, समाज से उसने नाता तोड़ लिया है, क्योंकि समाज पाखंड का गढ़ है।
और यह जो झूठी नैतिकता है, इसके भी समय होते हैं। जब झूठी नैतिकता बहुत जोर पकड़ती है तो उसकी प्रतिक्रिया जोर पकड़ती है। और झूठी नैतिकता को तोड़ने वाले तत्व सक्रिय हो जाते हैं। जब झूठी नैतिकता को तोड़ने वाले तत्व सक्रिय होते हैं तो अराजकता आती है, स्वच्छंदता आती है। जब स्वच्छंदता तेजी से पकड़ जाती है तो फिर झूठी नैतिकता को समर्थन देने वाले लोग खड़े हो जाते हैं। वे कहते हैं, यह स्वच्छंदता बुरी है, नैतिकता लाओ।
यानी मेरा मानना यह है कि समाज का अब तक का इतिहास झूठी नैतिकता यानी झूठी व्यवस्था और अराजकता, इसके बीच डोलता रहा है। झूठी नैतिकता उतनी ही खतरनाक है, जितनी स्वच्छंदता। और सच तो यह है कि झूठी नैतिकता ही स्वच्छंदता पैदा करने का कारण है। तो अब ये बहुत दिन हो गए इसके बीच डोलते- डोलते। अब इस बात की फिक्र हमें करनी चाहिए कि या तो सच्ची नैतिकता या हम स्वीकार कर लें कि आदमी अनैतिक है, तो अनैतिक होकर कैसे जीएं, उसका इंतजाम कर लें। बजाय आदमी को झूठा बनाने के, सच्चे होने की पहली आधारशिला तो रख दें। और जो नीति कहती है कि सत्य कीमती है, वह भी अगर आदमी को झूठा बनाने का उपाय करती है, तो कैसी नीति है?
तो मेरा कहना है कि अगर आदमी अनैतिक ही है तो इसे हम स्वीकार कर लें और अनैतिक आदमी कैसे जीए इसका इंतजाम कर लें। यह ज्यादा अच्छा होगा। और यह

सरलता से धर्म की तरफ ले जाने वाला होगा, क्योंकि अनैतिकता दुख देगी ही। पाप सुख दे ही नहीं सकता।

प्रश्नः मेरे मन में आचार्य जी एक सीधा प्रश्न उठा है। आप स्वयं ब्रह्मचारी हैं। एक व्यक्ति ब्रह्मचर्य का पालन कर रहा है--झूठा, पाखंड-रूप ब्रह्मचर्य का। आप में सत्य ब्रह्मचर्य है। आप उस व्यक्ति को यह मार्ग नहीं दिखलाते कि वह उस पाखंड ब्रह्मचर्य से सत्य ब्रह्मचर्य को प्राप्त कैसे हो, जैसे आप स्वयं हैं। आप उसको यह मार्ग दिखला रहे हैं कि वह पाखंड ब्रह्मचर्य से ब्रह्मचर्य को छोड़ ही दे। उलटी तरफ ले जा रहे हैं! आप अपनी तरफ उसको ले जाइए।

अपनी ही तरफ ले जा रहा हूं। अपनी ही तरफ ले जा रहा हूं, क्योंकि कामवासना उतनी खतरनाक नहीं है, जितना पाखंड खतरनाक है। क्योंकि पाखंड मनुष्य की ईजाद है और कामवासना परमात्मा की। तो जो आदमी पाखंडी ब्रह्मचारी है, आप सोचते हैं कि मैं उसको ब्रह्मचर्य से भिन्न ले जा रहा हूं। पाखंडी ब्रह्मचर्य जैसा ब्रह्मचर्य होता ही नहीं। पाखंड ही होता है, भीतर तो गहरी कामुकता होती है।

प्रश्नः उसे कामवासना के माध्यम से ही आप तक पहुंचना होगा, सीधा नहीं पहुंच सकता?

सीधा पाखंड से कैसे सत्य तक पहुंच सकता है? सत्य से ही सत्य तक पहुंच सकता है। कामवासना सत्य है तो कामवासना से ब्रह्मचर्य तक पहुंचा जा सकता है, क्योंकि ब्रह्मचर्य परम सत्य है। वह कामवासना की समझ से ही उत्पन्न अंतिम अनुभूति है। लेकिन पाखंडी ब्रह्मचर्य जिसने पहले ही थोप लिया है, तो पाखंड से सत्य तक पहुंचने का कोई रास्ता कभी नहीं रहा। पाखंड छोड़ो तो ही सत्य तक पहुंच सकते हो।
अब ये दो बातें समझने जैसी हैं। कामवासना व्यक्ति के जीवन का सत्य है, असत्य नहीं है। इस सत्य को समझने से हम और बड़े सत्य को उपलब्ध हो सकते हैं। यानी ब्रह्मचर्य जो है, वह वासना की ही अंतिम समझ से हुई निष्पत्ति है, वह वासना के विरुद्ध लड़ी गई बात नहीं है। वासना को ही जिसने ठीक से समझा है, जीया है, पहचाना है, वह धीरे-धीरे ब्रह्मचर्य को उपलब्ध हो जाता है। लेकिन जिस आदमी ने वासना को जीने से इनकार कर दिया, जानने से इनकार कर दिया, पहचानने से इनकार कर दिया, और एक झूठा ब्रह्मचर्य ऊपर से थोप लिया है, पहले तो इसके झूठे ब्रह्मचर्य को छुड़ाना पड़े और इसको सच-सच बताना पड़े कि तुम कहां हो। क्योंकि कोई भी यात्रा तभी हो सकती है, जब हम पहले यह जान लें कि हम कहां खड़े हैं। अगर मैं इस भ्रम में हूं कि मैं हूं तो श्रीनगर में और मैं भ्रम में हूं कि मैं बैठा हूं हिमालय पर। तो यात्रा शुरू ही नहीं होती, क्योंकि उस हिमालय से यात्रा शुरू नहीं हो सकती, जहां मैं नहीं हूं। यात्रा वहां से शुरू होगी, जहां मैं हूं।
तो इस व्यक्ति को जिसका पाखंडी ब्रह्मचर्य है, पहले तो समझाना पड़े कि पाखंडी ब्रह्मचर्य के भ्रम को तू तोड़, सच में तू कहां है, उसे तू पहचान ले। उस बिंदु से यात्रा शुरू हो सकती है। लेकिन अगर तूने कल्पना में ऐसा मान रखा है कि तू ब्रह्मचर्य को पहुंच चुका, तो अब और ब्रह्मचर्य को पहुंचने का उपाय क्या है! पाखंड का मतलब यह है कि आदमी जहां नहीं पहुंचा है, जान रहा है, मान रहा है कि वहां पहुंच गया है। और जहां है, वहां से इनकार कर रहा है कि वहां मैं नहीं हूं।
अब मैं साधु-संन्यासियों को मिलता हूं तो हैरान हो जाता हूं। सबके सामने तो वे आत्मा-परमात्मा की बातें करते हैं और ब्रह्मचर्य के गुणगान गाते हैं, एकांत में वे पूछते हैं कि सेक्स से कैसे छुटकारा हो! अभी तक मैं एक साधु-साध्वी को नहीं मिला हूं, जिसने एकांत में सेक्स के लिए न पूछा हो कि इससे कैसे छुटकारा हो, हम जले जा रहे हैं इस आग में! लेकिन व्याख्यान वे ब्रह्मचर्य का कर रहे हैं! और लोगों को समझा रहे हैं ब्रह्मचर्य की बातें!

और जिस ब्रह्मचर्य की वे समझा रहे हैं, उसे कहीं भी--कहीं से भी वे नहीं छू पा रहे हैं कि वह ब्रह्मचर्य कहां है।
और उसका कारण है। उसका कारण यह है कि पहले तो हमारे व्यक्तित्व का जो सत्य है, उसे हम पकड़ें, उसे समझें, उससे कोई यात्रा हो सकती है।
जो आदमी सेक्स को ठीक से समझ ले, वह आदमी ब्रह्मचारी हुए बिना बच नहीं सकता, उसे ब्रह्मचर्य की तरफ जाना ही होगा। यानी ऐसे कोई ले जाएगा नहीं उसे, उसकी समझ, उसकी अंडरस्टैंडिंग यात्रा बन जाती है।
तो जब तुम यह कहते हो कि मैं उसे उलटे रास्ते, उलटे नहीं ले जा रहा हूं मैं, उलटे वह जा रहा है। और जो भी उसको ब्रह्मचर्य समझा रहा है, उलटा ले जा रहा है। वह उसको कभी भी ब्रह्मचर्य की तरफ नहीं आने देगा। अगर ब्रह्मचर्य की तरफ लाना हो तो उसे कामवासना की पूरी समझ देनी पड़ेगी। और कामवासना के जितने निहित और गहरे छुपे हुए तथ्य हैं, वे सब उसे उघाड़ने पड़ेंगे। उसे उस सम्मोहन को तोड़ना पड़ेगा, जो कामवासना उसे दे रही है। वह सम्मोहन नहीं टूटता तो कोई फर्क नहीं पड़ने वाला। इतना होगा, वह बाहर से ब्रह्मचारी हो जाएगा और भीतर से कामुकता हजार गुनी ज्यादा सघन हो जाएगी।
यह जान कर हैरानी होगी तुम्हें कि साधारण रूप से कामुक व्यक्ति इतना कामुक नहीं होता, उसकी कामवासना कभी होती है, कभी नहीं होती; उसके क्षण होते हैं। लेकिन जो व्यक्ति ऊपर से ब्रह्मचर्य थोप लेता है, वह चौबीस घंटे कामुक होता है। वह एक क्षण को भी काम से छुटकारा नहीं पा सकता, क्योंकि जो उसने दबाया है, वह भीतर से निकलने के हजार उपाय खोजता रहता है, वह उसके सारे चित्त को घेर लेता है, उसके पूरे चित्त के रग-रेशे में प्रविष्ट हो जाता है।
अब यह ध्यान देने की बात है कि सेक्स का अपना एक सुनिश्चित सेंटर है। अगर कोई व्यक्ति सामान्य रूप से सेक्स जीवन से गुजर रहा है तो उसके मस्तिष्क में सेक्स कभी नहीं घुसता। वह उस सेंटर पर केंद्रित होता है, सेक्स के सेंटर के आस-पास ही घूमता है। लेकिन जो व्यक्ति पाखंडी ब्रह्मचर्य को धारण कर लेता है, वह सेक्स के सेंटर पर इतना दमन डालता है कि सेक्स की जो प्रवृत्ति है, वह दूसरे सेंटर्स में प्रविष्ट हो जाती है, यानी वह उसके मन और चेतना तक में प्रविष्ट हो जाती है।
वह ऐसा ही मामला है, जैसे आपके घर में एक किचन है, और किचन में धुआं उठता है तो आपने किचन में धुआं के निकलने की व्यवस्था की हुई है। और एक आदमी धुआं निकलने का विरोधी हो जाए और किचन से धुआं निकलने की सब चिमनी बंद कर दे। तो होना क्या है? धुआं उठना बंद हो जाएगा? किचन है तो धुआं होगा। तो अब यह धुआं बैठकखाने में भी घूमेगा, अब यह घर के दूसरे कमरों में भी प्रवेश करेगा, क्योंकि किचन से तो निकलने का रास्ता उसने बंद कर दिया। तो परिणाम यह होने वाला है, वह पूरा घर किचन जैसा हो जाएगा। सब दीवालें काली और सब कमरों में धुआं। और जितना यह धुआं बढ़ेगा, उतना वह घबड़ाएगा, उतना जाकर वह चिमनी को और बंद करेगा, क्योंकि वह यह कहेगा कि इसको दबाना जरूरी है, नहीं तो यह धुआं और बढ़ता चला जा रहा है। उसे पता नहीं कि दबाने से ही बढ़ता चला जा रहा है।
पशु इतने कामुक नहीं हैं आदमी के मुकाबले। और मजे की बात है कि पशु की कामुकता एकदम पीरियाडिकल है। एक वक्त पर वह कामुक होता है, शेष वक्त पर बिल्कुल ही भूल जाता है, उसमें कोई काम होता ही नहीं। और उसका कुल कारण इतना है--उसका कुल कारण इतना है कि पशु के चित्त में काम का कोई दमन नहीं है। इसलिए जब वह उसे भोगता है तो पूरा भोग लेता है, फिर शिथिल हो जाता है, शांत हो जाता है।
आदमी जो भोग भी रहे हैं काम को, जिनके बच्चे भी पैदा हो रहे हैं, उनके
मन में भी ब्रह्मचर्य की थोथी धारणाएं पकड़ी हुई हैं तो वे भोग भी नहीं पाते पूरा। और जो अभोगा छूट जाता है, वह भोग की मांग करता रहता है। तो पुरुष, सिर्फ मनुष्य चौबीस घंटे और साल भर कामुक है, कोई जानवर चौबीस घंटे और साल भर कामुक नहीं है! फिर भी जो लोग काम को भोग रहे हैं, वे कुछ क्षण के लिए शिथिल भी होते हैं। एक दफा काम का भोग उन्होंने किया तो कम से कम चौबीस घंटे, अड़तालीस घंटे के लिए वे विस्मृत हो जाते हैं। लेकिन साधु-संन्यासी

उन घंटों में भी विस्मृत नहीं हो पाते, वे चौबीस घंटे उसी रस में डूबे हुए हैं।
तो जो मैं कह रहा हूं, वह मैं यह कह रहा हूं कि मैं उन्हें ब्रह्मचर्य
की तरफ ले जाने की ही बात कर रहा हूं। मैं यह कह रहा हूं कि इस सत्य को समझो, इससे भागो मत, डरो मत, भयभीत मत होओ। इसे पहचानो, जागो। इसे जागोगे, पहचानोगे, समझोगे तो यह क्षीण होगा। और एक घड़ी ऐसी आती है कि पूर्ण समझ की स्थिति में सेक्स रूपांतरित होता है, उसकी सारी शक्ति नए मार्गों से उठनी शुरू हो जाती है। और जब वह नए मार्गों से उठती है तो वही शक्ति व्यक्ति को परम अनुभवों तक ले जाने का कारण बनती है। सेक्स शक्ति के विसर्जन का सबसे नीचे का केंद्र है। उसके ऊपर और केंद्र हैं, जिन पर अगर शक्ति उठती चली जाए, उठती चली जाए, तो जिसे हम ब्रह्म-रंध्र कहते हैं, वह सेक्स की ही ऊर्जा के विसर्जित होने का अंतिम केंद्र है--श्रेष्ठतम।
नीचे से सेक्स विसर्जित होता है तो प्रकृति में ले जाता है और जब ब्रह्म-रंध्र से सेक्स की शक्ति विसर्जित होती है तो परमात्मा में ले जाती है। और इन दोनों के बीच की जो यात्रा है, वह यात्रा वही व्यक्ति कर सकता है, जो अत्यंत समझपूर्वक सेक्स की ऊर्जा को ऊपर उठाने के प्रयोग में लग जाए। यानी मेरा कहना यह है कि ब्रह्मचर्य की साधना में सेक्स की समझ पहला कदम है, विरोध नहीं। जिस ऊर्जा को हमें ऊपर उठाना हो, उससे लड़ कर हम नहीं उठा सकते। उसे समझ कर और बड़े प्रेमपूर्ण आमंत्रण से ही ऊपर उठा सकते हैं। क्योंकि लड़ कर तो हम दो हिस्सों में टूट जाते हैं। और दो हिस्सों में टूटे कि हम गए।
पाखंडी व्यक्ति खंड-खंड हो जाता है, कई खंड उसमें हो जाते हैं। और मैं चाहता हूं व्यक्ति हो इंटीग्रेटेड, अखंड, क्योंकि अखंड व्यक्ति ही कुछ रूपांतरण ला सकता है। ब्रह्मचर्य सरल है, अगर थोपा न जाए। ब्रह्मचर्य अति कठिन है, अगर थोप लिया जाए।
तो मैं जो कहता हूं, मैं कहता हूं, समाज को सिखाओ वासना ठीक से, समाज को सम्यक वासना सिखाओ, सम्यक काम सिखाओ।

प्रश्नः महावीर भी यही कहना चाहते हैं?

बिल्कुल कहेंगे ही। इसके सिवाय उपाय ही नहीं है। इसके सिवाय उपाय ही नहीं है। क्योंकि महावीर भी जिस ब्रह्मचर्य को उपलब्ध हुए हैं, वह जन्मों- जन्मों की वासना की समझ का ही परिणाम है।

प्रश्नः यह समझ जो है, वह भोग से आएगी या बगैर भोग के भी आ सकती है?

बगैर भोग से नहीं आ सकती, कभी नहीं आ सकती। भोग से ही आएगी।

प्रश्नः पिछले जन्म में हो सकता है?

कभी भी हो सकता है वह भोग, लेकिन आएगी भोग से ही। क्योंकि बिना भोग के कैसे समझ आ सकती है? जिस चीज को मैंने जाना ही नहीं, जीया ही नहीं, उसको मैं समझूंगा कैसे? समझने के लिए मुझे गुजरना पड़ेगा उस मार्ग से। वह कभी भी कोई गुजरा हो, यह सवाल नहीं है, लेकिन बिना गुजरे कभी भी समझ नहीं आ सकती। और बिना गुजरने की जो आकांक्षा है हमारे मन में, वह भय है, वह समझ नहीं आने देगा। वह डर है, वह कहता है, जाओ मत उधर। लेकिन जब जाएंगे नहीं तो जानेंगे कैसे?
जीवन में जो भी हम जानते हैं, वह हम जाकर ही जानते हैं, बिना जाए हम कभी नहीं जानते। और अगर बिना जाए कोई रुक गया तो वह किसी दिन जाने की सिर्फ... ।

प्रश्नः इस जन्म में जिसने भोगा है, वह उस समझ को प्राप्त हो सकता है क्या?

बिल्कुल ही हो सकता है, कोई सवाल ही नहीं है। यह कोई सवाल ही नहीं है।
हम जब भोग रहे हैं, तभी हम समझपूर्वक भोग सकते हैं, गैर-समझपूर्वक भी भोग सकते हैं। अगर हम समझपूर्वक भोगते हैं तो हम ब्रह्मचर्य की तरफ जाते हैं, अगर हम गैर-समझपूर्वक भोगते हैं तो हम उसी में परिभ्रमण करते रहते हैं। यानी सवाल भोगने का नहीं है, सवाल जागे हुए भोगने का है। जो भी हम भोग रहे हैं, वह हम जागे हुए भोग रहे हैं, या सोए हुए भोग रहे हैं?
अब सेक्स के साथ बड़ा मजा है कि जन्मों-जन्मों में लोग उसे भोगते हैं, लेकिन सोए हुए भोगते हैं। इसलिए कभी भी अनुभव हाथ में नहीं आ पाता कुछ भी। सेक्स के क्षण में आदमी बिल्कुल मूर्च्छित हो जाता है, होश ही खो देता है। बाहर आता है, जब होश आता है, तब वह क्षण निकल चुका होता है, फिर उस क्षण की मांग शुरू हो जाती है। तो ब्रह्मचर्य की साधना की प्रक्रिया का सूत्र यह है कि सेक्स के क्षण में जागे हुए कैसे रहें! और अगर आप और क्षणों में जागे हुए होने का अभ्यास कर रहे हैं तो ही आप सेक्स के क्षण में भी जागे हुए हो सकते हैं।
ठीक ऐसा ही मृत्यु का मामला है। हम बहुत बार मरे हैं, लेकिन हमें कोई पता नहीं कि हम पहले कभी मरे हैं। उसका कारण है कि हर बार मरने के पहले हम मूर्च्छित हो गए हैं। हर बार हम मरते हैं और मरने के पहले ही हम मूर्च्छित हो जाते हैं। मृत्यु का भय इतना ज्यादा है कि मृत्यु को हम जागे हुए नहीं भोग पाते। और एक दफा कोई मृत्यु में जागे हुए गुजर जाए, मृत्यु खतम हो गई। क्योंकि वह जानता है कि यह तो अमृत हो गया मैं, क्योंकि मरा तो कुछ भी नहीं, सिर्फ शरीर छूटा और सब खतम हो गया। लेकिन हम मरते हैं कई बार, लेकिन हर बार बेहोश हो जाते हैं। और जब बेहोश हो जाते हैं, जब हम होश में आते हैं, तब तक नया जन्म हो चुका है।
तो वह जो बीच की अवधि है मृत्यु से गुजरने की, उसकी हमारे मन में कोई स्मृति नहीं बनती। स्मृति तो तब बनेगी, जब हम जागे हुए होंगे। जैसे एक आदमी को बेहोश हम श्रीनगर घुमा कर ले जाएं, मूर्च्छित स्ट्रेचर पर डाला हुआ है, उसको हमने क्लोरोफार्म सुंघाया हुआ है, श्रीनगर पूरा घुमा दें। हवाई जहाज से दिल्ली वापस पहुंचा दें, वह दिल्ली में फिर जगे। और हम उससे कहें कि तू श्रीनगर होकर आया है। वह कहे, क्या पागलपन की बात है! मैं यहीं सोया था, यहीं जागा हूं। सिर्फ श्रीनगर से गुजर जाना काफी नहीं है, होश से गुजर जाना जरूरी है। और नहीं तो वह आदमी क्लोरोफार्म की हालत में श्रीनगर घूम भी गया और फिर दिल्ली पहुंच कर कहेगा कि मुझे श्रीनगर देखना है। मेरे मन में तो लालसा रह गई श्रीनगर देखने की, वह मैं देख नहीं पाया। वह कैसा है श्रीनगर!
हम मृत्यु से मूर्च्छित गुजरते हैं इसलिए मृत्यु से अपरिचित रह जाते हैं। जो मृत्यु से परिचित हो जाए, वह आत्मा के अमर स्वरूप को जान लेता है। हम सेक्स से मूर्च्छित गुजरते हैं, इसलिए हम सेक्स से अपरिचित रह जाते हैं। जो सेक्स से परिचित हो जाए, वह ब्रह्मचर्य को जान लेता है। यानी यह जो मेरा कहना है, मेरा कहना यह है कि किसी भी स्थिति से अगर हम जागे हुए गुजरे हैं तो सब बदल जाएगा। क्योंकि जो हम जानेंगे, वह बदलाहट लाएगा। अगर आपने एक दफा किसी का हाथ पकड़ कर चूमा है और बहुत आनंदित हुए हैं तो दुबारा फिर उस हाथ को चूमें और होश से चूमें, जागे हुए, कि आनंद कहां आ रहा है, कैसा आनंद आ रहा है, आ रहा है कि नहीं आ रहा है। और फिर हाथ को होशपूर्वक चूमें।
एक दिन बुद्ध एक सड़क से गुजर रहे हैं, एक मक्खी उनके कंधे पर आकर बैठ गई। आनंद से बातें कर रहे हैं, ऐसे ही मक्खी को उड़ा दिया, फिर एकदम रुक गए। मक्खी तो उड़ गई, आनंद चौंक कर खड़ा हो गया कि वे क्यों रुक गए। फिर बहुत धीरे से हाथ को ऐसा ले गए कंधे पर!
तो आनंद ने कहा, अब आप यह क्या कर रहे हैं! वह मक्खी तो उड़ चुकी है।
बुद्ध ने कहा, वह जरा गलत ढंग से उड़ा दी मैंने। मैं तुम्हारी बातों में लगा रहा और ऐसे ही बेहोशी में मक्खी उड़ा दी। अब मैं जागे हुए ऐसे उड़ा रहा हूं, जैसे उड़ाना चाहिए था। यह तो मक्खी के साथ दुर्व्यवहार हो गया, मूर्च्छित दुर्व्यवहार हो गया। अब मैं जाग कर उड़ा रहा हूं।

तो किसी का हाथ चूमा हो, बहुत आनंद आया हो, दुबारा हाथ पकड़ लें और अब चूमें और पूरे होशपूर्वक चूमें और देखें कि कौन सा आनंद कहां आ रहा है? तब बहुत हैरान हो जाएंगे। तब पाएंगे, हाथ है, ओंठ हैं, चुंबन भी है, आनंद कहां है? और यह जो अनुभव जागा हुआ होगा तो यह जो हाथ का पागल आकर्षण है, वह विलीन हो सकता है, बिल्कुल विलीन हो सकता है।
एक दफा किसी भी अनुभव से होशपूर्वक गुजर जाएं तो वह अनुभव की पकड़ आप
पर वही नहीं हो सकती फिर, जो आपकी बेहोशी में थी। अच्छा और तरकीब यह है प्रकृति की कि उसने सब कीमती अनुभव आपको बेहोशी में गुजरवाने का इंतजाम किया हुआ है। क्योंकि नहीं तो आप फिर नहीं गुजरेंगे उससे। और सेक्स प्रकृति की बड़ी गहरी जरूरत है, वह उसकी संतति उत्पादन की व्यवस्था है। तो वह नहीं चाहती कि आप उसको छुएं, या उसमें आप कुछ गड़बड़ करें। तो वहां ले जाकर वह आपको एकदम बेहोशी की हालत में कर देती है। जिसको आप आमतौर से प्रेम इत्यादि कहते हैं, वे सब बेहोश होने की तरकीबें हैं और कुछ भी नहीं, वे हिप्नोटाइज्ड होने की तरकीबें हैं, वे सम्मोहित हो जाने की तरकीबें हैं।
और जब आप सम्मोहित हो जाते हैं पूरे और बिल्कुल बेहोश हो जाते हैं तो... । इसलिए वेश्या के साथ संभोग करने में वह सुख आपको नहीं मिलता, जो आपको अपनी प्रेयसी से संभोग करने में मिलेगा। और उसका कारण है कि वेश्या के पास आपकी मूर्च्छा उतनी गहरी कभी नहीं हो पाती। क्योंकि यह तो धंधा, सौदे का काम है। दस रुपए फेंक कर संबंध बनाया है, कोई सम्मोहित होने का सवाल नहीं है बड़ा। इसलिए वेश्या उतनी तृप्ति नहीं दे पाती है, जितनी कि प्रेयसी देती है। उतनी पत्नी भी नहीं दे पाती, जितनी प्रेयसी देती है। क्योंकि पत्नी के पास भी रोज-रोज गुजरने से मूर्च्छित होने का उतना कारण नहीं रह जाता, रूटीन काम हो गया है, संबंध बिल्कुल यांत्रिक हो गया है। लेकिन प्रेयसी के पास आपको पहले मूर्च्छित होना पड़ता है और उसे मूर्च्छित करना पड़ता है।
वह जिसको हम फोर-प्ले कहते हैं, सेक्सुअल एक्ट से गुजरने के पहले का
जो सब प्रेम का गोरखधंधा है, वह सारा गोरखधंधा एक-दूसरे को मूर्च्छित करने का उपाय है। चूमना है, चाटना है, गले मिलना है, कविताएं सुनाना है, गीत गाना है, अच्छी-अच्छी बातें करना है, एक-दूसरे की तारीफ करना, वह एक-दूसरे को म्युचुअल हिप्नोसिस पैदा करने का उपाय है। जब वे दोनों हिप्नोसिस में आ गए हैं, तब फिर ठीक है, तब फिर वे बेहोश गुजर सकते हैं।
यह जो मेरा कहना है, वह मेरा कहना कुल इतना है कि ऐसी कोई भी क्रिया जिससे हम मुक्त होना चाहते हों, कभी भी हम मूर्च्छित हालत में मुक्त नहीं हो सकते। और पाखंड मूर्च्छित हालत को तो नहीं तोड़ता, उलटे भ्रम पैदा करवा देता है और ऐसी गलत चीजें हमें पकड़ा देता है। लेकिन हम पकड़ते ऐसे ढंग से हैं कि हमें ख्याल में नहीं आता।
अब जैसे महावीर हैं। हम निरंतर पूछते हैं, ऐसा महावीर का... ?
महावीर हैं, अगर महावीर स्त्रियों को छोड़ कर जंगल चले गए हैं तो हमें लगता है, अगर हमको भी ब्रह्मचर्य साधना हो तो स्त्रियों को छोड़ें और जंगल चले जाएं। तो हम महावीर की बुनियादी बात समझना भूल गए।
महावीर इसलिए जंगल नहीं चले गए हैं कि स्त्रियों को छोड़े जा रहे हैं, महावीर इसलिए जंगल चले गए हैं कि स्त्रियों में कोई रस नहीं रहा। स्त्रियों को छोड़ कर नहीं जा रहे हैं वे, विरस हो गई हैं, अर्थहीन हो गई हैं। यानी जब महावीर जंगल जा रहे हैं तो पीछे स्त्रियों की स्मृति नहीं है उनके मन में। और आप भी जंगल जा रहे हैं स्त्रियों को छोड़ कर तो जितनी स्मृति कभी घर पर नहीं थी, उतनी जंगल जाते वक्त स्त्रियों की स्मृति आपको घेरे हुए है। और आप समझ रहे हैं कि आप वही काम कर रहे हैं, जो महावीर कर रहे हैं!
तो आप भी जंगल में जाकर बैठ जाएंगे, महावीर भी बैठ जाएंगे। महावीर बैठेंगे तो स्वयं में खो जाएंगे, आप आंख बंद करेंगे तो स्त्रियों में खो जाएंगे। और आप लड़ाई लड़ेंगे कि यह तो महावीर ने भी यही किया, जो हम कर रहे हैं। सारी हमारी कठिनाई जो है न कि ऊपर का रूप हमें दिखाई पड़ता है। महावीर जंगल जाते दिखाई पड़ते हैं, महावीर के भीतर क्या घटना घटी, यह हमें दिखाई ही

नहीं पड़ता। और वह हमें दिखाई पड़ जाए तो बिल्कुल बात और होगी, बिल्कुल बात और होगी।
बिना अनुभव के कोई मुक्ति नहीं है। पाप के अनुभव के बिना पाप से भी मुक्ति नहीं है। इसलिए भयभीत होकर जो पाप से रुका हुआ है, वह पाप से मुक्त नहीं होगा। वह सिर्फ पाप करने की शक्ति अर्जित कर रहा है दबा-दबा कर, और आज नहीं कल, वह पाप कर देगा। और पाप करके पछताएगा, पछता कर वह फिर दमन करने लगेगा, दमन करके वह फिर पाप करेगा, और फिर पछताएगा। और एक वीसियस सर्कल है-- पाप, पश्चात्ताप; पाप, पश्चात्ताप--घूमता रहेगा।
मैं कहता हूं, पश्चात्ताप भूल कर मत करना कभी, पश्चात्ताप की जरूरत ही नहीं है। पश्चात्ताप का मतलब है, पाप पहले हो गया, पीछे फिर आप पश्चात्ताप कर रहे हैं।
मैं कहता हूं, जान कर पाप करना, होश से पाप करना, पूरे जागे हुए पाप करना। जो भी करना हो, पूरे जागे हुए करना। किसी को गाली भी देना हो तो पूरे जागे हुए देना। तो शायद दुबारा गाली देने का मौका न आए और पश्चात्ताप की भी कोई जरूरत न पड़े।
एक फकीर ने लिखा है कि उसका बाप मर रहा था। बूढ़े बाप के पास वह बैठा था--तब उसकी उम्र कोई पंद्रह-सोलह साल की थी--मरते हुए बाप ने उसके कान में कहा कि तू एक ही ध्यान रखना, किसी भी बात का जवाब चौबीस घंटे के पहले मत देना। और जिंदगी भर का मेरा अनुभव तुझे एक ही सूत्र में कहे जाता हूं--किसी भी बात का जवाब चौबीस घंटे के पहले देना ही मत। इतना तू ख्याल रखना।
उस फकीर ने, जब वह बड़ी शांति को उपलब्ध हुआ और लोगों ने उससे पूछा कि तुम्हारा राज क्या है? तो उसने कहा, राज बड़ा अदभुत है। मेरा बाप मर रहा था और उसने मुझसे कहा कि चौबीस घंटे के पहले तुम किसी का जवाब ही मत देना। अगर किसी स्त्री ने मुझसे कहा कि मैं तुझे बहुत प्रेम करती हूं तो मैं चौबीस घंटे तो चुप ही रहा। चौबीस घंटे बाद गया, तब तक तो खतम ही हो चुका था। क्योंकि वह स्त्री तो विदा ही हो चुकी थी दिमाग से ही उसके।
उसने कहा कि यह क्या बात है! हम जब कहे तब तो तुम कुछ उत्तर नहीं दिए!
अब आए हो जब कि सब उसका तो नशा ही जा चुका था। किसी ने गाली दी तो वह चौबीस घंटे बाद जवाब देने गया कि भई वह तुमने जो गाली दी थी, उसका हम जवाब देने आए। उस आदमी ने कहा कि लेकिन अब तो सब बात ही खतम हो गई। अब क्या बात! अब तुम क्या जवाब दे रहे हो?
तो उस आदमी ने लिखा है कि मैं जब भी चौबीस घंटे बाद गया, मैंने पाया कि मैं हमेशा लेट पहुंचता हूं। ट्रेन छूट चुकी है। वह तो ट्रेन जा चुकी थी, वह तो उसी वक्त हो सकता था। और उसी वक्त अगर होता तो मूर्च्छित होता और चौबीस घंटे सोच-विचार के बाद जब हुआ तो बड़ा जाग्रत था। तो उसने कहा कि कई दफे तो मैं यह कहने गया कि भई तुमने गाली बिल्कुल ठीक दी थी। चौबीस घंटे सोचा तो पाया कि तुमने जो कहा था, वह बिल्कुल ही ठीक कहा था कि तू बेईमान है। मैं बेईमान हूं।

प्रश्नः यह पाखंड नहीं हुआ?

न।

प्रश्नः यह पाखंड नहीं हुआ?

ये चौबीस घंटे... ।

प्रश्नः दबाया उसने उसको?

न, दबाने की बात नहीं है। अगर दबाए चौबीस घंटे, तब तो गाली और मजबूत होकर आएगी। चौबीस घंटे समझने की कोशिश की कि क्या उत्तर देना है उस आदमी को? उसके बाप ने कहा यह है कि कोई तुम्हें गाली दे तो मना नहीं करता कि तू गाली मत देना। अगर बाप यह कहता कि तू गाली देना ही मत, चौबीस घंटे बाद क्षमा मांगना, तब तो बात उलटी हो जाती, तब तो वह गाली को दबाता। उसके बाप ने

कहा, गाली जरूर देना, चौबीस घंटे बाद देना। लेकिन चौबीस घंटे समझ लेना कि कौन सी गाली देनी है, कौन सी, कितने वजन की देनी है, देनी है कि नहीं देनी है, उसकी गाली का मतलब क्या है। बाप ने यह नहीं कहा कि सप्रेस करना। अगर बाप यह कहता कि चौबीस घंटे बाद क्षमा मांगने जाना तो शायद वह दमन करता। उससे कहा था, तू गाली देना मजे से, लेकिन चौबीस घंटे बाद! इतना अंतराल छोड़ देना।
और यह बड़े मजे की बात है कि कोई भी बुरा काम अंतराल पर नहीं किया जा सकता, तत्काल ही किया जा सकता है। क्योंकि अंतराल में समझ आ जाती है, होश आ जाता है, ख्याल आ जाता है।
डेल कार्नेगी ने एक अनुभव लिखा है। उसने लिखा है कि लिंकन पर उसने एक भाषण दिया रेडियो से और जन्मतिथि गलत बोल गया। तो उसके पास कई पत्र पहुंचे गुस्से के कि तुमको जन्मतिथि तक मालूम नहीं है तो तुम भाषण काहे के लिए दिए? और एक स्त्री ने उसको, किसी गांव से अमरीका के, बहुत ही सख्त पत्र लिखा, जिसमें जितनी गालियां वह दे सकती थी, उसने दीं। उसको बड़ा क्रोध आया कार्नेगी को। उसने उसी वक्त रात को उठ कर जवाब लिखा उसका--पत्र। तो जैसी गालियां उसने दी थीं, उससे दुगुनी वजन की गालियां उसने दीं। लेकिन रात हो गई थी देर और नौकर चला गया था तो डाक डाली नहीं जा सकती थी। उसने चिट्ठी दबा कर रख दी।
सुबह उठा, लिफाफे में रखता था, सोचा एक दफा पढ़ लूं। लेकिन अब बारह घंटे
का फर्क पड़ गया था। चिट्ठी पढ़ी तो उसे लगा जरा ज्यादती हो रही है चिट्ठी में। उसकी चिट्ठी दुबारा पढ़ी तो उतनी सख्त नहीं मालूम पड़ी, जितनी बारह घंटे पहले मालूम पड़ी थी, क्योंकि अब दुबारा पढ़ी थी। और अपनी चिट्ठी पढ़ी तो लगा कि जरा ज्यादा सख्त उत्तर हो गया है, दूसरा लिखूं।
दूसरा उत्तर लिखा, वह पहले से ज्यादा विनम्र था। लिखते वक्त उसे ख्याल आया कि बारह घंटे और रुक कर देखूं कि कोई फर्क पड़ता है क्या। क्योंकि बारह घंटे में इतना फर्क पड़ गया। तो उसने पहली चिट्ठी तो फाड़ कर फेंक दी, दूसरी चिट्ठी दबा कर रख दी।
सांझ को जब दफ्तर से लौटा, उस पत्र को पढ़ा, उसने कहा अभी भी उसमें कुछ बाकी रह गई है चोट। फिर पत्र तीसरा लिखा। पर उसने कहा, इतनी जल्दी भी क्या।
उस औरत ने कोई मांग तो की नहीं। कल सुबह तक और प्रतीक्षा कर लें। वह सात दिन तक निरंतर यह करता रहा।
सातवें दिन उसने जो पत्र लिखा, वह पहले पत्र से बिल्कुल ही उलटा था। पहला पत्र सख्त दुश्मनी का था, सातवें दिन पत्र बिल्कुल मित्रता का था। वह पत्र उसने लिखा। लौटती डाक से उसका उत्तर आया। उस स्त्री ने बड़ी क्षमा मांगी कि मुझसे बड़ी भूल हो गई, क्योंकि उसको भी वक्त गुजर गया था। अगर यह गालियां देता तो उसको क्षमा का मौका भी नहीं मिलने वाला था। वह फिर गाली देती।
और तब डेल कार्नेगी ने लिखा है कि तब से मैंने नियम बना लिया कि किसी
भी पत्र का उत्तर सात दिन से पहले देना ही नहीं है।
मेरा मतलब समझ रहे हैं न? इससे होता क्या है, उतना जो वक्त है, उसकी इंटेंसिटी, आपके दिमाग का पागलपन, वह सब क्षीण हो जाता है, और क्षण सोचने के ज्यादा मौके मिल जाते हैं। बर्नार्ड शा कहता था कि मैं पंद्रह दिन के पहले किसी पत्र का उत्तर देता नहीं।

प्रश्नः यह निगेटिवली बराबर है, पाजिटिवली नहीं। वह भी रिजिडिटी हो
गई न?

नहीं, नहीं, यह सवाल नहीं है कि सात ही दिन आप करेंगे। यह सवाल नहीं है,
एक अंतराल चाहिए बीच में।

प्रश्नः विचार चाहिए?

हां, एक विचार का मौका चाहिए। नहीं तो होता क्या है, हम बिना विचार के उत्तर दे रहे हैं। ऐसा नहीं है कि आप भी सात दिन का नियम बना लें।

प्रश्नः उसने किया सात दिन?

उसके लिए लगा कि सात दिन में उसका माइंड रिलैक्स हो जाता है।

प्रश्नः कोई ऐसा भी होता है, चौबीस घंटे में भी हो सकता है?

हो सकता है, आदमी-आदमी का अलग-अलग होगा, आदमी-आदमी का अलग-अलग होगा।

प्रश्नः और उसका वह प्रसंग भी ऐसा हो, वह प्रसंग में सात दिन और कोई प्रसंग में बारह घंटा भी हो सकता है?

हो सकता है, बिल्कुल हो सकता है।

प्रश्नः तो इसमें वह रिजिडिटी का... ?

न-न! रिजिडिटी का... सात दिन में नुकसान तो हो ही नहीं रहा है कुछ। नुकसान तो कुछ होना नहीं है।

प्रश्नः आप उतनी शांति से अभी दे सकते हैं, यह भी हो सकता है?

हां, हां। बिल्कुल हो सकता है, बिल्कुल हो सकता है। कोई नुकसान तो हो
ही नहीं रहा है उसमें। ख्याल उसका जो है, वह कुल जमा इतना है कि अंतराल का एक तय कर लिया कि तत्काल उत्तर नहीं देना है, क्योंकि तत्काल उत्तर मूर्च्छा से आ सकता है। ऐसा जरूरी नहीं है। अगर आदमी जाग्रत हो तो तत्काल उत्तर भी मूर्च्छा से नहीं आता है, यह सवाल ही नहीं है। लेकिन हम चूंकि जाग्रत नहीं हैं, इसलिए सवाल है।
तो मैं बर्नार्ड शा का कह रहा था, वह निरंतर पंद्रह दिन के पहले उत्तर
ही नहीं देता था। और तब उसने कहा कि पंद्रह दिन तक उत्तर न देने पर कुछ पत्र तो ऐसे हैं, जो खुद ही अपना उत्तर दे देते हैं, देने की जरूरत ही नहीं पड़ती। यानी उनको अगर पहले दिन देना है तो देना पड़ा होता, पंद्रह दिन में वे अपना जवाब खुद ही दे देते हैं, कि जवाब नहीं आ रहा। यानी कुछ से तो छुटकारा हो जाता है; कुछ जो बचते हैं, बहुत कम बचते हैं, जिनका उत्तर फिर देने की जरूरत पड़ती है।
मेरा मतलब केवल इतना है कि हमारा कोई भी अनुभव जितना जागरूक हो सके, विचारपूर्ण हो सके, समझपूर्वक हो सके, उतना अच्छा है; दमन का सवाल नहीं है। और इसलिए मेरी निरंतर यह चेष्टा है कि अनैतिक व्यक्ति को जितना बुरा कहा गया है, वह कहना गलत है। और नैतिक व्यक्ति को जितना भला कहा गया है वह कहना भी गलत है। मेरी समझ यह है कि जीवन की व्यवस्था ऐसी होनी चाहिए कि व्यक्ति को सरल और सहज होने का उपाय और मौका हो। उसकी न तो निंदा हो, न उसका दमन हो, न उसको जबरदस्ती ढालने-बदलने की चेष्टा हो। लेकिन समझने का विज्ञान और व्यवस्था समाज उसे देता हो। शिक्षा उसे समझने का मौका देती हो।
एक बच्चा स्कूल में गया, हम उससे कहते हैं, क्रोध मत करो, क्रोध बुरा है। हम दमन सिखा रहे हैं। सच्चा और अच्छा स्कूल उसे सिखाएगा कि क्रोध करो, लेकिन जागे हुए कैसे करो, इसकी हम विधि बताते हैं। क्रोध जरूर करो, लेकिन जागे हुए करो, जानते हुए करो, क्रोध को पहचानते हुए करो। हम क्रोध के दुश्मन तुम्हें नहीं बनाते, केवल तुम्हें हम समझदार क्रोध करना सिखाते हैं। ऐसी अगर व्यवस्था हो तो यह व्यक्ति धीरे-धीरे क्रोध के बाहर हो जाएगा, क्योंकि समझपूर्वक कोई कभी क्रोध नहीं कर सकता है।
तो मेरी बात कई दफा उलटी दिखती है। कई दफा ऐसा लगता है इससे स्वच्छंदता फैल जाएगी, अराजकता फैल जाएगी। लेकिन अराजकता फैली हुई है, स्वच्छंदता फैली हुई है। मैं जो कह रहा हूं उसके द्वारा ही स्वच्छंदता मिटेगी, अराजकता मिटेगी।

और जैसा तुमने कल कहा कि मेरी बातों से कई दफे ऐसा हो सकता है कि साधारण आदमी भ्रमित हो जाए, गलत रास्ते पर चला जाए। इस सबमें एक बात तुमने मान ही ली है कि साधारण आदमी ठीक रास्ते पर है। अगर यह मान कर चलोगे तब तो हो सकता है। यानी मैं तो कहता ही हूं कि साधारण आदमी साधारण ही इसलिए बना हुआ है कि वह गलत रास्ते पर है, नहीं तो कोई आदमी ऐसा नहीं है जो असाधारण क्यों न हो जाए। वह साधारण बना ही रहेगा। जिन रास्तों पर वह चल रहा है, वे रास्ते ही उसे साधारण बना रहे हैं। यानी आमतौर से लोग समझते हैं कि साधारण आदमी एक रास्ते पर चल रहा है। मैं मानता हूं कि रास्ते साधारण या असाधारण बनाते हैं। जिस रास्ते पर हम चल रहे हैं वे साधारण बनाने वाले हैं, वे हमें साधारण बना देते हैं। और वे रास्ते भी हैं, जो असाधारण बना सकते हैं, पर उन पर हम चलेंगे तभी न!
समाज चाहता ही नहीं कि असाधारण व्यक्ति हों। समाज साधारण व्यक्ति चाहता है। क्योंकि साधारण व्यक्ति खतरनाक नहीं होते, साधारण व्यक्ति विद्रोही नहीं होते, साधारण व्यक्ति अद्वितीय नहीं होते। साधारण व्यक्ति व्यक्ति ही नहीं होते, साधारण व्यक्ति सिर्फ भीड़ होते हैं। समाज चाहता है भीड़, उसमें कोई स्वर नहीं होना चाहिए किसी के पास। नेता चाहते हैं भीड़, गुरु चाहते हैं भीड़, शोषक चाहते हैं भीड़। वे कहते हैं क्राउड चाहिए, जिसमें कोई व्यक्तित्व न हो। तो उस भीड़ का उतना ही शोषण किया जा सकता है। और मैं कहता हूं कि चाहिए व्यक्ति, क्योंकि भीड़ की कभी आत्मा पैदा नहीं होती। और एक ऐसी दुनिया बनाने की जरूरत है, एक ऐसा समाज, जहां व्यक्ति हों। और व्यक्ति अलग-अलग होंगे, अलग-अलग रास्तों पर चलेंगे। लेकिन यही तो व्यवस्था होनी चाहिए कि अलग-अलग रास्तों पर चलने वाले लोग, अलग-अलग व्यक्तित्व वाले लोग भी एक-दूसरे के प्रति कैसे प्रेमपूर्ण हो सकें! वोल्तेयर के खिलाफ एक आदमी था और उसने वोल्तेयर को इतनी गालियां दीं
और इतनी किताबें उसके खिलाफ लिखीं कि वोल्तेयर को नाराज हो ही जाना चाहिए। एक दिन रास्ते पर वोल्तेयर को मिल गया तो वोल्तेयर से उसने कहा कि महाशय, आप तो चाहते होंगे कि मेरी गर्दन कटवा दें, क्योंकि मैं तो आपके खिलाफ ऐसी बातें कह रहा हूं। वोल्तेयर ने कहा, क्या तुम कहते हो, तुम्हारी गर्दन कटवा दूं! नहीं, अगर तुम मुझसे पूछोगे तो तुम जो कह रहे हो उसे कहने का तुम्हारा हक है और अगर इस हक के लिए मुझे अपनी जान गंवानी पड़े तो मैं अपनी जान गंवा दूंगा। तुम जो कह रहे हो, उसे कहने का तुम्हें हक है और इस हक को बचाने के लिए अगर जरूरत पड़े मुझे जान गंवाने की तो मैं जान गंवा दूंगा। हालांकि तुम जो कह रहे हो, वह गलत है, और उसे गलत कहने का हक मैं बचाऊंगा और चाहूंगा कि तुम मेरे हक को बचाने के लिए जान देने के लिए तैयार रहना।
आप मेरा मतलब समझे न? यानी हमारा भिन्न-भिन्न होने का सवाल नहीं है, सवाल हमारी भिन्नता की स्वीकृति का है। अभी जो समाज हमने पैदा किया है, वह भिन्नता को स्वीकार नहीं करता। वह या तो भिन्नता का अनादर करेगा, अपमान करेगा; या पूजा करेगा, सम्मान करेगा; स्वीकार नहीं करेगा। यानी या तो वह भिन्नता को कहेगा कि यह बिल्कुल गलत है। और जो भिन्नता नहीं मानेगा कोई व्यक्ति, भिन्न रहता ही चला जाएगा, तो फिर कहेगा, भगवान है। मगर कभी स्वीकार नहीं करेगा कि हमारे बीच में है।
अच्छी दुनिया वह होगी, जहां भिन्नता स्वीकृत होगी; एक-एक व्यक्ति का अद्वितीय होना, यूनीक होना स्वीकृत होगा। और हम एक-दूसरे की भिन्नता को आदर देना सीखेंगे। अभी हम क्या करते हैं?
अभी हम यह करते हैं कि जो हमसे राजी है, वह ठीक; जो हमसे राजी नहीं है,
वह गलत। यह बड़ी अजीब बात है! यह बहुत हिंसक भाव है कि जो मुझसे राजी है वह ठीक, जो मुझसे राजी है, मतलब जिसका कोई व्यक्तित्व नहीं है, मैं जिसे पी गया पूरी तरह, वह ठीक, और जो मुझसे राजी नहीं है वह गलत। यह बहुत ही शोषक, पजेसिव वृत्ति है। इसको मैं हिंसा ही मानता हूं।
और इसलिए मैं मानता हूं कि जो गुरु अनुयायी इकट्ठे करते फिरते हैं, ये हिंसक वृत्ति के लोग हैं। ये कहते हैं हमारे साथ एक हजार लोग राजी हैं, एक हजार लोग मुझे मानते हैं। यानी एक हजार लोगों को इन्होंने मिटा दिया है। एक हजार लोगों के ऊपर यही बैठे रह गए हैं। दस हजार हैं तो इनको और मजा आता

है, करोड़ हैं तो और मजा आता है। क्योंकि इतने लोगों को इन्होंने बिल्कुल पोंछ कर मिटा दिया। ये खतरनाक लोग हैं।
अच्छा आदमी यह नहीं चाहता कि आप उससे राजी हो जाएं, अच्छा आदमी यह चाहता है कि आप भी सोचना शुरू करें। हो सकता है सोचना आपको मुझसे बिल्कुल भिन्न ले जाए।
और मेरा तो निरंतर जोर यह है, मैं यह नहीं कहता कि जो मैं कहता हूं, वह मान लें। मेरा जोर यह है कि आप भी इस भांति सोचना शुरू करें। हो सकता है, सोच कर आप उस जगह पहुंचें, जहां मैं कभी भी आपसे राजी न होऊं, या आप मुझसे राजी न हों, लेकिन आप सोचना शुरू कर दें।
जीवन में सोचना शुरू हो, जागना शुरू हो, दमन बंद हो, अनुगमन बंद हो, तो प्रत्येक व्यक्ति को आत्मा मिलनी शुरू होती है। और आत्मा प्रत्येक को असाधारण बना देती है। अभी हमारे पास कोई आत्मा ही नहीं होती, तब हम साधारण होते हैं।
और फिर मुझे इससे चिंता नहीं पकड़ती कि साधारण आदमी भटक जाएगा, क्योंकि मैं मानता हूं साधारण आदमी भटका ही हुआ है, अब और उसके भटकने का कोई उपाय नहीं है। क्या भटकेगा और? साधारण आदमी है कहां? तो उसे तो अगर हम भटका दें अब, तो वह ठीक रास्ते पर पहुंच जाए। क्योंकि भटका हुआ आदमी अगर भटक जाए अपने रास्ते से तो शायद ठीक रास्ते पर आ जाए। डबल निगेशन हो जाता है न!

प्रश्नः अनुगमन का क्या अर्थ है?

फालोइंग, पीछे चलने वाला।

प्रश्नः मुझे एक बहुत मोटा सा प्रश्न पूछना है।

हां, हां, आप प्रश्न कर डालें।

प्रश्नः और वह यह कि जो कुछ आपने कहा, क्या इसका यह अर्थ होगा कि जो लोग आपके विचार सुनें या पढ़ें, और उनमें जो जैन श्रावक के व्रतों का या जैन साधु के व्रतों का पालन कर रहे हैं, उन्हें सत्य की प्राप्ति के लिए पहले वह अपने व्रत तो छोड़ ही देने होंगे, तब ही कुछ हो पाएगा। यानी सारा जैन समाज, जो श्रावक वर्ग और साधु वर्ग का है, वह अपने व्रतों को पहले छोड़े, तब सत्य को पाए? एक तो यह और दूसरा उसके साथ ही जुड़ा हुआ यह भी प्रश्न, कि क्या इन पच्चीस सौ वर्षों में जिन्होंने इन व्रतों का पालन किया श्रावक या साधु के, सबके सब पाखंडी ही थे, कोई उनमें सत्य होने की संभावना नहीं है?

नहीं, कभी संभावना नहीं है। असल में व्रत पालने वाला कभी भी पाखंडी होने से नहीं बच सकता है। व्रती पाखंडी होगा ही। उसका कारण है। उसका कारण यह नहीं है कि पच्चीस सौ वर्ष कि पच्चीस हजार वर्ष, यह सवाल नहीं है। सवाल, व्रत को पकड़ता ही वही है, जो भीतर सोया हुआ है। जो भीतर जग गया है, वह व्रत को नहीं पकड़ता, व्रत आते हैं उसके जीवन में।

प्रश्नः उनमें कोई व्यक्ति ऐसा रहा हो, यह संभव नहीं है क्या?

असंभव ही है न! यह तो ऐसा है जैसे कि कोई आदमी कहे कि कोई आदमी आंख फोड़
ले तो फिर उसे दिखाई पड़ सकता है कि नहीं? मेरी बात समझ लें। तो मैं यह कहूंगा कि चाहे पच्चीस सौ साल तक फोड़े कोई आंख, चाहे पच्चीस हजार साल तक फोड़े, आंख फोड़ कर फिर दिखाई नहीं पड़ेगा। और आंख फोड़ता ही वही है, जिसे दिखाई पड़ने से डर पैदा हो गया है, देखना नहीं चाहता।
व्रत का मतलब क्या है? व्रत का मतलब है, आपकी चित्त-दशा एक है, जिसके विपरीत आप व्रत ले रहे हैं। व्रत यानी दमन का नियम। मैं कामवासना से भरा हूं, ब्रह्मचर्य का व्रत लेता हूं; हिंसा से भरा हूं, अहिंसा का व्रत लेता हूं; परिग्रह से भरा हूं, अपरिग्रह का व्रत लेता हूं।

व्रत परिग्रह का तो नहीं लेना पड़ता किसी को, न हिंसा का लेना पड़ता है,
न कामवासना का लेना पड़ता है। क्योंकि जो हम हैं, उसका व्रत नहीं लेना पड़ता; जो हम नहीं हैं, उसका व्रत लेना पड़ता है। तो व्रत का मतलब यह हुआ कि जो मैं हूं, वह उलटा हूं; और उससे ठीक भिन्न, उलटा व्रत ले रहा हूं। उस व्रत को बांध कर मैं अपने को बदलने की कोशिश करूंगा।
निश्चित ही व्रत दमन लाएगा, सप्रेशन लाएगा। मेरा मन तो है लोभ का कि मैं करोड़ रुपए कमा लूं और व्रत लेता हूं कि मैं एक लाख रुपए की ही सीमा बांधता हूं। और मेरा मन है करोड़ वाला। तो मेरे करोड़ वाले मन को मैं लाख वाली सीमा में बांधने की, दबाने की चेष्टा करूंगा। इस चेष्टा का एक ही परिणाम हो सकता है कि मेरा लोभ दूसरी जगह से प्रकट होना शुरू हो। जैसे मेरा मन कहे कि अगर लाख पर तुम रुक गए तो स्वर्ग में तुम्हें जगह मिलेगी। यह लोभ का नया रूप हुआ। लोभ करोड़ का था, लाख पर बांधने की कोशिश की तो उसकी धाराएं टूट गईं। अब वह स्वर्ग में मांग करने लगा कि वहां अप्सराएं कैसी मिलेंगी, कल्पवृक्ष कैसा मिलेगा, मकान कैसा होगा, भगवान के पास होगा कि दूर होगा!

प्रश्नः पर व्रती को निःशल्य तो होना ही है, यह उसकी कंडीशन है।

नहीं-नहीं। असल में व्रती निःशल्य हो ही नहीं सकता, क्योंकि व्रत खुद
ही एक शल्य है। व्रत से बड़ी शल्य नहीं है कोई और। अव्रती निःशल्य हो सकता है, व्रती कभी निःशल्य नहीं हो सकता। शल्य तो लगी है न पीछे! कांटा चुभा है छाती में। अब एक स्त्री निकल रही है, वह अपनी पत्नी नहीं तो उसको देखना नहीं, वह चाहे कैसी ही हो। तो अब यह... और जो चुपचाप देख लेता है, वह शायद कम शल्य से भरा हुआ है, कांटा कम है उसके चित्त में। लेकिन जो आंख बंद करके डर कर बैठ जाता है कि हमने तो व्रत लिया है कि अपनी पत्नी के सिवा किसी का चेहरा नहीं देखना है। उसको तो एक कांटा चुभा ही हुआ है चौबीस घंटे।
तो व्रती तो निःशल्य हो ही नहीं सकता, अव्रती निःशल्य हो सकता है। लेकिन मैं यह नहीं कह रहा हूं कि अव्रती होने से ही निःशल्य कोई हो जाएगा। अव्रती होना हमारी जीवन की स्थिति है। अव्रती दशा में जागना हमारी साधना है। अव्रती हालत में दो उपाय हैं, अव्रती स्थिति में दो मार्ग हैं--या तो अव्रती स्थिति को व्रत लेकर तोड़ो, लेकिन तब भीतर जागने की कोई जरूरत नहीं पड़ती। दूसरा रास्ता यह है कि अव्रती स्थिति के प्रति जागो, ताकि अव्रती स्थिति विदा हो जाए। तब जो व्रत से तुम मांग करते थे, वह आएगा, वह तुम्हें लाना नहीं पड़ेगा।
जैसे, जैसे मैंने उदाहरण के लिए अभी कहा कि सेक्स हमारी स्थिति है, ब्रह्मचर्य हमारा व्रत है। सेक्स के प्रति जागना साधना है। जो व्यक्ति सेक्स की स्थिति को अस्वीकार करेगा ब्रह्मचर्य का व्रत लेकर, उसका सेक्स कभी मिटने वाला नहीं है। व्रत बाहर खड़ा रहेगा, सेक्स भीतर खड़ा हो जाएगा। दमन हो जाएगा। और जो व्यक्ति ब्रह्मचर्य का कोई व्रत नहीं लेता, सिर्फ सेक्स की वस्तुस्थिति को समझने की साधना, प्रयोग करता है, ध्यान करता है सेक्स को ही समझने का, धीरे-धीरे सेक्स विदा होता है और ब्रह्मचर्य आता है। यानी ब्रह्मचर्य तुम्हारे व्रत की तरह कभी नहीं आता, ब्रह्मचर्य तुम्हारी समझ की छाया की तरह आता है। और जब आता है तो तुम्हें कसम नहीं खानी पड़ती किसी मंदिर में जाकर कि मैं ब्रह्मचर्य धारण रखूंगा। क्योंकि कोई सवाल ही नहीं है, आ गया है। इसके लिए कोई कसम की जरूरत नहीं है। और जिसकी तुम कसम खाते हो, उससे तुम सदा उलटे होते हो। और जो तुम होते हो, उसकी तुम्हें कभी कसम नहीं खानी पड़ती है।

प्रश्नः नहीं, पर इतने लंबे काल में जो साधक हुए उनमें कोई ऐसा साधक न हुआ हो, जिसका सहज फलित ब्रह्मचर्य हो?

हां, वह बिल्कुल अलग बात है, उसको मैं व्रती कह नहीं रहा। जैसे कुंदकुंद... ।

प्रश्नः हां, यही मेरा प्रश्न है।

न, न। यह तो प्रश्न बिल्कुल दूसरा हो गया। तुम जब कह रहे हो कि पच्चीस
सौ साल में व्रती, व्रती तो कभी नहीं, चाहे पच्चीस सौ नहीं पच्चीस हजार साल में हो, उससे कोई सवाल नहीं उठता। व्रती तो कभी नहीं पहुंचता। जो पहुंचता है वह सदा अव्रती, प्रज्ञावान व्यक्ति होता है।

प्रश्नः पर इनमें कुछ लोग ऐसे हैं!

हैं न। जैसे कुंदकुंद।

प्रश्नः यही मेरा मतलब है।

कुंदकुंद ऐसा व्यक्ति है, जैसा महावीर। कुंदकुंद वैसा ही व्यक्ति है, जैसा महावीर। कुंदकुंद कोई व्रत पाल कर नहीं जा रहा है। कुंदकुंद तो समझ को जगा रहा है। जो समझ रहा है, वह छूटता जा रहा है। जो व्यर्थ है, वह फिंकता चला जा रहा है। लेकिन है अव्रती--अव्रती सम्यकत्वी। और वह जो व्रती सम्यकत्वी है, वह सम्यकत्वी है ही नहीं कभी, वह सदा झूठ है, निपट पाखंड है। और व्रत पालना ही सरल है, समझ बढ़ाना कठिन है। व्रत पालना बिल्कुल सरल है। इसमें क्या कठिनाई है? क्योंकि सिर्फ दबाना है। लेकिन व्रत पालने से कोई कभी कहीं नहीं पहुंचा।
महावीर को भी मैं अव्रती कहता हूं। तो कुंदकुंद को अव्रती, ऐसे उमास्वाति या कुछ और लोगे। ऐसे कुछ लोग हैं। लेकिन जब तुम कहते हो जैन श्रावक, जैन साधु, तो न तो कुंदकुंद जैन हैं, न उमास्वाति जैन हैं।
जैन का मेरा मतलब यह कि इनको पागलपन ही नहीं है जैन होने का, इनको जैन होने का कोई पागलपन नहीं है। जैन होने का पागलपन जिनको है, वे तो कभी नहीं पहुंचते। क्योंकि उनको जैन होने का जो भ्रम है, वह भी व्रत इत्यादि से पैदा होता है, कि मैं रात को खाना नहीं खाता इसलिए मैं जैन हूं; कि मैं पानी छान कर पीता हूं इसलिए मैं जैन हूं; कि मैंने अणुव्रत लिए हुए हैं इसलिए मैं जैन हूं; कि मैं सामायिक करता हूं इसलिए मैं जैन हूं। यानी उसका जैन होना भी व्रतों पर ही निर्भर है। वह चाहे श्रावक है तो श्रावक के व्रत हैं, साधु है तो साधु के व्रत हैं।
लेकिन अव्रती--अव्रती बात ही अलग है। सब अव्रती हैं, लेकिन अव्रती स्थिति में जो प्रज्ञा को जगाता है, तो अव्रती सम्यकत्वी हो जाता है।

प्रश्नः मैं समझता हूं कि ऐसा शास्त्र कह ही रहे हैं कि वह व्यक्ति व्रत-अव्रत दोनों से ऊपर हो जाता है।

वह तो पीछे होगा, पीछे होगा; लेकिन व्रत बांधने वाला कभी नहीं हो पाएगा, व्रत बांधने वाला कभी नहीं हो पाएगा। समझ आएगी तो चीजें मिट जाती हैं। जैसे उदाहरण के लिए, अगर समझ आएगी तो हिंसा मिट जाती है, जो शेष रह जाती है, वह अहिंसा है। शेष रह क्या जाएगा? अहिंसा ही शेष रह जाएगी, जब हिंसा मिट जाएगी।
लेकिन व्रती की हिंसा भीतर होती है और अहिंसा वह थोपता है। तो व्रती
की अहिंसा हिंसा के विरोध में तैयार करनी पड़ती है। प्रज्ञावान की हिंसा विदा हो जाती है तो जो शेष रह जाता है, वह अहिंसा है। प्रज्ञावान की अहिंसा हिंसा का विरोध नहीं है, हिंसा का अभाव है। व्रती की अहिंसा हिंसा का विरोध है, अभाव नहीं। और जिसका विरोध है, वह सदा मौजूद रहता है, वह कभी नहीं जाता।

प्रश्नः व्रत निरर्थक है, यह व्रत पालने से ही मालूम पड़ेगा न?

हां, बिल्कुल पड़ेगा मालूम और काफी... ।

प्रश्नः जैसा आपने भोग के बारे में कहा कि... ।

हां, हां। बिल्कुल ही, बिल्कुल ही मालूम पड़ेगा। और जितने व्रती हैं, उनको जितने जोर से मालूम पड़ता है, उतना आपको नहीं मालूम पड़ता।

प्रश्नः मालूम पड़ने का मतलब छूटना हुआ न?

कठिनाई यह है कि अगर वे इस मालूम पड़ने के प्रति जागने की चेष्टा कर रहे हों! अगर वे भी सेक्स की तरह इसमें मूर्च्छित ही लगे हों कि रोज सुबह मंदिर चले जाते हैं मूर्च्छित और कभी जाग कर नहीं देखा कि चालीस साल से मंदिर गया, क्या मिला? यह प्रश्न ही अगर न पूछा हो तो जन्मों-जन्मों तक व्रत मानते रहेंगे। यह प्रश्न पूछ लिया हो तो अभी टूट जाएगा इसी वक्त। अगर व्रती समझ ले मेरी बात को तो उसको जल्दी समझ में आएगी बजाय आपके। क्योंकि उसको व्रत की व्यर्थता का अनुभव भी है।
लेकिन वह अनुभव को देखना नहीं चाहता, मूर्च्छा की तरह चला जाता है। वह कहता है कि नहीं, अभी नहीं हुआ तो कल होगा, कल नहीं हुआ तो परसों होगा, और कुछ तो हो ही रहा है।
यानी मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं कि मैं इतने दिन से नमोकार का पाठ कर रहा हूं। तो मैं पूछता हूं, क्या हो रहा है? कहता है, बड़ा अच्छा लग रहा है, शांति लग रही है। फिर थोड़ी देर में मुझसे पूछता है, शांति का कोई उपाय बताइए! मैंने कहा, अब मैं कैसे बताऊं? तुम्हें जब मिल ही रही है शांति। तो वह कहता है कि नहीं, अभी कुछ खास नहीं मिल रही है, ऐसा थोड़ा-थोड़ा लगता है।
मैंने कहा, तुम मुझे बिल्कुल साफ-साफ कहो, अगर थोड़ा-थोड़ा लगता है तो करते चले जाओ, धीरे-धीरे ज्यादा लगने लगेगा, फिर मुझसे मत पूछो। तुम बिल्कुल ईमानदारी से कहो, सच में कुछ हुआ? वह कहता है, कुछ हुआ तो नहीं है! यानी वह जो वह कह रहा था, उसका भी उसे होश नहीं था, वह क्या कह रहा है!
वह कहता है कि मंदिर जाता हूं रोज और वह फिर भी पूछता है, शांति चाहिए!
और उसे पूछो तो वह कहता है, मंदिर जाने से बड़ी शांति मिलती है। तो मिलती है तो फिर अब और क्या शांति चाहिए? ठीक है, जाओ। वह कभी जागा हुआ भी नहीं है कि वह क्या कह रहा है, क्या कर रहा है। वह भी सुनी-सुनाई बातें दोहरा रहा है। यानी मंदिर जाने से शांति मिलती है, यह उसने सुना है और मंदिर जाता है। तो अब वह भी कह रहा है कि बड़ी शांति मिल रही है!
तो अगर जागे कोई व्रती तब तो व्रत से एकदम मुक्त हो जाए। अव्रती भी समझ ले तो भी समझ में आ सकता है। क्योंकि ऐसे हम अव्रती भला हों, चाहे हमने कभी कसम खाकर व्रत न लिए हों, लेकिन वैसे किसी न किसी रूप में हम सब व्रती हैं। हमको ख्याल में नहीं है। हमको ख्याल में नहीं है, जैसे कि आपने शादी की, तो पत्नी-व्रत या पति-व्रत आपने ले लिया, आपको ख्याल में नहीं है। मंदिर में जाकर ही नहीं लिया जाता, वह तो हम चौबीस घंटे जो भी हम कर रहे हैं, उसमें व्रत पकड़ रहे हैं हमें। और अगर हम उसके प्रति भी जाग जाएं तो हमको पता चले कि कुछ हुआ नहीं है उस व्रत से। चीजें कहीं बदली नहीं हैं। और चित्त वैसा ही रह गया है जैसा था, चित्त की वही दौड़ है, वही भाग है।
तो वह तो सभी चीजें अनुभव से आती हैं, लेकिन जिंदगी में व्रत चल ही रहे हैं चौबीस घंटे। जैसे एक व्यक्ति है, जो कहता है कि मेरे पिता हैं, इसलिए मैं उनकी सेवा कर रहा हूं। यह व्रत ले रहा है सेवा का। इसको पिता की सेवा करने में कोई आनंद नहीं है। यह कह रहा है, कर्तव्य है। यह व्रती आदमी है। तो यह पिता की सेवा भी कर रहा है और पूरे वक्त क्रोध से भरा हुआ है कि कब छुटकारा हो जाए! यह पैर दाबने से कब मौका अलग मिले! कैसे अलग हट जाऊं! लेकिन यह व्रतपूर्वक कर रहा है। नियमपूर्वक कर रहा है। पिता हैं इसलिए कर रहा है।
अब सच बात तो यह होनी चाहिए कि इसको कभी आनंद नहीं मिलेगा। यानी पिता हैं इसलिए पैर दबाऊं, अगर यह कर्तव्य-भाव है तो आनंद कभी उदय नहीं होगा। और अगर इसे आनंद आ रहा है पैर दबाने में तो फिर व्रत नहीं रह गया, फिर इसकी एक समझ है, एक प्रेम है, एक दूसरी बात है।

एक नर्स है, वह एक बच्चे को पाल रही है तो वह व्रतपूर्वक पाल रही है और मां का व्यवहार कर रही है व्रतपूर्वक। एक मां है, वह अपने बच्चे को पाल रही है। वहां कोई व्रत नहीं है, वहां मां का आनंद ही उस बच्चे को पाल रहा है। और अगर बड़े होकर कोई उस मां से पूछेगा कि तूने अपने बेटे के लिए बहुत किया, तो वह कहेगी, मैं कुछ भी नहीं कर पाई। कुछ भी नहीं कर पाई। जो कपड़े मुझे बेटे को देने थे, नहीं दे पाई। जो खाना देना था, वह नहीं दे पाई। मैं कुछ भी नहीं कर पाई।
लेकिन नर्स से कोई पूछे, तूने फलां लड़के के लिए बहुत किया! वह कहेगी, बहुत किया। पांच बजे सुबह से ड्यूटी पर जाती थी, शाम पांच बजे लौटती थी। बहुत किया।
कर्तव्य व्रत की भाषा की बात है, प्रेम अव्रत की बात है। लेकिन अव्रत अकेला काफी नहीं है। अव्रत और जागरण--तो अव्रती सम्यकत्व पैदा होता है। और वही क्रांतिकारी सूत्र है। वह कोई भी करे, उससे कोई जैन का लेना-देना नहीं है। कोई मुसलमान करे, कोई ईसाई करे, कोई जरथुस्त्री करे, इससे कोई संबंध नहीं है। घटना उस करने से घटती है।
लेकिन होता क्या है कि परंपराएं धीरे-धीरे सब जड़ नियम हो जाती हैं। और
जड़ नियम थोपने की प्रवृत्ति शुरू हो जाती है। और जब जड़ नियम थोप दिए जाते हैं और लोग उन्हें स्वीकार कर लेते हैं तो वे जड़ नियम लोगों को भी जड़ करते हैं, चेतन नहीं करते। इसलिए व्रती व्यक्ति जड़ होता चला जाता है धीरे-धीरे।

प्रश्नः व्रती का जागरण जल्दी फलीभूत होगा या अव्रती का जागरण जल्दी फलीभूत होगा?

जागरण फलीभूत होता है।

प्रश्नः अव्रती का होगा या व्रती का होगा?

जागरण फलीभूत होता है। आप जिस स्थिति में हैं, वहीं जाग जाएं। फलीभूत जागरण होता है, जिस स्थिति में हैं।
हम किसी न किसी स्थिति में हैं ही, और किन्हीं न किन्हीं सीमाओं में बंधे हैं, और कुछ न कुछ कर रहे हैं--कोई दुकान चला रहा है, कोई मंदिर में पूजा कर रहा है, कोई मकान बना रहा है, कोई मंदिर बनवा रहा है--हम कुछ न कुछ कर रहे हैं। कोई उपवास कर रहा है, कोई खाना खा रहा है।
हम जो भी कर रहे हैं, उसके प्रति जागरण फलीभूत होता है। जो भी कर रहे हैं--इससे कोई संबंध नहीं है। एक आदमी चोरी कर रहा है और एक आदमी पूजा कर रहा है--करने के प्रति जागने से फल आना शुरू होता है। चोरी करने वाला चोरी के प्रति जाग जाए तो वही फल आएगा।

प्रश्नः पीछे फोर्स होगा?

हां।

प्रश्नः जागरण के पीछे फोर्स होगा न! व्रती का ज्यादा होगा या अव्रती
का ज्यादा होगा?

नहीं, नहीं। असल सवाल यह है कि अब... यह बड़ी बात है। बड़ी इसलिए है कि कौन
सा व्रत? कौन सा व्रत? एक आदमी व्रत लिए है कि पांच दफे माला फेर लेना है, क्या फोर्स होगा इसमें? एक आदमी चोरी करने जा रहा है, इसमें बहुत फोर्स होगा। यह घटना घटना पर निर्भर करेगा कि क्या व्रत, या क्या अव्रत!
लेकिन कुल कीमत की बात इतनी है कि आदमी जो भी कर रहा है, उसके प्रति उसे जाग कर करना है। वह मंदिर जा रहा हो तो भी जागना है और वेश्यालय जा रहा हो तो भी जागना है। जो भी करे, उसे होशपूर्वक करना है। होशपूर्वक करने से जो शेष रह जाएगा, वही धर्म है; जो मिट जाएगा, वही अधर्म है।

प्रश्नः महावीर इस जागरूकता को ही पौरुष और क्षात्र धर्म मान रहे हैं
या कोई और भी पौरुष है?

इसको ही। इससे बड़ा कोई पौरुष नहीं है। नींद तोड़ने से बड़ा और कोई पौरुष नहीं है।

प्रश्नः नहीं, पर जो आपने यह भेद किया कि एक का मार्ग आत्म-समर्पण का है, दूसरा पौरुष का है, तो नींद तोड़ना तो दोनों में बराबर रहेगा। फिर इसे आप पौरुष का विशेष क्यों कह रहे हैं?

नहीं, नहीं, नहीं। बिल्कुल ही अलग-अलग रास्ते से नींद टूटेगी। समर्पण करने वाले की नींद में अगर थोड़ा भी पौरुष होगा तो नहीं टूट सकेगी। क्योंकि समर्पण में एकदम स्त्री-भाव चाहिए, एकदम पैसिविटी चाहिए। यानी समर्पण करने में यही पौरुष होगा कि पौरुष बिल्कुल न हो और पौरुष करने वाले में यही पौरुष होगा कि उसमें समर्पण का भाव ही न हो जरा भी।
महावीर के हाथ तुम किसी के प्रति नहीं जुड़वा सकते हो। महावीर का हाथ जोड़े हुए कल्पना ही नहीं कर सकते हो कि यह आदमी हाथ जोड़े हुए खड़ा हो कहीं।

प्रश्नः वह अपने आंतरिक शत्रुओं से लड़ाई, यह पौरुष नहीं है।

नहीं, नहीं। कोई आंतरिक शत्रु नहीं है सिवाय निद्रा के। कोई आंतरिक शत्रु ही नहीं है सिवाय निद्रा के, मूर्च्छा के, प्रमाद के। और कोई आंतरिक शत्रु नहीं है।
इसलिए महावीर से कोई पूछे, धर्म क्या है? तो वे कहेंगे, अप्रमाद। और अधर्म क्या है? तो वे कहेंगे, प्रमाद। कोई उनसे पूछे कि साधुता क्या है? तो वे कहते हैं, अमूर्च्छा। असाधुता क्या है? तो वे कहते हैं, मूर्च्छा। और सारी साधना का सूत्र है विवेक, अवेयरनेस--कैसे कोई जागे, कैसे कोई होश से भरा हुआ हो।
तो महावीर का पौरुष कोई काम, क्रोध, लोभ से लड़ने में नहीं है। क्योंकि
ये तो लक्षण हैं सिर्फ। इनसे तो पागल लड़ेगा, इनसे महावीर नहीं लड़ सकता। मूर्च्छा है मूल चीज। काम, क्रोध, लोभ, सब उससे पैदा होने वाली चीजें हैं। जैसे कि तुम्हें बुखार चढ़ा। अगर कोई बुद्धिहीन वैद्य तुम्हें मिल गया तो वह तुम्हारे शरीर की गर्मी से लड़ेगा। ठंडा पानी डालेगा तुम्हारे ऊपर कि इसके शरीर की गर्मी कम करो, क्योंकि शरीर की गर्मी ही बुखार है। लेकिन बुद्धिमान वैद्य कहेगा, गर्मी बुखार नहीं है, गर्मी तो केवल खबर देती है कि भीतर कोई बीमारी है। यह तो केवल सूचना है, यह लक्षण है। इससे लड़े तो मरीज मरेगा। बीमारी से लड़ो, ताकि यह लक्षण विदा हो जाए।
अगर भीतर से बीमारी विदा हुई तो शरीर से ताप विदा हो जाएगा, लेकिन शरीर से ताप विदा अगर करने की कोशिश की तो बीमारी का विदा होना जरूरी नहीं है। आदमी मर भी सकता है।
तो काम, क्रोध, लोभ, लक्षण हैं कि भीतर आदमी मूर्च्छित है, सिर्फ खबरें हैं। मूर्च्छा टूटेगी तो ये विदा हो जाएंगे। और अगर मूर्च्छा को बचाते हुए व्रत लेकर इनको खतम करने की कोशिश की तो ये कभी खतम नहीं होने वाले। क्योंकि मूर्च्छा भीतर जारी है, वह नए-नए रूपों में इनको पैदा करती रहेगी। सिर्फ रूप बदल जाएंगे ज्यादा से ज्यादा। एक कोने से न निकल कर दूसरे दरवाजे से झरना निकलेगा।
तो महावीर तो बहुत स्पष्ट हैं कि साधना यानी अमूर्च्छा, संघर्ष यानी अमूर्च्छा, संकल्प यानी जागरण। इसके अतिरिक्त कोई सवाल ही नहीं है उनके लिए।

प्रश्नः आचारांग का एक वाक्य है, उसका अर्थ यह है कि तू बाह्य शत्रुओं
से क्यों लड़ता है? अपनी आत्मा के शत्रुओं से ही लड़। यह वाक्य आपके विचार में किसी ढंग से व्याख्येय है या अशुद्ध ही है?

मैं तो फिकर नहीं करता सूत्रों, आचारांग वगैरह की। मैं कोई फिकर नहीं करता। क्योंकि जो लोग उन्हें संगृहीत करते हैं, वे कोई बहुत समझदार लोग नहीं हैं। इनकी मैं फिकर नहीं करता। इनसे कोई तालमेल बिठाने का सवाल नहीं है। बैठ जाए, वह आकस्मिक बात है; न बैठे, उसकी कोई जरूरत नहीं है।
आंतरिक शत्रुओं से लड़, यह कहीं न कहीं बुनियादी भूल हो गई है। क्योंकि शत्रुओं शब्द बहुवचन में है। आंतरिक शत्रु से लड़, यह ठीक बात रही होगी, क्योंकि शत्रु एक वचन में है। आंतरिक शत्रु सिर्फ मूर्च्छा है। महावीर हजार बार दोहरा कर यह कह रहे हैं। इसलिए बहुत शत्रु नहीं हैं भीतर, शत्रु एक ही है। और मित्र भी एक ही है, बहुत मित्र भी नहीं हैं भीतर--जागरण मित्र है और मूर्च्छा शत्रु है।
इसलिए सुनने वाले ने कहीं न कहीं भूल कर दी है। आंतरिक शत्रुओं से लड़ने में वह फिर काम, क्रोध, लोभ वाली दुनिया में उतर आया है। वह इन्हीं की बात कर रहा है फिर। क्योंकि शत्रुओं का प्रयोग उसने बहुवचन में किया है। एकवचन में होता तो मैं राजी हो जाता कि बिल्कुल ठीक है। भूल हो गई बुनियादी। फिर वह इन्हीं को शत्रु समझ रहा है।
ये शत्रु हैं ही नहीं, शत्रु तो कोई और है। ये उसकी फौजें हो सकती हैं। यानी इनसे लड़ने का कोई मतलब नहीं है। मालिक कोई और है, वह मालिक नई फौजें भेजता रहेगा। अगर पुरानी तुमने हटा भी दीं तो नई फौजें आती रहेंगी। आंतरिक शत्रु से लड़ना है, शत्रुओं से नहीं। अक्सर ऐसा हो जाता है कि हमारी जो समझ होती है वह शत्रुओं से लड़ने में लग जाती है। हमारी जो समझ होती है, हमको यह ख्याल में नहीं आता कि शत्रु एक है। हमारा ख्याल यह है कि शत्रु बहुत हैं। शत्रु एक ही है।
और इसलिए जो बहुत शत्रुओं से लड़ रहा है, वह बुनियादी भूल कर रहा है; क्योंकि मजा यह है कि अगर काम चला जाए तो लोभ चला जाता है। कभी यह ख्याल किया आपने? अगर काम चला जाए, क्रोध चला जाता है। अगर काम चला जाए, मोह चला जाता है। इनमें से एक को विदा कर दो, बाकी तीन को बचा लो तो मैं समझूं कि ये अलग हैं। आज तक असंभव है यह बात। इनमें से कोई एक को विदा कर दे, कहे कि मैंने क्रोध विदा कर दिया, सेक्स विदा नहीं हुआ, असंभव है यह बात। यह हो ही नहीं सकता। यानी कोई अगर यह कहता हो, मैंने लोभ विदा कर दिया, लेकिन अभी काम बचा हुआ है, यह हो ही नहीं सकता। क्योंकि काम के साथ लोभ अनिवार्य है। यानी वे चार जो तुम्हें दिखाई पड़ रहे हैं--काम, क्रोध, लोभ, मोह--वे कोई चार चीजें नहीं हैं, वे सब संयुक्त हैं। और सबका संयुक्त जो तना है नीचे, वह मूर्च्छा है। वह वहां से शाखाएं निकलती रहती हैं।
अब सब लोग इस उलटे काम में लग जाते हैं। कोई लड़ रहा है क्रोध से कि मुझे क्रोध जीतना है। मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं, हमें क्रोध बहुत ज्यादा है, क्रोध से बचने का उपाय बताइए।
अब वे समझ रहे हैं कि क्रोध उनका शत्रु है। क्रोध शत्रु नहीं है, क्योंकि बाकी अगर तीन की वे फिक्र नहीं कर रहे हैं तो इस क्रोध से कुछ हल होने वाला नहीं है। और चारों की एक साथ फिक्र अगर करनी है तो ऐसा ही जैसे कि एक वृक्ष लगा हुआ है, उसमें कई शाखाएं हैं, एक आदमी एक शाखा काट रहा है, दूसरा आदमी दूसरी शाखा काट रहा है और नीचे के तने पर वे सब आदमी पानी सींचते हैं सुबह उठकर। नीचे के तने पर पानी सींचते हैं रोज और रोज वृक्ष पर चढ़ कर शाखाएं काटते हैं। एक शाखा कटती है तो दो पैदा हो जाती हैं, दो कटती हैं तो चार पैदा हो जाती हैं। और नीचे के तने पर पानी दिए चले जाते हैं। मजा यह है कि क्रोध, लोभ, मोह से हम लड़ते हैं और मूर्च्छा पर पानी दिए चले जाते हैं। और मूर्च्छा से वे सब पैदा होते हैं।
तो जो थोड़ा भी मनुष्य की गहराई में उतरेगा, महावीर जैसा व्यक्ति यह नहीं कह सकता कि तुम काम, क्रोध, लोभ से लड़ो। जो भी भीतर उतरेगा, वह तो कहेगा, मूर्च्छा से लड़ना है। और लड़ना क्या है? जागना है। और लड़ना यानी जागना होगा। हां, कभी जागा हुआ आदमी लोभी नहीं पाया गया, कामी नहीं पाया गया। और सोया हुआ आदमी कभी अलोभी नहीं हुआ, अकामी नहीं हुआ।
इसलिए मेरे हिसाब में काम, क्रोध, लोभ सोए हुए आदमी के लक्षण हैं। जब
ये बाहर दिखाई पड़ते हों तो उसका मतलब है, भीतर आदमी सोया हुआ है, जब ये बाहर

न दिखाई पड़ने लगें तो जानना कि आदमी जागा हुआ है। लेकिन इससे उलटी तरकीब में अगर कोई लग जाए कि इनको दिखाई न पड़ने दो, तो कोई फर्क नहीं पड़ता।
यानी वह व्रती यही कर रहा है। व्रती यह कर रहा है कि क्रोध को दिखाई न पड़ने देंगे। तो न दिखाई पड़े। हो सकता है दबा ले तरकीबों से। लेकिन फिर भी पहचाना जा सकता है। और भीतर तो उसके रहेगा ही। तो कोई ढंग से उसको अगर उकसाए तो क्रोध निकाला जा सकता है। यानी उसके क्रोध नए-नए रूप लेंगे। और हो सकता है कई दफे हम उसको उकसा भी न पाएं, क्योंकि उसको उकसाने की तरकीब हमें पता न हो। और वह अगर तरकीब पकड़ लें तो फौरन उसको उकसाया जा सकता है, मिट नहीं सकता।
व्रत से कभी कुछ नहीं मिटता है, क्योंकि व्रत शाखाओं से लड़ाई है।

प्रश्नः यानी जो फ्रायड ने और आज के मनोवैज्ञानिकों ने निकाला कि दमन
से संभव नहीं है, वह महावीर को भी ज्ञात था?

बिल्कुल ही। इसके सिवा कोई उपाय ही नहीं है। यानी कभी भी कोई व्यक्ति मुक्त हुआ हो तो दमन से मुक्त नहीं हो सकता है। वह जब भी मुक्त हुआ होगा, तब जागरण से ही मुक्त होगा। यह दूसरी बात है कि उस दिन भाषा साफ नहीं है, अभिव्यक्ति साफ नहीं है। निरंतर अभिव्यक्ति ज्यादा साफ होती चली जाती है।
जैसे समझ लें, न्यूटन ने खबर बताई हमें कि चीजें गिरती हैं, क्योंकि जमीन में गुरुत्वाकर्षण है। कोई हमसे पूछे, तो न्यूटन के पहले चीजें जो गिरती रहीं, वे भी गुरुत्वाकर्षण से ही गिरती थीं?
न्यूटन ने तो अभी तीन सौ साल पहले कहा कि चीजें ऊपर से नीचे गिरती हैं, क्योंकि जमीन खींचती है, गुरुत्वाकर्षण है। कोई आदमी हमसे पूछ सकता है, क्या न्यूटन से पहले चीजें नीचे नहीं गिरती थीं? और अगर गिरती थीं तो क्या वे भी गुरुत्वाकर्षण से ही गिरती थीं?
तो हम कहेंगे, वे भी गुरुत्वाकर्षण से गिरती थीं। जब भी कोई चीज गिरी है, गुरुत्वाकर्षण से ही गिरी है, खबर अभी न्यूटन ने दी है। न्यूटन ने सिर्फ फार्मूलेट किया है। चीजें तो गिर ही रही थीं सदा से, और वे हमेशा ग्रेविटेशन से ही गिर रही थीं। लेकिन यह ग्रेविटेशन शब्द को न्यूटन ने पहली दफा स्पष्ट किया है।
महावीर मुक्त हुए हों कि कृष्ण मुक्त हुए हों, दमन से नहीं हुए, सदा जागरण से हुए। यह बात फ्रायड ने पहली दफा स्पष्ट की है। इस नियम को पहली दफा ठीक-ठीक वैज्ञानिक ढंग से फ्रायड ने कह दिया। और इसलिए अब जो लोग महावीर को समझने के लिए फ्रायड के पूर्व की भाषा का उपयोग कर रहे हैं, वे महावीर को कभी भी आज के युग के लिए उपयोगी नहीं बनने देंगे। क्योंकि वे बुनियादी गलत बातें और गलत शब्द उपयोग करते रहेंगे।
यह भूल निरंतर होती है, क्योंकि महावीर के साथ अनिवार्य रूप से पच्चीस सौ साल पुरानी टर्मिनालाजी जुड़ी हुई है, जब न फ्रायड हुआ है, न मार्क्स हुआ है, न आइंस्टीन हुआ है। तो जो शब्दावली है वह पच्चीस सौ साल पुरानी है। और अगर उसी को पकड़ कर--और वह अनुयायी जो है उसी को पकड़ कर जोर-शोर मचाना चाहता है वह। तो वह कभी भी नहीं उसको उपयोगी बना सकता।
वह तो जैसे-जैसे शब्द बदलते जाते हैं, नए शब्द आते जाते हैं, उनको हमें समझपूर्वक उपयोग करना चाहिए। वैसे घटना जब भी घटी होगी, दमन से कभी भी नहीं घट सकती है। यानी वह वैज्ञानिक असंभावना है, उसका महावीर से कोई लेना-देना नहीं है।
यानी दो ही उपाय हैं, अगर कोई कहे कि दमन से ही महावीर उपलब्ध हुए तो फिर महावीर उपलब्ध न हुए होंगे। या दूसरा उपाय यह है कि अगर वे उपलब्ध हुए तो उन्होंने दमन न किया होगा। यानी इसके सिवाय कोई मार्ग ही नहीं है। तो मैं मानता हूं कि वे उपलब्ध हुए। क्योंकि जैसी शांति और जैसा आनंद और जैसी ज्योति उनके व्यक्तित्व में आई, वह कभी दमित व्यक्ति में आ ही नहीं सकती। दमित व्यक्ति के चेहरे पर, मन पर, सब तरफ टेंशन और तनाव होता है, क्योंकि जो दबाया है, वह दिक्कत देता रहता है। वह तो सिर्फ विमुक्त आदमी के मन में ऐसी

शांति हो सकती है, जैसी महावीर के मन में है, जिसने कुछ भी नहीं दबाया है, सब मुक्त हो गया है।
अब मुक्ति और दमन उलटे शब्द हैं, यह हमें ख्याल में नहीं है। दमन का मतलब है भीतर दबाया गया, मुक्त का मतलब है छूट गया, विसर्जित हो गया, डिस्पर्स हो गया, सप्रेस नहीं। क्रोध डिस्पर्स हुआ है, विदा ही हो गया है, चला ही गया है, दबाया नहीं।
यह पुंगलियाजी का एक क्वेश्चन रह गया रात का, उनकी बात कर लेनी चाहिए।

प्रश्नः आप बोले कि जागृति आती है तो मूर्च्छा के प्रति जागरूक होना चाहिए, अलग-अलग शाखा से लड़ने की कोई जरूरत नहीं है। अव्रत अकेला ही जरूरी नहीं है, साथ में जागृति भी जरूरी है। तो मेरा यह कहना है कि जागृति आ जाएगी तो अव्रत आ ही जाएगा न?

न, न। अव्रत है ही हमारा। यानी व्रती का मतलब यह है कि जो नियम बांध कर
जी रहा है। अव्रती का मतलब है, जो नियम बांध कर नहीं जी रहा है। अव्रती हम हैं ही, समझे न? उसे लाने का सवाल नहीं है। अव्रती हम हैं ही। कुछ हममें व्रती हैं--मंदिर जाने वाले, मस्जिद जाने वाले, पूजा-पाठ करने वाले, नियम-धर्म से जीने वाले--वे व्रती हैं, बाकी लोग अव्रती हैं। व्रती को व्रत के प्रति जाग जाना चाहिए, अव्रती को अव्रत के प्रति। जो हम कर रहे हैं, उसी के प्रति जाग जाना चाहिए। तो जागने से वह आ ही जाएगा, जो व्रती चेष्टा कर रहा है व्रत से लाने की। वह आ जाएगा, अपने आप आ जाएगा।

प्रश्नः जागरण के साथ विशेषण विवेक का लगाना जरूरी है अथवा नहीं? क्योंकि अविवेकपूर्ण भी जागरण हो सकता है।

नहीं, अविवेकपूर्ण जागरण नहीं हो सकता। जागरण अनिवार्य रूप से विवेकपूर्ण होता है। असल में जागरण और विवेक एक ही अर्थ रखते हैं। जैसे हम यह नहीं कह सकते कि जीवित मुर्दा, वैसे ही हम अविवेकपूर्ण जागरण नहीं कह सकते। वे विपरीत शब्द हैं। विवेक यानी जागरण।
विवेक से जो आम ख्याल पैदा होता है, वह होता है डिस्क्रिमिनेशन का। इसलिए आप कह रहे हैं। विवेक से आम ख्याल होता है कि यह गलत है और यह सही है, ऐसा डिस्क्रिमिनेशन करने का। लेकिन ऐसा डिस्क्रिमिनेशन आप जब तक करते हैं, जब तक आप कहते हैं कि यह ठीक मानूं, यह गलत मानूं, तब तक आपको विवेक नहीं है। तब तक विवेकशील लोगों ने जिसको ठीक जीया है और जिसको उन्होंने गलत माना है, वह आपने पकड़ लिया है।
जिस दिन आपका विवेक होगा, उस दिन यह तय नहीं करना पड़ता, यह गलत है, यह सही है। जो सही है, वह होता है; जो गलत है, वह नहीं होता। जो सही है, वही होता है जागे हुए व्यक्ति से। और जो सोया हुआ है उससे जो गलत है, वही होता है। जागे हुए से गलत नहीं होता, सोए हुए से सही नहीं होता।
तो असंभव ही है यह बात कि कोई अविवेकपूर्ण जागरण हो जाए। क्योंकि जागरण होगा तो अविवेक टिकेगा कहां? ठहरेगा कहां? वह मूर्च्छा में ही टिक सकता था, अंधेरे में ठहर सकता था।

प्रश्नः स्वतंत्रता और स्वच्छंदता में फर्क क्या है?

कल पूछ लेना।
ले ही लेते हैं। यह पूछती है, स्वच्छंदता और स्वतंत्रता में फर्क क्या है?
बहुत फर्क है। तीन शब्द लेने चाहिएः परतंत्रता, स्वतंत्रता, स्वच्छंदता। परतंत्रता का मतलब है कि जो हम कर रहे हैं, वह हम नहीं कर रहे हैं, करवाया जा रहा है। स्वच्छंदता का मतलब यह है कि जो हम कर रहे हैं, वह भी हम नहीं कर रहे हैं, जो हमसे करवाया जा रहा था, उसके उलटे हम कर रहे हैं-- स्वच्छंदता का मतलब होता है। परतंत्रता का मतलब होता है, जो हमसे करवाया जा रहा है वह कर रहे हैं। स्वच्छंदता का मतलब होता है कि जो हमसे करवाया जा

रहा, वह भर हम नहीं कर रहे हैं, उसके भर हम विपरीत कर रहे हैं। स्वच्छंदता जो है, वह परतंत्रता का दूसरा पहलू है, यानी बगावत की गई परतंत्रता है वह। है परतंत्रता ही। विद्रोह में चली गई परतंत्रता है। रिएक्शनरी स्लेवरी है वह। है तो स्लेवरी ही।
जैसे बाप ने कहा था कि मंदिर जाना! तो एक बेटा मंदिर जा रहा है, क्योंकि बाप कहता है मंदिर जाना। दूसरा बेटा कह रहा है, मंदिर नहीं जा सकते हैं, क्योंकि बाप कह रहा है कि मंदिर जाना। एक परतंत्र है, एक स्वच्छंद है। लेकिन स्वच्छंद जो है, वह परतंत्रता के खिलाफ ही है, वह उसी से जुड़ा हुआ है।
स्वतंत्र का मतलब यह है कि वह न तो इसलिए जाता है मंदिर कि बाप कहते हैं, न इसलिए नहीं जाता है कि बाप कहते हैं। सोचता है, समझता है; ठीक लगता है, जाता है; ठीक नहीं लगता, नहीं जाता है। मगर न तो वह परतंत्र है, न वह स्वच्छंद है।
और मैं स्वतंत्र आदमी चाहता हूं जगत में बढ़ने चाहिए। और जगत में परतंत्रता बढ़ाई जाती है, इसलिए स्वच्छंदता बढ़ जाती है। गुरु कहता है, मेरी आज्ञा पालन करो! तो फिर आज्ञा तोड़ने वाले लड़के पैदा होते हैं। परतंत्रता की प्रतिक्रिया स्वच्छंदता बन जाती है। और जब गुरु कहता है कि जो तुम्हें ठीक लगे उसे तुम मानना, जो ठीक न लगे उसे मत मानना, तब इनडिसिप्लिन नहीं पैदा होती, क्योंकि कोई उपाय नहीं है इनडिसिप्लिन पैदा करने का। तुमने अनुशासन थोपा कि अनुशासनहीनता पैदा हुई। और तुमने स्वतंत्र किया व्यक्ति को, यानी अनुशासन उसे दिया तो फिर अनुशासनहीनता का कोई उपाय नहीं है।
तो जो लोग परतंत्रता थोपेंगे, वे स्वच्छंदता लाएंगे। और जहां स्वच्छंदता दिखाई पड़े, समझना कि परतंत्रता थोपी गई होगी। स्वतंत्रता दोनों से अलग बात है, वह विवेकपूर्ण है।
पुंगलियाजी ने कल एक बहुत बढ़िया सवाल उठाया हुआ है। मैंने पीछे कहा
कि देवताओं के पास या भूत-प्रेतों के पास अपनी वाणी नहीं होती। और कल मैंने कहा कि आर्मस्ट्रांग और उसके साथी जब लौट रहे हैं तो नीचे रिसीव करने वाले स्टेशंस पर दस मिनट तक जैसे हजारों भूत-प्रेत रो रहे हों, हंस रहे हों, चिल्ला रहे हों, ऐसी आवाजें पकड़ी गई हैं, जिनकी कि कोई व्याख्या नहीं हो सकी कि वे आवाजें कैसे आईं? तो पुंगलियाजी पूछते हैं कि जब भूत-प्रेतों की वाणी ही नहीं होती तो वे आवाजें कैसे पैदा हुई होंगी?
इसे थोड़ा समझना पड़ेगा। पिछले महायुद्ध में एक आदमी के अंगूठे में चोट लगी बम के गिरने से। उसे बेहोश हालत में करीब-करीब, अस्पताल में लाया गया। तब वह बीच-बीच में जब भी होश आता था तो यही चिल्लाता था कि मेरा अंगूठा बहुत जल रहा है, आग पड़ रही है मेरे अंगूठे में। रात उसको बेहोश करके उसका पूरा पैर काट दिया गया। क्योंकि पूरा पैर खराब हो गया था, उसको बचाने का कोई उपाय न था। और इतनी असह्य वेदना थी कि पूरे शरीर में पायज़न फैल जाने का डर था। तो उसका घुटने से लेकर नीचे का पैर काट दिया गया।
सुबह जब होश में आया तो उसने फिर चीख-पुकार मचानी शुरू की कि मेरे अंगूठे में बहुत दर्द हो रहा है। तो आस-पास के डाक्टरों ने उसे गौर से देखा, क्योंकि अंगूठा तो अब था ही नहीं। अंगूठे में दर्द कैसे हो सकता है? जब अंगूठा ही नहीं है, यानी अंगूठा तो होना जरूरी है न अंगूठे में दर्द होने के लिए! तो लोगों ने कहा कि तुम्हारा दिमाग तो खराब नहीं है? ठीक से सोच कर कहो। अभी उसको बताया नहीं है कि उसका पैर कटा हुआ है। उसने कहा कि क्या ठीक से सोच कर! मेरा अंगूठा जला जा रहा है, आग पड़ रही है। उन्होंने उसका कंबल उघाड़ा और कहा कि तुम्हारा पैर तो रात साफ कर दिया है, अंगूठा तो है नहीं।
उसने देखा, उसने कहा कि मुझे भी दिखाई पड़ रहा है अंगूठा नहीं है, लेकिन दर्द मेरे अंगूठे में हो रहा है, इसको मैं कैसे इनकार करूं? तब उसकी जांच-परख की गई। और जांच-परख से एक बहुत नया सत्य हाथ में आया, जो कभी ख्याल में नहीं था।
जांच-परख से यह सत्य ख्याल में आया, पकड़ में आया कि अंगूठे में जो दर्द होता है, सिर तक खबर पहुंचाने वाले जो स्नायु-तंतु हैं, वे हिलते हैं। अंगूठा सिर में तो है नहीं, अंगूठा तो दूर है, छह फीट दूर। दर्द अंगूठे में

होता है, सिर में पता चलता है। तो पता लाने के लिए जो तंतु हैं, वे हिलते हैं बीच में--स्नायु; उन तंतुओं के खास ढंग से हिलने से दर्द पता चलता है।
अंगूठा तो कट गया, वे तंतु उसी खास ढंग से हिले जा रहे हैं। वे तंतु जो आगे के हैं, वे उसी तरह से कंप रहे हैं, जिस तरह दर्द में कंपने चाहिए, तो दर्द का पता चल रहा है। और अंगूठे में पता चल रहा है, जो है ही नहीं। क्योंकि वे तंतु अंगूठे के दर्द की खबर लाने वाले तंतु हैं।
इससे मैं क्या समझा रहा हूं? इससे मैं यह समझा रहा हूं... इसके बाद तो फिर बहुत बड़ी काम की चीजें हाथ लगीं। फिर तो यह पता चला कि आपके कान के पीछे जो तंतु हैं, उनमें खास तरह की चोट करके आपके भीतर खास तरह की ध्वनियां पैदा की जा सकती हैं। जैसे मैंने कहा राम, तो आपके कान के भीतर का तंतु एक खास ढंग से हिला। कोई राम बाहर न कहे, सिर्फ उस तंतु को आपके कान के पीछे इस तरह से हिला दे, जैसे राम बोलते वक्त हिलता है, तो आपके भीतर राम सुनाई पड़ेगा। जैसे आपकी आंख है, उससे रोशनी भीतर जाती है, तंतु एक तरह से हिलते हैं। आपकी आंख को बंद कर दिया जाए और सिर के भीतर इलेक्ट्रोड डाल कर आंख के तंतु इस तरह हिला दिए जाएं जैसा कि वे प्रकाश के वक्त हिलते हैं, आपको भीतर प्रकाश दिखाई पड़ेगा और आप अंधेरे में बैठे हैं।
यह मैं इसलिए कह रहा हूं कि भूत-प्रेतों या देवताओं के लिए दो उपाय हैं, जिनसे वे वाणी पैदा कर सकें। एक उपाय तो यह है कि वे किसी मनुष्य के शरीर का उपयोग करें, जैसा कि आमतौर से वे करते हैं, तब वे बोल सकते हैं। क्योंकि वे आपके कंठ का और आपके बोलने के यंत्र का उपयोग कर लेते हैं। दूसरा उपाय यह है कि आपके रिसीविंग सेंटर पर, आपके रेडियो स्टेशन पर, जहां आप रिसीव कर रहे हैं, तो रिसीव आप क्या कर रहे हैं? रिसीव तो सिर्फ आप तरंगें रिसीव करते हैं। ये तरंगें पैदा की जा सकें तो आपका रिसीविंग सेंटर कहेगा कि आवाजें हो रही हैं।
इसीलिए उस दस मिनट में जो आवाजें पकड़ी गईं, उसमें कोई शब्द नहीं पकड़े गए, सिर्फ रोने, हंसने और शोरगुल की आवाजें हैं वे, कोई शब्द नहीं हैं स्पष्ट। शब्द स्पष्ट पैदा करना बहुत कठिन है। लेकिन इस तरह की तरंगें पैदा की जा सकती हैं मंडल में कि वे तरंगें रोने-चिल्लाने, शोरगुल की आवाजें पैदा कर दें।
वे तरंगें ही पैदा की गई हैं। वे तरंगें पैदा करने के लिए वाणी की जरूरत नहीं है। वे तरंगें पैदा करना अलग तरह का उपाय है। वे पैदा की जा सकती हैं।
दो ही उपाय हैं, या तो सीधी तरंगें पैदा कर दी जाएं, और दूसरा उपाय यह
है कि किसी मनुष्य के यंत्र का उपयोग किया जाए। तो आमतौर से मनुष्य के यंत्र का उपयोग किया जाता है। लेकिन तरंगें भी पैदा की जा सकती हैं। यानी वहां बोलने वाले की जरूरत नहीं है, बोलने से जो तरंगें मंडल में पैदा होती हैं, वे पैदा कर दी जाएं तो वह... ।
और जैसा मैंने कहा कि देव या प्रेत योनि में जो सबसे बड़ी अदभुत खूबी
की बात है, वह यह है कि वे जो भी मनोकामना करें, वह पैदा हो जाता है। वे अगर शोरगुल की मनोकामना करें तो शोरगुल पैदा हो जाएगा। कंठ की जरूरत नहीं है, वाणी की जरूरत नहीं है, वह सिर्फ मनोकामना पर्याप्त है।

महावीर: मेरी दृष्टि में ग्यारहवां प्रवचन

सामायिकः महावीर-साधना

महावीर की साधना-पद्धति में केंद्रीय है सामायिक। यह शब्द बना है समय
से और पहले इस शब्द को थोड़ा सा समझ लेना बड़ा उपयोगी होगा।
पदार्थ का अस्तित्व है तीन आयाम में, थ्री डायमेंशनल हैः लंबाई, चौड़ाई, ऊंचाई। किसी भी पदार्थ में तीन दिशाएं हैं यानी पदार्थ का अस्तित्व इन तीन दिशाओं में फैला हुआ है। अगर आदमी में हम पदार्थ को नापने जाएं तो लंबाई मिलेगी, चौड़ाई मिलेगी, ऊंचाई मिलेगी। और अगर प्रयोगशाला में आदमी की काट-पीट करें तो जो भी मिलेगा वह लंबाई, चौड़ाई, ऊंचाई में घटित हो जाएगा। लेकिन आदमी की आत्मा चूक जाएगी हाथ से। आदमी की आत्मा लंबाई, चौड़ाई और ऊंचाई की पकड़ में नहीं आती।
तीन आयाम हैं पदार्थ के, आत्मा का चौथा आयाम है, फोर्थ डायमेंशन है। लंबाई, चौड़ाई, ऊंचाई, ये तो तीन दिशाएं हैं, जिनमें सभी वस्तुएं आ जाती हैं। लेकिन आत्मा की एक और दिशा है जो वस्तुओं में नहीं है, जो चेतना की दिशा है, वह है टाइम, वह है समय। समय जो है, अस्तित्व का चौथा डायमेंशन, चौथा आयाम है।
तो वस्तु तो हो सकती है तीन आयाम में, लेकिन चेतना कभी भी तीन आयाम में नहीं होती, वह चौथे आयाम में होती है। जैसे अगर हम चेतना को अलग कर लें तो दुनिया में सब कुछ होगा, सिर्फ समय, टाइम नहीं होगा। समझ लें कि इस पहाड़ पर कोई चेतना नहीं है तो पत्थर होंगे, पहाड़ होगा, चांद निकलेगा, सूरज निकलेगा, दिन डूबेगा, उगेगा, लेकिन समय जैसी कोई चीज नहीं होगी। क्योंकि समय का बोध ही चेतना का हिस्सा है। चेतना के बिना समय जैसी कोई चीज नहीं है। कांशसनेस जो है, उसके बिना समय नहीं है। और अगर समय न हो तो चेतना भी नहीं हो सकती। इसलिए वस्तु का अस्तित्व तो है लंबाई, चौड़ाई, ऊंचाई में, और चेतना का अस्तित्व है काल में, समय की धारा में।
आइंस्टीन ने तो फिर बहुत अदभुत काम किया है इस तरफ और उसने ये चारों आयाम जोड़ कर अस्तित्व की परिभाषा कर दी है। स्पेस और टाइम, काल और क्षेत्र दो अलग चीजें समझी जाती रही हैं सदा से। समय अलग है, क्षेत्र अलग है। आइंस्टीन ने कहा, ये अलग चीजें नहीं हैं, ये दोनों इकट्ठी हैं और एक ही चीज के हिस्से हैं।
तो उसने एक नया शब्द बनायाः स्पेसियोटाइम। टाइम और स्पेस को, दोनों को; काल और क्षेत्र को, दोनों को जोड़ दिया। ये अलग चीजें नहीं हैं। क्योंकि किसी भी चीज के अस्तित्व में, तीन चीजें तो हमें ऊपर से दिखाई पड़ती हैं; तो उसे हम लंबाई, चौड़ाई, ऊंचाई में नाप-जोख सकते हैं, लेकिन अस्तित्व होगा ही नहीं। हम बता सकते हैं कि कौन सी चीज कहां है, किस जगह है, लेकिन अगर हम यह न बता सकें कि कब है, अगर हम समय भी न बता सकें तो उस वस्तु का हमें कोई पता नहीं चलेगा। तो आइंस्टीन ने तो अस्तित्व की अनिवार्यता मान लिया समय को, वह अनिवार्यता है अस्तित्व की।
इस बात का पहला बोध महावीर को हुआ है। पहला बोध उन्हें इस बात का हुआ
है कि समय चेतना की दिशा है। चेतना का कोई अस्तित्व अनुभव में भी नहीं आ सकता समय के बिना। समय का जो बोध है, जो भाव है, वह चेतना का अनिवार्य अंग है। तो महावीर ने तो आत्मा को समय ही कह दिया। और इस बात में और भी बातें अंतर्निहित हैं।
इस जगत में सब चीजें परिवर्तनशील हैं। सब चीजें क्षणभंगुर हैं, आज हैं, कल नहीं हो जाएंगी। सब चीजें समय की धारा में बदलती हैं, मिटती हैं, बनती हैं। आज बनती हैं, निर्मित होती हैं, कल बिखरती हैं, परसों विदा हो जाती हैं। सिर्फ इस जगत की लंबी धारा में समय भर एक ऐसी चीज है, जो नहीं बदलता, जो सदा है। इस पूरी धारा में टाइम भर एक ऐसी चीज है, जो कभी नहीं बदलता, जिसके भीतर सब बदलाहट होती है, जो न हो तो बदलाहट न हो सकेगी।

अगर समय न हो तो बच्चा बच्चा रह जाएगा, जवान नहीं हो सकता। कैसे जवान होगा? कली कली रह जाएगी, फूल नहीं हो सकती। क्योंकि परिवर्तन की सारी संभावना समय में है।
तो जगत में सब चीजें समय के भीतर हैं और परिवर्तनशील हैं, लेकिन समय अकेला समय के बाहर है और परिवर्तनशील नहीं है। तो समय अकेला शाश्वत तत्व है, जो सदा था, सदा होगा। और ऐसा कभी भी नहीं हो सकता कि जो न हो। क्योंकि किसी चीज के न होने के लिए भी समय जरूरी है। समय के बिना कोई चीज नहीं भी नहीं हो सकती। जैसे जन्म के लिए समय जरूरी है, मृत्यु के लिए भी समय जरूरी है। बनने के लिए भी समय जरूरी है, मिटने के लिए भी समय जरूरी है।
जैसे उदाहरण के लिए हम इसे ऐसा समझें। यह कमरा है, इसमें से हम सब चीजें बाहर निकाल सकते हैं या बहुत चीजें इस कमरे के भीतर भर सकते हैं, लेकिन इस कमरे के भीतर जो स्पेस है, जो जगह है, उसे हम बाहर नहीं निकाल सकते, कोई उपाय नहीं है। चाहे मकान रहे और चाहे जाए, क्षेत्र तो रहेगा। मकान क्षेत्र में ही बनता है, स्पेस में, और क्षेत्र में ही विलीन हो जाता है, लेकिन क्षेत्र रहेगा, स्पेस रहेगी। ठीक ऐसे ही समझने की जरूरत है कि समय की जो धारा है, उस धारा में सब चीजें बनेंगी, मिटेंगी, आएंगी, जाएंगी, लेकिन समय रहेगा। समय एकमात्र शाश्वत तत्व है, इटरनल एलीमेंट जिसे हम कह सकें--सदा से, और सदा वह समय है।
महावीर आत्मा को समय का नाम इसलिए भी देना चाहते हैं कि वही तत्व शाश्वत, सनातन, अनादि, अनंत, सदा से और सदा रहने वाला है। सब आएगा, जाएगा; वही भर सदा रहने वाला है। इस कारण भी वे आत्मा को समय का नाम देते हैं। और इस कारण भी समय का नाम देते हैं कि आमतौर से--हमें ख्याल में नहीं हैं ये बातें, लेकिन महावीर की दृष्टि इस संबंध में भी बहुत गहरी गई--आमतौर से हम समय के तीन विभाग करते हैंः अतीत, वर्तमान और भविष्य। लेकिन यह विभाजन बिल्कुल गलत है। अतीत सिर्फ स्मृति में है और कहीं भी नहीं, और भविष्य केवल कल्पना में है और कहीं भी नहीं, है तो सिर्फ वर्तमान। इसलिए समय के तीन विभाजन गलत हैं, अतीत, भविष्य, वर्तमान। समय का तो एक ही अर्थ हो सकता है, वर्तमान जो है, वही समय है।
लेकिन वर्तमान कितना है हमारे हाथ में? अगर कोई पूछे, कितना वर्तमान हमारे हाथ में है? तो क्षण का भी कोई लाखवां हिस्सा हमारे हाथ में नहीं है। तो जो क्षण का अंतिम हिस्सा हमारे हाथ में है, उसको महावीर समय कहते हैं। अंतिम हिस्सा।
जैसे कि पदार्थ को वैज्ञानिकों ने तोड़ कर अंतिम परमाणु पर ला दिया है
और अब परमाणु को भी तोड़ कर इलेक्ट्रांस पर ला दिया है। इलेक्ट्रान वह हिस्सा है, जो अंतिम खंड है, जिसके आगे और खंड संभव नहीं। क्योंकि वैज्ञानिक पदार्थ का विश्लेषण कर रहा है, इसलिए उसने पदार्थ के अंतिम खंड को पकड़ने की कोशिश की है। और महावीर चेतना का विश्लेषण कर रहे हैं, इसलिए चेतना का अंतिम एटम पकड़ने की कोशिश की है। उस अंतिम अणु का नाम समय है। समय वह विभाजन है वर्तमान क्षण का, जो हमारे हाथ में होता है।
लेकिन वह इतना छोटा हिस्सा है, जैसे अणु दिखाई नहीं पड़ता, परमाणु दिखाई नहीं पड़ता, ऐसे ही क्षण का वह हिस्सा भी हमारे बोध में नहीं आ पाता। जब वह हमारे बोध में आता है, तब तक वह जा चुका होता है। वह इतना बारीक हिस्सा है, इतना छोटा टुकड़ा है कि जब हम जागते हैं, तब तक वह जा चुका है। यानी हमारे होश से भरने में भी इतना समय लग जाता है कि समय जा चुका है। जैसे इस क्षण हमारे हाथ में क्या है? अतीत नहीं है, वह जा चुका। भविष्य अभी आया नहीं है। दोनों के बीच में एक बारीक बाल के हजारवें हिस्से का एक छोटा सा टुकड़ा हमारे हाथ में होगा। लेकिन वह इतना छोटा टुकड़ा है कि जब हम होश से भरेंगे उसके प्रति कि यह रहा वर्तमान, तब तक वह जा चुका है, तब तक वह अतीत हो चुका है।
तो महावीर आत्मा को समय इस अर्थ में भी कह रहे हैं कि जिस दिन आप इतने शांत हो जाएं कि वर्तमान आपकी पकड़ में आ जाए, उस दिन आप सामायिक में प्रवेश कर गए। इसका मतलब यह हुआ कि इतना शांत चित्त चाहिए, इतना शांत, इतना निर्मल कि वर्तमान का जो कण है अत्यल्प, छोटा सा कण, वह भी झलक जाए। अगर वह भी झलक

जाए तो समझना चाहिए कि हम सामायिक को उपलब्ध हुए, यानी समय के अनुभव को उपलब्ध हुए। समय हमने जाना, हमने देखा, समय को अनुभव किया।
अब तक हमने समय को अनुभव नहीं किया है। हम कहते हैं, हमारे पास घड़ी भी है, हम समय नापते भी हैं, हम बताते भी हैं कि इस समय इतना बजा है, लेकिन जब हम कहते हैं इतना बजा है, वह बज चुका। जब हम कहते हैं कि इस वक्त आठ बजा है। जितनी देर में हमने यह कहा कि आठ बजा है, उतनी देर में आठ बज चुका, घड़ी आगे जा चुकी। जरा कण भर भी सरक गई, आगे हो गई। यानी हम जब भी कुछ कह पाते हैं, अतीत का ही कह पाते हैं। जब भी पकड़ पाते हैं, अतीत को ही पकड़ पाते हैं। ठीक वर्तमान हमारे हाथ से चूक जाता है। और अतीत कल्पना, स्मृति है सिर्फ, वह है नहीं अब। है वर्तमान। एक्झिस्टेंस जो है, अस्तित्व जो है, वह अभी एक समय का है और उस एक समय का हमें कोई बोध नहीं है। क्योंकि हम इतने व्यस्त हैं, इतने उलझे और अशांत हैं कि उस छोटे से क्षण की हमारे मन पर कोई छाप नहीं बन पाती, न हमें वह दिखाई पड़ पाता है। उससे हम चूकते ही चले जाते हैं।
समय से निरंतर चूकते चले जाते हैं हम। तो हम अस्तित्व से परिचित कैसे होंगे? क्योंकि अस्तित्व है समय का। वही है, बाकी तो सब या तो हो चुका या अभी हुआ नहीं है। जो है, उससे ही प्रवेश करना होगा। और उसका हमें बोध ही नहीं हो पाता, उसे हम पकड़ ही नहीं पाते।
तो महावीर इसलिए भी सामायिक कहते हैं और आत्मा को समय कहते हैं कि तुम आत्मा को उपलब्ध तब हुए, जब तुम समय का दर्शन कर लो, उसके पहले तुम आत्मा को उपलब्ध नहीं हो। क्योंकि जब तुम अस्तित्व का ही अनुभव नहीं कर पाते तो तुम्हारे अस्तित्व का मतलब क्या है?
आत्मा तो सबके भीतर है संभावना की तरह, सत्य की तरह नहीं। जैसे एक बीज में छिपा हुआ है वृक्ष, एक संभावना की तरह, सत्य की तरह नहीं। बीज वृक्ष हो सकता है। हम भी आत्मा हो सकते हैं। जब हम यह कहते हैं कि सबके भीतर आत्मा है तो उसका मतलब सिर्फ इतना है कि हम भी आत्मा हो सकते हैं, अभी हैं नहीं। और हम उसी क्षण आत्मा हो जाएंगे, जिस दिन अस्तित्व आमने-सामने हमारे हो जाएगा। उसी क्षण, जब हम अस्तित्व को देखने, जानने, पहचानने में समर्थ हो जाएंगे, उसी क्षण हम भी अस्तित्ववान हो जाएंगे। उसके पहले हम अस्तित्ववान नहीं हैं।
इसे और इस तरह समझा जा सकता है, अतीत और भविष्य मन के हिस्से हैं और वर्तमान आत्मा का हिस्सा है। तो मन हमेशा अतीत और भविष्य में रहता है, या तो पीछे या आगे, यहां इसी वक्त अभी नहीं। नाउ, अब, ऐसी कोई चीज मन में नहीं होती, होती ही नहीं। मन संग्रह है अतीत का और भविष्य की योजनाओं का।
तो मन जीता है अतीत और भविष्य में। और अतीत और भविष्य के बीच में एक अत्यंत बारीक रेखा है, जो दोनों को तोड़ती है, वह वर्तमान है। और वह इतनी बारीक है कि उस बारीक रेखा के अनुभव के लिए हमें अत्यंत शांत होना जरूरी है। जरा सा कंपन कि हम चूक जाएंगे। यानी कंपन जरा सा भी हुआ हममें भीतर, तो उतनी देर में तो वह निकल जाएगी रेखा। हमारा कंपन उसे नहीं पकड़ पाएगा। इसलिए अकंप चेतना जिस दिन हो जाए--अकंप, कोई कंपन ही नहीं है भीतर, तो छोटा सा कंपन भी समय के क्षण का हमें दिखाई पड़ेगा। वह जो दर्शन है समय का, वह दर्शन हमें अस्तित्व में उतार देता है। यानी ऐसा समझें कि वर्तमान का क्षण ही द्वार है अस्तित्व में प्रवेश का। ब्रह्म में प्रवेश कहें, सत्य में प्रवेश कहें, मोक्ष में प्रवेश कहें, कुछ भी कहें। वर्तमान के क्षण से ही हम प्रविष्ट होते हैं। वही है द्वार। और वह चूक-चूक जाता है।
एक कहानी मैंने सुनी है। सुनी है कि एक अंधा आदमी है, और एक बड़े भारी राजभवन में भटक गया है। बड़ा है भवन, हजारों द्वार हैं उस भवन के, लेकिन एक ही द्वार खुला है, सब द्वार बंद हैं। वह अंधा आदमी द्वारों को टटोलता- टटोलता-टटोलता--बड़ा भवन है! मीलों का उसका घेरा है। द्वारों को टटोलता- टटोलता, कि शायद कोई खुला द्वार मिल जाए। बस, पहुंचा जा रहा है खुले द्वार के करीब। ऐसे हजार द्वार टटोलते-टटोलते वह थक गया है। और जब वह ठीक उस द्वार पर पहुंचा है जो खुला है, तो उसे खुजान उठ गई है। उसने माथे पर खुजाया है और वह द्वार फिर चूक गया! अब फिर हजारों द्वार हैं, फिर हजारों द्वार हैं और वह फिर टटोल रहा है, फिर टटोल रहा है, फिर टटोल रहा है। वह मीलों के चक्कर के बाद फिर उस द्वार पर आया है, लेकिन इतना थक गया है

टटोलते-टटोलते कि उसने टटोलना बंद कर दिया है, वह ऊब गया है। वह टटोलना छोड़ देता है कि कब तक टटोलता रहूं? आखिर है भी वह द्वार कि नहीं? लेकिन इतने में वह द्वार फिर निकल गया है। लेकिन क्या करेगा अंधा आदमी! निकलना है तो ऊबे या न ऊबे, फिर टटोलना शुरू करता है। ऐसा वर्षों बीतते हैं उस कथा में, और वह अंधा आदमी बार-बार उस खुले द्वार के पास से आकर चूक जाता है।
वह जो कहानी है, वर्षों, जन्मों तक हम समय के द्वार को टटोलते हुए घूम रहे हैं कि कहां से द्वार मिल जाए मोक्ष का! कहां से द्वार मिल जाए जीवन का! कहां से द्वार मिल जाए आनंद का! टटोलते आते हैं, टटोलते आते हैं। या तो हम बंद द्वार टटोलते हैं जो अतीत के हैं, जो बंद हो चुके, या हम भविष्य के द्वार टटोलते हैं, जो हैं ही नहीं। जो हैं नहीं, उनको हम टटोल नहीं सकते। जो नहीं हो गए हैं, उनको भी टटोल नहीं सकते। लेकिन एक द्वार जो खुला है वर्तमान का, वह बार-बार चूक जाता है। उस वक्त हम और कुछ करने लगते हैं और वह चूक जाता है। या तो माथा खुजाने लगते हैं या कुछ और करने लगते हैं और वह चूक जाता है। मतलब यह है कि जब भी उस द्वार पर हम आते हैं, हम आक्यूपाइड होते हैं, किसी और चीज में व्यस्त होते हैं।
वर्तमान के क्षण में हम सदा व्यस्त हैं, इसलिए वह चूक जाता है। इसलिए सामायिक का अर्थ है, अन-आक्यूपाइड होना, अव्यस्त होना। व्यस्त बिल्कुल नहीं हैं, कुछ भी नहीं कर रहे हैं, कुछ भी नहीं सोच रहे हैं, तो ही उस समय को हम पकड़ पाएंगे। क्योंकि हम कुछ कर रहे हैं तो चूक जाएंगे, उतनी देर में तो वह निकल गया। वह निकलता ही चला जा रहा है।
महावीर ने यह नाम बड़े गहरे प्रयोजन से दिया है। वे तो यही कहने लगे कि समय ही आत्मा है। और समय को जान लो, समय में खड़े हो जाओ, समय को पहचान लो और देख लो, तो तुम अपने को देख लोगे, अपने को पहचान लोगे, अपने को जान लोगे। लेकिन समय को जानना ही बहुत मुश्किल बात है। शायद सबसे ज्यादा कठिन बात समय को जानना है। सबसे ज्यादा दुर्लभ, आर्डुअस वर्तमान में खड़े होना है। क्योंकि हमारी पूरी आदत ही या तो पीछे होने की होती है या आगे होने की होती है। पूरा हैबिट फार्मेशन है हमारा।
एक आदमी को पूछो कि क्या कर रहे हो? तो या तो उसे अतीत में पाओगे या उसे भविष्य में पाओगे। या तो वह उन दृश्यों को देख रहा है जो जा चुके; या उन दृश्यों की सोच रहा है जो आएंगे। लेकिन शायद ही कभी किसी व्यक्ति को पाओगे कि वह कहे, मैं कुछ भी नहीं कर रहा हूं। कुछ भी नहीं कर रहा हूं, मैं यहीं हूं। ऐसा आदमी ही नहीं मिलेगा। ऐसा आदमी मिल जाए तो समझना वह सामायिक में था उस वक्त, वह उस वक्त ध्यान में था। उस क्षण में वह कहीं भी व्यस्त नहीं था, बस था।
इसे तो हम थोड़ा सोचें। जस्ट बीइंग। कुछ नहीं कर रहे हैं, बस हैं। कुछ
भी नहीं कर रहे हैं। मंत्र भी नहीं जप रहे हैं। श्वास भी नहीं देख रहे हैं। कुछ भी नहीं कर रहे हैं।
जैसे मैं श्वास देखने के लिए कहता हूं, वह अभी सामायिक नहीं है। वह सिर्फ इसलिए कह रहा हूं कि आपकी और व्यर्थ दूसरी व्यस्तताएं छूट जाएं। एक ही व्यस्तता रह जाए कम से कम, बहुत व्यस्तताएं न रहें, एक ही व्यस्तता रह जाए। एक ही व्यस्तता रह जाए तो कहूंगा, अब इससे भी छलांग लगा जाएं। इतनी बहुत सी व्यस्तताएं छूट गईं, एक ही व्यस्तता रह गई कि श्वास ही देख रहे हैं। अब यह ऐसी व्यस्तता है कि न इसमें कोई धन-कमाई का उपाय है, न इससे कोई लाभ है, न कोई--तो यह एक ऐसी व्यस्तता है कि इससे छलांग लगाने में कठिनाई नहीं पड़ेगी। यह एक ऐसी व्यर्थ व्यस्तता है, ऐसी यूजलेस आक्युपेशन है यह कि इस--अगर आप सबसे छूट गए तो इससे छूटने में देर नहीं लगेगी। जैसे ही मैं कहूंगा छोड़ें, तो आप तो बहुत देर से तैयार ही थे कि कब इसको छोड़ दें। बाकी से आप छूट जाएं तो इससे छलांग लगाई जा सकती है।
यह भी लेकिन आक्युपेशन है, यह अभी सामायिक नहीं है। यह सामायिक के पहले की सीढ़ी है सिर्फ छलांग लगाने की। जैसे जंपिंग बोर्ड होता है न नदी के किनारे! तख्ता लगा हुआ है, जिस पर खड़े होकर छलांग लगाई जाती है, ऐसा यह जंपिंग बोर्ड है। यहां अगर आप पहुंच गए हैं तो अब एक ही छलांग में आप सागर में पहुंच सकते हैं।

तो कुछ भी हम कर रहे हैं, तब तक हम चूकते जाएंगे वर्तमान से। जब हम कुछ
भी नहीं कर रहे हैं, जब हम कुछ भी नहीं कर रहे हैं, तब हम उतर जाएंगे। लेकिन यह हमारी समझ के एकदम बाहर हो जाता है कि कोई ऐसा मौका भी हमें मिले, जब हम कुछ भी नहीं कर रहे हैं, बस हैं।
और अगर यह समझ में आ जाए तो कोई कठिनाई नहीं है बहुत। इसमें क्या कठिनाई है कि कुछ क्षणों के लिए आप बस हो जाएं, कुछ न करें। कमरे में पड़े हैं या कोने में टिके हैं, सिर्फ हैं, कुछ भी नहीं कर रहे हैं, बस हैं। आखिर होना इतना कठिन क्या है? वृक्ष हैं, पत्थर हैं, पहाड़ हैं, चांद-तारे हैं, सब हैं। और शायद वे इसीलिए इतने सुंदर हैं कि समय में कहीं गहरे डूबे हुए हैं। हम शायद इसीलिए इतने कुरूप, इतने परेशान, चिंतित, दुखी और हैरान हैं, क्योंकि समय से भागे हुए हैं, समय के बाहर छिटक गए हैं। जैसे जीवन के मूल-स्रोत से कहीं झटका लग गया है, जड़ें उखड़ गई हैं, हम कहीं और हैं।
दो तरह की क्रियाएं हैं, एक तो हमारे शरीर की क्रियाएं हैं। शरीर की क्रियाएं तो हमारी निद्रा में भी शिथिल हो जाती हैं, बेहोशी में भी बंद हो जाती हैं। शरीर की क्रियाओं को रोकना बहुत कठिन भी नहीं है। शरीर की क्रियाओं से कोई गहरी बाधा भी नहीं है। उसके भीतर हमारी मन की क्रियाएं हैं, मेंटल प्रोसेसेस हैं, वही हैं असली बाधाएं। क्योंकि वे ही हमें समय से चुकाती हैं, शरीर नहीं चुकवाता हमें समय से। शरीर का अस्तित्व तो निरंतर वर्तमान में है।
यह ध्यान रहे कि लोग आमतौर से साधक होने की स्थिति में शरीर के दुश्मन
हो जाते हैं, जब कि शरीर बेचारे की कोई दुश्मनी ही नहीं है। शरीर तो निरंतर समय में है। शरीर तो एक क्षण को भी न अतीत में जाता, न भविष्य में जाता; शरीर तो वहीं है, जहां है। शरीर ने तो कभी भी किसी आदमी को नहीं भटकाया है आज तक, भटकाता है मन। क्योंकि मन कहीं-कहीं जाता है; जहां नहीं है वहां जाता है। रात आप सोते हैं, शरीर तो होगा श्रीनगर में, मन कहीं भी हो सकता है। आप दिन में बैठे हैं, शरीर तो है चश्मेशाही पर, मन कहीं भी हो सकता है। शरीर तो सदा वहीं है, जहां है। शरीर अन्यथा हो नहीं सकता, उसका कोई उपाय नहीं है।
लेकिन साधक आमतौर से शरीर से दुश्मनी साध लेता है, जिसने कभी कोई नुकसान पहुंचाया ही नहीं। साधक का गहरे अर्थों में जो प्रयोग है, वह होना चाहिए मन पर। किसी न किसी तरह उसे नो-माइंड की स्थिति में पहुंचना है, अ-मन की। कबीर ने कहा, अमनी। ऐसी अवस्था में पहुंच जाना है जहां मन नहीं है।
अब यह बड़े मजे की बात है कि मन होगा तो क्रिया होगी। और किसी भी तरह की क्रिया होगी तो मन बना रहेगा। इसलिए मन किसी भी तरह की क्रिया के लिए राजी है। आप कहो, दुकान करो। तो वह कहता है ठीक, दुकान करते हैं। आप कहें दुकान नहीं, पूजा करनी है। वह कहता है चलो, पूजा करते हैं। मन कहता है, कुछ भी करो तो हम राजी हैं। क्योंकि करने मात्र में मन बच जाता है। तब मंत्र जपो, तो वह कहता, चलो हम राजी हैं। कोई भी क्रिया करो तो मन कहता हम बिल्कुल राजी हैं।
लेकिन मन से कहो कि हम कुछ भी नहीं करना चाहते, थोड़ी देर को हम कुछ भी नहीं करते, तो मन बिल्कुल राजी नहीं है। तो मन पूरी कोशिश करेगा आपको कुछ न कुछ करवाने की। वह यही कहेगा, तो कम से कम इतना ही करो कि मन से लड़ो। विचारों को निकाल बाहर करो, विचार को आने मत देना। ध्यान करो। मन कहेगा चलो, तो ध्यान ही करो, लेकिन कुछ करो जरूर। क्योंकि बिना किए काम नहीं चल सकता। बिना किए कैसे काम चल सकता है?
एक सम्राट जापान का एक झेन मॉनेस्ट्री देखने गया। बड़ी मॉनेस्ट्री है, बड़ा आश्रम है, पहाड़ों पर दूर तक फैले हुए भवन हैं, बड़ा बीच में पगोडा है। सम्राट द्वार पर ही उस आश्रम के प्रधान भिक्षु को कहता है बूढ़े को, कि मैं सब, सब देखने आया हूं, कहां आप क्या करते हैं। एक-एक जगह मुझे दिखा दें, कहां क्या करते हैं।
वह बूढ़ा ले जाता है, जहां भिक्षु स्नान करते हैं। वह कहता है, यहां भिक्षु स्नान करते हैं। वह सम्राट कहता है, इन सब फिजूल की बातों को मुझे मत दिखाइए। असली चीज जहां करते हों, वह बताइए। फिर वह ले जाता है, वह कहता है, भिक्षु यहां पाखाना करते हैं।

वह सम्राट कहता है, क्या बेकार की बातों में आप मेरा समय जाया कर रहे हैं। मैं यह पूछता हूं, भिक्षु जहां जरूरी चीजें करते हों। उस भिक्षु ने कहा, जो-जो जरूरी करते हैं, वह मैं आपको बता रहा हूं। यहां अध्ययन करते हैं, यह पुस्तकालय है। यहां भोजन करते हैं, यह चौका है। यहां व्यायाम करते हैं। उस सम्राट ने कहा कि क्या तुम फिजूल की चीजों में मुझे भटका रहे हो! बीच में जो बड़ा भवन है, वहां क्या करते हैं?
जब सम्राट उससे यह पूछता कि उस बड़े भवन में क्या करते हैं, तो भिक्षु ऐसे हो जाता, जैसे बहरा है, सुनता ही नहीं! दूसरी बातें बताने लगता है। कहता है कि यहां बगीचा लगाते हैं भिक्षु। यहां भिक्षु यह करते हैं, वहां भिक्षु चक्रमण करते हैं, शाम को टहलते हैं। सम्राट फिर पूछता है, यह सब मैं समझ गया, यह सब ठीक है; वहां क्या करते हैं? उस बड़े भवन में क्या करते हैं? बस, उस बड़े भवन की बात से वह ऐसा चुप हो जाता है कि न कोई बड़ा भवन है, न कोई प्रश्न पूछा गया है।
सम्राट उकता गया, परेशान हो गया। दरवाजे पर वापस आ गया है, अपने घोड़े
पर सवार हो गया है। उसने कहा, या तो मैं पागल हूं या तुम पागल हो। यह बड़ा भवन जो दिखाई पड़ता है, है या नहीं? और इस बड़े भवन में करते क्या हो? और बोलते क्यों नहीं तुम, बहरे क्यों हो जाते हो? बाकी सब बात सुन लेते हो, यही बात तुम क्यों नहीं सुनते हो?
उस भिक्षु ने कहा, आप मुझे बड़ी मुश्किल में डाल देते हैं। असल में वह जगह ऐसी है, जहां हमें जब कुछ नहीं करना होता है, हम जाते हैं। और आप पूछते हो, क्या करते हो? अब या तो मैं बताऊं कुछ करना, तो गलती हो जाए, और या मैं चुप रह जाऊं। क्योंकि आप करने की ही भाषा समझते हो, इसलिए मैंने स्नानगृह दिखलाया, पाखाना दिखलाया, अध्ययन-कक्ष दिखलाया, जहां हम कुछ करते हैं। आप पूछते हो, वहां क्या करते हो? तो मैं एकदम चुप हो जाता हूं, क्योंकि वहां हम कुछ करते ही नहीं। वहां जिसको करना हो उसे जाने की मनाही है। वहां करने की भाषा चलती ही नहीं। वहां तो जब किसी को कुछ भी नहीं करना होता तो कोई चुपचाप चला जाता है। वह हमारा ध्यान-भवन है।
तो सम्राट ने कहा, समझ गया। तो वहां तुम ध्यान करते हो? तो उस भिक्षु
ने कहा, फिर वही भूल हुई जाती है, क्योंकि ध्यान का मतलब ही है कुछ न करना। जब तक हम कुछ कर रहे हैं, तब तक ध्यान नहीं हो सकता। लेकिन ध्यान शब्द में भी क्रिया जुड़ी हुई है। सामायिक शब्द में वह क्रिया भी नहीं है। ध्यान से लगता है, कुछ करने की बात है। सामायिक में करने को कुछ भी नहीं रह जाता। सामायिक का मतलब ही है, अपने में होना, समय में होना। करना नहीं है वहां, बिकमिंग नहीं है वहां; बीइंग की बात है, होना सिर्फ। करने को कुछ भी नहीं है वहां, सिर्फ हो जाना है अपने में। हम सब भागे-भागे हैं बाहर-बाहर। कुछ न कुछ कर रहे हैं, कुछ न कुछ हो रहे हैं। ऐसा कभी भी नहीं है, जब हम कुछ भी नहीं कर रहे हैं, कुछ भी नहीं हो रहे हैं; बस हैं।
जैसे आकाश में कभी देखा हो चील को तैरते हुए। चील तैरती है कभी, तब पंख
भी नहीं हिलाती। पंख भी ठहर जाते हैं। कुछ भी नहीं करती, बस रह जाती है। कभी चील को पर तौलते देखा हो तो गौर से देखना। न, कुछ भी नहीं करती फिर, ऐसा पर भी नहीं हिलाती। पर भी ठहर गए हैं। हवा पर रह जाती है, तुल जाती है। वैसा ही कुछ होना भीतर भी है। जब हम सिर्फ तुल जाते हैं, पंख भी नहीं हिलाते, कुछ भी नहीं करते भीतर, सब सन्नाटा और चुप हो जाता है। बस होते हैं। ऐसी जो जस्ट बीइंग की, होने की स्थिति है, अवस्था है; क्रिया नहीं, स्टेट ऑफ बीइंग; स्टेट ऑफ एक्शन नहीं, कर्म नहीं, क्रिया नहीं, कोई प्रोसेस नहीं; जहां हम बस सिर्फ होते हैं, कुछ भी नहीं करते; उस स्थिति का नाम है सामायिक।
इसलिए जब कोई पूछता है सामायिक कैसे करें? तो इससे और गलत सवाल दूसरा नहीं पूछ सकता है। इससे ज्यादा गलत सवाल दूसरा नहीं हो सकता। हमारी सारी भाषा चिंतना करने पर खड़ी है। न करने का हमें कोई ख्याल ही नहीं है! लेकिन हम अपने स्वभाव को करने में कभी भी नहीं जान सकेंगे, क्योंकि करना सदा दूसरे के साथ है। सूक्ष्मतम तलों पर जब भी हम कुछ कर रहे हैं, सदा और के साथ कर रहे हैं। और जब भी हम कर्ता बन रहे हैं, तभी हम कुछ और बन रहे हैं, जो हम नहीं हैं। तभी हम कोई अभिनय अपने ऊपर ले रहे हैं, जो हम नहीं हैं।

जैसे एक आदमी दुकानदार बन रहा है, यह एक अभिनय है, एक एक्टिंग है, जो वह अपने ऊपर ले रहा है। कोई आदमी दुकानदार है थोड़े ही। कोई आदमी दुकानदार है? कोई आदमी दुकानदार नहीं है। दुकानदार होना जीवन के इस बड़े नाटक में उसका अभिनय है। एक दूसरा आदमी नौकर बन रहा है, एक तीसरा आदमी मिनिस्टर बन रहा है, एक चौथा आदमी शिक्षक बन रहा है। कोई आदमी शिक्षक है या कोई आदमी नौकर है?
ये अभिनय हैं, जो आदमी ले रहे हैं। जो इस जिंदगी के बड़े नाटक में वे संभालेंगे। और संभालते-संभालते यह भूल जाएंगे कि ये अभिनय थे और हम कुछ और थे, जिन्होंने यह अभिनय स्वीकार किया था। और धीरे-धीरे अभिनय से तादात्म्य हो जाएगा और लगेगा यही हम हैं। तो दुकानदार को फिर बड़ा मुश्किल है दुकानदार न हो जाना--एक क्षण को भी।
मैं कलकत्ता में एक घर में मेहमान था। उस घर की गृहिणी ने मुझे कहा-- उसका पति चीफ जस्टिस है हाईकोर्ट का--उसकी पत्नी ने मुझे कहा कि मैं आपसे कहती हूं, क्योंकि वे आपको सुनते हैं, उत्सुक हैं, आपको समझने की कोशिश करते हैं। कृपा करके इतना उनसे कह दें कि कभी-कभी चीफ जस्टिस न हो जाएं तो बड़ा अच्छा रहे। ये चौबीस घंटे चीफ जस्टिस हैं! ईवेन इन बेड! उसने कहा कि बिस्तर में भी, तब भी वे चीफ जस्टिस हैं। तो उनकी वजह से हम बड़े परेशान हैं। वे घर में घुसते हैं और घर एकदम अदालत हो जाती है। बच्चे संभल कर बैठ जाते हैं, सब काम सुचारु रूप से होने लगता है, चीफ जस्टिस आ गए।
अब यह आदमी जो है न, यह जो एक्शन इसने लिया हुआ है, जो नाटक लिया हुआ है, भूल गया है कि वह नाटक है। यह रिलैक्स हो ही नहीं रहा कभी।
हम जानते हैं भलीभांति कि कपड़े का दुकानदार रात में चादर भी फाड़ देता
है सपने में, ग्राहकों को बेच देता है सामान। नींद खुलती है, तब पता चलता है कि चादर उसने फाड़ दी! वह दिन भर कपड़ा काट रहा है, फाड़ रहा है, सपने में भी वही कर रहा है! सपने में भी वही हो गया है, जो वह है! सपने में हम वही होते हैं, जो हम चौबीस घंटे दिन में हैं। हम करेंगे क्या!
हमारे एक्शन ने, हमारी क्रिया ने हमारे सारे व्यक्तित्व को चारों तरफ
से घेरा हुआ है। ऐसा कभी नहीं है जब कि हम बिल्कुल रिलैक्स्ड हैं; और वही हैं, जो हैं, और कुछ अंगीकार नहीं कर रहे हैं, कुछ ऊपर ग्रहण नहीं कर रहे हैं, कुछ भी नहीं कर रहे हैं। क्योंकि जब भी हम कुछ करेंगे, कोई अभिनय शुरू हो जाएगा।
और ध्यान रहे, जब तक हम अभिनय में हैं, तब तक हम आत्मा में नहीं हो सकते। आत्मा में अगर होना है तो सब तरह के मंचों से नीचे उतर आना पड़ेगा, सब तरह के अभिनय से नीचे उतर आना पड़ेगा। अभिनय बदल लेना बहुत आसान है। एक दुकानदार संन्यासी हो सकता है, तब वह एक नई दुकान खोल लेगा, तब वह संन्यासी होने के अभिनय में पड़ जाएगा। लेकिन समस्त अभिनयों से कभी घड़ी भर को बाहर उतर जाना, कभी घड़ी भर को--कि आप न दुकानदार रहे, न संन्यासी रहे, न गृहस्थ रहे, न पिता रहे, न मां रहे, न बेटे रहे, न पति रहे, न पत्नी रहे--आपने सब क्रिया और सब अभिनय को उतार कर एक तरफ रख दिया और कहा कि इस वक्त तो मैं वही हो जाता हूं, जो था जन्म के पहले और जो हो जाऊंगा मरने के बाद।
झेन फकीर लोगों से कहते हैं--जब कोई उनके पास आता है तो वे कहते हैं-- तुम आंख बंद करके एक काम करो, कोशिश करो खोजने की कि तुम्हारा ओरिजिनल फेस क्या है? जब तुम जन्मे नहीं थे, तुम्हारा चेहरा कैसा था? उससे कहते हैं कि तुम जाकर एक अंधेरे कमरे में बैठ जाओ, जरा इसकी खोज करो कि तुम्हारा ओरिजिनल फेस क्या है? जब तुम पैदा नहीं हुए थे, तब तुम्हारा चेहरा कैसा था? कुछ तो चेहरा रहा होगा।
तो वह आदमी जाता है, सोचता है, कोशिश करता है। क्योंकि हम सबको यह ख्याल है कि चेहरा हर हालत में रहना ही चाहिए। और हमें यह ख्याल ही नहीं है कि चेहरा सब ग्रहण किया हुआ है। एक भीतर फेसलेसनेस भी है, जहां कोई चेहरा नहीं है।
तो वह आदमी खोजता है कि ओरिजिनल फेस क्या है? मेरा मूल चेहरा क्या है? परेशान हो जाता है, थक जाता है कि मैं जब पैदा नहीं हुआ था तो कैसा था? कैसा मेरा चेहरा था? आकर बार-बार खबर देता है कि शायद ऐसा था। तो वह कहता है कि यह तो तुम इसी की नकल बता रहे हो। यह तो इसी चेहरे से मिलता-जुलता है, जो

तुम कह रहे हो। यह कहां था? मां के पेट में यह कहां था? मां के पेट के पहले यह कहां था? जरा और खोजो, और खोजो। खोज चलती है, चलती है, चलती है, किसी दिन विस्फोट होता है और उसे ख्याल आता है कि मेरा भीतर कोई चेहरा है भी! चेहरे तो सब बाहर से लिए हुए हैं, सब मुखौटे हैं।
बाजार से एक आदमी मुखौटा खरीद कर शेर बन जाता है तो हम उस पर हंसते हैं
और हम मां-बाप से खरीद कर एक चेहरा ले आए, एक मुखौटा, और बड़े प्रसन्न हैं और सोच रहे हैं यह चेहरा मेरा है! यह मुखौटा है बिल्कुल, जो जरा गहरी दुनिया के बाजार से खरीदा गया है। जो ठेठ बाजार से नहीं लाया गया, लेकिन फिर भी बाजार से लाया गया है, फिर भी बाहर से लाया गया है। भीतर कोई चेहरा ही नहीं है। भीतर कोई नाम नहीं है। भीतर कोई क्रिया नहीं है। भीतर कोई अभिनय नहीं है।
तो अगर स्वभाव को जानना हो, जो मैं हूं, उसे ही जानना हो तो मुझे सारी क्रिया, सारे चेहरे, सारे अभिनय छोड़ कर थोड़ी देर को तो बाहर खड़े हो जाना पड़ेगा। इस थोड़ी देर को बाहर खड़े हो जाने का नाम सामायिक है। और एक बार मुझे पहचान आ जाए कि मेरा कोई नाम नहीं, मेरा कोई चेहरा नहीं, मेरा कोई शरीर नहीं, मेरा कोई कर्म नहीं, मेरा कोई अभिनय नहीं; मेरा तो मात्र होना है, अस्तित्व मात्र मेरा स्वभाव है और जानना मात्र मेरी प्रकृति है, तो एक मुक्ति, एक विस्फोट होगा, जो विस्फोट व्यक्ति को जीवन के समस्त चक्कर के बाहर तत्क्षण खड़ा कर देता है। और उसे लगता है कि मैं अभिनय में था और इसलिए एक चक्कर था और एक खेल था। अभिनय में ऐसी भूल हो जाती है।
और कई बार ख्याल भी नहीं रहता, क्योंकि अभिनय हम जन्म के साथ ही पकड़ लेते हैं। हमारी सारी सभ्यता, सारी संस्कृति, सारी शिक्षा प्रत्येक व्यक्ति को उसका ठीक रोल दे देने की है, और तो क्या है। यानी एक-एक आदमी को उसका ठीक-ठीक अभिनय मिल जाए, इसकी सारी व्यवस्था है। तो हमारी पूरी व्यवस्था ऐसी है कि प्रत्येक व्यक्ति को एक चेहरा मिल जाए, वह बिना चेहरे का न रह जाए। उसको एक काम मिल जाए, एक अभिनय मिल जाए, वह व्यवस्थित हो जाए, अपना नाटक में काम करे, चेहरा निभाए और जिंदगी गुजार दे।
सारी व्यवस्था--जिस आदमी को चेहरा न मिल पाए, अभिनय न मिल पाए, हम कहते हैं, वह आदमी भटक गया, खो गया। उसके पास न कोई काम है, न कोई धाम है। वह क्या करता है, कुछ पता नहीं चलता। वह कौन है, कुछ पता नहीं चलता।
तो हम सब उन आदमियों को सफल कहते हैं, जो आदमी इस अभिनय में जितना तादात्म्य कर लेते हैं और जितने गहरे उतर जाते हैं।
एक चित्रकार था गोगां, वह चालीस वर्ष की उम्र तक ब्रोकर था, एक दलाल था। और सफल दलाल था और खूब कमाया उसने पैसा। पत्नी थी, बच्चे थे। और कभी किसी ने सोचा नहीं था कि गोगां एक रात घर से नदारद हो जाएगा। रात सोया था, पत्नी को नमस्कार करके, बच्चों को प्रेम करके और आधी रात कब चला गया घर से, पता नहीं चला। न कभी किसी दूसरी स्त्री में उत्सुक देखा गया था कि पत्नी यह विचार करे कि कहीं भाग गया किसी स्त्री के साथ। न कभी किसी क्लब में, न किसी शराब में, न किसी जुए में कोई उत्सुकता थी। बड़ा सीधा-सादा, साफ-सुथरा आदमी था। कमाता था, घर था; काम था, घर था, बस इससे ज्यादा कुछ भी न था। बच्चों से प्रेम था, पत्नी से प्रेम था। कोई झगड़ा न हुआ था, कोई घटना न घटी थी। अचानक वह आदमी रात कहां नदारद हो गया, दो साल तक पता न चला!
दो साल बाद पता चला कि वह पेरिस में एक चित्रकार के पास चित्रकला सीख रहा है। घर के लोग भागे गए, पत्नी भागी गई। कहा, तुम्हें क्या हो गया? तुम आए क्यों? तो उसने कहा कि बस ऐसा ख्याल आ गया कि कोई जिंदगी भर दलाल होने का ही अभिनय करता रहूंगा? चालीस साल गुजार दिए, उस रात एकदम ख्याल आया कि यह क्या कर रहा हूं? क्या दलाल ही बना रहूंगा जिंदगी भर? कोई दलाल होना ही मेरा कोई स्वत्व है?
उसकी पत्नी ने कहा, यह मेरी कुछ समझ में नहीं आता। इसका क्या मतलब है? उसने कहा, इसका मतलब यह है कि मैंने कहा कि यह कोई मेरा चेहरा तो नहीं है, ग्रहण किया हुआ चेहरा है, तो बदल लें चेहरे को।
तो उसने कहा, हम बच्चे और पत्नी?

तुम्हारे लिए मैं इंतजाम कर आया हूं। लेकिन अब मैं किसी का पति नहीं हूं और किसी का बाप नहीं हूं। क्योंकि यह कोई जिंदगी भर बाप ही बना रहूं और पति ही बना रहूं?
किसी की समझ में नहीं आया कि मालूम होता है आदमी पागल हो गया। दस वर्षों निरंतर मेहनत करके वह दुनिया के श्रेष्ठतम चित्रकारों में एक हो गया। लेकिन एक दिन अचानक लोगों ने पाया कि जब उसके चित्र लाखों में बिकने लगे हैं, वह छोड़ कर चला गया। किसी ने उससे पूछा कि यह तुम क्या कर रहे हो? तुम्हारी इतनी प्रतिष्ठा हो गई है अब, इतना तुमने श्रम किया है!
तो उसने कहा कि कोई भी अभिनय मेरा स्वभाव नहीं है। मैं अपने चेहरे की खोज में लगा हूं। मैं किसी नकली चेहरे को पकड़ना नहीं चाहता।
नहीं आपसे कह रहा हूं कि आप जो कर रहे हैं, वह छोड़ कर भाग जाएं। कह रहा हूं कुल जमा इतना कि जो चेहरा आपका सख्त मजबूती से आपने पकड़ लिया है, वही आप हैं, इस भ्रम में न पड़े रहें। वह आपके होने का एक ढंग है, होना नहीं है। वह आपके जीवन-पद्धति का, अभिनय का एक रूप है। जो आप कर रहे हैं, वह जरूरी है; करेंगे, करना है, लेकिन आपकी न करने की भी कोई अवस्था होनी चाहिए, जहां आप कुछ भी नहीं कर रहे हैं; जहां सारे संबंध, सारी क्रियाएं, सारे अभिनय क्षीण हो गए हैं। आप ही रह गए हैं बस अपने होने में।
ऐसा जो क्षण उपलब्ध हो जाए तो समय का बोध शुरू होता है और व्यक्ति स्वयं में थिर हो जाता है, रुक जाता है। और वह जो अनुभूति है, एक बार भी मिल जाए तो दुबारा कभी खोती नहीं। फिर आप कितना ही कुछ करते रहें, आप प्रत्येक करने में जानते हैं कि न करने की धारा भीतर बह रही है। फिर आप किसी भी अभिनय में लगे रहें, आप जानते हैं कि अभिनय है, थोड़ी देर के बाद मंच से उतर कर घर चले जाना है। यह स्मृति इतनी साफ हो जाती है, इतनी पैनी हो जाती है कि गहरे से गहरे क्षण में भी वह बोध स्पष्ट रहता है, कि उससे कोई फर्क नहीं पड़ता। फिर आप अभिनेता होने से तादात्म्य नहीं कर लेते हैं अपना। अभिनय जीवन-व्यवस्था का अंग हो जाता है, लेकिन अभिनय के बाहर आपकी सत्ता की झलक मिलनी शुरू हो जाती है।
कृष्ण के जीवन-व्यवहार को जो नाम दिया है, वह है लीला। लीला का मतलब यह है--खेल, लीला का मतलब है नाटक; लीला का मतलब है सच्चा नहीं, माना हुआ।
जो व्यक्ति सामायिक को उपलब्ध हो जाएगा, उसका जीवन लीला हो जाएगी। उसका जीवन लीला हो जाएगी, यह ध्यान रहे। उसका जीवन चरित्र नहीं रह जाएगा, चरित्र नहीं है उसका जीवन फिर।
इसलिए राम के जीवन को हम कभी लीला नहीं कहते, वह रामचरित्र है; वह गहरे में चरित्र है, वहां नीति की पकड़ गहरी है, वहां अभिनय भारी है। लेकिन कृष्ण के मामले को हम कहते हैं लीला। क्योंकि वहां चीजें तरल हैं, किसी चीज की पकड़ नहीं है, सब खेल है। और भीतर एक आदमी बाहर खड़ा है, जो खेल के बिल्कुल बाहर है।
क्या ऐसा कर सकते हैं आप कि कभी क्षण भर को खेल के बाहर उतर आएं? वे वस्त्र उतार दें जो नाटक के मंच पर पहने थे, और वे चेहरे भी निकाल कर रख दें, और वह मेक-अप भी हटा दें जो काम करता था मंच पर, और खाली घर लौट आएं जैसे आप हैं।
ऐसा, ऐसा अगर कर सकें तो इसके पहले हिस्से का नाम प्रतिक्रमण है, इस लौटने का नाम। और दूसरे हिस्से का नाम, जब आप अपने में ठहर गए हैं--जैसे यह झींगुर बोल रहा है, जैसे वृक्षों में पत्ते लग रहे हैं, जैसे आकाश से चांद की किरणें गिर रही हैं, ऐसे ही किसी क्षण में आप कुछ कर नहीं रहे हैं। जो हो रहा है, हो रहा है। श्वास चल रही है, चल रही है, आप चला नहीं रहे हैं। आंख झपक रही है, झपक रही है, आप झपका नहीं रहे हैं। पैर थक गया है, हिल गया है, हिल गया है, आपने हिलाया नहीं है। और आप बिल्कुल ऐसे हो गए हैं जैसे हैं ही नहीं। उस क्षण में आपको पता चल सकेगा कि मैं कौन हूं, मेरी आत्मा क्या है, मेरा अस्तित्व क्या है। और एक बार इसका पता चल जाए तो जीवन फिर दूसरा है। फिर जीवन वही कभी नहीं होगा, जो था। इसे हम कुछ दो-चार उदाहरणों से समझने की कोशिश करें।
एक फकीर है मारपा, वह अपने गुरु के पास गया है। वह तिब्बत में हुआ। वह अपनी गुरु की तलाश में वह अपने गुरु के पास गया है। गुरु लेटा हुआ है। वह

गुरु से कहता है, आप इस समय क्या कर रहे हैं? तो उसका गुरु कहता है, किसी समय मैंने कुछ नहीं किया। वह मारपा कहता है, कुछ तो कर ही रहे होंगे। बिना किए कैसे हो सकते हैं? उसका गुरु कहता है, करने वाला कभी हुआ है? बिना किए ही कभी कोई होता है। किया कि गए, नहीं किया कि पाया। तो मारपा कहता है, कुछ समझ में नहीं आता। तो उसका गुरु कहता है, समझने की कोशिश कर रहा है, इसलिए समझ में कैसे आएगा? समझने की कोशिश मत कर। देख, जान, पहचान; समझने की कोशिश मत कर।
एक जर्मन विचारक है हेरीगेल, जापान गया। और जापान में उन्होंने बहुत
सी तरकीबें खोजी हैं जिनके माध्यम से वह सामायिक में ले जाना सिखाते हैं, मेडीटेशन में ले जाना सिखाते हैं। उनमें कई हैं, जैसे फ्लावर अरेंजमेंट भी एक है, फूल जमाने की कला भी एक है, जिससे आदमी ध्यान को उपलब्ध हो। जिस दिन फूल जमाने की कला में कोई निष्णात हो जाता है और उसका गुरु पूछता है कि बहुत अच्छे जमाए फूल! तो वह कहता है, ऐसा मत कहें, ऐसा मत कहें; फूल जम गए। कहता है, ऐसा मत कहें; फूल जम गए। मैं केवल निमित्त बन गया, फूल जम गए। मैं सिर्फ निमित्त बन गया, फूल जम गए। मैंने कुछ किया नहीं, फूल जम गए। फूल ऐसे ही जमना चाहते थे। मेरा उन्होंने उपयोग ले लिया और फूल जम गए। मैंने फूल जमाए नहीं।
फूल जमाने से भी सिखाते हैं, तलवार चलाने से भी सिखाते हैं, तीर चलाने
से भी सिखाते हैं।
हेरीगेल जिस गुरु के पास गया वह धनुर्विद्या से ध्यान सिखाता था। तीन साल तक हेरीगेल ने धनुर्विद्या सीखी। उसके निशाने अचूक हो गए। उसके निशाने में भूल-चूक बंद हो गई, शत-प्रतिशत ठीक हो गए। लेकिन गुरु है कि रोज कहता है कि नहीं, नहीं, नहीं, अभी कुछ भी नहीं हुआ। वह हेरीगेल कहता है कि मैं परेशान हो गया तीन साल मेहनत करते-करते। मेरा एक निशाना नहीं चूकता है और आप कहते हैं कुछ नहीं हुआ!
उसके गुरु ने कहा, निशाने से लेना-देना क्या है। लेकिन अभी तीर तू चलाता है, चलता नहीं। वह गुरु कहता है, अभी तीर तू चलाता है, तेरा एफर्ट जारी है। हमें निशाने से क्या मतलब! निशाना लगे न लगे, यह गौण बात है। और निशाना क्यों न लगेगा? निशाना लगेगा क्यों नहीं? निशाना लगेगा। निशाने से कुछ लेना-देना नहीं है। लेकिन तू तीर चलाता है, तीर अभी चलता नहीं।
तीन साल परेशान हो गया। वह वैसे भी धनुर्विद्या का पहले से अभ्यासी था। जो भी देखने आता है, वह कहता है, हेरीगेल, अदभुत हो तुम। उसका निशाना बाल भी नहीं चूकता है। उसका कोई निशाना नहीं चूकता है, महीनों से उसका निशाना नहीं चूका। लेकिन उसका गुरु है कि रोज कह देता है, नहीं, अभी कुछ नहीं हुआ।
आखिर थक गया हेरीगेल और उसने कहा, अब क्षमा करें, अब मैं लौट जाऊं। लेकिन गुरु ने कहा, सर्टिफिकेट नहीं दे सकूंगा। इतना लिख सकता हूं कि तीन साल मेरे पास रहा, लेकिन असफल लौटता है। वह कहता है कि मेरे सब निशाने ठीक लगते हैं। उसने कहा, निशाने से हमें कोई मतलब ही नहीं है। तू ठीक नहीं है, निशाने से हम क्या करें! हम तुझे देख रहे हैं, निशाने से हमें क्या करना है। तू ही ठीक नहीं है। क्योंकि तू अभी तक भी ऐसा नहीं हो पाया है कि तीर चले, अभी तू तीर चलाता है।
हेरीगेल पश्चिमी आदमी है, उसकी समझ के बाहर है बिल्कुल यह बात। वह लिखता है अपनी किताब में कि मेरी समझ के ही बाहर है कि तीर चलेगा कैसे जब तक मैं न चलाऊंगा? यह तो बिल्कुल एब्सर्ड है। यह तो बिल्कुल निपट बकवास मालूम पड़ती है कि तीर अपने आप चलेगा कैसे, जब तक मैं नहीं चलाऊंगा? और मैं चलाता हूं तो वह कहता है, बाधा पड़ गई। और मैं नहीं चलाऊंगा तो तीर चलता नहीं। और वह कहता है, ऐसा चलाओ जैसा कि तुमने न चलाया हो, बस तीर चल जाए। तुम निमित्त भर रहो। तीर तुमसे चल जाए। तुम मत चलाओ, तुम मत आओ बीच में। तुम क्रिया मत बनो, तुम कर्ता मत बनो।
थक गया आखिर, तीन साल बाद उसने एक दिन कहा कि मैं कल टिकट बुक करवा आया हूं, मैं वापस लौटता हूं। गुरु ने कहा, जैसी मर्जी। हेरीगेल लौट आया है।
दूसरे दिन सांझ को उसका हवाई जहाज है, सुबह वह अंतिम विदा लेने गुरु
के पास जाता है। तो गुरु दूसरे शिष्यों को तीर चलाना सिखा रहा है। हेरीगेल

एक बेंच पर बैठ गया है। उसके गुरु ने तीर उठाया है, तीर चलाया है। हेरीगेल एकदम से खड़ा हो गया, गया है गुरु के पास, बिना बोले धनुष हाथ में लिया है, तीर चलाया है। गुरु ने कहा, ठीक! तीर चल गया। उसने हेरीगेल ने कहा, लेकिन इतने दिनों से क्यों नहीं हो सका? उसने कहा, तू इतने दिन से कोशिश में लगा था। आज तू कोशिश में नहीं था, आज तू ऐसे ही आकर बैठा था कि विदा ले लेनी है। आज तू कोशिश में नहीं था, ऐसे ही बैठा था कि विदा ले लेनी है।
हेरीगेल ने कहा कि हां, मैं आज तक देख ही नहीं सका आपको। आज मैंने पहली दफा देखा कि तीर चल रहा है और आदमी मौजूद नहीं है। फिर तो मैं उठा। फिर मैं यह भी नहीं कह सकता अब कि उठा--उठ गया। तीर हाथ में आ गया। तीर चल गया। गुरु ने कहा, अब मैं तुझे लिख कर दे सकता हूं। बस, एक ही दिन काफी है, बात खतम हो गई। तुझे समझ में आ गया फर्क।
हम कर्ता हैं, अकर्ता कभी भी नहीं। एक क्षण को भी अकर्ता हो जाएं तो बात हो गई। वह एक क्षण अकर्ता का ही सामायिक का क्षण है।
एक और घटना मुझे याद आती है। चीन में एक हुई-हाई फकीर हुआ, वह अपने गुरु के पास गया है। और वह गुरु से कहता है कि मुझे मोक्ष पाना है, सत्य पाना है। उसका गुरु कहता है, जब तक पाना है, तब तक कहीं और जा; जब पाना न हो, तब मेरे पास आना।
तो वह कहता है, जब मुझे पाना नहीं होगा तो मैं आपके पास किसलिए आऊंगा?
तो उसका गुरु कहता है, मत आना। लेकिन जब तक पाना है, तब तक मुझसे क्या लेना-देना! पाना है, तब तक तू कहीं और जा। क्योंकि पाने की भाषा ही तनाव की भाषा है। जब तक तू कहता है पाना है, तो पाना होगा भविष्य में और तू होगा अभी, और तेरा मन खिंचेगा भविष्य तक सेतु बन जाएगा, तनाव हो जाएगा।
तो वह उससे पूछता है, तो आप कुछ पाने के लिए नहीं करते? उसने कहा कि नहीं, जब तक हम पाने के लिए कुछ करते थे, नहीं पाया; जिस दिन पाना छोड़ दिया, उसी दिन पा लिया। वह कहता है, मेरे बूढ़े गुरु ने मुझसे कहा था, खोजो और खो दोगे; मत खोजो और पा लो। तब मैं भी नहीं समझा था कि मामला क्या है। मत खोजो और पा लो, खोजोगे और खो दोगे। डू नाट सीक एंड फाइंड। खोजो मत और पा लो। मेरे गुरु ने जब मुझसे यह कहा था तो मैंने कहा, ये तो बिल्कुल पागलपन की बातें हैं। खोजेंगे नहीं तो पाएंगे कैसे? तो मेरे गुरु ने मुझसे कहा था कि तुम खोजते हो, इसीलिए खो रहे हो; क्योंकि जिसे तुम खोजते हो, उसे तुम पाए ही हुए हो। एक क्षण तुम खोज तो रोको, दौड़ तो रोको; ताकि तुम देख सको कि क्या तुम्हें मिला ही हुआ है। तो उसने कहा, मैं भी तुझसे कहता हूं कि जब तक पाना हो, तू कहीं और खोज ले; और जब न पाना हो, तब आ जाना।
वह युवक बहुत-बहुत आश्रमों में भटकता फिरा। बहुत-बहुत जगह खोज की है।
थक गया, परेशान हो गया, कहीं कुछ मिलता नहीं, कहीं कुछ पाया नहीं जा सकता। थका-मांदा वापस लौटा है। उससे उसका गुरु पूछता है, क्या इरादे हैं, और खोजोगे?
वह कहता है, नहीं। मैं बहुत थक गया। कुछ खोजना नहीं है, विश्राम के लिए आया हूं।
तो उसने कहा, आओ। स्वागत है! क्योंकि कभी-कभी जो श्रम से नहीं मिलता,
वह विश्राम में मिल जाता है। कभी-कभी जो श्रम से नहीं मिलता, वह विश्राम में मिल जाता है। सच तो यह है कि श्रम से मिलता वह है, जो पराया हो। और विश्राम में वह मिलता है, जो स्वयं में है। विश्राम में ही मिल सकता है, जो स्वयं में है।
सामायिक परम विश्राम है, टोटल रिलैक्सेशन है। न अतीत में जाना, न भविष्य में जाना; न कुछ पाना, न कहीं कुछ खोजना; बस जहां हैं, वहीं रह जाना; तो संपत्ति उघड़ जाती है।
बुद्ध को जिस दिन उपलब्धि हुई, उस दिन सुबह उनसे लोगों ने पूछा कि आपको क्या मिला?
बुद्ध ने कहा, मिला कुछ भी नहीं, जो मिला ही हुआ था, वही मिल गया है। जो मिला ही हुआ था!
कैसे मिला?
तो बुद्ध ने कहा, कैसे की बात मत पूछो। जब तक कैसे की भाषा में मैं भी सोचता था, तब तक नहीं मिला; क्योंकि मैं खोजता था। जो मिला ही हुआ था, उसको

खोजता था। फिर मैंने सब खोज छोड़ दी। और जिस क्षण मैंने खोज छोड़ी, पाया कि वह तो है; जिसे मैं खोजता था, वह है ही।
असल में स्वभाव का मतलब क्या है? स्वरूप का मतलब क्या है? स्वरूप का मतलब है, जो है ही। और खोज का मतलब है वह, जो नहीं है, उसे हम खोज रहे हैं। इसलिए जब कोई आदमी आत्मा को खोजने लगता है तो वह एब्सर्ड एफर्ट में लग गया। जब कोई आदमी कहने लगता है मैं आत्मा को खोजूंगा, तब वह पागलपन में लग गया। क्योंकि आत्मा को कौन खोजेगा? कैसे खोजेगा? वह तो है ही हमारे पास, सदा ही है। जब हम खोज रहे हैं तब भी, जब नहीं खोज रहे हैं तब भी। फर्क इतना ही पड़ता है, खोजने में हम उलझ जाते हैं, चूक जाते हैं। नहीं खोजते हैं, दिख जाता है, मिल जाता है, उपलब्ध हो जाता है।
अगर यह बात ठीक से ख्याल में आ जाए कि सामायिक है अप्रयास; एफर्ट नहीं, एफर्टलेसनेस। सामायिक है--खोज नहीं, सीकिंग नहीं; नो सीकिंग--अखोज। यह ख्याल में आ जाए कि सामायिक कोई लक्ष्य नहीं है, जो भविष्य में है। सामायिक है अभी और यहीं। और अगर हम लक्ष्य को खोजते हुए भटक रहे हैं तो चूकते चले जाएंगे। चूकते ही चले जाएंगे, अनंत जन्मों तक चूकते चल जाएंगे। तो क्या आप इसी क्षण में हो सकते हैं कुछ भी बिना करे? तो आप वहीं पहुंच जाएंगे, जहां महावीर सदा से खड़े हैं। लेकिन हमारा मन वही-वही प्रश्न बार-बार उठाए जाता हैः कैसे करें? क्या करें? कहां जाएं? कहां खोजें?
जो जानते हैं, वे कहेंगे, उसे खोजो जो खोजने की इच्छा कर रहा है। जो जानते हैं, वे कहेंगे, और कहीं मत, जहां से प्रश्न उठा है, वहीं उतर जाओ। वे कहेंगे, जहां यह जो भीतर पूछ रहा है कि आत्मा को कैसे पाएं, मोक्ष को कैसे पाएं, इसी में उतर जाओ। और इसी में उतरने से मोक्ष मिल जाएगा और आत्मा मिल जाएगी। यही है आत्मा, यही है मोक्ष।
लेकिन कहीं कुछ मनुष्य के चित्त की पूरी यांत्रिकता में कुछ बुनियादी भूल है, कुछ चुकाने का उपाय है कि वह चूकता ही चला जाता है। बस एक बारीक सी बात उसके ख्याल में नहीं आ पाती कि जो मुझे पाना है, वह मुझे किसी न किसी अर्थों में मिला ही हुआ है।
यह अगर बहुत स्पष्ट रूप से ख्याल में आ जाए तो दूसरी बात ख्याल में आ जाएगी कि इसे श्रम से नहीं पाना है, इसे विश्राम में पाना है। तब यह भी समझ में आ जाएगा कि पाने की भाषा ही गलत है। जो पाया ही हुआ है, उसका ही आविष्कार कर लेना है। इसलिए आत्म-उपलब्धि नहीं होती, सिर्फ आत्म-आविष्कार होता है। डिस्कवरी है, कुछ ढंका था, उसे उघाड़ लेना है। और ढंका है हमारी खोज करने की प्रवृत्ति से, ढंका है हमारे कहीं और होने की स्थिति से। हम कहीं और न हों तो उघड़ जाएगा, अपने से उघड़ जाएगा, अभी उघड़ जाएगा।
सामायिक न तो कोई क्रिया है, न कोई अभ्यास है, न कोई प्रयत्न है, न कोई साधना है, न कोई साधन है।
एक छोटी सी घटना से समझाऊं। मुछाला महावीर में पहला कैंप हुआ। तो राजस्थान में एक वृद्ध महिला है भूरबाई, वह भी उस कैंप में आई। उसके साथ उसके दस-पच्चीस भक्त भी आए। फिर तो जब भी मैं राजस्थान गया हूं, इधर निरंतर प्रति वर्ष हर जगह भूरबाई आती रही है अपने दस-पच्चीस लोगों को लेकर। सैकड़ों लोग पूजा करते हैं उसकी, सैकड़ों लोग पैर छूते हैं, सैकड़ों लोग उसे मानते हैं। और ऐसे वह निपट साधारण ग्रामीण स्त्री है, न कुछ बोलती, न कुछ बताती। लेकिन लोग पास बैठते हैं, उठते हैं, सेवा करते हैं, चले आते हैं। ज्यादा से ज्यादा वह प्रेम करती है लोगों को, उनको खिला देती है, उनकी सेवा कर देती है और विदा कर देती है। फिर भी लेकिन सैकड़ों लोग उसको प्रेम करते हैं उसके पास जाकर।
तो वह आई। पहले दिन ही सुबह की बैठक में मैंने समझाया कि ध्यान क्या है। जैसे अभी आपसे कहा सामायिक क्या है, वह मैंने कहा कि क्या है। और यह कहा कि करना नहीं है, न-करने में डूब जाना है।
उस भूरबाई के पास एक बहुत बढ़िया व्यक्ति कोई पच्चीस वर्ष से उसकी सेवा करते हैं। कभी तो वह हाईकोर्ट के बड़े एडवोकेट थे, फिर उन्होंने सब छोड़ कर वह भूरबाई के दरवाजे पर ही बैठ गए। उसके कपड़े धोते हैं, उसके पैर दबा देते हैं और आनंदित हैं, वह भी आए थे।

सांझ को जब सब ध्यान करने आए तो उन सज्जन ने मुझे आकर कहा कि बड़ी अजीब बात है, भूरबाई को हमने बहुत कहा कि ध्यान करने चलो, वह खूब हंसती है। वह खूब हंसती है। जब हम उससे बार-बार कहते हैं कि चलो, हम आए ही इसीलिए हैं, तो वह कहती है कि तुम जाओ। और जब हम बहुत नहीं माने तो उसने कहा कि तुम जाते हो कि नहीं यहां से? तुम जाओ यहां से! तुम ध्यान करो।
तो उसने मुझे आकर कहा कि मुझे बड़ी हैरानी हुई कि हम आए किसलिए हैं? और
वह तो आती नहीं कमरे को छोड़कर। मैं इधर आया और उसने दरवाजा बंद कर लिया। तो मैंने कहा, कल जब वह सुबह आए तो उसके सामने ही मुझसे पूछना।
सुबह वह बुढ़िया आई और मेरे पैर पकड़ कर खूब हंसने लगी और कहने लगी, रात बड़ा मजा हुआ। आपने सुबह कितना समझाया कि ध्यान करना नहीं है और हमारा यह एडवोकेट कहता है कि ध्यान करने चलो। तो मैंने इससे कहा, तू जल्दी से जा यहां से, क्योंकि करने वाला रहेगा तो कुछ न कुछ करेगा, तो दूसरों को भी गड़बड़ करेगा। तू जल्दी से जा यहां से, तू ध्यान कर। और जैसे ही यह बाहर आया, मैंने दरवाजा बंद किया और मैं ध्यान में चली गई। और आपने ठीक कहा, करने से नहीं हुआ, वर्षों तक नहीं हुआ करने से। और कल रात हुआ, क्योंकि मैंने कुछ न किया, बस मैं पड़ गई, जैसे मर गई हूं। पड़ी रही, पड़ी रही--हो गया। और यह बेचारा कहता था कि ध्यान करने चलो। और यह इधर ध्यान करने आया और मैं उधर ध्यान में गई। और यह बेचारा चूक गया। इसको आप समझाओ कि यह करने की बात भूल जाए।
करने की बात हमें नहीं भूलती, किसी को भी नहीं भूलती। इसलिए मुझे भी समझने से आप निरंतर चूक जाते हैं कि मैं क्या कह रहा हूं। महावीर को समझने से भी लोग निरंतर चूके हैं कि वे क्या कह रहे हैं।
एक छोटी सी घटना और, फिर हम ध्यान के लिए बैठें।
लाओत्से एक जंगल से गुजर रहा है, उसके साथ उसके दस-पच्चीस शिष्य हैं। किसी राजा का बड़ा महल बन रहा है और जंगल में हर वृक्ष से शाखाएं काटी जा रही हैं, तने काटे जा रहे हैं, लकड़ियां काटी जा रही हैं। पूरा जंगल कट रहा है। सिर्फ एक वृक्ष है बहुत बड़ा, जिसके नीचे हजार बैलगाड़ियां ठहर सकती हैं, उसमें से किसी ने एक शाखा भी नहीं काटी है। तो लाओत्से अपने शिष्यों से कहता है कि जरा जाओ, उस वृक्ष से पूछो कि उसके पास सीक्रेट क्या है? जब सारा जंगल कट रहा है तो यह वृक्ष कैसे बच गया? इस वृक्ष के पास जरूर कोई राज है। जाओ, जरा वृक्ष से पूछ कर आओ।
शिष्य वृक्ष का चक्कर लगा कर आते हैं। लाओत्से ने कहा तो लगा आते हैं, लेकिन वृक्ष क्या कहेगा? लौट कर कहते हैं कि हम चक्कर लगा आए, मगर वृक्ष से क्या पूछें? हां, यह बात जरूर है कि वृक्ष बड़ा भारी है, किसी ने नहीं काटा! बड़ी छाया है उसकी, बड़े पत्ते हैं उसके, बड़े दूर-दूर तक पक्षी विश्राम कर रहे हैं, नीचे हजार बैलगाड़ी ठहर सकती हैं। तो लाओत्से ने कहा, तो फिर जाओ, उन लोगों से पूछो जो दूसरे वृक्षों को काट रहे हैं कि इसको क्यों नहीं काटते? राज जरूर है वृक्ष के पास कुछ।
तो वे गए हैं और एक बढ़ई से उन्होंने पूछा जो लकड़ियां काट रहा है कि तुम
इस वृक्ष को क्यों नहीं काटते? तो उस बढ़ई ने कहा, इस वृक्ष को काटना बड़ा मुश्किल है। यह वृक्ष बिल्कुल लाओत्से की भांति है। उन शिष्यों ने कहा, लाओत्से की भांति! हम लाओत्से के शिष्य हैं।
तो उन्होंने कहा और भी ठीक हुआ, बिल्कुल लाओत्से की भांति! यह बिल्कुल बेकार है, किसी काम का ही नहीं है। लकड़ी कोई सीधी नहीं है, सब लकड़ियां तिरछी हैं, किसी काम में नहीं पड़तीं। लकड़ियों को जलाओ तो धुआं देती हैं। जलाने के भी काम की नहीं हैं। यह वृक्ष बिल्कुल ही बेकार है, न सीधा है, न काम का है, न किसी मतलब का है। इसे काटे भी कौन? इसलिए यह बचा हुआ है।
वे लौटे और उन्होंने कहा कि बड़ी अजीब बात हुई। बढ़ई ने कहा है कि लाओत्से की भांति है यह वृक्ष। तो लाओत्से ने कहा, बिल्कुल ठीक किया। इसी वृक्ष की भांति हो जाओ। न कुछ करो, न कुछ पाने की कोशिश करो। क्योंकि जिन वृक्षों ने सीधे होने की कोशिश की, देख रहे हो, कैसे कट रहे हैं! जिन वृक्षों ने सुंदर होने की कोशिश की, देख रहे हो, कैसी आरी फेरी जा रही है! जिन वृक्षों ने कुछ भी बनने की कोशिश की, उनकी हालत देख रहे हो? एक भर वृक्ष है, जिसने कुछ बनने की कोशिश नहीं की। जो हो गया, हो गया। तिरछा तो तिरछा, आड़ा तो आड़ा, धुआं निकलता है तो धुआं निकलता है। देखो कैसा बच गया

है--बिल्कुल लाओत्से जैसा। मेरे ही जैसा है, लाओत्से ने कहा। और ऐसे ही हो जाओ अगर बचना हो और बड़ी छाया पानी हो और तुम्हारी शाखाओं में बड़े पक्षी विश्राम करें और तुम्हें कोई कभी काटने न आए।
उसके शिष्यों ने कहा, हम फिर भी ठीक से न समझे कि यह बात क्या है, यह तो
और एक पहेली हो गई। वृक्ष से तो हम नहीं पूछ सके, लेकिन जब आप कहते हैं कि मेरे ही भांति यह वृक्ष है तो हम आपसे ही पूछ लेते हैं कि राज क्या है? तो लाओत्से ने कहा, राज यह है कि मुझे कभी कोई हरा नहीं सका, क्योंकि मैं पहले से ही हारा हुआ था। मुझे कभी कोई उठा नहीं सका, क्योंकि मैं सदा उस जगह बैठा, जहां से कोई उठाने आता ही नहीं। मैं जूतों के पास ही बैठा सदा। मेरा कोई कभी अपमान नहीं कर सका, क्योंकि मैंने कभी मान की कामना नहीं की। लाओत्से ने कहा यह कि मैंने कुछ होना नहीं चाहा, कुछ होना ही नहीं चाहा--अ ब स कुछ भी नहीं होना चाहा, धनी नहीं होना चाहा, यशस्वी नहीं होना चाहा, विद्वान नहीं होना चाहा--मैंने कुछ होना ही नहीं चाहा, इसलिए मैं वही हो गया, जो मैं हूं। अगर मैं कुछ और होना चाहता तो मैं चूक जाता। यह वृक्ष-- ठीक कहते हैं वे लोग--मेरे ही जैसा है, इसने कुछ नहीं होना चाहा; इसलिए जो था, वही हो गया।
और परम आनंद है वही हो जाना जो हम हैं। जो हम हैं, उसी में हो जाना परम आनंद है। जो हम हैं, उसी में रम जाना मुक्ति है। जो हम हैं, उसी को उपलब्ध कर लेना सत्य है।
सामायिक को अगर ऐसा देखेंगे तो समझ में आ जाएगा। और मंदिरों में जो सामायिक की जा रही है, अगर वहां समझने गए तो फिर कभी समझ में नहीं आएगा। वे सब करने वाले लोग हैं। वे वहां भी सामायिक कर रहे हैं! वे वहां भी व्यवस्था दे रहे हैं--मंत्र है, जाप है, इंतजाम है; सब कर रहे हैं! वह सब क्रिया है और क्रिया के पीछे लोभ है। क्योंकि ऐसी कोई क्रिया ही नहीं, जिसके पीछे लोभ न हो, पाने की कामना न हो। स्वर्ग है, मोक्ष है, आत्मा है; कुछ न कुछ उन्हें पाना है, उसके लिए वे यह क्रिया कर रहे हैं।
और जिसकी अभी पाने की आकांक्षा है, वह सब पा ले, सिर्फ स्वयं को नहीं
पा सकता। क्योंकि स्वयं को पाने की आकांक्षा से नहीं पाया जा सकता। क्योंकि पाने की सब आकांक्षा स्वयं के बाहर ले जाती है। जब पाने की कोई आकांक्षा नहीं तो आदमी स्वयं में लौट आता है, अपने घर वापस। यह जो घर वापस लौट आना है और घर में ही ठहर जाना है, इसका नाम सामायिक है।
महावीर ने अदभुत व्यवस्था की है उस अक्रिया में उतर जाने की, होने मात्र में उतर जाने की। जिसकी समझ में आ जाए उसे करने का सवाल नहीं है फिर, और जिसकी समझ में न आए, वह कुछ भी करता रहे, कोई फर्क पड़ने वाला नहीं है।

प्रश्नः एक बात जरा सी, वह अड़तालीस मिनट का इसमें क्या हिसाब है?

कुछ मतलब नहीं है। कुछ मतलब नहीं है। यहां मिनट-विनट का सवाल ही नहीं है, एक समय भर ठहर जाना काफी है।

प्रश्नः पंक्तियां अड़तालीस मिनट में पढ़ी जाती हैं, इसलिए मैंने पूछा।

एक क्षण का जो हजारवां हिस्सा है, लाखवां हिस्सा, उसमें भी अगर तुम ठहर गए तो बात हो गई।

प्रश्नः ये सूत्र क्यों बांधे हैं सामायिक में? ये सूत्र महावीर के समय से ही बांधे हुए सूत्र हैं?

सूत्र अनुयायी बनाते हैं और बांधते हैं, महावीर का कोई संबंध नहीं है। असल में सदा यह कठिनाई है कि अनुयायी क्या करता है, यह बड़ा मुश्किल मामला है। वह कुछ भी--जो वह कर सकता है, करता है। और वह सब इंतजाम कर देता है पूरा का पूरा। और उसमें जो महत्वपूर्ण था, वह इंतजाम में ही मर जाता है। और अनुयायी बेचारा प्रेम से इंतजाम करता है। वह कहता है, सब व्यवस्थित कर दो। लोग पूछते हैं, क्या करना चाहिए? कितनी देर करना चाहिए? कैसे करना चाहिए?

तो कुछ तो इंतजाम करो, नहीं तो लोग कैसे समझेंगे? सामान्य आदमी कैसे समझेगा? सामान्य आदमी के लिए वह इंतजाम कर देता है। उस इंतजाम में सत्य मर जाता है। और फिर वह इंतजाम चलता है और सत्य का उससे कोई संबंध नहीं रह जाता है।
और महावीर जैसे लोगों को समझना ही मुश्किल है पहली बात तो। क्योंकि
वे जो बात कह रहे हैं, वह इतनी गहराई की है, और हम जहां खड़े हैं, वह इतने उथलेपन में हैं, बल्कि उथलेपन में भी तट पर खड़े हुए हैं। और वहां से जो हमारी समझ में आता है, वह हम इंतजाम कर लेते हैं। अनुयायी सारी व्यवस्था देता है। और कुछ व्यवस्थापक मस्तिष्क होते हैं, जो सदा व्यवस्था देते रहते हैं। वे किसी भी चीज को व्यवस्थित कर देते हैं। और जब वे व्यवस्थित कर देते हैं तो कुछ चीजें ऐसी हैं, जो व्यवस्था में ही मर जाती हैं। असल में जीवंत कोई भी चीज व्यवस्था में मर जाती है।
तो मेरा कहना है, समझ में आए तो आए, न आए तो न आए, व्यवस्था मत देना; क्योंकि व्यवस्था दी तो जिनकी समझ में भी कभी आ सकता था, उनकी में भी कभी नहीं आएगा फिर। इसलिए उसको अव्यवस्थित ही छोड़ देना; जैसा है वैसा ही छोड़ देना।

प्रश्नः किसी से कहना हो अगर सामायिक, तो क्या कहेंगे?

हां, जो मैंने यह कहा न... ।

प्रश्नः सामायिक करना तो है ही नहीं।

नहीं, बिल्कुल नहीं करना।

प्रश्नः तो क्या कहेंगे? शब्द क्या है उसके लिए?

उसका कुल मतलब इतना है कि कुछ देर के लिए, कुछ देर के लिए कुछ भी नहीं करना है; और जो हो रहा है, होने देना है। विचार आते हैं, विचार आने देना; भाव आते हैं, भाव आने देना; हाथ हिले, हिलने देना; पैर करवट बदले, बदलने देना--सब होने देना। थोड़ी देर के लिए कर्ता मत रह जाना, बस साक्षी रह जाना। जो हो रहा है, होने देना। कुछ मत करना। अपनी तरफ से कुछ भी मत करना। तो जो अवस्था उत्पन्न होगी, वह सामायिक है। यानी सामायिक के लिए कुछ भी नहीं किया जा सकता। अगर आप कुछ भी न कर रहे हों थोड़ी देर, तो जो हो जाएगा, उसका नाम सामायिक है।
तो वह जो कठिनाई होती है न, कठिनाई यह होती है कि सामायिक तो घटेगी, उसकी फ्लावरिंग होगी। और वह तब होगी, जब आप बिल्कुल ही अप्रयास में पड़े हों। जैसे कभी आपने ख्याल किया हो, किसी का नाम आपको भूल गया है और आप कोशिश कर रहे हैं याद करने की और वह नहीं याद आ रहा है, और फिर आप ऊब गए और थक गए और आपने कोशिश छोड़ दी, और आप दूसरे काम में लग गए और अचानक वह नाम आ गया है। तो अब अगर कोई कहे कि हमें किसी का नाम भूल जाए और उसे याद करना हो तो हम क्या करें? तो उससे हम क्या कहें?
उससे हम यह कहेंगे कि कम से कम नाम याद करने की कोशिश मत करना। तो वह कहेगा, हमको नाम ही तो याद करना है। और आप यह क्या कहते हैं? उससे हम कहेंगे कि नाम याद करने की कोशिश मत करना तो नाम आ जाएगा। और तुमने कोशिश की तो मुश्किल में पड़ जाओगे, क्योंकि तुम्हारी कोशिश टेंस कर देती है मस्तिष्क को। तो उसमें से जो आना भी चाहिए, वह भी नहीं आ पाता, मस्तिष्क सख्त हो जाता है।
जुजुत्सु एक कला होती है युद्ध की, लड़ाई की, कुश्ती की। तो आमतौर से जब
दो आदमियों को लड़ने के लिए हम सिखाते हैं तो हम उसको हमला सिखाते हैं कि तुम दूसरे पर हमला करना। लेकिन जुजुत्सु में वे यह सिखाते हैं कि तुम हमला मत करना, जब दूसरा हमला करे तो तुम बिल्कुल राजी हो जाना; कोआपरेट करना उससे, जब दूसरा हमला करे। जैसे वह घूंसा मारे तुम्हारी छाती पर, तो तुम कोआपरेट करना, तुम छाती में उसके घूंसे के लिए जगह बना देना। तुम बिल्कुल

राजी होकर घूंसे को पी जाना। तो उसके हाथ की हड्डी टूट जाएगी और तुम बच जाओगे।
बहुत कठिन है यह! क्योंकि जब कोई आपकी छाती में घूंसा मारे तो आपकी छाती सख्त हो जाएगी फौरन। बचाव करेगी न! और सख्ती में आपकी हड्डी टूटने वाली है।
जैसे दो आदमी चल रहे हैं एक बैलगाड़ी में बैठे, एक शराब पीए हुए है और
एक बिल्कुल शराब पीए हुए नहीं है। बैलगाड़ी उलट गई। तो जो शराब पीए हुए है, उसको चोट लगने की संभावना कम है, जो शराब नहीं पीए है, उसको चोट लगेगी। उसका कुल कारण यह है कि वह शराब जो पीए है, वह हर हालत में राजी है। वह उलट गई तो वह उसी में उलट गया, यानी उसने कोई बचाव का उपाय ही नहीं किया। लेकिन वह जो होश में है, वह बैलगाड़ी उलटी तो वह सजग हुआ। उसने कहा, मरे! बचाओ! तो अब वह सब सख्त हो गया। स्ट्रेंड हो गया। तो जो हड्डियां सख्त हो गईं उन पर जरा सी चोट लगी कि वे टूटीं। और वह इसलिए शराब पीने वाला इतना गिरता है सड़कों पर, कभी हड्डी टूटते देखी उसकी बेचारे की? आप जरा गिर कर देखो! तो कुल कारण इतना है कि वह ऐसे गिरता है जैसे बोरा गिर रहा है, उसमें कुछ है ही नहीं। गिर गए तो गिर गए, वह उसी के लिए राजी हो गए। तो उसको चोट नहीं लगती। तो जुजुत्सु कहता है कि अगर चोट न खानी हो तो ऐसे गिरना, ऐसे गिरना कि जैसे गिरे ही हुए हो, यानी तुम इसका कोई, इसका--नहीं गिरना है ऐसा ख्याल ही मत ले आना मन में।

प्रश्नः गिरना भी नहीं है!

हां, गिरना भी नहीं है इस अर्थ में, तो चोट नहीं खाओगे। और दूसरा जब हमला करे तो तुम पी जाना उसके हमले को, तुम राजी हो जाना।
ठीक सामायिक का मतलब भी यह है कि चारों तरफ से चित्त पर बहुत तरह के हमले हो रहे हैं, विचार हमला कर रहा है, क्रोध हमला कर रहा है, वासना हमला कर रही है, सबके लिए राजी हो जाना। कुछ करना ही मत, जो हो रहा है होने देना और चुपचाप पड़े रह जाना। एक क्षण को भी अगर यह हो जाए--एक क्षण को भी मुश्किल है, क्योंकि हम करने को इतने आतुर हैं कि विचार आया नहीं कि हम उस पर सवार हुए, या तो उसके साथ गए या उसके विरोध में गए। हम बिल्कुल तैयार ही हैं लड़ने को।
मैं जब समझाना चाहूं तो यही कह सकता हूं कि कुछ न करना, जो हो रहा हो उसको एक घड़ी भर देखना। तेईस घंटे तो हम कुछ करते ही हैं, एक घंटा ऐसा कर लेना कि नहीं कुछ करेंगे, बैठे रहेंगे; जो होगा, होने देंगे; देखेंगे कि यह हो रहा है। इसे सिर्फ देखना है, साक्षी रह जाना है।
साक्षी-भाव ही सामायिक में प्रवेश दिला देता है।

महावीर: मेरी दृष्टि में बारहवां प्रवचन

कर्म-सिद्धांतः महावीर-व्याख्या

पहली बात तो टंडन जी पूछते हैं, उसे थोड़ा समझ लेना उपयोगी है। सामायिक
के लिए मैंने जो कहा और वीतरागता के लिए जो कहा, वह बिल्कुल समान प्रतीत होगा। क्योंकि सामायिक मार्ग है, वीतरागता मंजिल है। सामायिक द्वार है, वीतरागता उपलब्धि है। और साधन और साध्य अंततः अलग-अलग नहीं हैं, क्योंकि साधन ही विकसित होते-होते साध्य हो जाता है।
तो वीतरागता में परम अभिव्यक्ति होगी उसकी, जिसे सामायिक में धीरे- धीरे उपलब्ध किया जाता है। सामायिक में पूरी तरह थिर हो जाना वीतरागता में प्रवेश है।
वे यह भी पूछ रहे हैं कि स्थित-धी या स्थित-प्रज्ञ कृष्ण ने जिसे कहा है, क्या वह वही है, जो वीतराग है?
निश्चित ही, वह वही है। दोनों शब्द बड़े बहुमूल्य हैं। वीतराग का मतलब है, सब द्वंद्वों के पार जो चला गया, सब दो के पार जो चला गया, एक में ही जो पहुंच गया। अब ध्यान रहे, स्थित-धी या स्थित-प्रज्ञ का अर्थ है, जिसकी प्रज्ञा ठहर गई, जिसकी प्रज्ञा कंपती नहीं। प्रज्ञा उसकी कंपती है, जो द्वंद्व में जीता है। दो के बीच में जो जीता है, वह कंपता रहता है--कभी इधर, कभी उधर। जहां द्वंद्व है, वहां कंपन है। जैसे कि एक दीया जल रहा है, तो दीए की लौ कंपती है, क्योंकि हवा कभी पूरब झुका देती है, हवा कभी पश्चिम झुका देती है। तो दीया कंपता रहता है। दीए का कंपन तभी मिटेगा, जब हवा के झोंके न हों, यानी जब इस तरफ, उस तरफ जाने का उपाय न रह जाए, दीया वहीं रह जाए, जहां है।
तो कृष्ण उदाहरण ही लिए हैं कि जैसे किसी बंद भवन में, जहां हवा का कोई झोंका न जाता हो और दीया थिर हो जाता है ऐसे ही जब प्रज्ञा, विवेक, बुद्धि थिर हो जाती है और कंपती नहीं, डोलती नहीं, तब वैसा व्यक्ति स्थित-धी है, वैसा व्यक्ति, जिसकी बुद्धि थिर हो गई, स्थित-प्रज्ञ है।
वीतराग का भी यही मतलब है, क्योंकि वीतराग का मतलब है कि राग और विराग
का द्वंद्व जहां खो गया। जहां द्वंद्व खो गया, वहां कंपने का उपाय खो गया। और जब कंपता नहीं है चित्त तो स्थिर हो जाता है, ठहर जाता है।
महावीर ने द्वंद्व के निषेध पर जोर दिया है, इसलिए वीतराग शब्द का उपयोग किया है। द्वंद्व के निषेध पर जोर है, द्वंद्व न रह जाए। कृष्ण ने द्वंद्व की बात नहीं की है, स्थिरता पर जोर दिया है। इसलिए एक ही चीज को दो तरफ से पकड़ने की कोशिश की है। कृष्ण पकड़ रहे हैं दीए की थिरता से, महावीर पकड़ रहे हैं द्वंद्व के निषेध से। लेकिन द्वंद्व का निषेध हो तो प्रज्ञा थिर हो जाती है, प्रज्ञा थिर हो जाए तो द्वंद्व का निषेध हो जाता है। ये दोनों एक ही अर्थ रखते हैं, इनमें जरा भी फर्क नहीं है।
और उन्होंने पूछा कि एक क्षण को, क्षण के हजारवें हिस्से को--जिसे समय कहें--उसमें अगर ज्ञान उपलब्ध हो गया है, दर्शन हुआ है, तो क्या जीवन-व्यवहार में वह थिर रहेगा?
असल में जीवन-व्यवहार आता कहां से है? जीवन-व्यवहार आता है हमसे। तो
जो हम हैं गहरे में, जीवन-व्यवहार वहीं से आता है। अगर झरना पायज़न से भरा है, मूल-स्रोत अगर जहर से भरा है, तो जो लहरें छलकती हैं और जो बिंदु दिखते हैं और बूंदें उचटती हैं, उनमें जहर होता है। और मूल-स्रोत अमृत से भर गया, तो फिर उन्हीं बूंदों में, उन्हीं लहरों में अमृत हो जाता है। जीवन-व्यवहार हमसे निकलता है, हम जैसे हैं, वैसा ही हो जाता है। हम मूर्च्छित हैं तो जीवन-व्यवहार मूर्च्छित होता है। जो हम करते हैं उसमें मूर्च्छा होती है। हम अज्ञान में हैं तो जीवन-व्यवहार अज्ञान से भरा होता है। और हम अगर ज्ञान में पहुंच गए तो जीवन-व्यवहार ज्ञान से भर जाता है। जैसे यह कमरा अंधेरे से भरा हो तो फिर हम उठते हैं और निकलने की कोशिश करते हैं तो कभी द्वार से टकरा जाते हैं, कभी दीवाल से टकरा जाते हैं, कभी फर्नीचर से टकरा जाते हैं। बिना टकराए निकलना मुश्किल होता है। और कई बार

तो ऐसा होता है कि टकराते ही रहते हैं और नहीं निकल पाते हैं। निकल भी जाते हैं तो भी टकराए बिना नहीं निकल पाते हैं। फिर कोई व्यक्ति हमसे कहे कि एक दीया जला लो। तो हम उससे कहें, दीया जला लेंगे, लेकिन क्या दीए के जल जाने पर फिर हम बिना टकरा कर निकल सकेंगे? क्या फिर हमें टकराना नहीं पड़ेगा? क्या फिर सदा ही हमारा टकराने का जो व्यवहार था, वह बंद हो जाएगा?
तो वह कहेगा कि तुम दीया जलाओ और देखो। क्योंकि दीया जलने पर तुम टकराओगे कैसे? टकराते थे अंधेरे के कारण, दीया जल गया तो टकराओगे कैसे? टकराना भी चाहोगे तो न टकरा सकोगे, क्योंकि चाह कर कभी कोई टकराया है? और द्वार जब दिखाई पड़ेगा तो तुम दीवाल से क्यों निकलोगे? तुम दीवाल से नहीं निकलोगे, द्वार से निकल जाओगे। दीवाल से भी निकलने की कोशिश चलती थी, क्योंकि द्वार दिखाई नहीं पड़ता था।
ज्योति जल जाए भीतर, तो यह ज्योति ऐसी भी नहीं है कि क्षण भर जले और फिर बुझ जाए। क्योंकि ऐसी ज्योतियां हैं--दीया हम जलाएं, फिर बुझ सकता है, फिर टकरा सकते हैं। दीए का तेल चुक सकता है, दीए की बाती बुझ सकती है, हवा का झोंका आ सकता है। हजार घटनाएं घट सकती हैं। जले और दीया जरूरी नहीं है कि जलता ही रहे, बुझ भी सकता है। लेकिन जिस अंतर-ज्योति की हम बात कर रहे हैं, वह ऐसी ज्योति नहीं है, जो कभी बुझती है।
अभी भी, जब हमें उसका पता नहीं है, तब भी वह जल रही है। अभी भी, जब हम उसके प्रति जागे नहीं हैं, तब भी वह जल रही है, सिर्फ हम पीठ किए हैं। बुझी तो वह कभी है ही नहीं, क्योंकि वह हमारी चेतना का आंतरिक हिस्सा है, वह हमारा स्वभाव है। पीठ फेरेंगे, लौट कर देखेंगे तो वह जली हुई पाएंगे। जलेगी नहीं वह, जली हुई थी ही, सिर्फ हमारी पीठ बदलेगी। हम पाएंगे वह जली है।
और ऐसी ज्योति जो कभी बुझी नहीं, जो कभी बुझती नहीं; न तेल है, न बाती
है जहां; जो हमारी अंतस-जीवन की अनिवार्य क्षमता है, उसको हमने एक दफा देख लिया तो बात समाप्त हो गई। एक बार हमें पता चल गया ज्योति पीछे है, फिर अब हम चाहें भी कि हम पीठ करके चलें ज्योति की तरफ तो हम न चल पाएंगे, क्योंकि ज्योति की तरफ पीठ करके कौन चल पाया है? कौन चलेगा? एक दफा जान ले। न जाने तो बात अलग है।
इसलिए एक क्षण को भी उसकी उपलब्धि हो जाती है तो वह उपलब्धि सदा के लिए चिरस्थायी हो गई। और उसके अनुपात में हमारा जीवन-व्यवहार बदलना शुरू हो जाएगा, एकदम ही बदल जाएगा। क्योंकि कल जो हम करते थे, वह हम आज कैसे कर सकेंगे? वह करते थे अंधेरे के कारण, अब है प्रकाश, और इसलिए वह करना असंभव है।

प्रश्नः (अस्पष्ट रिकार्डिंग)

कर्म के संबंध में बहुत कुछ समझना जरूरी है, क्योंकि जितनी इस बात के संबंध में नासमझी है, उतनी शायद किसी बात के संबंध में नहीं है। इतनी आमूल भ्रांतियां परंपराओं ने पकड़ ली हैं कि देख कर आश्चर्य होता है कि किसी सत्य चिंतन के आस-पास असत्य की कितनी दीवालें खड़ी हो सकती हैं!
साधारणतः कर्मवाद ऐसा कहता हुआ प्रतीत होता है कि जो हमने किया है, वह हमें भोगना पड़ेगा। हमारे कर्म और हमारे भोग में एक अनिवार्य कार्य-कारण का संबंध है। यह बिल्कुल ही सत्य है। जो हम करेंगे, हम उससे अन्यथा नहीं भोगते हैं, भोग भी नहीं सकते हैं। कर्म भोग की तैयारी है। असल में कर्म भोग का प्रारंभिक बीज है, फिर वही बीज भोग में वृक्ष बन जाता है। जो हम करते हैं, वही हम भोगते हैं।
यह बात तो ठीक है, लेकिन कर्मवाद का जो सिद्धांत प्रचलित मालूम पड़ता है, उसमें इस ठीक बात को भी इस ढंग से रखा गया है कि बिल्कुल गैर-ठीक हो गया। उस सिद्धांत में कुछ ऐसी बात न मालूम किन्हीं कारणों से प्रविष्ट हो गई है और वह यह है कि कर्म तो हम अभी करेंगे, भोगेंगे अगले जन्म में।
अब कार्य-कारण के बीच कभी अंतराल नहीं होता। कॉज और इफेक्ट के बीच कभी अंतराल नहीं होता, अंतराल हो ही नहीं सकता। अगर अंतराल बीच में आ जाएगा, गैप आ जाएगा, तो कार्य-कारण विच्छिन्न हो जाएंगे, उनका संबंध ही टूट

जाएगा। मैं अभी आग में हाथ डालूंगा तो अगले जन्म में जलूंगा, अगर कोई मुझसे कहे, तो यह समझ के बाहर बात हो जाएगी। क्योंकि हाथ मैंने अभी डाला, जलूंगा अगले जन्म में, तो अगले जन्म में और इसके बीच का जो फासला पार हो रहा है तो कारण तो अभी है और कार्य होगा अगले जन्म में।
यह अंतराल किसी भी भांति समझाया नहीं जा सकता। और कार्य-कारण में अंतराल होता ही नहीं, कॉज और इफेक्ट एक ही प्रक्रिया के दो रूप हैं, एक ही प्रोसेस के दो हिस्से हैं--जुड़े हुए, संयुक्त। इस छोर पर जो कारण है, उस छोर पर वही कार्य है। और यह पूरीशृंखला जुड़ी हुई है, इसमें कहीं क्षण भर के लिए भी अगर अंतराल हो गया तोशृंखला टूट जाएगी।
लेकिन इस तरह के सिद्धांत की, इस तरह की भ्रांति की कुछ वजह थी। और वह वजह यह थी कि जीवन में हम देखते हैं, एक आदमी भला है और दुख उठाता हुआ मालूम पड़ता है, एक आदमी बुरा है और सुख उठाता हुआ मालूम पड़ता है। इस घटना ने कर्मवाद के पूरे सिद्धांत की गलत व्याख्या को जन्म दे दिया। इस घटना को कैसे समझाया जाए? अगर प्रतिपल हमारे कार्य और हमारे कारण जुड़े हुए हैं तो फिर इसे कैसे बताया जाए? एक आदमी भला है, सच्चरित्र है, ईमानदार है और दुख भोग रहा है, कष्ट पा रहा है। और एक आदमी बुरा है, बेईमान है, बदमाश है और सुख पा रहा है, पद पा रहा है, यश पा रहा है, धन पा रहा है। तो इस घटना को कैसे समझाया जाए? अगर अच्छे कार्य तत्काल फल लाते हैं तो अच्छे आदमी को सुख भोगना चाहिए। और अगर बुरे कार्य तत्काल बुरा लाते हैं तो बुरे आदमी को दुख भोगना चाहिए। लेकिन यह तो दिखता नहीं। भला आदमी परेशान दिखता है, बुरा आदमी परेशान नहीं भी दिखता है। तो इसको कैसे समझाएं?
इसको समझाने के पागलपन में सब गड़बड़ हो गई। तब रास्ता एक ही मिला और वह
यह कि जो अच्छा आदमी दुख भोग रहा है, वह अपने पिछले बुरे कर्मों के कारण। और जो बुरा आदमी सुख भोग रहा है, वह अपने पिछले अच्छे कर्मों के कारण। हमें एक-एक जीवन का अंतराल खड़ा करना पड़ा इस स्थिति को समझाने के लिए।
लेकिन इस स्थिति को समझाने के दूसरे उपाय हो सकते थे। और सच में दूसरे उपाय ही सच हैं। यह स्थिति इस तरह समझाई नहीं गई, बल्कि कर्मवाद का पूरा सिद्धांत विकृत हो गया। और कर्मवाद की जो उपादेयता थी, वह भी नष्ट हो गई। कर्मवाद की उपादेयता यह थी कि हम प्रत्येक व्यक्ति को यह कह सकें कि तुम जो कर रहे हो, वही तुम भोग रहे हो, इसलिए तुम ऐसा करो कि तुम सुख भोग सको, आनंद भोग सको। उपादेयता यह थी, उसका जो गहरे से गहरा परिणाम होना चाहिए था व्यक्ति-चित्त पर, वह यह था कि तुम जो कर रहे हो, वही तुम भोग रहे हो। तो अगर तुम क्रोध कर रहे हो तो तुम दुख भोगोगे--भोग ही रहे हो, इसके पीछे ही वह आ रहा है छाया की तरह। अगर तुम प्रेम कर रहे हो, शांति से जी रहे हो, दूसरों को शांति दे रहे हो, तो तुम्हारी शांति तुम अर्जित कर रहे हो, जो आ रही है पीछे उसके, जो तुम्हें मिल जाएगी--मिल ही गई है।
यह तो अर्थ था उसका। लेकिन इस सिद्धांत का इस तरह का उपयोग करना जीवन
की इस घटना को समझाने के लिए--उस अर्थ को नष्ट कर दिया। क्योंकि कोई भी व्यक्ति इतना दूरगामी चित्त का नहीं होता कि वह अभी कर्म करे और अगले जन्म में मिलने वाले फल से चिंतित हो। होता ही नहीं इतना दूरगामी चित्त। अगला जन्म--अंधेरे में खो जाना है बातों का। क्या पक्का भरोसा है अगले जन्म का? पहले तो यही पक्का नहीं कि अगला जन्म होगा। दूसरा, यह पक्का नहीं कि जो कर्म अभी फल नहीं दे पा रहा, वह अगले जन्म में देगा। और अगर एक जन्म तक रोका जा सकता है फल को तो अनेक जन्मों तक क्यों नहीं रोका जा सकता?
फिर दूसरी बात यह है कि मनुष्य का जो चित्त है, वह तत्काल-जीवी है। यानी चित्त की यह क्षमता ही नहीं है कि वह इतनी दूर तक की व्यवस्था को पकड़ सके, वह जीता है तत्काल। तो वह कहता है कि ठीक है, अगले जन्म में जो होगा होगा; अभी जो हो रहा है, वह हो रहा है। और अभी मैं सुख से जी रहा हूं, अभी मैं क्यों चिंता करूं अगले जन्म की?
तो जो उपादेयता थी, वह भी नष्ट हो गई; और जो सत्य था, वह भी नष्ट हो गया। सत्य यही था कि कर्म का सिद्धांत, जैसे विज्ञान में कॉज और इफेक्ट का, कार्य-कारण का सिद्धांत है और सारा विज्ञान उस पर खड़ा हुआ है। अगर कार्य-कारण के सिद्धांत को हटा दो तो सारा विज्ञान का भवन गिर जाएगा।

ह्यूम ने इंग्लैंड में इस बात की कोशिश की कि कार्य-कारण का सिद्धांत गलत सिद्ध हो जाए। और वह बहुत कुशल और अदभुत विचारक था। उसने कहा कि तुमने कार्य-कारण देखा कब है? उसने कहा कि तुमने यह देखा कि एक आदमी ने आग में हाथ डाला और तुमने यह देखा कि आदमी का हाथ जल गया, लेकिन तुम यह कैसे कहते हो कि आग में डालने से जल गया? दो घटनाएं तुमने देखीं। आग में हाथ डाला, यह देखा; हाथ जला हुआ निकला, यह देखा; लेकिन आग में डालने से जला, इस बीच के सूत्र को तुम कैसे पहचान गए? तुम्हें यह कहां से पता चला? कुल इतना भी हो सकता है कि ये दोनों घटनाएं कार्य-कारण न हों, सिर्फ सहगामी घटनाएं हों। जैसे, ह्यूम ने कहा कि दो घड़ियां हमने बना लीं, दो घड़ी लटका दीं दीवाल पर, जिनमें भीतर कोई संबंध नहीं है, लेकिन ऐसी व्यवस्था की कि एक घड़ी में जब बारह बजेंगे, तब दूसरी घड़ी बारह के घंटे बजाएगी। तो यह व्यवस्था हो सकती है, इसमें क्या तकलीफ है? एक घड़ी में जब बारह पर कांटा जाएगा तो दूसरी घड़ी बाहर के घंटे बजा देगी। कार्य-कारण सिद्धांत मानने वाला कहेगा कि जब इसमें बारह बजते हैं, तब इसमें बारह के घंटे बजते हैं, इनके बीच कार्य-कारण का संबंध है, जब कि वे सिर्फ पैरेलल चल रही हैं, कोई संबंध वगैरह है ही नहीं।
तो ह्यूम ने कहा कि हो सकता है, प्रकृति में कुछ घटनाएं पैरेलल चल रही हैं। यानी इधर तुम आग में हाथ डालते हो, उधर हाथ जल जाता है, और दोनों के बीच कोई संबंध नहीं है। क्योंकि संबंध कभी देखा ही नहीं गया, घटनाएं देखी गईं। तुम दोनों का संबंध कैसे जोड़ते हो?
तो ह्यूम ने बड़ी चेष्टा की कार्य-कारण के सिद्धांत को गलत सिद्ध करने की। अगर ह्यूम जीत जाता तो पश्चिम में साइंस गिर जाती, साइंस खड़ी नहीं हो सकती। क्योंकि साइंस खड़ी हो रही है इस आधार पर कि चीजों के संबंध जोड़े जा सकते हैं। एक आदमी को कैंसर है, टी.बी. है, तो हम कारण-कार्य के हिसाब से तो इलाज कर पाते हैं कि उसको जो जर्म्स हैं, यह दवा देने से मर जाएंगे। यह दवा उनके लिए कारण बनेगी और मृत्यु का कार्य हो जाएगी, तो हम इलाज कर लेते हैं। फलां बम पटकने से इतनी आग पैदा होगी, इतने लोग मर जाएंगे, तो बम बन जाता है। सारा विज्ञान ही कार्य-कारण के सिद्धांत पर खड़ा है। अगर ह्यूम जीत जाए तो सारा विज्ञान गिर जाए।
धर्म भी विज्ञान है और वह भी कार्य-कारण के सिद्धांत पर खड़ा है। और अगर चार्वाक जीत जाए तो धर्म गिर जाए पूरा का पूरा। जो ह्यूम विज्ञान के खिलाफ कह रहा है, वही चार्वाकों ने धर्म के खिलाफ कहा। उन्होंने कहा कि खाओ-पीयो, मौज करो, क्योंकि कोई पक्का भरोसा नहीं है कि जो बुरा करता है, उसको बुरा ही मिलता है। क्योंकि देखो न! एक आदमी बुरा कर रहा है और भला भोग रहा है--कहां कार्य-कारण का कोई संबंध है इसमें? एक आदमी भला कर रहा है और पीड़ा झेल रहा है। कोई कार्य-कारण का संबंध नहीं है।
इसलिए चार्वाकों ने कहा, ऋणं कृत्वा घृतं पिवेत्! अगर ऋण लेकर भी घी पीने को मिले तो पीयो, क्योंकि ऋण चुकाने की जरूरत क्या है? इसकी अनिवार्यता कहां है? सवाल असली में घी मिलने का है, वह कैसे मिलता है, यह सवाल ही नहीं है। और तुमने ऋण से लिया और नहीं चुकाया, इसका फल मिलेगा; ये सब पागलपन की बातें हैं। कहां फल मिल रहे हैं! ऋण लेने वाले मजा कर रहे हैं, न लेने वाले दुख भी उठा रहे हैं। कोई कार्य-कारण का सिद्धांत नहीं है। ह्यूम ने इंग्लैंड में विज्ञान के खिलाफ जो बात कही, अगर ह्यूम जीत जाए तो विज्ञान का जन्म नहीं होता, अगर चार्वाक जीत जाए तो धर्म का जन्म नहीं होता। क्योंकि चार्वाक ने भी यही कहा कि इसमें कोई संबंध ही नहीं है। असंबद्ध क्रम है घटनाओं का। तो चोर मजा कर सकता है, अचोर दुख उठा सकता है। क्रोधी आनंद कर सकता है, अक्रोधी पीड़ा उठा सकता है। इसमें कोई संबंध ही नहीं है। सब जीवन के कर्म असंबद्ध हैं, इनमें कोई संबंध ही नहीं है। और अगर कहीं संबंध भी दिखाई पड़ता हो तो वह सिर्फ पैरेललिज्म की भूल है। वह सिर्फ इसलिए दिखाई पड़ जाता है कि चीजें समानांतर कभी-कभी घट जाती हैं, बस और कोई मतलब नहीं है। लेकिन बुद्धिमान आदमी इस चक्कर में नहीं पड़ता है, चार्वाक ने कहा, बुद्धिमान आदमी तो जानता है कि किसी कर्म का किसी फल से कोई संबंध नहीं है। इसलिए जो सुखद है, वह करता है, चाहे लोग उसे बुरा कहते हों, चाहे भला कहते हों। क्योंकि दुबारा न लौटना है, न दुबारा कोई जन्म है।

चार्वाक के विरोध में ही महावीर का कर्म का सिद्धांत है। इस विरोध में ही कि न तो वस्तु-जगत में कार्य-कारण के बिना कुछ हो रहा है और न चेतना- जगत में कार्य-कारण के बिना कुछ हो रहा है। विज्ञान में तो स्थापित हो गई बात। ह्यूम हार गया और विज्ञान का भवन खड़ा हो गया। लेकिन धर्म के जगत में अब भी ठीक से स्थापित नहीं हो सकी बात। और न होने का जो बड़े से बड़ा कारण बना, वह यह कि विज्ञान तो कहता है अभी कारण, अभी कार्य; और ये धार्मिक तथाकथित व्याख्याकार कहने लगे, अभी कारण, अगले जन्म में कार्य! बस इससे सब गड़बड़ हो गया। यानी धर्म का भवन खड़ा नहीं हो सका, इस अंतराल में सब बेईमानी हो गई। क्योंकि यह अंतराल एकदम झूठ है। कार्य और कारण में अगर कोई संबंध है तो उनके बीच में गैप नहीं हो सकता, क्योंकि गैप होगा तो फिर संबंध क्या रहा? डिस्कंटिन्यूटी हो गई, चीजें असंबद्ध हो गईं, अलग-अलग हो गईं, फिर कोई संबंध न रहा। और यह व्याख्या नैतिक लोगों ने खोज ली, क्योंकि वे समझा नहीं सके जीवन को।
तो पहली तो बात मैं आपको जीवन को समझाऊं, जिसकी वजह से यह अंतराल टूटे। मेरी अपनी समझ यह है कि प्रत्येक कर्म तत्काल फलदायी है--तत्काल, इमीजिएट। जैसे मैंने क्रोध किया तो मैं क्रोध करने के क्षण से ही क्रोध का दुख भोगना शुरू कर देता हूं। ऐसा नहीं कि अगले जन्म में क्रोध का फल भोगूंगा। क्रोध करता हूं और क्रोध का दुख भोगता हूं। यानी क्रोध का करना और दुख का भोगना युगपत चल रहा है, साथ चल रहा है। क्रोध तो विदा हो जाता है, लेकिन दुख का सिलसिला और भी देर तक चलता रहता है।
तो पहला हिस्सा कारण हो गया, दूसरा हिस्सा कार्य हो गया। ऐसा असंभव है
कि कोई आदमी क्रोध करे और दुख न झेले। ऐसा भी असंभव है कि कोई आदमी प्रेम करे और आनंद अनुभव न करे। क्योंकि प्रेम करने की क्रिया में ही, प्रेम करने के कृत्य में ही प्रेम का आनंद झरना शुरू हो जाता है। एक आदमी रास्ते पर गिरे हुए किसी आदमी को उठाए--उठाए अभी और अगले जन्म तक प्रतीक्षा करे, ऐसा नहीं--उठाने के क्षण में ही, वह जो उठाने का आनंद है, भरपूर, उसके हृदय को भर जाता है। ऐसा नहीं है कि उठाने का कृत्य अलग है और फिर आनंद कहीं और प्रतीक्षा कर रहा है, जो मिलेगा। तो कहीं कोई हिसाब-किताब रखने की जरूरत नहीं है।
इसीलिए महावीर भगवान को विदा कर सके। अगर हिसाब-किताब रखना है जन्मों-जन्मों तक तो फिर नियंता की व्यवस्था जरूरी हो जाएगी। यह ध्यान में रहे, महावीर नियंता को बिल्कुल विदा कर सके। क्योंकि उन्होंने कहा, नियम काफी है, नियंता की कोई जरूरत नहीं है। नियंता की जरूरत वहां होती है, जहां नियम का लेखा-जोखा रखना पड़ता हो। क्रोध मैं अभी करूं और किसी जन्म में मुझे फल मिलता हो तो इसका हिसाब कहां रहेगा? इसका हिसाब किस व्यवस्था में संरक्षित रहेगा? यह कहां लिखा रहेगा कि मैंने किया था क्रोध और मुझे यह-यह फल मिलना चाहिए, कितना क्रोध किया था, कितना फल मिलना चाहिए।
अगर सारे व्यक्तियों के कर्मों की कोई इस तरह की व्यवस्था हो कि अभी
हम कर्म करेंगे और फिर कभी अनंतकाल में भोगेंगे तो बड़े हिसाब-किताब, एकाउंट्स की जरूरत पड़ेगी, बड़ी खाते-बहियां होंगी। नहीं तो कैसे होगा यह? तो फिर इस सबके इंतजाम के लिए एक एकाउंटेंट जनरल की भी जरूरत ही पड़ जाएगी, जो सब हिसाब-किताब रखता हो। और परमात्मा को बहुत से लोगों ने एकाउंटेंट जनरल की तरह ही सोचा हुआ है। वह सब नियंता है, सारे नियम की देख-रेख रखता है कि नियम पूरे हो रहे हैं या नहीं।
लेकिन महावीर ने बड़ी वैज्ञानिक बात कही। उन्होंने कहा, नियम पर्याप्त है, नियंता की कोई जरूरत नहीं। क्योंकि नियम स्वयंभू काम करता है। जैसे आग में हाथ डालते हैं, हाथ जल जाता है। यह आग का स्वभाव है कि वह जलाती है, यह हाथ का स्वभाव है कि वह जलता है। अब डालने की बात है, डालने से संयोग हो जाता है। डालना कर्म बन जाता है और पीछे जो भोगना है, वह फल बन जाता है। इसमें किसी को भी व्यवस्थित होकर खड़े होने की, आग को कहने की जरूरत नहीं कि अब जला--यह आदमी हाथ डालता है। हाथ डालना और जलना यह बिल्कुल ही स्वयंभू नियम के अंतर्गत हो जाते हैं।
नियम है, नियंता नहीं है, लॉ है, लॉ गिवर नहीं है--महावीर के हिसाब में।

क्योंकि महावीर कहते हैं कि अगर नियंता हो तो नियम में गड़बड़ होने की सदा संभावना है। क्योंकि कोई प्रार्थना करे, हाथ जोड़े, खुशामद करे नियंता की, नियंता किसी पर खुश हो जाए, किसी पर नाराज हो जाए, तो कभी आग में हाथ जले और कभी न जले। कभी भक्त, जैसे प्रहलाद, आग में न जले, क्योंकि भगवान उस पर प्रसन्न हैं।
तो महावीर कहते हैं कि अगर ऐसा कोई नियंता है तो नियम सदा गड़बड़ होगा। क्योंकि वह जो नियंता का एक तत्व और एक व्यर्थ की परेशानी खड़ी करता है। अब प्रहलाद उसका भक्त है तो वह उसको नहीं जलाता आग में, पहाड़ से गिराओ तो उसके पैर नहीं टूटते! और दूसरे किसी को गिराओ तो उसके पैर टूट जाते हैं। तो फिर पारशियलिटी और पक्षपात शुरू होगा। प्रहलाद की पूरी कथा पक्षपात की कथा है। उसमें अपने आदमी की फिक्र की जा रही है, उसमें अपने व्यक्ति के लिए विशेष सुविधाएं और अपवाद दिए जा रहे हैं।
महावीर कहते हैं, अगर ऐसे अपवाद हैं, तब फिर धर्म नहीं हो सकता। धर्म
का बहुत गहरे से गहरा मतलब होता है, दि लॉ। धर्म का मतलब ही होता है नियम, और कोई मतलब ही नहीं होता। धर्म का मतलब ही होता है नियम। और नियम पर अगर एक ऊपर नियंता भी है तो फिर सब गड़बड़ हो जाएगी। कभी ऐसा हो सकता है कि टी.बी. के जर्म्स किसी दवा से मरें, और कभी ऐसा हो सकता है कि टी.बी. के जर्म्स प्रहलाद की तरह भगवान के भक्त हों और दवा कोई काम न करे। इसमें क्या कठिनाई है! फिर नियम नहीं हो सकता। अगर नियंता है तो नियम में बाधा पड़ेगी। इसलिए महावीर नियम के पक्ष में नियंता को विदा कर देते हैं। यह बड़ी महत्वपूर्ण बात है, नियम के पक्ष में नियंता को विदा कर देते हैं। वे कहते हैं, नियम काफी है, और नियम अखंड है। नियम से प्रार्थना, पूजा, पाठ से बचने का कोई उपाय नहीं है। बस नियम से बचने का एक ही उपाय है कि नियम को समझ लो कि आग में हाथ डालने से हाथ जलता है इसलिए हाथ मत डालो। इसको समझ लेना जरूरी है। अगर नियंता है तो फिर यह भी हो सकता है कि नियंता को राजी कर लो और हाथ डालो। क्योंकि नियंता उपाय कर देगा कि नहीं जलाते। अच्छा, ठहरो, आग को कह देगा, रुको अभी, इस आदमी को जलाना मत।
तो महावीर कहते हैं कि चार्वाक को अगर मान लिया जाए तो भी जीवन अव्यवस्थित हो जाता है, क्योंकि वह कहता है कि दो कर्मों के बीच में कोई अनिवार्य संबंध नहीं है। और महावीर कहते हैं कि अगर भगवान को मानने वालों को मान लिया जाए तो वे भी यह कहते हैं कि अनिवार्य संबंध के बीच में एक व्यक्ति है, जो अनिवार्य संबंधों को भी शिथिल कर सकता है। इसलिए वे कहते हैं, चार्वाक भी अव्यवस्था में ले जाता है, भगवान को मानने वाला भी अव्यवस्था में ले जाता है। ये दोनों एक ही तरह के लोग हैं। चार्वाक नियम को ही तोड़ कर अव्यवस्था पैदा कर देता है और भगवान को मानने वाला नियम के ऊपर भी किसी को स्थापित करके।
तो महावीर यह पूछते हैं कि वह भगवान नियम के अंतर्गत चलता है? अगर नियम के अंतर्गत चलता है तो उसकी जरूरत क्या है? यानी अगर भगवान आग में हाथ डालेगा तो उसका हाथ जलेगा कि नहीं? अगर जलता है उसका हाथ भी, तो वह भी वैसा ही है, जैसे हम हैं। और अगर ऐसा है कि भगवान के लिए अपवाद है कि वह आग में हाथ डाले तो नहीं जलता है, बल्कि शीतल मालूम होती है आग, तो ऐसा भगवान खतरनाक है, क्योंकि इस भगवान से जो भी दोस्ती बनाएंगे, वे आग में हाथ भी डालेंगे और शीतल होने का उपाय भी कर लेंगे।
इसलिए महावीर कहते हैं कि हम नियम को तो इनकार नहीं करते क्योंकि नियम का इनकार करना अवैज्ञानिक है, नियम तो है। और हम नियंता को स्वीकार नहीं करते, क्योंकि नियंता की स्वीकृति नियम में फिर बाधा डालती है।
तो जो विज्ञान ने अभी पश्चिम में इस तीन सौ वर्षों में उपलब्ध किया है
कि विज्ञान सीधे नियम पर निर्धारित है, सीधे नियम की खोज, कॉज एंड इफेक्ट के कानून की खोज है। और विज्ञान कहता है, किसी भगवान से हमें कुछ लेना-देना नहीं, हम तो प्रकृति का नियम खोज लेते हैं और नियम कारगर है। ठीक यही बात पच्चीस सौ साल पहले महावीर ने चेतना के जगत में कही कि नियंता को हम विदा करते हैं और चार्वाक को हम मान नहीं सकते, क्योंकि वह सिर्फ अव्यवस्था है, अराजकता है। दोनों के बीच में एक उपाय है, वह यह है कि नियम शाश्वत है, अखंड

है और अपरिवर्तनीय है। और उस अपरिवर्तनीय नियम पर ही धर्म का विज्ञान खड़ा हो सकता है।
लेकिन उस अपरिवर्तनीय नियम में पीछे के व्याख्याकारों ने जो जन्मों
का फासला किया, उसने फिर गड़बड़ पैदा कर दी। यह तीसरी गड़बड़ थी। पहली गड़बड़ थी चार्वाक की, दूसरी गड़बड़ थी भगवान के भक्त की, तीसरी गड़बड़ थी दो जन्मों के बीच में अंतराल पैदा करने वाले की। और महावीर को फिर झुठला दिया गया।
यह असंभव ही है कि एक कर्म अभी हो और फल फिर कभी। फल इसी कर्म कीशृंखला
का हिस्सा होगा, इसी कर्म के साथ मिलना शुरू हो जाएगा। हम जो भी करते हैं, हम उसे भोग लेते हैं। और अगर यह हमें पूरी सघनता में स्मरण हो जाए तो हमारे जीवन में और हमारे कर्म में अनिवार्य अंतर पड़ने वाला है। अगर यह बोध बहुत स्पष्ट हो जाए कि मैं जो भी कर रहा हूं, वही भोग रहा हूं; या जो मैं भोग रहा हूं, वह मैं जरूर कर रहा हूं।
एक आदमी दुखी है, एक आदमी अशांत है, और वह आपके पास आता है और पूछता है, शांति का रास्ता चाहिए। अशांत है तो वह सोचता है, किसी पिछले जन्मों का कर्मफल भोग रहा हूं। बड़ी गलत व्याख्या में पड़ा हुआ है। अशांत है तो उसका मतलब है कि वह जो अभी कर रहा है... ।
अच्छा, पिछले जन्म में जो किया है, आज उसे अनकिया, अनडन करने का कोई उपाय नहीं है। लेकिन जो मैं अभी कर रहा हूं, उसे अनकिया करने की अभी मेरी सामर्थ्य है। अगर मैं आग में हाथ डाल रहा हूं, मेरा हाथ जल रहा है, और अगर मेरी मान्यता यह है कि पिछले जन्म के किसी पाप का फल भोग रहा हूं तो मैं हाथ डाले चला जाऊंगा, क्योंकि पिछले जन्म के कर्म को मैं बदल कैसे सकता हूं? यह तो होगा ही। इधर आग में हाथ डालूंगा, जलूंगा और गुरुओं से पूछूंगा कि शांति का उपाय बताइए, क्योंकि हाथ बहुत जल रहा है। और वे गुरु भी यह मानते हैं कि पिछले जन्म के फल के कारण जल रहा है। तो वे भी नहीं कहते कि हाथ बाहर खींचो, क्योंकि हाथ जल रहा है तो उसका मतलब हाथ अभी डाला जा रहा है। और अभी डाला गया हाथ बाहर भी खींचा जा सकता है, लेकिन एक जन्म पहले डाला गया हाथ आज कैसे बाहर खींचा जा सकता है?
तो इस व्याख्या ने कि दो जन्मों के बीच और अनंत जन्मों में फल का भोग चलता है, मनुष्य को एकदम परतंत्र कर दिया। परतंत्रता पूरी हो गई, क्योंकि पीछा तो बंधा हुआ हो गया, अब उसमें कुछ किया नहीं जा सकता।
तो मेरा मानना है कि सब कुछ किया जा सकता है इसी वक्त, क्योंकि जो हम
कर रहे हैं, वही हम भोग रहे हैं।
एक मित्र मेरे पास आए, कोई दो या तीन वर्ष हुए। उन्होंने कहा कि बहुत अशांत हूं। अरविंद आश्रम गया, वहां भी शांति नहीं मिली; रमण आश्रम गया, वहां भी शांति नहीं मिली; शिवानंद के वहां गया, वहां भी शांति नहीं मिली। कहीं शांति नहीं, सब धोखा-धड़ी है, सब बातचीत है। कहीं कोई शांति नहीं मिलती। पांडिचेरी में किसी ने आपका नाम ले दिया तो वहां से सीधा यहां चला आ रहा हूं।
तो मैंने कहा, अब तुम सीधे एकदम मकान के बाहर हो जाओ, क्योंकि इसके पहले कि तुम जाकर कहीं कहो कि वहां भी शांति नहीं मिली... । मैंने उनसे पूछा कि तुम अशांति खोजने किससे पूछने गए थे--अरविंद से, रमण से, मुझसे? अशांति तुमने पैदा की, तुमने किस-किस से सलाह ली थी? कौन है गुरु तुम्हारा? उन्होंने कहा, नहीं, मेरा कोई गुरु नहीं, अशांति के लिए मैंने किसी से नहीं पूछा।
मैंने कहा, अशांति के लिए तुम खुद ही गुरु हो, पर्याप्त हो और शांति हमने ठेका लिया हुआ है तुम्हारे लिए? शांति तुम हमसे पूछोगे, न मिले तो हम धोखा सिद्ध होंगे! यानी मजा यह है, न मिले तो धोखा मैं सिद्ध होऊंगा। अशांति तुम पैदा करो, शांति मैं तुम्हें दूं, और न दे पाऊं तो धोखा मैं हूं! मैंने उनसे कहा कि कृपा करके इतना ही खोजो कि तुम्हें अशांति कैसे मिल रही है, बस। जिस ढंग से तुम अशांति पा रहे हो, उस ढंग को बदलो। वह ढंग अशांति देने वाला है। वह कारण है तुम्हारी अशांति का। तो उसको तो तुम देखना नहीं चाहते! तो वह आदमी कहता है कि वह तो जन्मों-जन्मों का है हिसाब अशांति का। तो मैंने कहा, जन्मों-जन्मों कोशिश करनी पड़ेगी फिर अब शांति के लिए। फिर इतनी जल्दी होने वाला भी नहीं। पर मैं तुमसे कहता हूं कि हो सकता

है, क्योंकि मैं कहता हूं जन्मों-जन्मों की बात नहीं है, तुम अभी कर रहे हो अशांति के लिए सब उपाय।
मैंने कहा, तुम दो-तीन दिन रुक जाओ कृपा करके, तुम अपनी अशांति की चर्चा करो मुझसे। क्या-क्या अशांति है, कैसे-कैसे पैदा हो रही है, क्या- क्या हो रहा है।
तीन दिन वह आदमी रुका था। तो चूंकि मैं तो शांति की कोई तरकीब बता ही नहीं रहा था, उसको अपनी अशांति की ही बात करनी पड़ी। धीरे-धीरे उसकी बात खुली। उसका एक ही लड़का है, लखपति आदमी है, बड़ा ठेकेदार है, एक ही लड़का है। जिस लड़की से वह नहीं चाहता था शादी करे, उस लड़की से उस लड़के ने शादी कर ली। तो दरवाजे पर बंदूक लेकर खड़ा हो गया जब वे दोनों आए और कहा कि सिर्फ लाश अंदर जा सकती है घर के तुम्हारे। नहीं तो वापस लौट जाओ! अब मुझसे तुम्हारा कोई संबंध नहीं।
तो मैंने उससे पूछा, उस लड़की में कोई खराबी है? कहा, नहीं, लड़की में तो कोई खराबी नहीं, लड़की तो एकदम ठीक है। तो मैंने कहा, उस लड़के और लड़की के संबंध में कोई पाप है? नहीं, वह भी पाप नहीं है। तो फिर मैंने कहा, मामला क्या है? आपकी नाराजगी क्या है? सिर्फ इतना ही न कि आपके अहंकार को तृप्ति न मिली, लड़के ने आपकी आज्ञा न मानी? और अहंकार तो अशांति लाता है।
अब उस लड़के को बाहर निकाल दिया है। बड़े आदमी का लड़का है, पढ़ा-लिखा भी नहीं था ठीक से, वह दिल्ली में कोई अस्सी-नब्बे रुपए महीने की नौकरी कर रहा है। और लाखों रुपए सब उसके ही हैं। अब यह बाप तड़प रहा है। तो अब यह अरविंद आश्रम जा रहा है, इधर जा रहा है, उधर जा रहा है। मैंने कहा कि तुम्हें कहीं जाने की जरूरत नहीं है, लड़के से जाकर क्षमा मांगो। तुम्हारा अहंकार तुम्हें दुख दे रहा है। और अहंकार दुख देता है। और तुम्हारा अहंकार से किया गया कृत्य अशांति ला रहा है। मैंने कहा, तुम अपने दिल की बात कहो, तुम्हारे मन में लड़के को वापस लाने का है?
हां, बिल्कुल है। वही मेरा लड़का है, अब मैं कितना पछता रहा हूं। हम बुड्ढे-बुड्ढी हैं दोनों, मरने के करीब हैं, सब उसका है। और जब हमें पता चलता है, वह नब्बे रुपए महीने की नौकरी कर रहा है दिल्ली में, तो हमारी बिल्कुल नींद उचट गई है। और अब यह भी लगता है, उस लड़की का भी क्या कसूर है! तो मैंने कहा, इसमें तो कोई बात नहीं, जब तुम बंदूक लेकर खड़े हो सकते
थे तो जाकर क्षमा मांग सकते हो। तुम प्रेम का नियंत्रण करोगे? तुम्हारा लड़का है माना, लेकिन प्रेम करने का हक तो उसका ही है, तुम्हारा तो नहीं है इसमें बीच में बाधा डालने का कुछ। तुमने बाधा डाली है, तुम दुख भोग रहे हो। मैंने कहा कि तुम अब पहला काम करो कि तुम सीधे चले जाओ दिल्ली और उस लड़के से क्षमा मांग लो।
उसकी बात समझ में आ गई। वह आदमी दिल्ली गया, उसने क्षमा मांगी। एक पंद्रह दिन बाद उसका पत्र आया कि मैं हैरान हूं और आपने ठीक कहा, मुझे शांति कहीं नहीं मिलती। वह लड़के और बहू घर आ गए और मैं इतना आनंदित हूं, जितना मैं कभी भी नहीं था; इतना शांत हूं, जितना मैं कभी भी नहीं था।
अब हमारी कठिनाई यह है कि हम जो कर रहे हैं, वही अशांति ला रहा है, तब
तो कुछ बदलाहट अभी की जा सकती है, इसी वक्त। और अगर कभी कुछ किया था, वह अशांति ला रहा है, तब तो बदलाहट का कोई उपाय नहीं। और यह जो पैदा करना पड़ा हमें सिद्धांत, वह जिंदगी की इस घटना को समझाने के लिए कि उलटी स्थिति दिखाई पड़ती है। उसका कारण दूसरा है।
जैसे, मेरी अपनी समझ में अगर एक बुरा आदमी सफल होता है, सुखी होता है।
तो बुरा आदमी एक बहुत बड़ी कांप्लेक्स, जटिल घटना है। हो सकता है वह झूठ बोलता है, बेईमानी करता है; लेकिन उसमें कुछ और भी गुण हैं, जो हमें दिखाई नहीं पड़ते। वह साहसी हो सकता है, हिम्मतवर हो सकता है, पहल करने वाला हो सकता है, इनीशिएटिव लेने वाला हो सकता है, बुद्धिमान हो सकता है, एक-एक कदम को जिंदगी में समझ कर उठाने वाला हो सकता है--बेईमान हो सकता है, चोर हो सकता है। ये सब बातें हो सकती हैं। बुरा आदमी इतनी बड़ी घटना है कि उसके एक पहलू को कि वह बेईमान है, देख कर अगर आपने निर्णय करना चाहा तो आप गलती में पड़ जाएंगे।

और एक अच्छा आदमी भी बड़ी घटना है। अब हो सकता है अच्छा आदमी चोरी भी नहीं करता, बेईमानी भी नहीं करता, लेकिन हो सकता है बहुत भयभीत आदमी हो, शायद इसीलिए चोरी और बेईमानी न करता हो, बिल्कुल साहस की कमी हो, साहस कर ही न पाता हो, जोखिम उठा न पाता हो, बुद्धिमान न हो, बुद्धिहीन हो। क्योंकि अच्छा होने के लिए कोई बुद्धिमान होना बहुत जरूरी नहीं है। बल्कि अक्सर ऐसा होता है कि बुद्धिमान आदमी का अच्छा होना मुश्किल हो जाता है, बुद्धिहीन आदमी अच्छा होने के लिए मजबूर होता है। कोई उपाय नहीं, क्योंकि बुद्धिहीनता बुरे होने में फौरन फंसा देती है। तो बुद्धिहीन हो। लेकिन हम इन सब बातों को नहीं तौलेंगे। हम तो कहेंगे, आदमी अच्छा है, झूठ नहीं बोलता, मंदिर जाता है, इसको सफलता मिलनी चाहिए, इसको सुख मिलना चाहिए। मेरी अपनी मान्यता है, सफलता मिलती है साहस से। अगर बुरा आदमी भी साहसी है तो सफलता ले आएगा। हां, अगर अच्छा आदमी साहसी है तो बुरे आदमी से हजार गुनी सफलता लाएगा, लेकिन सफलता मिलती है साहस से। बुरे तक को मिल जाती है सफलता।
सफलता मिलती है बुद्धिमानी से। अगर बुरा आदमी बुद्धिमान है तो सफल हो जाएगा। अगर अच्छा आदमी बुद्धिमान है तो हजार गुना सफल हो जाएगा। लेकिन सफलता अच्छे होने भर से नहीं आती, सफलता आती है बुद्धिमानी से, विचार से, विवेक से।
और तब हम क्या करते हैं कि हम ऐसा पकड़ लेते हैं एक-एक गुण कि यह आदमी देखो कितना अच्छा है, मंदिर जाता है, रोज प्रार्थना करता है, लेकिन पैसा इसके पास बिल्कुल नहीं है। अब मंदिर और प्रार्थना करने से पैसे के होने का क्या संबंध है? कोई भी संबंध नहीं है। पैसा कमाना पड़ेगा। और अगर यह नहीं कमा रहा है तो भटक जाएगा, नहीं पैसा कमा पाएगा। और अगर यह सच में अच्छा आदमी है तो पैसा नहीं कमा पाया, यह पीड़ा भी इसके मन में नहीं होगी। क्योंकि नहीं कमा पाया तो मैंने नहीं कमाया, बात खतम हो गई है। और इसके मन में यह द्वेष भी नहीं होगा कि फलां आदमी बुरा है और वह कमा रहा है।
अगर कोई अच्छा आदमी यह कहता है कि मैं सुखी नहीं हूं, क्योंकि मैं अच्छा हूं, और वह आदमी सुखी है, क्योंकि वह बुरा है, तो यह आदमी बुरे होने का सबूत दे रहा है। यह ईर्ष्या से भरा हुआ आदमी है। यह बुरे आदमी को जो-जो मिला है, सब चाहता है और अच्छा रह कर पाना चाहता है। यानी इसकी आकांक्षा ही बड़ी बेहूदी है, इसकी आकांक्षा हद की बेहूदी है।
एक तो यह बुरा भी नहीं होना--वह बेचारा बुरा भी हो, बुरे होकर उसने दस लाख रुपए कमा लिए हैं तो दस लाख रुपए कमाने में बुरे होने का सौदा चुकाया है, बुरे होने की पीड़ा झेली है, बुरे होने का दंश भी झेला है, कांटा भी झेला है। यह इन कामों को भी नहीं करना चाहता, न बुरा होना चाहता है, न बुरे होने का दंश झेलना चाहता, न स्वर्ग बिगाड़ना चाहता, न कर्मफल बिगाड़ना चाहता, यह कुछ नहीं बिगाड़ना चाहता। यह आदमी मंदिर में पूजा करना चाहता है, घर बैठना चाहता है, उसको जो दस लाख मिले वह भी चाहता है!
और जब इसको नहीं मिलते तो यह कहता है कि फिर अब यही है कि मेरे पिछले जन्मों का कोई बुरे कर्म का फल भोग रहा हूं और वह आदमी किसी पिछले जन्म के अच्छे कर्म का फल भोग रहा है। अभी तो, अभी तो जो कर रहा है, वह तो उसको फल देने वाला नहीं था, अगले जन्म में लेकिन पाएगा कष्ट, नर्क भोगेगा; ऐसे वह सांत्वना भी दे रहा है अपने को। वह जो ईर्ष्या है--तो इस आदमी को वह अगले जन्म में नर्क भेज कर सुख भी पा रहा है कि चलो कोई बात नहीं, आज हम दुख भोग रहे हैं, अगले जन्म में हम तो स्वर्ग में होंगे, तुम नर्क में होओगे।
यह सारी की सारी बात ने कर्म की पूरी वैज्ञानिक चिंतना को एकदम ही मूढ़तापूर्ण कर दिया। मेरा मानना है कि कर्म का फल तत्काल है, लेकिन कर्म बहुत जटिल बात है। साहस भी कर्म है, उसका भी फल है; साहसहीनता भी कर्म है, उसका भी फल है। बुद्धिमानी भी कर्म है, उसका फल है; बुद्धिहीनता भी कर्म है, उसका भी फल है। इनीशिएटिव लेना, पहल करना, जोखिम उठाना भी कर्म है; उसका भी फल है। जोखिम न उठाना, घर में बैठे रहना, वह भी एक कर्म है; उसका भी फल है। और इन सारे कर्मों का इकट्ठा फल होता है। तो इकट्ठे फल को हम किसी एक कारण से जोड़ेंगे तो हम मुश्किल में पड़ जाते हैं। और एक कारण से नहीं जोड़ा जा सकता। बुरे आदमी सफल हो सकते हैं, क्योंकि सफलता के कोई कारण उनके भीतर

होंगे। अच्छे आदमी असफल हो सकते हैं, क्योंकि असफलता के कोई कारण उनके भीतर होंगे। बुरे आदमी सुखी भी हो सकते हैं, क्योंकि सुख के भी कोई कारण उनके भीतर होंगे। और अच्छे आदमी दुखी भी हो सकते हैं, क्योंकि दुख के भी कोई कारण उनके भीतर होंगे।
अब जैसे ईर्ष्या दुख देती है और अच्छा आदमी अगर ईर्ष्यालु है तो दुख पाएगा। और हो सकता है बुरा आदमी ईर्ष्यालु न हो और सुख पाए। अब इसमें कैसे उससे सुख छीना जा सकता है? अच्छा आदमी, हो सकता है, स्वार्थी हो और दुख पाए और बुरा आदमी स्वार्थी न हो और सुख पाए।
मेरे एक प्रोफेसर थे, शराब पीने की आदत थी और यूनिवर्सिटी में उनसे ज्यादा बुरे आदमी का किसी को ख्याल ही नहीं था कि एकदम बुरे आदमी हैं। कितनी स्त्रियों से उनका संबंध रहा है, इसका कुछ ठिकाना नहीं था। शराब पीते थे, जुआ खेलते थे। लेकिन मेरा उनसे दोस्ताना था और मुझे कभी-कभी अपने घर ले जाते और मुझे घर सुलाते।
मैंने देखा, लेकिन बड़े मजे की बात, कभी शराब वे अकेले न पीते थे, कभी नहीं। दस-पांच मित्रों को इकट्ठा न कर लें तो शराब न पीएं। दस-पांच मित्रों को बुला न लाएं तो सांझ का खाना न खाएं, उस दिन उपवास ही हो जाए। मैंने उनसे कहा, यह क्या? वे कहते, अकेले भी क्या खाना! दस होते हैं तभी खाने का सुख आता है।
यह आदमी शराब पीता है माना, और शराब पीने के जो दुख हैं, वह भोगेगा, भोगता है। लेकिन यह आदमी बड़े अदभुत अर्थ में निःस्वार्थी है। उन पर कभी पैसा न बचता, दस-पंद्रह तारीख तक उनका पैसा खतम। क्योंकि अकेले खाना नहीं खाना है, अकेले शराब नहीं पीनी है, अकेले कुछ करना ही नहीं है। वे कहते कि मैं सोच ही नहीं सकता कि कोई आदमी अकेले बैठ कर कैसे खाना खाता है? यह बात ही सोचने की नहीं। क्योंकि अगर हम खाने में भी साझीदार नहीं बना सकते तो जिंदगी बेकार है।
मैं उनके घर जितने दिन रुकता, मैंने देखा, उन्होंने कभी शराब न पी। तो मैंने उनसे कहा कि मैं आपके घर न रुकूंगा, क्योंकि मेरे कारण आप शराब पीने से रुकते हैं।
उन्होंने कहा कि नहीं-नहीं, तुम्हारे होने से इतना मुझे आनंद मिलता
है कि शराब पीने का ख्याल ही नहीं आता। वह तो पीता ही तब हूं, जब कोई आनंद नहीं जिंदगी में। तुम जब मेरे पास होते हो तो इतना आनंदित मैं होता हूं कि शराब पीने का सवाल ही नहीं है।
अब यह जो आदमी है, यह आदमी कई अर्थों में सुखी था। यह आदमी कई अर्थों में सुखी था। इसका सुख देख कर कई को ईर्ष्या हो जाएगी। लेकिन इसके सुख के अपने कारण थे। यह कई अर्थों में दुखी था, लेकिन दुख तो हम किसी का देखने नहीं जाते!
यह भी ध्यान रखना, जरूरी बात है। दुख तो हमें किसी का दिखता नहीं, सुख दिखता है। क्योंकि दुख तो आदमी के भीतर होता है, सुख बाहर फैल जाता है। असल में सुख की किरणें सदा बाहर बिखर जाती हैं, सुख फैलता है बाहर और दुख आदमी भीतर सिकोड़ लेता है।
तो दुख तो हमें किसी का दिखता नहीं, दुख सिर्फ अपना दिखता है और सुख सदा दूसरे का दिखता है। दुख सदा अपना दिखता है और सुख सदा दूसरे का दिखता है। ऐसे ही शुभ कर्म तो हमें अपना दिखता है और अशुभ कर्म दूसरे का दिखता है। क्योंकि हमारा अहंकार कभी मान नहीं पाता कि हम भी अशुभ कर्म कर रहे हैं।
तो हमारे अहंकार को भी सुविधा मिलती है कि अशुभ कर्म अगर किए भी होंगे
तो किसी और जन्म में किए होंगे। अभी तो मैं कभी नहीं कर रहा हूं, अभी तो मैं एकदम शुभ कर्म कर रहा हूं और दुख भोग रहा हूं।
अब यह समझ लेने जैसी है। साइकिक मामला इतना है सिर्फ, मनोवैज्ञानिक,
कि अपने कर्म को प्रत्येक व्यक्ति शुभ मानता है, क्योंकि अहंकार को इससे तृप्ति मिलती है, और अपने दुखों की गिनती करता है, सुखों की कभी गिनती नहीं करता। क्योंकि जो सुख हमें मिल जाता है, उसकी गिनती ही भूल जाती है, जो सुख नहीं मिल पाता, वह हमारी गिनती में होता है। जो मकान हमारे पास है, हमें कभी नहीं लगता कि इससे हमें कोई बड़ा सुख मिल रहा है।

हां, सड़क पर एक भिखमंगा निकलता है, वह कहता है, देखो, कितना आदमी सुखी है! और उस मकान के भीतर जो रह रहा है, उसको कभी पता ही नहीं चलता कि मैं भी सुखी हूं। वह सड़क का भिखमंगा कहता है कि कितना सुखी है यह आदमी। और यह आदमी इस मकान वाला भी बड़े महल के बाहर से निकलता है तो कहता है, कितना सुखी है यह आदमी। कैसा मकान, कैसा महल! उस महल में रहने वाले को कोई पता नहीं अपने सुख का।
सुख के हम आदी हो जाते हैं और दुख के हम कभी आदी नहीं हो पाते। तो दुख दिखता ही रहता है और सुख दिखना बंद हो जाता है। अपना दुख दिखता है, अपने शुभ कर्म दिखते हैं कि मैंने यह-यह किया, यह-यह अच्छा किया। क्योंकि अहंकार अपने गलत कर्म को छिपा देता है, मिटा देता है और अपने अच्छे कर्मों की लंबी कतार बढ़ा कर खड़ा कर लेता है।
और तब एक मुश्किल खड़ी हो जाती है, दूसरे के अशुभ कर्म दिखाई पड़ते हैं, क्योंकि दूसरे को शुभ मानना भी हमारे अहंकार को दुख देता है कि हमसे भी कोई अच्छा हो सकता है! साधारण आदमी को छोड़ दें, बड़े से बड़े साधु से कहें कि आपसे भी बड़ा साधु एक गांव में आ गया, वह और भी पवित्र आदमी है। आग लग जाएगी। क्योंकि यह कैसे हो सकता है कि मुझसे ज्यादा पवित्र आदमी कोई है!
तो दूसरे की अपवित्रता हम खोजते रहते हैं निरंतर, इसीलिए निंदा में इतना रस है। निंदा में और कोई कारण नहीं है। निंदा का इतना रस है। शायद उससे गहरा कोई रस ही नहीं है। न संगीत में आदमी को इतना आनंद आता है, न सौंदर्य में, जितना निंदा में आता है। सौंदर्य छोड़ सकता है, संगीत छोड़ सकता है, सब छोड़ सकता है; अगर गहरी निंदा का मौका मिल जाए तो उस रस को वह नहीं चूकेगा! अगर हम लोगों की बातचीत पता लगाने जाएं तो सौ में से नब्बे प्रतिशत बातचीत किसी की निंदा से संबंधित होगी!
निंदा में रस है, क्योंकि दूसरे को छोटा दिखाने में अपना बड़ा होने का ख्याल है। इसलिए हर आदमी दूसरे को छोटा दिखाने की कोशिश में लगा हुआ है। इसीलिए अगर कोई हमसे आकर कहे कि फलां आदमी बहुत अच्छा है, तो हम एकदम से नहीं मान लेते। हम कहेंगे भई, आपकी बात सुनी, जांच-पड़ताल करेंगे, खोज-बीन करेंगे। क्योंकि ऐसा हो नहीं सकता कि आदमी इतना अच्छा हो। अब कहां इतने अच्छे आदमी होते हैं! ये सब बातें हैं। सब दिखते हैं ऊपर से अच्छे, भीतर से तो कोई अच्छा होता नहीं।
लेकिन एक आदमी हमसे आकर कहता है कि फलां आदमी बिल्कुल चोर है, हम कभी नहीं कहते कि हम खोज-बीन करेंगे। हम कहते हैं, बिल्कुल होगा ही। यह तो होता ही है। सब चोर हैं ही।
जब कोई किसी की बुराई करता है तो हम बिना खोज-बीन के मान लेते हैं, तर्क भी नहीं करते, विवाद भी नहीं करते! लेकिन जब कोई किसी की अच्छाई की बात कहता है तो हम बड़े सचेत हो जाते हैं, हजार तर्क करते हैं, और फिर भी भीतर संदेह को रखते हैं। और जांच रखते हैं जारी कि कहीं कोई मौका मिल जाए और हम बता दें कि देखो, वह तुम गलत कहते थे कि यह आदमी अच्छा था। इस आदमी में ये-ये चीजें दिखाई पड़ गईं।
हम दूसरे को छोटा दिखाना चाहते हैं। दूसरे को बड़ा मानना बड़ी मजबूरी में होता है। अत्यंत कष्टपूर्ण है यह, किसी को बड़ा मानना। इसलिए जिसको हम बड़ा भी मान लें अगर किसी मजबूरी में, तो भी हमारे मन में हम जांच-पड़ताल जारी रखते हैं कि कोई मौका मिल जाए तो इसको छोटा सिद्ध कर दें। कोई तरकीब मिल जाए, कोई मौका मिल जाए कि इसको छोटा सिद्ध कर दें तो हम निश्चिंत हो जाएं, वह एक बोझ उतर जाए सिर से।
तो आदमी दूसरे का देखता है अशुभ और दूसरे का देखता है सुख, अपना देखता
है शुभ और देखता है दुख। भारी उपद्रव हो गया। तब वह कर्मवाद के सिद्धांत में यह सब घुस गया।
मेरी मान्यता यह है कि अगर कोई सुख भोग रहा है तो वह कुछ ऐसा जरूर कर रहा है जो सुख का कारण है, क्योंकि बिना कारण के कुछ भी नहीं हो सकता। अगर एक डाकू भी सुखी है तो उसमें कुछ कारण हैं उसके सुखी होने के। और अगर एक साधु भी सुखी नहीं है तो उसके कारण हैं।
अब अगर दस डाकू साथ होंगे तो उनमें इतनी ब्रदरहुड, इतना भाईचारा होगा, जितना दस साधुओं में कभी सुना ही नहीं गया है। सुना ही नहीं गया है। कभी

नहीं सुना गया है कि दस साधुओं में कोई भाईचारा, कोई दोस्ताना, कोई मित्रता। लेकिन दस डाकुओं में ऐसा भाईचारा, ऐसी मित्रता। तो मित्रता के सुख हैं, वह डाकू भोगेगा। साधु कैसे भोगेगा उस सुख को? डाकू कभी एक-दूसरे से झूठ नहीं बोलेंगे, बोलेंगे ही नहीं। लेकिन साधु एक-दूसरे से बिल्कुल झूठ बोलते रहेंगे। तो सच बोलने का एक सुख है, जो वे भोगेंगे, जो साधु नहीं भोग सकता।

प्रश्नः अकस्मात जो घटनाएं हो जाती हैं, उसकी क्या वजह है?

कोई घटना अकस्मात नहीं होती। असल में उस घटना को हम अकस्मात कहते हैं, जिसका कारण नहीं खोज पाते। ऐसी घटनाएं होती हैं जिनका कारण हमारी समझ में नहीं पड़ता, लेकिन कोई घटना अकस्मात नहीं होती।

प्रश्नः जैसे लाटरी निकलती है जो... ?

कोई अकस्मात नहीं है वह भी। वह भी अकस्मात नहीं है। क्योंकि हमें दिखता है कि अकस्मात है।
मैं एक घटना बताऊं। पुंगलिया यहां बैठे हुए हैं, कोई चार-पांच वर्ष पहले उन्होंने एक नई गाड़ी ली और मुझे लेने वे नासिक आए। ऐसे माणिक बाबू आते हैं मुझे हमेशा लेने पूना से, पर उन्होंने माणिक बाबू को रोक दिया कि मेरी नई गाड़ी है, मैं लेकर आता हूं।
तो वे नई गाड़ी लेकर आए। लेकिन उनकी लड़की ने उनको कहा कि मुझे ऐसा लगता
है कि आपकी गाड़ी में वे आते नहीं। पर यह ऐसी बात थी कि जिसका कोई मतलब न था। जब वे लेकर जा रहे हैं गाड़ी में तो आएंगे क्यों नहीं? शायद उन्होंने सोचा कि शायद मैं दूसरी गाड़ी में आ जाऊं या कुछ हो जाए। बात खतम हो गई। मैं उस रात, मुझे भी ऐसा ख्याल हुआ कि कुछ उपद्रव रास्ते में हो सकता है। मैंने कहा कि कोई बात नहीं है।
सुबह बारह बजे के करीब हम निकले वहां से। तो वह जो ड्राइवर था, वह नया
था पुंगलिया का। वह इतनी तेजी से भगा रहा था कि मुझे दो-तीन बार ऐसा मन में लगा कि यह कहीं भी गाड़ी उतरेगी। लेकिन ऐसी कोई बात नहीं थी। एक रास्ते में एक गाड़ी को हम लोग क्रास किए--कोई एक डाक्टर की, बंगाली डाक्टर की गाड़ी को-- तो उस गाड़ी में जो महिला बैठी थी, उसको भी लगा कि यह गाड़ी कहीं गिरेगी। और वह एक दो मिनट बाद ही जाकर एक्सीडेंट हो गया। वह गाड़ी उतर गई नीचे और रेत में उलटी हो गई, चारों व्हील ऊपर हो गए। छोटी स्टैंडर्ड हैराल्ड गाड़ी थी। और माणिक बाबू घर सोए, तो उन्होंने सपना देखा कि मेरे हाथ में बहुत चोट आ गई है। अब इससे कोई संबंध नहीं था इन सारी बातों का।
और आखिर में यह हुआ कि पूना मैं माणिक बाबू की ही गाड़ी में पहुंचा, क्योंकि वे फिर मुझे लेने आए। तो पुंगलिया की लड़की को जो ख्याल हुआ था कि वह अपनी गाड़ी में आते नहीं, वह भी सही हो गया। हमारी गाड़ी उलट गई। पीछे से वह डाक्टर की गाड़ी आकर रुकी, उसने कहा कि मेरी पत्नी ने अभी कहा था कि यह गाड़ी गिर न जाए। यह जिस ढंग से जा रही है, यह कहीं गिर न जाए। तो मैंने कहा, ऐसी बातें नहीं सोचनी चाहिए। और वह तो हम सोच ही रहे थे, तभी गिर गई है आपकी गाड़ी।
दिखेगा ऊपर से बिल्कुल अकस्मात--अकस्मात ही है, लेकिन एकदम अकस्मात नहीं मालूम होता। एकदम अकस्मात नहीं मालूम होता। इतना ही मालूम होता है कि शायद कारण हमें पता नहीं चलते हैं। कारण हमें पता नहीं चलते हैं, कारण हमारे ख्याल में नहीं हैं। और अगर इस बात का पूरा विज्ञान थोड़ा विकसित, समझ में आ जाए, तो कारण भी समझ में आ सकेंगे।
अब जैसे मैं कहूं, यहां सोवियत रूस के कुछ हिस्सों में, बाकू के इलाके में हजारों साल से सबसे बड़ा मेला लगता था दुनिया का, जहां एक देवी का मंदिर है, अग्नि देवी का, और वर्ष के खास दिन में उसमें अपने आप ज्वाला प्रज्वलित हो जाती है। कोई आग लगानी नहीं पड़ती, कोई ईंधन डालना नहीं पड़ता। और जब ज्वाला प्रज्वलित होती है तो वह आठ-दस दिन तक चलती है, तो आठ-दस दिन वहां

मेला लगता है और करोड़ों लोग इकट्ठे होते हैं। और बड़ी चमत्कारपूर्ण घटना थी। और कोई कारण समझ में नहीं आता था। क्योंकि न कोई ईंधन है, न कोई वजह है। फिर कम्युनिस्ट वहां आए तो उन्होंने तो मंदिर-वंदिर उखाड़ दिया, मेला- वेला बंद करवा दिया। और खुदाई करवाई तो वहां तेल के गहरे झरने निकले, मिट्टी के तेल के। लेकिन सवाल यह उठा कि वह एक खास पर्टिकुलर दिन पर वर्ष में आग लगती थी। तेल के झरने से गैस बनती है, गैस जल भी सकती है घर्षण से, लेकिन वह कभी भी जल सकती है।
लेकिन तब खोज-बीन से पता चला कि पृथ्वी जब एक खास कोण पर होती है, तभी
वह गैस घर्षण कर पाती है, इसलिए खास दिन आग जल जाती है।
जब बात साफ हो गई तो मेला बंद हो गया, अग्नि देवता विदा हो गए। अब वहां कोई नहीं जाता, क्योंकि अब... अब भी वहां जलती है आग, अब भी खास दिन पर जब पृथ्वी एक खास कोण पर होती है, तभी वह गैस जो इकट्ठी हो जाती है वर्ष भर में, वह फूट पड़ती है और आग लग जाती है। तब तक वह अकस्मात था, अब वह अकस्मात नहीं है। अब हमें कारण का पता चल गया है।

प्रश्नः इस कहानी में जो आपने आगे कहा, यह जो गाड़ी उलट गई, उसके बाद का मैं कहता हूं। गाड़ी उलट गई, आप सब बच गए उसमें। तो सबका कहना था आप जैसी पुण्य आत्मा उसमें थी, इसलिए सब बच गए। वह बात सबने मान ली, कि आप उसमें थे, इसलिए सब बच गए। उसका स्पष्टीकरण क्या है?

नहीं, असल में होता क्या है, असल में होता क्या है, हम सब बचना चाहते हैं। हम सब बचना चाहते हैं और बचने के लिए, अगर बच जाएं तो भी कोई कारण हम खोज लेंगे, न बच जाएं तो भी कोई कारण हम खोज लेंगे। कारण हम स्थापित कर दें कोई, यह एक बात है और कारण की खोज बिल्कुल दूसरी बात है।
मेरा मतलब आप समझे न? यानी एक तो यह होता है कि हम जो होना चाहते हैं, उसके लिए भी हम कोई कारण खोज लेते हैं। और इसके भी पीछे एक बुनियादी बात है और वह यह है कि बिना कारण के कोई भी चीज कैसे होगी, यह बुनियादी सिद्धांत हमारे भीतर काम कर रहा है। अगर चारों आदमी बच गए और जरा भी चोट नहीं पहुंची तो कोई न कोई कारण इसका होना ही चाहिए।
अगर ठीक से समझें तो इतने दूर तक तो साइंटिफिक है मामला, क्योंकि अकारण यह भी नहीं हो सकता। लेकिन कारण क्या होगा, वह हमें पता नहीं है, तो हम कुछ भी कल्पित कर लेते हैं। हम यह कह सकते हैं कि एक अच्छा आदमी था, इसलिए बच गए। और अगर मान लो न बचते, तो भी हम कोई कारण खोज लेते। तब भी हम कारण खोज लेते कि एक बुरा आदमी था, इसलिए मर गए।
इसमें एक ही बात पता चलती है वह यह कि आदमी अकारण किसी बात को मानने को राजी नहीं है, और यह बात ठीक है। लेकिन इससे वह जो कारण बताता है, वे कारण ठीक हैं, यह जरूरी नहीं है। उन कारणों की तो वैज्ञानिक परीक्षा होनी चाहिए। जैसे कि मुझे बिठाल कर दो-चार दफे गाड़ी गिरानी चाहिए।
आप मेरा मतलब समझे न? और अगर मेरे साथ दो-चार दफे गिराने से जो भी गिरें, वे सब बच जाएं, तो फिर जरा पक्का होगा। और अगर न बचें तो पुंगलिया जी गलत कहते हैं। वैसा कुछ मामला नहीं है। मेरा मतलब यह है कि वैज्ञानिक परीक्षण के बिना कोई उपाय नहीं है। कारण तो हम मानते हैं। और एक बात ठीक है उसमें, वह यह कि अकारण कोई आदमी किसी बात को मानने को राजी नहीं है, होना भी नहीं चाहिए। लेकिन दूसरी बात ठीक नहीं है, तब हमें कोई भी कल्पित कारण नहीं मान लेना चाहिए। कोई भी कल्पित कारण नहीं मान लेना चाहिए।
उतना हमें ध्यान रखना चाहिए कि कारण को भी हम फिर स्थापित करने के लिए प्रयोग करें। क्योंकि अगर कारण सही है तो निरपवाद सही हो जाएगा। दो-चार-दस दफे मुझे गिरा कर देखेंगे तो उससे पता चलेगा कि भई, सबको चोट लगती है कि नहीं लगती।
और मजे की बात यह है कि चोट अगर लगी तो थोड़ी सिर्फ मुझको ही लगी थी उसमें, बाकी किसी को बिल्कुल नहीं लगी थी। थोड़ा सा जो भी लगा था वह मेरे ही पैर में लगा था, बाकी तो किसी को नहीं लगा था। तो अगर बुरा आदमी कोई था भी उसमें तो मैं ही था। क्योंकि किसी को जरा, जरा सी भी खरोंच भी नहीं किसी को आई थी।

तो वह तो बाकी हम कल्पित आरोपण करते हैं, उनका कोई मूल्य नहीं है। लेकिन अकस्मात कुछ भी नहीं है। अकस्मात कुछ भी नहीं है, क्योंकि अकस्मात अगर हम मान लें तो कार्य-कारण का सिद्धांत गया, एकदम गया। एक बात भी अगर इस जगत में अकस्मात होती है तो सारा सिद्धांत गया, फिर कोई सवाल नहीं है उसके बचने का। अकस्मात कुछ होता ही नहीं, हो ही नहीं सकता। क्योंकि होने के पीछे कारण के बिना होने का उपाय ही नहीं है। कारण होगा ही।
अब जैसे एक आदमी है और उसको लाटरी मिल जाती है, तो बिल्कुल ही अकस्मात बात है। क्योंकि अब इसमें तो कोई कारण हम खोज नहीं सकते कि इसमें क्या कारण खोजें? इसमें क्या कारण खोजें? एक आदमी को लाटरी मिल जाती है तो हमें कोई कारण नहीं दिखाई पड़ता। लेकिन एक लाख आदमियों ने अगर लाटरी के टिकट भरे हैं और एक आदमी को मिल गई है, तो किसी दिन अगर वैज्ञानिक क्षमता हमारी बढ़े और एक लाख लोगों के चित्तों का विश्लेषण हो सके तो मैं आपको कहता हूं, वह कारण मिल जाएगा जो इस आदमी को मिलने का वजह है।
अब हो सकता है इन एक लाख लोगों में सबसे ज्यादा संकल्प का आदमी यही है,
यह हो सकता है। और सबसे ज्यादा सुनिश्चित इसी ने मान लिया है कि लाटरी मुझे मिलने वाली है, यह हो सकता है। एक उदाहरण दे रहा हूं। और हजार कारण हो सकते हैं। अगर इन लाख लोगों में सबसे संकल्पवान आदमी जो है, विल पावर का आदमी जो है, उसके मिलने की संभावना ज्यादा है, क्योंकि उसके पास एक कारण है, जो दूसरों के पास कारण नहीं है। अभी इस पर बहुत प्रयोग चलते हैं।
अगर हम एक मशीन से ताश के पत्ते फेंकें, या मशीन से हम पांसे फेंकें,
तो मशीन तो कोई विल नहीं होती मशीन में, मशीन पांसे फेंक देती है। अगर सौ बार पांसे फेंकते हैं तो समझ लीजिए, दो बार बारह का अंक आता है। तो यह अनुपात हुआ मशीन के द्वारा फेंकने का। तो मशीन का तो कोई विल नहीं है, कोई इच्छा नहीं है। मशीन तो सिर्फ फेंक देती है पांसे, हिला देती है, फेंक देती है। सौ बार फेंकने में दो दफे बारह का अंक आता है।
अब एक दूसरा आदमी है जो हाथ से पांसे फेंकता है, और हर बार भावना करके फेंकता है कि बारह का अंक आए। वह सौ में बीस बार बारह का अंक ले आता है। आंख बंद है उसकी, हाथ देख नहीं सकता कि पांसा कैसा है, क्या है, और वह बीस बार ले आता है। एक तीसरा आदमी है, जो कितने ही उपाय करता है कि बारह का आंकड़ा आ जाए, लेकिन सौ में दो बार भी नहीं ला पाता। यानी दो बार जो कि मशीन भी ले आती है, जो कि बिल्कुल ही कांबिनेशन का सवाल है, वह दो बार भी नहीं ला पाता! यह जो बीस बार लाता है, इस आदमी से हम दुबारा प्रयोग करवाते हैं कि तू
इस बार पक्का कर कि बारह का आंकड़ा नहीं आने देना है। तो वह आंकड़ा फेंकता है तो बीस बार नहीं आता, समझो पांच बार आता है, तीन बार आता है, दो बार आता है। तो अब सवाल होगा यह कि भीतर की विल काम करती है! इस पर हजारों प्रयोग किए गए हैं और यह निर्णीत हो गया है कि भीतर का संकल्प पांसे तक को प्रभावित करता है, भीतर का संकल्प ताश के पत्तों को प्रभावित करता है, भीतर का संकल्प घटनाओं को बांधता है और प्रभावित करता है। और भीतर का संकल्प भी हजारों उस आदमी के अनुभवों का और कारणों का परिणाम होता है। वह भी आकस्मिक नहीं है कि किसी आदमी को भीतरी संकल्प मिल गया। भीतरी संकल्प भी उसके हजारों उन अनुभवों और कारणों का फल होता है, जिनसे वह गुजरा।
समझ लीजिए कि एक आदमी है और उसने तय किया कि मैं बारह घंटे तक आंख नहीं खोलूंगा। और वह आदमी बैठ गया और बारह घंटे में उसने तीन ही घंटे बाद आंख खोल ली, तो इस आदमी का भावी संकल्प क्षीण हो जाएगा, इस आदमी के संकल्प की शक्ति क्षीण हो जाएगी। अगर वह बारह घंटे तक आंख बंद किए बैठा ही रहा, कोई उपाय नहीं किए जा सके कि वह आंख खोले बारह घंटे में, तो यह आदमी अब एक कर्म कर रहा है, जिसका फल होगा कि इसका भीतरी संकल्प मजबूत हो जाएगा।
जीवन बहुत जटिल है और उसमें कोई बात कैसे घटित हो रही है, यह कहना एकदम
ही मुश्किल है। आज मुश्किल है, लेकिन इतना कहना निश्चित कहा जा सकता है कि हो रही है तो पीछे कारण होगा, चाहे ज्ञात हमें न हो, चाहे अज्ञात हो। अब जो भी हो रहा है हमारे चारों तरफ... ।
दक्षिण में एक बड़े संगीतज्ञ का जन्मदिन मनाया जा रहा है पचहत्तरवां। बूढ़ा हो गया है, उसके हजारों शिष्य हैं और वे सब भेंटें चढ़ाने आए हैं, क्योंकि हो सकता है अगले वर्ष वह जीए भी नहीं। और उसके हजारों भक्त हैं,

प्रेमी हैं, वे सब भेंट चढ़ाने आए हैं। रात दो बजे तक भेंट चलती रही है। लाखों रुपयों की भेंट चढ़ गई है। राजा हैं, रानियां हैं, जिन्होंने उससे सीखा है, वे सब देने आए हैं।
आखिर में दो बजे एक भिखारी जैसा आदमी एक इकतारा लिए हुए द्वार पर आया है। तो सिपाही ने उससे कहा, तुम कहां जाते हो? उसने कहा कि मैं भी कुछ भेंट कर आऊं। उन्होंने कहा, तुम्हारे पास कुछ दिखाई नहीं पड़ता। तो उस भिखारी ने कहा कि जरूरी नहीं है कि जो दिखाई पड़े, वही भेंट किया जाए। जो नहीं दिखाई पड़ता, वह भी भेंट किया जा सकता है। तंबूरा भी उसने सिपाही के पास रख दिया और भीतर गया। भीतर जाकर उसने पैर पर सिर रखा।
उस भिखारी की उम्र मुश्किल से तीस-बत्तीस वर्ष है। तो बूढ़ा गुरु तो उसे पहचान भी नहीं सका। उसने कहा कि तुमने कब मुझसे सीखा, मुझे याद नहीं पड़ता। उसने कहा, मैंने कभी आपसे नहीं सीखा, क्योंकि मैं एक भिखारी का लड़का हूं। लेकिन महल के भीतर आप बजाते थे, मैं बाहर बैठ कर सुनता था और वहीं मैं भी कुछ सीखता रहा। लेकिन अब आज धन्यवाद तो देने आना ही चाहिए। सीखा तो आप से ही है। द्वार की सीढ़ी के बाहर बैठ कर ही सीखा है, कभी भीतर नहीं आ सका, क्योंकि भीतर आने का कोई उपाय नहीं था। आज भी आना बड़ी मुश्किल से हुआ। एक छोटी सी भेंट लाया हूं, अंगीकार करेंगे? इनकार तो न कर देंगे?
तो उस गुरु ने सहज ही कहा कि नहीं-नहीं, इनकार कैसे कर दूंगा? पर देखा
कि उसके पास कुछ है तो नहीं। हाथ खाली हैं, कपड़े फटे हैं। कहां की भेंट है! कैसी भेंट है! कहा, नहीं-नहीं, इनकार कैसे कर दूंगा? तुम जो दोगे, जरूर ले लूंगा।
उसने आंख बंद की और ऊपर जोर से कहा, हे भगवान! मेरी बाकी उम्र मेरे गुरु को दे दे, क्योंकि मैं जीकर भी क्या करूंगा! और यह कहते ही से वह आदमी मर गया।
यह ऐतिहासिक घटना है। संकल्प इतना प्रबल अगर किसी आदमी का है तो यह हो सकता है, यह बहुत कठिन नहीं है। और वह गुरु कोई पंद्रह वर्ष और जीया जिसकी एक ही साल में मर जाने की आशा थी। यह ऐसा व्यक्ति अगर लाटरी पर नंबर लगा दे... ।

प्रश्नः कोइंसीडेंस नहीं कहा जा सकता इसको?

कोइंसीडेंस हमें दिखेगा, क्योंकि हमें कारण तो दिखाई पड़ते नहीं। वही तो, वही तो ह्यूम कहता है कि सब कोइंसीडेंस है। वही ह्यूम कहता है, क्योंकि कारण कहां दिखाई पड़ रहे हैं? जिनमें हमें दिखाई पड़ जाते हैं, उसमें तो हम राजी हो जाते हैं। जिसमें नहीं दिखाई पड़ते, कोइंसीडेंस, संयोग मालूम पड़ता है।
लेकिन संयोग भी बड़ा अदभुत है कि एक आदमी कहे कि मेरी उम्र चली जाए और उसी वक्त उसकी उम्र चली जाए। इतना एकदम आसान नहीं है संयोग भी। हो सकता है, लेकिन यह होना भी एकदम आसान नहीं मालूम पड़ता। और वह वहीं गिर जाए और ढेर हो जाए।
इतने संकल्प का आदमी अगर लाटरी का नंबर लगा दे, तो बहुत कठिन नहीं है
कि निकल आए। यानी मैं कह कुल इतना रहा हूं कि बहुत से कारण हैं, जो हमें दिखाई नहीं पड़ते हैं। नहीं पड़ने की वजह से अंधेरे में हम टटोलते हुए लगते हैं और हमको लगता है ऐसा हो रहा है, वैसा हो रहा है, आकस्मिक दिखता है। आकस्मिक कुछ भी नहीं है।

प्रश्नः किसी एक को मिलनी थी लाटरी, इसलिए उसको मिली है, ऐसा नहीं कहा
जा सकता? किसी एक को तो मिलनी ही थी लाटरी, इसलिए उसको मिल गई।

अब यह है जो मामला न, इसकी भविष्यवाणी भी की जा सकती है कि किसको मिलेगी। इसकी भविष्यवाणी भी की जा सकती है। ऐसी भविष्यवाणी करने वाले लोग भी हैं, जो एक लाख लोग लाटरी लगाए हुए हैं, उनमें से बता सकें कि किसको मिलेगी। तब क्या करोगे?

तब तो बड़ा मुश्किल हो जाएगा, तब तो बहुत कठिन हो जाएगा कि यह... हिटलर
की मृत्यु को बताने वाले लोग हैं कि किस दिन हो जाएगी। गांधी की मृत्यु को बताने वाले लोग हैं कि किस दिन हो जाएगी। चीन किस दिन हमला करेगा भारत पर, इसको बताने वाले लोग हैं। हमला होगा, इसको बताने वाले लोग हैं।
एक अर्थ में हम कह सकते हैं, सब संयोग है।

प्रश्नः लेकिन हिरोशिमा में दो लाख व्यक्ति भी एक साथ मर गए!

हां, हां, मरे। दो लाख व्यक्ति भी एक साथ मर सकते हैं। दो लाख व्यक्ति
भी एक साथ मर सकते हैं। क्योंकि हमें ऐसा लगता है न! किसी न किसी दिन तो ऐसा होगा कि सारी पृथ्वी एक साथ मरेगी। यह हमें लगता है कि यह कितना आकस्मिक है कि दो लाख आदमी एक साथ मर गए! क्योंकि इन दो लाख व्यक्तियों के भीतर भी हमारा कोई प्रवेश नहीं है। इन दो लाख व्यक्तियों की संभावनाओं के भीतर भी हमारा कोई प्रवेश नहीं है। और ऊपर से ऐसा ही दिखता है कि बिल्कुल आकस्मिक है कि एटम गिरा।
लेकिन कोई पूछे कि हिरोशिमा ही पर क्यों गिरा? हिरोशिमा कोई महत्वपूर्ण नगर न था, टोकियो पर गिर सकता था। हिरोशिमा पर क्यों गिरा? नागासाकी पर क्यों गिरा?
यह जब तक हमें पूरा का पूरा भीतर प्रवेश न हो जाए कारणों के, जिनका कि प्रवेश नहीं है, जब तक कि हम हिरोशिमा के लोगों के भीतर न घुस सकें, कोई नहीं कह सकता कि हिरोशिमा में जापान में सबसे ज्यादा सुसाइडल लोग हों। यह मैं कहता हूं। यह कोई नहीं कह सकता कि जापान के सारे नगरों में सबसे ज्यादा आत्मघाती लोग हिरोशिमा में हों, इसलिए हिरोशिमा एटम को आकर्षित करता हो। मेरा आप मतलब समझ रहे हैं न? यानी मेरा मतलब यह है कि हिरोशिमा क्यों? हिरोशिमा क्यों मरने के लिए चुना गया है?

प्रश्नः वह तो आर्डर्स होंगे न?

यानी ये आर्डर्स भी, इतने बड़े जापान में हिरोशिमा को ही चुना जाए! हिरोशिमा का आपने नाम भी नहीं सुना होगा पहले कभी। हिरोशिमा को चुना जाए यह आकस्मिक, यानी मैं यह कह रहा हूं, आकस्मिक नहीं हो सकता। यह भी भीतर कार्य-कारण लिए होगा। हिरोशिमा हो सकता है पृथ्वी पर सबसे ज्यादा आत्मघाती लोगों का नगर है, और वह आकर्षित करता है कि उसे मारा जाए और उसका चित्त आकर्षित करता है।
अब यह जान कर हैरानी होगी आपको कि अगर एक मोटर में एक्सीडेंट हो जाए,
एक एयरोप्लेन में एक्सीडेंट हो जाए, चूंकि चित्त को तो हम जानते नहीं, कोई नहीं कह सकता कि उस हवाई जहाज पर बैठे हुए लोगों के चित्त में क्या चल रहा है और वह किस भांति परिणाम ला सकता है। यह कोई नहीं कह सकता।
मेहरबाबा की जिंदगी में कुछ दो-तीन घटनाएं हैं बड़ी अदभुत। एक मकान उनके लिए बनाया गया। उनके लिए ही बनाया गया और उस मकान में वे प्रवेश करने गए। दरवाजे पर खड़े होकर--यानी प्रवेश का उत्सव मनाया जा रहा है, फूल-झाड़ लगाए गए हैं, दीए जलाए गए हैं--दरवाजे पर खड़े होकर वे दो मिनट रुके और वापस लौट आए। उन्होंने कहा, इस मकान में मैं नहीं जाऊंगा। तो लोगों ने कहा, क्या मतलब है आपका इस मकान में न जाने से? उन्होंने कहा, बस। और मुझे कुछ नहीं लगता, लेकिन बस दरवाजे पर मैं एकदम ठिठक... मैं मकान में नहीं जाता।
वह मकान उसी रात गिर गया। इस आदमी को भी साफ नहीं है कि क्या हुआ, लेकिन सीढ़ी पर उसको एकदम झिझक मालूम हुई है और उसने इनकार कर दिया। मेहरबाबा एक दफा हिंदुस्तान से यूरोप जाते हैं हवाई जहाज से और अदन में वापस चढ़ने से इनकार कर देते हैं। उनकी टिकट तो है आगे तक की। अदन पर जहाज रुका है, वे नीचे एयरपोर्ट पर उतरे हैं और उसके बाद वे एकदम इनकार कर देते हैं कि मैं जहाज पर नहीं चढ़ सकता। और वह जहाज गिर जाता है।
जापान में एक घटना घटी, पिछले महायुद्ध में एक अमरीकी जनरल जा रहा है
एक हवाई जहाज से किसी मिलिट्री के काम से किसी दूसरे मिलिट्री के कैंप में। वह घर से निकल गया है सुबह आठ बजे। उसकी टाइपिस्ट भागी हुई उसके घर

पहुंची कोई सवा आठ बजे और उसकी पत्नी से कहा कि जनरल कहां हैं? उसने कहा, क्यों? कहा कि रात मैंने एक सपना देखा, मैं उनको कह दूं। मैं बहुत डर गई हूं, मगर पहले तो मैंने सोचा कहना कि नहीं, इसलिए इतनी देर हो गई। क्या सपना देखा? उसकी पत्नी ने पूछा।
तो वह अपना सपना बताती है। बताती है कि मैंने देखा कि जनरल जिस हवाई जहाज से आज जा रहे हैं, वह टकरा जाता है बीच में। उसमें जनरल हैं, पायलट है और एक औरत है, तीन लोग हैं। वह टकरा जाता है, हालांकि मरता कोई नहीं। टकरा जाता है, तीनों बच जाते हैं। लेकिन मुझे ऐसा सपना आया तो मैंने कहा... ।
तो उसकी पत्नी ने कहा कि तुम्हारा सपना यहीं से गलत हो गया, क्योंकि जनरल और पायलट दो ही जा रहे हैं, उसमें कोई औरत नहीं है। उसमें कोई औरत है ही नहीं। और वे तो निकल चुके हैं। फिर भी वह पत्नी और वह दोनों कार से एयरपोर्ट पहुंचते हैं। लेकिन जब वे पहुंचे हैं, तब जनरल जा चुका है। लेकिन एयरपोर्ट पर पता चलता है कि एक औरत भी गई है। एक औरत ने वहीं आकर कहा कि मेरा पति बीमार है--वह किसी मिलिट्री आदमी की औरत है--मेरा पति बीमार है और मुझे कोई इस वक्त जाने का उपाय नहीं, तो मुझे आप ले चलें तो बड़ी कृपा होगी। तो जनरल ने कहा, पूरा हवाई जहाज खाली है, कोई बात नहीं, तुम चलो। एक औरत गई है।
तब उसकी पत्नी भी घबड़ा गई। और वे एयरपोर्ट पर ही हैं कि उनको खबर मिलती है कि वह जहाज टकरा गया है, लेकिन मरा कोई नहीं। और उस लड़की ने, जिसको टाइपिस्ट को यह सपना आया है, उसने ठीक कितनी बड़ी चट्टान है, जिससे वे टकराते हैं, कैसी जगह है, वहां कैसे दरख्त हैं, वह सब उसने कहा हुआ है। वह सब शब्द-शब्द सही निकल गया। लेकिन अगर यह सपना नहीं है तो बात अकस्मात है। लेकिन अगर यह सपना है पीछे तो बात एकदम अकस्मात नहीं है, कुछ फोर्सेस काम कर रही हैं, कुछ कारण काम कर रहे हैं, जिनका तालमेल आधा घंटे, घंटे भर बाद होकर, उस जहाज को गिरा देने वाला है।
जिंदगी जैसी हम देखते हैं, उतनी सरल नहीं है, सब चीजें समझ में नहीं भी आती हैं। लेकिन इतनी बात तो समझ में आती ही है कि अकारण कुछ भी नहीं है। कर्म के सिद्धांत का बुनियादी आधार यह है कि अकारण कुछ भी नहीं है। दूसरा बुनियादी आधार यह है कि जो हम कर रहे हैं, वही हम भोग रहे हैं और उसमें जन्मों के फासले नहीं हैं। और जो हम भोग रहे हैं, हमें जानना चाहिए कि हम उस भोगने के लिए जरूर कुछ उपाय कर रहे हैं--चाहे सुख हो, चाहे दुख हो, चाहे शांति हो, चाहे अशांति हो।

प्रश्नः जो बच्चे अंगहीन पैदा हो जाते हैं, अंधे हो जाते हैं या और अस्वस्थ पैदा हो जाते हैं, उसमें उन्होंने कौन सा कर्म किया है, जिसकी वजह से वे हो गए?

हां, बहुत कारण हैं। अब यह सारी बात समझने जैसी है असल में। और महीपाल
जी ने एक सवाल पूछा है, वह भी उसमें आ जाए। एक बच्चा अंधा पैदा होता है तो दो घटनाएं घट रही हैं, अगर वैज्ञानिक से पूछेंगे तो वह कहेगा, इसके मां-बाप के जो अणु मिले, उनमें अंधेपन की गुंजाइश थी। वैज्ञानिक यहां समझाएगा। वह भी अकारण नहीं मानता इसको, वह भी कारण मानता है। लेकिन कारण वह विज्ञान के खोजेगा। वह कहेगा, जो मां-बाप के अणु मिले, उन अणुओं से अंधा बच्चा ही पैदा हो सकता था। अंधा बच्चा पैदा हो गया है। उन अणुओं में कुछ कमी थी केमिकल, रासायनिक, जिससे कि आंख नहीं बन पाई, आंख नहीं बनी। वैज्ञानिक यह कहेगा। वह भी अकारण नहीं मानता इसको।
लेकिन धार्मिक कहेगा कि बात इतनी ही नहीं है, और भी पीछे कारण हैं। जो आदमी मरा--क्योंकि विज्ञान के लिए तो आदमी सिर्फ जन्मता है, जन्म के पहले कुछ भी नहीं है। इसीलिए विज्ञान पूरा वैज्ञानिक नहीं है। क्योंकि जब विज्ञान कहता है कि अंधे बच्चे के पैदा होने के पीछे कारण हैं, तो वह अंत में इस बात को इनकार कैसे कर सकता है कि पैदा होने के पीछे भी और कारण हैं, सिर्फ अंधे होने के पीछे ही नहीं। यानी वह इतना तो मानता है कि अंधा पैदा होगा, क्योंकि अणुओं में कुछ ऐसा कारण है, जिससे अंधा पैदा होना है। लेकिन

पैदा ही क्यों होगा? यह पैदा ही क्यों होगा यह आदमी? वह बस अणुओं के मिलने पर शुरुआत मानता है। उसके पीछे?
धर्म कहता है, उसके पीछे भी कार्य-कारण कीशृंखला है, उसको भी तोड़ा नहीं जा सकता। तो धर्म यह कहता है कि जो आदमी मरा, जो आदमी मरा, मरते वक्त तक ऐसी स्थितियां हो सकती हैं कि वह आदमी खुद भी आंख न चाहे। समझ लें इसको। ऐसी स्थितियां हो सकती हैं कि वह आदमी खुद भी आंख न चाहे। या ऐसे उसके कर्मों का पूरा का पूरा योग हो सकता है उस क्षण में कि आंख संभव न रहे। और ऐसा आदमी अगर मरे तो ऐसी आत्मा उसी मां-बाप के शरीर में प्रवेश कर सकेगी, जहां अंधे होने का संयोग जुड़ गया है। यानी ये दोहरे कारण हैं।
अब जैसे मैं उदाहरण के लिए कहूं, एक लड़की को मैं जानता हूं, जिसकी आंख चली गई। और आंख सिर्फ इसलिए चली गई कि उसके प्रेमी से उसे मिलने को मना कर दिया गया, देखने को मना कर दिया गया। और उसके मन में भाव इतना गहरा हो गया इस बात का कि जब प्रेमी को ही नहीं देखना है तो फिर देखना भी क्या है! यह भाव इतना संकल्पपूर्ण हो गया कि आंख चली गई। और किसी इलाज से आंख नहीं लौटाई जा सकी, जब तक कि उसको प्रेमी से मिलने नहीं दिया गया। मिलने से आंख वापस लौट आई। उसके मन ने ही आंख का साथ छोड़ दिया।
तो मरते क्षण में, मरते वक्त में आत्मा के पूरे के पूरे जीवन की व्यवस्था, उसका चित्त, उसके संकल्प, उसकी भावनाएं, सब काम कर रही हैं। इन सारी संकल्पों, इन सारी भावनाओं, इस सारे कर्म शरीर को, इस सारे संकल्प शरीर को लेकर वह इस शरीर को छोड़ती है। नया शरीर हर कोई ग्रहण नहीं कर लिया जाएगा। वह उसी शरीर की तरफ सहज नियम से आकर्षित होगी, जहां उसकी इच्छाएं, जहां उसके कर्म, जहां उसकी भावनाएं पूरी--पूरी की पूरी उपलब्ध हो सकती हैं।
तो दो कारण यहां मिल रहे हैं, यानी दो कॉजल सीरीज यहां क्रास हो रही हैं। एक शरीर के अणुओं की और एक आत्मा की। शरीर के अणुओं से बनेगा शरीर, लेकिन उस शरीर को चुनेगा कौन?
यहां हम पचास मकान बनाएं, पचास ढंग के मकान बनाएं। आप मकान खरीदने आएं, आप पचास में से हर कोई मकान नहीं चुन लेते। आप पचास को खोजते हैं, फिर आप एक मकान चुन लेते हैं। वह एक मकान आप चुनते हैं न! तो आपके भीतर उसके चुनाव के कारण होते हैं। हो सकता है एस्थेटिक आपके ख्याल हों, तो बड़ा सुंदर मकान चाहिए। हो सकता है सुविधा के, कनवीनिएंस के ख्याल हों, तो सुविधापूर्ण मकान चाहिए। बड़ा चाहिए कि छोटा चाहिए कि कैसा चाहिए, वह आपके भीतर है।
तो दोहरे कॉज़ल हैं। एक तो इंजीनियर मकान बना रहा है, उसके भी... मकान पचास बनाए तो उसके भी कारण हैं पचास मकान बनाने के, वह भी हर कुछ नहीं बना देगा। उसके अपने भीतरी कारण हैं, अपनी दृष्टि है, अपने विचार हैं, अपनी धारणाएं हैं। फिर आप चुनाव करने आए, पचास में से एक आपने चुना। तो यहां दोहरी कारणशृंखलाओं का मिलन हुआ। एक इंजीनियर की कारणशृंखला, हो सकता है आप पचास में से कोई भी न चुनें; वापस चले जाएं कि यहां मुझे कुछ पसंद नहीं पड़ता! और आपकी अपनीशृंखला, इन दोनों ने क्रास किया, और आपने एक खास मकान चुना।
जो शरीर हमने चुना है, वह हमने चुना है, वह हमारा चुनाव है--चाहे अचेतन, चाहे हमें ज्ञात न हो, लेकिन जो शरीर हमने चुना है, वह हमने चुना है।

प्रश्नः इसमें भी कर्म का भाग है?

निश्चित ही न! कार्य-कारण से अन्यथा कुछ हो ही नहीं सकता। वह हमने-- हमारा चुनाव है, हमारी च्वाइस है।

प्रश्नः मैं एक गांव गया, उसमें बच्चे जो हैं, सौ में से तीस दो साल बाद मर जाते हैं। लेकिन ऐसी व्यवस्था है कि सौ के सौ ही जिंदा रखे जाएं और नस्ल सुधारी जा सकती है!

हां, हां। बिल्कुल सुधारी जा सकती है, बिल्कुल सुधारी जा सकती है। तो फिर वे बच्चे पैदा नहीं होंगे उस गांव में जो दो साल में मरने हैं।
मेरा मतलब समझ लें आप। एक गांव है, उसमें अभी हर दस में से आठ बच्चे मर जाते हैं। तो इस गांव में वे ही बच्चे आकर्षित होते हैं, जिनकी दो साल से ज्यादा जीने की संभावना नहीं है। अगर इस गांव की नस्ल सुधार दी जाए, तो इसका मतलब हुआ कि इंजीनियर ने दूसरे मकान बनाए। अब इसमें वे यात्री आकर्षित होंगे जो कि कभी आकर्षित नहीं हुए थे। आप मेरा मतलब समझ रहे हैं न? इस गांव में अब वे बच्चे पैदा होंगे, जो बच्चे सौ साल जिंदा रहने के लिए आए हुए हैं, वे पहले भी पैदा होते कहीं।

प्रश्नः लेकिन यह सब गांव में ऐसा किया जा सकता है!

सब गांव में किया जा सकता है, तो प्लैनेट्स बदल जाएंगे, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। यानी एक गांव बदलता है, दूसरा गांव, यह सवाल नहीं है। अगर पूरी पृथ्वी पर हम सौ साल की उम्र तय कर लें तो इस पृथ्वी पर सौ साल से कम पैदा होने वालों का उपाय बंद हो जाएगा, उनको दूसरे प्लैनेट्स चुनने पड़ेंगे।

प्रश्नः तब तो फिर दूसरे जन्म तक कर्म गया न!

मेरा मतलब नहीं समझे। दूसरे जन्म तक तुम जाओगे, और तुमने जो किया है, तुमने जो भोगा है, उसी से तुम निर्मित हुए हो। इसको भी समझ लेना ठीक जरूरी है।
समझ लें, मैंने पानी बहाया इस कमरे में--एक गिलास पानी लुढ़का दिया। पानी बहा, उसने एक रास्ता बनाया, दरवाजे से निकल गया। फिर पानी बिल्कुल चला गया। धूप आई, सब सूख गया, सिर्फ एक सूखी रेखा रह गई। पानी नहीं है बिल्कुल अब, लेकिन पानी जिस मार्ग से गया था, वह मार्ग रह गया है।
आपने दूसरा पानी उलटाया, अब इस दूसरे पानी की हजार संभावनाओं में नौ
सौ निन्यानबे संभावना यह है कि वह उसी मार्ग को पकड़ ले, क्योंकि वह लीस्ट रेजिस्टेंस का है, उसमें झगड़ा ज्यादा नहीं है। दूसरा मार्ग बनाना पड़ेगा फिर, फिर धूल हटानी पड़ेगी, कचरा हटाना पड़ेगा, तब पानी मार्ग बना पाएगा। बना हुआ मार्ग है, यह पानी उस मार्ग को पकड़ लेगा और उसी से फिर बह जाएगा। पुराना पानी नहीं था, सिर्फ सूखी रेखा रह गई थी।
तो मेरा कहना है कि एक जन्म से दूसरे जन्मों में कर्म के फल नहीं जाते, लेकिन कर्म और फल जो हमने किए और भोगे, उनकी एक सूखी रेखा हमारे साथ रह जाती है। उसको मैं संस्कार कहता हूं। कर्मफल नहीं जाते, मैंने पिछले जन्म में गाली दी थी तो फल वहीं भोग लिया है, लेकिन गाली मैंने दी थी और तुमने नहीं दी थी गाली, तो मैंने गाली का फल भी भोगा, तुमने वह फल भी नहीं भोगा। तो मैं एक और तरह का व्यक्ति हूं। मेरे पास एक सूखी रेखा है गाली देने और गाली का फल भोगने की। वह सूखी रेखा मेरे साथ है। इस जन्म में मेरे साथ संभावना है कि कोई गाली दे तो मैं फिर गाली दूं, क्योंकि वह सूखी रेखा जो है, लीस्ट रेजिस्टेंस की वजह से फौरन मैं पकड़ लूंगा।
कल रात हम दोनों सोएं, हम सब लोग सो जाएं। आप अलग ढंग से जीए दिन में, मैं अलग ढंग से जीया। जो मैंने जीया वह गया, लेकिन मैं जीया था न उसे! तो सूखी रेखाएं मेरे साथ रह गईं।

प्रश्नः मरने के बाद तो कोई श्रीमंत के यहां जन्मता है, कोई गरीब के यहां जन्मता है!

हां न! बिल्कुल जन्म सकता है। बिल्कुल जन्म सकता है। वह भी हमारी सूखी रेखाएं ही काम कर रही हैं। वह भी हमारी सूखी रेखाएं ही काम कर रही हैं।
हमारा जो चित्त है, हमारे चित्त के जो आकर्षण हैं, हमने जो किया और भोगा है, उसने हमें एक खास कंडीशनिंग दी है, एक खास संस्कारबद्धता दी है।
वह खास संस्कारबद्धता हमें खास मार्गों पर प्रवाहित करती है।

वे खास मार्ग सब रूपों में कारण से बंधे होंगे, चाहे वह समृद्ध के घर पैदा हो, चाहे गरीब के घर पैदा हो, चाहे वह हिंदुस्तान में पैदा हो, चाहे अमरीका में पैदा हो, चाहे सुंदर हो चाहे कुरूप हो, चाहे जल्दी मरने वाला कि देर तक जीने वाला, इन सारी चीजों में उस आदमी ने जो किया है और भोगा है, उसकी संस्कारशीलता काम करेगी ही। अकारण यह कुछ भी नहीं है। अकारण यह कुछ भी नहीं है।
इसलिए कोई मुझसे कहता है कि जैसे कल समाजवाद आ जाएगा... ।

प्रश्नः कॉज एंड इफेक्ट दोनों खतम नहीं हो गए उस वक्त?

कॉज-इफेक्ट तो खतम हो गए। जैसे आपने आग में हाथ डाला, आपका हाथ आग से बाहर निकाल लिया तो डालना खतम हो गया, आपका हाथ जला, वह भी खतम हो गया, हाथ की जलन भी खतम हो गई, लेकिन जला हुआ हाथ पास रह गया--जला हुआ हाथ। आग नहीं, डालना नहीं, जला हुआ हाथ। मेरा मतलब आप समझे न?

प्रश्नः पिछले कर्म का जो अल्टीमेट फल है, वही चला न अगले जन्म में?

फल-वल नहीं चलने वाला है, फल तो खतम हो गया।

प्रश्नः हाथ जलने के कारण उसके हाथ में कुछ निशान रह गए।

ये जो निशान हैं न, ये जो निशान हैं, यह न तो जलन है, न आग है।

प्रश्नः फल तो उसी जलने का है?

फल तो जलन था, वह तुमने भोग लिया, अब हाथ तुम्हारा जल नहीं रहा है।

प्रश्नः यह भी तो एक प्रकार का फल ही है कि हाथ आपका कुरूप हो गया।

इसको मैं कह रहा हूं, यह सूखी रेखा है। सिर्फ चिह्न रह गया कि तुम्हारा हाथ जला था। तुम आग में... ।

प्रश्नः फल तो उसी का है?

नहीं, तुम फल का मतलब ही नहीं समझते न! फल का मतलब ही यह होता है--फल का मतलब है जलन। यह तो इसको हम, इसको... कॉज तो था आपका हाथ डालना, इफेक्ट था आपके हाथ का जलना; लेकिन यह घटना घटी तो इस घटना के सूखे संस्कार पीछे रह जाएंगे, क्योंकि यह घटना आपको घटी। और आपको नहीं घटी तो आपका हाथ जला हुआ नहीं है। यह सिर्फ खबर है इस बात की कि इस आदमी ने हाथ डाला था, इस बात की भर खबर है। इसको मैं कंडीशनिंग कहता हूं, इसको संस्कार कहता हूं, फल नहीं कहता। फल तो जलन थी जो भोग लिया तुमने।
तो हम प्रत्येक व्यक्ति अपने-अपने फलों को भोगने की खबरें भर लिए हुए हैं अपने साथ। और वे खबरें भी हमें प्रभावित करती हैं। प्रभावित करती हैं इस अर्थों में कि वे हमें लीस्ट रेजिस्टेंस के मार्ग सुझाती हैं। जिस आदमी ने पिछले दस जन्मों में हत्या की है बार-बार, उसकी बहुत संभावना इस जन्म में भी हत्या करने की है।
उसका कारण यह है कि दस जन्मों से हत्या करने की उसकी जो वृत्ति है, जो भाव है, जो संस्कार है, वह निरंतर गहरा होता चला गया है। और उसको सरल यही दिखाई पड़ता है, अगर किसी से झगड़ा हो तो पहली बात यही सूझती है कि मार डालो। पहली, दूसरी बात नहीं सूझती उसको। यह निकटतम का रास्ता है जिस पर सूखी रेखा बनी है, पानी पकड़ कर बह जाता है।

प्रश्नः टेंडेंसी हो गई है?

टेंडेंसी है, उसकी वृत्ति। और इसमें फर्क क्यों कर रहा हूं मैं? फर्क बहुत गहरा है। क्योंकि वृत्ति सिर्फ सूखी है, उसमें कोई प्राण नहीं है।
अगर आप बदलना चाहें तो इसी वक्त बदल सकते हैं। लेकिन अगर आप कहते हैं फल, तो फल सूखा नहीं है, फल हरा है, फल भोगना पड़ेगा, उसको आप बदल नहीं सकते।
जैसे आग में हाथ डाला है और अगर अगले जन्म में जलना है, तो जलना पड़ेगा। क्योंकि हाथ डालना तो हो चुका, आधा काम पूरा हो चुका, अब आधा काम पूरा करना पड़ेगा।
लेकिन मेरा कहना यह है कि आग में हाथ डाला है तो यह आदमी आग में हाथ डालने की वृत्ति वाला है, इस जन्म में भी इससे डर है कि यह आग में हाथ डाल न दे। क्योंकि इसकी आदत, इसके बार-बार आग में हाथ डालने की व्यवस्था भय पैदा करती है।
लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि यह आग में हाथ डालने को बंधा है। यह चाहे तो न डाले। मेरा फर्क समझ रहे हैं न? इसका मतलब यह होता है अंततः कि कर्मों की निर्जरा नहीं करनी है आपको। कर्मों की निर्जरा प्रतिकर्म के साथ होती ही चली जाती है, सिर्फ सूखी रेखा रह जाती है। इस सूखी रेखा से आपका जाग जाना ही काफी है। इसलिए मोक्ष या निर्वाण सडन, तत्काल हो सकता है।
पुरानी जो हमारी धारणा है, उसमें सडन नहीं हो सकता, क्योंकि आपने जितने कर्म किए हैं, उनके फल आपको भोगने ही पड़ेंगे अभी। जब आप सारे फल भोग लेंगे, तब आपकी मुक्ति हो सकती है--एक। और इन फल भोगने में अगर आपने फिर कुछ कर्म कर लिए तो फिर बंध हो जाएगा। और यह अंतहीनशृंखला होगी।
यानी मैं यह कह रहा हूं कि आप प्रति बार कर्म करके फल भोग लेते हैं। निर्जरा तो वहीं हो जाती है, रह जाती है सिर्फ वृत्ति कर्म करने की। कर्म नहीं, फल नहीं, सिर्फ टेंडेंसी। और टेंडेंसी अगर आप होश से भर जाते हैं तो अभी विदा हो जाती है, इसी वक्त विदा हो जाती है। उसको विदा करने में कोई उसका विरोध नहीं है।

प्रश्नः इस थ्योरी की जरूरत क्या है फिर? सूखी रेखा की थ्योरी की जरूरत क्या है फिर?

उसकी जरूरत है। उसकी जरूरत... ।

प्रश्नः आपने कहा, नियंता की जरूरत नहीं, जैसे महावीर के बारे में कहा, तो इस सूखी रेखा की थ्योरी की जरूरत क्या है?

थ्योरी की जरूरत नहीं है, तथ्य है यह। जैसे समझ लें कि आज दिन भर मैंने क्रोध किया, तो जब-जब मैंने क्रोध किया, मैंने दुख भोगा। गाली खाई, झगड़ा हुआ, उपद्रव हुआ, अशांत हुआ। फिर मैं सो गया आज रात। आपने दिन भर क्रोध नहीं किया, आप दिन भर प्रेम से लोगों से मिले-जुले, आनंदित रहे, आप भी सो गए।
सुबह हम दोनों एक ही कमरे में सोकर उठे। मेरी चप्पल कमरे में मेरे बिस्तर के पास नहीं मिली मुझे, आपकी भी नहीं मिली। आपकी संभावना बहुत कम है कि आप एकदम क्रोध में आ जाएं, मेरी संभावना बहुत ज्यादा है कि मैं एकदम क्रोध में आ जाऊं। वह जो कल का दिन है उसकी सूखी रेखा मेरे साथ है। मेरा टाइप बन गया न! दिन भर जो आदमी क्रोध किया है, वह कहेगा, कहां है मेरी चप्पल? वह सुबह से ही उपद्रव शुरू हो गया उसका फिर।
मेरा आप मतलब समझ रहे हैं न? वह कर्म-वर्म तो गए। कल जो मैंने गाली दी थी, वह भी गई, जो गाली का दुख था, वह भी गया, लेकिन गाली देने वाला आदमी मैं, जिसने दिन भर गाली दी, वह तो शेष हूं। और मुझमें और आपमें कोई भेद तो होना चाहिए न! क्योंकि आपने दिन भर गाली नहीं दी और मैंने दिन भर गाली दी, और सुबह अगर ऐसा हो जाए कि कोई भेद न रहे, तब तो फिर व्यवस्था गई। मेरा मतलब आप समझ रहे हैं न? भेद तो रहेगा ही मुझमें और आपमें, क्योंकि हम दोनों अलग ढंग से जीए। मैं क्रोध में जीया, आप प्रेम में जीए, तो हममें भेद तो रहेगा। वह भेद टेंडेंसी का होगा, वह भेद वृत्ति का होगा।

प्रश्नः फल का नहीं होगा?

फल का नहीं होगा।

प्रश्नः फल तो खतम हो गया।

हां, फल तो गया। फल तो गया!

प्रश्नः संस्कार या वृत्ति हमारे साथ रह जाएगी।

हां, टोटल कंडीशनिंग हमारे साथ रह जाएगी। और यह जो समग्र संस्कार है हमारा, इस समग्र संस्कार के प्रति हमारी मूर्च्छा ही कारण होगी इसको चलाने का। जैसे समझ लें कि कल मैंने क्रोध किया दिन भर और सुबह मैं सोचूं कि बहुत क्रोध किया, बहुत दुख पाया और जाग जाऊं तो जरूरी नहीं है कि चप्पल पर मैं क्रोध--यानी मेरे भीतर क्रोध करने की अनिवार्यता नहीं है, सिर्फ मूर्च्छा ही अनिवार्यता होगी। अगर मैं सोए-सोए फिर कल जैसा ही व्यवहार करूं तो क्रोध चलेगा, और अगर जाग जाऊं तो क्रोध टूट जाएगा।
इसलिए अंततः मेरी दृष्टि में कर्म की निर्जरा तो हो गई है सदा, लेकिन कर्म की सूखी रेखा रह गई है। और वह सूखी रेखा हमारी मूर्च्छा है। अगर हम मूर्च्छित रहें तो हम वैसा ही काम करेंगे। अगर हम जाग जाएं तो काम इसी वक्त बंद हो जाए।
इसलिए मैं कहता हूं, एक क्षण में मुक्ति हो सकती है। आप करोड़-करोड़ जन्मों में क्या किए हैं, इससे कुछ लेना-देना नहीं रह गया है। सिर्फ आप जाग जाएं, इससे ज्यादा कोई शर्त नहीं है। यह मेरा फर्क समझ रहे हैं? क्यों मैं ऐसी व्याख्या कर रहा हूं, उसका बुनियादी अंतर पड़ेगा।
वह जो व्याख्या है आपकी, उसका तो मतलब यह है कि अगर करोड़ जन्म में आपने कर्म किए हैं तो आपको फल भोगने के लिए शेष हैं अभी। वे जब तक आप नहीं भोग लेते, तब तक कोई उपाय नहीं है। और उनको भोगने में काल व्यतीत होगा। भोगने में काल व्यतीत होगा, भोगने में भी नए कर्म होंगे, क्योंकि आप बचेंगे कैसे?
अगर पुरानी व्याख्या सही है तो मैं मानता हूं, कोई कभी मुक्त हो ही नहीं सकता। उसका कारण है। उसका कारण है कि कल मैंने कितने पाप किए, कितनी बुराइयां कीं, वे सब इकट्ठी हैं, उनका फल भोगना है। और फल मैं बिल्कुल, कैसे भोगूंगा? जब मुझे कोई गाली देने आएगा--क्योंकि मैंने पिछले जन्म में उसे गाली दी थी, तो कोई मुझे गाली देने आएगा तो फिर कर्म शुरू होगा न! वह फिर मुझे गाली देगा। और जब मैंने पिछले जन्म में गाली दी थी तो गाली देने की मेरी टेंडेंसी तो है ही। और वह जब मुझे फिर गाली देगा, फिर गाली का सिलसिला--मैं कुछ तो करूंगा। और सिलसिला जारी रहेगा। और सिलसिले का अंत क्या है? क्योंकि अगर एक कर्म भी शेष रह गया है तो उसको भोगने में फिर नए कर्म निर्मित हो जाएंगे। और नए कर्म निर्मित होते चले जाएंगे, होते चले जाएंगे। और एक भी अगर कभी शेष है तो यह निर्मिति बंद कैसे होगी?
मेरा मानना यह है कि अगर वह बात सही है तो दुनिया में कोई कभी मुक्त हुआ ही नहीं। लेकिन दुनिया में मुक्त लोग हुए हैं, और वे इसीलिए मुक्त हो सके हैं कि कर्म आगे के लिए शेष नहीं रह जाते, कर्म तो पीछे ही चुकतारा हो जाता है, सिर्फ रह जाती है सोई हुई वृत्ति। और अगर आदमी सोया ही रहे तो उन्हीं-उन्हीं कर्मों को दोहराता चला जाता है, जाग जाए तो दोहराना बंद कर देता है। यानी मुझे कोई मजबूर नहीं कर रहा है कि मैं क्रोध करूं सिवाय मेरी मूर्च्छा के। और अगर मैं जाग गया हूं तो मैं कहता हूं, ठीक है, इस रास्ते से बहुत बार जा चुके, बहुत दुख उठा चुके।
इसलिए महावीर ने बड़ी कोशिश की प्रत्येक व्यक्ति को पिछले जन्मों के संबंध में स्मरण दिलाने की। उस स्मरण दिलाने का सिर्फ एक प्रयोजन है कि यह पता चल जाए कि तुम क्या-क्या कर चुके हो, क्या-क्या भोग चुके हो। इन रास्तों से तुम कितनी बार गुजर चुके हो, अब इन्हीं पर गुजरते रहोगे? इसका

सिर्फ एक प्रयोजन है कि अगर स्मरण आ जाए किसी व्यक्ति को उसके दो-चार जन्मों का कि उसने बहुत बार धन कमाया, धन कमाने में बहुत बार बेईमानी की, बहुत बार प्रेम किया, बहुत बार क्रोध किया, बहुत बार यश कमाया, बहुत बार अपमान सहा, मान सहा। सब कर चुका है वह, जो अब फिर कर रहा है।
और अगर उसको यह दिखाई पड़ जाए कि यह मैं बहुत बार कर चुका तो यह मीनिंगलेस हो गया। अब इसको फिर दुबारा किसलिए कर रहा हूं? और यह चोट अगर उसको पड़ जाए तो वह अभी जाग जाए और कहे कि अब बहुत कर चुका यह, अब इसके करने का क्या मतलब? कितनी बार धन कमाया, फिर हुआ क्या?
तो यह जागरण उसकी जो सूखी रेखा उसको पकड़े हुए है, उसके तोड़ने का कारण
बन जाए। इसलिए सडन एनलाइटेनमेंट की संभावना है। सच तो यह है कि जब भी कभी मुक्ति होती है, वह सडन है।

प्रश्नः सम्यक स्मृति इसी को कही जा सकती है?

हां, कह सकते हैं।

प्रश्नः एकार्डिंग टु दैट विल पावर आर संकल्प, डिफरेंट टाइप इज़ डेवलप्ड ड्यू टु दैट संस्कार?

हां-हां, बिल्कुल ही।

प्रश्नः नाट दैट कॉज एंड इफेक्ट!

न-न।

प्रश्नः दैट इज़ आल गॉन?

हां, बिल्कुल ही चला जाता है।

प्रश्नः (अस्पष्ट रिकार्डिंग)

अन्याय कुछ भी नहीं है। अन्याय कुछ भी नहीं है। तब अन्याय इसलिए कुछ
भी नहीं है कि जो हम कर रहे हैं, वह हम भोग रहे हैं। वह उससे अन्यथा नहीं हो सकता।
इसमें एक बात और समझ लेनी जरूरी है। पुराना ख्याल क्या था? पुराना ख्याल यह था कि मैं अगर महीपालजी को चांटा मारूं तो किसी जन्म में वह मुझे चांटा मारें। कर्मफल का ऐसा ख्याल है। इसका तो मतलब यह हुआ कि अगर मैंने महावीर को चांटा मार दिया तो जब तक वे मुझे चांटा न मार लें, वे भी मुक्त नहीं हो सकते। यानी मेरा कृत्य भी उनकी अमुक्ति बन जाएगा।
समझ लीजिए, मैंने महीपालजी को चांटा मारा और वह इसी जन्म में मुक्त हो सकते हैं? नहीं हो सकते--अगले जन्म में जब तक मुझे चांटा न मार लें। क्योंकि नहीं तो मुझे चांटा कौन मारेगा? वह हिसाब कैसे पूरा होगा?

प्रश्नः तो अगला जन्म लेना पड़े!

वह उनको मेरे पीछे लेना पड़े। जो कि बिल्कुल ही व्यर्थ बात है। नहीं, मेरा कहना यह है कि मैं जब उनको चांटा मारता हूं तो मुझे वह चांटा मारेंगे, ऐसा फल नहीं होता, मैं चांटा मारता हूं, मेरे चांटा मारने में जिस वृत्ति से मैं गुजरता हूं, वह मुझे दुख दे जाती है। उनसे कुछ चांटा-वांटा लौटने का सवाल नहीं है। उनसे कोई चांटा... ।
हां, मैंने उन्हें चांटा मारा, अगर चांटे को वे साक्षी-भाव से देखते रहें तो वे नया कर्म नहीं बांधते हैं, क्योंकि वे सिर्फ साक्षी रहते हैं। मैंने चांटा मारा और उन्होंने देखा, वे कुछ भी नहीं कर रहे हैं मतलब। अगर वे मेरे चांटा मारने से मुझे चांटा मारें तो वह मेरे चांटे का फल नहीं है,

वह उनका कर्म है, जिसका फल उनको भोगना पड़ेगा। इस बात को ठीक से समझ लेना चाहिए।
मैंने चांटा मारा है उनको, और अगर वे चुपचाप देखते रहें और समझें कि
यह बेचारा पागल है, चांटा मारता है। और कुछ न करें, समझें, अपने रास्ते बढ़ जाएं। तो उन्होंने कोई कर्मबंध नहीं किया, मैंने कर्म किया और उसका फल भोगा। वह मेरे इस कर्मबंध कीशृंखला से उन्होंने कोई संबंध नहीं जोड़ा। लेकिन अगर वे मुझे चांटा मारें, उत्तर दें, तो वह मेरे चांटे का उत्तर नहीं है। मेरे चांटे का उत्तर तो मैं ही भोग रहा हूं, इस चांटे का उत्तर वही भोगने वाले हैं। यह उनकी अपनी कर्म-शृंखला है, इससे मुझे कुछ लेना-देना नहीं है।
और अन्याय कुछ भी नहीं है, अन्याय कुछ भी नहीं है। अन्याय इसलिए कुछ
भी नहीं है कि मैं चांटा मारता हूं तो मैं दुख भोग लेता हूं। और जिसको मैं चांटा मारता हूं तो सवाल उठता है कि उसके साथ तो अन्याय हो गया।

प्रश्नः आपने कहा कि चांटा मारने से दुख होगा ही, लेकिन ऐसी भी वृत्ति होती है कि मैं चांटा भी मारूं और आनंद भी लूं?

समझें इसे थोड़ा। हां, हां, इसकी भी बात कर लेंगे, इसकी बात करेंगे।
मैंने चांटा मारा किसी को तो मैंने कर्म किया, उसका मैंने समझ लीजिए दुख भोगा, फल भोगा, लेकिन जिसको मैंने चांटा मारा उसके साथ तो अन्याय हो गया--और मैं कहता हूं अन्याय कुछ भी नहीं है। अब मेरा कहना यह है कि मेरा चांटा मारना आधा हिस्सा है। और चांटा भी मैं उसी को मारता हूं जो चांटे को आकर्षित करता है। वह दूसरा हिस्सा है जो हमें दिखाई नहीं पड़ता। वह हमें दिखाई नहीं पड़ता। यह असंभव है, यह असंभव है कि मैं उसको चांटा मार दूं जो चांटे को आकर्षित नहीं करता है।
तो जो चांटे को आकर्षित करता है, उसी को चांटा पड़ता है। और आकर्षित करने की वजह से जितना दुख उसको उठाना है, वह उठाता है। वह आकर्षण में उसका हिस्सा है। यानी कोई आदमी इस दुनिया में अकेला मालिक नहीं होता, गुलाम भी उसके साथ गुलाम होना चाहता है, नहीं तो यह संबंध बन ही नहीं सकता है।
तो हम तो मालिक को थोप देते हैं कि तुमने क्यों गुलाम बनाया इस आदमी को? लेकिन हम कभी नहीं पूछते कि यह आदमी गुलाम बनना चाहता था? अगर यह नहीं बनना चाहता था तो असंभव था इसे गुलाम बनाना। इसे गुलाम बनाना ही असंभव था। एक फकीर हुआ है डायोजनीज, उसको कुछ लोगों ने पकड़ लिया। रास्ते से गुजरता था, नंगा फकीर था, उसे कुछ लोगों ने पकड़ लिया। उसने पूछा, कहां ले जाते हो पकड़ कर? तो उन लोगों ने कहा, हम गुलामों को पकड़ कर और बेचते हैं बाजारों में। डायोजनीज ने कहा, बहुत बढ़िया! चलो चलते हैं। पर वे लोग बड़े हैरान हुए, क्योंकि कोई आदमी को पकड़ो गुलामी के लिए तो वह भागता है, बचना चाहता है। डायोजनीज ने कहा, हाथ-वाथ छोड़ दो, क्योंकि मैं खुद ही चलता हूं। क्योंकि जो तुम्हारे साथ नहीं जाना चाहता, उसे तुम जंजीर बांध कर भी नहीं ले जा सकते। मैं तो चलता ही हूं। जंजीरें-वंजीरें अलग कर लो।
वे उसे ले गए हैं। वह उनके साथ ही चला गया। क्योंकि डायोजनीज यह कहता
था कि जो हो जाए, मैं उसी के साथ चला जाता हूं, यानी मैं इसमें कोई बाधा डालता ही नहीं। मैं इसमें कोई बाधा डालता ही नहीं।
उसे जाकर खड़ा कर दिया। वह बहुत तगड़ा फकीर था, बहुत स्वस्थ आदमी था। वह ठीक महावीर जैसा आदमी था और वैसा ही नग्न रहता और वैसा ही सुंदर था। उसे चौखटे पर खड़ा कर दिया जहां नीलाम, बिक्री होती थी गुलामों की। और बेचने वाले ने चिल्लाया कि कौन इस गुलाम को खरीदता है? उसने कहा, चुप। यह मत कहना। आवाज मैं ही लगा देता हूं। उसने चौखटे पर खड़े होकर कहा कि कोई एक मालिक को खरीदने को हो, तो आ जाए। उस आदमी ने कहा उस तख्ती पर खड़े होकर कि अगर किसी को किसी मालिक को खरीदना हो तो आ जाए। तो लोग बड़े चौंके, भीड़ लग गई। और लोगों ने कहा, क्या मजाक की बात है!
तो डायोजनीज ने कहा कि मैं तो हर हालत में मालिक ही रहूंगा। ये लोग मुझे पकड़ कर भी लाए--मैंने कहा, बंद करो, हटाओ ये जंजीरें। तो इन्होंने जल्दी से हटा लीं। क्योंकि मैंने कहा, मैं ऐसे ही चलता हूं, क्या ये

जंजीरें रखने की बात है? मैं तो मालिक हूं। इनसे पूछो, इनको मैं कितना डांटता-डपटता ला रहा हूं, ये जो मुझे पकड़ कर लाए हैं। और इनका कितना सुधार किया। इनको कितना ठीक किया मैंने। इनसे पूछो। और हालत सच में यही थी कि जो उसे पकड़ कर लाए थे, बड़े डरे हुए थे और वह आदमी बड़ी अकड़ से खड़ा हुआ था। उसने कहा, इसलिए मैंने कहा कि कोई भूल में गुलाम समझ कर मत खरीद लेना। क्योंकि जो गुलाम होना चाहे, वही गुलाम हो सकता है। हम तो मालिक ही हैं। तो किसी को मालिक खरीदना हो तो खरीद ले।
तो एक राजा को क्रोध आ गया। उसने कहा कि यह क्या बात करता है! तो उसने उसे खरीद लिया। खरीद लिया, उसे घर ले जाकर कहा कि इसकी टांग तोड़ डालो। इसकी टांग तोड़ डालो। तो डायोजनीज ने टांग आगे कर दी। उसने टांग आगे कर दी। राजा ने कहा, तुड़वा रहे हैं यह टांग! उसने कहा, तुम क्या तुड़वा रहे हो? हम खुद ही आगे कर रहे हैं। हम मालिक हैं। तुड़वाओगे तुम तब, जब हम बचाएं। तोड़ो! लेकिन ध्यान रहे, नुकसान में पड़ जाओगे, क्योंकि जो खरीदा है मुझको, फिर मैं किसी काम का न रह जाऊंगा। टांग टूट गई, फिर मैं काम का क्या रहूंगा? तुम्हारी मर्जी। यह टांग रही। राजा को भी ख्याल आया कि बात तो सच है, इसकी टांग तुड़वा दी तो यह एक और बोझ! और उसने कहा, मैं तो मालिक हूं और मालिक हो जाऊंगा। क्योंकि टांग टूटने से फिर मैं बैठा ही रहूंगा। उस राजा ने कहा, रहने दो, इस आदमी की टांग मत तोड़ो। उसने कहा, देखते हो तुम। मालकियत किसकी चली? डायोजनीज ने कहा, मालकियत किसकी चल रही है?
यह मैं कह रहा हूं कि जब एक आदमी गुलाम होता है, तब किसी न किसी रूप में, पैसिवली, वह गुलामी को आमंत्रित करता है। जब एक मालिक होने की प्रवृत्ति वाला आदमी और गुलाम होने की प्रवृत्ति वाले आदमी मिल जाते हैं तो तालमेल बैठ जाता है। एक गुलाम बन जाता है, एक मालिक हो जाता है। इसे ऐसा समझना चाहिए कि जैसे हम प्लग लगाते हैं न, तो उसमें हम वह जो पिन लगा रहे हैं, वही मतलब नहीं रखतीं, वे जो छेद हैं भीतर, वे भी मतलब रखते हैं। वे प्लग और छेद, जब पिन और छेद मेल खा जाते हैं तो बैठ हो जाती, नहीं तो नहीं होती।
जब मैं किसी को चांटा मारता हूं तो इतना ही काफी नहीं है कि मैंने चांटा मारा, वह आदमी किसी न किसी पैसिव ढंग से छेद का काम कर रहा है, चांटे को निमंत्रित कर रहा है, नहीं तो यह असंभव है।
इसलिए मैं कहता हूं, अन्याय असंभव है। लेकिन इसका यह मतलब नहीं, जो तुम दूसरी बात कहती हो, तो फिर हमें अन्याय मिटाने की कोशिश नहीं करनी चाहिए?
नहीं, वह कोशिश हमें करनी चाहिए। क्यों? उसका कारण है। हमें एक ऐसी दुनिया बनानी चाहिए, जहां न कोई चांटे को आकर्षित करता हो, न कोई चांटा मारने को उत्सुक होता हो। अन्याय कभी भी नहीं है। अन्याय का कुल मतलब इतना हो सकता है कि अभी ऐसे लोग हैं दुनिया में जो चांटा मारने को भी उत्सुक हैं और ऐसे लोग भी हैं दुनिया में जो चांटा खाने को उत्सुक हैं। अन्याय घटना में नहीं है, अन्याय इस स्थिति में है--इसको समझ लेना। यानी कोई घटना अन्यायपूर्ण नहीं है, घटना तो हमेशा जस्टीफाइड है। जो हो रहा है, वैसा ही होता है, वैसा ही हो सकता था।
जैसा तुमने पूछा कि सतियां होती थीं, तो सतियां होती इसलिए थीं कि कुछ स्त्रियां मरने को राजी थीं आग में, कुछ लोग आग में जलाने को राजी थे, तो नियम चलता था। अन्याय कुछ भी न था। जो स्त्रियां जलने को राजी नहीं थीं, वे उस दिन भी नहीं जलाई गईं। और जो स्त्रियां जलने को आज भी राजी हैं--सती की व्यवस्था नहीं है, लेकिन वे स्टोव से आग लगा लेती हैं, जहर डाल लेती हैं, कुछ भी करती हैं। यानी मेरा कहना यह है कि जो स्त्रियां नहीं--सारी स्त्रियां तो सती नहीं हो जाती थीं, कुछ स्त्रियां सती होती थीं।
और अगर तुम हिसाब लगाने जाओ तो जितनी औरतें आज आग लगा कर मरती हैं, वह अनुपात ज्यादा नहीं पाओगे, वह उतना ही पाओगे। इसको बड़ा सोचने जैसा मामला है। सती की व्यवस्था आग में जलने वाली औरतों के लिए सुविधा थी। कुछ लोग जलाने वाले भी हैं, वे अब भी जलवाने का इंतजाम करते हैं। इंतजाम बदल जाते हैं।

प्रश्नः किसी को ढकेल कर भी मारते थे, ढकेल कर भी सती करते थे।

ढकेल कर भी सती आप कर सकते हैं।

प्रश्नः सती?

हां, हां, ढकेल कर ही किया जाता था। लेकिन वह जिसको ढकेल कर भी किया जाता था, उसके भी ढकेले जाने की आंतरिक पूरी की पूरी मनोवृत्ति होती थी, नहीं तो नहीं हो सकता, यह असंभव है। यानी मैं यह कह रहा हूं कि घटना जब भी घटती है तो उसके दो पहलू हैं और उसमें हम एक ही पहलू को जिम्मेवार ठहराते हैं, वह हमारी गलती है, दूसरा पहलू उतना ही जिम्मेवार होता है।
जैसे हम कहते हैं अंग्रेजों ने आकर हमको गुलाम बना लिया, यह आधा हिस्सा है। हम गुलाम होने की तैयारी में थे, यह दूसरा हिस्सा है, जो हमें ख्याल में नहीं आता। और जब तक हम गुलाम होने की तैयारी में थे, गुलाम रहते। यह दूसरी बात थी कि अंग्रेज बनाते, कि हूण बनाते, कि फ्रेंच बनाते, यह गौण बात थी, लेकिन गुलामी घटती, क्योंकि गुलामी की हमारी तैयारी थी।
लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि मैं कहता हूं कि सती की प्रथा जारी रहना चाहिए। मैं कहता यह हूं कि यह प्रथा तो गलत है। प्रथा इसलिए गलत है कि जलाने वाला भी गलत काम कर रहा है, जलाया जाने वाला भी गलत कर रहा है। ये दोनों आदमी गलत हैं। दुनिया ऐसी होनी चाहिए, जहां न कोई जलाने को उत्सुक है, न कोई जलने को उत्सुक है। ऐसी अच्छी दुनिया हमें बनाए जाना चाहिए। लेकिन जो हो रहा है, वह तो न्याययुक्त है। इससे ज्यादा न्याययुक्त हो सकता है, और ज्यादा न्यायमुक्त हो सकता है। लेकिन जो होता है, वह हमेशा जस्टीफाइड है इस अर्थों में कि वही हो सकता था। आदमी की क्वालिटी और जीवन और चेतना बदले तो कुछ और होना शुरू हो जाएगा।
अन्याय सिर्फ एक है कि जैसी जीवन-व्यवस्था है, वह हमें बहुत दुख में डाल रही है। और दुख हम ही बना रहे हैं, कोई और बना नहीं रहा है। इससे बेहतर जीवन-व्यवस्था हो सकती है, जो ज्यादा हमें सुख में ले जाए, ज्यादा आनंद में ले जाए। और वैसी व्यवस्था के लिए हमें चेष्टारत होना चाहिए--व्यक्तिगत रूप से भी, सामूहिक रूप से भी।
अब जैसे कि उदाहरण के लिए मैं कहूं, जैसे रूस में समाजवाद है और सारे लोगों की संपत्ति बराबर हो गई है। तो लोग पूछते हैं कि जहां संपत्ति बराबर नहीं है, वहां तो अन्याय हो रहा है। लेकिन जहां संपत्ति बराबर नहीं है, वहां संपत्ति बराबर होने की कोई कर्म-रेखा, कोई संस्कार उस मुल्क की चेतना में है?
आखिर नहीं हैं तो क्यों अन्याय हो रहा है? जिस मुल्क में समानता का संस्कार अर्जित नहीं हुआ है चेतना में, वहां असमानता है, वह जस्टीफाइड है। जस्टीफाइड इस अर्थों में कि जो हमारी चेतना है, वह हमारा फल है।
अगर रूस की चेतना उस जगह पहुंच गई है सामूहिक रूप से जहां कि संपत्ति
की समानता संस्कार का हिस्सा हो गई तो ठीक है, उन्होंने समानता स्थापित कर ली है। और इसका परिणाम यह होगा कि रूस में वे आत्माएं जन्म लेने लगेंगी, जिनमें समानता के भाव का उदय हुआ है और जो असमानता के भाव की आत्माएं हैं, वे रूस में जन्म लेना बंद कर देंगी। हमें सिर्फ एक तरफ से देखने पर कठिनाई मालूम पड़ती है। अगर दोनों तरफ से देखेंगे, टोटल देखेंगे, तो रूस में वे आत्माएं पैदा होना बंद हो जाएंगी जो असमानता में ही जी सकती हैं।

प्रश्नः जब से दुनिया बनी है, वे अभी शुरू हुईं पैदा होनी, जब से यह समाजवाद आया रूस में?

चेतना का जो विकास है न! चेतना का जो विकास है, समानता बहुत विकसित चेतना की स्थिति है। असमानता सामान्य स्थिति है। आप, दूसरे के साथ अपने को समान मानने के लिए तैयार होना भी बड़ी उपलब्धि है, कि दूसरा मेरे समान है! चित्त तो यही कहता है कि यह हो कैसे सकता कि दूसरा मेरे समान है? असमानता सहज वृत्ति है। विषमता पैदा करना इसीलिए सामान्य रहा।

समानता पैदा करने वाली चेतनाएं पैदा हुईं--महावीर उन चेतनाओं में से
एक हैं--लेकिन ये व्यक्तिगत थीं। अब धीरे-धीरे उसकी सघनता बढ़ी है और सघनता उस जगह पहुंच गई है कि अब समान करने वाली चेतनाओं का भी एक बड़ा अंश पृथ्वी पर है। जिस दिन असमान वृत्ति वाली चेतनाएं क्षीण होती चली जाएंगी, वृत्ति क्षीण होती चली जाएगी, उस दिन सारी पृथ्वी पर समानता हो जाएगी। लंबा वक्त लगता है। लेकिन लंबा वक्त भी हमको दिखता है, क्योंकि हमारा वक्त का हिसाब ही बहुत छोटा सा है।
अब मनुष्य को हुए मुश्किल से दस लाख वर्ष हुए हैं। और जिसको हम मनुष्य कहते हैं, उसको तो मुश्किल से दस हजार साल हुए। पृथ्वी को बने दो अरब वर्ष हुए। और पृथ्वी बड़ी नई सी चीज है, कोई बहुत पुरानी चीज नहीं है। तारे हैं, जिनका कि कोई हिसाब लगाना मुश्किल है, कितने पुराने हैं। और जहां अंतहीन समय की धारा है, वहां दस-पांच हजार वर्ष का क्या मतलब होता है? कोई मतलब नहीं होता है। मनुष्य अभी भी बिल्कुल ही बालपन में है। इवोल्यूशन की जो व्यवस्था है, उसमें अभी हम बिल्कुल बच्चों की तरह हैं। अभी हम जवान भी नहीं हुए, बूढ़ा होना तो बहुत दूर की बात है। तो अभी थोड़ी सी बातें प्रकट होनी शुरू हुई हैं।
जैसे कि एक बच्चा है, वह चौदह साल का हुआ और उसमें सेक्स का भाव उठा, और लोग कहें कि चौदह साल से यह क्या कर रहा था? चौदह साल इसमें सेक्स का भाव नहीं उठा? चौदह साल गुजर गए, सेक्स का भाव नहीं उठा? जिंदगी आधी गुजर गई और सेक्स का भाव नहीं उठा, अभी उठा? लेकिन एक स्टेज है बच्चे की कि वह चौदह साल, पंद्रह साल का, सोलह साल का हो जाए तो प्रकृति उसको मानती है इस योग्य कि अब वह सेक्स की वृत्ति में उतरे।
मनुष्य-जाति की भी एक स्टेज होगी, जहां आकर प्रकृति मानेगी कि अब तुम समान हो सकते हो, अब तुम उस योग्यता के हो गए। वह दस हजार वर्ष लग जाएंगे, क्योंकि वह पूरी मनुष्य-जाति का सवाल है, एक व्यक्ति का सवाल नहीं है। हां, एक व्यक्ति तो कभी भी समान होने की वृत्ति को उपलब्ध हो सकता है। उसी को हम सम्यकत्व कहते हैं, समता कहते हैं, जो समान होने की--जिसके मन से यह भेद ही मिट गया है कि कौन नीचा है, कौन ऊंचा है, यह सवाल ही चला गया।
तो कोई महावीर, कोई बुद्ध इसको उपलब्ध हो जाए, इसमें अड़चन नहीं है। लेकिन मनुष्य-जाति इस तल पर आने में तो हजारों वर्ष ले लेती है।
अन्याय नहीं है इस अर्थ में कि प्रत्येक चीज अपने कारणों से न्याययुक्त है। अन्याय है इस अर्थों में कि जिंदगी इससे भी ज्यादा आनंदपूर्ण, ज्यादा शांति की, ज्यादा सौरभ की हो सकती है, उसकी दिशा में हमें कोशिश करनी चाहिए। तुम यह कहती हो कि फिर हम कोशिश भी क्यों करें? लेकिन तुम यह मान लेती हो कि कोशिश जैसे हम कर रहे हैं, वह कोशिश करना भी हमारे कर्म के संस्कार की पूरी व्यवस्था का हिस्सा होता है, वह न करने का तुम्हारा सवाल भी व्यर्थ है।

प्रश्नः कोशिश करने का भी कारण है?

हां, कारण है। कारण यही है कि तुम दुख को नहीं झेल सकती हो, नहीं देख सकती हो, तो उसे बदलने की कोशिश करती हो। तो हम जब यह सोचने लगते हैं कि न करें, तब हम गलती में पड़ जाते हैं। न करने के लिए कारण जुटाना बहुत मुश्किल है। और वही तो न करने का जिस दिन कारण जुटा लोगी, उस दिन सामायिक हो जाएगी और मोक्ष हो जाएगा। यानी मेरा मतलब समझ गईं न? करने का कारण ही हमने जुटाया है सब। जिस दिन हम उस हालत में आ जाएंगे कि हम कह सकें कि न करना भी काफी है, अब कुछ नहीं करते।

प्रश्नः इस नियम के बाहर हो जाएंगे?

तो नियम के हम बाहर हो जाएंगे। उस स्थिति का ही नाम मोक्ष है, जो करने
के बाहर हो गया। लेकिन जो करने के भीतर है, वह तो कुछ न कुछ करता ही रहेगा, करता ही रहेगा।

प्रश्नः (अस्पष्ट रिकार्डिंग)

हां, हां, ठीक है न! ठीक कहते हैं। और वह जो पुंगलिया जी कहते हैं, वह भी समझ लेना चाहिए। वह यह कहते हैं कि एक आदमी हो सकता है जो चांटा मारने में दुख न उठाए, आनंदित हो। बिल्कुल हो सकता है। एक आदमी हो सकता है, जो किसी को चांटा मारे और दुख बिल्कुल न उठाए और आनंदित हो। तो हमको लगेगा, फिर इसके साथ क्या होगा?
लेकिन हमें ख्याल नहीं है कि जो आदमी चांटा मारने में आनंदित हो, वह आदमी नहीं रह गया, वह आदमी से बहुत नीचे उतर गया, बहुत ही नीचे उतर गया। और उसने चांटा मारने में इतना खोया, जितना कि चांटा मार कर दुखी होने वाला नहीं खोता है।
इसको जरा ख्याल रख लेना। चांटा मार कर जो दुखी होता है, वह तो बहुत थोड़ा सा फल भोगता है, लेकिन जो चांटा मार कर आनंदित होता है, उसने तो भारी फल भोग लिया, उसका तो विकास का तल एकदम नीचे चला गया। वह तो एकदम जंगली हो गया, उसने दस हजार, बीस हजार, पच्चीस हजार साल में जो आदमी ने विकास किया, सब खो दिया। वह वहां चला गया। उसका विकास तो इतना पिछड़ गया कि उसको तो जन्मों-जन्मों का चक्कर हो जाएगा, जिसमें कि वह वापस उस जगह आए, जहां चांटा मारने से दुख होता है। मेरा मतलब समझ रहे हैं न आप? यानी फल वह भी भोग रहा है, बहुत भारी फल भोग रहा है, साधारण फल नहीं भोग रहा है। और उसका फल बहुत गहरा है, बहुत गहरा है।
हां, पूछो।

प्रश्नः आपने जो कहा कि आदमी पर जन्मतः कर्म की सूखी रेखा अंकित होती
है तो पुनर्जन्मों का शरीर इसे धारण कर लेता है। आपने बोला कि एक आदमी हत्या करता है दस-बारह जन्म तक, उसको हत्यारा होने की संभावना रहती है। पहले आपने यह बोला था कि जो वेश्या होती है, उसका सप्रेशन जैसे साध्वी होने का होता है। तो वेश्या की सूखी रेखा, कर्मों से तो उसको वेश्या ही होना चाहिए, वेश्या ही होने की शक्यता रहती है!

ठीक कहते हैं। साधारणतः, साधारणतः... तुम समझते हो दमन कर्म नहीं है? असल में हमारी कठिनाई क्या है, दमन कर्म है। दमन भी कर्म है, भोग भी कर्म है, वेश्या होना भी एक कर्म है।

प्रश्नः दमन भी कर्म है?

दमन भी उसका एक कर्म है। समझे न?

प्रश्नः उसकी भी सूखी रेखा है?

हां, तो दमन की भी सूखी रेखा रह जाती है। संन्यासी है एक, साध्वी है एक... ।

प्रश्नः तो यह सूखी रेखा से वह सूखी रेखा ज्यादा हो जाती है?

हजारों सूखी रेखाएं हैं। असल में होता क्या है कि हम कांप्लेक्सिटी
को नहीं समझ पाते। हम समझते हैं कि कोई एकाध रेखा है। हजारों हमारे कर्म हैं, हजारों रेखाएं हैं, हजारों रेखाओं का काट है, जाल है। उस सब जाल की निष्पत्ति हम हैं।
एक वेश्या है और प्रतिदिन जब भी वह वेश्या के काम से गुजरती है, तभी दुखी होती है। सामने उसके एक संन्यासिनी रहती है और वह दिन-रात सोचती है कि कैसा जीवन है अदभुत उसका! कैसा अच्छा होता कि मैं संन्यासिनी हो जाती! तो दोहरी रेखाएं पड़ रही हैं। वेश्या होने का कर्म कर रही है, उसकी एक रेखा पड़ रही है, लेकिन उससे भी प्रबल रेखा इसकी पड़ रही है कि वह वेश्या होने से पीड़ित है और नहीं होना चाहती और संन्यासिनी होना चाहती है।

सामने संन्यासिनी रह रही है, वह सुबह से सांझ तक साध रही है अपने को, ब्रह्मचर्य साध रही है। लेकिन जब भी वेश्या के घर में दीया जलता है और सुगंध निकलती है और संगीत बजने लगता है, तब उसका मन डांवाडोल हो जाता है, और वह सोचती है, पता नहीं वेश्या कैसा आनंद लूट रही होगी! तो साध्वी भी दो रेखाएं बना रही हैः एक रेखा बना रही है वह साध्वी होने की और एक रेखा बना रही है वह वेश्या होने के आकर्षण की।
अब इन सबके तालमेल पर निर्भर करेगा अंततः कि साध्वी वेश्या हो जाए कि वेश्या साध्वी हो जाए। मेरा मतलब समझे न तुम? हां, जिंदगी में हजार-हजार रेखाएं काम कर रही हैं। सीधी रेखा नहीं है कोई, सीधा रास्ता नहीं है। हजार पगडंडियां कट रही हैं। और... ।

प्रश्नः मल्टी कॉजल है?

मल्टी कॉजल है, मल्टी कॉजल है। और तुम खुद कभी थोड़ी देर इधर जाते हो, फिर थोड़ी देर इधर जाते हो। तुम भी कोई सीधी रेखा में ही नहीं चले जा रहे हो। कभी तुम अच्छे आदमी होने की रेखा में दो कदम चलते हो, दस कदम बुरे आदमी के होने में हट आते हो। तुम्हारी जिंदगी भी कोई ऐसी नहीं है कि तुम एक रास्ते पर सीधे चले जा रहे हो। तुम बार-बार चौरस्ते पर लौट आते हो, पीछे चले जाते हो, आगे जाते हो, बाएं-दाएं जाते हो, सब तुम घूम रहे हो। इस सब का टोटल हिसाब होगा। हिसाब मतलब यह कि तुम्हारे चित्त पर इस सबके संस्कार होंगे। वे सब संस्कार एक-दूसरे को काटेंगे। आखिरी हिसाब में जो कट कर तुम्हारी रेखा बन जाती है, वह तुम्हारा व्यक्तित्व निर्माण करेगी।
और फिर भी ऐसा नहीं है कि तुम इकहरा व्यक्तित्व लेकर पैदा होते हो। तुम अनंत संभावनाएं लेकर पैदा होते हो। एक बच्चा पैदा हुआ, उस बच्चे के संन्यासी होने की संभावना है, क्योंकि उसने संन्यासी होने की भी एक रेखा बांधी है; उसके गुंडा होने की भी संभावना है, उसने वह भी रेखा बांधी है। वह अनंत संभावनाएं लेकर पैदा हुआ है। अनंत सूखी रेखाएं उसे आमंत्रित करेंगी। अब कौन सी प्रबल सिद्ध हो जाएगी, वह उस पर बह जाएगा।
तो हमारी सारी कठिनाई जो होती है--क्योंकि नियम जो होते हैं, वे जब समझाता है कोई, तो वे सीधी रेखा में होते हैं, समझे न? और जिंदगी जो है, वह बहुत सी रेखाओं का काट-पीट है। जब समझाने मैं बैठता हूं तो तुम एक नियम समझते हो तो तुमको तत्काल दूसरा ख्याल आता है कि उसका क्या होगा। और समझाने में उपाय नहीं है कोई सब इकट्ठा समझाने का।
समझे न? सब इकट्ठा समझाने का उपाय नहीं है। अगर मैं क्रोध समझाऊंगा तो क्रोध समझाऊंगा, घृणा समझाऊंगा तो घृणा समझाऊंगा, प्रेम समझाऊंगा तो प्रेम समझाऊंगा, दया समझाऊंगा तो दया समझाऊंगा। और तुम एक साथ सब हो--दया भी, प्रेम भी, घृणा भी, क्रोध भी--सब एक साथ हो तुम। वे तुम्हारी सब संभावनाएं हैं। कोई तुम्हें अभी प्रेम से बात करेगा तो तुम एकदम प्रेमपूर्ण हो जाओगे और कोई आदमी छुरी दिखाएगा, तुम क्रोधपूर्ण हो जाओगे। तुम सब हो।
तो व्यक्ति तो है मल्टी कॉजल, अनंत कारण से भरा हुआ। और जब समझाने हम बैठते हैं तो एक ही कारण को चुनना पड़ता है। भाषा जो है, वह रेखाबद्ध है; और जिंदगी जो है, वह अनंत रेखाओं का जाल है।
इसलिए भाषा में बहुत भूल होती है। क्योंकि भाषा ऐसी सीधी जाती है एक रेखा में। मैं करुणा समझाऊंगा तो करुणा समझाता चला जाऊंगा। अब करुणा ही के साथ ही साथ एकदम से क्रोध कैसे समझाऊं? घृणा कैसे समझाऊं? वह समझाना मुश्किल है। फिर उनको अलग समझाऊंगा। ये सब अलग-अलग रेखाएं बन जाएंगी। और व्यक्ति में ये सब रेखाएं अलग-अलग नहीं हैं, सब इकट्ठी जुड़ी खड़ी हैं, सब इकट्ठी जुड़ी खड़ी हैं।

प्रश्नः तो जो बलवान रेखा है, उससे वह शरीर धारण कर लेगा! और जो दूसरी कमजोर रेखाएं हैं उसकी छाया उसके साथ आएगी ही?

बिल्कुल साथ होगी, बिल्कुल साथ होगी, बिल्कुल साथ होगी। सब साथ होगा।

प्रश्नः एक कमरा है, उसमें मच्छर हैं, चींटियां हैं, मक्खियां हैं, तो
एक मन होता है कि यह फ्लिट लगा दूं, एक मन होता है उस वक्त फ्लिट नहीं लगाऊं। उसमें मन की स्थिति बड़ी डांवाडोल हो जाती है। तो उसमें क्या उचित है?

उचित तो वही है, जो आप कर सकोगे, करोगे। समझे न आप? जो आप कर सकोगे, वही करोगे। और उचित मान कर अगर चले तो आप मुश्किल में पड़ जाओगे। अगर मैंने कह दिया कि फ्लिट लगाना उचित नहीं, तो रात भर मुझको गाली दोगे, क्योंकि वह मच्छर तो काटेंगे ही। या मैंने कह दिया फ्लिट लगाना उचित है, तो आप समझोगे कि हिंसा आपने की, फल मैं भोगूंगा।
इसलिए उचित-अनुचित का सवाल नहीं है, आप सोचो और जीओ। जो ठीक लगे, करो।

महावीर: मेरी दृष्टि में
तेरहवां प्रवचन

जाति-स्मरणः महावीर-उपाय

पहले थोड़ी सी बातें प्रश्नों के संबंध में ही लें।
यह जरूर पूछा जा सकता है कि यदि पता हो, एक दुर्घटना होने वाली है, तो रुक जाना चाहिए, क्यों जाना?
मैंने जो मेहरबाबा का उदाहरण दिया, वह सिर्फ समझाने को। इस बात को समझाने को कि क्या होने वाला है इसे भी जानने की पूरी संभावना है। लेकिन जो उन्होंने किया, मैं उसके पक्ष में नहीं हूं। उनका उतर जाना या मकान में न ठहरना, इसके मैं पक्ष में नहीं हूं। क्योंकि मेरी मान्यता यह है कि जीवन में अगर पूर्ण आनंद और पूर्ण शांति उपलब्ध करनी हो तो स्वयं को प्रवाह में ऐसे छोड़ देना चाहिए जैसे किसी ने नदी में अपने को छोड़ दिया हो--जो तैरता नहीं है, जो सिर्फ बहता है, जो हो रहा हो, उसमें सहज बहता है।
जीसस को जिस दिन सूली लगी, उसके एक क्षण पहले जीसस ने जोर से चिल्ला कर कहा, हे परमात्मा, यह क्या करवा रहा है!
शिकायत आ गई, और परमात्मा गलत कर रहा है, यह भी आ गया, और जीसस परमात्मा
से ज्यादा जानते हैं, यह भी आ गया। लेकिन तत्क्षण जीसस को समझ में आ गई बात कि भूल हो गई। तो दूसरा वाक्य जो उन्होंने कहा, वह यह कहा कि मुझे क्षमा कर। मैं क्या जानता हूं! तेरी मर्जी पूरी हो। फिर तो इसके बाद जो आखिरी वचन उन्होंने बोला, उसमें कहा कि इन सब लोगों को माफ कर देना, क्योंकि ये लोग नहीं जानते कि ये क्या कर रहे हैं।
यह उन लोगों की तरफ इशारा करके कहा, जो उन्हें सूली दे रहे थे। और मेरी अपनी समझ यह है कि जिस क्षण जीसस ने यह कहा कि हे परमात्मा, यह क्या कर रहा है, यह क्या करवा रहा है, यह क्या दिखला रहा है, तब तक वे जीसस ही हैं। और जैसे ही उन्होंने समग्र मन से यह कहा कि तेरी मर्जी पूरी हो, क्षमा कर, उसी क्षण वे क्राइस्ट हो गए।
तो मैंने जो यह कहा कि मेहरबाबा लौट गए मकान से या हवाई जहाज से उतर गए, इसका बहुत गहरा अर्थ यह है कि व्यक्ति का अहंकार अभी शेष है, अभी सुरक्षित है, अभी विश्व के प्रवाह में वह अपने अलग होने को, अपने पृथक होने को, अपने को बचाने को आतुर और उत्सुक है।
तो जो मैंने कहा, तो मैंने यह नहीं कहा कि जो किया है, वह ठीक किया। कहा मैंने कुल इतना है कि इस बात की संभावना है कि पूर्व से जाना जा सके। लेकिन परम स्थिति तो यही है कि जीवन एक बहाव हो--तैरना भी न रह जाए। जिंदगी जहां ले जाए और जो हो, उसके साथ चुपचाप राजी हो जाना है। ऐसी स्थिति को ही मैं आस्तिकता कहता हूं। मैं कहूंगा मेहर बाबा आस्तिक नहीं हैं।
अब मुश्किल होगी यह बात समझना। आस्तिकता का मतलब ही यह है। मृत्यु भी
आए तो वह वैसे ही स्वीकृत है, जैसा जीवन स्वीकृत था। भेद क्या है मृत्यु और जीवन में? मकान के बचने में और गिरने में फर्क क्या है? कहूंगा तो मैं गलत ही वैसा करने को। मैं तो राजी नहीं हूं। जिंदगी जैसी सहज जाती है चुपचाप, मौन, जैसे पौधे अंकुरित होते हैं, फूल बनते हैं--इतना ही शांत और चुपचाप बहाव होना चाहिए। जिसमें अहंकार कोई अवरोध ही नहीं डालता, कोई बाधा ही नहीं डालता। तो ही मुक्ति, तो ही मुक्ति पूरे अर्थ में संभव है। इसलिए मैं तो वैसा करने को गलत ही कहता हूं।
और दूसरी बात भी इसने पूछी है, वह भी बहुत अच्छी है। यदि संकल्प से सब
हो सकता है, तब तो फिर कुछ भी किया जा सकता है--धन भी, यश भी--कुछ भी इकट्ठा किया जा सकता है, चाहे परोपकार के लिए, चाहे परस्वार्थ के लिए।
यह भी थोड़ा समझने जैसा है। निश्चित ही किया जा सकता है, इसमें कोई कठिनाई नहीं है, लेकिन वही कर सकेगा, जो अभी धन के नीचे जी रहा है।
अभी कल ही बात होती थी, रामकृष्ण को कैंसर हो गया और रामकृष्ण के भक्त उनसे कहने लगे कि आप एक बार क्यों नहीं कह देते हैं मां को कि कैंसर ठीक करो!

तो रामकृष्ण ने कहा, दो बातें हैं। एक तो जब मैं उसके सामने होता हूं,
तब कैंसर भूल ही जाता है। यानी ये दो बातें एक साथ होती ही नहीं। जब मैं उस दशा में होता हूं, तब कैंसर होता ही नहीं; और जब कैंसर होता है, तब मैं उस दशा में नहीं होता। इन दोनों का कहीं तालमेल नहीं होता। और अगर हो भी जाए तो मैं परमात्मा को कहूं कि कैंसर ठीक कर दे, इसका मतलब हुआ कि मैं परमात्मा से ज्यादा जानता हूं। इसलिए जो हो रहा है, उसे सहज स्वीकार के और कोई मार्ग नहीं।
विवेकानंद बहुत गरीब थे। पिता मरे विवेकानंद के तो बहुत कर्ज छोड़ गए।
तो कई लोगों ने विवेकानंद को कहा, रामकृष्ण के पास जाते हो, उनसे पूछ लो कोई तरकीब, कोई रास्ता कि धन उपलब्ध हो जाए, कर्ज चुका दो। ऐसी हालतें थीं कि दिन-दिन भर विवेकानंद भूखे घूमते रहते, खाने को नहीं था। या घर में इतना कम खाने को होता कि मां अकेली खा सकती या विवेकानंद खा सकते, तो वे कहते, आज मैं मित्र के घर निमंत्रित हूं, तुम खाना खा लो, मैं खाना खाकर लौटता हूं। और वे भूखे हंसते हुए घर आ जाते कि बहुत ही बढ़िया खाना आज मित्र के घर मिला। इतना भी नहीं था घर में उपाय, इंतजाम।
तो मित्रों ने कहा, रामकृष्ण से पूछ लो। और रामकृष्ण के पास विवेकानंद गए और कहा कि क्या करूं, बहुत गरीबी है। उन्होंने कहा, इसमें कहने की क्या बात है। सुबह मां को कह देना प्रार्थना के बाद कि ठीक कर दे, सब इंतजाम कर दे। विवेकानंद गए, प्रार्थना करके वापस लौटे। रामकृष्ण ने पूछा, कहा? तो विवेकानंद ने कहा कि मुंह ही न खुला, क्योंकि यह बात ही अशोभन मालूम पड़ी कि प्रार्थना से भरे चित्त में और पैसे को ले आया जाए। फिर दूसरे दिन, फिर तीसरे दिन, भूखे हैं, रोटी नहीं मिल रही है, कर्जदार पीछे पड़े हैं, और रामकृष्ण रोज-रोज पूछते हैंः क्यों, आज कहा? तो वह लौट कर कहते हैं कि नहीं परमहंसदेव, यह नहीं हो सकेगा, क्योंकि जब प्रार्थना में होता हूं, तब इतना बड़ा धनी हो जाता हूं कि निर्धनता कहां, कैसी! कौन निर्धन! और जब प्रार्थना के बाहर आता हूं, तब फिर वही निर्धन हो जाता हूं, जो था। तो जब प्रार्थना के बाहर होता हूं, तब तो मन करने लगता है कह दूं, लेकिन जब प्रार्थना में होता हूं तो मुझसे धनी कोई होता ही नहीं। संकल्प जितना-जितना प्रगाढ़ होता चला जाएगा, उतना ही उसका उपयोग कम होता चला जाएगा।
यह समझने जैसी बात है। असल में संकल्प के उपयोग की हमारी जो चित्त-वृत्ति है, वह संकल्प के न होने के कारण ही है। जैसे-जैसे संकल्प होता जाएगा घना, प्रगाढ़, वैसे-वैसे संकल्प का उपयोग बंद होता चला जाएगा।
इस जगत में सिर्फ शक्तिहीन ही शक्ति के उपयोग की बात सोचते हैं। इस जगत में जिनके पास शक्ति है, वे कभी उपयोग करते ही नहीं, क्योंकि शक्ति की उपलब्धि में ही शक्ति के अनुपयोग की संभावना भी छिपी है। आकस्मिक, अनायास कुछ होता हो, हो जाता हो; लेकिन सचेत, विचारपूर्वक कोई ऐसा उपयोग नहीं होता। और फिर हमें ऐसा लगता है--हमें ऐसा लगता है, क्योंकि धन हमारे लिए मूल्यवान मालूम होता है।
एक छोटा बच्चा है, खिलौने उसे बहुत मूल्यवान हैं। और उसका पिता उससे कहता है कि भगवान से मैं जो भी प्रार्थना करूं, वह हो जाए। तो वह कहता है, मेरे लिए खिलौने क्यों नहीं मांग लेते? तो वह बाप कहे, पागल, खिलौने मांग कर भी क्या करेंगे!
लेकिन बाप के लिए खिलौने बेकार हो गए हैं, और यह कल्पना के बाहर है कि परमात्मा से खिलौने मांगने जाया जाए। लेकिन बच्चे को यह समझ के बाहर है कि खिलौने जैसी बढ़िया चीज भगवान से क्यों नहीं मांग लेते हो! सबूत हो जाएगा कि कैसा भगवान है, कैसी शक्ति है।
खिलौने जब तक हमें सार्थक हैं, तब तक हमें लगता है कि अगर भगवान भी मिल जाए तो खिलौने ही मांग लेंगे। अगर संकल्प जग जाए तो धन ही ले लेना है। ऐसे चित्त में संकल्प जगेगा भी नहीं, यह भी ध्यान रहे। ऐसे चित्त की हमारी धारणा होगी तो संकल्प कभी जगेगा नहीं। संकल्प जग सकता है अगर ये चित्त की धारणाएं चली जाएं। और संकल्प जग जाए तो फिर इनका प्रयोग करने का उपाय नहीं, क्योंकि वे धारणाएं छूटें, तभी संकल्प जगता है।

यानी कठिनाई कुछ ऐसी है कि जैसा बैंक के संबंध में कहा जाता है कि बैंक उस आदमी को पैसे उधार देता है, जिसे पैसे की कोई जरूरत नहीं है। और जिस आदमी को जरूरत हो, उसे बैंक पैसा उधार नहीं देता, क्योंकि जिसे जरूरत हो उससे लौटने की संभावना नहीं है। तो बैंक पक्का पता लगा लेता है कि इस आदमी को पैसे की जरूरत तो नहीं है तो फिर बैंक जितना चाहे उतना उधार देता है। और पक्का पता लग जाए कि इस आदमी को पैसे की बहुत जरूरत है तो बैंक हाथ खींच लेता है, पैसे नहीं देता।
यह बड़ा उलटा है नियम। होना तो ऐसा ही चाहिए था कि जिसे पैसे की जरूरत हो, उसे बैंक पैसा दे। लेकिन बैंक उसको पैसा नहीं देता। बैंक सिर्फ उसी को पैसा देता है, जिसको कोई जरूरत नहीं है।
यह जो विराट शक्ति है परमात्मा की, यह उन्हीं को उपलब्ध हो जाती है, जिन्हें कोई जरूरत नहीं है। और जिन्हें जरूरत है, उन्हें उपलब्ध नहीं होती!
जीसस का एक बहुत अदभुत वचन है, आश्चर्यजनक है, कहा है कि जो अपने को बचाएगा, वह नष्ट हो जाएगा; और जो अपने को खोने को राजी है, उसे कोई भी नष्ट नहीं कर सकता है। जो मांगेगा, उससे छीन लिया जाएगा; और जो छोड़ कर भागने लगेगा, उसे दे दिया जाएगा।
असल में मांगने वाला चित्त संकल्प कर ही नहीं सकता, इसे ध्यान रखना। उसका कारण है क्योंकि मांगने वाला चित्त इतना दीन और दरिद्र होता है कि संकल्प जैसी बड़ी संपदा उसके पास नहीं हो सकती। असल में न मांगने वाला ही संकल्प कर सकता है। लेकिन हम संकल्प भी इसलिए करना चाहते हैं कि कुछ मांग लेंगे और तब सारी कठिनाई हो जाती है, सारी असुविधा हो जाती है।
तीसरी बात भी इधर ही कर लेनी चाहिए। जैसा मैंने कहा कि महावीर को कोई फर्क नहीं पड़ता, शादी हो तो ठीक, न हो तो ठीक, सब बराबर है। एक सीमा पर सब बराबर है। और जहां सब बराबर है, वहीं मुक्ति है। और जहां तक भेद है, वहां तक मुक्ति नहीं है। जहां तक शर्त है हमारी, च्वाइस है कि ऐसा होगा तो ही ठीक और ऐसा होगा तो सब गलत हो जाएगा, वहां तक हम बंधे हुए लोग हैं। क्योंकि बांधता क्या है? च्वाइस ही बांधती है। चुनाव ही बांधता है। मैं कहता हूं बस ऐसा, तब तो ठीक, शांत रहूंगा, आनंदित रहूंगा; ऐसा हुआ तो फिर मैं अशांत हो जाऊंगा, गैर-आनंदित हो जाऊंगा। तो फिर मेरी शांति और अशांति और मेरा आनंद और निरानंद बंधे हुए हैं कहीं। मैं मुक्त नहीं हूं। ऐसा नहीं है कि मैं हर हालत में आनंदित रहूंगा।
जो आदमी हर हालत में आनंदित है, उसकी कोई शर्त नहीं है। उसकी तो यह भी शर्त नहीं है कि वह बीमार रहे कि स्वस्थ, जिंदा रहे कि मर जाए, शादी हो कि न हो, मकान हो कि न हो। उसको कोई शर्त ही नहीं है। बेशर्त जीता है। जो भी हो, जीता है।
तो यह पूछना जरूरी है। लेकिन शायद मेरे संबंध में कुछ तुम्हें पता नहीं, इसलिए ऐसा पूछते हो। शादी के लिए मना तो मैंने कभी किया ही नहीं। मना करने की कोई बात ही नहीं है, क्योंकि मना भी वही करता है, जिसके मन में कहीं हां छिपा हो। हां छिपा होता है तो ही न सार्थक होती है। और कई बार तो ऐसा होता है कि न का मतलब ही हां होता है, यानी न सिर्फ ऊपर ही ऊपर होती है, हां भीतर होती है।
मैं तो विश्वविद्यालय से लौटा तो घर के लोग चिंतित ही थे कि, सबसे बड़ी चिंता यही थी, शादी ही बड़ी चिंता थी। तो मुझसे पहली ही रात मेरी मां ने पूछा कि शादी के संबंध में क्या ख्याल है?
तो मैंने उससे कहा कि दो-तीन बातें समझने जैसी हैं। उठा दिया सवाल तो बहुत ही अच्छा है। पहला तो यह कि मैंने अब तक शादी नहीं की, इसलिए मुझे कोई अनुभव नहीं, तो मेरे हां और न दोनों ही गैर-अनुभवी के होंगे, तो क्या मतलब है उन हां और न का। तुमने शादी की है, तुम्हारा जिंदगी का अनुभव है। तो तुम पंद्रह दिन सोच लो और मुझे पंद्रह दिन सोचने के बाद कहना कि तुमने अगर शादी करके कोई ऐसा आनंद पाया हो, जिससे तुम्हारा बेटा वंचित न रह जाए, तो तुम मुझसे कह देना, मैं शादी कर लूंगा। और अगर तुम्हें लगता हो कि शादी करके तुमने कोई आनंद नहीं पाया, और तुम्हें शादी के बाद कई दफे ऐसा ख्याल

आया हो कि न की होती तो ही अच्छा था, तो तुम मुझे सचेत कर देना कि कहीं मैं कर न बैठूं।

प्रश्नः यह तो न ही हो गई!

न, मेरी तरफ से न न है, न हां है। मेरी तरफ से मैं कोई बात ही नहीं कर रहा। मेरी तरफ से कोई कंडीशन ही नहीं, कोई शर्त ही नहीं है। मैंने बात सीधी सामने रख दी, क्योंकि मेरा कोई अनुभव नहीं है, अभी मैंने शादी की नहीं है। कर सकता हूं, इसकी कोई कठिनाई नहीं है। लेकिन जो मुझे प्रेम करते हैं, उनको इतना तो मेरे लिए सोचना ही चाहिए कि उन्होंने जो अनुभव किया है, वह अगर ऐसे किसी आनंद का है, जिससे मैं वंचित रहूं तो उन्हें दुख होगा, तो मैं शादी कर लूंगा। फिर मुझसे पूछना ही मत, मुझसे कहना शादी करो। और अगर कहीं तुम्हारा ऐसा अनुभव हो कि तुमने दुख पाया हो, दुख ही पाया हो, तो यह तो मां होने के नाते पहला काम तुम्हारा होगा कि कहीं भूल-चूक से मैं शादी न कर लूं, तुम मुझे सचेत कर देना। तुम्हारी बात सुन कर मैं फिर कुछ विचार कर लूंगा। पंद्रह दिन बाद उसने मुझे कहा, मुश्किल में डाल दिया है, क्योंकि खोजने गई हूं तो कैसा आनंद! अब मैं तो नहीं कह सकती थी कि करो, वैसे तुम्हारी मर्जी।
मैंने कहा तो अब जब मेरी मर्जी होगी, मैं तुमसे कहूंगा। यानी तब तक के लिए बात तो स्थगित हो गई न। जब मेरी मर्जी होगी, मैं तुमसे कहूंगा। और वह मर्जी नहीं हुई। न मैंने कभी नहीं कहा है, अभी भी नहीं कहा है। अभी भी कोई समझाने-बुझाने वाला आ जाए तो मैं राजी हो सकता हूं। इसमें क्या मुश्किल है! इसमें कोई तकलीफ की बात नहीं है। इसमें कोई अड़चन भी नहीं है।
मेरे पिता के एक मित्र थे। बड़े वकील थे, बड़े तार्किक थे। तो पिता ने उनको कहा कि आप आकर जरा समझाएं। वे आ गए। दूसरे गांव रहते थे। रात आकर रुके।
तो बड़े दबंग आदमी थे, बड़े वकील थे, बड़े तार्किक, बड़े नेता थे। मुझसे आते ही से कहा कि चाहे कितने ही दिन मुझे रुकना पड़े यहां, मैं यह सिद्ध करके जाने वाला हूं कि शादी बड़ी उपयोगी है। मैंने कहा, इसमें देर की जरूरत ही नहीं। आज ही, इतने दिन क्या रुकने की जरूरत है, आप मुझे समझा दें, अभी मैं राजी हो जाऊंगा। लेकिन ध्यान रहे, यह एकतरफा तो नहीं रहेगा मामला! उन्होंने कहा, क्या मतलब?
मैंने कहा कि आप समझाएंगे तो मुझे भी कुछ बोलने का हक होगा?
बिल्कुल हक होगा।
मैंने कहा कि अगर आपने सिद्ध कर दिया कि शादी करना आनंदपूर्ण है, तो मैं कल सुबह हां भर दूंगा। शादी हो जाए। और अगर कहीं यह सिद्ध हो गया कि आनंदपूर्ण नहीं है, तो आपका क्या इरादा है, आप शादी छोड़ने को राजी हैं? क्योंकि अकेला एकतरफा तो ठीक नहीं है न यह सब, यह तो अन्याय हो जाएगा। यानी मैं तो दांव लगाऊं जिंदगी, और आप बिना दांव के लड़ते हों, तब तो मजा नहीं आएगा।
उन्होंने कहा कि ठहर जाओ, मैं सुबह तुमसे बात करूंगा। सुबह मेरे उठने
के पहले वे जा ही चुके थे। पिता से कह गए थे कि मैं इस झंझट में नहीं पड़ता। इस झंझट की मुझे कोई जरूरत नहीं।
संदिग्ध तो हमारा मन है भीतर। फिर बाद में बहुत वर्ष बाद जब मुझे मिले, तो उन्होंने कहा कि तुमने मुझे बहुत चिंता में डाल दिया, रात भर मैं सो नहीं सका। और फिर मैंने कहा कि यह ज्यादती होगी, क्योंकि मैं खुद ही छोड़ने की हालत में रहता हूं निरंतर। यह बिल्कुल ज्यादती होगी। तो मैंने कहा कि इस बात में मुझे पड़ना ही नहीं है, और मैं हार जाता, क्योंकि मैं तो भीतर से ही कमजोर था। यानी मैं तो खुद ही इस पक्ष का हूं कि यह बहुत गलती हो गई है, लेकिन अब कोई उपाय नहीं।
मैंने लेकिन मना नहीं किया अभी तक। कोई समझाने वाला नहीं आया, कोई क्या करे, इसमें कोई उपाय नहीं है। इसलिए उसकी चिंता नहीं लेनी चाहिए।

प्रश्नः कर्म के संबंध में महीपाल जी पूछते हैं कि यह जो विकास हो रहा है, पशु-पक्षी हैं, मनुष्य योनि तक आ रहे हैं, यह सहज विकास का ही परिणाम है आटोमेटिक, अपने आप चल रहा जो विकास है, या कि उनकी सचेत चेष्टा भी इसमें सहयोगी है?

विकास दो तलों पर चल रहा है। डार्विन की खोज बड़ी गहरी है लेकिन एकदम अधूरी है। डार्विन ने शरीरों के विकास पर सारा का सारा सिद्धांत निर्धारित किया है।
शरीरों में एक विकास-क्रम मालूम पड़ता है। ऐसा मालूम पड़ता है कि कभी न कभी, कुछ लाख वर्ष पहले बंदर के ही शरीर से मनुष्य के शरीर की गति हुई होगी। ऐसा बंदर के शरीर-व्यवस्था, उसके मस्तिष्क, उसकी हड्डी, मांस-पेशियां, सब ऐसी खबर देती हैं कि उससे ही मनुष्य का शरीर आया होगा। और ऐसे खोज करते-करते कहा जा सकता है कि किसी न किसी रूप में मछली से सारी जीवन-यात्रा शुरू हुई होगी। और मछली भी किसी न किसी प्रकार के पौधे से ही आई होगी। इस सबके लिए लंबा वैज्ञानिक अन्वेषण हुआ है। और यह बात तय हो गई है कि इस तरह एक क्रमिक विकास शरीर में हो रहा है।
लेकिन चूंकि विज्ञान आत्मा की फिक्र ही नहीं करता, इसलिए उसकी बात एकदम अधूरी है। यह बात बिल्कुल ही ठीक है कि शरीरों में विकास हो रहा है, लेकिन यह अधूरी है। और आधे सत्य असत्य से भी ज्यादा खतरनाक होते हैं, क्योंकि आधे सत्यों में सत्य होने का भ्रम पैदा होता है, पूर्ण सत्य होने का भ्रम पैदा होता है।
यह विकास का आधा हिस्सा है। आधा हिस्सा है, जिसके लिए महावीर जैसे लोगों की खोज कीमती है। वे यह कहते हैं कि चेतना भी विकसित हो रही है। अगर शरीर ही है सिर्फ, तब तो सब विकास आटोमेटिक है। अगर शरीर ही है बस, तब तो सब विकास अपने आप हुआ है। परिस्थितिगत है और प्रकृति के नियम के अनुकूल होता चला जा रहा है। क्योंकि शरीर अकेला अगर हो तो इच्छा का सवाल ही नहीं उठता। लेकिन अगर चेतना भी है तो विकास आटोमेटिक कोई हालत में नहीं हो सकता, क्योंकि चेतना का मतलब ही यह है कि जो आटोमेटिक नहीं है, जिसमें स्वेच्छा है।
एक पंखा चल रहा है, तो पंखे का चलना बिल्कुल आटोमेटिक है, यांत्रिक है, स्वचालित है। पंखे की कोई इच्छा काम नहीं कर रही। लेकिन अगर पंखे की आत्मा भी हो तो पंखा कभी कह भी सकता है कि आज बहुत सर्दी है, नहीं चलते। या कह भी सकता है कि आज बहुत थक गए हैं, बस अब नहीं आज चलने का मन है। कभी तेजी से भी चल सकता है--अगर प्रेमी पास आ जाए। और अगर दुश्मन आ जाए तो बंद भी हो सकता है। लेकिन पंखे के पास कोई चेतना नहीं है, इसलिए गति जो है, वह स्वचालित है।
चेतना है, यही इस बात का सबूत है कि विकास स्वचालित, आटोमेटिक नहीं हो सकता, उसमें चेतना सक्रिय रूप से भाग लेगी। और चेतना भाग ले रही है। इसलिए जो हमें विकास दिख रहा है, जितने पीछे हम उतरते हैं, जितने पीछे, उतना ही स्वचालित विकास की मात्रा बढ़ती चली जाती है और सचेष्ट विकास की मात्रा कम होती चली जाती है--जितने पीछे हम हटते हैं।
जैसे अमीबा है, आखिरी, पहला कदम जीवन ने जहां उठाया, तो वहां हम कह सकते हैं कि शायद निन्यानबे प्रतिशत तो आटोमेटिक है, एकाध प्रतिशत विकास स्व-इच्छा से हो सकता है। लेकिन जैसे-जैसे हम ऊपर की तरफ आते हैं, जैसे मनुष्य है, तो मनुष्य के साथ तो मामला ऐसा है कि अगर विकास होगा तो निन्यानबे प्रतिशत स्वेच्छा से होगा, नहीं तो विकास होगा ही नहीं।
और इसीलिए मनुष्य कोई पचास हजार वर्षों से ठहर गया है। यानी मनुष्य में अब कोई विकास परिलक्षित नहीं हो रहा है आटोमेटिक। दस लाख वर्ष के भी जो शरीर मिले हैं, उन शरीरों में भी कोई विकास नहीं हुआ है। दस लाख वर्ष के जो अस्थिपंजर मिले हैं और हमारे अस्थिपंजर में कोई बुनियादी फर्क नहीं पड़ा है। न हमारे मस्तिष्क में कोई बुनियादी फर्क पड़ा है।
तो ऐसा प्रतीत होता है कि मनुष्य में तो निन्यानबे प्रतिशत स्वेच्छा
पर निर्भर करेगा। कोई बुद्ध, कोई महावीर, यह स्वेच्छा का विकास है। और अगर

हम स्वचालित विकास की प्रतीक्षा करते रहें तो एक ही प्रतिशत विकास की संभावना है, जो बहुत धीरे-धीरे घिसटती रहेगी।
जितने पीछे हम जाते हैं, उतना स्वेच्छा कम है, यांत्रिकता ज्यादा है। मनुष्य तक आते हैं तो स्वेच्छा ज्यादा है, यांत्रिकता कम है। लेकिन निम्नतम स्थिति में भी एक अंश स्वेच्छा का है। वह एक अंश स्वेच्छा का ही उसे चेतन बनाता है, नहीं तो चेतन होने का कोई अर्थ नहीं है। यानी चेतन होने का अर्थ ही यह है कि विकास में हम भागीदार हैं और पतन में हम जिम्मेवार हैं। चेतना का मतलब ही यह है कि दायित्व है हमारा, रिस्पांसिबिलिटी है, जो भी हो रहा है उसमें, हम जो हैं उसमें, हम जो हो सकते हैं उसमें। अंततः हम जिम्मेवार हैं। सारा विकास--चाहे पशु, पक्षी, मछली, कीड़े-मकोड़े, पौधा--कोई भी विकसित हो रहा हो, उसकी भी इच्छा सक्रिय होकर काम रही है।
पहचानना मुश्किल है हमें, पहचानना बहुत मुश्किल हो जाता है कि हम कैसे पहचानें! पशु-पक्षियों को हम कैसे जानें कि उनकी स्वेच्छा से वे विकसित होकर और ऊंची योनियों में प्रवेश कर रहे हैं!
एक ही रास्ता है। और रास्ते हो सकते हैं लेकिन सरलतम एक ही है। और वह
यह है कि जो मनुष्य-चेतनाएं आज हैं, अगर हम उन्हें उनके पिछले जन्मों में उतार सकें तो हम पा जाएंगे पता इस बात का कि वे पिछले जन्मों में पशुओं और पौधों से भी होकर आए हैं।
जाति-स्मरण के गहरे प्रयोग महावीर ने किए हैं। और प्रत्येक व्यक्ति
जो उनके निकट आता, उसे जाति-स्मरण के प्रयोग में ले जाते, ताकि वह जान सके कि उसकी पिछली यात्रा क्या है। यहां तक भी वह जान सके कि वह पशु कब था, कैसा पशु था, क्या पशु होने में उसने किया कि वह मनुष्य हो सका। और अगर यह उसे पता चल जाए कि पशु होने में उसने कुछ किया, जो उसे मनुष्य बनाया, तो उसे ख्याल में हो सकता है कि मनुष्य होने में कुछ करे तो और ऊपर जा सकता है। कुछ करने से ही वह आया है।
महावीर एक व्यक्ति को समझा रहे थे। रात है। महावीर का संघ ठहरा। हजारों साधु-संन्यासी ठहरे हुए हैं। एक बड़ी धर्मशाला में निवास है। एक राजकुमार भी दीक्षित हुआ है, लेकिन वह नया दीक्षित है। पुराने साधुओं को ज्यादा ठीक जगह मिल गई है। वह जो बीच का रास्ता है धर्मशाला का, उस पर ही सोया हुआ है। रात भर उसे बड़ी तकलीफ हुई है, उसे बड़ा कष्ट हुआ है। एक तो यह भारी अपमान है, वह राजकुमार था। कभी जमीन पर चला नहीं था और आज गलियारे में सोना पड़ा है। वृद्ध साधुओं को कमरे मिल गए हैं। वह गलियारे में पड़ा हुआ है। रात भर कोई गलियारे से निकलता है, फिर उसकी नींद टूट जाती है।
वह बार-बार सोचने लगा कि बेहतर है, मैं लौट जाऊं। बेहतर है, इससे तो अच्छा था, जो था, वही ठीक था। यह क्या पागलपन में मैं पड़ गया हूं! ऐसा गलियारों में पड़े-पड़े तो मौत हो जाएगी। यह तो व्यर्थ की जिंदगी हो गई। यह मैंने क्या गलती कर ली!
सुबह महावीर ने उसे बुलाया और कहा कि तुझे पता है कि पिछले जन्म में
तू कौन था?
मुझे कुछ पता नहीं।
तो महावीर उससे उसके पिछले जन्म की कथा कहते हैं। वे उससे कहते हैं कि पिछले जन्म में तू हाथी था। और जंगल में आग लगी, सारे पशु, सारे पक्षी भागे, तू भी भागा। जब तू पैर उठा रहा था और सोच रहा था कि किधर को जाऊं, तभी तूने देखा कि एक छोटा सा खरगोश तेरे पैर के नीचे आकर बैठ गया। उसने समझा कि पैर छाया है, बचाव हो जाएगा। और तू इतना हिम्मतवर था कि तूने नीचे देखा कि खरगोश है तो तूने फिर पैर नीचे नहीं रखा। तू फिर पैर ही ऊंचा किए खड़ा रहा। आग लग गई, तू मर गया, लेकिन तूने खरगोश को बचाने की मरते दम तक चेष्टा की। उस कृत्य की वजह से तू आदमी हुआ है। उस कृत्य ने तुझे मनुष्य होने का अधिकार दिया है। और आज तू इतना कमजोर है कि रात भर गलियारे में सो नहीं सका तो भागने की सोचने लगा!
तो उसे याद आती है अपने पिछले जन्म की। और उसे पता चलता है कि ऐसा था।
तब फिर बदल जाता है। तब सब बदल जाता है। तब भागने का, पलायन का, छोड़ने का, जरा से कष्ट से भयभीत हो जाने का, सारी बात समाप्त हो जाती है। अब वह

ज्यादा सुदृढ़ संकल्प पर खड़ा हो जाता है। वह एक नई भूमि उसे मिल जाती है कि मैं... यह संभव ही नहीं रहता उसके लिए, सोचना भी संभव नहीं रहता।
तो एक रास्ता यह है कि हम व्यक्तियों को उनके पिछले जन्म-स्मरणों में
ले जाएं, उससे पता चलेगा कि वे किस योनि से कैसे विकसित हुए, कौन सी घटना थी, जिस घटना ने मूलतः उन्हें हकदार बनाया कि वे ऊपर की जिंदगी में चले जाएं। एक रास्ता यह है। यही सरलतम रास्ता है।
दूसरा रास्ता कठिन है बहुत। और वह रास्ता यह है कि हम दस-पांच पशुओं
के निकट रहें और उनसे आंतरिक संबंध स्थापित करें तो हमें पता चल जाए कि उसमें भी अच्छे आदमी हैं, बुरे आदमी हैं; अच्छी आत्माएं हैं, बुरी आत्माएं हैं; अच्छे प्राणी हैं, बुरे प्राणी हैं; सज्जन हैं, दुर्जन हैं। तो हमें पता चले कि वे जो दस कुत्ते हमें दिखाई पड़ रहे हैं, वे सब एक जैसे कुत्ते नहीं हैं। उन दस का अपना व्यक्तित्व है।
स्विट्जरलैंड की एक स्टेशन पर एक कुत्ते का स्मारक बना हुआ है। वह दुनिया में अकेला स्मारक है कुत्ते के लिए। बड़ा स्मारक है। एक आदमी के पास कुत्ता है--उन्नीस सौ तीस या बत्तीस के करीब की घटना है--उसके पास कुत्ता है, वह रोज उसे, जब वह दफ्तर जाता है सुबह दस बजे की ट्रेन पकड़ कर तो उसे स्टेशन छोड़ने आता है। जब वह जाता है तब वह खड़ा हुआ उसे विदा देता रहता है। ठीक पांच बजे जब वह आता है तो पांच बजे की ट्रेन पर वह हमेशा स्टेशन पर खड़ा रहता है, जहां उसका मालिक उतरता है।
ऐसा निरंतर चला है। ऐसा कभी नहीं हुआ कि वह सुबह छोड़ने न आया हो, ऐसा
भी कभी नहीं हुआ कि वह ठीक पांच बजे अपने मालिक को लेने न आया हो।
लेकिन एक दिन ऐसा हुआ कि मालिक गया और नहीं लौटा। मालिक तो मर गया। एक दुर्घटना हुई शहर में और मालिक मर गया। पांच बजे कुत्ता लेने आया। गाड़ी आकर खड़ी हो गई, लेकिन मालिक नहीं उतरा। तो फिर उसने एक-एक डब्बे में जाकर झांका, चिल्लाया, पुकारा; लेकिन मालिक नहीं है। फिर तो स्टेशन के लोगों ने उसे भगाने की बहुत कोशिश की, लेकिन किसी भी हालत में वह भागने को राजी नहीं हुआ।
और हर ट्रेन, जो भी ट्रेन आई, उसी ट्रेन पर वह अपने मालिक को खोजता रहा। ऐसा पंद्रह दिन उसने पानी नहीं पीया, खाना नहीं खाया। और वह उसी जगह खड़े हुए मर गया, जहां उसका मालिक उसे रोज पांच बजे की ट्रेन से आकर मिलता था। सब तरह के उपाय किए गए कि वह एक टुकड़ा रोटी का खा ले, उसने इनकार कर दिया; कि वह एक जरा सा पानी पी ले, उसने इनकार कर दिया।
सारे स्विट्जरलैंड के अखबारों में सब तरफ चर्चा हो गई, उस कुत्ते के बड़े-बड़े फोटो छपे। लेकिन उस कुत्ते ने हटने से वहां से इनकार कर दिया। उसको भगाओ, वह फिर पांच-दस मिनट बाद वहां हाजिर है। उसने स्टेशन का पीछा नहीं छोड़ा। और जब तक जिंदा रहा, वह हर गाड़ी पर चिल्लाता रहा, रोता रहा, उसकी आंख से आंसू टपकते रहे। और वह है कि एक-एक डिब्बे में झांक रहा है। कमजोर हो गया है, चल नहीं पाता तो अपनी जगह ही बैठा है और रो रहा है, हर गाड़ी पर। वह वहीं, उसी जगह मर गया, जहां मालिक को उसे मिलना था।
अब ऐसा कुत्ता साधारण कुत्ता नहीं है। ऐसा कुत्ता साधारण कुत्ता नहीं है। इसके व्यक्तित्व में कुछ ऐसा है जो कि मनुष्यों तक में कम होता है। यह गति कर जाएगा। इसकी गति सुनिश्चित है। यह उस जगह से ऊपर उठ जाने वाला है। इसने मनुष्य होने का एक बड़ा कदम रख लिया। इसकी चेतना ने एक कदम उठा लिया है, जो इसे आगे ले ही जाएगी। उसका स्मारक बनाया है उसकी स्मृति में। और स्मारक के लायक कुत्ता था। कई आदमी स्मारक के लायक नहीं होते, जिनके स्मारक बने हुए हैं।
तो दूसरा रास्ता यह है कि हम पशु-पक्षियों के निकट उनको जानें- पहचानें। उसके भी प्रयोग किए गए हैं। और बहुत से प्रयोगों के आधार पर ही यह कहा जा सकता है कि विकास हो रहा है, वह स्वेच्छा से हो रहा है। इसलिए सारे प्राणी विकसित नहीं हो पाते हैं। जो श्रम करते हैं उस दिशा में थोड़ा, वे विकसित हो जाते हैं। जो नहीं श्रम करते, वे पुनरुक्ति करते रहते हैं उसी योनि में। अनंत पुनरुक्ति भी हो सकती है। लेकिन कभी न कभी वह क्षण आ जाता है कि पुनरुक्ति भी उबा देती है। और बहुत गहरे प्राणों में ऊपर उठने की आकांक्षा पैदा कर देती है।

तो विकास किया हुआ है, चेतना श्रम कर रही है विकास में। चेतना जितनी विकसित होती चली जाती है, उतने विकसित शरीर भी निर्माण करती है। इसलिए शरीर में भी जो विकास हो रहा है, वह भी जैसा डार्विन समझता है कि स्वचालित है, आटोमेटिक है, वैसा नहीं है।
जितनी चेतना तीव्र विकास ग्रहण कर लेती है, उतना शरीर के तल पर भी विकास होना अनिवार्य हो जाता है। वह होता है पीछे, पहले नहीं होता। यानी किसी बंदर का शरीर अगर कभी आदमी का शरीर बनता है तो तभी जब किसी बंदर की आत्मा इसके पूर्व आदमी की आत्मा का चरण उठा चुकी होती है। उस आत्मा की जरूरत के लिए ही पीछे से शरीर भी विकसित होता है।
आत्मा का विकास पहले है, शरीर का विकास पीछे है। शरीर सिर्फ अवसर बनता है। जितनी आत्मा विकसित होती चली जाती है, उतना विकसित अवसर शरीर को भी बनना पड़ता है। कभी भी मनुष्य और भी आगे गति कर सकता है और ऐसी चेतना विकसित हो सकती है, जो मनुष्य से श्रेष्ठतर शरीरों को जन्म दे सके। इसमें कोई कठिनाई नहीं है।
लेकिन मनुष्य तक आ जाना साधारण घटना नहीं है। लेकिन जो मनुष्य है, उसे ख्याल नहीं होता कि मनुष्य तक आ जाना हम ऐसे लेते हैं कि हम पैदा हो गए हैं, और हम जिंदगी ऐसे गंवाते हैं, जैसे कि मुफ्त में मिल गई हो!
मनुष्य हो जाना असाधारण घटना है। लंबी प्रक्रियाओं, लंबी चेष्टाओं, लंबे श्रम और लंबी यात्रा से मनुष्य की चेतना की स्थिति उपलब्ध होती है। लेकिन अगर हमने ऐसा मान लिया कि मुफ्त में मिल गई है--और अक्सर ऐसा होता है। अमीर बाप का बेटा जब घर में पैदा होता है तो वह घर की संपत्ति को मुफ्त में हुआ ही मान लेता है। इसलिए अमीर बाप का बेटा एक ही काम करता है कि बाप की अमीरी कैसे विसर्जित हो जाए, इसकी चेष्टा में लग जाता है। एक आदमी कमाता है तो उसका बेटा गंवाता है। क्योंकि बेटे को अमीरी जन्म से उपलब्ध होती है, उसे लगता है कि यह तो, यह तो है, अब इसका करना क्या है! उसे कभी ख्याल भी नहीं होता कि कितने श्रम से वह अमीरी खड़ी की गई है।
फोर्ड एक दफे इंग्लैंड आया। स्टेशन पर उतर कर उसने इंक्वायरी आफिस में जाकर पूछा कि लंदन में सबसे सस्ती होटल कौन सी है? संयोग से इंक्वायरी वाला आदमी फोर्ड को पहचानता था, चेहरे को जानता था। उसने कहा, आप! सस्ती होटल पूछते हैं! आप फोर्ड ही हैं न?
उसने कहा, हां, मैं फोर्ड ही हूं। सस्ती होटल कौन सी है सबसे ज्यादा? उसने कहा, मुझे हैरानी में डालते हैं। आपका बेटा आता है तो वह आते ही से पूछता है, सबसे महंगी होटल कौन सी है!
उसने कहा, वह फोर्ड का बेटा है, मैं फोर्ड हूं। मैं गरीब आदमी था, मुश्किल से श्रम करके पैसा कमा पाया हूं। वह अमीर आदमी पैदा हुआ है, वह श्रम करके गरीब होने की कोशिश करेगा। मैं गरीब आदमी था। मैं सचेत हूं पूरी तरह कि कैसे कमा पाया हूं। वह अमीर बेटा है, वह फोर्ड का लड़का है। साधारण का लड़का है? फोर्ड ने कहा कि वह किसी साधारण आदमी का लड़का है? हेनरी फोर्ड का लड़का है। उसको ठहरना ही चाहिए महंगी से महंगी में। लेकिन मैं ठहरा हेनरी फोर्ड, तो मुझे तो... ।
वह हेनरी फोर्ड एक पुराना कोट पहने रहता था, जो वह वर्षों से पहनता था। वह कभी बदलता ही नहीं था उसको। वह फट गया तो सिलवा लेता, ठीक करवा लेता। किसी मित्र ने कहा कि आपको यह कोट शोभा नहीं देता।
हेनरी फोर्ड ने कहा, लोग मुझे पहचानते हैं कि मैं हेनरी फोर्ड हूं, कोई भी कोट पहनूं, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। मुझे लोग भलीभांति पहचानते हैं कि मैं हेनरी फोर्ड हूं, कोई भी कोट पहनूं। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। यह तो मेरे बच्चों के लिए है कि शानदार कोट पहनें, ताकि लोग पहचान सकें कि हेनरी फोर्ड के लड़के हैं। उनको कौन पहचानेगा! और मेरा तो चलता है। मेरा यह कोट कैसा है, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। मैं क्या पहनता हूं, इससे क्या फर्क पड़ता है! लेकिन मेरे बेटों को कीमती कोट चाहिए, तभी वे पहचाने जा सकेंगे कि किसके बेटे हैं, हेनरी फोर्ड के बेटे हैं।
होता क्या है कि हम एक जन्म में जो कमाते हैं, दूसरे जन्म में वह हमारी सहज उपलब्धि होती है। यानी दूसरे जन्म में वह हमें संपत्ति की तरह मिलती है, जो हमने पिछले जन्म में कमाया है। और पिछला जन्म हमें भूल जाता है जैसे

कि बेटे को बाप का श्रम भूल जाता है। ऐसा हमें भी, हमारी पिछली अवस्था में जो हमने कमाया है, पिछले जन्म में, वह इस जन्म में भूल जाता है। इस जन्म में हमारी उपलब्धि होती है वह। और तब हमें ख्याल भी नहीं रह जाता, और तब हम अक्सर गंवाना शुरू करते हैं।
यह धन के बाबत ही नहीं होता, यह पुण्य के बाबत भी यही होता है, यह ज्ञान
के बाबत भी यही होता है, चेतना के बाबत भी यही होता है, कि फिर हम अवसर का उपयोग और बढ़े, इसके लिए नहीं कर पाते। तो जो हो गया है, वहीं हम अटक जाते हैं। इसलिए बहुत लोग एक ही योनि में बार-बार पुनरुक्त होते हैं। लाख बार भी पुनरुक्त हो सकते हैं। नीचे कोई नहीं जाता। नीचे जाने का कोई उपाय नहीं है! पीछे कोई नहीं लौट सकता। लेकिन जहां हैं, वहीं पुनरुक्त हो सकता है या आगे जा सकता है।
दो ही उपाय हैं--या तो आगे जाएं या जहां हैं वहीं भटकते रह जाएं। और जहां हैं, अगर आप वहीं भटकते हैं तो विकास अवरुद्ध हो जाएगा, रुक जाएगा। और अगर आगे जाते हैं तो विकास फलित होगा।
विकास चेष्टा निर्भर है, संकल्प निर्भर है, साधना निर्भर है। इसीलिए इतना बड़ा प्राणी-जगत है, लेकिन मनुष्यों की संख्या बहुत कम है। बढ़ती भी है तो बहुत धीमे बढ़ती है। आज हमें लगता भी है कि बहुत जोर से बढ़ रही है, तो भी वह हम सिर्फ मनुष्य को ही सोचते हैं, इसलिए ऐसा लगता है। अगर हम प्राणी-जगत को देखें तो असंख्य प्राणी-जगत में क्या हमारी संख्या है! हमसे ज्यादा छोटी जाति का कोई प्राणी नहीं है इस जगत में। एक घर में इतने मच्छर हो सकते हैं जितनी पूरी मनुष्य-जाति है। और कितनी करोड़ों योनियां हैं और एक-एक योनि में कितने असंख्य व्यक्ति हैं!
इतने थोड़े से लोग, जैसे एक मंदिर कोई बनाए और बड़ी भारी नींव भरे, फिर उठते-उठते-उठते-उठते आखिर मीनार पर एक छोटी सी कलगी उठी रह जाए। ऐसा बड़ा भवन है जीवन का, उसमें मनुष्य की कलगी बड़ी छोटी सी ऊपर उठी रह गई है। उसकी कोई, अगर हम सारे प्राणी-जगत को देखें तो हमारी कोई संख्या ही नहीं है। हम एक बड़े समुद्र में एक छोटी बूंद से ज्यादा नहीं हैं। लेकिन अगर हम मनुष्यों को देखें तो हमें बहुत ज्यादा मालूम पड़ता है कि काफी, साढ़े तीन अरब आदमी हैं। और हमें चिंता हो गई है कि हम कैसे बचाएंगे इतने आदमियों को, कैसे खाना जुटाएंगे, कैसे मकान बनाएंगे, क्या करेंगे। लेकिन यह कोई बड़ी संख्या नहीं है।
और ध्यान रहे, मेरी अपनी जो समझ है, जब जरूरत पैदा होती है, तो नए उपाय तत्काल विकसित हो जाते हैं। जैसे आने वाले पचास वर्षों में आदमी जन्म को, जीवन को रोकने की सब चेष्टाएं करेगा, लेकिन जीवन रुकेगा नहीं। चेष्टा बहुत की जाएगी लेकिन जीवन रुकेगा नहीं। चेष्टा का फल इतना ही हो सकता है कि जितनी तीव्रता से गति हो, शायद वह न हो। लेकिन इन आने वाले पचास वर्षों में भोजन के नए रूप विकसित हो जाएंगे।
जैसे हम समुद्र के पानी से भोजन निकाल सकेंगे। जैसे सिंथेटिक फूड विकसित हो जाएंगे, जो हम फैक्ट्री में बना सकेंगे। जैसे हवा से सीधा भोजन खींचा जा सकेगा या सूरज की किरण से सीधा भोजन लिया जा सकेगा। आने वाले पचास वर्षों में भोजन के बिल्कुल नए रूप विकसित होंगे, जो कभी नहीं थे पृथ्वी पर।
और दूसरी बात जो मैं समझता हूं, बहुत कीमत की है, लेकिन ख्याल में नहीं है। जैसे बड़ी चेष्टा चली चांद पर जाने की, अब मंगल पर जाने की चलेगी, यह चेष्टा पृथ्वी पर संख्या के अधिक बढ़ जाने का आंतरिक परिणाम है। यह ऊपर से दिखाई पड़ता है कि रूस और अमरीका में दौड़ लगी हुई है चांद पर जाने की, लेकिन बहुत गहरे में संख्या मनुष्य की आने वाले सौ वर्षों में इतनी तीव्रता से बढ़ने का डर है--वह हमें ख्याल नहीं है, वह हमारा अनकांशस भय है--कि नई जमीन की खोज शुरू हो गई, जहां हम आदमी को पहुंचा सकें। ऐसा सदा हुआ।
एक जमाना था आदमी खानाबदोश था, एक जगह से दूसरी जगह भटकता रहता था, क्योंकि एक जगह का खाना खतम हो जाता था, फल टूट गए, तो दूसरी जगह चला जाता था। फिर आदमी इतने हो गए कि एक जगह के फल नहीं टूटे, सभी जगह के फल एक साथ टूटने लगे तो दूसरी जगह कहां जाओ। तो फिर जमीन पर हमें पैदावार करनी पड़ी, खेती करनी पड़ी। फिर खेती भी पर्याप्त नहीं साबित हुई, तो हमें औद्योगिक

व्यवस्था करनी पड़ी। अब वह भी पर्याप्त साबित नहीं होगी, तो हमें नई व्यवस्थाएं करनी पड़ें।
और अंतिम व्यवस्था यह होगी कि पृथ्वी इतनी भारग्रस्त हो जाए, क्योंकि इतने प्राणी अगर व्यक्ति उनके मुक्त होने लगें बड़ी संख्या में नीचे की योनियों से, तो कहीं दूसरी जगह हमको खोजनी पड़े। वह जगह हम कोई दूसरे कारणों से खोजते रहेंगे, यह दूसरी बात है, क्योंकि हमें बहुत कुछ साफ नहीं है कि क्या होता है भीतर। लेकिन भीतर अचेतन शक्ति धक्के देती रहेगी कि पृथ्वी के बाहर जगह खोजो, क्योंकि आज नहीं कल, पृथ्वी के बाहर बसने की जरूरत पड़ ही जाने वाली है।
जैसा मैंने कहा कि जब नई चेतना विकसित होती है, तो नए शरीर ग्रहण करने पड़ते हैं। जब एक चेतन समाज की संख्या बढ़ती है, तो नए ग्रह-उपग्रह बसाने पड़ते हैं। पहला जीवन भी जो इस पृथ्वी पर आया है, वह भी वैज्ञानिक नहीं बता पाते कि कैसे आ गया। वैज्ञानिक विकास बता पाते हैं, लेकिन विकास तो किसी चीज का होता है, जो हो। विकास तो बाद की बात है। जीवन आया कहां से? जीवन आ कैसे गया? विकास तो ठीक है कि मछली आदमी बन गई। लेकिन मछली, वह प्राण कहां से आया? कि कोई कहे पौधा मछली बन गया, तो पौधे में वह प्राण कहां से आया? यानी प्राण को कहीं न कहीं से आने की जरूरत है।
और इसलिए मैं आपसे कहना चाहता हूं दूसरी बात, और वह यह कि जब एक मां गर्भ के योग्य होती है, तो एक आत्मा उसमें प्रवेश करती है। जब एक पृथ्वी या एक उपग्रह जीवन के योग्य हो जाता है, तो दूसरे ग्रहों-उपग्रहों से जीवन वहां प्रवेश करता है। और कोई उपाय नहीं है। यानी जो पहला जीवाणु है, वह सदा ट्रांस-माइग्रेट करता है। उसके सिवा कोई उपाय नहीं है। वह किसी दूसरे ग्रह से... हो सकता है उस ग्रह पर जीवन समाप्त होने के करीब आ गया हो, तो पहला जीवन वहां से आएगा।
इसी संबंध में यह भी समझ लेना जरूरी है, जो आपने पूछा कि बुद्ध और महावीर या मैं या कोई भी, जो इतना श्रम करते हैं कि लोग विकसित हों, तो कहीं ऐसा कभी हुआ है?
ऐसा बहुत बार हुआ है। क्योंकि हमारी दृष्टि बहुत छोटी है। और हम जानते कितना हैं? अगर आदमी का इतिहास हम जानते हैं तो मुश्किल से जीसस के बाद व्यवस्थित रूप से, दो हजार वर्ष से।
इसलिए इतिहास जीसस से शुरू होता है। इसलिए तो हम लिखते हैं ईसा के बाद
और ईसा के पहले। ईसा के बाद का इतिहास व्यवस्थित है, उसके पहले सब धूमिल है। फिर भी अगर हम बहुत खींचें तो पांच हजार साल से पहले का हमें कुछ अंदाज नहीं बैठता।
पृथ्वी पर आदमी दस लाख वर्षों से है। पृथ्वी दो अरब वर्षों से है। लेकिन पृथ्वी बहुत नया जन्म है। सूरज पृथ्वी से कई हजार अरब वर्ष पहले से है। लेकिन हमारा सूरज सारे जगत में सबसे नया सूरज है। और जो चारों तरफ हमें तारे दिखाई पड़ते हैं, वे सब महासूर्य हैं, जिनमें हमारा सूरज बहुत छोटा है। पृथ्वी से सूरज साठ हजार गुना बड़ा है, लेकिन यह सबसे छोटा तारा है। इससे करोड़-करोड़, दो-दो करोड़ गुने बड़े तारे हैं। ये हमें छोटे-छोटे दिखाई पड़ते हैं, क्योंकि फासला अंतहीन है।
सूरज से हम तक किरण आने में दस मिनट लगते हैं--सूर्य की किरण आने में।
और किरण की गति होती है एक सेकेंड में एक लाख छियासी हजार मील। दस मिनट सूरज से आने में लगते हैं।
जो सूरज के बाद निकटतम तारा है, उससे चार वर्ष लगते हैं हम तक किरण के आने में! गति वही है--एक लाख छियासी हजार मील प्रति सेकेंड! सूरज के बाद जो निकटतम तारा है, उससे चार वर्ष लग जाते हैं आने में! रोशनी चलेगी आज, आएगी चार वर्ष बाद! इतना हमारा फासला है। लेकिन वह निकटतम तारा है। उसके बाद जो तारा है, उससे सात वर्ष लगते हैं हम तक आने में! और उसके बाद फासले बढ़ते चले जाते हैं।
ऐसे तारे हैं कि जब पृथ्वी बनी थी, यानी दो अरब वर्ष पहले, तब की उनकी रोशनी चली, अब आ पाई है! और ऐसे तारे हैं कि जब पृथ्वी नहीं थी, तब उनकी रोशनी चली थी, वह अब पहुंच पा रही है!

और ऐसे तारे हैं कि जिनकी रोशनी अभी तक नहीं पहुंची है। और ऐसे भी तारे होंगे, जिनकी रोशनी कभी नहीं पहुंचेगी! पृथ्वी बनेगी और मिट चुकी होगी, और उनकी चली हुई रोशनी आएगी, तब तक पृथ्वी बन कर जा चुकी होगी, तब उनकी रोशनी पहुंचेगी!
यह जो अंतहीन विस्तार है, इस अनंत विस्तार में अनेक पृथ्वियां हैं, अनेक पृथ्वियों पर जीवन है। उन जीवनों ने अनेक बार अंतिम स्थिति भी पाई है। असल में बुद्ध, महावीर या क्राइस्ट जैसे लोग न केवल मनुष्य-जाति के अतीत में प्रवेश करते हैं, बल्कि जीवन की समस्त संभावनाएं समस्त लोकों में, उनमें भी प्रवेश करने की कोशिश करते हैं। और वहीं से आश्वासन पाते हैं इस बात का कि पूर्णता बहुत बार हो चुकी है। वह आश्वासन आकस्मिक नहीं है। वह आश्वासन इस बात का है कि पूर्णता बहुत बार हो चुकी है। लेकिन हमारी दृष्टि बहुत छोटी है।
एक कीड़ा है, वह वर्षा में पैदा होता है, फिर वर्षा में ही मर जाता है। उससे कोई कहे कि वर्षा फिर आएगी; तो वह कहेगा, कभी सुना नहीं, कभी आई नहीं; न मेरे मां-बाप ने कहा, न मेरे पुरखों ने कोई किताब में लिखा। वर्षा एक ही बार आती है। क्योंकि कोई कीड़े ने दो बार वर्षा नहीं देखी। क्योंकि वह कीड़ा तो वर्षा ही में पैदा होता है, वर्षा ही में मर जाता है। किसी पुरखे ने नहीं देखी कभी उसके, तो अनुभूति का कोई सवाल नहीं है। और स्मृति लिखने का और स्मृति बचाने का कोई सवाल नहीं है।
हम पृथ्वी पर ही जीते हैं और पृथ्वी पर ही मर जाते हैं। और जानने की सीमा इतनी छोटी है कि हमें पता नहीं कि इस अंतहीन विस्तार में, इस पूरे ब्रह्मांड में कितने-कितने लोकों में जीवन है। उस जीवन से भी संबंध स्थापित करने की निरंतर चेष्टाएं की गई हैं। वैज्ञानिक चेष्टा तो अब चल रही है, धार्मिक चेष्टा बहुत पुरानी है। और संबंध स्थापित किए गए हैं। उन संबंधों ने बड़े आश्वासन दिए हैं। और उन आश्वासनों ने यह भरोसा दिया है कि अगर कहीं भी जीवन और गहराई में विकसित हुआ है, और आनंद में विकसित हुआ है, कि मनुष्य दिव्य हो गया है कहीं, तो यहां भी हो सकता है। कोई बाधा नहीं। फिर दूसरा और बड़ा आश्वासन यह है कि जो व्यक्ति इस तरह की कोशिश कर रहा
है, वह तो उपलब्ध हो ही गया है। और जिस दिन उसने जान लिया है कि यह हो सकता है, उस दिन संभावना खुल गई कि सबके लिए हो सकता है। कोई बाधा नहीं है। अगर हम स्वयं बाधा न बनें तो वह संभावना खुल सकती है। पृथ्वी पर भी वह होगा।
देर लग सकती है, लेकिन समय के इतने बड़े प्रवाह में देर का कोई अर्थ ही नहीं होता। कोई अर्थ ही नहीं है देर का। बस देर हमारे छोटे मापदंड की वजह से है। नापने का गज बहुत छोटा है, उससे हम नापते हैं, बहुत लंबा मालूम पड़ता है।
अभी बुद्ध को या महावीर को हुए वक्त ही कितना हुआ? ढाई हजार वर्ष हुए।
हमारे लिए बड़ा लंबा फासला है। लेकिन जिस विस्तार की मैं बात कर रहा हूं, उसमें ढाई हजार वर्ष का क्या मतलब है? कोई भी तो मतलब नहीं है। कोई भी तो मतलब नहीं है। ढाई हजार वर्ष का क्या मतलब होता है? हमारे नाप की बात है। एक चींटी एक आदमी के ऊपर चढ़ जाती है तो समझती है हिमालय पर पहुंच गई। निश्चित ही, नाप है। एक आदमी सो रहा है और एक चींटी उसके ऊपर चढ़ गई है, तो वह सोचती है हिमालय पर पहुंच गई है! और पहुंच ही गई है। इसमें कोई झूठ भी नहीं है। क्योंकि चींटी और आदमी का अनुपात है। चींटी का नाप कितना?
हमारा नाप कितना? बहुत छोटा नाप है। और वह छोटा नाप हमारी जिंदगी के हिसाब से है। सत्तर साल या सौ साल हमारी जिंदगी है, तो उससे हम नापते हैं। लेकिन जैसे व्यक्तियों के अतीत में उतरने की संभावना है, कुछ शिक्षकों ने जीवन के अतीत में भी उतरने की चेष्टा की है। वह अलग यात्रा है और अलग उसकी विधियां हैं। यह जीवन को पूरा मान लिया है, एक इस पृथ्वी का जीवन। यह पृथ्वी का जीवन कहां से आता है? किन लोकों से?
उन लोकों में भी... इस जीवन के भीतर कहीं न कहीं उन लोकों की स्मृति भी दबी है। उन लोकों में भी इस स्मृति से प्रवेश हो सकता है। विज्ञान शायद प्रवेश नहीं भी कर पाएगा। क्योंकि चांद पर विज्ञान पहुंचा, बड़ी कीमती घटना घटी है। लेकिन अब अगर मंगल पर पहुंचना है तो एक वर्ष जाने में और एक वर्ष आने में लगेगा। और सूर्य के जितने उपग्रह हैं, उनमें किसी पर जीवन नहीं है पृथ्वी को छोड़ कर। सूर्य के उपग्रह को छोड़ कर अगर किसी दूसरे

सूर्य के उपग्रह पर जाना है, तो मनुष्य की उम्र काम की नहीं है। यानी अगर दो सौ वर्ष आने-जाने में लगें, तो पिता जाए और बेटा लौटे। कोई उपाय नहीं है। और कोई उपाय नहीं है।
लेकिन दो सौ वर्ष बहुत छोटा है। जिस तारे से चार वर्ष लगते हैं प्रकाश आने में, तो जिस दिन हम प्रकाश की गति का वाहन बना लें, उस दिन चार वर्ष लगेंगे हमको आने में, आने-जाने में आठ वर्ष लग जाएंगे।
लेकिन प्रकाश की गति का वाहन कभी हो सकेगा? क्योंकि बड़ी कठिनाई यह है
कि प्रकाश की गति जिस चीज में भी हो जाए, वही प्रकाश हो जाएगा। यानी वह किरण ही हो जाएगी वह चीज। अगर उतनी गति पर किसी भी चीज को चलाया तो वह ताप की वजह से किरण हो जाएगी। तो प्रकाश की गति असंभव मालूम पड़ती है। क्योंकि प्रकाश की गति पर एक हवाई जहाज चला, तो जैसे ही वह उतनी गति पकड़ेगा कि वह जलेगा, पिघलेगा और प्रकाश हो जाएगा। क्योंकि उतने ताप पर, उतनी गति पर उतना ताप पैदा हो जाता है, और उतने ताप पर किरण बन जाती है। वह प्रकाश इसीलिए तो प्रकाश है कि उतनी गति से चल रहा है।
तो प्रकाश की गति पर किसी दिन वाहन ले जाया जा सकेगा, यह असंभव है। तो विज्ञान कभी दूसरे जीवनों से संबंध बना सकेगा, यह करीब-करीब असंभव बात है। लेकिन इतना हो सकता है कि विज्ञान की इस सारी खोज-बीन के बाद यह हमें ख्याल में आ सके कि धर्म यह संबंध बना सकता है।
यह जान कर आपको हैरानी होगी कि जैसे ही अंतरिक्ष की यात्रा शुरू हुई है, रूस और अमरीका दोनों ही योग में अत्यधिक उत्सुक हो गए हैं। अमरीका ने एक कमीशन बिठाया तीन-चार मनोवैज्ञानिकों का, सारी दुनिया का चक्कर लगाओ और क्या विचार का संप्रेषण बिना माध्यम के हो सकता है, इसकी खबर लाओ। इसकी खबरें लाई गई हैं। क्योंकि इस बात का डर है कि एक अंतरिक्ष में यात्री गया है और उसका यंत्र बिगड़ जाए, वह कोई खबर न दे सके तो वह अंतहीन में खो जाएगा। उसका फिर हमें दुबारा कभी पता भी नहीं लगेगा कि वह कहां गया। तो एक सब्स्टीट्यूट व्यवस्था होनी ही चाहिए कि अगर यंत्र भी खो जाए तो वह सीधा विचार के संप्रेषण से खबर दे सके।
अगर विचार का संप्रेषण सीधा हो सके तो ही संभावना है कि हम दूसरे लोकों के जीवन से संबंध स्थापित कर सकें। क्योंकि तब विचार को गति का सवाल ही नहीं है। विचार में समय लगता ही नहीं। सिर्फ एक ही यात्रा है इस जगत में, विचार की, जिसमें समय नहीं लगता। यानी अगर मैं विचार संप्रेषित कर सकता हूं, तो मैंने संप्रेषित किया और आपने पाया, इसके बीच में पल भी नहीं गिरता। वह जिसको महावीर समय कहते हैं, पल का भी लाखवां हिस्सा, वह भी नहीं गिरता। विचार समयातीत संप्रेषित होता है, ट्रांसफर होता है। तो किसी दिन विचार के संप्रेषण से ही दूसरे जीवनों से संबंध स्थापित हो सकता है। महावीर, बुद्ध, जीसस, जरथुस्त्र ऐसे जीवन की तलाश में हैं। और संबंध स्थापित करने की पूरी चेष्टा की गई है और कुछ बातें खोज भी ली गई हैं कि वह संबंध स्थापित हो सकता है, हुआ है। उस संबंध के आधार पर कामना बनती है, आशा बनती है कि पृथ्वी पर भी यह हो सकता है। इसमें कोई कठिनाई नहीं है। तो वह ख्याल में लेने की बात है।
और अंतिम बात, सुबह जो मैंने कहा उससे साफ हुआ होगा कि एक ही जन्म नहीं है। जन्मों की एक लंबी यात्रा है। हम जो आज हैं, वह हम एकदम आज के ही नहीं हैं। हम कल भी थे, परसों भी थे। एक अर्थ में हम सदा थे। किन्हीं भी रूपों में--कभी पशु में, कभी पक्षी में, कभी पत्थर में, कभी खनिज में, कभी इस ग्रह पर, कभी किसी और ग्रह पर--हम सदा थे। होने के साथ हम एक हैं। अस्तित्व में हमारी प्रतिध्वनि सदा थी। लेकिन मूर्च्छित से मूर्च्छित थी। अमूर्च्छित होती चली गई है, जाग्रत होती चली गई है।
अभी हम सबको लगता है कि महावीर की बात करते हैं, लेकिन हममें से सभी थे। जरूरी नहीं है कि महावीर से संबंधित हुए, जरूरी नहीं कि महावीर के पास थे, जरूरी नहीं कि महावीर के प्रदेश में थे, लेकिन सब थे। कहीं होंगे, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। लेकिन सब थे। यह भी हो सकता है कि हममें से कोई महावीर के ठीक निकट भी रहा हो। उस गांव में भी रहा हो, जहां से महावीर गुजरे हों। जरूरी नहीं कि हम मिलने गए हों। क्योंकि महावीर गांव से गुजरें तो कितने

लोग मिलने जाते हैं? यह कोई आवश्यकता नहीं। एक गांव में ठहरे भी हों तो दस-बीस लोग भी मिले हों तो ठीक है, नहीं मिले हों तो भी जरूरी नहीं।
हम सदा थे और हम सदा रहेंगे। हां, मूर्च्छित या अमूर्च्छित, दो बातें
हो सकती हैं। अगर मूर्च्छित रहे हों तो हमारा होना, न होना बराबर था। जब से हम अमूर्च्छित होते हैं, जागते हैं, चेतन होते हैं, तभी से हमारे होने में कोई अर्थ है। और जितने हम चेतन होते चले जाते हैं उतना ही हमारा होना गहरा होता जाता है। उतना ही एक्झिस्टेंस, अस्तित्व जो है, वह प्रगाढ़, समृद्ध होता चला जाता है। शायद उस अर्थ में होना हमारा अभी भी नहीं है। अभी भी बस हम हैं।
यह जो होने की लंबी यात्रा है, इसमें बहुत बार शरीर बदलने जरूरी हैं। क्योंकि शरीर क्षणभंगुर है, उसकी सीमा है, वह चुक जाता है। असल में कोई पदार्थ से निर्मित वस्तु शाश्वत नहीं हो सकती। पदार्थ से जो भी निर्मित होगा, वह बिखरेगा। जो बनेगा, वह मिटेगा।
तो शरीर बनता है, मिटता है; बनता है, मिटता है। लेकिन पीछे जो जीवन है;
वह न बनता, न मिटता। वह सदा नए-नए बनाव लेता है। पुराने बनाव नष्ट हो जाते हैं, फिर नए बनाव लेता है। ये नए बनाव उसकी संस्कार, उसकी कंडीशनिंग, उसने पिछले जीवन में क्या जीया, क्या भोगा, क्या किया, क्या जाना--इन सबका इकट्ठा सार अंश हैं।
उसे समझने के लिए दो-तीन बातें समझ लेनी चाहिए। एक तो शरीर हमें दिखाई पड़ता है, जो हमारा ऊपर है। एक और शरीर है, ठीक इसके जैसे ही आकृति का, जो इस शरीर में व्याप्त है। उसे सूक्ष्म शरीर कहें, सटल बाडी कहें, कार्मण शरीर कहें, कर्म शरीर कहें--कुछ भी नाम दें--मनो-शरीर कहें, काम चलेगा। इस शरीर से ठीक बिल्कुल ऐसा ही, अत्यंत सूक्ष्म परमाणुओं से निर्मित सूक्ष्म देह है। जब यह शरीर गिर जाता है, तब भी वह देह नहीं गिरती। वह देह आत्मा के साथ यात्रा करती है। उस देह की खूबी है कि आत्मा की जैसी मनोकामना होती है, वह देह वही आकार ग्रहण कर लेती है। पहले वह देह आकार ग्रहण करती है, और तब उस आकार की देह में वह प्रवेश कर सकती है।
अगर एक सिंह मरे, तो उसके शरीर के पीछे जो छिपा हुआ सूक्ष्म शरीर है,
वह सिंह का होगा, लेकिन वह मनो-काया है। मनो-काया का मतलब यह है कि जैसे हम पानी एक गिलास में डालें, तो उस गिलास का हो जाए रूप उसका, बर्तन में डालें, तो बर्तन जैसा हो जाए, बोतल में भरें, बोतल जैसा हो जाए। हमारी स्थूल देह सख्त है, पत्थर के बर्फ की तरह। और हमारी सूक्ष्म देह तरल, लिक्विड है। वह किसी भी आकार को ग्रहण कर सकती है तत्काल।
तो अगर एक सिंह मरे और उसकी आत्मा विकसित होकर मनुष्य बनना चाहे, तो मनुष्य शरीर ग्रहण करने के पहले उसकी सूक्ष्म देह मनुष्य की आकृति को ग्रहण कर लेती है। वह उसकी मनो-आकृति है। सुंदर, कुरूप, अंधा, लंगड़ा, स्वस्थ, बीमार--वह उसकी मनो-आकृति है, जो उसकी देह को पकड़ जाती है। सूक्ष्म शरीर जैसे ही देह ग्रहण कर लेता है, मनो-आकृति बन जाता है, वैसे ही उसकी खोज शुरू हो जाती है गर्भ के लिए।
अब यह भी समझना जरूरी है कि एक व्यक्ति, एक स्त्री और पुरुष जीवन में अनेक संभोग करते हैं, लेकिन सभी संभोग गर्भ नहीं बनते। और यह भी जान कर हैरानी होगी कि एक संभोग में एक व्यक्ति के इतने वीर्याणु नष्ट होते हैं, जिससे अंदाजन एक करोड़ बच्चे पैदा हो सकते थे। यानी एक पुरुष अगर जिंदगी में साधारणतः आमतौर से कोई तीन हजार से लेकर चार हजार संभोग करता है, और एक संभोग में अंदाजन एक करोड़ बच्चों की संभावना के बीज हैं।
तो अगर एक पुरुष के सारे अणु प्रयुक्त हो सकें और वास्तविक बन सकें,
तो एक पुरुष अंदाजन चालीस करोड़ बच्चों का पिता बन सकता है। एक पूरा राष्ट्र एक पुरुष के बीज अणुओं से संभावना ले सकता है। स्त्री की यह संभावना नहीं है, क्योंकि उसका महीने में सिर्फ एक ही बीज परिपक्व होता है। वह महीने में सिर्फ एक व्यक्ति को जन्म दे सकती है। लेकिन एक भी नहीं दे पाती, क्योंकि नौ महीने फिर वह एक व्यक्ति उसके व्यक्तित्व को रोक लेता है।
लेकिन सभी संभोग सार्थक नहीं होते। और उसका कारण यह है... अभी तक वैज्ञानिक नहीं सोच पाते, उसका कारण क्या है। सभी संभोग सार्थक क्यों न

हों? स्त्री का बीज मौजूद है, पुरुष के एक करोड़ बीज एकदम से हमला करते हैं।
और ध्यान रहे, जो बाद में प्रकट होते हैं गुण, वे बीज में ही छिपे होते हैं।
पुरुष के सारे वीर्याणु एग्रेसिव होते हैं, हमलावर होते हैं, तेजी से हमला करते हैं। स्त्री का बीज पैसिव, प्रतीक्षा करता, अवेटिंग में होता है। वह हमला नहीं करता। वह सिर्फ बैठा हुआ प्रतीक्षा करता है।
ये जो एक करोड़ वीर्याणु हैं, इतनी तेजी से गति करते हैं कि कांप्टीशन वहीं शुरू हो जाता है! यह जान कर आप हैरान होंगे, वहां से प्रतियोगिता शुरू हो जाती है! वहां जो प्रतियोगिता में आगे निकल जाता है, वह जाकर स्त्री-अणु से एक हो जाता है। जो पीछे छूट जाता है, वह हार जाता है; थक जाता है, समाप्त हो जाता है।
लेकिन प्रत्येक बार संभोग गर्भ नहीं बनता, उसका वैज्ञानिक कारण नहीं खोज पाते अब तक, और नहीं खोज पाएंगे। उसका कारण यह है कि गर्भ तभी बन सकता है, जब वैसी आत्मा प्रवेश करने के लिए आतुर हो, उत्सुक हो। वह हमें दिखाई नहीं पड़ता। दो अणु मिलते हैं, इतना हमें दिखाई पड़ता है। स्त्री और पुरुष के अणुओं का मिलन सिर्फ अपरचुनिटी है, जन्म नहीं है; सिर्फ अवसर है, जिसमें एक आत्मा उतर सकती है--सिर्फ अवसर मात्र, जिसमें एक आत्मा उतर सकती है।

प्रश्नः लेकिन अब तो संभावना है बगैर संभोग के ही उतर सकती है।

संभोग से कोई संबंध ही नहीं है संभावना का। संबंध तो सिर्फ दो अणुओं
के मिलन का है। वह मिलन संभोग के द्वारा हो रहा है, यह प्रकृति की व्यवस्था है; कल सीरिंज के द्वारा हो सकता है, वह विज्ञान की व्यवस्था हो जाएगी।

प्रश्नः उनमें से हर एक अणु भी उसमें इस्तेमाल हो सकते हैं?

हां, वे हो सकते हैं। और वे तभी हो सकेंगे, जब इतनी आत्माएं जन्म लेने
के लिए आतुर और उत्सुक हो जाएं कि गर्भ व्यर्थ हो जाए। और इसीलिए मैं कह रहा हूं कि सब जरूरतें अनुकूल तैयार होती हैं, वह हमारे ख्याल में नहीं आता। यानी अब तक इस बात की जरूरत ही नहीं पड़ी थी कि हम वीर्य-अणु को और स्त्री-अणु को प्रयोगशाला में जाकर बच्चा पैदा करें, लेकिन अब जरूरत पड़ जाएगी। पड़ जाएगी इसलिए कि स्त्री की संभावना समाप्त होने के करीब आ गई। वह एक बच्चे को नौ महीने में जन्म दे सकती है। एक स्त्री कितने ही बच्चे जन्म दे तो बीस-पच्चीस बच्चों से ज्यादा जन्म नहीं दे सकती। अधिकतम जन्म देने वाली स्त्री ने छब्बीस बच्चों को जन्म दिया। उसकी संभावना इससे ज्यादा नहीं है।
लेकिन अगर मनुष्य आत्माओं का तीव्र आगमन हो, तो फौरन उपाय करने पड़ेंगे। वह हमको दिखता नहीं कि हम किसलिए उपाय कर रहे हैं। आखिर हम ये उपाय किसलिए कर रहे हैं? तभी वह संभव हो सकता है। और तब तो एक व्यक्ति के पूरे के पूरे चालीस करोड़ बीजाणुओं का भी गर्भाधारण हो सकता है। लेकिन वह होगा तभी, जब आत्मा आने को, उतरने को आतुर हो।
और मेरा मानना है कि ये जो एक करोड़ की संभावना है एक संभोग में, और एक व्यक्ति में चालीस करोड़ की संभावना है, यह संभावना ही इसलिए है कि आज नहीं कल, हजार वर्ष बाद, दस हजार वर्ष बाद, इतनी जीव आत्माएं मुक्त होंगी कि इन सब अणुओं की जरूरत पड़ने वाली है। नहीं तो यह बेमानी है, इनका कोई मतलब नहीं है। और प्रकृति बेमानी कोई काम करती ही नहीं। जो भी शरीर में है, उसकी कोई गहरी सार्थकता है। वह हमें पता हो या हमें पता न हो। और अगर आज उसकी सार्थकता नहीं तो कल उसकी सार्थकता हो सकती है।
एक मां और एक बाप के व्यक्तित्व से निर्मित जो बीजाणु हैं, वे संभावना बनते हैं एक ऐसे व्यक्ति की, जो इन दोनों की संभावनाओं से तालमेल खाता हो, उसके जन्म की संभावना बनते हैं। इसलिए जो लोग समझ सकते हैं इस विज्ञान को, वे यह भी निश्चित करवा सकते हैं बहुत गहरे में कि कैसे बच्चे उनको पैदा हों! कैसे बच्चे उनको पैदा हों--क्योंकि उनकी मनोदशा, उनके मनोभाव, संभोग के क्षण में उनकी चित्त-स्थिति निर्धारित करेगी।

तो यह जो महावीर और इन सबके संबंध में हमें ढेर कहानियां प्रचलित मिलती हैं, वे किसी अर्थ में सार्थक हैं। जैसे कि महावीर के संबंध में है कि इतने स्वप्न आते हैं। या बुद्ध के संबंध में कि इतने स्वप्न आते हैं। स्वप्न आते हैं या नहीं आते हैं, यह महत्वपूर्ण नहीं है। महत्वपूर्ण सिर्फ इतना है कि ऐसे स्वप्न जिस चित्त में आते हों, उस चित्त की एक विशिष्ट अवस्था होगी तो ये स्वप्न आएंगे। सब स्वप्न सबको नहीं आते। चित्त की अवस्था पर स्वप्न निर्भर होते हैं।
एक आदमी क्रोधी है तो वह ऐसे स्वप्न देखता है, जिनमें क्रोध होगा। एक आदमी कामी है तो ऐसे सपने देखता है, जिनमें काम होगा। एक आदमी लोभी है तो ऐसे सपने देखता है, जिनमें लोभ होगा। स्वप्न वे ही हैं, जो व्यक्ति के चित्त की अवस्थाएं हैं।
महावीर जैसा व्यक्ति पैदा हो तो साधारण मनोदशा में पैदा नहीं हो जाता। उसके माता-पिता के भीतर चित्त की, शरीर की एक विशिष्ट अवस्था जरूरी है, तभी वैसी आत्मा प्रवेश कर सकती है। और उसके पहले के लक्षण भी जरूरी हैं। वे लक्षण भी होंगे। वे लक्षण भी जरूरी हैं। प्रतीक हैं वे लक्षण सिर्फ। वे इस बात की खबर देते हैं कि चित्त... ।
जैसे कि फ्रायड कहता है--अभी फ्रायड ने जो काम किया वह बहुत कीमती है--
वह कहता है कि अगर कोई आदमी सपने में मछली देखता है, तो वह सेक्स का प्रतीक है मछली जो है। अब यह हजारों सपनों का अध्ययन करने के बाद यह नतीजा निकाला कि मछली देखना जो है, वह किसी अर्थ में सेक्स से संबंधित है। मछली जो प्रतीक है, वह जननेंद्रिय का प्रतीक है। यह गलत भी हो सकता है उसका ख्याल। लेकिन जो हजार सपने उसने अध्ययन किए हैं, उनमें ऐसा लगता है कि यह हो सकता है।
अभी तक महावीर के सपनों या बुद्ध के सपनों का कोई मनोवैज्ञानिक अध्ययन नहीं हुआ, उनकी माताओं के सपनों का। हो सकता है। लेकिन बड़ी कठिनाई है जो, वह यह है कि ऐसे व्यक्ति बहुत संख्या में पैदा नहीं हुए, इसलिए तौल बिठालने के लिए उपाय नहीं है बहुत। तौल नहीं बिठाली जा सकती कि अगर महावीर की मां को सफेद हाथी दिखाई पड़े, तो साधारणतः सफेद हाथी दिखाई पड़ते ही नहीं, पहली बात। एक तो हाथी ही मुश्किल से दिखाई पड़ता है। आप इतने यहां लोग बैठे हैं, शायद ही किसी को सपने में हाथी दिखाई पड़े। और हाथी अगर दिखाई भी पड़े तो वह सफेद हो, इसकी संभावना और न्यून हो जाती है।
अब महावीर की मां को अगर सफेद हाथी दिखाई पड़ता है, तो अब यह अपवाद एक
ही है। यानी इस तरह के अगर सौ, दो सौ सपने अध्ययन न किए जा सकें, तो सफेद हाथी किस बात का प्रतीक है, यह तय करना मुश्किल है।
लेकिन कोई फ्रायड ने पहली दफा यह काम नहीं किया है। जैनों के चौबीस तीर्थंकरों की माताओं को देखे गए सपनों में तालमेल है। और उसकी फिक्र की जाती रही है कि तीर्थंकर पैदा होता है, तो उसकी मां को क्या सपने आते हैं उसके पहले। उसकी चित्त-दशा क्या है! कितनी शांत है, अशांत है, आनंदपूर्ण है, प्रेमपूर्ण है, घृणापूर्ण है, क्रोधपूर्ण है; कैसी है--पवित्र है, दिव्य है, साधारण है, क्षुद्र है--कैसी है। यह बिल्कुल ठीक है कि ऐसी ही चित्त की विशिष्ट दशा में ऐसी आत्मा उतर सकती है।
चंगेज खां या तैमूरलंग पैदा हों तो भी फिक्र की जानी चाहिए कि कैसे सपने उनकी माताएं देखती हैं। फिक्र नहीं की गई है। हिटलर पैदा हो, स्टैलिन पैदा हो, तो कैसे सपने उनकी मां देखती है, इसकी भी फिक्र की जानी चाहिए। तो शायद हमें यह साफ हो सके कि चित्त की एक विशिष्ट दशा में ऐसी आत्मा प्रविष्ट होती है।
इतना तो तय है कि हर दशा में हर आत्मा प्रविष्ट नहीं होती है। मां और बाप सिर्फ अवसर बनते हैं आत्मा के उतरने के, अवतरण के। आत्मा एक शरीर को छोड़ती है, जैसे ही मरती है मूर्च्छित हो जाती है, और जन्म तक मूर्च्छित ही रहती है। यानी मां के पेट के नौ महीने भी मूर्च्छित ही रहते हैं साधारणतया। लेकिन कुछ आत्माएं सचेत मरती हैं, तो वे मां के पेट में भी सचेत हो सकती हैं। जो सचेत मरेगा, वह मां के पेट में भी सचेत होगा।
इसलिए ये कहानियां बहुत आकस्मिक नहीं हैं कि मां के पेट में भी कुछ सीखा जा सके और बाहर की बातें सुनी जा सकें या बाहर के अर्थ ग्रहण किए जा

सकें। यह बहुत असंभव नहीं है। अगर कोई चेतना सचेत रूप में मरी है, मरते वक्त पूर्ण चेतन थी, होश नहीं खोया था, शरीर होशपूर्वक छोड़ा, तो वह आत्मा होशपूर्वक शरीर ग्रहण भी करेगी। और मां के पेट में भी होशपूर्वक होगी। लाओत्से के संबंध में कहा जाता है कि वह बूढ़ा ही पैदा हुआ, क्योंकि पैदा होते से ही उसने ऐसे लक्षण दिखाए जो कि अत्यंत वृद्ध ज्ञानी में होने चाहिए। और बड़े बचपन से उसमें ऐसी बातें दिखाई पड़ने लगीं, जो कि बड़े अनुभव के बाद ही हो सकती हैं।
सचेतन रूप से मरा हुआ व्यक्ति सचेतन रूप से पैदा हो सकता है।
तो महावीर के मां के पेट में संकल्प करने की बात अर्थ रखती है। इस बात
का संकल्प करने की बात कि अपने माता-पिता को दुख नहीं दूंगा। उनके जीते-जी संन्यास नहीं लूंगा। इस बात का संकल्प गर्भ में किया गया है, यह अर्थपूर्ण हो सकता है। लेकिन सामान्यतया हम मरते समय बेहोश हो जाते हैं और जन्म तक वह बेहोशी जारी रहती है।
असल में प्रकृति की यह व्यवस्था है मूर्च्छा करने की। जैसे हम आपरेशन करते हैं एक आदमी का, तो मूर्च्छित कर देते हैं, ताकि मूर्च्छा में जो भी हो उसे पता न चल सके, क्योंकि पता चलना बहुत घबड़ाने वाला भी हो सकता है। इसलिए प्रकृति की व्यवस्था है मरने के पहले मूर्च्छित और जन्म तक मूर्च्छा ही रहेगी।
और इस मूर्च्छा में जो भी होगा, जैसा मैंने कहा है कि आत्मा ग्रहण करेगी, तो वह बिल्कुल आटोमेटिक है। आटोमेटिक का मतलब यह है कि आत्मा का रुझान जैसा है अचेतन, वह उस तरफ यात्रा कर जाएगी।
सचेतन रूप से जन्म बहुत कम लोग लेते हैं। वे ही लोग सचेतन रूप से जन्म
ले सकते हैं, जिन्होंने पिछले जीवन में चेतना की बड़ी गहरी उपलब्धि की है, वे सचेतन रूप से जन्म ले सकते हैं। और तब वे जानते हैं पिछले जन्म को, मृत्यु को, मरने के बाद को।
तिब्बत में एक प्रयोग होता है--बारदो। दुनिया में जिन लोगों ने खोज की
है मृत्यु के बाबत, उसमें सबसे ज्यादा खोज तिब्बत में हुई है। बारदो एक अदभुत प्रयोग है। जब एक आदमी मरता है तो भिक्षु उसके आस-पास खड़े होकर बारदो का प्रयोग करते हैं। जब वह मर रहा होता है, तब वे उसे चिल्ला कर कहते हैं कि होश रख, होश रख, सम्हल, बेहोश मत हो जाना, क्योंकि एक बड़ा मौका आया है, जो फिर दुबारा सौ वर्ष बाद शायद आए। यह मरने का मौका अगर सौ वर्ष बाद आए, तो उसे हिलाते हैं, जगाते हैं।
आप हैरान होंगे, आस्पेंस्की नाम का एक अदभुत विचारक चलते-चलते मरा, लेटा नहीं। अभी मरा, एक दस-पंद्रह साल पहले। और अपने सारे शिष्यों को इकट्ठा कर लिया मरने के पहले और चलता रहा और उसने कहा कि मैं होश में ही मरूंगा। मैं लेटना भी नहीं चाहता कि कहीं झपकी न लग जाए। चलता ही रहा।
जो लोग मौजूद थे, उन लोगों ने लिखा है कि जो अनुभव हमें हुआ उस दिन, वह हमें कभी नहीं हुआ था, कि कोई आदमी इतने होश से मर सकता है! टहलता ही रहा और कहता रहा कि बस अब यह होता है, अब यह होता है, अब यह होता है। अब मैं यहां डूब रहा हूं, अब मैं इस जगह पहुंच रहा हूं, अब बस इतने सेकेंड में सांस चली जाएगी। वह एक-एक चीज को नाप कर बोलता रहा। और पूरा सचेत मरा। मरा तब खड़ा था।
बारदो में वे उस आदमी को चिल्ला-चिल्ला कर सचेत करते हैं कि जागे रहना, सो मत जाना। हिलाते हैं, उसको पूरी कोशिश करते हैं, उसको कहते हैं कि देखो ऐसा-ऐसा होगा, घबड़ाओ मत, बेहोश मत हो जाना। और फिर एक-एक... अगर वह आदमी होश में रह जाता है तो फिर बारदो की प्रक्रिया आगे चलती है। फिर उसको बताते हैं कि अब ऐसा होगा देख, गौर से देख भीतर कि अब ऐसा होगा, अब ऐसा होगा, अब शरीर से इस तरह छूटेगा। अब शरीर छूट गया है। तू घबड़ाना मत। तू मर नहीं गया। शरीर छूट गया है, लेकिन देख तेरे पास देह है, गौर से देख। घबड़ा मत। वे सारा, वह पूरा प्रयोग करवाएंगे मरते वक्त।
वह मरने की प्रक्रिया बहुत कीमती है, कि उस वक्त अगर किसी को सचेत रखा
जा सके तो उसके जीवन में एक क्रांति हो गई, जो बहुत अदभुत है। लेकिन रखा उसको ही जा सकता है, जो जीवन में सचेत होने का प्रयोग कर रहा हो, नहीं तो नहीं रखा जा सकता।

मैं जिस श्वास के अभ्यास के लिए आप से कह रहा हूं, अगर वह जारी रखते हैं तो मृत्यु के वक्त में कोई संपत्ति काम नहीं आएगी, कोई मित्र काम नहीं आएगा, वह श्वास की जागरूकता ही सिर्फ काम आती है। क्योंकि जो श्वास के प्रति जागरूक है, श्वास जैसे-जैसे डूबने लगती है, वह अपनी जागरूकता जारी रखता है। और श्वास के डूबने के साथ वह देखता है कि मृत्यु उतरने लगी, श्वास जाने लगी और मृत्यु उतरने लगी। और उसने श्वास का इतना जागरूक होने का अभ्यास किया है कि जब श्वास बिल्कुल नहीं रह जाती, तब भी वह जागा रह जाता है।
बस, वही प्वाइंट है, जहां से उसकी नई यात्रा शुरू हो गई जागरण की। तब फिर उसका जन्म एकदम जागरूक जन्म है। और एक दफा कोई जागरूक मर जाए, फिर दूसरी जिंदगी बिल्कुल दूसरी है, क्योंकि पिछले जन्म का कुछ भी नहीं भूलता फिर। वह गैप नहीं आता बीच में विस्मृति का, जो भुला दे। कंटिन्यूटी जारी रहती है।
वे बारदो में बड़ी चेष्टा करते हैं। अब मैं कितना चाहता हूं कि बारदो जैसी स्थिति इस मुल्क में पैदा की जाए, जो कभी नहीं हो सकी। यहां मरने के नाम से फिजूल मूर्खतापूर्ण बातें प्रचलित हैं, जिनका कोई लेना-देना नहीं है। कोई मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया नहीं जगा पाए हैं कि मरते हुए आदमी के लिए हम सहयोगी हो जाएं।
सहयोगी हम हो सकते हैं। और उसी माध्यम से वह व्यक्ति जब दुबारा जन्म लेगा तो उसके जन्म की पिछली यात्रा उसके सामने रहेगी सदा। वह आदमी दूसरे ढंग का हो जाएगा। उसके दूसरे जन्म में साधना अनिवार्य हो जाएगी। अब वह दूसरे जन्म को खोने को तैयार नहीं हो सकता है।
वह जो सूक्ष्म शरीर है, जिसकी मैंने बात कही, उसी सूक्ष्म शरीर में वे सूखी रेखाएं बनती हैं जो सुबह मैंने कहीं। वे सूखी रेखाएं बनती कहां हैं? वे कर्म जो हमने किए और वे फल जो हमने भोगे, वह जो हम जीए, उस सबकी सूक्ष्म रेखाएं उस सूक्ष्म शरीर पर बनती हैं। वह जो सूक्ष्म शरीर है--इसीलिए उसका एक नाम मैंने कहा, कार्मण शरीर।
तो महावीर का तो बहुत स्पष्ट ख्याल है कि जो भी हमने जीया और भोगा उसके भोग के कारण विशेष प्रकार के परमाणु हमारे सूक्ष्म शरीर से जुड़ जाते हैं। जैसे एक क्रोधी आदमी है, तो वह एक विशेष प्रकार के परमाणु अपने सूक्ष्म शरीर में जोड़ लेता है।
अब ये हमको... अब तो साइंस बहुत सी बातें कहती है। साइंस कहती है कि जब
आप क्रोध में होते हैं तो आपके खून में खास तरह का पायज़न छूट जाता है। जब आप प्रेम में होते हैं, तब एक दूसरे तरह का ड्रग आपके खून में छूट जाता है। जब एक आदमी किसी स्त्री या कोई स्त्री किसी पुरुष के प्रति दीवानी या पागल हो जाती है प्रेम में, तो उसके खून में साइकोडेलिक ड्रग्स छूट जाते हैं, जिनकी वजह से सम्मोहन पैदा हो जाता है, और स्त्री उतनी सुंदर दिखाई पड़ने लगती है, जितनी वह है नहीं।
अगर आपको किसी स्त्री से प्रेम नहीं है तो एल.एस. डी. का एक इंजेक्शन लगा कर किसी भी स्त्री को देखें, जिससे आपका प्रेम नहीं, और आप एकदम दीवाने हो जाएंगे। क्योंकि एल.एसड़ी. का इंजेक्शन जो है, वह आपके शरीर में वे ड्रग्स छोड़ देता है, जो प्रेमी के शरीर में अपने आप छूटते हैं। बस उन ड्रग्स के छूटते से कोई भी स्त्री आपको अपूर्व सुंदरी दिखाई पड़ेगी, यह सवाल नहीं है कि फलां स्त्री। एक साधारण सी कुर्सी ऐसी अद्वितीय दिखाई पड़ती है एल.एसड़ी. का ड्रग लेने के बाद कि जैसी कोई स्त्री भी कभी सुंदर नहीं दिखाई पड़ी होगी। एक साधारण सा फूल इतना सुंदर हो जाता है, अलौकिक हो जाता है।
तो एल.एसड़ी. की शरीर में गति होने से सब बदल जाता है। तो जब हम क्रोध करते हैं, तब एक तरह का पायज़न; प्रेम करते हैं, तब एक तरह का एंटी-पायज़न, और इस तरह के सारे के सारे रस शरीर में छूटते रहते हैं। यह तो शरीर के तल पर हो रहा है। लेकिन सूक्ष्म शरीर के तल पर भी हो रहा है। जब आप क्रोध कर रहे हैं तो सूक्ष्म शरीर के साथ विशेष तरह के परमाणु संबंधित हो रहे हैं, जब आप प्रेम कर रहे हैं तो विशेष तरह के परमाणु संबंधित हो रहे हैं।

इस शरीर के छूट जाने पर वह सूक्ष्म शरीर ही सूखी रेखाओं की तरह आपके भोगे गए जीवन को लेकर नई यात्रा शुरू करता है। और वह सूक्ष्म शरीर ही नए शरीर ग्रहण करता है। इसलिए वह अंधा हो सकता है। इसलिए वह काना हो सकता है।
इसलिए वह लंगड़ा हो सकता है। बुद्धिमान हो सकता है, बुद्धिहीन हो सकता है।
प्रत्येक मृत्यु में स्थूल देह मरती है। फिर अंतिम मृत्यु है महामृत्यु--जिसे हम मोक्ष कहते हैं, उसमें वह सूक्ष्म शरीर भी मर जाता है। जिस दिन सूक्ष्म शरीर मर जाता है, उस दिन व्यक्ति का मोक्ष हो गया।
यह शरीर तो हर बार मरता है। वह भीतर का शरीर हर बार नहीं मरता। वह तभी मरता है, जब उस शरीर के रहने का कोई अर्थ नहीं रह जाता--जब व्यक्ति न कुछ करता है, न भोगता है, न कर्ता बनता है, न किसी कर्म को ऊपर लेता है, न कोई प्रतिक्रिया करता है। जब व्यक्ति सिर्फ साक्षी मात्र रह जाता है, तब सूक्ष्म शरीर पिघलने लगता है, बिखरने लगता है।
साक्षी की जो प्रक्रिया है, वह सूक्ष्म शरीर को ऐसे पिघला देती है, जैसे सूरज निकले और बर्फ पिघलने लगे। साक्षी के निकलते ही सूक्ष्म शरीर के परमाणु पिघल कर बहने लगते हैं।
जिस दिन सूक्ष्म शरीर समाप्त हो जाता है, उस दिन आदमी कह सकता है... और
यह पिघलना ऐसा ही अनुभव होता है, जैसे कि आपको सर्दी-जुकाम पकड़ गया है और जुकाम उतर रहा है तो आप अनुभव करते हैं, किसी को बता नहीं सकते कि अब जुकाम नीचे उतर रहा है। सूक्ष्म शरीर का पिघलना साक्षी को इसी तरह पता चलता है कि कोई चीज भीतर पिघल कर बहती चली जा रही है।
और जिस दिन सूक्ष्म शरीर पिघल जाता है, आत्मा और शरीर बिल्कुल पृथक दिखाई पड़ने लगते हैं। सूक्ष्म शरीर जोड़ है। वह पृथक नहीं दिखाई पड़ने देता। वह दोनों को जोड़ कर रखता है। और जिस दिन ये पृथक दिखाई पड़ जाते हैं, वह आदमी कह देता है, अब यह आखिरी यात्रा है। अब इसके बाद लौटना मुश्किल है। बुद्ध को जिस दिन ज्ञान हुआ तो बुद्ध ने कहा, वह घर गिर गया, जो सदियों
से नहीं गिरा था। वह घर के बनाने वाले कारीगर विदा हो गए, जो सदा उस घर को बनाते थे। अब मेरे लौटने की कोई उम्मीद न रही; क्योंकि मैं कहां लौटूंगा! वह घर ही न रहा, जिसमें सदा लौटता था!
और वह घर जो है, वह है सूक्ष्म शरीर का घर। हमारे सारे कर्म, हमारे कर्मों के फल, हमारा भोग, हमारा जीया हुआ जीवन, वह सब उस सूक्ष्म शरीर पर जैसे स्लेट पट्टी पर रेखाएं बन जाती हैं, वैसा बन जाता है।
उस सूक्ष्म शरीर को गलाना ही साधना है। अगर मुझसे कोई पूछे कि तपश्चर्या का क्या मतलब, तो मैं कहूंगा, सूक्ष्म शरीर को गलाना तपश्चर्या है।
और तप शब्द का उपयोग इसीलिए करते हैं कि तप का मतलब होता है, तीव्र गर्मी, जैसे सूर्य की गर्मी। ऐसी गर्मी भीतर साक्षी से पैदा करनी है कि सूक्ष्म शरीर पिघल जाए और गल जाए, तप का मतलब वह है। तप का मतलब धूप में खड़े होना नहीं है। वह पागल है आदमी जो धूप में खड़े होकर तप कर रहा है। एक और धूप की बात है। एक और तप की बात है। भीतर जो पैदा करनी है, जिससे सूक्ष्म शरीर गल जाए और बह जाए।
जब महावीर को कहते हैं महातपस्वी, तो उसका मतलब यह नहीं है कि धूप में खड़े हुए शरीर को सता रहे हैं। और जब महावीर को कहते हैं काया को मिटाने वाले, तो उस काया का इस काया से कोई मतलब नहीं है। उस काया का मतलब ही उस काया से है, वह जो भीतर की काया है। वही असली काया है। यह तो बार-बार मिलती है।
आप इस कमीज को अपनी काया नहीं कहते, क्योंकि रोज इसे बदल लेते हैं। शरीर को काया कहते हैं, क्योंकि जिंदगी भर उसे नहीं बदलते। महावीर भलीभांति जानते हैं कि यह शरीर भी तो कई बार बदल लेते हैं। लेकिन एक और काया है, जो कभी नहीं बदलती। बस एक ही बार खतम होती है, बदलती नहीं।
तो उस काया के पिघलाने में लगा हुआ जो श्रम है, वही तपश्चर्या है। और
उस काया को पिघलाने के लिए जो प्रक्रिया है, वही साक्षी-भाव, सामायिक या ध्यान है। और वह हमारे स्मरण में आ जाए और उसके प्रयोग से हम गुजर जाएं तो फिर कोई पुनर्जन्म नहीं है।

पुनर्जन्म रहा है सदा, रहेगा, अगर हम कुछ न करें। लेकिन ऐसा हो सकता है
कि फिर पुनर्जन्म न हो। तब हम विराट जीवन के साथ एक हो जाते हैं। ऐसा नहीं कि हम मिट जाते हैं, ऐसा नहीं कि हम समाप्त हो जाते हैं, बस ऐसा ही जैसे बूंद सागर हो जाती है। मिटती-विटती नहीं, लेकिन मिट भी जाती है। बूंद की तरह मिट जाती है, सागर की तरह रह जाती है।
इसलिए महावीर कहते हैं, आत्मा ही परमात्मा हो जाती है। लेकिन नहीं समझे उनके पीछे वाले कि क्या मतलब है। मतलब इसका है कि आत्मा की बूंद खो जाती है उसमें जो परमात्मा है, वह एक हो जाती है।
उस एकता में, उस परम अद्वैत में परम आनंद है, परम शांति है, परम सौंदर्य है।

महावीर: मेरी दृष्टि में चौदहवां प्रवचन

महावीरः परम समर्पित व्यक्तित्व

प्रश्नः महावीर को ऐसा कोई गुरु अथवा पंथ क्यों नहीं मिल सका, जिनके चरणों में महावीर अपना आत्मसमर्पण कर सकें? महावीर ऐसा क्या चाहते थे?

जीवन में बहुत कुछ है, जो दूसरे से नहीं मिल सकता है। और जो भी श्रेष्ठ है, जो भी सत्य है, सुंदर है, उसे दूसरे से पाने का कोई भी उपाय नहीं है। जो दूसरे से पाया जा सकता है, परम अर्थों में उसका कोई मूल्य नहीं हो सकता। क्योंकि जिसे हम दूसरे से पा लेते हैं, वह हमारे प्राणों से विकसित हुआ हुआ नहीं होता।
वह ऐसा ही है जैसे कि कागज के फूल कोई बाजार से ले आए और घर को सजा ले। वृक्षों से आए हुए फूलों की बात और है, वे जीवंत हैं। यह भी हो सकता है कि कोई उधार वृक्षों के फूल भी ले आए, तो भी वे मृत हो जाते हैं। थोड़ी-बहुत देर गुलदस्ते में धोखा दे सकते हैं जीवित होने का, लेकिन फिर भी वे जीवित नहीं हैं। सत्य के फूल तो कभी भी उधार नहीं मिलते हैं। इसलिए जो भी सत्य को खोजने निकला हो, वह गुरु को खोजने नहीं निकलता है। इस बात को ठीक से समझ लेना चाहिए। जो सत्य को खोजने निकला है, वह गुरु को खोजने नहीं निकलता है। हां, असत्य को कोई खोजने निकला हो तो गुरु की खोज बहुत जरूरी है। सत्य की खोज में गुरु एकदम अनावश्यक है। सत्य की खोज में गुरु अनावश्यक है, लेकिन शिष्यत्व, सीखने की क्षमता, एटिट्यूड ऑफ डिसाइपलशिप बहुत कीमती है। महावीर ने कोई गुरु कभी नहीं बनाया। असल में अगर कोई शिष्य होने को तैयार है, तो उसे गुरु बनाने की जरूरत ही नहीं है, तब सारा जीवन ही गुरु बन जाता है। जो व्यक्ति सीखने को तैयार है, वह सब जगह से सीख लेता है--उन जगहों से भी, जहां सीखने की कोई उम्मीद न थी।
गुरु तो बनाते ही वे हैं, जिनके शिष्य होने की क्षमता बड़ी छोटी है। जो सबके शिष्य नहीं हो सकते हैं, वे गुरु बनाते हैं। जो इस अनंत जीवन से नहीं सीख सकते, वे किसी एक को पकड़ कर सीखने की कोशिश करते हैं। और जो अनंत से न सीख सकता हो, वह एक से सीख सकेगा, इसकी कोई संभावना नहीं है। क्योंकि अनंत भी जिसे सिखाने में असमर्थ है, उसे एक कैसे सिखा सकेगा!
असली सवाल सीखने की क्षमता का है। और जिसके पास सीखने की क्षमता है,
वह गुरु नहीं बनाता, सीखता चला जाता है, क्योंकि गुरु बनाना बंधना है। गुरु बनाना एक तरह का बंधन निर्मित करना है। वह इस बात की चेष्टा है कि सत्य पाएंगे तो इस व्यक्ति से, और कहीं से, सब तरफ से अंधे हो जाएंगे। सत्य कोई ऐसी चीज नहीं है कि किसी एक व्यक्ति से प्रवाहित हो रही हो। सत्य तो पूरे जीवन पर छाया हुआ है। अगर हम सीखने को तत्पर हैं, उत्सुक हैं, रिसेप्टिव हैं, ग्राहक हैं, तो सत्य सब जगह से सीखा जा सकता है। एक गुरु लाख समझाए कि जिंदगी असार है, और एक गुरु लाख समझाए कि कल मौत आ जाएगी, चेत जाओ, और अगर हम सीख न सकते हों तो आवाज कान में सुनाई पड़ेगी और समाप्त हो जाएगी। और अगर कोई सीख सकता है तो एक वृक्ष से गिरते हुए सूखे पत्ते को देख कर भी सीख सकता है कि जिंदगी असार है। और अभी जो हरा था, अभी सूख गया है; कल जो जन्मा था, आज मर गया है। और एक सूखा पत्ता गिरता हुआ भी एक व्यक्ति को जीवन की सारी व्यर्थता का बोध करा जा सकता है। लेकिन सीखने की क्षमता न हो तो यह बोध कोई भी नहीं करा सकता।
महावीर में सीखने की अदभुत क्षमता है, इसलिए उन्होंने गुरु नहीं बनाया। गुरु खोजा भी नहीं, बस सीखने निकल पड़े, खोजने निकल पड़े। बीच में किसी व्यक्ति को लेना नहीं चाहा, क्योंकि उधार ज्ञान लेने की उनकी कोई आकांक्षा नहीं है।
और उधार भी कभी ज्ञान हो सकता है? और सब चीजें उधार हो सकती हैं, ज्ञान उधार नहीं हो सकता। ज्ञान तो उसका ही होता है, जो पाता है। दूसरे को देते ही व्यर्थ हो जाता है। इसलिए गुरुओं की कमी न थी महावीर के जीवन में, सब तरफ गुरु मौजूद थे। शास्त्रों की कमी न थी, शास्त्र मौजूद थे। सिद्धांतों

की कमी न थी, सिद्धांत मौजूद थे। लेकिन महावीर ने सबकी तरफ पीठ कर दी, क्योंकि शास्त्र की तरफ मुंह करना या सिद्धांत की तरफ या गुरु की तरफ, बासे और उधार के लिए उत्सुक होना है। वे निपट अपनी खोज पर चले गए। स्वयं ही पा लेना है।
और जो स्वयं न मिले, वह दूसरे से मांग कर मिल भी कैसे सकता है? मिलने
का मार्ग भी क्या है, राय भी क्या है? दूसरे से ज्यादा से ज्यादा शब्द मिल सकते हैं, सिद्धांत मिल सकते हैं, सत्य नहीं। इसलिए महावीर ने किसी गुरु के प्रति समर्पण नहीं किया।
यह भी समझ लेने जैसी बात है कि समर्पण ही करना हो तो क्षुद्र के प्रति, सीमित के प्रति क्या! समर्पण ही करने कोई राजी हो गया हो तो समस्त के प्रति क्यों नहीं? सच तो यह है कि एक के प्रति समर्पण असली में समर्पण नहीं है। एक के प्रति समर्पण में शर्त है।
जब मैं कहता हूं कि फलां व्यक्ति के प्रति मैं समर्पण करूंगा और फलां
के प्रति नहीं, तो मैं शर्त रख रहा हूं; क्योंकि मैं मानता हूं कि यह ठीक है, दूसरा गलत है; यह पा लिया है, दूसरा नहीं पाया है; इससे मिलेगा, दूसरे से नहीं मिलेगा; यही दे सकता है, दूसरा नहीं दे सकता है। तब समर्पण कैसा हुआ? सौदा हुआ। जिससे हमें मिलेगा, जिससे हम पा सकते हैं, इसकी आकांक्षा को ध्यान में रख कर अगर समर्पण किया गया हो तो समर्पण कैसा हुआ? बड़ा सौदा हुआ, लेन-देन हुआ।
समर्पण का तो अर्थ यह हैः बिना शर्त, बिना आकांक्षा के स्वयं को छोड़ देना।
तब कोई किसी व्यक्ति के प्रति कभी समर्पित नहीं हो सकता, समर्पित तो
हो सकता है सिर्फ परमात्मा के प्रति। और परमात्मा का मतलब है समस्त। अगर परमात्मा भी एक व्यक्ति है, तो भी समर्पण नहीं हो सकता। जैसे अगर किसी ने परमात्मा को राम मान लिया है तो राम के प्रति समर्पण है उसका, कृष्ण के प्रति समर्पण नहीं है।
एक बड़े प्रसिद्ध संत के जीवन में उल्लेख है कि उन्हें, वह राम के भक्त हैं, उन्हें कृष्ण के मंदिर में ले जाया गया है, तो बांसुरी बजाते कृष्ण की मूर्ति को उन्होंने नमस्कार करने से इनकार कर दिया। उन्होंने कहा कि मैं तो धनुर्धारी राम के प्रति ही झुकता हूं, और अगर चाहते हो कि मैं झुकूं तो धनुष-बाण हाथ में ले लो!
यानी झुकने वाला शर्त लगाएगा! वह यह भी शर्त लगाएगा कि तुम कैसे खड़े होओ--धनुष-बाण लेकर कि बांसुरी लेकर! तुम्हारी कैसी शक्ल हो, तुम्हारी कैसी आंखें हों--इस सबकी वह शर्त लगाएगा! और समर्पण में शर्त हो सकती है? यानी कोई यह कहे कि तुम ऐसे हो जाओ तो मैं समर्पण करूंगा, तो समर्पण क्या रहा? समर्पण का तो अर्थ ही सदा बेशर्त है, अनकंडीशनल।
तो मैं मानता हूं कि महावीर का समर्पण है, लेकिन किसी व्यक्ति के प्रति नहीं, समस्त के प्रति। और समस्त के प्रति जिनका समर्पण है, उनका हमें समर्पण पता नहीं चलता। क्योंकि पता कैसे चलेगा? हम तो व्यक्तियों के समर्पण को ही समझ पाते हैं कि यह आदमी फलां आदमी के प्रति समर्पित है, तो हमें समझ में आता है। लेकिन एक आदमी समस्त के प्रति समर्पित है--उस पत्थर के प्रति भी जो सड़क पर पड़ा है, और आकाश के तारे के प्रति भी, और फूल के प्रति भी, और आदमी के प्रति भी, और बच्चे के प्रति भी, और जानवर के प्रति भी। जो समस्त के प्रति समर्पित है, उसका समर्पण हमारी पहचान में नहीं आएगा, क्योंकि हमारा मापदंड सीमित, सौदे का है। जैसे अगर मैं एक व्यक्ति को प्रेम करूं तो समझ में आ सकता है कि मैं प्रेम करता हूं। लेकिन अगर मेरा समस्त के प्रति प्रेम हो तो समझ में आना मुश्किल हो जाएगा कि इस आदमी का शायद किसी से भी प्रेम नहीं है! क्योंकि हम प्रेम को पहचान ही तब पाते हैं, जब वह व्यक्ति से बंध जाए। अगर वह फैला हो, अनबंधा हो, असीम हो, तो हम नहीं पहचान पाते।
इसलिए महावीर को समझने वाले सोचते रहे हैं कि महावीर ने किसी के प्रति समर्पण नहीं किया। यह बात ही झूठ है। असल में महावीर ने किसी के प्रति इसीलिए समर्पण नहीं किया कि किसी के प्रति समर्पण करने से शेष के प्रति असमर्पण हो जाता है। अगर टोटल सरेंडर है, अगर पूर्ण समर्पण है, तो

पूर्ण के प्रति ही हो सकता है। अपूर्ण के प्रति, सीमित के प्रति, पूर्ण समर्पण नहीं हो सकता।
अब तक किसी ने भी इस तरह नहीं सोचा है महावीर के प्रति कि वे समर्पित व्यक्ति थे। मैं कहता हूं कि वे बिल्कुल ही पूर्ण समर्पित व्यक्ति थे। लेकिन पूर्ण समर्पित व्यक्ति किसी के प्रति समर्पित नहीं होता। वे किसी के आगे सिर नहीं झुकाएंगे, इसलिए नहीं कि अहंकार है कि किसी के प्रति सिर नहीं झुका सकते हैं; बल्कि इसीलिए कि किसी के प्रति सिर झुकाना किसी के प्रति सिर न झुकाना बनता है। और जिसका सिर झुका ही हुआ है सबके प्रति, अब वह कैसे अलग-अलग खोजने जाए कि इसके प्रति झुकूं और उसके प्रति न झुकूं? उसका किसी के प्रति झुकने का कोई सवाल नहीं है।
और ध्यान रहे, जो व्यक्ति किसी के प्रति झुकता है, वह किसी के प्रति सदा अकड़ा रहता है। और जो व्यक्ति किसी के चरण छूता है, वह किसी से चरण छुआने की आतुरता में रहता है। मैं एक बड़े संन्यासी के आश्रम में गया था। एक बड़े मंच पर संन्यासी बैठे हुए हैं, उनके मंच के नीचे ही एक छोटा तख्त है, उस पर एक दूसरे संन्यासी बैठे हैं, उस तख्त के नीचे और संन्यासी बैठे हुए हैं।
उन बड़े संन्यासी ने मुझसे कहा कि आप देखते हैं मेरे बगल में कौन बैठा हुआ है? मैंने कहा, मुझे जरूरत नहीं है; कोई बैठा है जरूर, कोई जरूरत नहीं है। नहीं, उन्होंने कहा, आपको शायद पता नहीं, वे हाईकोर्ट के चीफ जस्टिस थे। साधारण आदमी नहीं हैं! लेकिन बड़े विनम्र हैं, कभी मेरे साथ तख्त पर नहीं बैठते, हमेशा छोटे तख्त पर नीचे बैठते हैं।
मैंने कहा, वह मुझे दिखाई पड़ रहा है, लेकिन उनसे भी नीचे तख्त पर कुछ लोग बैठे हुए हैं। उनके प्रति विनम्र नहीं हैं? उनसे ऊंचे तख्त पर बैठे हुए हैं! और मैंने कहा, वे आपके मरने की प्रतीक्षा देख रहे हैं कि जब आप मरें तो वे इस तख्त पर बैठें और वे जो नीचे बैठे हैं, वे सरक कर उनके बगल के तख्त पर बैठ जाएंगे। और वे भी लोगों से कहेंगे कि यह आदमी बड़ा विनम्र है, कभी मेरे साथ नहीं बैठता। और मैंने कहा कि यह आदमी विनम्र है क्योंकि आपके साथ नहीं बैठता, आप कैसे आदमी हैं? इसको भी तो सोचना जरूरी है कि आप कैसे आदमी हैं? आप बड़े ईगोइस्ट, बड़े अहंकारी आदमी मालूम होते हैं, कि इसके साथ बैठने से आप अविनय समझेंगे कि यह साथ बैठ गया तो यह आदमी अहंकारी है! आप कैसे आदमी हैं, जो साथ बैठने में दूसरे के अविनय को समझेंगे, नीचे बैठने में विनय को! लेकिन वह भी आदमी बिल्कुल नीचे नहीं बैठा हुआ है। वह प्रतीक्षा कर रहा है सिर्फ आपकी।
सब चेले प्रतीक्षा करते हैं कि कब गुरु हो जाएं। और सब समर्पित व्यक्ति--किसी के प्रति समर्पित व्यक्ति-- दूसरों के समर्पण की मांग करते हैं। क्योंकि जो वे इधर देते हैं, वह दूसरे से मांग करते हैं।
यह निरंतर आपने देखा होगा कि जो आदमी किसी की खुशामद करेगा, वह आदमी अपने से पीछे वाले लोगों से खुशामद मांगेगा। जो आदमी किसी की खुशामद नहीं करेगा, वह खुशामद भी नहीं मांगेगा। ये दोनों बातें एक साथ चलती हैं। जो आदमी बहुत विनम्रता दिखलाएगा, वह आदमी दूसरों से विनम्रता की मांग करेगा। महावीर को समझना इस अर्थ में कठिन हो जाता है। वे किसी के प्रति समर्पित नहीं हैं, कोई उनका गुरु नहीं है, किसी के चरण नहीं छुए हैं, किसी के चरणों में नहीं बैठे हैं, किसी के पीछे नहीं चले हैं, तो समझना हमें कठिन हो जाता है। लेकिन मेरी अपनी दृष्टि यही है कि वे इतने समर्पित व्यक्ति हैं, वे समस्त के प्रति इस भांति झुके हुए हैं कि अब और किसके लिए झुकना है? और क्यों झुकना है?
एक आदमी मेरे पास आया और उसने कहा कि आप फलां-फलां आदमी को महात्मा मानते हैं कि नहीं? मैंने कहा, तुम अगर मुझसे कहते कि आदमी को महात्मा मानते हैं कि नहीं, तो मैं जल्दी से राजी हो जाता। तुम कहते हो, फलां-फलां व्यक्ति को! अब उसमें यह बात छिपी है कि मैं एक व्यक्ति को महात्मा मानूं तो दूसरों को हीनात्मा मानूं, इसके सिवाय कोई चारा नहीं है। एक को महात्मा मानने में दूसरे को हीनात्मा मानना ही पड़ेगा, नहीं तो उसे महात्मा कहने का कोई अर्थ नहीं रह जाता।

तो मैंने कहा कि मैं किसी को हीनात्मा मानने को राजी नहीं हूं, इसलिए महात्मा भी एकदम विदा हो जाता है मेरे मन से। मेरे लिए कोई महात्मा नहीं है, क्योंकि कोई हीनात्मा नहीं है। और एक को महात्मा बनाओ तो हजार, लाख, करोड़ को हीनात्मा बनाना जरूरी है, नहीं तो काम चलता नहीं। यानी एक महात्मा की रेखा खींचने के लिए करोड़ हीनात्माओं का घेरा खड़ा करना पड़ता है, तब एक महात्मा बन सकता है, बनाया जा सकता है।
लेकिन यह हमें कभी दिखाई नहीं पड़ता! यह हमें कभी दिखाई नहीं पड़ता कि
एक महात्मा बनाने में करोड़ों लोगों को हीनात्मा की दृष्टि से हम देखना शुरू कर देते हैं।
महावीर किसी को न महात्मा मानते हैं, न किसी को हीनात्मा मानते हैं।
महावीर इस विचार में ही नहीं पड़ते। वे एक-एक की गिनती ही नहीं कर रहे हैं।
समस्त जीवन का सीधा समर्पण है, इसलिए व्यक्ति बीच में आता नहीं।
और इसी तरह, इस संबंध में, इस प्रश्न से संबंधित दूसरी बात भी मैं आपको याद दिला दूं, कि चूंकि महावीर ने किसी को गुरु नहीं बनाया, इसलिए जितने लोगों ने महावीर को गुरु बनाया, उन सबने महावीर के साथ अन्याय किया है। क्योंकि समझ ही नहीं पाए उस आदमी को। यानी जो आदमी किसी को कभी गुरु नहीं बनाया, वह कभी किसी को शिष्य बनाने की बात भी नहीं सोच सकता है। ये संयुक्त बातें हैं। क्योंकि जब वह अपने ही लिए नहीं यह मानता है ठीक कि किसी को गुरु की तरह ऊपर स्थापित करे, वह यह कैसे मान सकता है कि कोई उसे गुरु की तरह स्थापित करे?
इसलिए महावीर के जो अपने को शिष्य और अनुयायी समझते हों, वे महावीर के साथ बुनियादी अन्याय कर रहे हैं। उस आदमी को समझ ही नहीं पा रहे हैं। जिस महावीर ने अपने से पहले चले आए किसी शास्त्र को मान्यता नहीं दी, तो जिन्होंने महावीर का शास्त्र बना लिया, उन्होंने महावीर के साथ जो व्यभिचार किया है, उसका हिसाब लगाना बहुत मुश्किल है। महावीर ने अपने से पहले के किसी--किसी भी व्यक्ति को ऐसा नहीं कहा कि उससे मुझे मिल जाएगा, या वह मुझे देने वाला हो सकता है। बात ही नहीं उठाई इसकी। मुझे ही पाना होगा। उस महावीर के पीछे लाखों लोग हैं, जो यह कहते हैं कि तुम्हीं हमें पहुंचा दो, तुम्हीं हमें मिला दो, तुम्हीं हमारा कल्याण करो, तुम्हीं हमारे नाव, खिवैया, जो कुछ हो तुम्हीं हो!
उस महावीर के प्रति ये बातें ऐसी अशोभन हैं! लेकिन ख्याल में नहीं आतीं। ख्याल में नहीं आतीं, क्योंकि हम महावीर को समझ ही नहीं पाए।
यह भी पूछा है उस प्रश्न में कि ऐसा महावीर क्या खोज रहे थे, जिसकी वजह
से वे किसी गुरु के पास नहीं गए?
निश्चित ही, वे ऐसी कोई चीज खोज रहे थे, जो किसी गुरु से कभी किसी को नहीं मिली है। हां, कुछ चीजें हैं, जो गुरु से मिल जाती हैं। असल में जीवन का बाह्य ज्ञान सदा गुरु से ही मिलता है। गणित सीखनी है, भूगोल सीखनी है, इतिहास सीखना है, इन सबका कोई आत्म-ज्ञान नहीं होता। ऐसा नहीं होता कि एक आदमी आंख बंद करके बैठ जाए और भूगोल सीख जाए। और किसी गुरु के पास न जाए और भाषा सीख जाए, ऐसा नहीं होता। असल में जो चीजें जीवन के बाहर के फैलाव से संबंधित हैं, वे सब की सब किसी से सीखनी पड़ती हैं।
लेकिन कुछ बात ऐसी भी है, जो बाहर के फैलाव से संबंधित ही नहीं है, जो मेरी अंतस चेतना में ही छिपी है, उसे कभी किसी गुरु से नहीं सीखना पड़ता है। जैसे कोई भूगोल, सोचता हो कि मैं आंख बंद करके अंतर्यात्रा करूं और जगत की भूगोल जान लूं, जैसी गलती वह करेगा, ऐसा ही वह भी आदमी गलती करेगा, जो अंतर्यात्रा करना चाहता हो और किसी गुरु के पास चला जाए, जैसा भूगोल सीखने के लिए जाना पड़ता है--और किसी गुरु के पास सीखने की कोशिश करने लगे, वह भी वैसी ही भूल करेगा।
कुछ है, जो दूसरे से सीखा जाता है और स्वयं सीखा ही नहीं जा सकता। और कुछ है, जो स्वयं ही सीखा जाता है और दूसरे से कभी भी नहीं सीखा जा सकता। महावीर उसी परम सत्य की खोज पर थे, इसलिए कोई--वे किसी के पास नहीं गए, उन्होंने किसी को बीच में नहीं लेना चाहा। क्योंकि बीच में ले लेने से ही शुद्धता नष्ट हो जाती है।

अगर मैं प्रेम की खोज में हूं तो मैं किसी को बीच में नहीं लेना चाहूंगा। अगर मैं सत्य की खोज में हूं तो भी मैं किसी को बीच में नहीं लेना चाहूंगा। अगर मैं सौंदर्य की खोज में हूं तो भी मैं अपनी आंखों से ही सौंदर्य देखना चाहूंगा, मैं दूसरों की आंखें उधार नहीं लेना चाहूंगा। क्योंकि वे आंखें दूसरों की होंगी, अनुभव दूसरे का होगा, मुझे क्या हो सकता है?
इसलिए महावीर उस परम सत्य की खोज में हैं, जो स्वयं में ही छिपा है। और किसी के पास न मांगने गए, न हाथ जोड़ने गए, न प्रार्थना करने गए।
इससे कोई ऐसा न समझ ले कि बहुत अहंकारी व्यक्ति रहे होंगे। क्योंकि साधारणतः हमारा ख्याल यह है कि जो किसी के प्रति सिर नहीं झुकाता, नमस्कार नहीं करता, किसी के चरणों में नहीं बैठता, किसी को आदर नहीं देता, किसी को सम्मान नहीं देता, वह आदमी बड़ा अहंकारी है।
लेकिन जो आदमी किसी को सम्मान नहीं देता, जो आदमी किसी को आदर नहीं देता, वह आदमी किसी से आदर मांगता है, किसी से सम्मान मांगता है तो अहंकार की खबर मिलती है। लेकिन जो आदमी न आदर देता, न मांगता, उसे कैसे अहंकारी कहोगे? जो न गुरु बनाता, न बनता, जो न शास्त्र मानता, न शास्त्र रचता, उसे कैसे अहंकारी कहोगे? अत्यंत विनम्र व्यक्ति है, सीधी खोज पर गया है, सीधा रास्ता अपना खोज रहा है, किसी को साथ नहीं लेना चाहता। कोई साथ हो भी नहीं सकता। अकेले के रास्ते हैं, अकेले की यात्राएं हैं।
प्लोटिनस ने एक किताब लिखी है और उस किताब में उसने कहा है कि बहुत सी यात्राएं थीं जो सबके साथ हुईं, बहुत सी खोजें थीं जिनमें मित्र थे, बहुत सी संपत्ति थी जिसमें साथी-सहयोगी थे। फिर एक ऐसी खोज आई, जहां न मित्र थे, न संगी था, न कोई साथी था--फ्लाइट ऑफ दि अलोन टु दि अलोन; अकेले की उड़ान थी अकेले की तरफ। और कोई बीच में न था। और जरा भी बीच में ले लेते तो बस भटकन शुरू हो जाती थी। क्योंकि उड़ान ही अकेले की अकेले की तरफ थी।
इसलिए महावीर बहुत सचेत हैं। उतने ही लोग अगर महावीर को प्रेम करने वाले भी सचेत होते तो दुनिया ज्यादा बेहतर होती। बुद्ध को प्रेम करने वाले, क्राइस्ट को प्रेम करने वाले भी अगर इतने ही सचेत होते तो दुनिया बहुत बेहतर होती। तब दुनिया में धर्म होता--जैन न होता, हिंदू न होता, मुसलमान न होता, ईसाई न होता। क्योंकि हिंदू, मुसलमान, ईसाई, जैन गुरुओं से बंधी हुई धारणा से पैदा होते हैं। अगर गुरु की धारणा ही टूट जाए तो दुनिया में आदमियत होगी, धर्म होगा, लेकिन पंथ न होंगे। और तब सारी वसीयत हमारी हो जाएगी।
आज एक ईसाई के लिए महावीर अपने नहीं मालूम पड़ते, क्योंकि कुछ लोगों ने उन्हें अपना बना रखा है। और जब कुछ लोग किसी को अपना बनाते हैं तो शेष लोगों के लिए वह पराया हो जाता है। आज क्राइस्ट जैनियों के लिए अपने नहीं मालूम पड़ते, क्योंकि कुछ लोगों ने उन्हें अपना बना लिया है। इसका मतलब यह हुआ कि जो लोग भी किसी बड़े सत्य को अपना बनाने का दावा करते हैं, वे शेष मनुष्य-जाति को वंचित कर देते हैं उस सत्य की संपदा से, उसकी वसीयत से, उसके हेरीटेज से।
अगर गुरु के आस-पास पागलपन पैदा न हो, श्रद्धा पैदा न हो, अंध-भक्ति पैदा न हो, गुरुडम पैदा न हो, तो संप्रदाय विदा हो जाएं। तब क्राइस्ट भी हमारे हों, मोहम्मद भी हमारे हों, महावीर भी हमारे हों, बुद्ध भी हमारे हों, सारी दुनिया की समस्त जाग्रत चेतनाएं हमारी हों। और तब हम इतने समृद्ध हों, जिसका हिसाब लगाना मुश्किल है।
लेकिन हम दरिद्र हैं और हम दरिद्र अपने हाथों से हैं। महावीर दरिद्र नहीं होना चाहे, इसलिए उन्होंने किसी को नहीं पकड़ा। जो किसी को पकड़ेगा, वह दरिद्र हो जाएगा। वे पूर्ण समृद्ध हो गए, क्योंकि सब कुछ उनका था। कुछ न था, जिसका निषेध करना है; कुछ न था, जिसको इनकार करना है; कुछ न था, जिसको पकड़ना है। जो पकड़ेगा, वह निषेध करेगा। जो पकड़ेगा, वह इनकार करेगा। जो एक को पकड़ेगा, वह दूसरे को छोड़ने की भी जिद करेगा।
महावीर समग्र के प्रति समर्पित व्यक्ति हैं।
और इसलिए, इसलिए ये सवाल उठ सकते हैं कि क्यों गुरु नहीं? क्यों शास्त्र नहीं? क्यों प्राचीन तीर्थंकर हुए उनको क्यों मान्यता नहीं? यह

प्रश्न उठ सकता है। लेकिन यह प्रश्न व्यर्थ है, यह हमारे उस चित्त से उठता है, जो बिना गुरु बनाए, बिना शास्त्र पकड़े, बिना संप्रदाय बनाए एक क्षण नहीं रह सकता।

प्रश्नः इसी संबंध में महावीर की उन शर्तों का क्या अभिप्राय है? वह
भी तो वे लेते थे कि मैं ऐसा होगा, कि सामने भिक्षा देने वाला ऐसा व्यक्ति होगा तो ही लूंगा, नहीं तो नहीं लूंगा। जैसे चंदन वाला है... ।

अभिप्राय है।

प्रश्नः हां, उसका क्या अर्थ है? वह शर्त क्या है?

अभिप्राय है। महावीर, जैसा मैंने कहा--अगर मेरी बात समझ में आ गई हो तो
ही अभिप्राय समझ में आ सकता है--जैसा मैंने कहा कि महावीर की खोज पूरी हो चुकी थी। इस जन्म में वे खोज नहीं कर रहे हैं, इस जन्म में वे सिर्फ बांटने आए हैं। इस जन्म में उनकी अपनी कोई खोज नहीं है।
और इसलिए महावीर ने एक बहुत गहरा प्रयोग किया, जो कि मनुष्य-जाति में कभी किसी ने नहीं किया था। महावीर ने यह प्रयोग किया है कि अगर मैं बांटने ही आया हूं और मेरा अपना कोई स्वार्थ नहीं है, तो अगर विश्वसत्ता मुझे भोजन देना चाहे तो ठीक, न देना चाहे तो मैं भोजन भी क्यों लूं? अगर विश्वसत्ता मुझे जीवन देना चाहे तो ठीक, न देना चाहे तो मेरे जीवन का भी क्या अर्थ है?
अब महावीर का कोई निजी स्वार्थ नहीं है, अब होने की कोई आकांक्षा नहीं है, जिसको हम जिजीविषा कहते हैं, लस्ट फार लाइफ, वह महावीर में नहीं है। इसलिए महावीर ने बड़े अनूठे काम किए।
महावीर भोजन लेने निकलते तो वह पहले अपने मन में एक संकल्प बना लेते
कि आज ऐसे घर में भोजन लूंगा जिस घर के सामने दो गाएं लड़ती हों, गायों का रंग काला हो, स्त्री खड़ी हो, एक पैर बाहर हो, एक पैर भीतर हो, आंख से आंसू बहते हों, ओंठों पर हंसी हो--ऐसा कुछ भी, वे एक धारणा कर लेते सुबह और तब वे भिक्षा मांगने निकलते। अगर यह धारणा पूरी हो जाती कहीं, तो वे भिक्षा ग्रहण कर लेते उस द्वार पर, अन्यथा वे वापस लौट आते।
इसका मतलब बहुत गहरा है। और जैन तो नहीं समझ सके कि मतलब क्या है। इसका मतलब यह है कि महावीर यह कह रहे हैं कि अगर अब विश्व की पूरी सत्ता की इच्छा हो तो ही मैं जीता हूं, अपनी तरफ से मैं जीता ही नहीं। तो अगर भोजन देना हो तो--यानी मैं मांगने नहीं जा रहा हूं अब, कोई मुझे दे रहा है, इसलिए भी मैं नहीं लूंगा, अब मैं किसी का अनुग्रह भी नहीं मान रहा हूं। अब तो परिपूर्ण जगत की सत्ता भी अगर आज मुझे भोजन देना चाहती हो तो ठीक, अन्यथा मैं वापस लौट आता हूं। लेकिन मुझे कैसे पता चलेगा कि विश्व की सत्ता ने मुझे भोजन दिया? तो मैं एक शर्त ले लेता हूं, वह शर्त विश्व की सत्ता पूरी कर दे तो मैं समझूं कि भोजन उससे आया। न देने वाले को मैं धन्यवाद दूंगा, क्योंकि अब यह सवाल ही न रहा। न देने वाले को मैं धन्यवाद दूंगा, क्योंकि देने वाले का कोई सवाल न रहा। न मैं अनुगृहीत हूं किसी का।
और बड़ी गहरी बात है और वह यह है कि जो व्यक्ति पूर्णता को उपलब्ध हुआ, लौटा, अब उसके लिए कर्म जैसी कोई चीज नहीं है। और कर्म होता है इच्छा से, और कर्म का जन्म होता है आकांक्षा से।
तो अब महावीर यह कहते हैं कि अब मैं यह भी इच्छा नहीं करता कि भोजन मुझे मिलना ही चाहिए, यह भी विश्व की सत्ता पर छोड़ देता हूं। यह पूरे के प्रति समर्पण है। अगर, अगर पूरी हवाएं, पहाड़, पत्थर, पर्वत, आदमी की चेतना, जानवर, पशु, देवी-देवता--जो भी है--अगर उस पूरे की आकांक्षा है कि महावीर एक दिन और जी जाए तो इंतजाम करो, अन्यथा अपना कोई इंतजाम नहीं। इसका मतलब गहरे में यह है--इसलिए मैं शर्त लगा देता हूं, क्योंकि मुझे पता कैसे चलेगा? मुझे पता कैसे चलेगा कि यह किसी ने मुझे भोजन दिया या पूरे जगत के अस्तित्व ने मुझे भोजन दिया?

तो महावीर बड़ी पेचीदा शर्तें लगाते हैं, जिनका पूरा होना भी मुश्किल मालूम होता है, कि अब एक स्त्री एक पैर बाहर किए हो, एक पैर भीतर किए हो, राजकुमारी हो, हाथ में हथकड़ियां पड़ी हों, आंख से आंसू गिरते हों, मुंह से हंसी आती हो--ऐसा किसी द्वार पर मुझे कोई मिल जाएगा तो उस द्वार से मैं भोजन कर लूंगा।
फिर जरूरी नहीं है कि उस द्वार पर भोजन देने वाला हो। उस द्वार पर महावीर को भोजन देने वाला हो, यह भी जरूरी नहीं। ऐसा द्वार मिल जाए आज, यह भी जरूरी नहीं। ऐसी स्थिति बने, यह भी जरूरी नहीं। महावीर बिल्कुल ही अनहोनी की कल्पना करके घर से निकलते हैं, अपनी भिक्षा के लिए निकलते हैं। यह अनहोना अगर पूरा हो जाए तो महावीर अपने मन में जानते हैं कि विश्व की सत्ता ने एक दिन जीने के लिए और दिया है। यानी मैं अपनी तरफ से, अपनी जिद से नहीं टिका हूं। जरूरत है अस्तित्व को तो मैं आ रहा हूं, नहीं तो मैं एक दिन भी जीने की आशा नहीं करता। अपनी तरफ से जीने का कोई अर्थ नहीं है।
इसलिए यह बड़ा सार्थक है। और ऐसा प्रयोग कभी किसी ने नहीं किया है जगत में। कभी किसी व्यक्ति ने नहीं किया। बहुत अनूठा है।
आज भी जैन मुनि करते हैं, लेकिन श्रावक उनको पहले ही बता जाते हैं कि ऐसा-ऐसा कर लेना, या वे श्रावकों को बता देते हैं! और कुछ बंधे हुए इंतजाम कर रखे हैं उन्होंने! एक घर के सामने दो केले लटके हों तो वहां हम भोजन ले लेंगे! और सब मुनियों का सबको पता चल जाता है कि वह किस तरह की बातें करते हैं, तो दस-पांच घरों में लोग अपने घर के सामने केला लटका लेते हैं दो! एक स्त्री थाल लेकर खड़ी हो जाती है! एक स्त्री बच्चे को लेकर खड़ी हो जाती है! ऐसे दस-पांच बंधे हुए नियम हैं उनके, वे बंधे हुए नियम दस घरों में पूरे कर दिए जाते हैं! एक घर का उनका काम बैठ जाता है और वह अपना ले लेते हैं।
अब भी चलता है, दिगंबर जैन मुनि वैसा ही करता है रोज भोजन लेने के पहले। पच्चीस चौके सज जाते हैं, पच्चीस चौकों के सामने वह घूमता है, पच्चीस चौकों में उसकी बात पूरी हो जाती है। और सबके सीक्रेट्स सबको पता रहते हैं। और वे सब पता हो गए हैं, सब हो जाता है, उसमें कोई कठिनाई नहीं होती।
मगर महावीर ने जो प्रयोग किया था, बहुत ही अनूठा था। वह ऐसी हैरानी से भरी हुई धारणा लेकर चलते थे कि जिसमें उपाय कम ही था कि वह अपने आप घट जाए, जब तक कि विश्वसत्ता राजी न हो। इसलिए महावीर एक-एक दिन, एक-एक दिन जी रहे हैं--अपने लिए नहीं, अगर जरूरत है परमात्मा को तो ही।
और उनका पूरा जीवन इस बात का प्रमाण है कि जिस व्यक्ति को विश्वसत्ता
के लिए जरूरत है, वह उसके लिए आयोजन करती है। पूरी विश्वसत्ता भी मिल कर उसके लिए आयोजन करती है, जिसके होने का, जिसकी एक-एक श्वास का परिणाम है। और जिसकी श्वास से, जिसके होने से, जिसके जीने से, जिसकी आंख से, जिसके चलने से कुछ घटित हो रहा है, जो कि कल्प-कल्प बीत जाएं तो दुबारा घटित मुश्किल से होता है। तो विश्वसत्ता को उसकी जरूरत है--उसके अस्तित्व की।
तो एक-एक दिन और एक-एक दिन की लीज़ पर महावीर जी रहे हैं। यानी ऐसा भी नहीं है कि इकट्ठा एक दिन तय कर लिया तो बारह साल के लिए काफी हो गया। ऐसा भी नहीं है, एक-एक दिन की लीज़ है कि आज जी लूंगा, और इनकारी हो तो बात खतम है।
यह इस बात की खबर है कि यह आदमी अपनी तरफ से जीने का कोई मोह, कहीं भी नहीं रह गया। बड़ी कीमती है वह बात। और कोई व्यक्ति चाहे तो बराबर वैसा जी सकता है। लेकिन तभी जी सकता है, जब अपने जीवन का मोह विदा हो गया हो। तब पूरा अस्तित्व हमारे प्रति मोहपूर्ण हो जाता है, यह मैं कहना चाहता हूं। जैसे ही किसी व्यक्ति का अपने जीवन के प्रति मोह विदा हो जाता है, उसी क्षण सारा अस्तित्व उसके प्रति मोहपूर्ण हो जाता है। और सारा अस्तित्व उसे बचाने के सब उपाय करने लगता है। और उसकी सब ढंग की, बेढंग की शर्तें भी स्वीकार करने लगता है। यानी उसके ढंग-बेढंग की शर्तों का फिर हिसाब नहीं रह जाता। फिर वह क्या कहता है, क्या नहीं कहता है, कैसा उठता है, कैसा बैठता है, सबकी स्वीकृति हो जाती है। सारा जगत एक गहरे प्रेम से उसे घेर लेता है और उसके लिए जो भी किया जा सके, वह करने का उपाय करता है।

बुद्ध के, जिस दिन बुद्ध घर त्याग किए, उस रात जो कथा प्रचलित है, बहुत मधुर है। बुद्ध जब घर से चले तो उनका जो घोड़ा है, वैसा घोड़ा नहीं है दूर-दूर के लोकों में। उसके पैरों की टाप ऐसी है कि बारह-बारह कोस तक सुनी जाती है। आधी रात है, बुद्ध उस घोड़े पर सवार होकर चले हैं। तो घोड़े की टाप तो इतनी होगी कि सारा महल जाग जाए, सारा गांव जाग जाए। तो कहानी यह कहती है कि घोड़े की टाप के नीचे देवता फूल रखते चले जाते हैं, टाप फूलों पर पड़ती है, ताकि गांव में कोई जाग न जाए। क्योंकि बहुत-बहुत कल्पों के बाद कभी कोई व्यक्ति इतना बड़ा महाअभिनिष्क्रमण करता है। कभी ऐसा अवसर आता है अस्तित्व को कि कोई ऐसा व्यक्ति... ।
फिर द्वार पर वे पहुंचे हैं नगर के तो द्वार पर बड़ी-बड़ी कीलें हैं, जिन्हें पागल हाथी भी धक्के मारें तो खुल नहीं सकते हैं। और जब वे द्वार खुलते हैं तो उनकी इतनी आवाज होती है कि पूरा नगर सुनता है उनकी आवाज को। असल में सुबह उनकी आवाज को सुन कर ही नगर उठता है, जब वह द्वार खुलता है नगर का। अब वह द्वार खुल जाएगा और आवाज हो जाएगी और हो सकता है बुद्ध रोक लिए जाएं, और वह जो होने वाला है, न हो पाए।
तो देवता उस दरवाजे को ऐसे खोल देते हैं, जैसे वह बंद ही न था। ये जो सारी कहानियां हैं ये तो प्रतीक हैं, ये सब प्रतीक हैं। लेकिन सूचक ये इस बात के हैं--ऐसा कहीं घटा नहीं है, कहीं कोई घोड़े के नीचे फूल नहीं रख गया है। नहीं, सूचक हैं सिर्फ इस बात के कि हम वह कहना चाहते हैं कि ऐसे व्यक्ति के लिए सारा जगत, सारा अस्तित्व मात्र सुविधा देने लगता है। क्योंकि इस अस्तित्व मात्र को इस आदमी की जरूरत पड़ जाती है।
हम सबको अस्तित्व की जरूरत है। हम सबके लिए अस्तित्व की आवश्यकता है-- हमारे लिए। श्वास चले इसलिए हवा की जरूरत है, प्यास बुझे इसलिए पानी की जरूरत है, गरमी मिले इसलिए सूरज की जरूरत है। सारे अस्तित्व की हमें जरूरत है अपने लिए, लेकिन कभी-कभी वैसा व्यक्ति भी पैदा होता है, जिसके लिए अस्तित्व को लगने लगता है कि उस आदमी के होने की जरूरत है। वह हो जाए, और थोड़ी देर रह जाए, और थोड़ी देर रह जाए। वह उसके लिए कोई असुविधा न आ जाए।
और महावीर इस बात को जानते हैं। और अस्तित्व के साथ मजे का जुआ खेल रहे हैं, ऐसा जुआ किसी आदमी ने नहीं खेला। यानी वह बिल्कुल ही दांव की बात है कि ठीक है अब, अब जिलाना हो तो आज ऐसा इंतजाम हो जाए, नहीं हो तो हम वापस लौट आएंगे। न कोई शिकायत है पीछे लौटने की, न कोई नाराजगी है। इतनी ही खबर है कि अस्तित्व कहता है अब तुम्हारी जरूरत नहीं, वह हम स्वीकार कर लेंगे और विदा हो जाएंगे। इस वजह से वैसा भाव लेकर वे चलते हैं। न तो... ।
लेकिन उसको नहीं समझ पाया जा सका, उसको समझा ही नहीं जा सका। ऐसा आदमी चुनौती दे रहा है परमात्मा को। यह चैलेंजिंग है ऐसा आदमी कि ठीक है, रखना हो तो इतना इंतजाम, अन्यथा जाते हैं।

प्रश्नः महावीर को पारिवारिक या सामाजिक कौन सा असंतोष था? क्या उनका गृह-त्याग जवाबदारियों से पलायन नहीं है?

महावीर को कौन सा पारिवारिक, सामाजिक असंतोष था? और क्या उनका गृह-त्याग उत्तरदायित्व से पलायन नहीं है?
पहली बात तो यह कि महावीर को न कोई पारिवारिक असंतोष था और न कोई सामाजिक असंतोष था। इस जन्म में तो व्यक्तिगत असंतोष भी कोई नहीं था। इस जन्म में, जिससे दुनिया महावीर को पहचानी है, इस जन्म में तो व्यक्तिगत भी असंतोष कोई न था।
लेकिन पिछले जन्मों में... । आमतौर से तीन तरह के असंतोष होते हैंः पारिवारिक असंतोष, सामाजिक असंतोष या नितांत वैयक्तिक असंतोष। पारिवारिक असंतोष आर्थिक हो सकता है, विवाह-दांपत्य का हो सकता है, शरीर की सुविधा- असुविधा का हो सकता है।
वैसा असंतोष जिसे है, वैसा आदमी कभी धार्मिक नहीं बनता, क्योंकि वैसा आदमी उसी तरह के असंतोष को मिटाने में लगा रहता है। वैसा आदमी, जिसको हम कहें अत्यधिक भौतिक, मैटीरियलिस्ट होता है।

फिर सामाजिक असंतोष है। व्यवस्था है समाज की, नीति है, नियम है, शोषण है, धन है, राज्य है, संपत्ति है, वितरण है, यह सब है; ऐसा असंतोष भी होता है। ऐसा व्यक्ति सामाजिक क्रांतिकारी, सुधारक, रिफार्मिस्ट, रिवोल्यूशनरी, ऐसी दिशा में चला जाता है। ऐसा व्यक्ति भी धार्मिक नहीं होता।
धार्मिक तो होता है वह व्यक्ति जिसके असंतोष का न समाज से कोई संबंध है, न परिवार से कोई संबंध है, न संपत्ति से कोई संबंध है, न शरीर से कोई संबंध है। जिसके असंतोष की एक ही अर्थवत्ता है, एक ही अर्थ है और वह यह है कि मेरा होना मात्र अभी ऐसा नहीं है कि जिससे मैं संतुष्ट हो जाऊं। जिसका अल्टीमेट कंसर्न, जिसकी आखिरी चिंता इस बात की है कि मैं जैसा हूं, क्या ऐसा ही होना काफी है, पर्याप्त है? अगर हिंसक हूं तो हिंसक होना ही काफी है, पर्याप्त है? अगर क्रोधी हूं तो क्रोधित होना ही काफी है, पर्याप्त है? अशांत हूं तो बस अशांत ही होना ठीक है? दुखी हूं, अज्ञानी हूं, सत्य का कोई पता नहीं, प्रेम का कोई अनुभव नहीं, क्या बस ऐसा होना काफी है?
एक ऐसा असंतोष है, जो इस भीतरी जगत से उठता है, जहां व्यक्ति कहता है नहीं, अज्ञान नहीं, अंधकार नहीं, दुख नहीं, अशांति नहीं, क्रोध नहीं, घृणा नहीं, द्वेष नहीं, कोई नहीं; ऐसा जीवन चाहता हूं, जहां यह कुछ भी न हो, क्योंकि इसके रहते जीवन जीवन ही कहां है! इस आंतरिक असंतोष से धार्मिक व्यक्ति का जन्म होता है।
इस जीवन में तो महावीर का यह असंतोष भी नहीं है, क्योंकि धार्मिक व्यक्ति का जन्म हो चुका है। लेकिन पिछले जन्म में, पिछले जन्मों में उनका नितांत असंतोष, डिसकंटेंट जो है, वह आध्यात्मिक है; न तो सामाजिक है, न पारिवारिक है। आध्यात्मिक असंतोष बड़ी कीमत की चीज है। और जिसमें नहीं है, वह कभी उस यात्रा पर जाएगा ही नहीं, जहां आध्यात्मिक संतोष उपलब्ध हो जाए। जिस असंतोष से हम गुजरते हैं, उसी तल का संतोष हमें उपलब्ध हो सकता है। अगर धन का असंतोष है तो ज्यादा से ज्यादा धन मिलने का संतोष उपलब्ध हो सकता है। लेकिन बड़े मजे की बात है, जिस तल पर हमारा असंतोष होगा, उसी तल पर हमारा जीवन होगा। प्रत्येक व्यक्ति को खोज लेना चाहिए कि मैं किस बात से असंतुष्ट हूं? तो उसे पता चल जाएगा कि वह किस तल पर जी रहा है।
अब यह हो सकता है कि एक आदमी महल में जी रहा है, लक्जरी में, विलास में, भोग में; और एक आदमी लंगोटी बांध कर संन्यासी की तरह खड़ा है नंगा धूप में, सर्दी में, वर्षा में; इससे कुछ पता नहीं चलता कि कौन धार्मिक है। पता तो चलेगा--इस व्यक्ति के भीतर डिसकंटेंट क्या है? इस व्यक्ति के भीतर असंतोष क्या है?
हो सकता है महल में जो है, उसके भीतर एक ही असंतोष है कि यह सब महल किस मतलब का है! यह धन किस मतलब का है! और उसे एक असंतोष पकड़ा हुआ है कि मैं उसे कैसे पाऊं--वह जो मेरा स्वरूप है, वह जो मेरा अंतिम आनंद है--उसे मैं कैसे पाऊं? सोता है महल में, लेकिन असंतोष उसका उस तल पर चल रहा है, तो वह व्यक्ति आध्यात्मिक है, धार्मिक है।
और एक आदमी लंगोटी बांधे सड़क पर खड़ा है, मंदिर में प्रार्थना कर रहा है, पूजा कर रहा है, लेकिन प्रार्थना में मांग यही कर रहा है कि आज अच्छा भोजन मिल जाए, ठहरने को जगह मिल जाए, इज्जत मिल जाए, अनुयायी मिल जाएं, भक्त मिल जाएं, आश्रम मिल जाए। अगर वह इसी तरह की प्रार्थना मंदिर में भी कर रहा है तो वह आदमी धार्मिक नहीं है।
हमारा असंतोष हमारी खबर देता है कि हम कहां हैं। महावीर इस जन्म में
तो किसी असंतोष में नहीं हैं, लेकिन पिछले सारे जन्मों में उनके असंतोष की एक लंबी यात्रा है। वह निरंतर यही है कि मेरा अस्तित्व, मेरा सत्य, मेरी वह स्थिति, जहां मैं परम मुक्त हूं, न कोई सीमा है, न कोई बंधन है--वह कहां है? वह कैसे मिले? उसकी खोज जारी है।
ऐसी खोज वाला व्यक्ति भी, ऐसी खोज पूरी हो गई ऐसा व्यक्ति भी, दूसरों
के पारिवारिक असंतोष को मिटाने के लिए उत्सुक हो सकता है, दूसरों के सामाजिक असंतोष को मिटाने के लिए भी उत्सुक हो सकता है। ऐसा व्यक्ति निपट संत भी रह सकता है, क्रांतिकारी भी बन सकता है, सुधारक भी बन सकता है। लेकिन ऐसे व्यक्ति की स्वयं की चिंता इन तलों पर नहीं है। उसकी चिंता एक अलग ही तल पर है। और बहुत कम लोग हैं, जिनके जीवन में आध्यात्मिक असंतोष

होता है। अगर हम लोगों के सिर खोल कर देख सकें तो हम बहुत हैरान हो जाएंगे, उनके असंतोष बड़े ही नीचे तल पर होते हैं। और जिस तल पर असंतोष होता है, उसी तल पर व्यक्ति होता है।
नीत्शे ने एक बहुत अदभुत बात कही है। नीत्शे ने कहा है, अभागा होगा वह दिन, जिस दिन आदमी अपने से संतुष्ट हो जाएगा। अभागा होगा वह दिन, जिस दिन आदमी अपने से संतुष्ट हो जाएगा। अभागा होगा वह दिन, जिस दिन मनुष्य की आकांक्षा का तीर पृथ्वी के अतिरिक्त और किन्हीं तारों की तरफ न मुड़ेगा। आकांक्षाओं का तीर पृथ्वी को छोड़ कर और किन्हीं तारों की तरफ न मुड़ेगा। लेकिन हम सबकी आकांक्षाओं के तीर पृथ्वी से भिन्न कहीं भी नहीं जाते।
और हम सबकी... बड़ी अदभुत बात है कि हम सब चीजों से अतृप्त होते हैं, सिर्फ अपने को छोड़ कर। एक आदमी मकान से अतृप्त होगा कि मकान ठीक नहीं, दूसरा बड़ा मकान बनाऊं। एक आदमी अतृप्त होगा, यह पत्नी ठीक नहीं, दूसरी पत्नी चाहिए। एक आदमी अतृप्त होगा कि यह बेटा ठीक नहीं, दूसरा बेटा चाहिए। एक आदमी अतृप्त होगा, ये कपड़े ठीक नहीं, दूसरे कपड़े चाहिए। लेकिन अगर हम खोजने जाएं तो ऐसा आदमी मुश्किल से मिलता है, जो न मकान से अतृप्त है, न कपड़ों से, न पत्नी से, न बेटों से, जो अपने से अतृप्त है। और जो कहता है, यह मैं आदमी ठीक नहीं, यह और तरह का आदमी चाहिए। जब कोई आदमी इस तरह की भाषा में अतृप्त होता है कि और तरह का आदमी चाहिए, अपने प्रति ही असंतुष्ट हो जाता है, तब उसके जीवन में धर्म की यात्रा शुरू होती है।
महावीर जरूर असंतुष्ट रहे हैं, वही यात्रा उन्हें उस तक लाई है, जहां तृप्ति और संतोष उपलब्ध होता है। क्योंकि जिस दिन व्यक्ति अपने को रूपांतरित करके उसे पा लेता है, जो वह वस्तुतः है, उस दिन परम तृप्ति का क्षण आ जाता है। उसके बाद फिर कोई अतृप्ति नहीं है। उसके बाद उस व्यक्ति की फिर कोई अतृप्ति नहीं है। फिर अगर वह जीता है एक क्षण भी, तो वह दूसरों की अतृप्ति को कैसे तृप्ति के मार्ग पर दिशा दे सके, उसके लिए ही जीता है। पर उसकी अपनी यात्रा समाप्त हो जाती है।
साथ ही उसमें एक बात और पूछी है कि क्या उनका गृह-त्याग दायित्व से पलायन नहीं है, एस्केप नहीं है?
गृह-त्याग महावीर ने कभी किया ही नहीं है। गृह का त्याग वे करते हैं, जिन्हें गृह के साथ पकड़, क्लिंगिंग, आसक्ति होती है। महावीर ने तो वही छोड़ दिया है, जो घर नहीं था। यह हमें ख्याल में आना जरा मुश्किल होता है, क्योंकि हम तो मिट्टी-पत्थर के घरों को घर समझे हुए हैं। जो घर नहीं था, महावीर ने उसका ही त्याग किया है। इसलिए गृह-त्याग का तो शब्द ही भ्रांत है।
असल में महावीर घर की खोज में निकले हैं, अगृह को छोड़ कर गृह की खोज में चले गए हैं। जो घर नहीं था, उसे छोड़ा है; और जो घर है, उसकी खोज में गए हैं। और हम जो घर नहीं है, उसे पकड़े बैठे हैं; और जो घर हो सकता है, उसकी तरफ आंख बंद किए हुए हैं! एस्केपिस्ट हम हैं, पलायनवादी हम हैं।
पलायन का क्या मतलब होता है?
एक आदमी कंकड़-पत्थरों को पकड़ ले और हीरों की तरफ आंख बंद कर ले और दूसरा आदमी कंकड़-पत्थर छोड़ दे और हीरों की खोज पर निकल जाए--पलायनवादी कौन है? एस्केपिस्ट कौन है? क्या आनंद की खोज पलायन है? तो फिर दुख में जीना पलायन नहीं होगा। क्या ज्ञान की खोज पलायन है? तो फिर अज्ञान में जीना पलायन नहीं होगा। तो क्या परम जीवन की खोज पलायन है? तो फिर क्षुद्र जीवन पलायन नहीं होगा।
पहली तो बात, महावीर ने कोई गृह-त्याग नहीं किया, वे गृह की खोज में ही
गए हैं। और दूसरी बात, पलायन शब्द हमारे ख्याल में नहीं आता कि उसका मतलब क्या हो सकता है।
आमतौर से आदमी सोचता है कि जो आदमी दायित्व से भागता है, उत्तरदायित्व से, जिम्मेवारी से, रिस्पांसिबिलिटी से, वह पलायनवादी है। ठीक सोचता है। लेकिन पक्का पता है कि रिस्पांसिबिलिटी क्या है? दायित्व क्या है?
महावीर जैसा आदमी एक दुकान पर बैठ कर दुकान चलाता रहे, यह दायित्व होगा जगत के प्रति, जीवन के प्रति? महावीर जैसा व्यक्ति एक घर में बैठ कर

बाल-बच्चों को बड़ा करता रहे, यह दायित्व होगा जीवन के प्रति, जगत के प्रति? इससे बड़ी और ज्यादा इर्रिस्पांसिबिलिटी क्या होगी? महावीर जैसे व्यक्ति के लिए इस तरह के क्षुद्रतम घेरे में खड़े होकर क्षुद्र में ही सब खो देने से ज्यादा बड़ी और दायित्वहीनता क्या हो सकती है?
बड़े दायित्व जब पुकारते हैं, छोटे दायित्व छोड़ देने पड़ते हैं। बड़े दायित्व की पुकार चूंकि हमारे जीवन में नहीं है, इसलिए हमें देख कर बड़ी मुश्किल होती है। हमें देख कर बड़ी मुश्किल होती है कि यह आदमी सब जिम्मेवारियां छोड़ कर जा रहा है। यह आदमी बड़ी जिम्मेवारियां ले रहा है, यह हमारे ख्याल में नहीं है।
और महावीर जैसा व्यक्ति कितनी बड़ी जिम्मेवारियां ले रहा है, उसका हमारे, उसकी धारणा बनानी भी कठिन है, उसकी कल्पना करनी भी कठिन है।
एक घर को आदमी छोड़ता दिखता है, करोड़ घर के लोग उसके घर के लोग हो जाते हैं। एक आंगन को छोड़ता है, सारा आकाश का विस्तार उसका आंगन हो जाता है। एक पत्नी को, एक बेटे को, एक प्रियजन को छोड़ कर जाता है, सारा जगत उसका प्रियजन और मित्र हो जाता है। लेकिन हमने हमेशा उसे जो छोड़ा है, उस भाषा में सोचा है। जिस विस्तार पर वह फैला है, वह हमने सोचा नहीं! और जो इस एक को छोड़ कर गया, उसे भी छोड़ कर कहां गया?
बुद्ध के जीवन में बड़ी मधुर घटना है कि बुद्ध लौटे हैं घर बारह वर्ष बाद। पत्नी नाराज है, क्रुद्ध है। वह व्यंग्य में, मजाक में--बुद्ध का बेटा एक दिन का था, जब वे छोड़ कर गए थे रात, वह अब बारह वर्ष का हो गया है राहुल-- उसे सामने कर देती है और व्यंग्य करती है, मजाक करती है, टांट करती है और कहती है कि ये तुम्हारे पिता हैं, पहचान लो। ये जो भिक्षापात्र लिए खड़े हैं, यही तुम्हारे पिता हैं, इन्हीं ने तुम्हें जन्म दिया था और एक ही दिन बाद ये भाग गए थे! इनसे पूछ लो, तुम्हारे लिए क्या कमाई इन्होंने छोड़ी? तुम्हारा दायित्व क्या निभाया है? यही रहे तुम्हारे पिता--ये जो भिक्षापात्र लिए खड़े हैं, यही सज्जन तुम्हें जन्म देकर एक ही रात बाद भाग गए थे! इन्होंने जगा कर भी मुझे नहीं कहा था कि मैं जाता हूं। इनसे अपना देय, भाग मांग लो, ये तुम्हारे पिता हैं!
भिक्षु सन्नाटे में आ गए। आनंद घबड़ाने लगा कि इस पागल को पता नहीं कि किससे क्या कह रही है। बुद्ध से यह कह रही है! और बुद्ध बहुत आनंदित हो राहुल से कहे कि निश्चित ही बेटा, मैं तेरा पिता हूं, हाथ फैला, कि जो संपत्ति मैंने तेरे लिए इकट्ठी की, तुझे दान कर दूं। लेकिन हाथ तो खाली हैं! और बुद्ध की पत्नी हंसती है कि हाथ में कुछ है! हाथ में कुछ दिखता तो नहीं, फिर भी बेटा हाथ फैला दे। और उस भीड़ में कैसा अपमानित बुद्ध को वह कर रही है! राहुल ने, उस बारह वर्ष के लड़के ने हाथ फैला दिए हैं।
बुद्ध ने अपना भिक्षापात्र उसके हाथ में दे दिया और कहा, तू दीक्षित हुआ। तू दीक्षित हुआ, क्योंकि बुद्ध जैसा पिता तुझे ऐसी ही संपदा दे सकता है, जो तुझे भी बुद्ध बना दे। तू दीक्षित हुआ। मैंने बहुत दिन भटका, तुझे क्यों भटकाऊं? मुझे देर लगी भटकने में, तुझे क्यों भटकाऊं?
यशोधरा तो रोने लगी है। सब लोग चिल्लाने लगे कि यह क्या पागलपन हो रहा है! एक बेटा छोड़ गए थे, तुम घर से भाग गए हो, सारी व्यवस्था अस्तव्यस्त हो गई, उस बेटे को भी लिए जाते हो? तो बुद्ध कहते हैं कि और भी जिनको चलना हो, उनको भी ले जाने को मैं तैयार हूं। क्योंकि जो मैंने वहां पाया है, अपने बेटे को कैसे छोड़ जाऊं वहां ले जाने से? जिस हीरों की खदान पर मैं पहुंच गया हूं, अपने बेटे को न ले जाऊं? उसे तो ले जाऊंगा, लेकिन और भी जिनको जाना हो, वे भी आ जाएं।
लगेगा हमें कि दायित्व छोड़ कर बुद्ध भाग गए। लेकिन मैं कहता हूं कि जैसा बुद्ध थे, वैसा ही रह कर दायित्व भी क्या पूरा कर लेते? कितने बाप हुए हैं, और कितने बेटे हुए हैं, किसने क्या दायित्व पूरा कर लिया! लेकिन बुद्ध ने दायित्व पूरा किया है। एक बाप जो कर सकता था ज्यादा से ज्यादा बेटे के लिए वह बुद्ध ने किया है। और जो कुछ जाना था, जो पाया था, उसके सामने खोल दिया है।
लेकिन इस दायित्व को पहचानना हमें मुश्किल हो जाए। शायद दुख के भार
को हस्तांतरित करने को ही हम दायित्व समझते हैं! अज्ञान की यात्रा को और

गति देने को ही हम दायित्व समझते हैं! तो फिर पलायनवादी मालूम पड़ेंगे महावीर-बुद्ध जैसे लोग, लेकिन वे पलायनवादी नहीं हैं।
एक बात और समझनी चाहिए इस संबंध में कि पलायन वह करता है, जो दुखी हो; भागता वह है, जो दुखी हो; भागता वह है, जो डरता हो, भयभीत हो; भागता वह है, जिसे शक हो कि जीत न सकूंगा। ऐसा आदमी हमें भागता दिखता है। इस घर में आग लगी हो और एक आदमी इस घर के बाहर निकले, उसे आप भागने वाला तो न कहेंगे। उसे कोई यह तो नहीं कहेगा, एस्केपिस्ट है! घर में आग लगी थी और यह बाहर निकल आया! कोई उसे न कहेगा कि यह पलायनवादी है कि जब घर में आग लगी थी, तब तुम बाहर निकल आए और जब घर में आग नहीं थी, तब मजे से रहते थे! घर में आग लगी थी, तभी तो रहना था, तभी तो पता चलता कि तुम पलायनवादी तो नहीं हो।
लेकिन घर लगी आग में कोई भागने वाले को पलायनवादी नहीं कहेगा। क्योंकि घर में आग लगी हो तो कोई भाग नहीं रहा है, भागने का सवाल ही नहीं है। घर में आग लगी हो तो विवेक की बात है कि कोई बाहर हो जाए। विवेकपूर्ण है, बाहर हो जाए। हो सकता है बाहर के लोग कहें कि तुम पलायनवादी हो। घर में आग लगी, बाहर आ गए।
महावीर जैसे व्यक्ति जहां से भी हटते हैं, भागते नहीं हैं। जहां-जहां
आग है, हटते हैं। हटना एकदम विवेकपूर्ण है। और इसलिए भी हटते हैं कि जहां- जहां दुख जन्मता है, जहां-जहां दुख उत्पन्न होता है, जहां-जहां व्यर्थ ही दुख बढ़ता है और फैलता है, वहां खड़े रहने का क्या अर्थ है? क्या प्रयोजन है? वहां से वे हटते हैं। हटते सिर्फ इसलिए हैं कि और बेहतर जगह हैं, जहां आग नहीं है।
समझें कि आप बीमार पड़े हैं और आप इलाज कराने चले जाएं और डाक्टर आपसे कहे, बड़े पलायनवादी हैं आप, बीमारी से भागते हैं? एस्केपिस्ट हैं! अब बीमारी आई है तो भोगें, जीएं, भागना क्या है? वह आदमी कहेगा, मैं बीमारी से नहीं भागता; लेकिन बीमारी में, बीमारी में खड़े रहने में न तो कोई बुद्धिमत्ता है, न कोई अर्थ है। मैं स्वास्थ्य की खोज में जाता हूं, वह आनंदपूर्ण है।
तो हम बीमार आदमी को कभी नहीं कहते कि तुम डाक्टर के यहां मत जाओ, क्योंकि यह पलायन है। एक अंधेरे में खड़ा आदमी अगर सूरज की रोशनी की तरफ आता है तो हम नहीं कहते कि पलायनवादी है। लेकिन हम महावीर जैसे लोगों को क्यों पलायनवादी कहना चाहते हैं?
उसका कारण है। उसका कारण सिर्फ यह है कि अगर हम महावीर जैसे लोगों को सिद्ध कर दें कि पलायनवादी हैं तो हम जहां खड़े हैं, वहां से हमें हटने की कोई जरूरत न रह जाए। हम निश्चिंत हो जाएं कि यह आदमी गड़बड़ था। हम जहां खड़े हैं, हम बिल्कुल ठीक हैं। हम सब मिल कर इसको तय कर दें कि यह आदमी सिर्फ भगोड़ा है, भागता है जिंदगी से। हम बहादुर लोग हैं, हम जिंदगी में खड़े हुए हैं।
किस जिंदगी में खड़े हैं हम? जहां जिंदगी है ही नहीं। और बहादुरी क्या है? और उस बहादुरी से हमें क्या उपलब्ध हो रहा है?
जिन लोगों ने महावीर को महावीर का नाम दिया, उन्होंने महावीर को पलायनवादी नहीं समझा था इसीलिए। शायद कारण तो यही है कि हम अपनी कमजोरी की वजह से जहां से नहीं हट सकते हैं, वहां से महावीर अपने साहस की वजह से हट जाते हैं। लेकिन हम अपनी कमजोरी को भी छिपाते हैं और जस्टीफाई करते हैं! हम उसके भी न्याययुक्त कारण खोज लेते हैं! और कोई नहीं मानना चाहता कि हम कमजोर हैं। और तब हमारे बीच से अगर एक बहादुर आदमी हटता हो... ।
बड़ा मुश्किल है हिम्मत जुटाना। घर में आग लगी हो और घर में पचास आदमी हों और हर आदमी मानता ही न हो कि घर में आग लगी है, तो जिस आदमी को आग लगी दिखाई पड़ती हो वह घर के बाहर निकलता हो, तो वे कहेंगे कि यह पलायनवादी कहां भागा चला जा रहा है!
हमने दुनिया के श्रेष्ठतम लोगों को सदा पलायनवादी कहा है। उसका कारण है। स्टीफन ज्विग ने आत्महत्या की। लेकिन आत्महत्या करने के पहले उसने एक पत्र लिखा और उस पत्र में उसने लिखा कि ध्यान रहे, कोई यह न समझे कि मैं पलायनवादी हूं। और यह भी ध्यान रहे, कोई यह न समझे कि मैं कायर या कावर्ड हूं। बल्कि मेरा नतीजा तो यह है जिंदगी भर का कि लोग चूंकि मरने की हिम्मत

नहीं जुटा पाते, इसलिए जिंदा रहे चले जाते हैं। मैं भी बहुत दिन तक हिम्मत नहीं जुटा पाया, इसलिए मैं जिंदा रहे चला गया हूं। लेकिन अब मुझे साफ दिखाई पड़ गया है कि इस तरह की जिंदगी अगर रोज जीनी है, तो मैं इसको तोड़ता हूं। और ध्यान रहे कि मैं तोड़ता हूं सिर्फ इसलिए कि मैं हिम्मतवर हूं; और तुम नहीं तोड़ते हो, क्योंकि तुम हिम्मतवर नहीं हो। लेकिन मैं जानता हूं कि मेरे मरने के बाद लोग कहेंगे कि कावर्ड था, कायर था, पलायनवादी था--मर गया, भाग गया जिंदगी से।
ज्विग बहुत कीमती बात कह रहा है। और ज्विग उस जगह खड़ा है, जहां से या
तो आदमी आत्महत्या करता है या आत्म-साधना में जाता है। ज्विग उस जगह खड़ा है, जहां जिंदगी व्यर्थ हो गई, जिसे हम जिंदगी कहते हैं। वही रोज सुबह का उठना, वही सांझ सो जाना, वही काम; वही पुनरुक्त वासनाएं, वही पुनरुक्त भोग, वही पुनरुक्त क्रोध, काम, लोभ; वही रोज-रोज, रिपीटेडली वही! एक मशीन की तरह हम घूमते चले जाते हैं। ज्विग उस जगह पहुंच गया है, जहां वह कहता है कि अगर यही जिंदगी है तो मैं खतम करता हूं अपने को। और ध्यान रहे कि मैं कायर नहीं हूं।
और मैं भी कहता हूं कि वह कायर नहीं है। हां, वह गलती करता है, कायर नहीं है। वह चूक गया एक बिंदु को जिसको महावीर नहीं चूकते। महावीर भी उस जगह पहुंचते हैं। दुनिया के सभी वे लोग जिनकी जिंदगी में क्रांति घटित होती है, एक दिन उस जगह पहुंचते हैं, जहां या तो आत्महत्या या साधना, इसके सिवाय विकल्प नहीं रह जाता। या तो जैसे हम हैं, उसको खतम करो फिजिकली, शरीर से मिटा दो; या जैसे हम हैं, उसे बदलो, रूपांतरित करो आत्मिक अर्थों में, ताकि हम दूसरे हो जाएं।
ज्विग आत्महत्या कर लेता है। कायर नहीं है, है तो बहादुर ही, लेकिन भूल से भरा है। क्योंकि आत्महत्या से क्या होगा? जीवन की आकांक्षा फिर नए जीवन बना देगी। महावीर जैसे व्यक्ति आत्महत्या नहीं करते, आत्मा को ही रूपांतरित करने में लग जाते हैं। वे कहते हैं कि आत्महत्या करने से क्या होगा? आत्मा को ही बदल डालें, नई ही आत्मा कर लें, नया ही जीवन कर लें। लेकिन हमें दोनों भागे हुए लग सकते हैं। और इसके लगने के पीछे कारण भी हैं, क्योंकि सौ में से निन्यानबे लोग निश्चित ही भागते हैं। सौ संन्यासियों में निन्यानबे संन्यासी एस्केपिस्ट ही होते हैं। और उन निन्यानबे के कारण सौवें को पहचानना बहुत मुश्किल हो जाता है। निन्यानबे तो इसीलिए भागते हैं कि बीमारी है, झगड़ा है, पत्नी मर गई है, दिवाला निकल गया है; कुछ ऐसे कारण हैं, जो उन्हें कहते हैं कि इस झंझट से दूर हो जाओ। लेकिन ऐसे आदमी अगर इस झंझट से भागते हैं तो नई झंझटें खड़ी कर लेते हैं, उससे कुछ फर्क नहीं पड़ता। क्योंकि वह आदमी तो वही का वही था, वह नई झंझटें निर्मित कर लेता है।
ऐसा आदमी तो एस्केपिस्ट कहा जा सकता है, पलायनवादी, महावीर जैसा व्यक्ति नहीं। क्योंकि वह कोई नई झंझट खड़ी ही नहीं करता है और किसी भय से नहीं भागता है, किसी समझ, किसी ज्ञानपूर्ण चेतना में सीढ़ी बदल देता है, दूसरी सीढ़ी पर चला जाता है।
इसको मैं ऐसा मानता हूं कि अगर कोई आदमी भाग रहा हो किसी से डर कर तो
एक बात है, और एक आदमी भाग रहा हो कुछ पाने को, तो बिल्कुल दूसरी बात है। वह आदमी भी दौड़ता है जिसके पीछे बंदूक लगी है और वह आदमी भी दौड़ता है जिसे हीरों की खदान दिखाई पड़ गई है। लेकिन एक के पीछे बंदूक का भय है, इसलिए भागता है; एक को हीरों की खदान दिख गई, इसलिए भागता है।
दूसरे आदमी को भी आप भागने वाला नहीं कह सकते, एस्केपिस्ट नहीं कह सकते, पलायनवादी नहीं कह सकते। गतिवान कह सकते हैं, दौड़ने वाला कह सकते हैं; भागने वाला नहीं। किसी चीज से भाग नहीं रहा है वह, कहीं जा रहा है। कहीं से नहीं जा रहा है, कहीं जा रहा है। उसकी दृष्टि की जो एंफेसिस है, जो जोर है, वह जिस चीज से जा रहा है, वहां से उसका जोर नहीं है, जहां जा रहा है, वहां जोर है। दोनों हालत में वह जगह छूट जाती है, लेकिन दोनों हालतों में बुनियादी फर्क है।
महावीर कहीं से भी भागे हुए नहीं हैं। लेकिन निन्यानबे भागे हुए संन्यासियों में एक गया हुआ संन्यासी पहचानना, बहुत मुश्किल हो जाती है,

एकदम मुश्किल हो जाती है। और वह मुश्किल हमारी समझ में ऐसी बाधाएं खड़ी कर देती है कि उसके दो ही रास्ते रह जाते हैंः या तो हम सौ ही संन्यासियों को गया हुआ मान लेते हैं और या हम सौ ही संन्यासियों को भागा हुआ मान लेते हैं, जब कि जरूरत इस बात की है कि हम ठीक से जांच-पड़ताल करें कि कोई आदमी पाने गया है या कोई आदमी सिर्फ छोड़ कर भागा है। पाने गया हो तो जरूर कुछ चीजें छूट जाती हैं।
आप सीढ़ियां चढ़ रहे हों, दूसरी सीढ़ी पर पैर रखते हैं, पहली सीढ़ी छूट जाती है। पहली सीढ़ी से आप भागते नहीं हैं, सिर्फ पहली सीढ़ी छूटती है, क्योंकि दूसरी सीढ़ी पर पैर रखना जरूरी है। जो लोग ऊंची सीढ़ियों पर पैर रखते हैं, नीची सीढ़ियां छूटती हैं; भागते नहीं हैं, न वे छोड़ते हैं।
और नीची सीढ़ियों से जो भागता है, छोड़ता है, डरता है; वह ऊंची सीढ़ी पर नहीं पहुंच पाता, और नीचे की सीढ़ियों पर उतर आता है। क्योंकि डरा हुआ, ऊंचा कहां जा सकता है! जो इतनी ही ऊंचाई से डर रहा है, वह और ऊंचाई पर और डर जाने वाला है। उसका भागना सिर्फ उसे और नीचे की सीढ़ियों पर ले आता है।
इसलिए अक्सर ऐसा होता है कि अगर एक गृहस्थ भाग कर संन्यासी हो जाए तो
और बड़ा महागृहस्थ हो जाता है। उसकी गृहस्थी के जाल और भी ज्यादा हिपोक्रेट, पाखंडी हो जाते हैं। फिर भी वह पैसा इकट्ठा करता है, लेकिन कल वह कमा कर इकट्ठा करता था, अब वह कमाने वालों को फंसा कर इकट्ठा करता है। अब उसका जाल जरा गहरा, सूक्ष्म, चालाकी का हो जाता है। कल भी वह मकान बनाता था, अब भी बनाता है! कल बनाए हुए मकानों को मकान कहता था; अब उनको आश्रम, मंदिर और सब नाम देता है! कल जो करता था, वही अब करता है। कल भी अदालत में खड़ा होता था, अब भी अदालत में खड़ा होता है। कल भी अदालत में लड़ता था, अब भी अदालत में लड़ता है। लेकिन लड़ने का--कल व्यक्तिगत संपत्ति थी उसकी, आज आश्रम की संपत्ति है, उसके झगड़े हैं।
भागा हुआ व्यक्ति और नीची सीढ़ियों पर उतर जाता है। लेकिन ऊपर की सीढ़ी
पर जो जाएगा, उसकी भी सीढ़ी छूटती है। यह बारीक है पहचान और ख्याल से हमें देखनी चाहिए। लेकिन यह हमें समझ में भी तब आएगी, जब हम अपनी जिंदगी में इसकी पहचान करें कि हम कहीं से भागे हैं या कहीं गए हैं?
यहां आप सब मित्र आए हैं, कोई आ भी सकता है, कोई भागा हुआ भी हो सकता है। एक आदमी सिर्फ इसलिए भागा हुआ हो सकता है कि बेचैन हो गए, परेशान हो गए, पत्नी सिर खाए जाती है, दफ्तर में मुश्किल है, काम ठीक नहीं चलता है, चलो एक पंद्रह दिन के लिए सब भूल जाओ। ऐसा आदमी भी आ सकता है यहां मेरे पास।
वह भागा हुआ आदमी है। वह आया हुआ दिखाई पड़ेगा, आ नहीं सकता। क्योंकि जिससे वह भागा है, वह उसका पीछा करेगा। वह सब भय, वे सब चिंताएं इस पहाड़ पर भी उसे घेरे रहेंगी। हां, थोड़ी-बहुत देर के लिए बातचीत में मुझसे भूल जाएगा, लेकिन फिर लौट कर सब पकड़ लेगा। और पंद्रह दिन बाद, जिस उलझन से वह आया था, वह उलझन पंद्रह दिन में कम नहीं हो जाने वाली, पंद्रह दिन में और बढ़ गई होगी उसकी गैर-मौजूदगी में। पंद्रह दिन बाद वह उसी उलझन में फिर खड़ा हो जाएगा, और भी दुगनी परेशानी लेकर वहीं पहुंच जाएगा।
लेकिन कोई आया हुआ भी हो सकता है, कहीं से भागा हुआ नहीं है वह। कहीं कोई ऐसी बात न थी, जिससे भाग रहा है; बल्कि कहीं कुछ पाने जैसा लगा है, इसलिए चला आया है। यह आदमी आ सकेगा यहां सच में। और यहां आकर वह पीछे को सब भूल गया होगा, क्योंकि कहीं आया है, कहीं से भागा नहीं है। और यहां से लौट कर दूसरा आदमी होकर भी जा सकता है। और आदमी बदल जाए तो सारी परिस्थितियां बदल जाती हैं।
मैं महावीर को पलायनवादी नहीं कहता हूं।

महावीर: मेरी दृष्टि में पंद्रहवां प्रवचन

महावीरः अस्तित्व की गहराइयों में

महावीर ने न तो नियंता को स्वीकार किया, न किसी समर्पण को, न किसी गुरु को, न शास्त्र को, न परंपरा को, तो यह प्रश्न बिल्कुल ही स्वाभाविक उठ सकता है कि क्या यह महावीर का घोर अहंकार नहीं था? क्या महावीर अहंवादी नहीं थे? यह प्रश्न स्वाभाविक है। और जो व्यक्ति परमात्मा को स्वीकार करता है, नियंता को, नियंता के प्रति समर्पण करता है, गुरु को स्वीकार करता है, गुरु के प्रति समर्पण करता है, शास्त्र-परंपरा के प्रति झुकता है, साधारणतः हमें विनम्र, विनीत, निरहंकारी मालूम पड़ेगा। इन दोनों बातों को ठीक से समझ लेना उपयोगी है।
पहली तो बात यह कि परमात्मा के प्रति झुकने वाला भी अहंकारी हो सकता है। और यह अहंकार की चरम घोषणा हो सकती है उसकी कि मैं परमात्मा से एक हो गया हूं। अहं ब्रह्मास्मि की घोषणा अहंकार की चरम घोषणा भी हो सकती है। यानी ऐसा हो सकता है कि मैं साधारण मनुष्य होने को राजी नहीं हूं। मेरा अहंकार इस बात के लिए राजी नहीं है कि मैं साधारण मनुष्य हूं, मैं परमात्मा होने की घोषणा के बिना राजी ही नहीं हो सकता हूं।
नीत्शे ने कहा है कि यदि ईश्वर है तो फिर एक ही उपाय है कि मैं ईश्वर हूं, और यदि ईश्वर नहीं है तो बात चल सकती है। अगर ईश्वर है तो फिर मेरे अहंकार को इससे नीचे उपाय नहीं है कोई कि मैं ईश्वर हो जाऊं।
ईश्वर के प्रति समर्पण भी ईश्वर होने की अहंता से पैदा हो सकता है, एक बात।
दूसरी बात यह ख्याल रखनी चाहिए कि समर्पण में अहंकार सदा मौजूद ही है, समर्पण करने वाला सदा मौजूद ही है। समर्पण कृत्य है अहंकार का ही।
एक आदमी कहता है कि मैंने परमात्मा के प्रति स्वयं को समर्पित कर दिया है--यहां हमें लगता है कि परमात्मा ऊपर हो गया और यह नीचे, यह हमारी गलती है। समर्पण करने वाला कभी भी नीचा नहीं हो सकता, क्योंकि कल चाहे तो समर्पण वापस लौटा सकता है, कल कह सकता है कि अब मैं समर्पण नहीं करता हूं। असल में कर्ता कैसे नीचे हो सकता है? समर्पण में भी कर्ता सदा ऊपर है,
वह कहता है, मैंने समर्पण किया है परमात्मा के प्रति। और अगर मैं नहीं है तो समर्पण कोई कैसे करेगा? किसके प्रति करेगा? इसे समझ लें तो महावीर की स्थिति समझ में आ सकती है।
महावीर नितांत ही निरहंकार हैं। यानी उतना अहंकार भी नहीं है कि मैं समर्पण करूं। वह मैं तो चाहिए न समर्पण करने को! वह समर्पण करने का कर्तृत्व भाव चाहिए। और जैसा मैंने कहा कि जो व्यक्ति समर्पण करता है, वह समर्पण मांगता है। वह मांग एक ही सिक्के का हिस्सा है दूसरा। महावीर अगर समर्पण मांगते, करते न, तब तो अहंकारी होते, लेकिन महावीर ने समर्पण किया भी नहीं, मांगा भी नहीं। यह परम निरहंकारिता, अल्टीमेट ईगोलेसनेस हो सकती है। और मेरी दृष्टि में है। यानी समर्पण करने योग्य भी तो अहंकार चाहिए। आखिर मैं ही समर्पित होऊंगा न! नियंता को भी मैं ही स्वीकृत करूंगा न! महावीर के अस्वीकार में ऐसा नहीं है कि नियंता नहीं है, ऐसा अस्वीकार है। अस्वीकार का कुल मतलब इतना ही है कि स्वीकार नहीं है। इसे ठीक से समझ लेना जरूरी है।
अस्वीकार का मतलब यह नहीं है कि अस्वीकार पर जोर है, कि महावीर सिद्ध करते घूम रहे हैं कि कोई परमात्मा नहीं है, कोई ईश्वर नहीं है। न, यह वे सिद्ध करते नहीं घूम रहे हैं। उनके अस्वीकार का कुल इतना ही मतलब है कि वे सिद्ध करते नहीं घूम रहे हैं कि ईश्वर है, नियंता है। अस्वीकार जो है, वह फलित है। अस्वीकार घोषणा नहीं है, अस्वीकार पर जोर भी नहीं है। वे सिर्फ स्वीकृति की बातें नहीं कर रहे हैं, न समर्पण की बात कर रहे हैं। न वे यह कह रहे हैं कि कोई गुरु नहीं है, कोई शास्त्र नहीं है, कोई परंपरा नहीं है। यह भी वे नहीं कह रहे हैं। बस वे गुरु के प्रति समर्पित नहीं हैं, शास्त्र के

प्रति समर्पित नहीं हैं, परंपरा के प्रति समर्पित नहीं हैं। यह फलित है। यह हमें दिखाई पड़ता है कि वे समर्पित नहीं हैं।
लेकिन समर्पण के लिए भी अहंकार चाहिए। अगर कोई व्यक्ति नितांत अहंकारशून्य हो जाए तो कैसा समर्पण? कौन करेगा समर्पण? समर्पण कृत्य है, एक्शन है। और कृत्य के लिए कर्ता चाहिए। और अगर कर्ता नहीं है तो समर्पण जैसा कृत्य भी असंभव है।
फिर जब कोई कहता है मैंने समर्पण किया, तो समर्पण से भी मैं को ही भरता है। समर्पण भी उसके मैं का ही पोषण है, मैं कोई साधारण नहीं हूं, मैं ईश्वर के प्रति समर्पित हूं।
एक संत के पास--तथाकथित संत कहना चाहिए-- सम्राट अकबर ने खबर भेजी कि बड़ा उत्सुक हूं दर्शन को, मिलने को, तुम्हें सुनने को। तथाकथित संत ने खबर भिजवाई वापस कि हम तो सिर्फ राम के दरबार में झुकते हैं। हम ऐसे आदमियों के दरबारों में नहीं झुका करते।
यह व्यक्ति क्या कह रहा है यह? यह कह रहा है कि हम तो सिर्फ राम के सामने झुकते हैं, ऐसे आदमियों के सामने नहीं झुका करते। और अब हम राम के दरबार के दरबारी हो गए, हम कोई आदमी के दरबार के दरबारी होंगे?
ऊपर से दिखता है कि यह आदमी कितनी बढ़िया बात कह रहा है! लेकिन बड़े गहरे अहंकार से निकली हुई बात मालूम पड़ती है। अभी इसे आदमी और राम में फर्क है। और यह निरंतर यह भी कहे चला जा रहा है कि सब में राम हैं--अकबर भर को छोड़ देता है, अकबर भर में राम नहीं हैं! सबमें राम-सीता को देखे चला जा रहा है, लेकिन अकबर में अटक जाता है! और वहां उसका अहंकार घोषणा कर देता है कि मैं कोई ऐसा आदमी थोड़े ही हूं कि आदमियों के दरबारों में बैठूं। मैं तो राम के दरबार में! राम के दरबार में होने की यह घोषणा भी बड़े गहरे अहंकार की सूचना है।
इससे यह मत समझ लेना कि जिन्होंने भगवान को स्वीकार किया है, वे अहंकारशून्य होंगे। हो सकता है यह अहंकार की अंतिम चेष्टा हो। अहंकार भगवान को भी मुट्ठी में ले लेना चाहता है। उसकी तृप्ति नहीं होती संसार को मुट्ठी में लेने से, तो आखिर में भगवान को भी ले लेना चाहता है।
महावीर के पास एक सम्राट गया। और उस सम्राट ने कहा कि सब है आपकी कृपा से। राज्य है, संपदा है, अंतहीन विस्तार है, सैनिक हैं, सुख है, सुविधा है, शक्ति है, सब है। लेकिन इधर मैंने सुना है कि मोक्ष जैसी भी कोई चीज है, तो मैं उसको भी विजय करना चाहता हूं! क्या उपाय है? कितना खर्च पड़ेगा? सम्राट ने कहा, उपाय क्या है? खर्च इत्यादि क्या पड़ेगा? सब लगा सकता हूं।
हंसे होंगे महावीर। क्योंकि एक आदमी ने--वह सम्राट है, उसने सब जीता है, उसने बहुत इंतजाम कर लिया है, अब इधर खबर मिली है कि मोक्ष जैसी भी एक चीज है और ध्यान जैसी भी एक अनुभूति है तो उसके लिए भी खर्च करने को तैयार है! यानी ऐसा न रह जाए कि कोई कहे कि इस आदमी को मोक्ष भी नहीं मिला, ध्यान भी नहीं मिला।
तो महावीर ने उससे कहा, खरीदने को ही निकले हो तो तुम्हारे ही गांव में एक श्रावक है, उसके पास चले जाना। उससे पूछ लेना कि एक सामायिक कितने में बेचेगा? एक ध्यान कितने में बेचता है? खरीद लेना। उसको उपलब्ध हो गया है।
नासमझ सम्राट उस आदमी के घर पहुंच गया और बड़ा हैरान हुआ देख कर कि वह
तो अत्यंत दरिद्र आदमी है। तो उसने सोचा इसको तो पूरा ही खरीद लेंगे, सामायिक का क्या सवाल है! यानी इसमें कोई झंझट ही नहीं है। इस पूरे आदमी को ही चुकता खरीदा जा सकता है। यह तो कोई बात ही नहीं है, यह तो बड़ी सरल बात है।
तो उससे उसने पूछा है कि एक सामायिक, महावीर ने कहा है कि खरीद लो उस आदमी से जाकर! तो वह आदमी हंसने लगा। उसने कहा कि चाहो तो मुझे खरीद लो, लेकिन सामायिक खरीदने का कोई उपाय नहीं है। सामायिक तो पानी होती है, उसे खरीदा नहीं जा सकता।
लेकिन अहंकार उसको भी खरीदने निकलता है, भगवान को भी खरीदने निकलता है। अहंकार भगवान को भी छोड़ नहीं देना चाहता मुट्ठी के बाहर। ऐसा कोई न कहे कि बस तुम्हारे पास धन ही धन है और कुछ भी नहीं, धर्म बिल्कुल नहीं है।

अहंकार धर्म को भी खरीदने जाता है! लेकिन हमें यह दिखाई पड़ना बहुत मुश्किल होता है! असल में कठिनाई क्या है, हमारे मन में दो चीजें हैं, या तो अहंकार है या विनम्रता है। विनम्रता अहंकार का ही रूप है, यह हमारे ख्याल में नहीं है। निरहंकार का हमें पता ही नहीं है।
अहंकार अहंकार की विधायक घोषणा है। विनम्रता अहंकार की निषेधात्मक, निगेटिव घोषणा है। और निरहंकार की कोई घोषणा नहीं है, विनम्रता की भी नहीं।
इसलिए कोई महावीर को विनम्र नहीं कह सकता। यह बड़ा मुश्किल होगा कहना। महावीर को विनम्र नहीं कहा जा सकता, क्योंकि विनम्र होता ही वही है, जिसके भीतर अहंकार होता है। हां, अहंकार को दबाता है, झुकाता है, मिटाता है, गलाता है। वह कहता है, मैं तो धूल से भी पैरों में हूं। लेकिन होता है। इससे फर्क नहीं पड़ता। उसके होने में रत्ती भर फर्क नहीं है। वह कहेगा, मैं धूल से भी--तेरे चरणों की धूल भी नहीं हूं--धूल से भी नीचे हूं, लेकिन हूं। होने की घोषणा जारी रहती है!
इसलिए हम अहंकारी को समझ सकते हैं, जो कहे कि सब कुछ मैं हूं। हम विनम्र को समझ सकते हैं, जो कहे कि मैं कुछ भी नहीं, आपके चरणों की धूल हूं। लेकिन निरहंकारी को हम नहीं समझ सकते। क्योंकि न तो वह यह घोषणा करने आएगा कि मैं सब कुछ हूं, और न वह यह घोषणा करने आएगा कि मैं आपके पैरों की धूल हूं। वह घोषणा ही नहीं करेगा, क्योंकि निरहंकार की कोई घोषणा ही नहीं है, वह अघोषणा है।
तो महावीर जो नियंता, परमात्मा, गुरु, कोई चरण झुकने के लिए, इन सबके प्रति जो कोई, कोई संबंध नहीं रखते हैं, उसका कारण यह नहीं है कि अहंकारी हैं, उसका कारण कुल इतना है कि न वे अहंकारी हैं, न विनम्र हैं। और विनम्र न होने से हमको कठिनाई होती है, क्योंकि हम दो ही तल पर सोच सकते हैं, या तो विनम्र या अहंकारी। और हम भूल जाते हैं कि वे दोनों एक ही चीज की मात्राएं हैं।
निरहंकारी को तौलना एकदम मुश्किल हो जाएगा। मुश्किल इसलिए हो जाएगा
कि हमारे पास तौल ही नहीं है, हमारे पास तराजू ही दो का है, हमारे पास तराजू ही अहंकार का है। यानी हमें ऐसा लगता है कि जिस आदमी में कम अहंकार है, वह विनम्र है, जिसमें ज्यादा अहंकार है, वह अहंकारी है। लेकिन निरहंकार का मतलब ही और होता है। वह विनम्र भी नहीं होता, अविनम्र भी नहीं होता, असल में इस भाषा में वह होता ही नहीं है। और तब उसकी घोषणाएं इन तलों पर प्रकट नहीं होतीं। फिर फलित अर्थ हम लेते हैं।
महावीर नियंता के प्रति, गुरु के प्रति, परंपरा के प्रति न तो विनम्र हैं, न अविनम्र हैं। ठीक से समझा जाए तो ये बातें असंगत हैं महावीर के लिए, इससे कुछ लेना-देना नहीं है।
मैं इस बड़े वृक्ष के पास से निकलूं और नमस्कार न करूं तो आप कोई भी मुझे अविनम्र नहीं कहेंगे। लेकिन एक महात्मा के पास से निकलूं और नमस्कार न करूं तो आप कहेंगे अविनम्र है! लेकिन यह भी हो सकता है कि मेरे लिए दरख्त और महात्मा बिल्कुल बराबर हों। यानी मेरे लिए असंगत हो, यह बात असंगत हो, इस बात से ही मुझे कुछ लेना-देना न हो। लेकिन आपकी तौल में एक स्थिति में मैं विनम्र हो जाऊंगा, एक स्थिति में अविनम्र हो जाऊंगा, और जब कि मुझे इसका कुछ पता ही न था।
एक फकीर एक गांव से निकल रहा है और एक आदमी एक लकड़ी उठा कर उसको मारा
है पीछे से। चोट लगने से लकड़ी उसके हाथ से छूट गई है और एक तरफ गिर गई है। उस फकीर ने पीछे लौट कर देखा, लकड़ी उठा कर उस आदमी के हाथ में दे दी और अपने रास्ते चला गया।
एक दुकानदार यह सब देख रहा है, उसने फकीर को बुलाया कि कैसे पागल हो! तुम्हें उसने लकड़ी मारी, उसकी लकड़ी छूट कर गिर गई तो तुमने सिर्फ इतना ही कृत्य किया कि उसकी लकड़ी उसको उठा कर वापस देकर अपने रास्ते पर चले गए? तो उस फकीर ने कहा, एक दिन मैं एक झाड़ के नीचे से गुजरा था, उसकी एक शाखा गिर पड़ी मेरे ऊपर तो मैंने कुछ न किया। मैंने कहा, संयोग की बात कि जब शाखा गिरनी थी, हम उसके नीचे आ गए। तो शाखा सरका कर, रास्ते के किनारे करके मैं चला गया था। संयोग की बात कि इस आदमी को लकड़ी मारनी होगी, हम पड़ गए। तो

अब इसकी लकड़ी छूट गई थी तो उसको उठा कर देकर--और हम क्या कर सकते हैं--हम अपने रास्ते चल पड़े। जो मैंने वृक्ष के साथ व्यवहार किया था, वही मैंने इस आदमी के साथ भी किया है।
एक स्थिति ऐसी हो सकती है, जहां हमारे प्रश्न असंगत हो जाते हैं, इर्रिलेवेंट हो जाते हैं। क्योंकि हम जब सोचते हैं तो हम दो ही में सोच सकते हैं, द्वंद्व में सोच सकते हैं। और जो लोग भी द्वंद्व के बाहर होते हैं, वे हमेशा मिसअंडरस्टुड होते हैं। यह उनका भाग्य है, यह उनकी नियति है कि उनको कभी नहीं समझा जा सकेगा। क्योंकि जिस तल पर हम समझ सकते थे, उस तल पर उनका कोई भी रूप नहीं बनता है कि वे कैसे आदमी हैं।
महावीर अविनम्र हैं, ईगोइस्ट हैं, विनम्र हैं, हंबल हैं, कुछ तय करना मुश्किल है। क्योंकि ऐसा कोई प्रसंग ही नहीं, जिसमें वे कोई भी घोषणा करते हों। तब हमारे ऊपर ही निर्भर रह जाता है कि हम निर्णय कर लें। और हमारे निर्णय वे ही होने वाले हैं, जो हमारी तौल है, हमारा मापदंड है। महावीर उस तौल के बाहर हैं।
इसलिए मैं कहना चाहूंगा कि महावीर से ज्यादा निरहंकारी थोड़े ही लोग हुए हैं। हां, महावीर से ज्यादा विनम्र लोग हुए हैं, महावीर से ज्यादा अहंकारी लोग हुए हैं, लेकिन महावीर से ज्यादा निरहंकारी लोग मुश्किल से हुए हैं। महावीर से ज्यादा विनम्र आदमी मिल जाएगा जो झुक-झुक कर, जमीन पर झुक-झुक कर नमस्कार करेगा। महावीर झुकेंगे ही नहीं, क्योंकि कौन झुके? किसके लिए झुके? वह बात ही व्यर्थ है। वह बात ही व्यर्थ है।
फिर जब कोई आदमी झुकता है तो हम कहते हैं, विनम्र। लेकिन किसलिए झुकता है? किसी अहंकार की पूजा में? किसी अहंकार की पूजा में ही झुकता है न! किसी अहंकार के पोषण में ही झुकता है न! और महावीर तो कहते हैं कि मेरा अहंकार तो बुरा है ही, किसी का भी अहंकार बुरा है। मैं झुकूं और आपकी बीमारी बढ़ाऊं, यह भी बेमानी है। यानी अगर इसे हम ठीक से समझें तो मैं झुकूं आपके चरणों में और आपके दिमाग को फिराऊं, यह भी पाप है। मैं तो झुकूंगा, आपको बड़ा रस भी आएगा कि यह आदमी बड़ा विनम्र है। लेकिन रस ही इसलिए आएगा कि आपके अहंकार को तृप्ति मिलती चली जाएगी।
तो महावीर से तो कोई पूछे तो वे कहेंगे कि देवताओं का दिमाग भी आदमियों ने खराब कर दिया है। अगर कहीं भगवान भी है तो अब तक पागल हो गया होगा। यह जो झुकना चल रहा है, यह दूसरे के अहंकार को पोषण चल रहा है... । निरहंकारी न तो अहंकार में जीता, न अहंकार को पोषण देता, इसलिए उसके जीवन का तल, उसकी अभिव्यक्ति बिल्कुल बदल जाती है। उसे पकड़ पाना मुश्किल हो जाता है कि हम उसे कहां पकड़ें और कहां तौलें। इसलिए महावीर के साथ भी कठिनाई मालूम हो सकती है।
दूसरा कपिल पूछते हैं--क्या पूछा तुमने?

प्रश्नः आप बेशर्त प्रेम कहते हैं। तो फिर महावीर शर्त क्यों लगाते हैं?

मैं कहता हूं कि प्रेम सदा बेशर्त है। प्रेम सदा बेशर्त है, क्योंकि जहां शर्त है, वहां सौदा है। जहां हम कहते हैं कि मैं तब प्रेम करूंगा, जब ऐसा हो। जब मैं कहता हूं कि मैं प्रेम करूंगा, जब तुम ऐसा करो या ऐसे हो जाओ, या ऐसे बनो, तब मैं तुम्हें प्रेम करूंगा, ऐसा आदमी प्रेम को शर्त से बांध रहा है और ऐसा आदमी प्रेम को खो रहा है।
महावीर की जिन शर्तों की बात की है, वे प्रेम के संबंध में नहीं हैं। महावीर यह नहीं कहते कि जगत ऐसा करे तो मैं प्रेम करूंगा, जगत मुझे भोजन दे तो मैं प्रेम करूंगा। नहीं, यह बात ही नहीं है, प्रेम का मामला ही नहीं है। महावीर तो यह कहते हैं कि अगर जगत को मेरे प्रति प्रेम हो, अगर अस्तित्व को मेरे प्रति प्रेम हो तो मुझे कैसे पता चले? मैं कैसे जानूं कि यह सारा अस्तित्व मुझे बचाना चाह रहा है और उपयोगी मान रहा है और समझ रहा है कि मैं जीऊं एक क्षण और तो इसके लिए फायदा हो जाए? यह मुझे कैसे पता चले? इसे मैं कैसे जानूं? तो महावीर कहते हैं कि मैं कुछ शर्त लगाए देता हूं, जिनकी

पूर्ति मुझे खबर दे देगी कि अभी जीना है, अभी काम का हूं। मेरा मतलब समझे न?
महावीर यह नहीं कह रहे हैं कि ये शर्तें जगत पूरी करेगा तो मैं प्रेम करूंगा। जगत के प्रति प्रेम तो है ही, यह सवाल ही नहीं है शर्त का कोई। शर्त प्रेम पाने के लिए नहीं बांधी जा रही है, सिर्फ इस बात की जानकारी के लिए बांधी जा रही है कि अगर मुझे जिलाना हो तो जगत मुझे जिलाए, मैं नहीं जीऊंगा। महावीर यह कह रहे हैं कि मैं अपनी तरफ से जीने का उपक्रम नहीं करूंगा, यह मेरी चेष्टा नहीं होगी कि मैं जीऊं। असल में हो भी यही सकता है। क्योंकि जिसका मैं ही मिट गया हो, अब उसे जीने की लालसा, जिजीविषा क्या हो सकती है! अब तो यही हो सकता है कि अगर जरूरत हो... ।
जैसे समझो, मैं बोल रहा हूं। बोलने के दो कारण हो सकते हैं। या तो बोलना मेरी भीतरी वासना हो कि मैं बिना बोले न रह सकूं, यानी मुझे बोलना ही पड़े। अगर इस कमरे में कोई भी न हो तो दीवाल से बोलना पड़े, तब बोलना मेरी विक्षिप्तता होगी। क्योंकि तब बोलने से मैं--बोलने वाले से मेरा कोई संबंध ही नहीं है। मैं भीतर बेचैन हूं और मुझे कुछ बोलना है, निकालना है। जैसे पागल बोलता है, रास्ते पर अकेले में भी बोलता है, दीवाल से भी बोलता है। इससे फर्क नहीं पड़ता कि सुनने वाले बैठे हों तो जरूरी नहीं है कि बोलने वाला आदमी पागल न हो, यह कोई जरूरी नहीं है। यह तो पता तब चलेगा, जब हम उसे अकेली दीवाल के पास छोड़ दें और वह न बोले।
अगर बोलना भीतरी पागलपन है तो सुनने वाला सिर्फ बहाना है, निमित्त है,
उस पर जबरदस्ती थोपा जा रहा है। लेकिन अगर बोलना भीतरी पागलपन नहीं है और मेरी अपनी कोई जरूरत नहीं है, और मुझे लगता है कि तुम्हारी जरूरत है, तुम्हारे काम आ जाऊं, तब मैं शर्तें लगा दूंगा। ताकि मुझे पता तो चल जाए कि मैं तुम्हारे लिए बोल रहा हूं कि अपने लिए बोले जा रहा हूं?
तो मैं कहूंगा, चुप बैठना तो ही मैं बोलूंगा। यानी मुझे यह तो पता चल जाए कि तुम सुनने को तैयार हो, तुम सुनने को आए हो। अगर तुम सुनने को ही नहीं हो, तब भी मैं बोले चला जा रहा हूं, तब वह मेरा भीतरी पागलपन हो गया। तो मैं एक शर्त लगा दूंगा कि तुम चुप होकर सुनना, तुम बैठ कर सुनना, तो मैं बोलूंगा। और जिस क्षण तुम उठ कर खड़े हो जाओ या बोलने लगो, मैं बोलना बंद कर दूंगा, विदा हो जाऊंगा। मेरा मतलब समझ रहे हैं न?
महावीर यह कह रहे हैं इस पूरे अस्तित्व से कि अगर जरूरत हो दरख्तों को, अगर हवाओं को, सूरज को, चांद-तारों को, परमात्मा को, टोटल को--परमात्मा महावीर के लिए व्यक्ति नहीं है--समग्र को अगर जरूरत हो मेरी, तो बताए जाना कि मेरी जरूरत है, तो मैं चलता चला जाऊंगा। जिस दिन तुम कह दोगे कि जरूरत नहीं है, तो अब मेरी कोई जरूरत नहीं है एक इंच भी आगे जाने की।
तो महावीर की जो शर्त है, वह प्रेम के लिए लगाई गई शर्त नहीं है; वह शर्त अपने होने के लिए लगाई गई शर्त है कि मैं अभी बिखर जाऊंगा इसी क्षण। एक क्षण भी मैं नहीं कहूंगा कि और मुझे रुक जाने दो। अभी मुझे कुछ कहना था, अभी मुझे कुछ करना था, यह सवाल नहीं है। तुम्हारी खबर आ जाए, तो मैं अभी बिखर जाऊंगा।

प्रश्नः दुबारा उनका आना भी जगत की जरूरत है?

बिल्कुल ही जगत की जरूरत है। जगत की ही जरूरत है। लेकिन जैसे ही किसी व्यक्ति को आनंद उपलब्ध होता है, जैसे ही किसी व्यक्ति को आनंद उपलब्ध होता है, वैसे ही सारे जगत के प्राण उससे पुकार करने लगते हैं कि बांटो। क्योंकि जगत इतना दुख में है, इतनी पीड़ा में है, इतने कष्ट में है कि जब भी कभी कोई एक व्यक्ति भी आनंद को उपलब्ध हो जाता है तो सारे जगत के प्राणों से यह पुकार घूम-घूम कर उसके पास पहुंचने लगती है कि बांटो। वह बांटना ही लौटाता है। वह बांटने की जो, जो चारों तरफ से उठा हुआ दबाव है, वही लौटाता है। यह एकदम से हमें दिखाई नहीं पड़ता।
मुझे लोग पूछते हैं, आप किसलिए बोलते हैं? तो उनका सवाल ठीक ही है, क्योंकि बोलता मैं हूं तो सवाल मुझसे ही पूछा जाएगा।

यह ख्याल में आना कठिन है कि कोई सुनने को आतुर हो गया है, इसलिए बोलता हूं। जगत की स्थिति में तो घटनाएं उलटी ही घटेंगी। मैं बोलूंगा, तब सुनने वाला आएगा। लेकिन अंतस जगत में घटना इससे बिल्कुल भिन्न है। कोई सुनने वाला पुकारेगा, तभी मैं बोलूंगा। जैसे कि हम नदी के किनारे खड़े हो जाएं तो नदी में दिखाई पड़ता है कि सिर नीचे है और पैर ऊपर हैं, लेकिन वस्तुतः जो किनारे पर खड़ा है, उसका सिर ऊपर है और पैर नीचे हैं। लेकिन नदी में जो प्रतिबिंब बनता है, वह उलटा बनता है।
जीवन में जो प्रतिबिंब बनते हैं, वे उलटे बनते हैं, अंतस तल पर जो प्रतिबिंब हैं, वे बिल्कुल उलटे हैं। अंतस तल में सुनने वाला पहले मौजूद हो जाता है, तब बोलने वाला आता है। बाहर के जगत में बोलने वाला पहले दिखाई पड़ता है, तब सुनने वाला इकट्ठा होता है। यह हमें ख्याल में न आए तो मुश्किल हो जाती है।
महावीर को नहीं कह सकोगे जाकर कि आप क्यों बोल रहे हो? क्योंकि महावीर कहेंगे कि तुम क्यों सुन रहे हो? तुम सुनने पहले आ गए हो, तब मैं बोलने आया हूं।
मगर हमें यह दिखाई नहीं पड़ेगा, क्योंकि जिस जगत में हम जीते हैं वह छाया का, प्रतिफलन का, रिफ्लेक्शन का जगत है। वहां चीजें सीधी नहीं हैं, वहां चीजें उलटी हैं। वहां बिल्कुल चीजें उलटी हैं। वहां हमें सब चीजें उलटी दिखाई पड़ती हैं, जैसी वे नहीं हैं। और तब हम उसी हिसाब से सब सोचते हुए चलते हैं।
अगर महावीर तुम्हारे गांव में भी आएंगे तो तुम कहोगे कि क्यों आए हैं
आप यहां? और मजा यह है कि तुम्हीं ने बुलाया था। लेकिन तुम्हारे बुलाने के प्रति भी तो तुम चेतन नहीं हो, उतने भी तो तुम कांशस नहीं हो! और महावीर को यह पीड़ा भी झेलनी पड़ेगी कि तुम्हीं ने बुलाया था और तुम्हीं पूछोगे कि कैसे आप आए हैं यहां?
बुद्ध एक गांव में जा रहे हैं, सुबह-सुबह का वक्त है, वे उस गांव में प्रवेश करने को हैं और एक लड़की, एक ग्रामीण लड़की, एक किसान लड़की अपने पति के लिए भोजन लेकर खेत की तरफ जाती है। तो रास्ते में बुद्ध को कहती है कि मैं जब तक न लौट आऊं, बोलना शुरू मत कर देना। तो बुद्ध उससे कहते हैं, तेरे लिए ही तो मैं आ रहा हूं भागा हुआ, अगर तू न होगी तो बोलना शुरू करके भी क्या करूंगा! आनंद बहुत मुश्किल में पड़ जाता है, वह पूछता है, आप यह क्या कहते हैं? इस लड़की के लिए भागे चले आ रहे हैं दूसरे गांव से! उन्होंने कहा, इसी लड़की के लिए। और देखो, वही लड़की मुझसे कहती है कि बोलना शुरू मत कर देना, जब तक मैं न आ जाऊं। और मैं उसी के लिए आ रहा हूं।
फिर वह लड़की चली गई है। गांव में बुद्ध पहुंच गए हैं, भीड़ इकट्ठी हो गई है। लोग कहते हैं, अब आप बोलें, अब आप शुरू करें। और बुद्ध चारों तरफ देखते हैं, वह लड़की अभी तक नहीं लौटी। और आनंद कहते हैं कि लोग क्या कहेंगे कि आप उस लड़की के लिए रुके हैं। आप बोलिए! तो बुद्ध ने कहा, मैं जिसके लिए आया हूं, और जो रास्ते में मुझे कह भी गई कि रुकना, यह कैसे हो सकता है कि मैं बोल दूं! सांझ घिरने लगी, लोग विदा होने लगे, तब वह लड़की भागी हुई आई और वह कहती है कि बड़ी मुश्किल में पड़ गई। पति बीमार हो गया। उसको कोई कीड़ा काट गया, कुछ हो गया। मैं वहां उलझ गई और मैं बड़ी परेशान थी कि कहीं आप बोलना शुरू न कर दें।
बुद्ध कहते हैं, लेकिन तेरे बिना बोल कर करता भी क्या? तेरे लिए भागा हुआ आया हूं। तुझे पता नहीं, तूने मुझे पहले बुलाया है, मैं पीछे चला हूं। लेकिन हमारी दुनिया में जहां हम जीते हैं, वहां चीजें बिल्कुल उलटी हैं। वहां बुद्ध पहले आए हैं, पीछे लड़की सुनती है। और तब हमारे सब सवाल उलटे हैं। क्योंकि हमारे सब सवाल जहां से उठते हैं, वहां चीजें बिल्कुल उलटी हैं।
और महावीर के प्रेम में कोई शर्त नहीं है। शायद उतना बेशर्त प्रेम ही कभी नहीं हुआ, बिल्कुल बेशर्त है प्रेम। लेकिन महावीर अपने अस्तित्व के लिए शर्तें बांध रहे हैं। वे जो शर्तें हैं, वे अपने अस्तित्व के लिए हैं; वे तुम्हारे प्रेम के लिए नहीं हैं। वे यह हैं कि कहीं ऐसा न हो जाए कि तुम्हारा प्रेम भी विदा हो चुका है, अस्तित्व को जरूरत नहीं है और मैं जीए

चला जाऊं, तब बेमानी हो जाएगी बात। एक क्षण भी नहीं, एक क्षण भी मुझे खबर कर देना।
और कोई परमात्मा को महावीर मानते नहीं हैं जो कि खबर कर दे। कोई भगवान नहीं है जो कह दे कि अब बस लौट आओ। यह तो पूरा अस्तित्व, समग्र ही खबर करे तो ही पता चलने वाला है, और कोई उपाय नहीं है। महावीर अगर किसी भगवान को मानने वाले हों तो यह कह देंगे कि मुझे कह देना कि मैं विदा हो जाऊं। लेकिन यह समग्र अस्तित्व कैसे कहेगा? हवाएं कैसे कहेंगी? फूल कैसे कहेंगे? वृक्ष कैसे कहेंगे? चांद-तारे कैसे कहेंगे? एक्झिस्टेंस कैसे कहेगा? तो महावीर कहते हैं कि मैं शर्त लगा लेता हूं, ताकि मुझे पता चलता जाए कि बस अब इसके आगे नहीं जाना, अब बात खतम हो गई, मेरी जरूरत विदा हो गई, मैं चुकता हो गया।
इस करुणा को हम नहीं समझ सकते कि एक क्षण भी वे हम पर बोझ की तरह नहीं जीना चाहते हैं। वे एक क्षण को भी बोझ नहीं बनना चाहते हैं, क्योंकि जो मुक्ति बनने की कामना लेकर खड़ा हो, वह बोझ नहीं बन सकता है। शर्त जो है, वह अपने अस्तित्व के लिए है, वह प्रेम के लिए नहीं है। प्रेम तो सदा बेशर्त है, लेकिन अपना अस्तित्व सदा सशर्त होना चाहिए। अपना अस्तित्व बेशर्त हो जाए तो बहुत मुश्किल की बात है। वह प्रेम के ऊपर भारी पड़ेगा, बहुत भारी पड़ जाएगा।

प्रश्नः एक और बात है। मेहरबाबा की बता रहे थे आप, कि दो बार एक्सीडेंट जब होने लगा तो वह बच गए। क्योंकि उनको पहले पता चल गया था। लेकिन आप पत्ते की भांति अपने आपको खुला छोड़ना चाहते हैं। और तीसरा, जब दलाई लामा तिब्बत से आए तो आपने उसको ठीक बोला। तो यह कैसे एक-दूसरे से... ?

हां, हां, हां। असल में मेहरबाबा को मैं कहूंगा गलत, क्योंकि बचना चाहते हैं वे खुद।

प्रश्नः मेहरबाबा के अंदर जो प्रेरणा उठी वह परमात्मा की उठी थी?

यह दूसरी बात है, इसको फिर पीछे पूछ लेना।
मेहरबाबा को मैं कहूंगा गलत, क्योंकि वे खुद बचना चाहते हैं। प्रेरणा परमात्मा की होती तो उस हवाई जहाज में किसी को भी न बैठने दिया होता। वह हवाई जहाज तो गिरा ही, मेहरबाबा ही बच गए न! उस हवाई जहाज के लोग मरे ही। प्रेरणा परमात्मा की होती तो वह कहते, हवाई जहाज को नहीं जाने दूंगा। चाहे मुझे मार डालो, इसको आगे नहीं बढ़ने दूंगा। प्रेरणा अपने ही जीवन-अस्तित्व की है। तो खुद तो बच गए हैं, हवाई जहाज तो चला गया है। उस मकान में, जिसमें वे ठहरने गए थे, खुद तो नहीं ठहरे, लेकिन किसी को उन्होंने नहीं कहा कि इसमें कोई मत ठहरे। मकान रात गिर गया, कोई ठहर भी सकता था। मेहरबाबा को मैं गलत कहूंगा, क्योंकि बचने की आकांक्षा अपनी है।
और दलाई को मैं गलत नहीं कहूंगा, क्योंकि अपने बचने की कोई आकांक्षा
ही नहीं है। दलाई के लिए बचना तो यही सरल हुआ होता कि वह वहीं रह जाता और चीनियों के साथ हो जाता। तो दलाई को बचना ज्यादा सरल था, वह ज्यादा सुविधापूर्ण था। दलाई तो मुश्किल में पड़ा, अपने लिए तो मुश्किल में पड़ गया, बचा रहा है कुछ जो सबके काम का है।
इस फर्क को समझ लेना। मेहरबाबा बच रहे हैं खुद; दलाई बचा रहा है कुछ,
जो सबके काम का है। और उस बचाने में दलाई अपनी जान को दांव पर लगा रहा है। मेरा ख्याल ले रहे हो तुम? दलाई अपनी जान को दांव पर लगा रहा है। दलाई का भागना दांव पर लगाना है जान को। और एक अर्थ में शायद वह कभी नहीं लौट सकेगा अब। वह रुक जाता, सुलह कर लेता, वह राजा भी बना रह सकता था, वह पद पर भी हो सकता था। इसमें कोई कठिनाई न थी, सारा यश, वैभव, सब चल सकता था। बात कुल इतनी थी कि वह चीन को स्वीकृति दे देता कि तुम हमारे मालिक हो, हम तुम्हारे उपनिवेश हैं, बात खतम होती थी।
नहीं, इसने अपने को नहीं बचाना चाहा, यह सब खोकर, सब बरबाद करके, सारी जिंदगी को कष्ट में डाल कर भागा है कुछ और बचाने को, जो इसके अपने बचने से

भी ज्यादा मूल्यवान है। जो यह मरेगा तो भी कोई हर्ज नहीं, लेकिन कुछ बच जाएगा जो आगे काम पड़ सकता है। इसका हमें ख्याल नहीं है।
तो मैं जब कहता हूं अहंकार के लिए बचाना, अपने लिए बचाना, तो दो कौड़ी
की बात है। उस अर्थ में तो आदमी को पत्ते की तरह जीना चाहिए। सूखे पत्ते की तरह, हवाएं जहां ले जाएं। लेकिन जहां तक सबके हित में आने वाली कोई बात हो, सबके कल्याण में आने वाली कोई बात हो और कुछ ऐसी संपदा हो, जो कि मेरे होने न होने से संबंधित नहीं है, पीछे भी काम पड़ सकती है, उसके बचाने के लिए जरूर कुछ श्रम किया जा सकता है। महावीर भी वह श्रम कर रहे हैं।
यह जो मैं फर्क कर रहा हूं, वह फर्क सिर्फ इतना है कि तुम अपने स्वार्थ
के लिए उपयोग कर रहे हो कि तुम्हारा कोई भी स्वार्थ नहीं है? उसी दृष्टि से एक को गलत कहूंगा, एक को सही कह दूंगा। निर्णायक बात यह होगी कि उसका अपना कोई स्वार्थ है निजी या कि बृहत्तर।
दलाई को कोई छाती में छुरा मार दे तो दिक्कत नहीं है, कठिनाई नहीं है, लेकिन जो उसके पास है--और निश्चित ही एक ऐसी इसोटेरिक साइंस उसके पास है, जो इस समय पृथ्वी के दो-चार लोगों की समझ में आ सकती है, पास होने की तो बात दूर है। क्योंकि पिछले डेढ़-दो हजार वर्ष से सारी दुनिया से टूट कर अलग तिब्बत एक प्रयोग कर रहा है।
हमें ख्याल में नहीं होता यह। हमें ख्याल में नहीं होता। दूसरा महायुद्ध हुआ, दूसरा महायुद्ध जर्मनी जीत सकता था, सिर्फ एक आदमी जर्मनी छोड़ कर भाग गया और हारना पड़ा, वह आइंस्टीन। जर्मनी जीत सकता था। जर्मनी के हारने का कोई कारण न था, लेकिन जो सीक्रेट्स थे, वे एक आदमी के हाथ में थे-- आइंस्टीन के। और वह था यहूदी। और यहूदियों को सताए जाने के कारण आइंस्टीन ने जर्मनी छोड़ दिया।
जो एटम बम अमरीका में बना, वह बर्लिन में बना होता। सीक्रेट एक आदमी
के पास था, एक ही आदमी के पास था बस। वह सीक्रेट जाकर अमरीका में उपयोगी हो गया। एटम वहां बना, हिरोशिमा पर गिरा। वह हो सकता था लंदन पर गिरता कि न्यूयार्क पर गिरता कि मास्को पर गिरता, कुछ पक्का नहीं था। एक बात पक्की थी कि आइंस्टीन के बिना वह कहीं भी नहीं गिर सकता था। जहां आइंस्टीन होता, वह वहीं, उसके ही काम में आने वाला था।
आज तो तुम हैरान होओगे कि इतनी कीमत कभी नहीं थी लोगों में। आज दुनिया में दस-बारह वैज्ञानिकों की इतनी कीमत है कि अरबों रुपए देकर एक वैज्ञानिक को चुरा लेना काफी बड़ी बात है। खरबों खर्च हो जाएं, कोई फिक्र नहीं है, एक वैज्ञानिक को फुसला लेना काफी बड़ी बात है। एक वैज्ञानिक से एक सीक्रेट लेना काफी बड़ी बात है। क्योंकि वह दस-बारह ही लोगों के आज हाथ में सारी बात है दुनिया की।
जिस तरह पदार्थ के विज्ञान के संबंध में यह स्थिति हो गई है, ठीक वैसी स्थिति अध्यात्म विज्ञान की भी है। आज मुश्किल से दुनिया में दो-चार लोग हैं, जो उस गहराई पर समझते हैं। लेकिन उनके पास भी पूरा का पूरा हजारों वर्षों के अनुभव का सार नहीं है।
एक घटना तुम्हें बताऊं। एक आदमी था गुरजिएफ। गुरजिएफ ने अपनी जिंदगी
के पहले वर्ष एक अदभुत खोज में लगाए, जैसा कि इस सदी में किसी आदमी ने नहीं किया, पिछली सदियों में भी किसी ने नहीं किया। पंद्रह-बीस मित्रों ने यह निर्णय लिया कि दुनिया के कोने-कोने में जो भी आध्यात्मिक सत्य छिपे हैं, वे सब अलग-अलग कोनों में चले जाएं और उन सत्यों को खोज कर, जब खोज लें तो लौट आएं और बीसों मिल कर सब अपने अनुभव बता दें, ताकि एक सुनिश्चित विज्ञान बन सके।
ये बीस आदमी दुनिया के कोनों-कोनों में चले गए। इनमें कोई तिब्बत जाने वाला था, कोई भारत, कोई ईरान, कोई इजिप्त, कोई यूनान, कोई चीन, कोई जापान; ये सारे दुनिया में फैल गए। इन बीसों आदमियों ने बहुत खोज की, पूरी जिंदगी लगा दी। क्योंकि एक-एक आदमी की जिंदगी बहुत छोटी थी, जो जानने को था वह बहुत ज्यादा था।
अब अगर एक आदमी सूफियों के पास सीखने जाए तो पूरी जिंदगी लग जाती है। क्योंकि सूफियों की व्यवस्था यह है कि एक फकीर एक सूत्र सिखाएगा, वर्ष लगा देगा, दो वर्ष लगा देगा; फिर कहेगा कि अब तुम फलां आदमी के पास चले जाओ,

इसके आगे वह तुमसे बात करेगा। तो दूसरे फकीर के पास चले जाओगे। और वर्ष, दो वर्ष तो सेवा करो उसकी, हाथ-पैर दाबो उसके, वह जो कहे मानो। क्योंकि कुछ बातें ऐसी हैं, कुछ बातें ऐसी हैं कि वे तुम्हें तभी दी जा सकती हैं, जब तुम इतना धैर्य दिखलाओ, नहीं तो तुम उसके योग्य नहीं, पात्र नहीं। तो वह धैर्य अगर उतना न हो तो तुम्हारा पात्र टूट जाएगा, वे चीजें तुम्हें नहीं दी जा सकतीं।
उन बीस लोगों ने सारी दुनिया में खोज-बीन की और वे बीस लोग बूढ़े होते- होते करीब लौट कर मिले। उनमें से कुछ तो मर गए। कुछ कभी नहीं लौटे, कहां खो गए, पता नहीं चला। लेकिन चार-छह जो मित्र लौटे, उन्होंने जो-जो सूचनाएं दीं, उन सूचनाओं के आधार पर गुरजिएफ ने एक पूरी साइंस खड़ी की। उसमें उन सूत्रों की पकड़ उसके हाथ में आ गई, जो सारी दुनिया में फैले हुए हैं। आध्यात्मिक विज्ञान के संबंध में तिब्बत के पास सबसे बड़ी संपदा है।
और दलाई लामा के लिए उपयोगी है कि वह सबकी फिक्र छोड़ दे, तिब्बत की भी फिक्र छोड़ दे, तिब्बत का भी बनना-मिटना उतना कीमत का नहीं है। तिब्बत के लोग इस राज्य में रहते हैं कि उस राज्य में, यह भी बड़े मूल्य की बात नहीं है। वे किस तरह की व्यवस्था बनाते हैं समाज की, शासन की, वह भी मूल्यवान नहीं है। मूल्यवान यह है कि इन डेढ़ हजार वर्षों में एक प्रयोगशाला की तरह तिब्बत ने जो काम किया है, वे सूत्र नष्ट न हो जाएं; उनको भाग कर बचाना जरूरी है।
मेरा मतलब कुल इतना है। न मेहरबाबा से कोई मतलब है मुझे, न दलाई लामा
से कोई मतलब है। मेरा मतलब कुल इतना है कि एक तो दिशा वह है, जहां हम परम कल्याण के लिए कुछ बचा रहे होते हैं और एक दिशा वह है, जहां हम अपने कल्याण के लिए कुछ बचा रहे होते हैं। दोनों में फर्क करना जरूरी है।

प्रश्नः अहिंसा का विधायक स्वरूप क्या है? और महावीर ने किसी की शारीरिक सहायता क्यों नहीं की?

अहिंसा शब्द से ही निगेटिव का, निषेध का, नकारात्मक का बोध होता है। बोध होता है, हिंसा नहीं। तो अहिंसा शब्द ही नकारात्मक है। महावीर ने क्यों उस शब्द को चुना? वे प्रेम भी चुन सकते थे। प्रेम विधायक शब्द है, वह पाजिटिव है।
अहिंसा का मतलब होता है, किसी को दुख नहीं देना है। प्रेम का मतलब होता है, किसी को सुख देना है। अहिंसा का मतलब है, किसी को दुख नहीं देना है। इसलिए निषेधात्मक है। यानी अगर मैंने आपको दुख नहीं दिया तो मैं अहिंसक हो गया। प्रेम विधायक शब्द है। प्रेम का मतलब है, किसी को सुख देना है। तो मैंने आपको दुख नहीं दिया, इतने से ही काफी बात नहीं हल होती, मैंने आपको सुख दिया कि नहीं? अगर सुख दिया तो ही प्रेम पूरा होता है।
तो प्रेम तो विधायक शब्द है। जीसस ने प्रेम का उपयोग किया। अहिंसा निषेधात्मक शब्द है और महावीर ने अहिंसा का उपयोग किया। इसलिए समझना बहुत जरूरी है। महावीर क्यों ऐसा प्रयोग करते हैं कि किसी को दुख नहीं देना है? इसमें बड़ी गहराइयां छुपी हुई हैं। ऊपर से देखने पर यही लगेगा कि प्रेम शब्द का प्रयोग ही ज्यादा ठीक हुआ होता। और जहां तक समाज का संबंध है, शायद ज्यादा ही ठीक हुआ होता। क्योंकि जिन लोगों ने महावीर का अनुगमन किया, उन्होंने किसी को दुख नहीं देना, इसको सूत्र बना लिया। और एक अर्थ में किसी को दुख न देने के कारण वे सिकुड़ते चले गए, क्योंकि किसी को सुख तो देना नहीं है, बस दुख नहीं देना है। चींटी पैर से न दबे, इतना काफी हो गया! चींटी भूखी मर जाए, इससे क्या लेना-देना है? यानी चींटी अपने कर्मों का फल भोगती होगी। चींटी भूखी मर जाए, इससे कोई प्रयोजन नहीं है हमारा। हमने चींटी को पैर से दबा कर नहीं मारा, हमारा काम पूरा हो गया!
महावीर का निषेधात्मक शब्द समाज के लिए महंगा पड़ा। और जो लोग अनुगमन किए, उनके लिए तो भारी महंगा पड़ा। इसलिए हिंदुस्तान में जैनियों से ज्यादा स्वार्थी लोग खोजने मुश्किल हैं--सेल्फिश। क्योंकि वह अहिंसा का जो अर्थ पकड़ा गया, वह यह था कि किसी को दुख नहीं देना, बस बात खतम हो गई।

अपने को इससे ज्यादा किसी से कोई प्रयोजन नहीं है। और प्रयोजन तो तब बनता है, जब हम किसी को सुख देने जाएं, तब हमारे रास्ते बनते हैं।
तो रास्ते सब टूट गए। तो आइलैंड्स की तरह, महावीर के पीछे जो लोग गए,
वे एक-एक द्वीप की तरह हो गए--अपने में बंद। हम किसी को दुख न दें, बात पूरी हो गई। यह निषेधात्मक रूप खतरनाक सिद्ध हुआ। अच्छा हुआ होता, अनुयायियों के लिए तो अच्छा हुआ होता कि महावीर ने प्रेम का ही प्रयोग किया होता। लेकिन महावीर ने प्रेम का प्रयोग नहीं किया, यह बहुत कीमती बात है। और महावीर की दृष्टि बहुत गहरी है।
अहिंसा शब्द का प्रयोग करना बड़ा अदभुत है। उसके कारण हैं। पहला तो कारण यह है कि किसी को दुख नहीं देना, यह कोई साधारण बात नहीं है। इसका मतलब इतना ही नहीं होता कि हम किसी को चोट न पहुंचाएं। अगर बहुत गहरे में देखें तो किसी क्षण में किसी को सुख न देना भी उसको दुख देना हो सकता है। उतने दूर तक अनुयायी की पकड़ नहीं हो सकी। मैं आपको दुख न दूं, यह तो ठीक है; बहुत मोटा सूत्र हुआ कि आपको चोट न पहुंचाऊं, आपकी हिंसा न करूं, तलवार न मारूं।
लेकिन किसी क्षण में यह भी हो सकता है कि मैं आपको सुख न पहुंचाऊं तो निश्चित रूप से आपको दुख पहुंचे। लेकिन यह पकड़ में आना साधारणतः मुश्किल था।
लेकिन महावीर इसको साफ कह सकते थे। वह भी उन्होंने साफ नहीं कहा और उसके भी कारण हैं। क्योंकि महावीर की गहरी समझ यह है कि कभी-कभी किसी को सुख पहुंचाने से भी उसको दुख पहुंच जाता है। यानी कभी-कभी आक्रामक रूप से किसी को सुख पहुंचाने की चेष्टा भी उसको दुख पहुंचा सकती है। यानी यह जरूरी नहीं कि आप सुख पहुंचाना चाहते हैं, इससे दूसरे को सुख पहुंच जाएगा। इसलिए सुख पहुंचाने में भी आक्रामक चित्त न हो, यानी सुख पहुंचाना भी चेष्टा का हिस्सा न हो, क्योंकि सुख पहुंचाने में भी दुख पहुंचाया जा सकता है।
सच तो यह है कि अगर कोई अति कोशिश करे किसी को सुख पहुंचाने की तो उसको दुख पहुंचाता ही है। अगर बाप अपने बेटे को सुख पहुंचाने की बहुत कोशिश में रत हो जाए; उसके सुधार, उसकी नीति, उसकी व्यवस्था को ज्यादा रचने लगे और सोचे कि इससे इसे सुख पहुंचेगा, तो संभावना इसी बात की है कि बेटे को दुख पहुंचे। और संभावना इसी बात की है कि दुख के कारण बाप जो भी चाहता है, बेटा उसके विपरीत चला जाए।
इसलिए अच्छे बाप अच्छे बेटों को पैदा नहीं कर पाते। बुरे बाप के घर अच्छा बेटा पैदा भी हो सकता है, अच्छे बाप के घर पैदा होना बड़ा अपवाद है। अच्छा बाप बेटे को अनिवार्यतः बिगाड़ने का कारण बनता है। क्योंकि वह उसे इतना सुख पहुंचाना चाहता है, और इतना शुभ बनाना चाहता है--सुख के लिए ही-- कि बेटे पर उसका यह सुख पहुंचाना भी बोझ हो जाता है। यह भी भार हो जाता है, यह भी वजन हो जाता है।
यह बड़े मजे की बात है कि हम यदि किसी से सुख लेना चाहें तो ही ले सकते हैं, कोई हमको पहुंचा नहीं सकता। इसे समझ ही लेना चाहिए। अगर मैं किसी से सुख लेना चाहूं तो ही ले सकता हूं। सुख इतनी सूक्ष्म चित्त-दशा है कि कोई मुझे पहुंचाना चाहे तो नहीं पहुंचा सकता, मैं लेना चाहूं तो ही ले सकता हूं। इसलिए महावीर ने पहुंचाने पर जोर ही नहीं दिया, बात ही छोड़ दी। हां, जो लेना चाहे, उसे दे देना, क्योंकि नहीं दोगे तो उसे दुख पहुंचेगा। इसलिए जोर है इस बात पर कि तुम किसी को दुख भर मत पहुंचाना। बस तुम्हारा काम इतना ही काफी है कि तुम किसी को दुख मत पहुंचाना। कोई अगर तुमसे सुख लेना चाहे तो दे देना, वह भी सिर्फ इसीलिए कि अगर तुम न दोगे तो उसे दुख पहुंचेगा। लेकिन तुम सुख पहुंचाने भी मत चले जाना, क्योंकि तुम अगर कहीं सुख पहुंचाने गए तो तुम सिवाय दुख पहुंचाने के और कुछ भी नहीं कर पाओगे। क्योंकि एग्रेसिव, आक्रामक सुख पहुंचाने वाला आदमी दुख ही पहुंचाता है। उसका कारण है कि असल में आक्रमण दुख पहुंचाता है। अगर जबरदस्ती हम किसी को सुखी करना चाहें तो जितना दुखी हम उसे कर देंगे, इतना दुखी हम कभी भी उसे नहीं कर सकते थे। इसका मतलब यह हुआ कि जबरदस्ती किसी को भी सुखी नहीं किया जा सकता है। और जबरदस्ती में हिंसा शुरू हो जाती है।

तो महावीर की पकड़ तो बहुत गहरी है, बात तो वे ठीक कह रहे हैं। और भी एक गहराई है जो मैं समझता हूं कि आज तक महावीर को समझने वाले लोगों को समझ में नहीं आई। और वह यह हैः अंततः परम स्थिति में जहां अहिंसा पूर्ण रूप से प्रकट होती है या प्रेम प्रकट होता है--कोई भी नाम दें, क्योंकि परम स्थिति में न विधेय है, न नकार है। निगेटिव और पाजिटिव का द्वंद्व प्राथमिक स्थितियों में है, परम स्थितियों में दोनों नहीं हैं। तो परम स्थिति, तो महावीर जैसा व्यक्ति, महावीर जैसी स्थिति का व्यक्ति--वह प्रश्न भी पूछा है कि उन्होंने कभी किसी के शरीर को क्यों सहायता नहीं पहुंचाई? उन्होंने कभी क्यों किसी गिरे हुए को नहीं उठाया? उन्होंने कभी क्यों किसी भूखे को पानी नहीं पिलाया, रोटी नहीं खिलाई? उन्होंने कभी किसी बीमार के पास बैठ कर पैर क्यों नहीं दाबे? महावीर ने कभी किसी के शरीर की कोई सेवा नहीं की। सवाल तो पूछने जैसा है।
उसका भी कारण है। परम अहिंसा की स्थिति में व्यक्ति किसी को दुख तो पहुंचाना ही नहीं चाहता, सुख भी नहीं पहुंचाना चाहता। क्यों? बहुत गहरे में देखने पर सुख और दुख एक ही चीज के दो रूप हैं। जिसे हम सुख कहते हैं, वह दुख का ही एक रूप है; और जिसे हम दुख कहते हैं, वह भी सुख का ही एक रूप है। बहुत गहरे जो देखेगा, वह पाएगा कि जिसे हम सुख कहते हैं, अगर उसकी मात्रा थोड़ी बढ़ा दी जाए तो वह दुख में बदल जाता है।
आप भोजन कर रहे हैं, बड़ा सुखद है। और आप ज्यादा भोजन करते चले जाते हैं, और एक सीमा आती है कि सुख दुख में बदलना शुरू हो गया।
आप मुझे प्रेम से आकर मिले, मैंने आपको गले से लगा लिया, बड़ा सुखद है--
एक क्षण, दो क्षण। लेकिन मैं हूं कि छोड़ता ही नहीं हूं, तब आप तड़फने लगे हैं कि अब इन बांहों से कैसे छूट जाएं। और पांच मिनट, और सुख दुख में बदल गया है। और अगर आधा घंटा हो गया तो आप पुलिस वाले को चिल्लाते हैं कि मुझे बचाइए, क्योंकि यह आदमी मुझे छोड़ता नहीं है।
किस क्षण पर सुख दुख में बदल गया, बताना बहुत मुश्किल है। एक क्षण तक झलक थी सुख की, दूसरे क्षण दुख शुरू हो गया।
एक प्रेमी है, एक प्रेयसी है, दोनों घड़ी भर को मिलते हैं, बड़ा सुखद है।
फिर पति-पत्नी हो जाते हैं। और बड़ा दुखद हो जाता है। पश्चिम में, सारी दुनिया में जहां प्रेम विवाह आया, वहां एक अनुभव हुआ कि प्रेमी जितना एक-दूसरे को सुखी कर सकते हैं, उतना ही दुखी कर देते हैं। बड़ी अजीब बात है। असल में सुख कब दुख में बदल जाता है, कहना मुश्किल है।
सब सुख दुख में बदल सकते हैं। और ऐसा कोई दुख नहीं है, जो सुख में न बदल सके। सब दुख भी सुख में बदल सकते हैं। सुख और दुख एक-दूसरे में रूपांतरित हो सकते हैं। जैसे आपको कोई एक दुख है, कैसा ही दुख है, कितना ही गहरा दुख है, उस दुख में भी आप संभावनाएं देख सकते हैं सुख की।
एक मां है, वह नौ महीने पेट में बच्चे को रखती है, दुख ही उठाती है। प्रसव है, बच्चे का जन्म है, असह्य दुख उठाती है। लेकिन सब दुख सुख में बदलता जाता है। आशा आगे सुख की, दुख को झेलने में समर्थ बना देती है। बल्कि प्रसव-पीड़ा भी एक सुख की तरह ही आती है। बच्चे का बोझ भी सुख की तरह ही आता है। उस बच्चे को बड़ा करना लंबे दुख की प्रक्रिया है, लेकिन मां का मन उसे सुख बना लेता है।
दुख को हम सुख बना ले सकते हैं। अगर आशा, संभावना, आकांक्षा, कामना तीव्र हो तो दुख सुख बन जाता है। सुख को हम दुख बना ले सकते हैं, अगर सुख में सब आशा, सब संभावना क्षीण हो जाए तो सुख एकदम दुख बन जाता है। यानी इसका मतलब यह हुआ कि सुख और दुख में कोई मौलिक भेद नहीं है, हमारी दृष्टि का भेद है। हम कैसे देखते हैं, इस पर सब कुछ निर्भर करता है। हम कैसे देखते हैं, इस पर सब कुछ निर्भर करता है। हमारे देखने पर ही सुख दुख का रूपांतरण हो जाता है।
एक आदमी के पैर में घाव है और डाक्टर आपरेशन करता है, आपरेशन का दुख भी सुख बन जाता है, क्योंकि एक पीड़ा से छुटकारे की आशा काम कर रही है। आदमी जहरीली से जहरीली दवाई, कड़वी से कड़वी दवाई पी जाता है, क्योंकि बीमारी से दूर होने की आशा काम कर रही है।

आशा भर हो तो दुख को सुख बनाया जा सकता है और आशा क्षीण हो जाए तो सब सुख फिर दुख हो जाते हैं।
महावीर कहते यह हैं कि बहुत गहरे में, अंतिम चरम स्थिति में न तो तुम किसी को सुख पहुंचाना, न तुम किसी को दुख पहुंचाना। लेकिन इसका क्या मतलब? इसका मतलब यह कि तुम सबसे टूट जाना? सबसे दूर खड़े हो जाना? मिट जाना तुम सबके लिए? तुम्हारे उनके बीच एक अंतहीन फासला पैदा कर लेना?
नहीं, यह मतलब नहीं है। बहुत अदभुत बात है। जिस दिन कोई व्यक्ति उस स्थिति में पहुंच जाता है, जहां न वह किसी को सुख पहुंचाना चाहता, न दुख पहुंचाना चाहता, वहीं से वह व्यक्ति अनिवार्यरूपेण सबको आनंद पहुंचाने का कारण बन जाता है। इसे समझ लेना जरूरी है। आनंद पहुंचाने का कारण ही तभी कोई व्यक्ति बनता है, जब वह सुख और दुख के चक्कर से मुक्त होता है खुद, और उस दृष्टि को उपलब्ध होता है जहां सुख और दुख का कोई मूल्य नहीं रह जाता। पर आनंद को हम जानते नहीं। हमें कोई दुख पहुंचाए तो हम पहचान जाते हैं
कि यह आदमी बुरा, हमें कोई सुख पहुंचाए तो हम पहचान जाते हैं यह आदमी अच्छा; लेकिन हमें कोई आनंद पहुंचाए तो हम बिल्कुल नहीं पहचान पाते कि यह आदमी कैसा?
पहली तो बात यह कि हम आनंद ही नहीं पहचान पाते। पहली तो बात यह कि हम आनंद को ही नहीं पकड़ पाते कि कैसा आनंद पहुंचाया जा रहा है! और आनंद उस चेतना से सहज ही विकीर्णित होने लगता है, जो चेतना अब सुख और दुख के द्वंद्व के पार चली जाती है--न खुद की दृष्टि से, न दूसरे की दृष्टि से अब किसी को सुख पहुंचाना है, न दुख पहुंचाना है। ऐसे व्यक्ति के जीवन से सहज ही आनंद की किरणें चारों तरफ फैलने लगती हैं।
निश्चित ही, जिनके पास आंखें होती हैं, वे उस आनंद को देख लेते हैं; जिनके पास आंखें नहीं होतीं, अंधे होते हैं, वे नहीं देख पाते हैं। लेकिन चाहे सूरज को कोई देख पाए, चाहे न देख पाए; जो देखता है उसको भी सूरज गर्मी पहुंचाता है और जो नहीं देखता, उसको भी गर्मी पहुंचाता है। फर्क इतना पड़ता है कि नहीं देखने वाला कहता है, कैसा सूरज? कहां का सूरज? गर्मी में फर्क नहीं पड़ता सूरज की। जो जीवन अंधे को मिलता है, वही आंख वाले को मिलता है, उसमें कोई फर्क नहीं पड़ता। लेकिन अंधा कहता है, कैसा सूरज? किस सूरज को धन्यवाद दूं? कोई सूरज कभी देखा नहीं, किसी ने कभी कोई गर्मी पहुंचाई नहीं। गर्मी अगर पहुंची है तो वह मेरी अपनी है। क्योंकि उसे सूरज का तो कोई पता नहीं है। आंख वाला जानता है कि गर्मी सूरज से आई है और इसीलिए अनुगृहीत भी है, धन्यवाद भी करता है, कृतज्ञ भी है, एक ग्रेटीट्यूड का भाव भी है।
लेकिन बहुत मुश्किल है। हम तो यही देख पाते हैं कि महावीर किसी के पैर दाब रहे हों तो हमें समझ में आए कि वह किसी की सेवा कर रहे हैं।
यह ऐसा ही है, जैसे घर में छोटे बच्चे होते हैं, और अगर एक भिखमंगा आए
और मैं उसे सौ रुपए का नोट उठा कर दे दूं और बच्चा मुझसे बाद में पूछे कि आपने एक भी पैसा उसको नहीं दिया। क्योंकि सौ रुपए के नोट का उसे कोई अर्थ ही नहीं होता, वह पहचानता है पैसों को। वह कहता है, एक पैसा उसको नहीं दिया, आप कैसे कठोर हैं! आया था मांगने, कागज पकड़ा दिया? भूखा था, कागज से क्या होगा? एक पैसा दे देते कम से कम। और वह लड़का जाकर गांव में कहे कि बड़ी कठोरता है मेरे घर में, एक भिखमंगा आया था तो उसको कागज का टुकड़ा पकड़ा दिया! कागज के टुकड़े से किसी की भूख मिटी? एक रोटी भी दे देते, एक पैसा दे देते कम से कम। लेकिन पैसे का सिक्का बच्चा पहचानता है, रुपए के सिक्के का उसे कोई मतलब नहीं है, और सौ रुपए के नोट का कोई अर्थ नहीं है।
महावीर निकल रहे हैं एक रास्ते से, एक आदमी किनारे पर समझो लंगड़ा होकर पड़ा है। हम पैसे के सिक्के पहचानने वाले लोग हैं। अगर महावीर उतर जाएं और उसके पैर दबाएं तो हम एक फोटो निकाल लें, अखबार में छापें कि बड़ा अदभुत सेवक है। लेकिन महावीर निकलते वक्त और क्या उसको चुपचाप दान करते हुए चले गए हैं, वह हमें दिखाई नहीं पड़ सकता, उसको भी नहीं दिखाई पड़ सकता। वह जो, जो लंगड़ा पड़ा है किनारे, वह भी यह कहेगा, कैसा दुष्ट आदमी है कि मैं यहां लंगड़ा पड़ा हूं और वह चुपचाप चला जा रहा है।

लेकिन किसी के चुपचाप चलने में इतनी किरणें झर सकती हैं, इतनी तरंगें पैदा हो सकती हैं, इतना दान हो सकता है कि हाथ का महावीर उपयोग भी न करना चाहें। हाथ के उपयोग का कोई मतलब भी नहीं है। क्योंकि महावीर की गहरी से गहरी दृष्टि यह है कि जो शरीर नहीं है, उसे शरीर से कोई सहायता नहीं पहुंचाई जा सकती।
वह जो लंगड़ा पड़ा है, वह पैर से लंगड़ा है। लेकिन हमें ख्याल नहीं है इस बात का कि दुख पैर के लंगड़े होने से नहीं पहुंचता, दुख तो लंगड़ा हूं इस चित्त के भाव से, इस आत्म-भाव से पहुंचता है।
और जरूरी नहीं है कि उस लंगड़े का आप पैर ठीक कर दें तो कोई लाभ ही हो जाए, यह भी जरूरी नहीं है। महावीर के तल पर क्या जरूरी है, वह वे जानते हैं। जानने का मतलब यह है कि कितनी करुणा वे उस पर फेंक सकते हैं, वे फेंक कर चुपचाप गुजर जाएंगे। और यह भी क्या बात करनी कि कोई जाने कि करुणा किसने फेंकी!
मैंने सुना है कि एक सूफी फकीर को एक रात किसी फरिश्ते ने दर्शन दिए
और कहा कि परमात्मा बहुत खुश है और चाहता है कि तुम कुछ मांग लो, तो मैं वरदान दे दूं। पर उसने कहा कि जब परमात्मा खुश है तो इससे बड़ा और वरदान क्या हो सकता है? बात खतम हो गई। मिल गया सब, जो मिलना था। लेकिन उस फरिश्ते ने कहा, नहीं, ऐसे काम नहीं चलेगा। कुछ मांगो! कुछ भी मांगो!
पर उसने कहा कि अब कोई कमी ही न रही। जब परमात्मा खुश है, अब कमी क्या रही? और जब परमात्मा ही खुश हो गया तो अब खुशी ही खुशी है, अब दुख आएगा कहां से? तो अब मैं मांगूं क्या? अब मुझे भिखारी मत बनाओ, अब तो मैं सम्राट हो गया। क्योंकि जब परमात्मा मुझ पर खुश है तो अब मुझे भिखारी मत बनाओ, अब मुझे क्षमा कर दो, अब मुझे मांगने को मत कहो।
लेकिन फरिश्ता है कि नहीं मानता है। तो उसने कहा कि अब तुम नहीं मानते
हो तो तुम्हीं दे जाओ, मैं नहीं मांगूंगा। तुम्हें जो देना हो, दे जाओ। तो उस फरिश्ते ने कहा कि मैं तुम्हें यह वरदान देता हूं कि तुम जिसको छू दो, मरा हो तो जिंदा हो जाए, बीमार हो तो स्वस्थ हो जाए, वृक्ष सूख गया हो तो हरे पल्लव निकल आएं, हरे फूल निकल आएं। उसने कहा, वह देते हो तो वह तो ठीक; लेकिन सीधा मुझे मत दो। सीधा मुझे मत दो। कहीं ऐसा न हो कि मुझे लगने लगे कि मेरे हाथ से यह बीमार ठीक हुआ। सीधे मत दो। क्योंकि बीमार को तो फायदा पहुंच जाएगा, मुझे नुकसान पहुंच जाएगा।
तो उस फरिश्ते ने कहा, और क्या उपाय हो सकता है?
उस फकीर ने कहा कि मेरी छाया को दे दो, कि मैं जहां से निकलूं अगर छाया
पड़ जाए किसी वृक्ष पर और वह सूखा हो तो हरा हो जाए; लेकिन मुझे दिखाई भी न पड़े, क्योंकि मैं तब तक निकल ही चुका था। मैंने सूखा ही वृक्ष देखा था। मुझे पता भी नहीं चलेगा कि कब हरा हो गया। अगर किसी मरीज पर पड़ जाए, वह स्वस्थ हो जाए, लेकिन मुझे पता न चले। मुझे पता न चले, मैं इस झंझट में नहीं पड़ना चाहता। मैं मैं की झंझट में ही नहीं पड़ना चाहता।
फिर कहते हैं, उस फरिश्ते ने उसे वरदान दे दिया। फिर वह सूखे खेतों के पास से निकलता तो वे हरे हो जाते। और सूखे वृक्षों पर उसकी छाया पड़ जाती तो वर्षों के सूखे वृक्षों में पत्ते निकल आते। और बीमार ठीक हो जाते और मुर्दे जिंदा हो जाते, अंधों को आंख मिल जाती, बहरों को कान मिल जाते। यह सब उसके आस-पास घटित होने लगा, लेकिन उसे कभी पता नहीं चला। उसे पता चलने का कोई कारण न था, क्योंकि उसकी छाया से ये घटित होते थे। सीधा उसका कोई इनवाल्वमेंट, सीधा कुछ भी संबंध न था।
असल में जो परम स्थिति को उपलब्ध होते हैं, उनका होना मात्र करुणा है, उनकी मौजूदगी, प्रेजेंस मात्र। जो भी होता है, वह उनकी छाया से हो जाता है, उन्हें सीधा कुछ करना नहीं पड़ता। असल में जिनके पास वैसी छाया नहीं है, उन्हें सीधा कुछ करना पड़ता है। लेकिन वे पैसे के सिक्के हैं। हमें हिसाब मिल जाता है उनका कि इस आदमी ने कितनी सेवा की, कितने कोढ़ियों की मालिश की, कितने बीमारों का इलाज किया, कितने अस्पताल खोल कर पैर दबाए बीमारों के। ये बिल्कुल कौड़ियों की बातें हैं, इनका कोई भी मूल्य नहीं है बहुत गहरे में।

श्री अरविंद को आजादी के शुरू के दिनों में आंदोलन में वह अति आतुर थे, और शायद उनसे प्रतिभाशाली कोई व्यक्ति हिंदुस्तान की आजादी के आंदोलन में कभी नहीं था। लेकिन अचानक एक मुकदमे के बाद वे सब छोड़ कर चले गए। मित्र उन्हें घेरे हुए पहुंचे कि जिससे प्रेरणा मिलती थी, वह आदमी चला गया। जाकर अरविंद से कहा कि तो आप भाग आए? अरविंद ने कहा, मैं भाग नहीं आया। पैसे- कौड़ी का काम तुम्हीं कर लो, वह तुम कर सकोगे। मैं कुछ और बड़े काम में लगता हूं, जो मैं कर सकता हूं।
क्या काम आप बड़ा करोगे?
उन्होंने कहा, वह तुम उसकी चिंता मत करो।
और यह जान कर कठिनाई होती है हमें कि इस मुल्क में भारत की स्वतंत्रता
के लिए जितना काम अरविंद ने किया, उतना किसी ने भी नहीं किया। लेकिन भारत की स्वतंत्रता के इतिहास में अरविंद का नाम शायद ही लिखा जाए। क्योंकि कौड़ियों से हिसाब रखने वाले लोग, अरविंद ने जो किया, उसका कोई हिसाब नहीं रख सकते। वह आदमी चौबीस-चौबीस घंटे जाग कर सारे प्राणों से इस मुल्क को जिस भांति आंदोलित करने की चेष्टा कर रहा है, उसका हम कोई हिसाब नहीं रख सकते! कैसे रखेंगे?
यानी यह हो सकता है कि गांधी में जो बल है, वह बल अरविंद का है, लेकिन इसका हिसाब लगाना मुश्किल है। इसका हिसाब लगाना मुश्किल है। सुभाष में जो ताकत है, वह ताकत अरविंद की है। हिंदुस्तान की पूरे इस बगावत के और विद्रोह के और स्वतंत्रता के इतिहास में जो सबसे कीमती आदमी है वह कभी हिंदुस्तान की आजादी के इतिहास में उसका नाम उल्लेख नहीं होगा, यह पक्का मानो। लेकिन वह इस तल पर काम कर रहा है, जिस तल पर हमारी कोई पकड़ नहीं है। वह उन तरंगों को पैदा करने की कोशिश कर रहा है, जो मुल्क की सोई तंद्रा को तोड़ दें, जो विद्रोह के भाव को जगाएं, जो क्रांति की एक हवा लाएं। लेकिन हमें ख्याल में नहीं है।
और जिस दिन कभी हजार, दो हजार साल बाद विज्ञान समर्थ होगा इन सूक्ष्म तरंगों को पकड़ने में, शायद उस दिन हमें इतिहास बिल्कुल बदल कर लिखना पड़े। जो लोग हमें बहुत बड़े-बड़े दिखाई पड़ते हैं इतिहास में, वे दो कौड़ी के हो सकते हैं; और जिन्हें हम कभी नहीं गिनते थे, वे एकदम परम मूल्य पा सकते हैं। क्योंकि वह जब तक सिक्का, सौ रुपए का नोट पहचान में न आए, तब तक बड़ी कठिनाई है।
अब अभी वैज्ञानिक कहते हैं कि अगर एक फूल खिल रहा है... तो समझ लो एक फूल खिल रहा है, माली सुबह पानी डाल जाता है, खाद डाल देता है और घर चला जाता है। और एक संगीतज्ञ उसी के पास बैठ कर वीणा बजाता है। कल जब बड़े-बड़े फूल खिलें तो संगीतज्ञ को कौन धन्यवाद देने जाएगा? संगीतज्ञ से मतलब क्या है फूल का? माली को लोग पकड़ेंगे कि तूने इतना बड़ा फूल खिला दिया! तेरे खाद और पानी और तेरी सेवा ने!
लेकिन अब ध्वनि-शास्त्र कहता है कि माली कुछ भी क्या कर सकता है। उसके करने का कोई बड़ा मूल्य नहीं है। लेकिन अगर व्यवस्था से संगीत पैदा किया जाए तो फूल उतना बड़ा हो जाएगा, जितना कभी भी नहीं हुआ था। जितनी उसकी बीज की संभावना ही थी पूर्ण, मैक्जिमम; उतनी संभावना को प्रकट हो जाएगा। ऐसा संगीत भी बजाया जा सकता है कि फूल सिकुड़ कर छोटा रह जाए। अब वह सिर्फ ध्वनियों का खेल है।
जब ध्वनियां फूलों को बड़ा कर सकती हैं, तो कोई वजह नहीं कि विशिष्ट चित्त की तरंगें देश की चेतना को ऊपर उठाती हों; बगावत, स्वतंत्रता की गति पैदा करती हों। लेकिन हम उसे नहीं पहचान सकेंगे। हम कैसे पहचानेंगे?
अब ये रूस और अमरीका, दोनों के वैज्ञानिक इस चेष्टा में संलग्न हैं कि क्या इस तरह की ध्वनि-तरंगें पैदा की जा सकती हैं कि पूरे मुल्क में लिथार्जी छा जाए? और इसमें वे काफी दूर तक सफल होते चले जा रहे हैं। कोई कठिनाई नहीं है कि आने वाला युद्ध बमों का युद्ध ही न हो, वह सिर्फ ध्वनि- तरंगों का युद्ध हो, आलस्य छा जाए। यानी रूस के रेडियो स्टेशंस इस तरह की ध्वनि-लहरियां पूरे भारत पर फेंक दें कि पूरे भारत का आदमी एकदम आलस्य में पड़ जाए। यानी उसको कुछ लड़ने का सवाल ही न रहे, कोई भाव ही न रहे। सैनिक एकदम सो जाएं। और हमारी कुछ समझ में न आए कि यह क्या हो गया, या धीरे-धीरे

पहुंचाने पर हमें पता ही न चले कि यह कब हो गया। यह धीरे-धीरे होता चला जाए। और हमारे भीतर जो सक्रियता है, वह सारी की सारी छीन ली जा सके।
इस पर बड़ा काम चलता है। क्योंकि आखिर चारों तरफ ध्वनि की तरंगें हमें घेरे हुए हैं, उन पर निर्भर है कि हम क्या करें। लेकिन उससे भी गहरी तरंगें हैं, जिनका अभी विज्ञान को भी ठीक-ठीक पता नहीं हो पाता। उन तरंगों पर काम करने वाले लोग हैं।
महावीर ने कभी किसी की सेवा नहीं की और यह एक उनके ऊपर इल्जाम रहेगा। लेकिन तब तक यह इल्जाम रहेगा, जब तक हम पैसे के सिक्के पहचानते हैं। जिस दिन हम सौ रुपए के नोट पहचानना शुरू कर देंगे, उस दिन यह इल्जाम नहीं रह जाएगा। बल्कि हमको पता चलेगा जो पैर दबा रहे थे, वे इसीलिए दबा रहे थे कि और बड़ा कुछ वे नहीं कर सकते थे, इसलिए पैर दबा कर तृप्ति पा रहे थे। लेकिन पैर दबाने से होना क्या है?
महावीर की अहिंसा उस तल पर है, जिस तल पर सुख-दुख पहुंचाने का भाव भी विदा हो गया है, जहां सिर्फ महावीर जीते हैं--एक प्रेजेंस।
विज्ञान में इन्हीं तत्वों को कैटेलिटिक एजेंट कहते हैं। कैटेलिटिक एजेंट कहते हैं इन्हीं तत्वों को। ऐसे तत्वों को जिनकी मौजूदगी कुछ करती है, जो खुद कुछ नहीं करते हैं--कैटेलिस्ट। जो खुद कुछ करते ही नहीं, यानी जिनका कोई दान ही नहीं होता काम में, लेकिन जिनकी मौजूदगी के बिना भी कुछ नहीं हो सकता, जिनकी मौजूदगी से ही कुछ हो जाता है।
अब जैसे कि हाइड्रोजन और आक्सीजन, इन दोनों को आप पास ले जाएं तो वे मिलते नहीं, अलग-अलग ही रहे आते हैं, पानी नहीं बनता। लेकिन बीच से बिजली चमक जाए, वे दोनों मिल जाते हैं। और विज्ञान बहुत खोज करता है, बिजली की चमक कोई भी कांट्रिब्यूशन नहीं करती, उन दोनों के मिलाने में उसका कोई दान नहीं है, सिर्फ उसकी प्रेजेंस, उसकी मौजूदगी में बस वे मिल जाते हैं। उससे न कुछ जाता, न कुछ आता; न कुछ मिलता, न कुछ छूटता; बस वह मौजूद हो जाती है और वे मिल जाते हैं।
जिस भांति भौतिक तल पर कैटेलिटिक एजेंट हैं, कैटेलिस्ट हैं, हमारे ख्याल में नहीं है कि आध्यात्मिक तल पर भी कुछ लोगों ने उस स्थिति को छुआ है, जहां उनकी मौजूदगी सिर्फ काम करती है, जहां वे कुछ भी नहीं करते। यानी महावीर की मौजूदगी इतने काम कर देगी उस जगत में, जब वे मौजूद हैं उस लोक में, उस युग में, और महावीर कुछ भी नहीं करेंगे, वे सिर्फ हो जाएंगे, उनका होना काफी है। चेतना के तल पर उनकी मौजूदगी हजारों-लाखों चेतनाओं को जगा देगी, स्वस्थ कर देगी; यह सब हो जाएगा।
लेकिन अभी इसकी खोज-बीन होनी बाकी है वैज्ञानिक तल पर। आध्यात्मिक तल
पर तो खोज-बीन पुरानी है, पूरी हो चुकी है, लेकिन विज्ञान की भाषा में समझाया जा सके, यह कभी हमने सोचा ही नहीं है। इस तरफ हम कभी सोचते नहीं हैं। यह कभी आप सोचते ही नहीं हैं कि आप हर हालत में वही नहीं होते, आप हर उपस्थिति में बदल जाते हैं।
अगर आप मेरे सामने हैं तो आप वही आदमी नहीं हैं, जो घड़ी भर पहले थे; और मेरे सामने नहीं हैं तो आप वही आदमी नहीं होंगे, जो आप मेरे सामने थे। आपके भीतर कुछ ऐसा उठ आएगा, जो आपके भीतर कभी नहीं उठा था। और मैं उसमें कुछ भी नहीं कर रहा हूं। वह उठ सकता है, मौजूदगी में ही उठ सकता है।
तो बहुत गहरे तल पर काम करने वाले लोग हैं, बहुत गहरे तल पर सेवा है। लेकिन हम चूंकि पैसों के सिक्के पहचानते हैं, इसलिए कठिनाई हो जाती है। महावीर पर यह इल्जाम रहेगा, इसको अभी मिटाया नहीं जा सकता। लेकिन मैं मानता हूं कि जिस दिन यह मिटेगा, उस दिन जिनकी वजह से यह इल्जाम था, वे एकदम दो कौड़ी के हो जाने वाले हैं। और महावीर एक नए अर्थ में प्रकट होंगे, जिसका हिसाब लगाना अभी मुश्किल है।
अरविंद ने जरूर एक चेष्टा की है इस युग में, भारी चेष्टा की है, बड़ा श्रम उठाया है इस दिशा में, लेकिन उनको भी पहचानना मुश्किल पड़ता है और उनको भी साथ और सहयोग नहीं मिल पाता। यह हमारी कल्पना के ही बाहर है कि एक गांव में एक आदमी के हट जाने से पूरा गांव बदलता है। वह कुछ भी नहीं करता था आदमी, बस था, तो भी गांव बदलता है।

जबलपुर में एक फकीर थे--कल ही मौनू उनकी बात करती थी--एक फकीर थे मग्घा बाबा। तो वे ऐसे अदभुत आदमी हैं कि उनकी चोरी भी हो जाती है--उनकी! उन्हें कोई अगर उठा कर ले जाए तो वे चले जाते हैं! उनकी कई दफे चोरी हो चुकी है, वर्षों के लिए खो जाते हैं! क्योंकि कोई गांव उनको चुरा कर ले जाता है। क्योंकि उनकी मौजूदगी के भी परिणाम हैं। अभी वे दो साल से चोरी चले गए हैं। इधर दो साल से बड़ी मुश्किल हो गई है, उनका कोई पता नहीं चलता, कौन ले गया उनको उठा कर!
ऐसा कई दफा हो चुका है कि उनको किसी ने उठा कर गाड़ी में रख लिया तो वे
यह भी नहीं कहते कि क्या कर रहा है? वे यह भी नहीं कहते, वे बैठ जाते हैं। वे यह भी नहीं पूछते, कहां ले जा रहा है? काहे के लिए ले जा रहा है? यह सब बात ही नहीं करते वे।
मगर उनकी मौजूदगी के परिणाम हैं। और ये लोगों को पता चल गए हैं, तो उनको लोग चुरा कर ले जाते हैं। और जिस गांव में वे होते हैं, जिस घर में वे होते हैं, वहां की सब हवा बदल जाती है। और वे कुछ भी नहीं करते, वे पड़े रहते हैं, सोए रहते हैं ज्यादातर! न वे कुछ कभी बोलते, न कुछ चालते; लोग आकर उनकी सेवा करते रहते हैं। ऐसा अक्सर हो जाता कि उनको चौबीस घंटे ही नहीं सोने देते। क्योंकि उनके कोई पांव दबा ही रहे हैं दो-चार लोग।
एक दफे मैं रात उनके पास से गुजरा, कोई दो बजे रात थी, मैंने उनको कहा
तो उन्होंने मुझसे कहा कि मुझ पर कुछ कृपा करो, लोगों को समझाओ। चौबीस घंटे दबाते रहते हैं। और दो-चार आदमी इकट्ठे दबा रहे हैं! और वह बेचारा बूढ़ा आदमी लेटा है, कोई पैर दबा रहा है, कोई सिर दबा रहा है। क्योंकि उनकी सेवा का आनंद भी है और उनके पास होने का ही आनंद है। कोई जरूरत नहीं कि वे कुछ कहें। वे कभी आमतौर से बोलते नहीं। यह हमें ख्याल में ही नहीं है।
और इसलिए दूसरी बात भी जो किसी प्रश्न में पूछी है, वह मैं ले लूं, इससे संबंधित है, वह यह पूछी है कि जैसे जैनों के चौबीस तीर्थंकर--बहुत बड़ी तो विशाल पृथ्वी है, इस विशाल पृथ्वी पर इस छोटे से भारत में और इस छोटे से भारत में भी दो-तीन प्रदेशों में ही ये चौबीस तीर्थंकर क्यों हुए? ये हर कहीं क्यों नहीं हो गए?
ये हर कहीं नहीं हो सकते। क्योंकि प्रत्येक की मौजूदगी दूसरे के होने
की हवा पैदा करती है। यह चेन है। इसमें ऐसा नहीं है मामला, यानी इसमें वह जो एक मौजूद था, उसने उस क्षेत्र की, उस प्रदेश की, उस व्यवस्था की चेतना को एकदम ऊंचा उठा दिया। इस ऊंची उठी चेतना में ही दूसरा तीर्थंकर पैदा हो सकता है, एकशृंखला है उसमें।
और यह भी जान कर आप हैरान होंगे कि जब दुनिया में महापुरुष पैदा होते हैं, तो करीब-करीब एकशृंखला की तरह सारी पृथ्वी को घेरते हैं, और उसका कारण होता है चेन। जैसे कि समझें जरथुस्त्र, लाओत्से, मेंशियस, च्वांगत्से चीन में हुए--पांच सौ साल के घेरे में! महावीर, बुद्ध, गोशालक, अजित, संजय, ये सब हुए; पूर्ण, ये सब हुए; उसी पांच सौ वर्ष के बीच में बिहार में! सिर्फ बिहार में, छोटे से प्रदेश में! उन्हीं पांच सौ वर्षों में एथेंस में सुकरात, अरस्तू, प्लेटो--उन्हीं पांच सौ वर्षों में! इन पांच सौ वर्षों में सारी पृथ्वी पर एक चेन घूम गई।
क्योंकि जब एक... जैसे कि अब विज्ञान समझता है चेन एक्सप्लोजनः कि अगर
हम एक हाइड्रोजन बम के एटम को फोड़ दें तो उसकी गर्मी से पड़ोस का दूसरा हाइड्रोजन एटम फूट जाएगा; उसकी गर्मी से तीसरा; उसकी गर्मी से चौथा। और एक हाइड्रोजन बम के फूटने पर पृथ्वी नहीं बचेगी, क्योंकि चेन-एक्शन में सारे पृथ्वी के हाइड्रोजन एटम्स टूटने लगेंगे।
सूरज इसी तरह गर्मी दे रहा है। सिर्फ पहली दफा एक हाइड्रोजन एटम एक्सप्लोड हुआ होगा कभी, अरबों-खरबों वर्ष पहले। वह कैसे हुआ होगा, यह दूसरी बात है। वह भी हुआ होगा किसी बड़े तारे की मौजूदगी से, जो करीब से गुजर गया होगा। इतना गर्म रहा होगा वह तारा कि उसके करीब से गुजरने से एक एटम टूट गया होगा; उसके टूटने से उसके पड़ोस का एटम टूटा, उसके टूटने से उसके पड़ोस का। और तब से सूरज के आस-पास जो हीलियम गैस इकट्ठी है, उसके एटम्स टूटते चले जा रहे हैं। उन्हीं से हमको रोज गर्मी मिल रही है। और इसीलिए वैज्ञानिक कहते हैं कि चार हजार साल बाद सूरज ठंडा हो जाएगा।

क्योंकि अब जितने एटम्स बचे हैं, वे चार हजार साल में खतम हो जाएंगे। वह चेन एक्सप्लोजन चल रहा है।
जैसा पदार्थ के तल परशृंखलाबद्ध एक्सप्लोजन होता है कि इस मकान में
आग लग गई तो पड़ोस के मकान में आग लग जाए; पड़ोस के मकान में लग गई तो उसके पड़ोस में आग लग जाए। और हो सकता है यहां किसी ने एक दीया जलाया था और उस दीए से आग पकड़ गई और पूरा गांव जल जाए--चेन पकड़ जाए।
तो जब कभी एक्सप्लोजन होता है चेतना का तो चेन पकड़ जाती है एकदम। यानी
एक आदमी महावीर की कीमत का पैदा होता है तो वह संभावना पैदा कर देता है उस कीमत के सैकड़ों लोगों के पैदा होने की।
ऊपर से दिखता है कि बुद्ध और महावीर दुश्मन हैं, लेकिन महावीर के एक्सप्लोजन का फल हैं बुद्ध। फल इस अर्थों में कि अगर महावीर न हों तो बुद्ध का होना मुश्किल है। ऊपर से लगता है कि अजित, पूर्ण काश्यप, गोशालक, सब विरोधी हैं; लेकिन किसी को ख्याल नहीं है इस बात का कि वे सब एक ही चेन के हिस्से हैं। वह एक का एक्सप्लोजन जो हुआ है, तो हवा बन गई है, उसकी प्रेजेंस ने सारी चेतनाओं को इकट्ठा कर दिया है और आग पकड़ गई है। अब इस आग पकड़ने में जिनकी संभावना ज्यादा होगी, वे उतनी तीव्रता से फूट जाएंगे। इसलिए अक्सर ऐसा होता है कि एक युग में एक तरह के लोग सारी पृथ्वी पर पैदा हो जाते हैं। एक वक्त में, एक प्रदेश में एकदम से प्रतिभा प्रकट होती है। यह प्रतिभा के भी आंतरिक नियम और कारण हैं। तो चौबीस तीर्थंकरों का पैदा होना सीमित क्षेत्र में, वहीं-वहीं, एक ही देश में, उसका कारण है। उस तरह की प्रतिभा के एक्सप्लोजन के लिए, विस्फोट के लिए हवा चाहिए, इसलिए चेन।

प्रश्नः चेन में चौबीस ही क्यों होते हैं? पच्चीस नहीं होते, तीस नहीं होते?

हां, उसका भी कारण है। उसका कारण--संख्या से कुछ भी संबंध नहीं है। असल में पच्चीस होते हैं, छब्बीस होते हैं, सत्ताईस होते हैं, कितने ही हो सकते हैं, उसका कोई संबंध नहीं है।
लेकिन जब किसी चेन में एक बहुत प्रतिभाशाली व्यक्ति पैदा हो जाता है--
एक चेन में; यानी चौबीस तीर्थंकरों की चेन में महावीर सबसे ज्यादा प्रतिभाशाली व्यक्ति है। वह इतना प्रतिभाशाली है कि उसके आस-पास के लोगों को लगा कि अब किसी की कोई जरूरत नहीं है इस चेन में। परम बात हमें उपलब्ध हो गई है। जो जानना था, वह जान लिया गया है; जो पहचानना था, वह पहचान लिया गया है; जो कहना था, वह कह दिया गया है।
और अनुयायी तो हमेशा डरा होता है। वह डरा होता है कि अगर प्रतिभा के लिए आगे द्वार रखो खुले, तो प्रतिभा हमेशा विद्रोही है और प्रतिभा हमेशा अस्तव्यस्त कर देती है, अराजक है। तो अनुयायी भयभीत होता है, वह अपनी सिक्योरिटी के लिए व्यवस्था कर लेता है। वह कहता है, अब बस ठीक।

प्रश्नः बीस तलक क्या कम है?

हां, कम ही हैं। महावीर के मुकाबले कोई आदमी नहीं है। महावीर के मुकाबले कोई आदमी ही नहीं है उन चौबीस में ही। यह अकारण नहीं है कि महावीर केंद्र बन गए। यह अकारण नहीं है। उन चौबीस में महावीर के मुकाबले कोई आदमी नहीं है। ज्ञान तो वही उपलब्ध होता है सबको, लेकिन महावीर के बराबर टीचर नहीं है कोई, अभिव्यक्त नहीं कर पाता है कोई।

प्रश्नः समझा नहीं पाता?

समझा नहीं पाता है, खबर नहीं पहुंचा पाता है।

प्रश्नः आज की दुनिया में महावीर की प्रतिभा का कोई हो सकता है?

होता ही रहता है। वह तो अगर जैन मना कर देते हैं तो पच्चीसवां जो है,
वह नंबर एक बन जाता है किसी दूसरीशृंखला का। उसका कोई कारण नहीं है। अगर पच्चीसवां होता तो बुद्ध को अलगशृंखला की जरूरत न पड़ती, बुद्ध पच्चीसवें हो जाते।
कठिनाई जो है--कठिनाई जो है कि जब भी कोई परंपरा अपने अंतिम पुरुष को
पा लेती है, ऊंचाई से ऊंचाई, तो फिर वह उसके बाद दूसरों के लिए द्वार बंद कर देती है--स्वाभाविक रूप से, क्योंकि फिर उपद्रव वह नहीं लेना चाहती। क्योंकि नई प्रतिभा नया उपद्रव लाती है। इसलिए वह सुनिश्चित हो जाती है। वह कहती है, हमारी बात पूरी हो गई, हमारा शास्त्र पूरा हो गया, अब हमशृंखलाबद्ध हो जाते हैं, अब हम दूसरे को मौका नहीं देंगे। इसीलिए फिर वह जो पच्चीसवां--व्यक्ति तो निरंतर पैदा हो रहे हैं--उस पच्चीसवें को नईशृंखला का पहला होना पड़ता है। बुद्ध पच्चीसवें हो गए होते, कोई कारण न था, कोई बाधा न थी, अगर इन्होंने द्वार खुले रखे होते।
लेकिन एक और कारण हो गया कि बुद्ध मौजूद थे उसी वक्त और द्वार बंद कर देने एकदम जरूरी हो गया--अनुयायी को जरूरी हो गया। क्योंकि अगर बुद्ध आते हैं तो सब अस्तव्यस्त हो जाएगा। अस्तव्यस्त यह हो जाएगा कि बहुत कुछ जो महावीर कह रहे हैं, उसको अस्तव्यस्त कर देंगे, नई व्यवस्था देंगे। वह नई व्यवस्था मुश्किल में डाल देगी। इसलिए एकदम बुद्ध की मौजूदगी की वजह से एकदम दरवाजा बंद कर दिया कि चौबीस से ज्यादा हो ही नहीं सकते, और चौबीसवां हमारा हो चुका है।

प्रश्नः यह अनुयायियों ने किया?

अनुयायियों की व्यवस्था है सारी। अनुयायी बहुत भयभीत है, एकदम भयभीत है। समझ लें कि आप मुझे प्रेम करने लगे और मेरी बात आपको ठीक लगने लगे, तो आप एकदम दरवाजा बंद कर देंगे, क्योंकि आपको यह लगेगा कि दूसरा आदमी अगर आता है और फिर वह ये सब इनकी बातें गड़बड़ कर दे तो आपको पीड़ा होगी उससे। तो आप दरवाजा ही बंद कर देंगे कि बस, अब कोई जरूरत नहीं।
इसलिए मोहम्मद के बाद मुसलमानों ने दरवाजा बंद कर दिया! उनकीशृंखला में मोहम्मद अद्वितीय आदमी आ गया। जीसस के बाद ईसाइयों ने दरवाजा बंद कर दिया। जीसस के पहले बहुत पैगंबर हुए, लेकिन जीसस के बाद उन्होंने एकदम बंद कर दिया! यह जो बंद करना है... । बुद्ध के बाद बौद्धों ने बंद कर दिया, अब कोई बुद्ध पुरुष नहीं पैदा होगा। एक मैत्रेय की कल्पना चलती है कि कभी बुद्ध एक और अवतार लेंगे मैत्रेय का, लेकिन वह भी बुद्ध ही लेंगे, वह कोई दूसरा आदमी नहीं होने वाला है।

प्रश्नः हिंदुस्तान में अभी कोई आध्यात्मिक तल पर ऐसी कोई श्रृंखला रामकृष्ण, विवेकानंद या अरविंद, इनके जैसे व्यक्तियों की कोई श्रृंखला चल रही है? इन दो सौ, तीन सौ साल में ऐसा कोई हुआ है?

हां, यहां सबसे ज्यादा प्रभावशाली आदमी इन दो-तीन सौ वर्षों में रमण
और कृष्णमूर्ति हैं पीछे। लेकिन न तो रमण के पीछेशृंखला बन सकी, और कृष्णमूर्ति के पीछे भी नहीं बनेगी। कृष्णमूर्ति बनाने के विरोध में हैं। और रमण के पीछे बन नहीं सकी। उस कीमत का आदमी नहीं मिला जो बढ़ा सके आगे बात को या कुछ जोड़ दे सके। रामकृष्ण को विवेकानंद मिले। विवेकानंद बहुत शक्तिशाली व्यक्ति हैं, अनुभवी नहीं हैं। तो शक्तिशाली होने की वजह से उन्होंने चक्र तो चला दिया, लेकिन चक्र में ज्यादा जान नहीं है, इसलिए वह जाने वाला नहीं है। रामकृष्ण बहुत अनुभवी हैं, लेकिन टीचर होने की, तीर्थंकर होने की कोई स्थिति उनकी नहीं है। शिक्षक वे नहीं हो सकते। इसलिए पहली दफा... ऐसा कई दफा होता है कि जब कोई व्यक्ति शिक्षक नहीं
हो सकता तो वह दूसरे व्यक्ति के कंधे पर रख कर शिक्षण का काम करता है। तो रामकृष्ण ने विवेकानंद के कंधे पर रख कर हाथ शिक्षण का काम विवेकानंद से ले लिया है।

लेकिन गड़बड़ हो गई। गड़बड़ यह हो गई कि रामकृष्ण अपने आप शिक्षक हो नहीं सकते, वह संभावना ही नहीं है। और विवेकानंद अनुभवी नहीं हैं, इसलिए विवेकानंद माऊथपीस हो गए रामकृष्ण के। और विवेकानंद ने जो कहा, उससे रामकृष्ण का कौड़ी भर संबंध नहीं है। बहुत गड़बड़ हो गई। इतना अस्तव्यस्त हो गया सब मामला।
और फिर रामकृष्ण की मृत्यु हो गई, फिर विवेकानंद रह गए। और विवेकानंद
ने जो शक्ल दे दी उस पूरी व्यवस्था को, वह विवेकानंद की है। विवेकानंद एक बहुत बड़े आर्गनाइजर हैं, बड़े व्यवस्थापक हैं। अगर विवेकानंद का ही अनुभव होता खुद, तो एक चेन शुरू हो जाती, लेकिन वह नहीं हो सकी। क्योंकि विवेकानंद का खुद का कोई अनुभव नहीं है और जिसका अनुभव है, वह व्यवस्थापक नहीं है! वह टूट गई।
रमण के साथ हो सकती थी घटना, क्योंकि उसी कीमत के आदमी हैं, जिसके बुद्ध या महावीर; लेकिन वह नहीं हो सका, क्योंकि कोई आदमी नहीं उपलब्ध हो सका। कृष्णमूर्ति उसके विरोध में हैं, इसलिए कोई सवाल उठता नहीं।

प्रश्नः पश्चिम में है कि नहीं चेन?

पश्चिम में भी चेन है, पश्चिम में भी फकीरों की चेन है। जैसे जीसस की चेन चली थोड़े दिन तक, फिर उस चेन का द्वार बंद हो गया। उसके बाद दूसरी चेन चली।

प्रश्नः आज इन सौ, दो सौ वर्षों में कोई नाम है पश्चिम में।

हां, हां, अभी है न! जैसे एकहार्ट जर्मनी में हुआ, तो अदभुत कीमत का आदमी हुआ, लेकिन शिक्षक नहीं है। हजार संभावनाएं इकट्ठी हों, तब कहीं एक चेन गति पकड़ती है; नहीं तो नहीं पकड़ती। एकहार्ट बहुत कीमत का आदमी है, जीसस की कीमत का आदमी है; लेकिन चेन नहीं पकड़ सकी, क्योंकि वह कोई शिक्षक नहीं है। वह बातें कहता है, वे बेबूझ हो जाती हैं, वह समझा नहीं पाता।
और बातें बेबूझ हैं। समझाने की बहुत समझ न हो तो उनको समझाया ही नहीं
जा सकता। एकदम कंट्राडिक्टरी बातें हैं, बहुत समझ हो तो ही उनके कंट्राडिक्शंस को मिटाया जा सकता है और समझ के करीब लाया जा सकता है। बोहमे हुआ जर्मनी में, वह भी चेन बन सकता था, लेकिन नहीं बन सका।
कैथलिक चेन कुछ अर्थों में जिंदा धीरे-धीरे चल रही है; लेकिन कोई बहुत प्रतिभाशाली व्यक्ति नहीं है जो कि उसको गति दे सके।
सब चेन धीरे-धीरे मर जाती हैं। जैसे जापान में झेन की चेन चलती है, उसमें अभी भी एक प्रतिभाशाली आदमी था सुजुकी, लेकिन वह मर गया। उसने बड़ी कोशिश की कि वह गति दे दे, लेकिन वह गति नहीं हो पाई।
और फिर होता क्या है, कठिनाई क्या होती है? जब कोई महापुरुष एकशृंखला
को जन्म दे जाता है तो अगर उसके पास बहुत छोटे-मोटे लोग इकट्ठे हो जाएं और वे उसके दावेदार हो जाएं तो दोहरा नुकसान पहुंचता है। वे तो खुद चला नहीं सकते कुछ, सिर्फ मार सकते हैं। दूसरा नुकसान यह पहुंचता है कि कोई अगर प्रतिभाशाली व्यक्ति उस चेन में पैदा भी हो जाए तो उसे चेन के बाहर कर देते हैं वे फौरन! वह जो नासमझों की भीड़ है, वह उसे एकदम बाहर कर देती है! असल में जीसस यहूदी चेन का हिस्सा हो सकता था। तो यहूदियों के तीर्थंकर हुए हैं बहुत अदभुत। खुद जॉन था, जिसने जीसस को बपतिस्मा दिया। वह बड़ा कीमती व्यक्ति था, जीसस की कीमत का आदमी था। और उसने जीसस को निकट लेकर सत्संग दिया। लेकिन यहूदी भीड़ जीसस को बरदाश्त नहीं कर सकी, इतने कीमती आदमी को। तो उसने, भीड़ ने बाहर कर दिया उनको। इसलिए यहूदियों का बेटा यहूदियों के बाहर हो गया और ईसाइयत शुरू हो गई!
ईसाइयत--अब ईसाइयत के बीच जो भी कीमती आदमी पैदा होता है, ईसाइयत उसको बाहर कर देती है फौरन! होता क्या है कि वह जो भीड़ नासमझों की इकट्ठी हो जाती है, वह फिर किसी प्रतिभा को बरदाश्त नहीं करती। और जो प्रतिभा चेन को जिंदा रख सकती है, उसको वह बाहर कर देती है, तब नई चेनें शुरू हो जाती हैं।

ऐसे दुनिया में कोई पचास चेन चली हैं, मरी हैं। थोड़ा-बहुत चलती हैं, टूटती हैं, मिट जाती हैं।
और इसलिए मेरा कहना है कि दुनिया को जितना आध्यात्मिक लाभ पहुंच सकता
था इन सबसे, वह नहीं पहुंच पाया। और अब हमें चाहिए कि हम सारी व्यवस्था तोड़ दें संप्रदाय की, ताकि प्रतिभा को बाहर निकालने का उपाय भी न रह जाए कहीं से भी। वह निकालने की बात ही नहीं रह जाती।
अब जैसे मैं मानता हूं कि किसी भी, किसी भी--जैसे थियोसाफी की चेन थी; बड़ी कीमती चेन थी, उसे ब्लावट्स्की ने शुरू किया और कृष्णमूर्ति तक वह आई। लेकिन कृष्णमूर्ति इतने ज्यादा बोल्ड साबित हुए, इतने साहसी, कि थियोसाफिस्ट ही बरदाश्त नहीं कर सके! तो थियोसाफिस्टों ने तो बाहर कृष्णमूर्ति को कर दिया! थियोसाफिस्ट चेन मर गई। वह मर गई इसलिए कि जो कीमती आदमी उसको आगे गति दे सकता था, उसको तो बाहर निकाल दिया।
अगर दुनिया से संप्रदाय मिट जाएं, सीमाएं मिट जाएं, तो विस्फोट ज्यादा व्यापक हो सकता है। विस्फोट छू नहीं पाता। जैसे समझो, इस मकान में आग लगी है तो पड़ोस के मकान में इसीलिए आग लग सकती है कि वह इससे जुड़ा हुआ है, और अगर बीच में एक गली है तो नहीं लग सकती--गैप है बीच में। अब अगर रमण पैदा भी हो जाएं तो ईसाई से उनका कोई संबंध नहीं जुड़ता, क्योंकि एक गैप है, मकान अलग-अलग ही हैं।
तो चेन बहुत दफे पैदा होती है,शृंखला आग की, लेकिन अलग-अलग टुकड़े बना
कर रखे हुए हैं, वह उसी में भटक कर मर जाती है, बाहर जाने का उपाय नहीं। और दुबारा अगर कोई प्रतिभाशाली व्यक्ति हो तो वह खुद ही भीड़ जो है घरों की, वह उसे निकाल बाहर कर देती है कि हमारे घरों में इसे रहने नहीं देना, यह आग लगवा देगा। और उसको फिर नया घर बनाना पड़ता है। और नया घर मुश्किल पड़ता है। मुश्किल पड़ने का मतलब यह होता है कि वह मुश्किल से जिंदगी भर में थोड़े- बहुत लोग इकट्ठे कर पाता है, और फिर उसके साथ यही होता है।
तो अब तक आध्यात्मिक जगत में जो नुकसान पहुंचता रहा है मनुष्य को, वह इसलिए पहुंचता रहा है कि संप्रदाय हैं, सीमाएं हैं--वे बहुत सख्त और मजबूत हो जाती हैं। पच्चीसवां तीर्थंकर पैदा हो सकता है निरंतर, इसमें कोई कठिनाई नहीं है। छब्बीसवां होगा, इसमें कोई सवाल ही नहीं है। कोई सीमा नहीं है, कोई संख्या नहीं है।

प्रश्नः महावीर का कुछ काम बाकी रहे, तब पच्चीसवां होगा?

काम तो खतम होता ही नहीं यहां। महावीर का थोड़े ही कोई काम है! महावीर
का कोई काम नहीं है। काम तो यहां अज्ञान और ज्ञान की लड़ाई का है। काम तो यहां मूर्च्छा और अमूर्च्छा का है। महावीर का थोड़े ही कोई काम है।

प्रश्नः मोहमडंस में भी हुए हैं मोहम्मद के बाद?

हां न! मोहम्मद के बाद बहुत लोग हुए, लेकिन उनको निकाल दिया मुसलमानों
ने बाहर। जैसे बायजीद हुआ, बाहर निकाल दिया फौरन! जैसे कि मंसूर हुआ, तो गर्दन उड़ा दी उसकी! तो मोहम्मद के बाद जो भी कीमती आदमी हुए, वह अलग हिस्सा हो गया सूफियों का। वह एक अलग ही टुकड़ा हो गया, वह उसको, उसको मुसलमान फिक्र नहीं करता उसके मानने की! वह उसको फौरन अलग कर देंगे। वह कीमती जो आदमी हुआ, वह अलग हो जाएगा।
और फिर सूफियों में भी सिलसिले बढ़ते चले जाएंगे! जैसे कि मंसूर हुआ तो मंसूर को जो मानने वाला है, वह अगर उसके बीच में कोई आदमी पैदा हुआ जो मंसूर... ।

प्रश्नः सूफी किसे कहते हैं?

सूफी मुसलमानों के बीच में क्रांतिकारी रहस्यवादियों का वर्ग है। जैसे कि बौद्धों में झेन फकीरों का वर्ग है, ऐसा वह वर्ग है। जैसे

यहूदियों में हसीद फकीरों का वर्ग है। ये सब बगावती लोग हैं, जो परंपरा में पैदा होते हैं, लेकिन इतने कीमती हैं कि उनको बगावत करनी पड़ती है।
अब जैसे कि मोहम्मद के पीछे नियम बना कि एक ही अल्लाह है और उस अल्लाह
का एक ही पैगंबर है मोहम्मद। सूफियों ने कहा कि एक ही अल्लाह है, यह तो बिल्कुल सच है; लेकिन एक ही पैगंबर नहीं है मोहम्मद, पैगंबर हजार हैं।
बस झगड़ा शुरू हो गया। सूफियों ने कहा, पैगंबर हजार हैं, पैगंबरों की क्या गिनती है! यानी ईश्वर एक है, यह तो ठीक है। तो मुसलमान जब मस्जिद में नमाज पढ़ता है तो वह कहता है, एक ही परमात्मा है और एक ही उसका पैगंबर, मोहम्मद। सूफी भी मस्जिद में नमाज पढ़ता है, लेकिन वह कहता है, एक ही परमात्मा है, लेकिन पैगंबर तो हजार हैं। यानी पैगंबर का क्या हिसाब है? संदेश लाने वाले तो हजार हैं।
लेकिन यह मुसलमान इसको बरदाश्त नहीं कर सकता। क्योंकि यह कहता है, महावीर भी ठीक, बुद्ध भी ठीक, जीसस भी ठीक, ये सभी पैगंबर हैं! इसमें कोई बाधा नहीं है। एक की ही खबर लाने वाले ये अनेक लोग हैं। मगर यह मुसलमान की बरदाश्त के बाहर है।
अभी मैंने एक किताब, कोई एक मेरा वक्तव्य था, वह छपा। तो उसमें मैं महावीर के साथ मोहम्मद और ईसा का नाम लिया। तो एक बड़े जैन मुनि हैं, जिनके बहुत भक्त हैं, उनको वह किताब किसी ने दी तो उन्होंने उसे उठा कर फेंक दिया और कहा कि मोहम्मद का नाम और महावीर के साथ? कहां मोहम्मद और कहां महावीर! महावीर सर्वज्ञ, तीर्थंकर और मोहम्मद साधारण अज्ञानी! कहां इसका मेल बिठालते हैं! दोनों का नाम साथ ले दिया, यही पाप हो गया! फिर उन्होंने कहा, इसको मैं पढ़ ही नहीं सकता आगे।
तो वही मोहम्मद का मानने वाला भी कहेगा न कि महावीर का नाम मोहम्मद के साथ ले दिया? कहां मोहम्मद पैगंबर और कहां महावीर! क्या रखा है महावीर में?
तो वह जो सूफी कहेगा कि सब पैगंबर उसी के, वह बरदाश्त के बाहर हो जाएगा।
अज्ञानियों की भीड़ में ज्ञान सदा बरदाश्त के बाहर है, इसलिए कठिनाई
हो जाती है।
औरशृंखलाएं चलती हैं और मर जाती हैं। अब तक कोईशृंखला ऐसी नहीं बन पाई... ।

प्रश्नः आप जो कहते हैं कि जीसस क्राइस्ट, कृष्ण, मोहम्मद, इन सबका नाम साथ में ले रहे हैं तो आपका मानना यह है कि सबकी चेतना सरीखी है, या सब कौमों को साथ में करना है इसलिए आप कहते हैं?

नहीं, नहीं, सबको साथ करना ही नहीं है, सबकी सरीखी है, वे साथ हैं ही।

प्रश्नः चेतनाएं सबकी सरीखी हैं?

बिल्कुल सरीखी हैं, साथ करने का सवाल ही नहीं है। साथ करके भी क्या फर्क... ?

प्रश्नः सबको साथ करने के लिए आप नाम नहीं लेते?

जरा भी नहीं, जरा भी नहीं। उनकी चेतना बिल्कुल सरीखी है।

प्रश्नः अभिव्यक्ति सबकी अलग-अलग है?

अभिव्यक्ति बिल्कुल अलग-अलग है, होने ही वाली है। मोहम्मद मोहम्मद हैं, महावीर महावीर हैं, अभिव्यक्ति अलग-अलग होगी। मोहम्मद जो बोलेंगे, वह मोहम्मद का बोलना है, अपनी भाषा होगी, अपनी परंपरा के शब्द होंगे। महावीर की अपनी भाषा होगी, अपनी परंपरा के शब्द होंगे। अभिव्यक्ति अलग-अलग होगी, अनुभूति बिल्कुल एक है।

प्रश्नः सबकी एक-एक अभिव्यक्ति है, तो उनके सुनने वाले वही साधना में
लग जाते हैं। आपकी तो सब अभिव्यक्तियां अलग-अलग हैं, तो आपके सुनने वालों का क्या होगा?

हूं! सुनने वालों को बड़ी कठिनाई है मेरे। मेरे सुनने वालों को बड़ी कठिनाई है। क्योंकि अगर मैं कोई एक ही बात कहता, तब तो बहुत आसान था मेरे पीछे चलना।
एक तो पहली बात, मैं पीछे नहीं चलाना चाहता, तो जरूरत ही नहीं पीछे चलने की मेरे।
दूसरी बात यह है कि मैं चीजों को इतना आसान भी नहीं बना देना चाहता, जितनी कि आसान बना कर नुकसान हुआ है। संप्रदाय इसीलिए बने हैं।
तो मैं तो उन सारी धाराओं की बात करूंगा और उन सारे नियमों की बात करूंगा, उन सारी पद्धतियों की, उन सारे रास्तों की जो मनुष्य ने कभी भी अख्तियार किए हैं। शायद इस तरह की कोशिश कभी भी नहीं की गई।
रामकृष्ण ने थोड़ी सी कोशिश की थी, लेकिन रामकृष्ण समझाने में बिल्कुल असमर्थ थे। तो रामकृष्ण ने सभी साधना-पद्धतियों का प्रयोग किया और इस नतीजे पर पहुंचे कि सब रास्ते अलग हैं, पहाड़ की चोटी पर सब एक हो जाते हैं। लेकिन उनके पास कोई नहीं था उपाय कि वे इसको कह सकते। फिर उन्होंने जो साधना-पद्धतियां भी अख्तियार की थीं, वे भी बंगाल में जो उन्हें उपलब्ध थीं; सारे जगत के बाबत उनका विचार भी उतना विस्तीर्ण नहीं था।
मैं तो एक प्रयोग करना ही चाहता हूं कि सारी दुनिया में अब तक जो भी किया गया है परम जीवन के पाने की दिशा में, उस सबकी सार्थकता को एक साथ इकट्ठा ले आऊं। निश्चित ही मैं कोई संप्रदाय नहीं बना सकता। लेकिन मैं चाहता ही हूं कि संप्रदाय मिट जाएं। मैं अनुयायी भी नहीं बना सकता, क्योंकि मैं चाहता ही हूं कि अनुयायी हो ही न।
चाह मेरी यह है कि मनुष्य ने जो अब तक खोजा है और जो इस तरह बिखर गया है
और ऐसा मालूम होता है कि उलटा बिखर गया है, वह एकदम निकट आ जाए। इसलिए मेरी बातों में बहुत बार विरोधाभास मिलेंगे, क्योंकि मैं कभी किसी मार्ग की बात जब कर रहा होता हूं तो उस मार्ग की बात कर रहा होता हूं; जब दूसरे मार्ग की बात कर रहा होता हूं तो उस मार्ग की बात कर रहा होता हूं।
और इन दोनों मार्गों पर अलग-अलग वृक्ष मिलते हैं, अलग-अलग चौराहे मिलते हैं, इन दोनों मार्गों पर अलग-अलग मंदिर का आवास है, इन दोनों मार्गों पर अलग-अलग रास्ते की अनुभूतियां हैं। अलग-अलग रास्ते की अनुभूतियां अलग-अलग हैं, परम अनुभूति समान है।
तो वह तो मैं जिंदगी भर जब बोलता रहूंगा, धीरे-धीरे जब तुम्हें सब साफ
हो जाएगा कि मैं हजार रास्तों की बातें कर रहा हूं, तब तुम्हें ख्याल में आएगा। और फिर तुम्हें जो ठीक लगे रास्ता, उससे तुम चले जाना। लेकिन एक फर्क पड़ेगा--मेरी बात सोच कर, समझ कर जो गति करेगा उसे एक फर्क पड़ेगा--कि वह किसी भी रास्ते पर जाए, जो उसे अनुकूल हो; लेकिन वह दूसरे की दुश्मनी की बात नहीं करेगा। क्योंकि वह इतना ही कहेगा कि यह मेरे लिए अनुकूल है। यही रास्ता सत्य है, ऐसा नहीं--यह रास्ता मेरे लिए अनुकूल है, इतना ही सत्य है। पड़ोसी के लिए दूसरा रास्ता अनुकूल हो सकता है।
तब यह हो सकता है कि पति फकीर, मुसलमान, सूफियों को मानता हो; पत्नी मीरा के रास्ते पर जाती हो; बेटा हिंदू हो कि जैन हो कि बौद्ध हो। तब एक परम स्वतंत्रता हो रास्तों की। और हर घर में रास्तों के बाबत थोड़ा सा परिचय हो, ताकि प्रत्येक व्यक्ति अपने लिए रास्ता चुन सके कि उसके लिए क्या उचित हो सकता है, उसके अनुकूल क्या हो सकता है।
अभी क्या कठिनाई है--एक आदमी जैन घर में पैदा हो जाता है और हो सकता है महावीर का रास्ता उसके लिए अनुकूल ही नहीं है; बिल्कुल ही अनुकूल नहीं है और वह कभी कृष्ण के रास्ते पर नहीं जाएगा, जो कि उसके लिए अनुकूल हो सकता था! एक आदमी कृष्ण के मानने वाले घर में पैदा हो गया तो वह महावीर के बाबत कभी सोचेगा ही नहीं! और हो सकता है, उसे कृष्ण का रास्ता बिल्कुल अनुकूल न हो और वह महावीर के रास्ते से जा सकता था।

तो मेरा काम ही यह है, इतना भी काम अगर पूरी जिंदगी में हो जाए कि मैं सारे रास्तों को निकट खड़ा कर सकूं, एक पर्सपेक्टिव में, एक दृष्टि में वे दिखाई पड़ने लगें, एक झलक में आदमी उन्हें देख सके, पहचान सके और निष्पक्ष होकर सोच सके और फिर अपनी स्थिति के साथ तौल कर सके कि कौन सा रास्ता मेरे लिए है! लेकिन तब वह दूसरे की दुश्मनी नहीं है।
तुमने जो कपड़े पहने हुए हैं, वह तुम्हारी मौज है... ।

प्रश्नः रास्तों का भी विश्लेषण किसी वक्त करें!

करना है, जरूर करना है, जरूर करना है। ऐसे तो होते ही चला जाता है। अब जैसे महावीर की मैंने बात की तो इसमें महावीर के रास्ते का पूरा विश्लेषण हो जाएगा। कल मोहम्मद की बात करूंगा तो उनका हो जाएगा। परसों क्राइस्ट की बात करूंगा तो उनका हो जाएगा। कृष्ण की करूंगा तो उनका हो जाएगा। वह होता चला जाएगा। व्यक्तियों को चुन कर भी मैं बात कर लेना चाहता हूं और फिर शास्त्र को चुन कर भी बात कर लेना चाहता हूं। जैसे गीता को, कुरान को, बाइबिल को--उनको भी चुन कर बात कर लेना चाहता हूं।
अगर एक पूरी जिंदगी में इतना भी काम हो सके तो बड़ा तृप्तिदायी है।

प्रश्नः तब तो एक निवेदन है!

हां।

प्रश्नः क्योंकि जिंदगी सीमित है, आप इस जिंदगी के बारे में जानते हैं कि कितने दिन आपको रहना है। कहीं ऐसा न हो कि जो कुछ आप सोच रहे हैं, वह अधूरा रह जाए। तो इसे किसी दूसरे को देने वाली बात भी आपके ध्यान में रहनी चाहिए।

यह तो आप ठीक कहते हैं। यह तो आप ठीक कहते हैं। यह भी बात ठीक है कि जिंदगी का कोई भरोसा नहीं। और यह भी बात ठीक है कि इतना बड़ा काम है, उसे एक आदमी जिंदगी में कर पाए, न कर पाए। भरोसा एक ही है कि काम में मेरा कोई स्वार्थ नहीं है, अगर जिंदगी की मर्जी होगी तो पूरा काम ले लेगी, मर्जी नहीं होगी तो नहीं लेगी। यानी उसकी मुझे कोई जिद्द भी नहीं कि वह पूरा होना ही चाहिए। इसमें जिद्द की भी क्या बात है? वह पूरा होना ही चाहिए, यह भी कोई बात नहीं है।
और आप जो कहते हैं, वह ठीक ही कहते हैं; पर वह भी इन्हीं लोगों में से धीरे-धीरे जो मेरे करीब आते हैं, वे लोग खड़े हो सकेंगे जो थोड़ी साधना में गति करें, तो निश्चित ही उनसे काम लिया जा सकता है--उनसे काम लिया जा सकता है। और वह भी जिंदगी को लेना होगा तो ही।
उसको भी, उसको भी मेरे मन में कल के लिए भी हिसाब नहीं है। यानी जब आप मुझसे बात करते हैं तो मैं कहता हूं, लेकिन मेरे मन में कल का भी हिसाब नहीं है। कल आएगा तो जो काम जिंदगी को लेना होगा, वह ले लेगी। और नहीं लेना होगा तो ठीक है, कल नहीं आएगा। इसमें मेरा कोई आग्रह जरा भी नहीं है। इसलिए अत्यंत निश्चिंत हूं। कोई तनाव भी नहीं है उसका।
अब जैसे महावीर के संबंध में यह कह रहा हूं, यह मैं कभी बैठ कर सोचा नहीं हूं। आप से बात हो रही है तो सोचता चलता हूं। कल क्राइस्ट के बाबत क्या कहूंगा, मुझे खुद पता नहीं है, सोचता चलूंगा। इधर मेरी अपनी भीतरी जो स्थिति है, वह यह है कि बिल्कुल छोड़ा हुआ हूं, और जहां परमात्मा ले जाए, जहां बहा दे और जो करवा ले। और न करवाना हो तो उसकी मर्जी है, उसमें भी मेरी तरफ से कोई, कोई आग्रह नहीं किसी तरह का। और उसे काम लेना होता है तो वह हजार तरह से काम ले लेता है। उसके उपयोग का है तो हजार तरह से वह पूरा करवा लेता है।
और आप जो कहते हैं, वह भी ठीक कहते हैं, कुछ लोग तैयार भी करवा ले सकता है। वह भी उसके ही हाथ की बात है।
एकाध प्रश्न और कर लें।

प्रश्नः आपने कहा कि इसलिए कि श्रृंखला नहीं चले तथा संप्रदाय ही न रहे, तो आपका जो कहना है कि मैं हर धर्म को आपके सामने पेश करूंगा। तो इससे संप्रदाय तो खड़ा रहेगा--जो हर धर्म का आदमी नए ढंग से पकड़ेगा और उसमें हर धर्म वाले आदमी होंगे। आप ऐसा क्यों नहीं सोचते कि सब धर्म का कोई एक नया स्वरूप आ जाए?

अपने आप आ जाएगा।

प्रश्नः इस पर आप जोर क्यों नहीं देते?

अपने आप आ जाएगा। अगर हम, सब धर्मों को समझने की सदबुद्धि हममें आ जाए
तो अपने आप आ जाएगा, उस पर जोर देने की जरूरत नहीं है। यानी अभी तक जो झगड़ा है, वह इसी बात का है कि प्रत्येक धर्म वाला समझता है कि सत्य का मेरा ठेका है और बाकी सब असत्य हैं। अगर मैं सबके भीतर सत्य को तुम्हें बता सकूं तो यह बात टूट जाती है, इसको जोर देने की जरूरत नहीं है। यह तो तुम, सुनते- सुनते टूट जाएगी। सुनते-सुनते तुम उस जगह पहुंच जाओगे कि तुम्हें कहना मुश्किल हो जाएगा कि मैं हिंदू हूं, कि मैं मुसलमान हूं, कि ईसाई हूं।
अगर तुम सुनते-सुनते न पहुंच जाओ और मुझे जोर देना पड़े तो वह जोर तो जबरदस्ती हो जाएगी। यानी मेरा कहना यह है कि अगर मेरी बात सुनते-सुनते ही तुम कहीं पहुंच गए तो ठीक, अब पीछे से जोर भी देना पड़े, तो फिर तो ठीक नहीं है।

प्रश्नः आपके तरीके से तो ठीक है यह, मगर भविष्य में आदमी इस बाजू कनवर्ट हो जाए... ।

किस बाजू?

प्रश्नः ये बाजू--संप्रदाय के बाजू। नए ढंग से पकड़े तो आपका कहना ठीक है, आप उस स्टेज तक सोच सकते हैं... ।

नए ढंग से पकड़ा ही अगर, तो नया ढंग क्या है मेरा, कि पकड़े न। समझे न मेरी बात? यानी मेरा कहना यह है कि जब तक पकड़ता है, तब तक पुराना ढंग है, नहीं पकड़ता तो ही नया ढंग है। और मेरी बात सुनते-सुनते उसकी पकड़ छूट जाए, क्लिंगिंग छूट जाए, तो बात खतम हो गई।
भय तो सदा है। जो तुम कहते हो, भय तो सदा है। भय इसलिए सदा है कि लोग भयभीत हैं, और कोई कारण नहीं है। तो उनको सब जगह भय दिख जाता है। भय चित्त में है तो सब जगह भय दिखता है, भय चित्त में न हो तो फिर कहीं भय नहीं दिखता।

प्रश्नः क्या मनुष्य-उपयोगी दृष्टि से पशु-हिंसा न्यायसंगत है?

हूं, यह प्रश्न बहुत बढ़िया है। क्या मनुष्य-उपयोगी दृष्टि से पशु- हिंसा न्यायसंगत है?
सिर्फ मनुष्य-उपयोगी दृष्टि से ही न्यायसंगत नहीं है, और सब दृष्टि
से न्यायसंगत हो सकती है। पशु-हिंसा जो है वह सिर्फ मनुष्य-उपयोगी दृष्टि से ही न्यायसंगत नहीं है, बाकी सब दृष्टि से न्यायसंगत है।
इसलिए मनुष्य से नीचे के तलों पर हम पशु-हिंसा को अन्याय नहीं कहते और
न कह सकते हैं। उस तल पर जीवन ही सब कुछ है और जीवन के लिए जो भी किया जा रहा है, वह सब ठीक है।
पशु और मनुष्य में फर्क ही क्या है? पशु और मनुष्य में फर्क एक ही है
कि मनुष्य सचेत हुआ है, जाग्रत हुआ है, स्वचेतन हुआ है, सेल्फ-कांशस हुआ है। उसने चीजों में देखना शुरू किया है। उसके लिए भोजन इतना महत्वपूर्ण नहीं है, जितना भोजन का साधन महत्वपूर्ण है। एक बार वह भोजन से चूक सकता

है, लेकिन मनुष्यता से नहीं चूक सकता। मनुष्य होने का मतलब यह है कि मनुष्यता कुछ इतनी कीमती चीज हो गई है... ।
मैंने एक कहानी पढ़ी है, हिंदुस्तान-पाकिस्तान का बंटवारा हुआ। एक गांव में उपद्रव हो गया, दंगा हो गया। एक परिवार भागा। पति है, उसकी पत्नी है, एक बच्चा साथ है। दो बच्चे कहीं खो गए। गाएं थीं, भैंसें थीं, वे सब खो गईं, सिर्फ एक गाय साथ में बचा पाए। लेकिन उस गाय का छोटा बछड़ा था, वह भी खो गया। वे सब जंगल में छिपे हैं। दुश्मन हैं आस-पास, मशालें दिखाई पड़ रही हैं। कहीं पता न चल जाए! वह बच्चा रोना शुरू करता है। वह मां घबड़ा जाती है। वह पहले उसका मुंह बंद करती है, उसे दबाती है, रोकती है। लेकिन वह जितना दबाती है, उतना रोता है। फिर वह मां और बाप उसकी गर्दन दबा देते हैं, क्योंकि जान बचाने के लिए अब कोई उपाय नहीं है। वह अगर चिल्लाता है तो अभी दुश्मन आवाज सुन लेगा और मौत हो जाएगी। उसकी गर्दन दबा देते हैं।
लेकिन तभी उस गाय के बछड़े की आवाज कहीं दूसरे दरख्तों के पास से सुनाई पड़ती है और वह गाय जोर-जोर से चिल्लाने लगती है। और उस गाय को चिल्लाते सुन कर दुश्मन पास आने लगता है। बच्चे की गर्दन दबानी आसान थी, गाय की गर्दन भी नहीं दबती। गाय को मारो कैसे? कोई उपाय भी नहीं मारने का।
तो वह औरत अपने पति से कहती है कि तुमसे कितना कहा कि इस हैवान को साथ
मत ले चलो! वह औरत अपने पति से कहती है, तुमसे कितना कहा कि इस पशु को साथ मत ले चलो! अब मुश्किल में डाल दिया है।
और वह पति कहता है कि मैं यह विचार कर रहा हूं कि पशु कौन है--हम या यह गाय! पशु कौन है? हमने अपने बच्चे को मार डाला है अपने को बचाने के लिए! तो हैवान कौन है? मैं इस चिंता में पड़ गया हूं।
वे दुश्मनों की मशालें करीब आती चली जाती हैं, वह गाय भागती है, क्योंकि उसी तरफ उसके बछड़े की आवाज आ रही है। वह दुश्मनों के बीच घुस जाती है, लोग उसे आग लगा देते हैं। वह जल जाती है, लेकिन बछड़े के लिए चिल्लाती रहती है! तो वह पति कहता है कि मैं पूछता हूं कि पशु कौन है? आज मेरी तरफ पहली दफा जिंदगी में ख्याल उठा कि किसको हम मनुष्य कहें, किसको हम पशु कहें?
यह सवाल बड़ा बढ़िया है। यह पूछता है, मनुष्य-उपयोगी दृष्टि से... शायद उसका ख्याल यह है कि मनुष्य के लिए जरूरी है कि वह पशुओं को मारे, नहीं तो मनुष्य बच नहीं सकेगा।
एक अर्थ में यह बात बिल्कुल ठीक है। यह इस अर्थ में ठीक है कि मनुष्य अगर शरीर के तल पर ही बचना चाहता हो तो शायद पशुओं को मार ही रहा है, मारता ही रहे। लेकिन मनुष्य अगर मनुष्यता के आत्मिक तल पर बचना चाहता हो तो पशुओं को मार कर तो कभी नहीं बच सकता है, वह तो असंभव है।
एक बार हमें यह ख्याल में आ जाए कि देहधारी मनुष्य को बचाना है, सिर्फ उसके शरीर को बचा लेना है या मनुष्यता को बचाना है, अदेहधारी मनुष्यता को? तो सवाल बिल्कुल अलग-अलग हो जाएंगे। देहधारी मनुष्य को बचाते हैं तो
हम हैवान से ऊपर नहीं हैं, पशु से ऊपर नहीं हैं। और अगर हम उसके भीतर की मनुष्यता को बचाने के लिए कुछ सोचते हैं तो शायद पशु-हिंसा किसी भी तरह समर्थन नहीं की जा सकती।
लेकिन कहा जाएगा, फिर आदमी बचेगा कैसे? आदमी बचने के उपाय खोज लेता है, जैसे ही उसका बचना मुश्किल में पड़ जाए। सिंथेटिक फूड्स बनाए जा सकते हैं। समुद्र के पानी से जितना पृथ्वी भोजन देती है, इससे करोड़ गुना भोजन निकाला जा सकता है। हवाओं से सीधे भोजन पाया जा सकता है।
एक बार यह तय हो जाए कि मनुष्यता मर रही है तो फिर हम मनुष्य को बचाने
के हजार उपाय खोज सकते हैं। यह तय न हो तो फिर ठीक है। फिर हम मनुष्य को बचा लेते हैं देहधारी दिखाई पड़ने वाले, लेकिन भीतर कुछ गहरा तत्व खो जाता है। वह गहरा तत्व तभी खो जाता है, जब हम, जब हम किसी को दुख देने को तत्पर और उत्सुक हो जाते हैं। किसी को दुख देने का जो भाव है, वही हमें नीचे गिरा देता है। तो किसी को हम दुख दें और मनुष्य बने रहें, इन दोनों बातों में कठिनाई है।
यह बात सच है कि आज तक ऐसी स्थिति नहीं बन सकी कि एकदम से मांसाहार बंद
कर दिया जाए, एकदम से पशु-हिंसा बंद कर दी जाए तो आदमी बच जाए। लेकिन नहीं

बन सकी तो इसीलिए नहीं बन सकी कि हमने उस बात को ख्याल में नहीं लिया है, अन्यथा बन सकती है, कोई कठिनाई नहीं है। और आने वाले दो-चार सौ वर्षों में बन सकती है, क्योंकि अब हमारे पास वे वैज्ञानिक साधन उपलब्ध हो गए हैं, जिनसे अब पशुओं को मारने की कोई जरूरत नहीं है, उसके बिना काम चल सकता है। अब तो जिसको हम कहें, कृत्रिम मांस भी बनाया जा सकता है। आखिर गाय घास खाकर करती क्या है? घास खाकर मांस बनाती है। मशीन क्यों नहीं हो सकती जो घास खाए और मांस बनाए? इसमें कोई कठिनाई नहीं है।
दूध कृत्रिम बन सकता है, मांस कृत्रिम बन सकता है, सब कृत्रिम बन सकता है। जब सब बन सकता है तो अब मैं कहता हूं कि--अतीत की बात मैं छोड़ देता हूं, जब कि सब नहीं बन सकता था--लेकिन अब जब कि सब बन सकता है तो मनुष्य के सामने एक नया चुनाव फिर खड़ा हो गया है और वह चुनाव यह है कि अब जब सब बन सकता है, तब पशु-हिंसा का क्या मतलब?
पीछे कठिनाइयां थीं। आदमी को बचाना भी मुश्किल था, यह भी मैं समझता हूं। शायद अतीत में आदमी नहीं बचाया जा सकता था। शरीर ही नहीं बचाया जा सकता था, जब शरीर ही न बचता तो आत्मा क्या बचाते आप? शरीर बिल्कुल सारभूत था, जिसे बचाएं तो पीछे आत्मा भी बच सकती है, मनुष्यता भी बच सकती है। शरीर नहीं बचाया जा सकता था।
इसलिए बुद्ध ने थोड़ा सा समझौता किया। समझौता यह किया कि मरे हुए पशु
का मांस खाया जा सकता है। यह समझौता सिर्फ उस स्थिति का समझौता था। समझौता विचारपूर्ण था, लेकिन इस कारण बुद्ध पशु-जगत से संबंध स्थापित करने में असमर्थ हो गए--जैसा मैंने पीछे कहा।
महावीर समझौते के लिए राजी नहीं हुए, उसका कारण यह नहीं था, उसका कारण कुल इतना था कि अगर पशु-जगत तक संदेश पहुंचाना था तो यह समझौता नहीं माना जा सकता। बुद्ध ने समझौता माना कि मरे हुए जानवर को खाया जा सकता है। लेकिन बड़ी मुश्किल हो गई, क्योंकि आदमी को समझौते देना बहुत महंगा है। आज चीन में, जापान में सब दुकानों पर लगा रहता है कि यहां मरे हुए जानवर का ही मांस मिलता है। जैसा हमारे यहां लिखा रहता है, यहां सब शुद्ध घी मिलता है।

प्रश्नः गहरे में प्लांट-लाइफ और पशु-लाइफ में क्या अंतर है?

अंतर बहुत है। अंतर बहुत है। पशु विकसित है, बहुत विकसित है पौधे से। बहुत विकसित है। विकास के दो हिस्से उसने पूरे कर लिए हैं। एक तो पौधे में गति नहीं है, मूवमेंट नहीं है। थोड़े से पौधों को छोड़ कर जो पशुओं और पौधों के बीच में हैं यात्रा के। कुछ पौधे हैं, जो जमीन में चलते हैं, जो जगह बदल लेते हैं, जो आज यहां हैं तो कल सरक जाएंगे थोड़ा। साल भर बाद आप उनको उस जगह न पाएंगे, जहां साल भर पहले पाया था। साल भर में वे यात्रा कर लेंगे थोड़ी सी। पर वे पौधे सिर्फ बहुत दलदली जमीन में होते हैं। जैसे अफ्रीका के कुछ दलदलों में पौधे होते हैं, जो रास्ता बनाते हैं अपना, चलते हैं, जो अपने भोजन की तलाश में इधर-उधर जाते हैं।
नहीं तो पौधा ठहरा हुआ है। ठहरे हुए होने के कारण बड़े गहरे बंधन उस पर
लग गए हैं। ठहरे हुए होने के कारण वह कोई खोज नहीं कर सकता किसी चीज की। जो आ जाए, बस वही ठीक है, उससे अन्यथा कोई उपाय नहीं है उसके पास। पानी नीचे हो तो ठीक है, हवा ऊपर हो तो ठीक, सूरज निकले तो ठीक, नहीं तो गया वह।
तो यह जो उसकी जड़ स्थिति है, ठहरी हुई, उसमें प्राण तो प्रकट हुआ है, जैसा पत्थर में उतना प्रकट नहीं हुआ है। वैसे पत्थर भी बढ़ता है, बड़ा होता है। और दुख की भी संवेदना पत्थर को किसी तल पर होती है। लेकिन पौधे को दुख की संवेदना बहुत बढ़ गई है। चोट भी खाता है तो दुखी होता है। शायद प्रेम भी करता है, शायद करुणा भी करता है। लेकिन बंधा है जमीन से तो परतंत्रता बहुत गहरी है। तो उस परतंत्रता के कारण चेतना जितनी विकसित हो सकती है... ।
अब यह हमें ख्याल में नहीं है कि मूवमेंट से चेतना विकसित होती है। जितनी हम गति कर सकते हैं, जितनी स्वतंत्रता से, उतनी चेतना को नई चुनौतियां मिलती हैं; नए अवसर, नए मौके; नए दुख, नए सुख; उतनी चेतना जगती है। नए का साक्षात्कार करना पड़ता है।

वृक्ष के पास उतनी चेतना नहीं है। तो वृक्ष करीब उस हालत में हैं, जिस हालत में आप भी क्लोरोफार्म में हो जाते हैं। उस हालत में है वृक्ष की चेतना। जैसे कि एक जानवर को क्लोरोफार्म दे दें, या एक आदमी को क्लोरोफार्म दे दें, तो जिस वक्त क्लोरोफार्म में दस मिनट आप बेहोश हों, उस वक्त आप वृक्ष की स्थिति में हैं। आप मूव नहीं कर सकते, हाथ नहीं उठा सकते, चल-फिर नहीं सकते, कोई गर्दन काट जाए तो कुछ नहीं कर सकते।
तो प्रकृति उतनी ही चेतना देती है, जितना आप कर सकते हों। अगर पौधे को इतनी चेतना दे दी जाए कि उसकी कोई गर्दन काटे, वह उतना ही दुखी हो जितना आदमी होता है, तो पौधा बड़ी मुश्किल में पड़ जाएगा। क्योंकि गर्दन तो कोई रोज काटेगा उसकी। इसलिए इतनी मूर्च्छा चाहिए क्लोरोफार्म वाली कि कोई गर्दन भी काटे तो भी चले।
पशु पौधे के आगे का रूप है, जहां पशु ने गति ले ली है। अब उसकी गर्दन काटो तो वह उस हालत में नहीं है, जिसमें कि पौधा है। अब उसकी पीड़ा बढ़ गई है, संवेदना बढ़ गई है, उसका सुख भी बढ़ गया है। और गति ने उसको विकसित किया है। लेकिन पशु भी एक तरह की निद्रा में चल रहा है, सोम्नाबुलिज्म में है। क्लोरोफार्म की हालत नहीं है, लेकिन एक निद्रा की हालत है। उसे अपना कोई पता ही नहीं है। यानी वह जीता है हमेशा चैलेंज और स्टिमुलस और रिस्पांस में।
जैसे एक कुत्ता है, उसको आपने झिड़का तो वह भागता है। आपका झिड़कना ही महत्वपूर्ण है, उसका भागना सिर्फ रिस्पांस है। आपने रोटी डाल दी तो खा लेता है। आपने प्रेम किया तो पूंछ हिलाता है। उसका, जो भी वह कर रहा है, कर्म वह कोई भी नहीं करता, सिर्फ रिएक्ट करता है, सिर्फ प्रतिकर्म करता है, कर्म नहीं करता। अपनी तरफ से कुत्ता कुछ नहीं करता, कोई जानवर नहीं करता अपनी तरफ से, बस जो होता रहता है, उसमें वह भागीदार होता रहता है। भूख लगती है तो घूमने लगता है, प्यास लगती है तो घूमने लगता है। कोई कुत्ता फास्ट नहीं कर सकता। भूख न लगे तो बात दूसरी है, तो फिर वह खा नहीं सकता। जैसे अगर कुत्ता बीमार है तो फास्ट कर जाएगा फौरन, फिर उस दिन वह दिन भर नहीं खाएगा और घास खाकर वोमिट भी कर देगा।
कुत्ते को अगर खाने की स्थिति नहीं है तो कुत्ता खा नहीं सकता। आदमी खाने की स्थिति में नहीं है तो भी खा सकता है। कुत्ते को अगर खाने की स्थिति है तो उपवास नहीं कर सकता, करना पड़े वह बात दूसरी है। आदमी पूरा भूखा है तो भी उपवास कर सकता है। यानी इसका मतलब यह है कि आदमी एक्ट कर सकता है, कुत्ता सिर्फ रिएक्ट करता है। कुत्ता सिर्फ प्रतिक्रिया करता है और आदमी कर्म करता है।
लेकिन सभी आदमी कर्म भी नहीं करते। इसलिए बहुत कम आदमी आदमी की हैसियत में हैं। अधिकतम आदमी प्रतिकर्म ही करते हैं। यानी किसी ने आपको प्रेम किया तो आप प्रेम करते हैं। और किसी ने गाली दी, फिर आप प्रेम करें तो कर्म हुआ। किसी ने आपको प्रेम किया और आपने प्रेम किया तो यह प्रतिकर्म हुआ। यह वैसे ही है, जैसे कुत्ता पूंछ हिलाता है उसको रोटी डालो तो; इसमें उसमें कोई बुनियादी फर्क नहीं है। हां, कोई आदमी आपको गाली देता, और आप प्रेम कर सकें, तो कर्म हुआ।
तो मैं यह कह रहा हूं कि कुछ पौधे सरकने लगे हैं, वे जानवर की दिशा में प्रवेश कर रहे हैं। कुछ जानवर भी थोड़ा-बहुत रिएक्ट करते हैं--बहुत थोड़ा, कुछ जानवर-- वे आदमी की दिशा में सरक रहे हैं। कुछ आदमी भी कर्म करते हैं, वे और ऊपर के चेतना लोकों की तरफ सरक रहे हैं। फर्क है स्वतंत्रता का। जितने हम नीचे जाते हैं, पत्थर सबसे ज्यादा परतंत्र है, पौधा उससे कम, पशु उससे कम, तथाकथित मनुष्य उससे कम, महावीर-बुद्ध जैसे लोग बिल्कुल कम। अगर हम ठीक से समझें तो सारे विकास को हम स्वतंत्रता के हिसाब से नाप सकते हैं।
और इसलिए मेरा निरंतर जोर स्वतंत्रता पर है।
कौन व्यक्ति कितनी स्वतंत्रता अर्जित करे जीवन में, उतनी चेतना की तरफ जाता है। और स्वतंत्रता बहुत प्रकार की है। बहुत प्रकार की है--गति की स्वतंत्रता, विचार की स्वतंत्रता, कर्म की स्वतंत्रता, चेतना की स्वतंत्रता; यह सब होनी चाहिए। जितनी ये पूर्ण होती चली जाती हैं, उतना

मोक्ष की तरफ बढ़ा जा रहा है। धर्म की भाषा में कहें तो जीवन मुक्त होने की तरफ जा रहा है। तो जितना हम नीचे जाते हैं, उतना अमुक्त है।
पत्थर कितना अमुक्त है! एक ठोकर आपने मार दी तो कुछ भी नहीं कर सकता, रिएक्ट भी नहीं कर सकता। यानी आप एक ठोकर मार देते हैं तो प्रतिकर्म करने में भी असमर्थ है, कि उसको दिल आ जाए कि इसकी खोपड़ी खोल दें तो भी नहीं कर सकता कुछ। लात सह लेता है, पड़ा रह जाता है। जहां पड़ गया, वहीं पड़ गया। कोई उपाय नहीं है उसके पास। तो सबसे ज्यादा बद्ध अवस्था है।
पत्थर जो है, वह बद्ध आत्मा है। महावीर जो हैं, वह प्रबुद्ध आत्मा हैं, मुक्त आत्मा हैं। बद्ध होने से और मुक्त होने तक, बंधन से और मुक्ति तक की यात्रा है, उसी में तल हैं। और मोटी सीढ़ियां हमने बांट ली हैं, लेकिन सब सीढ़ियों पर अपवाद हैं।
जैसे समझ लें कि पचास सीढ़ियां हैं और आदमी चढ़ रहे हैं उस पर। कोई आदमी पहली सीढ़ी पर खड़ा है, कोई आदमी दूसरी सीढ़ी पर खड़ा है, कोई आदमी पहली सीढ़ी से उठ गया है, लेकिन अभी दूसरी सीढ़ी पर पैर रखा नहीं है, तो वह बीच में है। कोई आदमी दूसरी सीढ़ी पर खड़ा है, कोई आदमी तीसरी सीढ़ी पर खड़ा है, और कोई आदमी दूसरी और तीसरी के बीच में है अभी। अभी पार कर रहा है, दूसरी से पैर उठा लिया है, तीसरी पर अभी रखा नहीं है।
तो इस तरह मोटे में देखें तब तो हमको ऐसा लगता है, पत्थर है, पौधा है, लेकिन कुछ पत्थर पौधे की हालत में पहुंच रहे हैं। इसलिए कुछ पत्थर जो हैं, वे बिल्कुल पौधे जैसे हैं। उनकी डिजाइन, उनके पत्ते, उनकी शाखाएं, वे बिल्कुल पौधे जैसे हैं। वे पौधे की तरफ बढ़ रहे हैं।
कुछ पौधे बिल्कुल पशुओं जैसे हैं। कुछ पौधे अपना शिकार भी खोजते हैं। पक्षी उड़ रहा है आकाश में तो वे चारों तरफ से पंखे बंद कर लेते हैं, उसको फांस लेते हैं अंदर। कुछ पौधे प्रलोभन भी डालते हैं। उनके ऊपर की थालियों पर बहुत मीठा, बहुत सुगंधित रस भर लेते हैं वे, ताकि पक्षी आकर्षित हो जाएं। और वे जैसे ही उस पर बैठते हैं कि चारों तरफ के पत्ते बंद हो जाते हैं। कुछ पौधे अपने पत्तों को पक्षियों के शरीर में प्रवेश कर देते हैं और वहां से खून खींच लेते हैं। वे पौधे अब पौधे की हालत में नहीं हैं, वे पशु की तरफ गति कर रहे हैं।
कुछ पशु मनुष्य की तरफ गति कर रहे हैं। इन पशुओं में मनुष्य जैसी बहुत
सी बातें दिखाई पड़ जाएंगी। जैसे बहुत से कुत्तों में, बहुत से घोड़ों में, बहुत से हाथियों में, बहुत सी गायों में बहुत मनुष्य जैसी बातें दिखाई पड़ जाएंगी।
जिन-जिन जानवरों से मनुष्य संबंध बनाता है, उन-उन जानवरों से संबंध बनाने का कारण ही यही है। सभी जानवरों से मनुष्य संबंध नहीं बनाता। जिनको हम पैट एनीमल्स कहते हैं, उनसे संबंध बनाने का कारण यही है कि वे कहीं किसी तल पर हमसे मेल खाते हैं, कहीं किन्हीं भावनाओं में हमसे उनका मेल है। लेकिन फिर भी सभी, उसी जाति के सभी पशु भी एक तल पर नहीं होते हैं, कुछ आगे बढ़े होते हैं, कुछ पीछे हटे होते हैं।

प्रश्नः देखने में ऐसा आता है कि जो लोग आमतौर पर नॉन-वेजिटेरियन हैं, उनमें यह करुणा की भावना और यह मनुष्यता की भावना देखने में ज्यादा आती है। जैसे वेस्टर्न कंट्रीज में, वे ही लोग मनुष्य की सेवा ज्यादा करते हैं। हम इधर हिंदुस्तान में वेजिटेरियन होते हुए भी हमारे में कोई करुणा की भावना, कोई मनुष्यता की भावना--देखने में ऐसा लगता है रह ही नहीं गई!

हां, उसके कारण हैं। उसके कारण हैं। क्योंकि अगर आप करुणा के कारण वेजिटेरियन हुए हैं, शाकाहारी हुए हैं, तब तो बात अलग है। और जन्म के कारण शाकाहारी हैं तो इससे कोई संबंध ही नहीं है। इससे कोई संबंध ही नहीं है करुणा का। यानी आप क्या खाते हैं, इससे करुणा का संबंध नहीं है। आपकी करुणा क्या है, इससे आपके खाने का संबंध हो सकता है।
तो इस मुल्क में जो शाकाहारी है, वह जबरदस्ती शाकाहारी है। उसके चित्त में शाकाहार नहीं है, उसके चित्त में कोई करुणा ही नहीं है।

फिर मांसाहारी जो है, उसके मन की कठोरता बहुत कुछ उसके भोजन, उसकी जीवन-व्यवस्था में निकल जाती है और वह मनुष्य के प्रति ज्यादा सदय हो सकता है। और आपको वह भी मौका नहीं है, आपकी कठोरता निकलने को कोई मौका ही नहीं है, वह मौका सिर्फ मनुष्य की तरफ है।
यानी मेरा कहना यह है कि एक शाकाहारी आदमी है, उसमें आधा पाव कठोरता है, समझ लें; और एक मांसाहारी आदमी है, उसमें भी आधा पाव कठोरता है। तो मांसाहारी आदमी ज्यादा करुणावान सिद्ध होगा जीवन में बजाय शाकाहारी के। क्योंकि वह जो आधा पाव कठोरता है उसकी, और दिशाओं में बह जाती है; और आपकी आधा पाव कठोरता है, वह कहीं बहने का उपाय नहीं है, वह सिर्फ आदमी की तरफ ही बहती है, वह फिर आदमी को ही चूसती है।
इसलिए पूरब के मुल्कों में जहां शाकाहार बहुत है, बड़ा शोषण है, बड़ी कठोरता है और आदमी-आदमी के बीच के संबंध बहुत तनावपूर्ण हैं। और आदमी आदमी के प्रति ऐसा दुष्ट मालूम पड़ता है, जिसका हिसाब लगाना मुश्किल है। और बाकी मामलों में बड़ा हिसाब लगाता है वह कि चींटी पर पैर न पड़ जाए, पानी छान कर पीता है! वह जो कठोरता के बहने के और इतर उपाय थे, वे सब बंद हो जाते हैं, फिर एक ही रह जाता है कि वह आदमी से आदमी का उसका संबंध बिगड़ जाता है।
तो मेरा कहना है, शाकाहार का मैं पक्षपाती हूं इसलिए नहीं कि आप शाकाहारी हों, बल्कि इसलिए कि आप करुणावान हों, बल्कि इसलिए कि आप उस चित्त-दिशा में पहुंचें, जहां से जीवन के प्रति कठोरता क्षीण होती है। जब कठोरता क्षीण हो जाएगी आपकी तो वह पशु के प्रति भी क्षीण होगी, मनुष्य के प्रति भी क्षीण होगी।
कठोरता तो क्षीण नहीं होती, जन्म के साथ शाकाहारी हो जाता है आदमी, तो मुश्किल पड़ जाती है। इसलिए एकदम हमें दिखाई नहीं पड़ती, क्योंकि जीवन एक तरह की बहुत सी शक्तियों का तालमेल है। उसमें अगर कोई भी शक्तियां भीतर पड़ी रह जाती हैं तो मुश्किल पड़ जाती है।
जैसे उदाहरण के लिए, इंग्लैंड भर में विद्यार्थियों का कोई विद्रोह नहीं है! सारी जमीन पर आज इंग्लैंड अकेला मुल्क है, जहां विद्यार्थियों की कोई बगावत, कोई उपद्रव नहीं है! और उसका कुल कारण यह है कि इंग्लैंड के बच्चों को तीन घंटे से कम खेल नहीं खेलना पड़ता। तीन घंटे हाकी, फुटबाल; इस तरह थका डालते हैं कि जब तीन घंटे में उसकी सारी की सारी जितनी उपद्रव की प्रवृत्ति है, वह सब निकास पा जाती है, वह घर शांत लौट आता है। इंग्लैंड के लड़कों को उपद्रव करने को कहो तो उपद्रव की हालत में वे नहीं हैं। जिन मुल्कों में खेल बिल्कुल नहीं है, जैसे हमारा मुल्क है, जैसे फ्रांस है, खेल करीब-करीब न के बराबर है, तो उपद्रव बहुत ज्यादा है।
अब वह ख्याल में नहीं आता है कि उसका एक बैलेंस है, उसकी एक नियत व्यवस्था है कि एक लड़के को कितना उपद्रव करना जरूरी है। चाहे उपद्रव आप व्यवस्था से करवा लें--खेल का मतलब है व्यवस्थित उपद्रव। उसका और कोई मतलब नहीं है। एक लट्ठ मार रहा है एक गेंद में एक आदमी, वह उतना ही है जैसा किसी खोपड़ी में मारे, उतना ही रस उसमें आ जाता है। उसमें कोई फर्क नहीं है। तो व्यवस्थित उपद्रव अगर करवाते हैं तो उपद्रव कम हो जाएगा। और अगर व्यवस्थित उपद्रव नहीं करवाते तो फिर अव्यवस्थित उपद्रव बढ़ेगा। और इन सबकी भीतर हमारे एक निश्चित मात्रा है, जो निकलनी चाहिए एक उम्र में। एक उम्र में उसका निकलना बहुत जरूरी है।
अब जैसे हमारा सारा काम है। एक आदमी जंगल में लकड़ी काटता है; यह आदमी
एक दुकान पर बैठे आदमी से ज्यादा करुणावान हो सकता है। उसका कारण है कि काटने-पीटने का इतना काम करता है वह, कि काटने-पीटने की जो वृत्ति है, वह रिलीज हो जाती है। वह ज्यादा दयालु मालूम पड़ेगा। और एक दुकान पर बैठा आदमी है, काटना-पीटना कुछ नहीं हो पाता, तो वह आदमी को जितना काट-पीट सकता है, उसका उपाय खोजता है। वह जंगल में भी कर सकता था।
एक चरवाहा है, वह आप देखें, भेड़ों को चरा रहा है। उसके चेहरे पर एक शांति मालूम पड़ेगी। उसका कारण है कि वह जानवरों के साथ जो व्यवहार कर रहा है--डंडा मार रहा है, गाली दे रहा है, कुछ भी कर रहा है; जानवर कुछ नहीं कर रहे हैं। वह व्यवहार आप भी करना चाहते हैं, लेकिन कोई नहीं मिलता। किससे करें? पत्नी से करते हैं, बेटे से करते हैं, नए-नए बहाने खोजते हैं कि बेटे

का सुधार कर रहे हैं, कि यह कर रहे हैं, वह कर रहे हैं, लेकिन भीतरी कारण बहुत दूसरे हैं!
इसलिए अक्सर ऐसा होता है कि एक किसान है गांव का, वह ज्यादा आपको शांत मालूम पड़ता है। उसका और कोई कारण नहीं है, उसका कारण है कि काट-पीट के इतने काम उसको मिल जाते हैं दिन भर में--वृक्षों को काट रहा है, पौधों को काट रहा है, जानवरों को मार रहा है--कि वह हलका हो जाता है। इतना ही आपको भी मिल जाए तो आप भी हलके हो जाएं। यह मिल नहीं पाता, तो ये आपको नए रास्ते निकालने पड़ते हैं इसके लिए। कोड़ा आप भी किसी को मारना चाहते हैं। कैसे मारें? तो हमारे मन की जो ये सारी वृत्तियां हैं, फिर ये नए रास्ते खोजती हैं, ये नए उपाय खोजती हैं। और वे नए उपाय और खतरनाक सिद्ध हो जाते हैं।
इसलिए मेरा कहना है कि वृत्तियां जानी चाहिए। आचरण बदलने का जोर गलत है। इसलिए मैं किसी को नहीं कहता कोई शाकाहारी हो। मैं कहता हूं, अगर मांसाहार करना है तो मांसाहार करो। इतना कहता हूं कि यह कोई बहुत ऊंची चित्त की अवस्था न हुई, कुछ और ऊंची चित्त की अवस्थाएं हैं, जो तुम खोजो। उनको खोजने से मांसाहार हो सकता है चला जाए, वह ठीक होगा। लेकिन मांसाहार चला जाए और आपकी स्थिति वही रहे, तो आप दूसरी तरह के मांसाहार शुरू करेंगे, जो ज्यादा महंगे साबित होने वाले हैं।
तो हिंदुस्तान कठोर हो गया है। और हिंदुस्तान में जो लोग गैर-मांसाहारी हैं, बहुत दुष्ट हैं। हम कहते हैं एक आदमी को कि एक मुसलमान बहुत दुष्ट होता है। वह कभी-कभी दुष्ट होता है, मगर कभी-कभी दुष्ट होकर ऐसा हलका और शांत होता है। ऐसे एक साधारण मुसलमान को लगता है कि दुष्ट होता है, लेकिन कभी-कभी। जब मौका आता है तो ठीक से दुष्टता कर लेता है, लेकिन फिर रिलीज हो जाता है।
और एक जैनी है, मौका ही नहीं आता कभी दुष्टता करने का, चौबीस घंटे दुष्टता करता रहता है। फैली हुई दुष्टता है, इंटेंस नहीं है। इंटेंस नहीं निकल पाती तो फैल जाती है। और फैली हुई दुष्टता ज्यादा खतरनाक है। एक आदमी कभी दो-चार साल में एक दफा दुष्ट हो जाए, ठीक है। एक आदमी चौबीस घंटे दुष्ट रहे और चौबीस घंटे शरारत करता रहे कुछ न कुछ, और शरारतें ऐसी खोजे कि जिसमें आप उसको कुछ कह भी न सकें, तो वह ज्यादा, ज्यादा महंगा पड़ जाएगा। इसलिए बड़े आश्चर्य की बात है कि बारबेरियंस हैं, जो कच्चे आदमी को खा जाएं, लेकिन बड़े सरल हैं, बहुत सरल हैं। एकदम सरल हैं और खा जाएं कच्चे आदमी को पकड़ कर! मगर बड़े सरल हैं और सरलता बड़े इनोसेंट हैं।
आप जाकर कारागृह में देखें कैदियों को। मैं जब भी कारागृह में गया तो बहुत हैरान हुआ हूं। कैदी एकदम सरल मालूम पड़ता है, उन लोगों की बजाय जो मजिस्ट्रेट बने बैठे हैं। बड़ी हैरानी की बात है!
एक मजिस्ट्रेट की शक्ल देखें और उसके सामने कारागृह में जिसको उसने
दस साल की सजा दे दी उस आदमी की शक्ल देखें, तो आप दस साल वाले को ज्यादा इनोसेंट पाएंगे! और यह जो मजिस्ट्रेट है, जिसने कभी चोरी नहीं की, कभी हत्या नहीं की, बड़ा कठोर मालूम पड़ेगा।
अब हो सकता है कि दस साल सजा देने में इस आदमी के भीतरी रस हों--कानून
तो ठीक ही है, कानून सिर्फ बहाना हो, तरकीब हो, खूंटी हो--इस आदमी के भीतर रस हैं और आदमियों को सताने का यह उपाय खोज रहा है।
मनोवैज्ञानिक तो यह कहते हैं कि हर आदमी मजिस्ट्रेट क्यों नहीं होता? कुछ आदमी मजिस्ट्रेट होने के लिए आतुर रहते हैं। हर आदमी शिक्षक क्यों नहीं होता? कुछ आदमी शिक्षक होने के लिए आतुर रहते हैं।
मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि शिक्षक वे लोग होना चाहते हैं, जो बच्चों
को सताना चाहते हैं, उनके भीतर टार्चर करने की वृत्ति है। और उनको इकट्ठे बच्चे कहां मिलेंगे? बहुत मुश्किल है। किसी के बच्चे को सताओ तो दिक्कत है, अपनों को सताओ तो भी दिक्कत है। तीस बच्चे मुफ्त मिल जाते हैं, तनख्वाह भी मिलती है ऊपर से, और उनको ढंग से टार्चर करते हैं! और वे कुछ कर भी नहीं सकते, बिल्कुल निहत्थे हैं।
अभी मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि इसकी... मैं तो यह मानता ही हूं कि दुनिया अच्छी होगी तो पहले, आदमी के शिक्षक होने के पहले पूरी साइको- एनालिसिस होनी चाहिए कि यह आदमी कहीं सताने वाला तो नहीं है! और सौ में

सत्तर शिक्षक सताने वाले मिलेंगे! यानी जिनको अगर आप शिक्षक न होने देते तो वे और कहीं सताते, वे इधर सताएंगे।
अच्छा, दिन भर सता कर शिक्षक बड़ा सीधा-सादा हो जाएगा। जब वह लौटता है घर, तब वह बड़ा अच्छा आदमी मालूम पड़ता है। तो बच्चों के मां-बाप को वह बहुत भला आदमी मालूम पड़ता है कि कितना भला आदमी है! वह भला आदमी है, क्योंकि उसका सब बुरापन तो वह निकाल लेता है पांच घंटे में। तो मां-बाप कहते हैं कि तेरा शिक्षक बहुत भला आदमी है। उसका बेटा कहता है, कैसे मानें? क्योंकि चौबीस घंटे सता रहा है। और उसके कारण हैं, उसके कारण हैं, वे दिखाई नहीं पड़ते हैं।

महावीर: मेरी दृष्टि में
सोलहवां प्रवचन

महावीरः अनादि, अनीश्वर और स्वयंभू अस्तित्व

कपिल ने पूछा है कि इस जगत का, इस जीवन का प्रारंभ कब हुआ? कैसे हुआ?

यह महावीर के प्रसंग में भी बात बड़ी महत्वपूर्ण है। इसलिए महत्वपूर्ण
है कि महावीर उन थोड़े से चिंतकों में से एक हैं, जिन्होंने प्रारंभ की बात को ही अस्वीकार कर दिया है। महावीर यह कहते हैं कि प्रारंभ संभव ही नहीं है। अस्तित्व का कोई प्रारंभ नहीं हो सकता। अस्तित्व सदा से है और कभी ऐसा नहीं हो सकता कि अस्तित्व नहीं हो जाएगा, ऐसा कभी नहीं हो सकता। प्रारंभ की और अंत की बात ही वे इनकार करते हैं। और मैं भी उनसे सहमत हूं।
प्रारंभ की धारणा ही हमारी नासमझी से पैदा होती है। क्योंकि हमारा प्रारंभ होता है और अंत होता है, इसलिए हमें लगता है कि सब चीजों का प्रारंभ होगा और अंत होगा! लेकिन अगर हम हमारे भीतर भी गहरे में प्रवेश कर जाएं तो हमें पता चलेगा, हमारा भी कोई प्रारंभ नहीं है और कोई अंत नहीं है। एक चीज बनती है और मिटती है, तो हमें यह ख्याल हो जाता है कि जो भी बनता है वह मिटता है। यह ठीक है, लेकिन बनना और मिटना, प्रारंभ और अंत नहीं हैं। क्योंकि जो चीज बनती है, वह बनने के पहले किसी दूसरे रूप में मौजूद होती है; और जो चीज मिटती है, वह मिटने के बाद फिर किसी दूसरे रूप में मौजूद हो जाती है।
तो महावीर कहते हैं, जीवन में सिर्फ रूपांतरण होता है, न तो प्रारंभ
है और न कोई अंत है।
प्रारंभ असंभव है, क्योंकि अगर हम यह मानें कि कभी प्रारंभ हुआ तो यह
भी मानना पड़ेगा, उसके पहले कुछ भी न था। फिर प्रारंभ कैसे होगा? अगर कुछ भी न था उसके पहले तो प्रारंभ होने का उपाय भी नहीं है। अगर हम यह मान लें कि कुछ भी नहीं था तो समय भी नहीं था, टाइम भी नहीं था; स्पेस भी नहीं थी, स्थान भी नहीं था; प्रारंभ कैसे होगा? प्रारंभ होने के लिए कम से कम समय तो पहले चाहिए ही, ताकि प्रारंभ हो सके। और अगर समय पहले है, स्थान पहले है, तो सब पहले हो गया। क्योंकि इस जगत में मौलिक रूप से दो ही तत्व गहराई में हैं, टाइम और स्पेस।
तो महावीर कहते हैं, प्रारंभ की बात ही हमारी नासमझी से उठी है। अस्तित्व का कभी कोई प्रारंभ नहीं हुआ। और जिसका कभी कोई प्रारंभ न हुआ हो, उन्हीं कारणों से उसका कभी अंत भी नहीं हो सकता। क्योंकि अंत होने का मतलब होगा, एक दिन सब न हो जाए, कुछ भी न बचे। यह कैसे होगा?
इसलिए अस्तित्व अनादि है और अनंत है--न तो कभी शुरू हुआ है, न कभी अंत होगा; सदा है, सनातन है।
लेकिन रूपांतरण रोज है। कल जो रेत था, वह आज पहाड़ है; आज जो पहाड़ है, वह
कल रेत हो जाएगा। लेकिन होना नहीं मिट जाएगा। रेत में भी वही था, पहाड़ में भी वही होगा। आज जो बच्चा है, कल जवान होगा, परसों बूढ़ा होगा, बाद विदा हो जाएगा। लेकिन जो बच्चे में था, वही जवान में होगा, वही बुढ़ापे में होगा, वही मृत्यु के क्षण में विदा भी ले रहा होगा। वह जो था, वह निरंतर होगा। अस्तित्व का अनस्तित्व होना असंभव है। और अनस्तित्व से भी अस्तित्व नहीं आता है।
इसलिए महावीर ने स्रष्टा की धारणा ही इनकार कर दी। इसलिए महावीर ने कहा, जब सृष्टि प्रारंभ ही नहीं होती, जब कभी शुरुआत ही नहीं होती, तो शुरुआत करने वाले की फिजूल धारणा को क्यों बीच में लाना? जब शुरुआत ही नहीं होती तो स्रष्टा की कोई जरूरत नहीं है।
यह बड़े साहस की बात थी उन दिनों। महावीर ने कहा, सृष्टि है और स्रष्टा नहीं है। क्योंकि अगर स्रष्टा होगा तो प्रारंभ मानना पड़ेगा। और महावीर कहते हैं, स्रष्टा भी हो तो भी शून्य से प्रारंभ नहीं हो सकता।
और फिर मजे की बात यह है कि अगर स्रष्टा था तो फिर शून्य कहना व्यर्थ है। तब था ही कुछ, और फिर उस होने से ही कुछ होता रहेगा। जिसे, साधारणतः

जिसको हम आस्तिक कहते हैं--वस्तुतः वह आस्तिक नहीं होता--साधारणतः आस्तिक की दलील यही है कि सब चीजों का बनाने वाला है तो परमात्मा भी होना चाहिए जगत को बनाने के लिए।
लेकिन नास्तिकों ने और गहरा सवाल पूछा और उसका जवाब आस्तिक नहीं दे पाए। वे यह पूछते हैं कि अगर सब चीजों का बनाने वाला है तो फिर परमात्मा को बनाने वाला भी होना चाहिए। और तब बड़ी मुश्किल खड़ी हो जाती है। अगर हम परमात्मा का बनाने वाला भी मानें तो इनफिनिट रिग्रेस हो जाएगी। फिर तो अंतहीन विवाद हो जाएगा, क्योंकि फिर उसका बनाने वाला चाहिए, फिर उसका, फिर उसका, फिर उसका... । इसका अंत कहां हो? किसी भी कड़ी पर यही सवाल उठेगाः इसका बनाने वाला?
तो महावीर कहते हैं कि आस्तिक भूल में है और इसलिए नास्तिक का उत्तर नहीं दे पा रहे हैं, क्योंकि आस्तिक बुनियादी भूल कर रहा है। महावीर परम आस्तिक हैं खुद भी, लेकिन वे कह रहे हैं, बनाने वाले को बीच में लाने की जरूरत नहीं है, अस्तित्व पर्याप्त है। न कोई बनाने वाला है, इसलिए यह भी सवाल नहीं कि उसका बनाने वाला कहां है।
महावीर के परमात्मा की धारणा अस्तित्व की गहराइयों से निकलती है; अस्तित्व के बाहर से नहीं आती, सुपर इंपोज्ड नहीं है। अस्तित्व अलग और परमात्मा अलग बैठ कर उसको जैसे कि कुम्हार घड़ा बना रहा हो, ऐसा नहीं है कोई परमात्मा। इसी अस्तित्व में जो सारभूत विकसित होते-होते अंतिम क्षणों तक विकास को उपलब्ध हो जाता है, वही परमात्मा है।
तो परमात्मा की धारणा में महावीर के लिए विकास है। यानी परमात्मा की धारणा अस्तित्व का सारभूत अंश है, जो विकसित हो रहा है।
साधारण आस्तिक की धारणा--परमात्मा अलग बैठा है और जगत को बना रहा है,
तब प्रारंभ की बात है। उसी आस्तिक की नासमझी को वैज्ञानिक भी पकड़े हुए चला जाता है। हालांकि वह ईश्वर को इनकार कर देता है, लेकिन फिर भी वह सोचता है कि बिगनिंग कब हुई? प्रारंभ कब हुआ?
हां, यह हो सकता है, इस पृथ्वी का प्रारंभ कब हुआ, इसका पता चल जाएगा।
यह पृथ्वी कब अंत होगी, यह भी पता चल जाएगा। लेकिन पृथ्वी जीवन नहीं है, जीवन का एक रूप है। जैसे मैं कब पैदा हुआ, पता चल जाएगा। मैं कब मर जाऊंगा, यह भी पता चल जाएगा। लेकिन मैं जीवन नहीं हूं, जीवन का सिर्फ एक रूप हूं। जैसे हम एक सागर में जाएं, एक लहर कब पैदा हुई, पता चल जाएगा; एक लहर कब गिरी, यह भी पता चल जाएगा; लेकिन लहर सिर्फ एक रूप है सागर का। सागर कब शुरू हुआ? सागर कब अंत होगा? और अगर सागर का भी पता चल जाए तो फिर सागर भी एक लहर है और बड़े विस्तार की।
अंततः जो है गहराई में, वह सदा से है; उसकी ऊपर की लहरें आई हैं, गई हैं, बदली हैं; आएंगी, जाएंगी, बदलेंगी; पर जो गहराई में है, जो केंद्र में है, वह सदा से है।
और यह हमारे ख्याल में आ जाए तो प्रारंभ का प्रश्न समाप्त हो जाता है, अंत का प्रश्न भी समाप्त हो जाता है। सूरज ठंडा होगा, क्योंकि सूरज गरम हुआ है। जो गरम होगा, वह ठंडा होगा--वक्त कितना लगता है, यह दूसरी बात है। एक दिन सूरज ठंडा था, एक दिन सूरज फिर ठंडा हो जाएगा। एक दिन पृथ्वी ठंडी होगी। इनके भी जीवन हैं। असल में हमें ख्याल में नहीं है। पृथ्वी भी... । इसे थोड़ा समझ लेना उपयोगी होगा। हम कहते हैं कि मैं जीवित हूं, लेकिन
हम कभी ख्याल नहीं करते कि हमारे शरीर में करोड़ों कीटाणु भी जीवित हैं। उन कीटाणुओं का अपना जीवन है। और उन सारे कीटाणुओं से मिले हुए शरीर में एक और जीवन है, जो हमारा है।
पृथ्वी का अपना एक जीवन है। इसलिए महावीर कहते हैं उसकी अपनी, यह पृथ्वी काया है उस जीव की, उसका अपना जीवन है। उस पृथ्वी पर पौधे, पक्षियों, मनुष्यों, इन सबका अपना जीवन है; लेकिन पृथ्वी का अपना जीवन है, पृथ्वी की खुद अपनी जीवन-धारा है। उसका जन्म हुआ है, वह मरेगी। सूरज का अपना जीवन है, चांद का अपना जीवन है, वह भी शुरू हुआ है, उसका भी अंत होगा। लेकिन जीवन का, अस्तित्व का, एक्झिस्टेंस का कोई अंत नहीं है। ऐसा ही समझ लें कि अस्तित्व का एक सागर है, उस पर लहरें उठती हैं, आती हैं, जाती हैं;

लेकिन पूरे अस्तित्व का कभी प्रारंभ हुआ हो, ऐसा नहीं है। ऐसा हो ही नहीं सकता।
इसे ऐसा समझना चाहिए, हमारे सारे तर्क एक सीमा पर जाकर व्यर्थ हो जाते हैं। हम यहां लकड़ी के तख्तों पर बैठे हुए हैं। कोई हमसे पूछ सकता है, आपको कौन संभाले हुए है? तो हम कहेंगे, लकड़ी के तख्ते। फिर कोई पूछ सकता है, लकड़ी के तख्तों को कौन संभाले हुए है? तो हम कहेंगे, जमीन। और कोई पूछ सकता है, जमीन को कौन संभाले हुए है। तो शायद हम कहें कि ग्रहों-उपग्रहों का ग्रेविटेशन है, वह जमीन को संभाले हुए है। फिर कोई पूछे कि ग्रह-उपग्रह को कौन संभाले हुए है? तो शायद हम और खोजते चले जाएं। लेकिन अंततः कोई पूछे कि इस टोटल को, इस समग्र को, इस पूरे को--जिसमें सब आ गया है; ग्रह, उपग्रह, तारे, पृथ्वी, सब--इस सबको कौन संभाले हुए है? तो हम उससे कहेंगे, अब बात जरा ज्यादा हो गई। इस सबको कौन संभाले हुए है, यह प्रश्न असंगत है। क्योंकि हमने कहा, सबको कौन संभाले हुए है? अगर संभालने वाले को हम बाहर रखते हैं तो सब अभी हुआ नहीं, और अगर उसे भीतर कर लेते हैं तो बाहर कोई बचता नहीं जो उसे संभाले। सबको कोई भी नहीं संभाले हुए है, सब स्वयं संभला हुआ है। एक-एक चीज को एक-एक दूसरा संभाले हुए है, लेकिन दि टोटल, उसे कोई भी नहीं संभाले हुए है, वह स्वयं संभला हुआ है, वह स्वयंभू है।
इसलिए महावीर कहते हैं, जीवन स्वयंभू है--न इसका कोई बनाने वाला, न कोई इसका मिटाने वाला; यह स्वयं है। क्योंकि वे यह कहते हैं कि इससे क्या फायदा कि तुम एक आदमी को और लाओ बीच में, फिर कल यही सवाल उठे कि उसको कौन बनाने वाला है? फिर तुम किसी और को लाओ, फिर वही सवाल उठे। फिर परमात्मा का प्रारंभ कब हुआ, यह सवाल उठे। और फिर परमात्मा की मृत्यु कब होगी, यह सवाल उठे। इन सवालों में जाने का कोई अर्थ नहीं है। इसलिए महावीर उस हाइपोथीसिस को, उस परिकल्पना को एकदम इनकार कर देते हैं।
और मेरी अपनी समझ है कि जो लोग भी अस्तित्व की गहराई में गए हैं, वे स्रष्टा की धारणा को इनकार ही कर देंगे। उनकी परमात्मा की धारणा स्रष्टा की, क्रिएटर की धारणा नहीं होगी, उनकी परमात्मा की धारणा जीवन के विकास की चरम-बिंदु की धारणा होगी।
यानी सामान्यतया जिसको हम आस्तिक कहते हैं, उसका परमात्मा पहले है। महावीर की जो आस्तिकता, जो महावीर की है, उसमें परमात्मा चरम विकास है। और इसलिए रोज होता रहेगा ऐसा। एक लहर गिर जाएगी और सागर हो जाएगी, लेकिन दूसरी लहरें उठती रहेंगी। तो इसलिए कोई कभी अंत नहीं हो जाएगा। लहरें उठती रहेंगी, गिरती रहेंगी, सागर सदा होगा।
इसलिए आस्तिक वह है, जो लहरों पर ध्यान नहीं देता; उस सागर पर ध्यान देता है, जो सदा है। आस्तिक वह है, जो बदलाहट पर ध्यान नहीं देता; उस पर ध्यान देता है, जो कभी भी नहीं बदला है। आस्तिक वह है, जो अपरिवर्तनीय पर जिसकी दृष्टि चली जाती है, फिर परिवर्तन सब सपना हो जाता है। क्योंकि क्या मतलब है? फिर जीवन का यथार्थ विलीन हो जाता है और जीवन के यथार्थ की जगह स्वप्न की सत्ता खड़ी हो जाती है। क्या मतलब है?
मरते वक्त, एक आदमी मर रहा है, उससे हम पूछें कि सच में ही तूने जिस स्त्री को प्रेम किया था, वह तूने किया ही था या कि कोई सपना देखा था? तो मरते आदमी को तय करना बहुत मुश्किल है कि जिंदगी में उसने जो लाखों कमाए थे, वे कमाए ही थे या कि कोई सपना देखा था?
बर्ट्रेंड रसेल ने एक बहुत मजाक की है। बर्ट्रेंड रसेल ने यह मजाक की
है कि मरते वक्त मैं तय नहीं कर पाऊंगा कि जो हुआ, वह सच में हुआ था या कि मैंने एक सपना देखा है! और कैसे तय करूंगा? दोनों में फर्क क्या करूंगा कि वह सच में हुआ था?
आप ही पीछे लौट कर देखिए जो बचपन गुजर गया, वह आपका एक सपना था या कि सच में था? आज तो आपके पास सिवाय एक स्मृति के कुछ भी नहीं रह गया है। और मजे की बात यह है कि जिसे हम जीवन कहते हैं, उसकी स्मृति भी वैसी ही बनती है, जैसा हम सपना कहते हैं, उसकी स्मृति बनती है।
इसलिए छोटे बच्चे तय भी नहीं कर पाते। छोटा बच्चा रात में अगर सपना देख लेता है कि उसकी गुड्डी किसी ने तोड़ दी तो सुबह रोता हुआ उठता है और पूछता है, मेरी गुड्डी तोड़ डाली गई है। उसे अभी साफ नहीं है कि उसने जो

सपना देखा उसमें और जाग कर जो गुड्डी देख रहा है उसमें फर्क है। उसके लिए एक कंटिन्युटी है। दिन में वह देखता है, वह एक सपना है; रात जो देखता है, वह एक सपना है! या रात जो देखता है, वह एक सत्य है; सुबह जो देखता है, वह एक सत्य है! अभी उसे फासला, फर्क नहीं है। इसलिए हो सकता है सपने में डरा हो और जाग कर रोता रहे। और समझाना मुश्किल हो जाए, क्योंकि हमें पता ही नहीं है उसके कारण का कि वह डरा किस वजह से है। हो सकता है सपने में किसी ने उसे मार दिया हो और वह रोए चला जा रहा है जाग कर। उसके लिए फासला नहीं है अभी। जो लोग थोड़े जीवन की गहराई में उतरेंगे, वे अंत में फिर इस जगह पर पहुंच जाते हैं कि फासले फिर खो जाते हैं।
च्वांगत्से चीन में एक अदभुत विचारक हुआ। एक रात सपना देखा, सुबह उठा
और बहुत परेशान था! मित्रों ने पूछा, आप इतने परेशान? हमारी परेशानी होती है, हम आप से सलाह लेते हैं। आज आप परेशान हैं! क्या हो गया आपको? उसने कहा कि आज मैं बड़ी मुश्किल में पड़ गया हूं। रात मैंने एक सपना देखा कि मैं तितली हो गया हूं और फूल-फूल पर भटक रहा हूं।
तो मित्रों ने कहा, इसमें क्या परेशान होने की बात है! सपने सभी देखते हैं। उसने कहा, नहीं, इससे परेशान होने की बात नहीं। अब मैं इस चिंता में पड़ गया हूं कि अगर रात च्वांगत्से नाम का आदमी सोया और तितली हो गया सपने में, तो कहीं ऐसा तो नहीं है कि वह सपने की तितली अब सो गई है और सपना देख रही है च्वांगत्से हो जाने का? क्योंकि जब आदमी सपने में तितली हो सकता है तो तितली सपने में आदमी हो सकती है। अब मैं सच में हूं या कि तितली सपना देख रही है--अब यह मैं कैसे तय करूं? कैसे तय करूं? उसने खूब मजाक में डाल दिया है।
और वह जिंदगी भर लोगों से पूछता रहा कि मैं कैसे तय करूं? कैसे तय हो
इस बात का?
जैसे ही कोई आदमी गहरे जीवन में उतरेगा--वहीं से सपने आते हैं, वहीं से जीवन भी आता है। सब लहरें वहीं से आती हैं। इसलिए सब लहरें एक अर्थ में समानार्थी हो जाती हैं। और तब सुख और दुख बेमानी है; तब प्रारंभ और अंत बेमानी है; तब ऐसा होना और वैसा होना बेमानी है; तब एक स्थिति है कि सब स्थितियों में आदमी राजी है।
लेकिन चूंकि हम लहरों का हिसाब रखते हैं, इसलिए हम परम सत्य के बाबत
भी पूछना चाहते हैंः वह कब शुरू हुआ? कब अंत होगा?
सूरज बनेगा, मिटेगा--वह भी लहर है। जरा देर चलने वाली है, अरब, दो अरब,
दस अरब वर्ष चलेगी। पृथ्वी भी मिटेगी, बनेगी; वह भी एक लहर है। हजारों पृथ्वियां बनी हैं और मिट गई हैं। हजारों सूरज बने हैं और मिट गए हैं। और प्रतिदिन कहीं किसी कोने पर कोई सूरज ठंडा हो रहा है, और किसी कोने पर कोई सूरज जन्म ले रहा है। अभी भी, इस वक्त भी, अभी जब हम यहां बैठे हैं तो कुछ सूरज बूढ़े हो रहे हैं, कोई सूरज मर रहा होगा कहीं; कोई सूरज अभी मरा होगा, कहीं सूरज नया जन्म ले रहा होगा; कई सूरज बच्चे हैं अभी, कई जवान हो रहे हैं। हमारा सूरज भी बूढ़ा होने के करीब पहुंचा जा रहा है, उसकी उम्र ज्यादा नहीं है। वह चार-पांच हजार वर्ष लेगा कि वह ठंडा हो जाएगा। हमारी पृथ्वी भी बूढ़ी होती चली जाएगी, वह भी बूढ़ी होती चली जा रही है। जगत में कोई ऐसी चीज नहीं है... ।
पर होता क्या है, एक छोटी सी इल्ली है, वह समझो कि वर्षा में ही पैदा होती है, वह वृक्ष पर चढ़ रही है। वृक्ष उसको बिल्कुल सनातन मालूम पड़ता है। उसके बाप भी इसी पर चढ़े थे, उसके बाप भी इसी पर चढ़े थे, उसके बाप भी इसी पर चढ़े थे। यह वृक्ष बिल्कुल सनातन मालूम होता है। यह बिल्कुल शाश्वत मालूम होता है। यह कभी मिटता हुआ नहीं मालूम होता। इल्ली की हजारों पीढ़ियां गुजर जाती हैं और यह वृक्ष है कि ऐसे ही खड़ा रह जाता है।
तो इल्लियां सोचती होंगी, वृक्ष सनातन हैं, ये कभी नहीं मिटते। वृक्ष
न कभी पैदा होते, न कभी मरते; इल्लियां पैदा होती हैं और मर जाती हैं, वृक्ष सदा होते हैं। क्योंकि वृक्ष की उम्र है दो सौ वर्ष और इल्ली एक मौसम में जीती और मर जाती है। उसकी दो सौ पीढ़ियां एक वृक्ष पर गुजर जाती हैं। दो सौ पीढ़ियों में इतना लंबा फासला है।

हमारी दो सौ पीढ़ियों में कितना लंबा फासला है, आपको हिसाब है? महावीर
से हमारा फासला कितना है? पच्चीस सौ वर्ष ही न? अगर हम पचास वर्ष की भी एक पीढ़ी मान लें तो कितना सा फासला है! कितनी सी पीढ़ियां गुजरीं! कोई बहुत ज्यादा नहीं।
न तो कोई प्रारंभ है, न कोई अंत है।
जो है--उसका न कोई प्रारंभ है, न अंत है।
और जिसका प्रारंभ और अंत है, वह केवल एक रूप है, एक आकार है। आकार बनेंगे और बिगड़ेंगे, आकृति उठेगी और गिरेगी, सपने पैदा होंगे और खोएंगे। लेकिन जो है सत्य, वह सदा है, और सदा है, और सदा है। उसे हम कभी ऐसा भी नहीं कह सकते कि था। सत्य के लिए ऐसा नहीं कह सकते कि था, सत्य के लिए ऐसा नहीं कह सकते कि होगा, सत्य के लिए तो एक ही बात कह सकते हैं कि है, और है, और है। और अगर बहुत गहरे जब कोई जाता है तो वह पाता है कि यह कहना भी गलत है कि सत्य है, क्योंकि जो है, वही सत्य है।
तो सत्य के साथ है को भी जोड़ना बेमानी है; क्योंकि है उसके साथ जोड़ा जा सकता है, जो नहीं है हो सकता हो। हम कह सकते हैं यह मकान है, क्योंकि मकान नहीं है भी हो सकता है। लेकिन सत्य है--इस कहने में कठिनाई है थोड़ी; क्योंकि सत्य नहीं है कभी नहीं हो सकता।
इसलिए सत्य और है पर्यायवाची हैं, सिनानिम्स हैं; इनको दोहरा उपयोग करना एक साथ पुनरुक्ति है। सत्य है, इसका मतलब है कि जो है वह है। इसका और कोई मतलब नहीं है। है यानी है, इसका इतना मतलब है। एक्झिस्टेंस इज़, ऐसा कहना गलत है; इज़नेस इज़ एक्झिस्टेंस। वह जो होना है, जो इज़नेस है, जो है, वही सत्य है। इसलिए सत्य है, इस कहने में भी पुनरुक्ति हो गई, दो शब्द आ गए हैं। है अलग से आ गया है। और है उन चीजों के लिए काम में आता है जो नहीं है भी हो जाती हैं।
इस दृष्टि का थोड़ा सा ख्याल आ जाए तो सब बदल जाता है--सब बदल जाता है।
तब पूजा और प्रार्थना नहीं उठती, तब मंदिर और मस्जिद नहीं खड़ी होती, लेकिन सब बदल जाता है। आदमी मंदिर बन जाता है। आदमी का उठना, चलना, बैठना, सब पूजा और प्रार्थना हो जाती है। क्योंकि जब इतना विस्तार का बोध आता है तो अपनी क्षुद्रता एकदम खो जाने का अर्थ रखने लगती है। फिर उसका कोई मतलब नहीं रह जाता, उसका कोई अर्थ नहीं है।
मैं हूं इसका अर्थ नहीं है; मैं था इसका अर्थ नहीं है; मैं होऊंगा इसका अर्थ नहीं है। लेकिन मेरे भीतर जो सदा है, वही सार्थक है। और वह सबके भीतर है, और वह एक ही है। तो व्यक्ति खो जाता है, अहंकार खो जाता है। तब जिसका जन्म होता है, उसी को हम कहें बदला हुआ चित्त, बदली हुई चेतना, ट्रांसफार्म्ड माइंड--जो भी नाम देना चाहें उसे हम दे सकते हैं।

प्रश्नः जड़ और चेतन दो पृथक चीजें हैं या एक ही वस्तु के दो रूप हैं?

नहीं, बिल्कुल पृथक चीजें नहीं हैं। पृथक दिखाई पड़ती हैं। पृथक दिखाई पड़ती हैं। जड़ का मतलब है इतना कम चेतन कि हम अभी उसे चेतन नहीं कह पाते। चेतन का मतलब है इतना कम जड़ कि हम उसे अब जड़ नहीं कह पाते। वे एक ही चीज के दो छोर हैं।
जड़ता ही निरंतर चेतन होती चली जा रही है। और जड़ता चेतन होती चली जा रही है इसीलिए कि जड़ता में भीतर कहीं चेतन छिपा है। फर्क सिर्फ प्रकट और अप्रकट का है, मैनिफेस्टेड और अनमैनिफेस्टेड का है। जिसको हम जड़ कहते हैं, वह अप्रकट चेतन है, जिसकी अभी चेतना प्रकट नहीं हुई है। जिसको हम चेतन कहते हैं, वह प्रकट हो गया जड़ है, जिसका पूरा सब प्रकट है।
एक बीज रखा है और एक वृक्ष खड़ा है, कौन कहेगा कि बीज और वृक्ष एक ही हैं? क्योंकि कहां वृक्ष, कहां बीज! लेकिन बीज में वृक्ष अप्रकट है बस, इतना ही फर्क है। ऐसे दो दिखाई पड़ते हैं, दो हैं नहीं। और जहां-जहां हमें दो दिखाई पड़ते हैं, वहां-वहां दो नहीं हैं। है तो एक ही, लेकिन हमारी देखने की क्षमता इतनी सीमित है कि हम दो में ही देख सकते हैं। वह सीमित क्षमता के कारण, क्योंकि जड़ में हमें चेतन दिखाई नहीं पड़ता, और चेतन को हम कैसे जड़ कहें?

और इसीलिए जो झगड़ा चलता आ रहा है निरंतर से, वह एकदम बेमानी था। जिन लोगों ने कहा कि पदार्थ ही है, वे भी ठीक कहते हैं। वे ठीक कहते हैं इसी अर्थों में कि वे कहते हैं चेतन यानी क्या? सब पदार्थ से ही तो आ रहा है। तो कहा जा सकता है कि पदार्थ ही है, इसमें झगड़ा कहां है? कोई कहता है कि नहीं, पदार्थ है ही नहीं, बस चेतन ही है। वे भी ठीक ही कहते हैं।
वे ऐसे ही लोग हैं, जैसे एक कमरे में आधा गिलास भरा पानी रखा हो और एक आदमी बाहर आए और कहे कि गिलास आधा खाली है, और दूसरा आदमी बाहर आए और वह कहता है, गलत बोलते हो बिल्कुल, गिलास आधा भरा है। और दोनों विवाद करें। और तब दो संप्रदाय बन जाएं। और ऐसे लोगों के संप्रदाय बनते हैं, जो भीतर कभी जाते नहीं देखने कि गिलास कैसा है! मकान के बाहर ही जो निर्णय करते हैं, वे संप्रदाय बनाते हैं। दो आदमी खबर लाए हैं कि मकान के भीतर जो गिलास है, वह आधा खाली है एक कहे; और एक कहे बिल्कुल ही गलत है यह बात, मैंने अपनी आंख से देखा, गिलास आधा भरा है।
वे दोनों ही ठीक कहते हैं। और दोनों एक साथ ही ठीक हैं। नहीं तो एक भी ठीक नहीं हो सकता उनमें से। सिर्फ उनकी एंफेसिस, उनका जोर भिन्न है। एक खाली पर जोर देकर चला आया है, एक भरे पर।
जो लोग पदार्थ पर जोर दे रहे हैं, वे भी ठीक हैं। उनके जोर में गलती नहीं है। यह भी कहा जा सकता है कि पदार्थ ही है, सब पदार्थ है। यह भी कहा जा सकता है, सब चेतन है। क्योंकि पदार्थ और चेतन दो चीजें नहीं हैं, पदार्थ चेतन की अप्रकट स्थिति है और चेतन पदार्थ की प्रकट स्थिति है।
तो मेरी दृष्टि में जिस दिन दुनिया और ज्यादा संप्रदायों से उठ कर, मतों से उठ कर देखना शुरू करेगी; उस दिन मैटीरियलिस्ट और स्प्रिचुएलिस्ट में कोई झगड़ा नहीं रह जाना चाहिए; उस दिन भौतिकवादी और अध्यात्मवादी में कोई झगड़ा नहीं रह जाना चाहिए। वह आधे गिलास का झगड़ा है।
हां, लेकिन फिर भी मैं पसंद करूंगा कि जोर, सब चेतन है, इस पर दिया जाए।
यह मैं क्यों पसंद करूंगा, जब कि वह बात भी ठीक है? पसंद इसलिए करूंगा कि जब हम इस बात पर जोर देते हैं कि सब पदार्थ है, तो हमारी चेतना के प्रकट होने में बाधा पड़ती है--इस जोर से। जब हम यह कहते हैं, सब पदार्थ है, इस बात में कोई भूल नहीं है। यह बात बिल्कुल ठीक हो सकती है, है ही ठीक। लेकिन जब हम इस बात पर जोर देते हैं कि सब पदार्थ है तो हमारी चेतना के विकास में बाधा पड़ती है, क्योंकि हम सोचते हैं, सब पदार्थ है, ठीक है। लेकिन जब हम इस बात पर जोर देते हैं कि सब चेतन है तो हमारी चेतना पर बल पड़ता है और विकास की संभावना उदभूत होती है।
इसलिए अध्यात्मवाद में और पदार्थवाद में बुनियादी भेद नहीं है। भेद सिर्फ इस बात का है कि पदार्थवाद आदमी को रोक सकता है विकास से, क्योंकि जब सब पदार्थ ही है तो बात खतम हो गई। और अध्यात्मवाद विकासशील बना सकता है आदमी को। लेकिन जब कोई पहुंचता है सत्य पर जीवन के, तो वह पाता है, दोनों बातें ठीक थीं, बातों में कोई झगड़ा न था, लेकिन एंफेसिस में फिर भी फर्क पड़ता था। और फर्क उपयोगी था, बहुत उपयोगी था।
एक, भोज के जीवन में एक उल्लेख है कि एक ज्योतिषी आया। भोज का हाथ देखा
और ज्योतिषी ने कहा, तुम बड़े अभागे हो। तुम अपनी पत्नी को भी मरघट पहुंचाओगे, अपने बेटों को भी मरघट पहुंचाओगे। तुम्हें घर के एक-एक सदस्य को मरघट पहुंचाना पड़ेगा, सबके बाद में तुम मरोगे। भोज तो बहुत नाराज हो गया और उसने ज्योतिषी को हथकड़ियां डलवा दीं और कहा कि इसे बंद कर दो। आदमी कैसा है, कैसी अपशकुन की बातें बोलता है!
कालीदास चुपचाप बैठा था, वह खूब हंसने लगा। उसने कहा कि ज्योतिषी कुछ अपशकुन नहीं बोलता, सिर्फ बोलने की समझ नहीं है, जोर गलत चीज पर देता है। कालीदास ने जब यह कहा तो भोज ने कहा, क्या मतलब? तो कालीदास ने कहा कि मैं आपका हाथ देखूं? हाथ देख कर कालीदास ने कहा, बहुत धन्यभागी हैं आप! आपकी उम्र बहुत ज्यादा है। और धन्यभागी इस अर्थों में हैं कि न तो आपकी मृत्यु से आपकी पत्नी दुखी होगी, न आपकी मृत्यु से आपके बेटे कभी दुखी होंगे, कोई दुखी नहीं होगा। आप बड़े धन्यभागी हैं। और भोज ने कहा कि जितना इनाम चाहिए लो, ऐसी शकुन की बात करनी चाहिए, अपशकुन की नहीं।

अब यह जो--यह एंफेसिस का फर्क है, लेकिन चित्त पर इसके परिणाम भिन्न होने वाले हैं। पहली बात बड़ा उदास कर गई होगी, दूसरी बात बड़ा प्रसन्न कर गई। और बात बिल्कुल एक थी। पहले आदमी ने कुछ भी गलत न कहा था, दूसरे आदमी ने कुछ ज्यादा सही न कह दिया था, लेकिन उनके कहने के ढंग, उनका जोर बदल गया था। पदार्थवाद मनुष्य को एकदम उदास कर जाता है, बात वही है। अध्यात्मवाद उसे एक पुलक देता है, एक गति देता है, विकास के द्वार खोलता है, कुछ होने की संभावना प्रकट करता है। इसलिए मैं फिर भी जारी रखूंगा यह बात कहना कि अध्यात्मवाद ही ठीक कहता है, यद्यपि भौतिकवाद गलत नहीं कहता है।

प्रश्नः कब से प्रकृति पैदा हुई, यह तो हाइपोथीसिस है, यह मान कर चलते हैं। और महावीर स्वामी ने जो कहा, इज़ इट नाट दि लिमिटेशंस ऑफ दि नालेज ऑफ वन मैन, दैट वी कैन नाट रियलाइज दि थिंग्स?

नहीं, यह सवाल ही नहीं है। यह मनुष्य के ज्ञान की सीमा का सवाल नहीं है, मनुष्य का ज्ञान कितना ही असीम हो जाए तो भी प्रारंभ की संभावना नहीं है।

प्रश्नः जानने की?

नहीं, नहीं। जानने की नहीं, प्रारंभ के होने की, जानने का तो सवाल ही नहीं है। अगर प्रारंभ है तो जाना जा सकता है। जो है, वह जाना जा सकता है। अब जो नहीं है, उसके लिए क्या करिएगा? प्रारंभ असंभव है। ज्ञान की सीमा का सवाल ही नहीं है। यानी ऐसा नहीं है कि महावीर यह कहते हैं कि मुझे पता नहीं है कि प्रारंभ है कि नहीं। मैं भी ऐसा नहीं कह रहा हूं कि यह हमारे ज्ञान की सीमा है कि हमें पता नहीं चल सकता कि प्रारंभ कब हुआ।
नहीं, यह सवाल नहीं है। सवाल यह है कि प्रारंभ की अवधारणा, वह जो हाइपोथीसिस है प्रारंभ की, वह इंपासिबल है, वह पासिबल नहीं है। वह इसलिए असंभव है कि प्रारंभ के लिए भी पहले कुछ सदा से होना चाहिए, नहीं तो प्रारंभ भी नहीं हो सकता। यानी प्रारंभ के संभव होने के लिए भी प्रारंभ के पहले अस्तित्व चाहिए, नहीं तो प्रारंभ भी संभव नहीं हो सकता। और जब पहले अस्तित्व चाहिए तो वह प्रारंभ नहीं रह गया। और फिर इसको आप पीछे खींचते चले जाएं।
जैसे समझ लें कि कोई आदमी कहे कि दुनिया की, जगत की एक सीमा है। और हम कहें, भई, हमें तो सीमा का कोई पता नहीं कि एक जगह जगत समाप्त हो जाता है, अस्तित्व एक जगह जाकर समाप्त हो जाता है जिसके आगे कुछ भी नहीं है। तो हम कहें, हमें पता नहीं है। हो सकता है एक दिन आदमी उस जगह पहुंच जाए, जहां जगत समाप्त हो जाता है। क्योंकि हमारा ज्ञान अभी सीमित है, हम बहुत थोड़ा सा ही तो जानते हैं। अभी चांद पर ही तो पहुंच पाए मुश्किल से और जगत तो, अस्तित्व तो बड़ा विस्तीर्ण है। कभी हम पहुंच पाएंगे, नहीं कह सकते। इसलिए अंत के संबंध में हम कैसे कहें?
नहीं, लेकिन मैं कहता हूं कि अंत नहीं हो सकता। अंत असंभव है। अंत इसलिए असंभव है कि किसी भी चीज का अंत सदा दूसरे का प्रारंभ होता है। यानी अगर हम किसी दिन एक ऐसी जगह पहुंच जाएं, जहां एक रेखा आ जाती हो; हम कह सकें जगत अंत हुआ, तो रेखा बनेगी कैसे?
रेखा बनती है दो के अस्तित्व से, एक शुरू होता हो और एक अंत होता हो। जहां आपका मकान खतम होता है, वहां पड़ोसी का शुरू हो जाता है। इसीलिए खतम होता है, नहीं तो खतम होता ही नहीं। जहां कुछ अंत होता है, वहीं प्रारंभ हो जाता है। यानी प्रत्येक अंत प्रारंभ को जन्म देता है और प्रत्येक प्रारंभ अंत को जन्म देता है।
जहां ऐसी स्थिति हो, वहां हम बिना किसी दिक्कत के यह कह सकते हैं कि चाहे कितना ही मनुष्य कहीं पहुंच जाए, ऐसा कभी नहीं होगा कि मनुष्य कह दे कि आ गई जगत की सीमा, अब इसके आगे कुछ भी नहीं है। लेकिन आगे तो होगा। बात खतम हो गई। इतना भी अगर रहा कि उसने कहा कि अब इसके आगे कुछ भी नहीं है; पर

आगे तो होगा, स्पेस तो होगी। और तब फिर आगे तो अभी जारी रहा, खतम कहां हो गया?
यानी आप कंसीव नहीं कर सकते ऐसा कि एक जगह ऐसी आ गई, जिसके आगे आगे भी नहीं है। ऐसी जगह कैसे आएगी? और इसलिए इनकंसीवेबल है, इंपासिबल है। न तो अवधारणा हो सकती है और न संभावना है।
महावीर का दावा इसलिए जारी रहेगा। वह दावा किसी भी दिन खंडित नहीं हो सकता। यानी अगर किसी दिन हमने पता भी लगा लिया कि इस दिन पृथ्वी का प्रारंभ हुआ, तो हम पाएंगे कि उसके पहले कुछ है, जिससे प्रारंभ हुआ। फिर उसका पता लगा लिया, तो पता चलेगा उसके पहले कुछ है, जिससे प्रारंभ हुआ। यानी प्रारंभ चूंकि शून्य से नहीं हो सकता है, और अगर शून्य से प्रारंभ हो सके तो फिर शून्य को शून्य कहना गलत होगा। उसका मतलब होगा कि शून्य में भी बीज की तरह कुछ छिपा है, जो प्रकट हो सकता है, फिर वह शून्य नहीं रहा। शून्य का मतलब है जिसमें कुछ भी नहीं छिपा है, जो है ही नहीं।
तो इसका जो कारण है, वह यह नहीं है कि मनुष्य का ज्ञान सीमित है, इसका कारण यह है कि ज्ञान कितना ही बढ़ जाए, प्रारंभ की धारणा असंभव है, प्रारंभ कभी हो ही नहीं सकता। यानी उस प्रारंभ होने की धारणा में ही उसका विरोध छिपा हुआ है। वह कैसे होगा? और जहां से भी होगा, पूर्व-स्थितियों की जरूरत पड़ेगी। और वे पूर्व-स्थितियां प्रारंभ को खंडित कर देती हैं।

प्रश्नः जीवन की भिन्न-भिन्न प्रतिकूल परिस्थितियों में महावीर की मानसिक स्थिति का विश्लेषण उपलब्ध नहीं होता। आज जो साहित्य उपलब्ध है, उसके आधार पर उनकी अंतरंग स्थिति का स्पष्टीकरण क्या हो सकेगा?

यह बहुत बढ़िया सवाल है। बढ़िया इसलिए है कि हम सबके मन में उठ सकता है
कि भिन्न-भिन्न अनुकूल, प्रतिकूल परिस्थितियों में महावीर जैसे व्यक्ति की चित्त-दशा क्या होती है? कोई उल्लेख नहीं है। तो कोई सोच सकता है कि उल्लेख इसलिए नहीं है कि महावीर ने कभी कहा न हो।
यह कारण नहीं है। उल्लेख न होने का कारण बहुत दूसरा है और बहुत गहरा, बुनियादी है। महावीर जैसी चेतना के व्यक्ति में परिस्थितियों से कोई भेद नहीं पड़ता। इसलिए भिन्न-भिन्न परिस्थिति कहने का कोई अर्थ नहीं है। भिन्न-भिन्न परिस्थिति में, प्रतिकूल-अनुकूल में चित्त सदा समान है। जैसे कि किसी ने गाली दी, तो हम क्रोधित होते हैं; और किसी ने स्वागत किया तो हम आनंदित होते हैं। प्रत्येक स्थिति में हमारा चित्त रूपांतरित होता है। जैसी स्थिति होती है, वैसा चित्त हो जाता है।
इसी को महावीर कहते हैं कि यह बंधन की अवस्था है। स्थिति जैसी होती है, वैसा चित्त को होना पड़ता है तो फिर हम बंधे हुए हैं। स्थिति दुख की होती है तो हमें दुखी होना पड़ता है, स्थिति सुख की होती है तो हमें सुखी होना पड़ता है। इसका मतलब यह हुआ कि चित्त की अपनी कोई दशा नहीं है। चित्त सिर्फ बाहर की स्थिति जो मौका दे देती है, वैसा हो जाता है। इसका अर्थ हुआ कि अभी चित्त उपलब्ध ही नहीं हुआ है, चेतना अभी उपलब्ध ही नहीं हुई है। अभी हम उस जगह नहीं पहुंचे, जहां कि क्रिस्टलाइजेशन हो जाता है, जहां कि हम कुछ हैं और स्थितियां कोई फर्क नहीं लातीं। सुख आए तो, दुख आए तो, प्रतिकूल और अनुकूल जैसी चीज ही नहीं होती एक चित्त-दशा में। जो होता है, वह होता है। और चित्त जैसा है वैसा होता है।
महावीर के इसलिए अंतरंग चित्त में क्या हो रहा है? किसी दिन बहुत शिष्य इकट्ठे हुए होंगे तो महावीर का मन कैसा है? किसी दिन कोई नहीं आया होगा गांव में सुनने तो महावीर का मन कैसा है? किसी दिन सम्राट आए होंगे सुनने और चरणों में लाखों रुपए रखे होंगे और किसी दिन कोई भिखारी भी नहीं आया, तो महावीर का मन कैसा है? किसी गांव में स्वागत-समारंभ हुए होंगे, फूलमालाएं पड़ी होंगी, और किसी गांव में पत्थर फेंके गए और गालियां दी गईं और गांव के बाहर खदेड़ दिया गया, तो महावीर का मन कैसा है? उस प्रश्न में यह पूछा है कि इन-इन स्थितियों में महावीर के भीतर क्या होता है?
असल में महावीर होने का मतलब ही यह है कि भीतर अब कुछ भी नहीं होता। जो होता है, वह सब बाहर ही होता है। भीतर अब कुछ भी नहीं होता है, यही महावीर

होने का अर्थ है। यही क्राइस्ट होने का अर्थ है, यही बुद्ध होने का अर्थ है, यही कृष्ण होने का अर्थ है कि अब भीतर कुछ भी नहीं होता। जो भी होता है सब बाहर ही होता है। भीतर बिल्कुल अस्पर्शित, अछूता छूट जाता है।
जैसे एक दर्पण है और दर्पण के सामने से कोई निकलता है--कोई सुंदर व्यक्ति, तो दर्पण में सुंदर तस्वीर बनती है। व्यक्ति निकल गया, तस्वीर मिट जाती है, दर्पण दर्पण रह जाता है। फिर एक कुरूप व्यक्ति निकलता है, तस्वीर बनती है कुरूप की, फिर कुरूप व्यक्ति निकल जाता है, दर्पण फिर दर्पण रह जाता है। दर्पण कुछ पकड़ता नहीं। और दर्पण सुंदर को भी वैसे ही झलकाता है जैसे कुरूप को; इसमें भी फर्क नहीं करता।
इसमें भी फर्क नहीं करता कि सुंदर को कुछ ज्यादा रस से झलका दे, कुरूप
को जरा कम रस से झलकाए, या कहे कि हटो भी! ऐसा कुछ भी नहीं करता। सुंदर है कि कुरूप है, कौन गुजरता है सामने से इससे मतलब नहीं है। दर्पण का काम है, झलका देता है। गुजर जाता है, मिट जाता है।
लेकिन फोटो-प्लेट है, वह भी दर्पण का काम करती है, लेकिन बस एक ही बार, क्योंकि जो भी उस पर अंकित हो जाता है, उसे पकड़ लेती है, फिर उसे छोड़ नहीं पाती। इसका मतलब यह हुआ कि दर्पण की घटनाएं सब बाहर ही घटती हैं, भीतर कुछ घटता नहीं। भीतर कुछ घट जाए तो जकड़ जाए। फोटो-प्लेट में भीतर घटना घट जाती है, बाहर से कोई निकलता है और भीतर घट जाता है। बाहर से तो निकल ही जाता है, वह आदमी जा भी चुका, लेकिन फोटो-प्लेट फंस गई, वह तो पकड़ गई भीतर से। हम भीतर से पकड़े जाते हैं।
और दो तरह के चित्त हैं जगत मेंः फोटो-प्लेट की तरह काम करने वाले या दर्पण की तरह काम करने वाले। फोटो-प्लेट की तरह जो काम कर रहे हैं, उन्हीं को महावीर राग-द्वेष से ग्रस्त कहते हैं। असल में फोटो-प्लेट बड़ा राग-द्वेष रखती है। राग-द्वेष का मतलब यह कि जकड़ती है जल्दी से, पकड़ती है जल्दी से, फिर छोड़ती नहीं।
राग भी पकड़ता है, द्वेष भी पकड़ता है, दोनों पकड़ते हैं। एक मित्र की तरह पकड़ता है, एक शत्रु की तरह पकड़ता है और दोनों पकड़ लेते हैं। और चित्त की जो दर्पण की निर्मलता है, वह खो जाती है। हम सब फोटो-प्लेट की तरह काम करते हैं, इसलिए बड़ी मुसीबत में पड़े होते हैं। एकदम चित्त भरता जाता है, भरता जाता है, खाली कभी होता नहीं। और फिर हर स्थिति पकड़ी जाती है। और कोई स्थिति ऐसी नहीं है जो हमारे पास से अस्पर्शित निकल जाए।
महावीर जैसे व्यक्ति दर्पण की तरह जीते हैं। असल में समाधिस्थ व्यक्ति दर्पण की तरह हो जाता है। कोई गाली देता है तो वह सुनता है, जैसे कोई सम्मान करता है तो सुनता है, लेकिन जैसे सम्मान विदा हो जाता है सुनते ही, ऐसे ही गाली भी विदा हो जाती है; भीतर कुछ पकड़ा नहीं जाता।
इसलिए महावीर के अंतरंग चित्त की अलग-अलग स्थितियां नहीं हैं, जिनका वर्णन किया जाए। इसलिए वर्णन नहीं किया गया है। कोई स्थिति ही नहीं है। अब क्या दर्पण को वर्णन करो बार-बार? इतना ही कहना काफी है कि दर्पण है। जो भी आता है सो झलकता है, जो भी चला जाता है, झलक बंद हो जाती है।
अब इसको रोज-रोज क्या लिखो! इसको रोज-रोज क्या कहो! इसे कहने का कोई भी अर्थ नहीं है। न महावीर की, न क्राइस्ट की, न बुद्ध की, न कृष्ण की--किन्हीं की अंतस-परिस्थिति का कोई उल्लेख कभी नहीं किया गया। नहीं किए जाने का कारण है, उल्लेख योग्य कुछ है ही नहीं। एक समता आ गई है चित्त की, वह वैसा ही रहता है।
जैसे मैं निरंतर कहता रहता हूं कि महावीर को कुछ लोग पत्थर मार रहे हैं, या कान में कीले ठोंक रहे हैं, या गांव के बाहर खदेड़ रहे हैं, तो महावीर को मानने वाले कहते हैं कि बड़े क्षमावान थे वे। उन्होंने लौट कर गाली न दी, क्षमा कर दिया और आगे बढ़ गए! लेकिन वे भूल जाते हैं कि क्षमा तभी की जा सकती है, जब मन में क्रोध आ गया हो। क्षमा अकेली बेमानी है। वह क्रोध के साथ ही सार्थक है, नहीं तो उसका कोई अर्थ ही नहीं है। हम क्षमा कैसे करेंगे, जब हम क्रुद्ध न हुए हों? और वे कहते हैं कि उन्होंने लौट कर गाली न दी, लौट कर क्षमा दी और आगे बढ़ गए, लेकिन लौट कर कुछ दिया! और लौट कर तभी कुछ दिया जा सकता है, जब भीतर कुछ हो गया हो, नहीं तो लौट कर कुछ भी नहीं दिया जा सकता।

तो मैं आपसे कहता हूं, महावीर क्षमावान नहीं थे, क्योंकि महावीर क्रोधी नहीं थे। और महावीर ने लौट कर क्षमा भी नहीं किया। चाहे देखने वालों को लगा हो कि हमने गाली दी और इस आदमी ने गाली नहीं दी, बड़ा क्षमावान है। बस इतना ही कहना चाहिए कि इस आदमी ने गाली नहीं दी। बड़ा क्षमावान है-- गलती हो जाती है। उस आदमी ने गाली सुनी, जैसे एक शून्य भवन में आवाज गूंजे और फिर निकल जाए--चाहे गाली की, चाहे भजन की। आवाज गूंजे और निकल जाए, भवन फिर शून्य हो जाए।
इस तल पर, इस चेतना में जीने वाले व्यक्ति सूने भवन की तरह हैं, जिनमें
जो भी आता है, वह गूंजा; गूंजता जरूर है, हमसे ज्यादा गूंजता है स्पष्ट; क्योंकि हमारी संवेदनशीलता इतनी तीव्र नहीं होती। क्योंकि हमने इतनी चीजें पहले से भर रखी होती हैं।
जैसे खाली कमरा देखा न? खाली कमरे में आवाज गूंजती है और बहुत फर्नीचर भरा हो तो फिर नहीं गूंजती। हम फर्नीचर भरे हुए लोग हैं, जिसमें बहुत भरा हुआ है। फोटो-प्लेट ने बहुत इकट्ठा कर लिया है। आवाज गूंजती ही नहीं, कई दफा तो सुनाई ही नहीं पड़ती कि क्या सुना, क्या देखा, वह कुछ पता नहीं चलता। सेंसिटिविटी भी कम है।
लेकिन महावीर जैसे व्यक्ति की संवेदनशीलता तो बड़ी प्रगाढ़ है, सब गूंजता है। जरा सी आवाज होती है, सुई भी गिरती है तो गूंज जाती है। लेकिन बस गूंजती है। और जितनी देर गूंज सकती है, गूंजती है, और विदा हो जाती है। महावीर उसके प्रति कोई प्रतिक्रिया नहीं करते, न क्षमा की, न क्रोध की। असल में महावीर कहते ही यह हैं कि महावीर का सारा का सारा योग अप्रतिक्रिया योग है, प्रतिक्रिया मत करो। देखो, जानो, सुनो; लेकिन प्रतिक्रिया मत करो। देखो, जानो, सुनो; खूब देखो, खूब जानो, खूब सुनो; लेकिन प्रतिक्रिया मत करो।

प्रश्नः एक ईडियट भी प्रतिक्रिया नहीं करता!

वह इसलिए नहीं करता, क्योंकि न वह सुनता है, न वह जानता है, न वह देखता है।

प्रश्नः ईडियट एक आदमी है... ।

हां, हां, वह भी इसीलिए प्रतिक्रिया नहीं करता, क्योंकि देख भी नहीं पाता, सुन भी नहीं पाता, समझ भी नहीं पाता। और इसीलिए--यह बात इसने ठीक पूछी है--ईडियट, मंदबुद्धि, बुद्धिहीन, जड़ नहीं प्रतिक्रिया करता। इसीलिए परम स्थिति में अक्सर जड़ जैसी अवस्था मालूम होने लगती है।

प्रश्नः तो मालूम कैसे पड़े? ख्याल में कैसे आए?

तुम्हें मालूम करने की जरूरत नहीं है।

प्रश्नः अपने भीतर देखें... ।

हां, तुम अपनी फिक्र करो कि हम कहां हैं। यानी बहुत कठिन है फर्क करना। परम स्थिति को उपलब्ध व्यक्ति हमें जड़ जैसा मालूम पड़ेगा, क्योंकि हमने जड़ को ही जाना है। अगर आप एक जड़ को गाली दे दें तो हो सकता है, बैठा हुआ सुनता रहे। इसलिए नहीं कि उसने गाली सुनी, बल्कि सिर्फ इसलिए कि वह सुना ही नहीं उसने कि क्या हुआ।
महावीर को गाली दो तो हो सकता है, वे भी वैसे ही बैठे सुनते रहें। इसलिए नहीं कि उन्होंने गाली नहीं सुनी, गाली पूरी तरह सुनी, जैसी किसी आदमी ने कभी न सुनी होगी, सुनी; लेकिन कोई प्रतिक्रिया नहीं की। क्योंकि गाली की प्रतिक्रिया क्या करनी है! प्रतिक्रिया करने का फल क्या है? प्रतिक्रिया से लाभ क्या है? प्रयोजन क्या है?

तो अक्सर ऐसा होता है कि परम स्थिति को उपलब्ध व्यक्ति ठीक जड़ जैसा मालूम पड़ने लगता है--हमें, क्योंकि हमारी भाषा में हम जड़ को ही पहचानते हैं। लेकिन फर्क तो बहुत होंगे, फर्क तो बहुत गहरे होंगे। वक्त लगेगा पहचानने में। और शायद हम ठीक से कभी पहचान भी न सकें। जब तक हमारे भीतर फर्क होने शुरू न हो जाएं, तब तक शायद ठीक से पहचानना भी मुश्किल है कि क्या हो गया है उस व्यक्ति को।
यह जो कुछ अदभुत सी बात है, लेकिन दो विरोधी अतियां कभी-कभी बिल्कुल समान ही मालूम होती हैं। जैसे एक बच्चा सरल मालूम होता है, निर्दोष मालूम होता है; लेकिन अज्ञानी है, ज्ञान बिल्कुल नहीं है। परम ज्ञान को उपलब्ध व्यक्ति भी बच्चे जैसा मालूम होने लगेगा; इतना ही सरल, इतना ही निर्दोष। शायद बच्चे जैसा व्यवहार भी करने लगेगा। शायद हमें तय करना मुश्किल हो जाएगा कि इस आदमी ने बुद्धि खो दी! यह कैसा बच्चों जैसा व्यवहार कर रहा है! कैसी बाल-बुद्धि का हो गया है!
घूम कर वृत्त वापस लौट आया है। लेकिन दोनों में बुनियादी फर्क हैं। बच्चा अभी निर्दोष दिखता है, लेकिन कल निर्दोषता खोएगा। अभी सरल दिखता है, लेकिन कल जटिल होगा। यह आदमी जटिल हो चुका, निर्दोषता खो चुका; यह पुनः उपलब्धि है, सरलता वापस लौट आई है, निर्दोष फिर हो गया है। अब खोने का सवाल नहीं है। यह जान कर, जीकर वापस लौट आया है। यह उन अनुभवों से गुजर गया है, जिनसे बच्चे को गुजरना पड़ेगा।
बच्चे की सरलता अज्ञान की है, एक संत की सरलता ज्ञान की है। लेकिन दोनों सरलताएं अक्सर एक सी मालूम पड़ेंगी! एक सी मालूम पड़ेंगी--एक संत भी उतना ही सरल हो सकता है, ऐसे ही बच्चों जैसा सरल हो सकता है। और अगर संत बच्चों जैसा सरल न हो सके तो अभी वृत्त पूरा नहीं हुआ, अभी बात वापस नहीं लौटी--अभी बात वापस नहीं लौटी, जटिलता शेष रह गई है, कठिनाई शेष रह गई है। कहीं कोई चालाकी, कहीं कोई कनिंगनेस, कोई कैलकुलेशन शेष रह गया है।
जड़ और परम प्रज्ञावान में भी इसी तरह का वृत्त दिखाई पड़ेगा, जड़ जैसा
ही मालूम पड़ेगा। और इसलिए कभी-कभी बहुत भूलें हो जाती हैं। जैसे मैं फकीर नसरुद्दीन की निरंतर बात करता हूं। वह ऐसा ही आदमी था। जो देखने में परम जड़ मालूम पड़े, जिसका व्यवहार परम जड़ का हो, जिसकी कोई भी चीज ऐसे मालूम पड़े कि ईडियट की है, मूढ़ की है, लेकिन जिसमें जो देख सके तो परम ज्ञान भी दिख जाए। एकाध बात मैं बताना चाहूं।
फकीर नसरुद्दीन एक रास्ते से गुजर रहा है। एक तोते को बेचने वाला बाजार में तोता बेच रहा है और जोर से चिल्ला कर कह रहा है कि बहुत कीमती तोता है, बड़े सम्राट के घर का तोता है, इस-इस तरह की वाणियां जानता है, इस-इस भाषा को पहचानता है, इस-इस भाषा को बोलता है। और सैकड़ों लोग इकट्ठे हैं। नसरुद्दीन भी उस भीड़ में खड़ा हो गया है। कई सौ रुपए में वह तोता नीलाम हुआ और बिक गया! नसरुद्दीन ने कहा कि लोगो, ठहरो! मैं इससे भी बढ़िया तोता लेकर अभी आता हूं। भागा हुआ घर आया, अपने तोते के पिंजड़े को ले जाकर उसने बाजार में खड़ा कर दिया और उसने कहा कि वह क्या तोता था! अब दाम इसके बोलो। और जहां से उसकी बोली खतम हुई, वहां से शुरू करो। लोगों ने समझा कि उससे भी बढ़िया कोई तोता आ गया है। तो उन्होंने बोली शुरू की, लेकिन तब धीरे-धीरे किसी ने कहा... क्योंकि वह तोता जो था, पहला तोता जो था, बार-बार बोलता था, जवाब देता था। कई दफे बोली भी बढ़ाता था, खुद भी बोली बढ़ाता था, अनेक भाषाएं बोलता था, लेकिन यह बिल्कुल चुप ही था, यह कुछ बोलता-वोलता नहीं था।
थोड़ी देर में लोगों ने कहा कि लेकिन यह तोता कुछ बोलता है कि नहीं? नसरुद्दीन ने कहा कि बोलने वाले तोतों का क्या मूल्य! यह मौन तोता है, बिल्कुल सायलेंट है। यह परम स्थिति को उपलब्ध हो गया है। उन्होंने कहा, हटाओ इसको, एक पैसे में इसे कोई नहीं खरीदेगा। उसने कहा कि बड़े पागल लोग हो तुम! लोगों ने कहा, अरे, यह मूढ़ है नसरुद्दीन! इसकी बातों में क्यों पड़ते हो? यह पागल है, इसको कुछ अक्ल नहीं। इसको निकाल बाहर करो अपने तोते सहित। इसको बाहर निकालो, यह नसरुद्दीन है, वही पागल!
लोगों ने नसरुद्दीन को तोते सहित बाहर निकाल दिया। रास्ते पर लोगों
ने पूछा, कहो नसरुद्दीन, तोता बिका कि नहीं? उसने कहा कि क्या बिकता! क्योंकि वहां खरीददार बस वाणी को ही समझ सकते थे, मौन को कोई नहीं समझ

सकता; इसलिए हम पीटे भी गए और बाहर निकाले गए। इसलिए हम पीटे गए और बाहर निकाले गए, क्योंकि वहां कोई मौन को समझने वाला न था। मैंने तो सोचा कि जब वाणी के इतने दाम लग रहे हैं तो मौन का तो मजा आ जाएगा!
लेकिन... लेकिन वह आदमी ईडियट, ईडियट लगेगा न बिल्कुल! ईडियट है कि कैसा पागल आदमी है! जो तोता बोलता ही नहीं, उसको कौन खरीदेगा?
यह आदमी... नसरुद्दीन निरंतर अपने गधे पर यात्राएं करता है, गधे पर शक्कर भर कर जा रहा है। नदी बड़ी है, गधा नदी में बैठ गया, सारी शक्कर बह गई। नसरुद्दीन ने गधे से कहा कि तू हमसे भी ज्यादा बुद्धिमानी हमको दिखला रहा है? ठहर बेटे! तुझे आगे बतलाएंगे। क्योंकि हम कोई साधारण आदमी नहीं हैं, हम भी तर्क जानते हैं। गधे से कहा, हम भी तर्क जानते हैं! तू हमको तर्क सिखला रहा है!
गधे को वापस लौटा कर लाया, उस पर रुई लादी, उसे नदी के पास ले गया। गधा फिर बैठा। रुई भारी हो गई, गधे का उठना मुश्किल हो गया। उसने आस-पास के लोगों को बुला कर कहा, देखो नसरुद्दीन जीत गया, गधा हार गया! लोगों ने कहा कि तुम बिल्कुल जड़बुद्धि हो। तुम गधे से विवाद कर रहे हो? नसरुद्दीन ने कहा, विवाद गधे के सिवाय और किससे करना पड़ता है? इस आदमी ने कहा, और किससे विवाद करना पड़ता है? सब गधों से ही तो झगड़ा है, गधों से ही तो बकवास है। मगर लोगों ने कहा कि छोड़ो उसके गधे को और उसको, वे दोनों एक से हैं, उनकी बातों का कोई मतलब नहीं!
इस आदमी की जिंदगी में ऐसे बहुत मौके हैं, जब कि एकदम समझना मुश्किल
हो जाता है कि यह आदमी क्या पागलपन कर रहा है! क्या कर रहा है यह? लेकिन पीछे कहीं कोई बात है!
निकल रहा है रास्ते से, जोर की वर्षा हो रही है, एक मकान के पास बैठ गया है। गांव का जो मौलवी है, वह भी भाग रहा है वर्षा से। नसरुद्दीन दालान में बैठा हुआ चिल्लाता है कि अरे मौलवी! भागते हो? सारे गांव को बता दूंगा। तो मौलवी ने कहा कि मैंने कोई अपराध किया? क्योंकि मौलवी, पंडित, साधु सदा डरे रहते हैं कि गांव को कोई न बता दे। उसने कहा, मैंने ऐसा कौन सा पाप किया है?
उसने कहा, पाप तुम कर रहे हो। भगवान पानी गिरा रहा है और तुम भाग रहे हो, यह भगवान का अपमान है।
तो मौलवी धीरे-धीरे गया। लेकिन सर्दी पकड़ गई, जुकाम-बुखार हो गया। तीसरे दिन मौलवी अपने घर के बाहर दुलाई वगैरह ओढ़े हुए सर्दी से परेशान बैठा है और पानी गिरा, नसरुद्दीन भागा जा रहा है। तो मौलवी ने कहा कि ठहर नसरुद्दीन, मुझे तो तूने धीरे चलने को कहा था, तू क्यों भाग रहा है?
उसने कहा, भगवान के पानी पर कहीं मेरा पैर न पड़ जाए। और वह भागा।
समझे न? दूसरे दिन जब मौलवी मिला तो उसने कहा कि तू तो बड़ा बेईमान है।
तो उसने कहा कि सब समझदार बेईमान पाए जाते हैं। सब समझदार बेईमान हैं।
उसने कहा कि अगर ईमानदारी करो तो नासमझ हो जाते हैं। अगर समझदारी हो तो आदमी बेईमान कहते हैं। और फिर व्याख्या हमेशा अपने अनुकूल करनी पड़ती है।
नसरुद्दीन ने कहा, और व्याख्या हमेशा अपने अनुकूल करनी पड़ती है। शास्त्रों का क्या भरोसा! अपने पर भरोसा रखना पड़ता है। व्याख्या सदा अपने अनुकूल करनी पड़ती है। सब बुद्धिमान यही करते रहे हैं, मुझ पर क्यों नाराज होते हो? अपने मतलब से व्याख्या करते हैं। तुम जब पानी में थे तब हमने यह व्याख्या की, जब हम पानी में थे तब हमने दूसरी व्याख्या की। सभी बुद्धिमान यही करते रहे हैं।
यह जो आदमी है, यह जाहिर ईडियट था। लेकिन परम प्रज्ञा को जो लोग उपलब्ध होते हैं, उनमें से एक है वह आदमी। मगर उसे पकड़ना मुश्किल हो जाए। और कई बार उसकी बातें बड़ी बेहूदी हो जाएं, बिल्कुल समझ के बाहर हो जाएं। घर लौट रहा है, एक मित्र ने कुछ मांस दिया है भेंट, और साथ में एक किताब
दी है जिस किताब में मांस बनाने की तरकीब लिखी है। किताब बगल में दबा कर मांस हाथ में लेकर बड़ी खुशी से भागा चला आ रहा है। चील ने झपट्टा मारा, मांस ले गई। नसरुद्दीन ने कहा, अरे मूर्ख, जा! क्योंकि बनाने की तरकीब तो किताब में लिखी है।

घर पहुंचा, घर जाकर अपनी पत्नी से कहा, सुनती हो? आज एक चील बड़ी बेवकूफ निकल गई। क्या हुआ? उसने कहा, मैं मांस लेकर आ रहा था, वह मांस तो ले गई, लेकिन तरकीब तो किताब में लिखी है। उसकी औरत ने कहा, तुम बड़े बुद्धू हो। चील इतनी बुद्धू नहीं।
उसने कहा, सभी बुद्धिमानों को मैंने किताब पर भरोसा करते पाया, इसलिए मैं भी किताब पर भरोसा करता हूं।
यह जो आदमी है न, यह बिल्कुल एकदम से तो दिखेगा कि कैसा पागल है, एकदम जड़बुद्धि! लेकिन कहीं कोई बात है, कहीं कोई गहरे में उसकी भी अपनी समझ है। और वह इतने बड़े व्यंग्य भी कर रहा है और इतनी सरलता से, और इतने इनोसेंट, कि किसी के ख्याल में आएं तो प्राणों में घुस जाएं। ख्याल में न आएं तो वह आदमी बुद्धू है। बहुत बार ऐसा हो सकता है कि हमें पकड़ में ही न आ पाए कि क्या बात है। लेकिन उससे कोई--हमें पकड़ में भी तभी आएगा, जब हमारी समझ उतनी गहराई पर खड़ी हो, तभी पकड़ में आ सकता है।
एक प्रश्न और ले लें।

प्रश्नः क्या महावीर की अहिंसा पूर्ण विकसित है? क्या महावीर के आगे अहिंसा का उत्तरोत्तर विकास नहीं हुआ है? गीता और बाइबिल में महावीर से भी अधिक सूक्ष्म रूप हैं।

पहली बात तो यह कि कुछ चीजें हैं, जो कभी विकसित नहीं होतीं, विकसित हो
ही नहीं सकती हैं। ये वे चीजें हैं, जहां हमारा विचार, हमारा मस्तिष्क, हमारी बुद्धि सब शांत हो जाती है और तब हमारे अनुभव में आती हैं। जैसे कोई कहे कि बुद्ध को जो ध्यान उपलब्ध हुआ था, पच्चीस सौ साल हो गए, अब जिन लोगों को ध्यान उपलब्ध होता है, वह आगे विकसित है या नहीं? क्योंकि पच्चीस सौ साल हो गए, पच्चीस सौ साल में लोग और आगे विकसित हो गए हैं, तो ध्यान और आगे विकसित होगा।
नहीं, ध्यान है स्वयं में उतर जाना। स्वयं में कोई चाहे लाख साल पहले उतरा हो और चाहे आज उतर जाए, स्वयं में उतरने का अनुभव एक है, स्वयं में उतरने की स्थिति एक है, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। इससे कोई भेद नहीं पड़ता। महावीर को जो अहिंसा प्रकट हुई है, वह उनकी स्वानुभूति का ही बाह्य परिणाम है। भीतर उन्होंने जाना है जीवन की एकता को और बाहर उनके व्यवहार में जीवन की एकता अहिंसा के रूप में प्रतिफलित हुई है। अहिंसा का मतलब है जीवन की एकता का सिद्धांत। इस बात का सिद्धांत कि जो जीवन मेरे भीतर है, वही तुम्हारे भीतर है। तो मैं अपने को ही कैसे चोट पहुंचा सकता हूं! अगर मेरे भीतर वही जीवन है, जो तुम्हारे भीतर है तो मैं अपने को ही कैसे चोट पहुंचा सकता हूं! मैं ही हूं तुममें भी फैला हुआ।
जिसे यह अनुभव हुआ हो कि मैं ही सब में फैला हुआ हूं या सब मुझसे ही जुड़े हुए जीवन हैं, जीवन एक है, जिसे ऐसा अनुभव हुआ हो, उसके व्यवहार में अहिंसा फलित होती है। ऐसा अनुभव कभी हो तो ऐसा ही होगा, इसमें कोई फर्क पड़ने वाला नहीं है। इसमें क्राइस्ट को हो कि किसी और को हो। यह अनुभव जीवन की एकता का कम-ज्यादा कैसे हो सकता है? यह थोड़ा समझने जैसा है।
अक्सर हम सोचते हैं कि सब चीजें कम-ज्यादा हो सकती हैं। समझ लें कि आपने एक वृत्त खींचा, एक सर्किल खींचा। कभी आपने सोचा कि कोई सर्किल कम और कोई सर्किल ज्यादा हो सकता है? ऐसा हो सकता है कि जो वृत्त आपने खींचा है एक वृत्त कुछ कम वृत्त हो, दूसरा वृत्त कुछ ज्यादा वृत्त हो?
यह नहीं हो सकता। क्योंकि वृत्त का अर्थ ही यह है कि या तो वृत्त होगा
या नहीं होगा, कम-ज्यादा नहीं हो सकता। जो वृत्त कम है, वह वृत्त ही नहीं है। वृत्त ही होता है--या तो होता है या नहीं होता है, इसमें कम-ज्यादा नहीं होता।
जैसे प्रेम है, कोई आदमी कहे कि मुझे थोड़ा कम प्रेम है या थोड़ा ज्यादा प्रेम है, तो शायद उस आदमी को प्रेम का कोई पता नहीं है। प्रेम या तो होता है या नहीं होता है, उसका कोई खंड नहीं होता और उसके कोई टुकड़े नहीं होते। और ऐसा भी नहीं होता कि प्रेम विकसित होता हो। क्योंकि विकसित तो तभी हो सकता है, जब थोड़ा-थोड़ा हो सकता हो। थोड़ा-थोड़ा हो सकता हो, ऐसा भी नहीं होता।

अक्सर हम... लाइकिंग, पसंद विकसित हो जाती है। इसलिए हम सोचते हैं कि प्रेम विकसित हो रहा है। प्रेम कभी विकसित नहीं होता। पसंद और प्रेम में बहुत फर्क है।
प्रेम तो होता है या नहीं होता है।
फिर पसंद विकसित हो सकती है, और बहुत विकसित हो सकती है या कम हो सकती है, बहुत कम हो सकती है। लेकिन प्रेम न कम होता है, न ज्यादा होता है; या तो होता है या नहीं होता। तो ऐसा कोई नहीं कह सकता कि ऐसा वक्त आ जाएगा जब लोग ज्यादा प्रेम कर लेंगे। ऐसा नहीं हो सकता। जीवन के जो गहरे अनुभव हैं, वे होते हैं, या नहीं होते हैं।
महावीर को जो जीवन की एकता का अनुभव हुआ, वही जीसस को हो सकता है, बुद्ध को हो सकता है, मुझे हो सकता है, आपको हो सकता है। लेकिन ऐसा नहीं हो सकता कि उसमें किसी को ज्यादा हो जाए और किसी को कम हो जाए। होगा तो होगा, नहीं होगा तो नहीं होगा।
तो दुनिया में कुछ चीजें हैं, आंतरिक, जो कभी विकसित नहीं होतीं। असल में विकास का कोई मतलब ही नहीं, क्योंकि जब वे उपलब्ध होती हैं तो पूर्ण ही उपलब्ध होती हैं, या नहीं ही उपलब्ध होती हैं।
समझ लें उदाहरण के लिए, पानी भाप बन रहा है, निन्यानबे डिग्री पर गर्मी हो गई है, अभी भाप नहीं बन गया; अट्ठानबे डिग्री पर था, भाप नहीं बना; नब्बे डिग्री पर था, भाप नहीं बना था; सौ डिग्री पर आया कि भाप बन गया! गर्मी कम-ज्यादा हो सकती है--अस्सी डिग्री, नब्बे डिग्री, पंचानबे डिग्री, निन्यानबे डिग्री। दस बर्तन रखे हैं, सब में अलग-अलग डिग्री का पानी है, उनमें पानी अभी भाप नहीं बन रहा है। गर्मी कम-ज्यादा हो सकती है। कम होगी तो भाप नहीं बनेगा, पूरी हो जाएगी तो भाप बनेगा। लेकिन ऐसा नहीं हो सकता, ऐसा नहीं हो सकता, जब एक बूंद भी भाप बनती है तो या तो भाप बनती है या नहीं बनती। ऐसा नहीं होता, इससे बीच में इसमें कोई डिग्री नहीं होती। भाप बनने और न बनने में कोई डिग्री नहीं होती। हां, भाप बनने की स्थिति आने तक पानी की डिग्रियां हो सकती हैं।
अज्ञान की डिग्रियां होती हैं, ज्ञान की कोई डिग्री नहीं होती। हालांकि हम सब ज्ञान की डिग्रियां देते हैं! सिर्फ अज्ञान की डिग्रियां होती हैं। एक आदमी कम अज्ञानी, एक आदमी ज्यादा अज्ञानी, यह सार्थक है। लेकिन एक आदमी कम ज्ञानी, एक आदमी ज्यादा ज्ञानी, यह बिल्कुल ही असंगत निरर्थक बात है। कम-ज्यादा ज्ञान होता ही नहीं।
हां, अज्ञान कम-ज्यादा हो सकता है। और कम-ज्यादा होने का मतलब इतना ही
है कि कम अज्ञानी हम उसको कहते हैं, जिसके पास इनफर्मेशन ज्यादा होती है, ज्यादा अज्ञानी उसको कहते हैं, जिसके पास इनफर्मेशन कम होती है। क्योंकि ज्ञान तो कम-ज्यादा हो ही नहीं सकता। इसलिए अज्ञानियों में भी दो अज्ञानियों में ज्ञान का फर्क नहीं होता, सिर्फ सूचना का फर्क होता है। एक आदमी युनिवर्सिटी से लौटता है, सूचनाएं इकट्ठी कर लाता है, उसका ही
एक भाई गांव में, देहात में रह गया था, वह सूचनाएं इकट्ठी नहीं कर पाया। वे दोनों मिलते हैं तो एक अज्ञानी मालूम पड़ता है, एक ज्ञानी मालूम पड़ता है। दोनों अज्ञानी हैं। एक के पास सूचनाओं का ढेर है, एक के पास सूचनाओं का ढेर नहीं है। तो इसको हम कह सकते हैं कि यह ज्यादा अज्ञानी, यह कम अज्ञानी। मगर यह भी ज्ञान के हिसाब से नहीं है तौल। जब ज्ञान आता है तो बस आता है। जैसे आंख खुल जाएं और प्रकाश दिख जाए, जैसे दीया जल जाए और अंधेरा हट जाए।
तो ज्ञानी कभी छोटे-बड़े नहीं होते। लेकिन हम चूंकि अज्ञानी हैं सब, और छोटे-बड़े की भाषा में जीते हैं, तो हम ज्ञानियों के भी छोटे-बड़े होने का हिसाब लगाते रहते हैं! कोई कहता है कबीर बड़ा कि नानक, कि महावीर बड़े कि बुद्ध, कि राम बड़े कि कृष्ण, कि कृष्ण बड़े कि मोहम्मद; बड़े-छोटे का हिसाब लगाते रहते हैं अपने हिसाब से! कोई बड़ा-छोटा नहीं है वहां। वहां कोई बड़ा- छोटा होता ही नहीं।
उदाहरण के लिए आपको ख्याल दूं। आज से तीन सौ, चार सौ साल पहले तक सारी दुनिया में यह ख्याल था, अगर हम छत पर खड़े होकर एक बड़ा पत्थर गिराएं और एक छोटा पत्थर साथ-साथ, तो बड़ा पत्थर पहले पहुंचेगा जमीन पर, छोटा पत्थर पीछे! बिल्कुल ठीक गणित था, किसी ने गिरा कर देखा नहीं। गणित बिल्कुल साफ ही

दिखता था, क्योंकि बड़ा पत्थर है, पहले गिरना चाहिए, छोटा पत्थर बाद में गिरना चाहिए!
जिस पहले आदमी ने पिसा के टावर पर खड़े होकर पहली दफा पत्थर गिरा कर देखे, उसको खुद भी शक था कि यह बात तो गलत है, गिराना बेकार ही है, इसलिए किसी को खबर नहीं की उसने पहली दफा, अकेला गया चुपचाप एकांत में। और जब उसने देखा कि बड़ी हैरानी हुई, दोनों पत्थर साथ गिरे! तो उसने दो-चार दफे गिरा कर देखा, कि कहीं कुछ भूल-चूक जरूर हो रही है! क्योंकि बड़ा पत्थर, छोटा पत्थर साथ कैसे गिरेंगे?
फिर जब जाकर उसने युनिवर्सिटी में अपने प्रोफेसर्स को कहा कि दोनों पत्थर साथ गिरते हैं, तो उन्होंने कहा, तुम पागल हो गए हो! ऐसा कभी हुआ है? हालांकि ऐसा कभी किसी ने देखा नहीं था जाकर। फिर भी उसने कहा कि ऐसा हुआ है, दस बार मैंने गिरा कर देख लिया।
प्रोफेसर्स बामुश्किल तो देखने गए। क्योंकि पंडितों से ज्यादा जड़ कोई भी नहीं होता। वे जो पकड़े रखते हैं, उसको ऐसी जड़ता से पकड़ते हैं कि उसको इंच भर हिलने-डुलने नहीं देना चाहते। गए, बामुश्किल, सख्त, कि ऐसा हो नहीं सकता। जब पत्थर गिरे तो उन्होंने कहा, इसमें जरूर कोई शरारत है। इसमें जरूर कोई ट्रिक और तरकीब की बात है; क्योंकि यह हो कैसे सकता है कि बड़ा पत्थर, छोटा पत्थर साथ-साथ गिर जाएं? या तो कोई तरकीब है और या शैतान का इसमें हाथ है। और तुम इस झंझट में मत पड़ो। तुम इस झंझट में पड़ो ही मत। इसमें शैतान कुछ पीछे शरारत कर रहा है, भगवान के नियम गड़बड़ कर रहा है।
असल में बड़े और छोटे पत्थर बड़े और छोटे के कारण गिरते ही नहीं हैं, गिरते हैं जमीन की कशिश के कारण, और कशिश दोनों के लिए बराबर है। छत पर से गिर भर जाएं, फिर बड़ा और छोटा पत्थर का मूल्य नहीं है, मूल्य कशिश का है, वह सबके लिए बराबर है।
एक सीमा है मनुष्य की, उस सीमा के बाहर मनुष्य छलांग भर लगा जाए बस, फिर परमात्मा की कशिश उसे खींचती है, फिर उसे कुछ नहीं करना पड़ता। बस उस सीमा के बाद फिर कोई छोटा-बड़ा नहीं रह जाता, फिर सब पर बराबर कशिश काम करती है। एक सीमा है भर, उसी सीमा को मैं कहता हूं विचार। जिस दिन आदमी विचार से निर्विचार में कूद जाता है, उसके बाद फिर कोई छोटा नहीं है, कोई बड़ा नहीं है; कोई कमजोर नहीं है, कोई ताकतवर नहीं है; कोई फर्क ही नहीं है। बस, एक बार विचार से कोई कूद जाए निर्विचार में, फिर जो जीवन की, अस्तित्व की परम शक्ति है, वह खींच लेती है--एक सा।
तो हमारे सब फर्क कूदने के पहले के फर्क हैं। जब तक हम नहीं कूदे हैं,
तब तक के हमारे फर्क हैं। जिस दिन हम कूद गए, उस दिन कोई फर्क नहीं है। महावीर ने जो छलांग लगाई है, वही कृष्ण की है, वही क्राइस्ट की है। जो अनुभव है अहिंसा का, वही अनुभव है, उसमें कोई फर्क नहीं है।
इसलिए कोई विकास अहिंसा में कभी नहीं होगा। महावीर ने भी कोई विकास किया, इस भूल में भी नहीं पड़ना चाहिए। महावीर के भी पहले जिन्होंने छलांग लगाई है, वह अनुभव वही है। उस अनुभव की अभिव्यक्तियों में भेद है, लेकिन न तो महावीर... ।
ऐसा कुछ नहीं है कि महावीर ने पहली दफा अहिंसा को अनुभव कर लिया है। लाखों लोगों ने पहले किया है, लाखों लोग पीछे करेंगे। वह अनुभव किसी की बपौती नहीं है।
जैसे हम आंख खोलेंगे तो प्रकाश का अनुभव होगा, यह किसी की बपौती नहीं है। मेरे पहले लाखों, करोड़ों, अरबों लोगों ने आंख खोली है और प्रकाश देखा है; और मैं भी आंख खोलूंगा, तो प्रकाश देखूंगा। और मेरी भी कोई इस पर बपौती नहीं है कि मेरे पीछे आने वाले आंख खोलेंगे तो मुझसे कम देखेंगे कि ज्यादा देखेंगे। आंख खुलती है तो प्रकाश दिखता है।
कोई विकास नहीं हुआ है। कोई विकास हो नहीं सकता है। कुछ चीजें हैं, जिनमें विकास होता है। परिवर्तनशील जगत का जो भी है, वह सब विकासमान है। या पतित होता है, या विकसित होता है।
शाश्वत, सनातन, अंतरात्मा के जगत की जो भी व्यवस्था है, वहां कोई विकास नहीं होता। वहां जो जाता है, वह परम, अंतिम, अल्टीमेट में पहुंच जाता है। वहां कोई विकास नहीं, कोई आगे नहीं, कोई पीछे नहीं। वहां सब समान और

पूर्ण के निकट होने से, पूर्ण में होने से कोई विकास नहीं। कोई कहे कि परमात्मा में कितना विकास हुआ है? परमात्मा से मतलब समग्र जीवन के अस्तित्व में क्या विकास हुआ है? वहां विकास का अर्थ ही नहीं है।
लेकिन इसे उदाहरण से समझें। एक बैलगाड़ी जा रही है, चाक चल रहे हैं।
बैलगाड़ी में बैठा हुआ मालिक भी चल रहा है, बैल भी चल रहे हैं। चाक जोर से घूमते चले जा रहे हैं, बैलगाड़ी प्रतिपल आगे बढ़ रही है, विकास हो रहा है। बैल भी बढ़ रहे हैं, मालिक भी आगे जा रहा है।
लेकिन कभी आपने ख्याल किया कि बढ़ते हुए चाकों के बीच में एक कील है, जो हिल भी नहीं रही, वह वहीं की वहीं खड़ी है! कील वहीं की वहीं है! चाक उसके ऊपर घूम रहा है, चाक आगे बढ़ता हुआ मालूम पड़ रहा है, गाड़ी आगे जा रही है, बिल्कुल जा रही है; बैल आगे जा रहे हैं, मालिक आगे जा रहा है; मंजिल करीब आती चली जा रही है। लेकिन कील? कील ठहरी हुई है! कील ठहरी है, चाक घूम रहा है। तो कोई कहे कि चाक ने कितनी यात्रा की, तो सार्थक है। लेकिन कोई पूछे कि कील ने कितनी यात्रा की, तो क्या कहिएगा? कहना होगा, कील तो यात्रा एक अर्थ में करती ही नहीं। कील तो वहीं है, वह सिर्फ चाक उसके ऊपर घूमता रहता है; कील थिर है।
और मजे की बात यह है कि थिर जो कील है, उसी पर घूमते हुए चाक का अस्तित्व है। अगर कील भी चल जाए तो चाक गिर जाए। कील नहीं चलती, इसीलिए चाक चल पाता है। कील के न चलने में ही चाक के चलने का प्राण है। कील भी चली कि अभी गाड़ी गई। फिर कोई विकास नहीं होगा।
जो विकास हो रहा है, वह किसी एक चीज के केंद्र पर हो रहा है, जिसमें कोई विकास नहीं हो रहा है। पूर्ण के चारों तरफ विकास का चक्र घूम रहा है और पूर्ण अपनी जगह खड़ा हुआ है। हो सकता है आपने कील पर ख्याल ही न किया हो, इसलिए चाक के घूमने को ही देखा हो। लेकिन जिसने कील पर ख्याल कर लिया, उसके लिए चाक का घूमना बेमानी हो जाता है।
कबीर ने एक पंक्ति लिखी है कि चलती हुई चक्की को देख कर कबीर रोने लगा
और उसने लौट कर अपने मित्रों को कहा कि बड़ा दुख मुझे हुआ, क्योंकि दो पाटों के बीच में मैंने जितने दाने पड़े देखे, सब चूर हो गए, सब मर गए। और दो पाटों के बीच में जो पड़ जाता है, वह चूर-चूर हो जाता है।
उसका लड़का कमाल बैठा था, वह हंसने लगा। उसने कहा कि ऐसा मत कहो। क्योंकि एक कील भी है दो चाकों के बीच में; जो उसका सहारा पकड़ लेता है, वह कभी भी चूर होता ही नहीं। कबीर के बेटे ने कहा, ऐसा मत कहो। एक कील भी है दो चाकों के बीच में--चक्की जिस कील पर चलती है--जो उस कील का सहारा पकड़ लेता है, वह कभी नष्ट होता ही नहीं!
इस पूरे अस्तित्व के विकास के चक्र के बीच में एक कील भी है। उस कील को कोई परमात्मा कहे, धर्म कहे, आत्मा कहे, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। एक कील है, जो उसके निकट पहुंच जाता है, उतना ही गतिमान चाकों के बाहर हो जाता है। और उस कील के तल पर कोई गति नहीं है। वह कील निरंतर सतत अगति में ठहरी हुई है, हालांकि सब गति उसी के ऊपर घूम रही है।
तो इतना अगर ख्याल में आ जाए तो महावीर जैसे व्यक्ति कील के निकट पहुंच जाते हैं, वहां जहां सब थिर है, जहां कोई लहर भी नहीं उठती, कोई तरंग भी नहीं उठती। वहां जो भी उनका अनुभव है, उसमें कभी विकास नहीं होता। चाहे कोई दूसरा कभी भी वहां पहुंचे, अनुभव वही होगा। कोई तीसरा कभी वहां पहुंचे, अनुभव वही होगा।
कील के पास होने का एक अनुभव है और कील से दूर होने का एक अनुभव है। कील से दूर होने का जो अनुभव है, वह दो पाटों के बीच का अनुभव है, जहां निरंतर गति है। और कील के पास होने का जो अनुभव है, वह दो पाटों के बाहर हो जाने का अनुभव है, जहां कोई गति नहीं है।
जहां गति नहीं, वहां विकास कैसा? जहां गति नहीं, वहां प्रगति कैसी?
तो महावीर की अहिंसा में कोई प्रगति नहीं होगी, न महावीर ने कोई प्रगति की है। अहिंसा का अनुभव है एक, वह जब भी कोई उतरता है तो वह वही है, वह बिल्कुल वही है।

महावीर: मेरी दृष्टि में सत्रहवां प्रवचन

महावीर के मौलिक योगदान

प्रश्नः महावीर के सामने लाखों विरोधी थे, क्या उनके विरोध की चिंता महावीर को नहीं थी? अहिंसक व्यक्ति के भी विरोधी पैदा होना अहिंसा के विषय में संदेह पैदा करता है।

ऐसी धारणा रही है कि जो अहिंसक है, पूर्ण अहिंसक है, उसका कोई विरोधी पैदा नहीं होना चाहिए। क्योंकि जिसके मन में कोई द्वेष, कोई विरोध, कोई घृणा, कोई हिंसा नहीं है उसके प्रति किसी की घृणा, हिंसा, और द्वेष क्यों पैदा हो?
ऊपर से देखे जाने पर यह बात बहुत सीधी और साफ मालूम पड़ती है। लेकिन जीवन ज्यादा जटिल है और जितने सरल सिद्धांत होते हैं, जीवन उतना सरल नहीं है। सच तो यह है कि पूर्ण अहिंसक व्यक्ति के जितने विरोधी पैदा होने की संभावना है, उतने हिंसक के विरोधी पैदा होने की भी संभावना नहीं है। उसके कारण हैं।
पहला कारण तो यह है कि हम सब हिंसक हैं, तो हिंसक से तो हमारा तालमेल बैठ जाता है। हम सब चूंकि हिंसक हैं, हिंसक व्यक्ति से हमारा तालमेल बैठ जाता है। अहिंसक व्यक्ति हमारे बीच एकदम अजनबी है, इतना ज्यादा अजनबी है कि उसे बरदाश्त करना भी मुश्किल है। बरदाश्त न करने के भी बहुत कारण हैं। पहली बात तो अहिंसक व्यक्ति की मौजूदगी में हम इतने ज्यादा निंदित प्रतीत होने लगते हैं, इतने ज्यादा दीन-हीन, इतने ज्यादा क्षुद्र, निम्न प्रतीत होने लगते हैं कि हम इस निंदित होने का बदला लिए बिना उस व्यक्ति से नहीं रह सकते। हम यह बदला लेंगे ही।
तो पूर्ण अहिंसक व्यक्ति हिंसक व्यक्तियों के मनों में अनजाने ही तीव्र बदले की भावना पैदा कर देता है। यह वह पैदा करता नहीं है, यह हमारी हिंसा के कारण पैदा हो जाती है। महावीर जैसे व्यक्ति को अनिवार्य है कि लाखों विरोधी मिल जाएं। लेकिन इससे उनकी अहिंसा पर संदेह नहीं होता। इससे उनकी अहिंसा पर संदेह कम होता है, इससे खबर मिलती है कि आदमी इतना अजनबी था, इतना स्ट्रेंजर था, कि हम सब उसे स्वीकार नहीं कर सकते थे। अस्वीकृति पहली बात होने ही वाली थी।
और जब हम उसे स्वीकार भी करेंगे तो हम उसे आदमी न रहने देंगे, हम उसे भगवान बना देंगे, तब स्वीकार करेंगे! वह भी अस्वीकार की एक तरकीब है। किसी आदमी को भगवान बना देना अस्वीकार करने की सूक्ष्म तरकीब है। फिर हमने भगवान बना कर यह कह दिया कि हम तो आदमी हैं, हम आदमी जैसे रहेंगे और चलेंगे; वह आदमी भगवान था, इससे कुछ लेना-देना नहीं है! पूजा कर सकते हैं उसकी, लेकिन चूंकि वह आदमी ही नहीं था, इसलिए आदमियों को अब उससे क्या लेना-देना रह जाता है!
पहले हम अस्वीकार करते हैं, निंदा करते हैं, विरोध करते हैं; फिर जब कोई उपाय नहीं पाते, और उपाय इसलिए नहीं पाते हैं कि अगर अहिंसक व्यक्ति भी हिंसा पर उतर आए तो हमारी उसकी भाषा एक हो जाती है, फिर उपाय मिल जाता है। और अगर वह अपनी अहिंसा पर खड़ा ही रहे और हमारी हिंसा उसमें कोई भी फर्क न कर पाए, तो फिर हमें कोई उपाय नहीं मिलता। हारे, थके, पराजित, फिर हम उसे भगवान बना देते हैं! यह दूसरी तरकीब है, आखिरी, जिससे हम उसे मनुष्य-जाति के बाहर निकाल देते हैं। फिर हमें उसकी चिंता करने की जरूरत नहीं रह जाती है, फिर हम निश्चिंत हो जाते हैं।
दूसरी बात यह भी समझनी जरूरी है कि मैं कितने ही जोर से बोलूं और मेरे बोलने में कितना ही प्रेम हो और मेरे बोलने में कितनी ही बड़ी आवाज और कितनी ही बड़ी ताकत हो; लेकिन जो बहरा है, उस तक मेरी आवाज नहीं पहुंचेगी।
यानी जब मैं बोलता हूं तो दो बातें हैं, मेरा बोलना और आपका सुनना।
अगर बहरे तक आवाज न पहुंचे तो यह नहीं कहा जा सकता कि मैं गूंगा था।
मेरे बोलने पर इसलिए शक नहीं किया जा सकता कि बहरे तक आवाज नहीं पहुंची,

इसलिए मैं गूंगा था। मैं बोला ही न होऊंगा, नहीं तो बहरे तक आवाज पहुंचनी चाहिए थी।
महावीर के अहिंसक होने में इसलिए शक नहीं हो सकता कि हिंसक चित्तों
तक उनकी आवाज नहीं पहुंच पाती। बहरे लोग हैं, बहुत-बहुत गहरे में हम बहरे हैं। न हम सुनते हैं, न हम संवेदन करते हैं, न हम देखते हैं।
इसी संबंध में एक प्रश्न और किसी ने पूछा है कि महावीर के प्रेम में क्या कुछ कमी थी कि वे गोशालक को समझा न पाए?
निश्चित ही समझाने में प्रेम काम आता है और पूर्ण प्रेम समझाने की पूरी व्यवस्था करता है। लेकिन इससे ही यह सिद्ध नहीं होता कि पूर्ण प्रेमी समझा ही पाएगा, क्योंकि दूसरी तरफ पूर्ण घृणा भी हो सकती है, जो समझने को राजी ही न हो। दूसरी तरफ पूरा बहरापन हो सकता है, जो सुनने को राजी ही न हो। महावीर के प्रेम या अहिंसा पर इसलिए शक नहीं हो सकता कि वे दूसरे को नहीं समझा पा रहे हैं, या दूसरे को नहीं बदल पा रहे हैं, या दूसरे की हिंसा नहीं मिटा पा रहे हैं। इसके तो हजार कारण हो सकते हैं।
महावीर की अहिंसा की जांच करनी हो तो दूसरे की तरफ से जांच करना गलत है, सीधे महावीर को ही देखना उचित है। सूरज की जांच करनी हो तो किसी अंधे आदमी से माध्यम बना कर जांच करनी गलत है। हम अंधे आदमी से जाकर पूछें कि सूरज है? और वह कहे, नहीं है। तो हम कह सकते हैं, ऐसा कैसा सूरज है, जो एक अंधे आदमी को भी दिखाई नहीं पड़ पा रहा है?
अगर कोई अंधे से सूरज की जांच करने जाएगा तो सूरज के साथ बहुत अन्याय
हो जाएगा। सूरज की जांच करनी हो तो सीधा! कोई मध्यस्थ बीच में लेना खतरनाक है। क्योंकि तब जांच अधूरी हो जाएगी और मध्यस्थ महत्वपूर्ण हो जाएगा। और मध्यस्थ के पास आंखें होंगी तो सूरज हो जाएगा; धीमी, मद्धिम आंखें होंगी तो सूरज का प्रकाश धीमा हो जाएगा; अंधा होगा तो सूरज दिखाई नहीं पड़ेगा! सीधे ही देखना जरूरी है।
महावीर को सीधे देखना जरूरी है तो हम पहचान सकते हैं कि उनकी अहिंसा, उनका प्रेम पूरा है या नहीं। लेकिन कई बार ऐसा होता है कि हमारी खुद की आंखें इतनी कमजोर होती हैं कि सूरज को सीधा देखना मुश्किल हो जाता है, तब हम अक्सर परोक्ष देखते हैं, किसी और से पूछते हैं। खुद की आंख की इतनी ताकत भी नहीं होती कि सूरज के सामने सीधा देख लें। तो हम दूसरों से खबर जुटाने जाते हैं।
और यही कारण है कि महावीर, कृष्ण या क्राइस्ट जैसे लोगों के संबंध में
हम सीधे देखने से बचते हैं। वहां भी प्रकाश बहुत गरिमा में प्रकट होता है, वहां भी आंखें, साधारण कमजोर आंखें बंद हो जाती हैं; देख नहीं पातीं। इसलिए हम बीच के गुरुओं को खोजते हैं, आचार्यों को खोजते हैं, टीकाकारों को खोजते हैं, व्याख्याकारों को खोजते हैं, उनके माध्यम से हम देखना चाहते हैं! गीता हम सीधी नहीं देखना चाहते हैं; टीकाकार से देखना चाहेंगे, कमेंटेटर्स से देखना चाहेंगे। ऐसे हम अपनी आंख सीधी उठाने से बचने की कोशिश करते हैं।
लेकिन इस जगत में किसी दूसरे की आंख से कुछ भी नहीं देखा जा सकता। किसी दूसरे की आंख से देखने की बजाय तो बेहतर है कि देखना ही मत। यही समझना कि हमने देखा नहीं, हम दर्शन से वंचित रह गए हैं। वह भी उचित होगा, सत्य होगा। और शायद वह पीड़ा मन को पकड़ जाए कि हम नहीं देख पाए, तो शायद देखने की खोज भी शुरू हो जाए। लेकिन दूसरे की आंख से देखना ही मत।
लेकिन सदा हमने दूसरे की आंख से देखा है और उससे कठिनाई हो जाती है। महावीर को सीधे देखें तो वे प्रेम के पूरे अवतार हैं। सीधे देखें तो उन जैसा अहिंसक व्यक्ति शायद कभी भी नहीं हुआ है।

प्रश्नः महावीर ने जिन सिद्धांतों की चर्चा की, जैसे अहिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, अनेकांत, उनका प्रयोगात्मक रूप क्या हो सकता है?

इस संबंध में भी बड़ी भूल हुई है। पहली तो बात यह है सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, अचौर्य--ये सिद्धांत नहीं हैं। और इसलिए इनके सीधे प्रयोग की बात ही गलत है। इनका सीधा प्रयोग हो ही नहीं सकता। जैसे एक आदमी

भूसा इकट्ठा करना चाहता हो तो उसे गेहूं बोना पड़ता है खेत में--भूसा नहीं। और अगर वह पागल आदमी भूसा पैदा करने के लिए भूसा ही बो दे, तो जो पास का भूसा था, वह भी खेत में सड़ जाएगा, कुछ पैदा नहीं होगा। क्योंकि भूसा है बाइ-प्रॉडक्ट, वह गेहूं के साथ पैदा होता है। गेहूं पैदा होता है तो उसके पीछे वह भी पैदा होता है, गेहूं पैदा न हो तो अकेला भूसा पैदा करने का कोई उपाय ही नहीं है। हां, गेहूं पैदा होता है तो भूसा पैदा होता ही है, उसको अलग से ध्यान देने की भी कोई जरूरत नहीं पड़ती है।
अहिंसा, अपरिग्रह, अचौर्य, अस्तेय--ये सब के सब सिद्धांत नहीं हैं, ये बाइ-प्रॉडक्ट हैं, उप-उत्पत्तियां हैं। जहां समाधि पैदा होती है, वहां ये सब भूसे की तरह अपने आप पैदा हो जाते हैं। और जो व्यक्ति इनको सीधा पैदा करने जाएगा, वह भूसे की पैदावार करने में लगा हुआ है भूसे से! जो भूसा हमने डाला खेत में वह भी सड़ जाएगा। भूसा तो पैदा होने वाला नहीं है, गेहूं भी पैदा होने वाला नहीं है।
कई बार ऐसी भूल हो जाती है कि चूंकि गेहूं और भूसा साथ-साथ पैदा होते हैं तो हम सोच सकते हैं कि गेहूं को बोओ तो भूसा हो जाता है, भूसा को बोओ तो गेहूं हो जाएगा। ऐसा नहीं है। साथ-साथ वे जरूर हैं, दिखाई पड़ते हैं, लेकिन भूसा पीछे है, गेहूं आगे है। गेहूं आएगा तो भूसा आएगा, वह उसकी छाया की तरह आता है।
अहिंसा, सत्य, सब छाया की तरह आते हैं समाधि के अनुभव में। समाधि पहले है, ध्यान पहले है। ध्यान आया कि उसके पीछे छाया की तरह ये सब आते हैं। लेकिन हमें ध्यान दिखाई नहीं पड़ता!
गेहूं भी दिखाई नहीं पड़ता, दिखाई तो भूसा ही पड़ता है पहले। अगर खेत में भी गए तो गेहूं छिपा है भूसे में। दिखाई तो पड़ता है भूसा पहले। आता है भूसा पीछे, दिखाई पड़ता है पहले। भूसे को उघाड़ें तो गेहूं दिखाई पड़ेगा। और पहले कभी भूसा आता नहीं, आगमन गेहूं का है। गेहूं से आगमन है गेहूं का, भूसा सिर्फ बीच की प्रॉडक्ट है, वह उसकी चारों तरफ से रक्षा है।
समाधि आती है पहले, लेकिन दिखाई नहीं पड़ती पहले। महावीर के पास जाएंगे तो दिखाई पड़ेगा सत्य, दिखाई पड़ेगी अहिंसा, दिखाई पड़ेगा अचौर्य; समाधि दिखाई नहीं पड़ेगी! वह भूसा है, वह चारों तरफ से समाधि को घेरे हुए है। लेकिन समाधि आई है पहले, उसके पीछे छाया की तरह सब आया है। हमको दिखाई पड़ेगा पहले। तो हमारे साथ एक मुश्किल हो जाएगी, हमारी पूरी की पूरी गड़बड़ हो जाएगी। हमें अहिंसा पहले दिखाई पड़ेगी तो हम सोचेंगे अहिंसा साधो, सत्य साधो, अस्तेय साधो; चोरी मत करो; ब्रह्मचर्य साधो, काम छोड़ो; हमें यह दिखाई पड़ेगा। और हम इस दौड़ में लग जाएंगे। हम भूसा बोने की दौड़ में लग गए। यह दिखता है, लेकिन जो नहीं दिखता, वह पहले है। वह जो अदृश्य भीतर घटना घटी है, वही पहले है।
महावीर न तो अहिंसा साध रहे हैं, क्योंकि जो अहिंसा साधेगा, वह करेगा क्या? वह सिर्फ हिंसा को दबाएगा, और क्या कर सकता है? और दबी हुई हिंसा से कोई अहिंसक नहीं होता। दबी हुई हिंसा से अगर कोई आदमी अहिंसा भी करेगा तो भी उसकी अहिंसा में हिंसा के परिलक्षण होंगे। हिंसा उसके पीछे खड़ी होगी, उसकी अहिंसा में भी हिंसा का स्वर होगा, दबाव होगा।
अगर किसी व्यक्ति ने काम को रोका और ब्रह्मचर्य साधा तो उसके ब्रह्मचर्य के भीतर अब्रह्मचर्य और व्यभिचार बैठा ही रहेगा। ब्रह्मचर्य की खोल ऊपर होगी, भीतर व्यभिचारी खड़ा रहेगा। अब यह बड़ी उलटी बात है। महावीर के पीछे है, भीतर है समाधि और बाहर है ब्रह्मचर्य। और अगर हमने ब्रह्मचर्य साधा तो ब्रह्मचर्य होगा बाहर, और भीतर होगा सेक्स, समाधि भीतर होगी नहीं। तब हम चूक जाएंगे, बिल्कुल ही चूक जाएंगे। वह जो होने वाला था, वह हमें कभी भी नहीं हो पाएगा, बल्कि हम उलटी स्थिति में पहुंच जाएंगे।
इसलिए मेरा जोर इस बात पर है कि महावीर जैसे व्यक्ति को अगर समझना हो,
तो बाहर से भीतर की तरफ समझना ही मत, भीतर से बाहर की तरफ समझना, तो ही समझ में आ सकता है, नहीं तो भूल हो जाएगी।
तो इनको मैं सिद्धांत नहीं कहता। इनका दो कौड़ी भी मूल्य नहीं है समाधि के मुकाबले। उतना ही मूल्य है, जितना भूसे का होता है। भूसे का भी

मूल्य होता है, उतना ही मूल्य है। समाधि के मुकाबले इनका कोई भी मूल्य नहीं है।
महावीर की जो उपलब्धि है, वह है समाधि। उपलब्धि की जो उप-उत्पत्तियां हैं, बाइ-प्रॉडक्ट्स हैं, वे हैं--सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य। ये सिद्धांत नहीं हैं, और न इनको सीधा प्रयोग करने की कोई जरूरत है, न कोई इनका सीधा प्रयोग कभी कर सकता है, न कभी किसी ने किया है। हां, करने की कोशिश की है बहुत लोगों ने और सिर्फ कोशिश में वे असफल हुए हैं, विकृत हुए हैं, परवर्ट हुए हैं और कभी भी सत्य तक नहीं पहुंचे हैं।
इसलिए यह तो पूछें ही मत कि इनका प्रयोगात्मक रूप क्या है! इनका कोई प्रयोगात्मक रूप नहीं है। प्रयोगात्मक रूप तो ध्यान का है, प्रयोग तो करना है ध्यान का, ये आएंगे छाया की तरह। आप आए हैं, तो मैं आपसे नहीं कहता कि अपनी छाया को भी अपने साथ ले आना। आज आपकी छाया को भी निमंत्रण दिया है, वह भी आए। तो आप कहेंगे, आप कैसी बातें करते हैं? मैं आऊंगा तो मेरी छाया आ ही जाएगी। उसे अलग से निमंत्रण देने की भी कोई जरूरत नहीं है, वह आती ही है आपके आने से।
लेकिन इससे उलटा नहीं हो सकता कि आपकी छाया को मैं ले आऊं और उसके साथ
आप आ जाएं। पहली तो बात आपकी छाया को ला ही नहीं सकता। और कोई धोखा खड़ा कर लूं, तो आप उससे नहीं आ जाएंगे।
इसलिए अहिंसा नहीं साधनी है, साधना है ध्यान। अहिंसा फलित होती है, उसका परिणाम है, उसकी परिणति है सहज। जब ध्यान आता है तो आदमी हिंसक नहीं रह जाता है। इसमें बुनियादी फर्क पड़ रहा है। जब ध्यान आता है तो अहिंसा साधनी नहीं पड़ती है, हिंसा तिरोहित हो जाती है। तो भीतर कुछ बचता नहीं। यह भी समझ लेने की जरूरत है कि अहिंसा हिंसा का उलटा नहीं है, अहिंसा हिंसा का अभाव है, एब्सेंस है। लेकिन हमें उलटा दिखाई पड़ता है, क्योंकि हमारे भीतर होती है हिंसा, अहिंसा हम साधते हैं, तो वह उलटी मालूम पड़ती है। जो हिंसक करता है, वह हम न करें। ब्रह्मचर्य साधना है, तो जो कामुक करता है, वह हम न करें, बस उससे उलटा करें! तो हमारे लिए सेक्स से उलटा होता है ब्रह्मचर्य; अहिंसा हिंसा से उलटी होती है; अचौर्य चोरी से उलटा होता है; सत्य असत्य से उलटा होता है! जब कि ये बातें बिल्कुल गलत हैं। ये कोई उलटे नहीं होते, ये अभाव हैं।
अहिंसा उस दिन आती है, जिस दिन हिंसा होती नहीं। हिंसा के न होने पर जो स्थिति रह जाती है, उसका नाम अहिंसा है। वह विदाई है हिंसा की, उसके पीछे जो बच जाता है। सेक्स जहां विदा हो जाता है, काम जहां विदा हो जाता है, वहां जो शेष रह जाता है, उसका नाम ब्रह्मचर्य है। इसलिए ब्रह्मचर्य सेक्स का उलटा नहीं है, उलटे में तो सेक्स की मौजूदगी रहेगी ही।
यह ध्यान में रहे कि हर उलटी चीज में अपने से विरोधी की मौजूदगी उपस्थित रहती है, वह कभी मिटती नहीं। अगर क्षमा क्रोध से उलटी है तो क्षमा के भीतर क्रोध मौजूद रहेगा। अगर ब्रह्मचर्य सेक्स से उलटा है तो ऊपर ब्रह्मचर्य होगा, भीतर सेक्स मौजूद रहेगा। क्योंकि जो उलटा है, विपरीत है, वह अपने दुश्मन के बिना जी ही नहीं सकता, वह उसके साथ ही जी सकता है, वे अनिवार्य रूप से जुड़े हुए हैं।
इस बात को ठीक से समझ लेना चाहिए कि जीवन के जो परम सत्य हैं, जो परम अनुभूतियां हैं, वे अभाव की, निगेशन की अनुभूतियां हैं; अपोजीशन की, विरोध की नहीं।
जैसे ही समाधि फलित होती है, वैसे ही कुछ चीजें विदा हो जाती हैं। हिंसा विदा हो जाती है, क्योंकि समाधिस्थ चित्त के साथ हिंसा का कोई संबंध नहीं जुड़ता।
तो मेरे देखे ये लक्षण हैं। अगर एक आदमी हिंसक है तो वह इस बात का लक्षण है कि भीतर ध्यान को उपलब्ध नहीं हुआ। अगर एक आदमी अब्रह्मचारी है तो लक्षण है कि भीतर ध्यान को उपलब्ध नहीं हुआ। इसलिए अब्रह्मचर्य को, काम को, सेक्स को, हिंसा को, चोरी को मैं लक्षण मानता हूं भीतर की स्थिति के। और जो लक्षण को बदलने में लगेगा, वह वैसा ही पागल है, जैसे किसी को बुखार आ गया, शरीर गरम हुआ और हम उसका शरीर ठंडा करने में लग गए, कि हमने कहा कि बुखार, गर्म है शरीर।

गर्म होना सिर्फ लक्षण है। भीतर कहीं कोई बीमारी है, जिस बीमारी में शरीर के तत्व संघर्ष में पड़ गए हैं, संघर्ष के कारण शरीर उत्तप्त हो गया है। भीतर शरीर के एलीमेंट्स लड़ रहे हैं आपस में, इसलिए उत्पात में शरीर गर्म हो गया। शरीर की गर्मी, फीवर जो है, बुखार जो है, ताप जो है, वह सिर्फ सूचक है कि भीतर बीमारी है। और अगर वैद्य इसे ठंडक, इस गर्मी को ही ठंडक देने में लग गया, ठंडे पानी से नहलाने में लग गया, तो बीमारी के मिटने की संभावना कम, बीमार के मिट जाने की संभावना ज्यादा है।
तो चिकित्सक गर्मी देख कर सिर्फ पहचानता है कि भीतर बीमारी है। बीमारी को मिटाने लग जाता है, गर्मी विदा हो जाती है। गर्मी सिर्फ सूचक थी।
हिंसक चित्तवृत्ति, कामुक चित्तवृत्ति भीतर मूर्च्छा की सूचक है-- निद्रा की, अ-ध्यान की, सोए हुए होने की, तंद्रा की, नशे की हालत की। उस नशे की हालत को भीतर तोड़ दें तो बाहर से हिंसा विदा हो जाएगी और अहिंसा फलित होने लगेगी।
इसलिए इन सिद्धांतों के सीधे प्रयोग की बात जरा भी उचित नहीं है। और जिन लोगों ने भी इन सिद्धांतों के सीधे प्रयोग का विचार किया है, वे केवल सप्रेशन, दमन, आत्म-उत्पीड़न और एक तरह की सेल्फ टार्चर, अपने को सताने की लंबी प्रक्रिया में उतर गए हैं; जिसके परिणाम में कभी भी विमुक्ति तो उपलब्ध नहीं हुई, विक्षिप्तता, पागलपन जरूर उपलब्ध हो सकता है।

प्रश्नः आत्मा-परमात्मा कहीं बाहर नहीं, भटकने से कहीं कुछ मिलता नहीं, न वेश-परिवर्तन में कुछ है, तो महावीर क्यों साधु बने और दूसरों को साधु बनने का उपदेश क्यों देते रहे?

यह बात भी बहुत मजेदार है। अक्सर हमें ऐसा लगता है कि महावीर साधु बने हैं और दूसरों को भी साधु बनने के लिए कहते रहे। यह हमें लगता है, क्योंकि हम असाधु हैं, और अगर हमें साधु होना हो तो साधु बनना पड़ेगा। जब कि सचाई यह है कि साधुता आती है, बनना नहीं पड़ता, और जो बनेगा उसकी साधुता थोथी, झूठी, मिथ्या, आडंबर होगी।
एक युवक एक फकीर के पास गया था और उस फकीर से उसने पूछा कि मैं कैसे साधुता उपलब्ध करूं, मुझे बताएं। तो उस फकीर ने कहा, दो तरह की साधुताएं हैं, साधु बनना हो तो बहुत सरल है बात, साधु होना हो तो बहुत कठिन है बात। साधु बनना हो तो एक अभिनय की बात है। तुम जो हो, रहे आओ। कपड़े बदलो, वेश बदलो, भाषा बदलो, ऊपर से सब बदल डालो, साधु तुम बन जाओगे।
साधु होना हो तो मामला बहुत कठिन है, क्योंकि तब वेश बदलने से, वस्त्र बदलने से, आवरण बदलने से कुछ भी न होगा, तब तो तुम ही बदलोगे तो कुछ हो सकता है।
महावीर साधु बने, यह अत्यंत गलत शब्दों का प्रयोग है। महावीर साधु हुए। बनना तो हो जाता है चेष्टा से, होना होता है आत्म-परिवर्तन से।
और महावीर ने किसी को कहा कि तुम साधु बनो, तो भी बात गलत है। महावीर
ने किसी को साधु बनने को नहीं कहा। महावीर ने कहा कि जागो असाधुता के प्रति और तुम पाओगे कि साधुता आनी शुरू हो गई है।
बनने की भाषा प्रयास की भाषा है। प्रयास करके हम कुछ बन सकते हैं, लेकिन साधु नहीं बन सकते। साधुता तो ट्रांसफार्मेशन है, भीतर से आत्म-परिवर्तन है पूरा का पूरा।
तो साधुता कोई ऐसी चीज नहीं है कि कल एक आदमी असाधु था और आज साधु हो गया। साधुता कोई ऐसी चीज नहीं है कि कल तक एक आदमी असाधु था, आज दीक्षा ले ली, वस्त्र बदले, मुंह-पट्टी बांधी और साधु हो गया! कल तक असाधु था, आज साधु हो गया! और कल फिर मुंह-पट्टी फेंक दे, वस्त्र बदल ले, फिर असाधु हो जाए! तो यह मुंह-पट्टी और वस्त्र और गेरुए और ये सब का जो बाह्य आडंबर है, अगर यही किसी को साधु बनाता है, तब तो बड़ी आसान बात है। कोई साधु बन सकता है, फिर असाधु बन सकता है।
लेकिन कभी सुना है ऐसा कि कोई साधु हो गया हो और फिर असाधु हो जाए? क्योंकि जिसने साधुता का आनंद जाना हो, वह कैसे असाधु होने के दुख में उतर

सकता है? जिसने साधुता का आनंद चखा हो, वह फिर असाधु हो सकता है? नहीं, लेकिन साधु वह हुआ ही नहीं था, सिर्फ वस्त्र ही बदले थे, सिर्फ वेश बदला था, सिर्फ ढोंग बदला था, सिर्फ अभिनय बदला था। अभिनय कल फिर बदला जा सकता है। जो हमारे ऊपर ही बदलाहट है, वह हमारे भीतर की बदलाहट नहीं है।
महावीर साधु नहीं बने। क्योंकि जो साधु बना है, वह कल असाधु बन सकता है। शायद महावीर को पता ही नहीं चला होगा कि वे साधु हो गए हैं। होने की जो प्रक्रिया है, अत्यंत धीमी, शांत और मौन है। बनने की प्रक्रिया अत्यंत घोषणापूर्ण है, बैंड-बाजे के साथ बनना होता है। बनने की जो प्रक्रिया है, भीड़-भाड़ के साथ है; जुलूस, प्रोसेशन के साथ है। बनने की जो प्रक्रिया है, वह और है; होने की प्रक्रिया और है।
जैसे रात कब कली खिल जाती है, फूल बन जाती है, शायद पौधे को भी पता न चलता होगा। कब एक छोटा सा अंकुर बड़ा पत्ता बन जाता है, शायद पत्ते को भी पता नहीं चलता होगा। आप कब बच्चे थे और कब जवान हो गए, आपको पता चला था? और कब आप जवान थे और कब बूढ़े हो गए, आपको पता चला? कब आप जन्मे, आपको पता चला था? और कब आप चुपचाप मर जाएंगे, पता चलेगा? यह सब चुपचाप, मौन हो रहा है। जीवन बड़े चुपचाप काम कर रहा है।
ठीक ऐसे ही, अगर कोई अपनी असाधुता को समझता चला जाए, समझता चला जाए, समझता चला जाए, तो एक दिन अचानक हैरान होता है कि कब वह साधु हो गया! उसे भी पता नहीं चलता कि किस क्षण पर यह रूपांतरण हो गया है। वेश वही होता है, वस्त्र वही होते हैं, सब वही होता है; लेकिन यह चुपचाप घटना घट जाती है। महावीर कभी साधु नहीं बने और न महावीर ने कभी किसी को कहा कि साधु बनो।
हां, महावीर को देखने वाले लोग साधु बने और उन्होंने दूसरों को भी समझाया कि साधु बनो! बस देखने में भूल हो जाती है। देखने में एकदम भूल हो जाती है। क्योंकि देखने में हमें कभी वह जो भीतरी क्रमिक विकास है, वह दिखाई नहीं पड़ता, सिर्फ बाहर की घटनाएं दिखाई पड़ती हैं। भीतर का क्रमिक विकास दिखाई नहीं पड़ता। बाहर कल एक आदमी ऐसा था, आज ऐसा हो गया, यह हमें दिखाई पड़ जाता है। भीतर का, बीच का सेतु छूट जाता है। वही सेतु मूल्यवान है। कोई आदमी कैसे साधु बनता है?
कुछ वर्ष हुए, एक मुसलमान एडवोकेट मुझे मिलने आए। और उन्होंने मुझे कहा कि मैं कई महीनों से मिलने आना चाहता था, लेकिन नहीं आता था। नहीं आता था इस ख्याल से, चित्त अशांत है मेरा, पूछना चाहता था आपसे कि कैसे शांत हो जाऊं? लेकिन यह डर लगता था कि आप कहेंगे मांस खाना छोड़ो, चोरी करना छोड़ो, बेईमानी छोड़ो, शराब मत पीओ, जुआ मत खेलो; और ये सब मेरे पीछे लगे हैं। तो जब भी किसी साधु के पास गया, उसने यही कहा कि ये पहले छोड़ो, तब शांत हो सकते हो। ये मुझसे छूटते नहीं। फिर मैंने साधु के पास जाना ही बंद कर दिया। क्या मतलब! वही कहेगा कि ये पहले छोड़ो। ये छूटते नहीं, शराब छूटती नहीं, जुआ छूटता नहीं, कुछ छूटता नहीं। तो इसलिए मैं आपके पास नहीं आया।
फिर मैंने कहा, आज आप कैसे आ गए? उन्होंने कहा, आज किसी मित्र के घर खाना खाने गया था, उन्होंने मुझसे कहा कि आप कहते हैं कि कुछ छोड़ो ही मत। तो मुझे लगा कि इस आदमी के पास जाना चाहिए। आप कुछ भी छोड़ने को नहीं कहते? शराब पी सकता हूं, जुआ खेल सकता हूं?
मैंने कहा, मुझे तुम्हारे शराब और जुए से क्या मतलब! यह तुम्हारा काम है, तुम जानो। तो उन्होंने कहा, फिर आपसे मेरा मेल पड़ सकता है। फिर बोलिए मैं क्या करूं? छोड़ना कुछ भी नहीं, फिर मैं क्या करूं? अशांत बहुत हूं, दुखी बहुत हूं। तो मैंने उन्हें कहा कि आप ध्यान का छोटा सा प्रयोग शुरू करें, आत्म-स्मरण का प्रयोग शुरू करें, स्वयं को स्मरण करने का प्रयोग शुरू करें, सेल्फ रिमेंबरिंग का थोड़ा प्रयोग शुरू करें। उन्हें मैंने कहा कि आधा घंटे रोज बैठ कर बस अकेले स्वयं ही रह जाएं, सब भूल जाएं। उतनी देर मन में जुआ न खेलें, बाहर के जुए से मुझे कोई मतलब नहीं। उतनी देर मन में शराब न पीएं, बाहर की शराब से मुझे कोई मतलब नहीं। उतनी देर मांस न खाएं, बस इतना बहुत है। उतनी देर रिश्वत न लें।
उन्होंने कहा, यह हो सकता है, आधा घंटे बच सकता हूं। साढ़े तेईस घंटे तो कोई बात ही नहीं है! मैंने कहा, उससे कोई संबंध ही नहीं है! वह आपका काम है,

आप जानें! आधा घंटा मुझे दे दें। उन्होंने मुझे वचन दिया कि आधा घंटा मैं आपको देता हूं। और आपको दे सकता हूं, किसी को मैंने कभी नहीं वायदा किया कुछ। क्योंकि आप आदमी अजीब हैं, आप कहते हैं कि साढ़े तेईस घंटे कुछ भी करो! मैंने कहा, साढ़े तेईस घंटे के संबंध में मुझसे आप दुबारा बात ही मत करना। बस, मेरा आधा घंटा। उसका आप ख्याल रखें।
छह महीने तक वह आदमी नहीं आया। और सच में अदभुत आदमी था, हिम्मतवर आदमी था। मुझे जो वचन दिया था उसने आधा घंटे का, पूरा किया था। छह महीने बाद वह आदमी वापस आया। उसकी चाल बदल गई थी, वह आदमी बदल गया था। उसने मुझे आकर कहा कि आपने मुझे धोखा दिया।
मैं क्यों आपको धोखा दूंगा?
वह आधा घंटा तो ठीक था, लेकिन मेरे साढ़े तेईस घंटे दिक्कत में पड़े जाते हैं। मेरे साढ़े तेईस घंटे मुश्किल में पड़ गए हैं। कल मैंने शराब पी और वोमिट हो गई मुझे उसी वक्त! क्योंकि मेरा पूरा मन इनकार कर रहा था। वह आधा घंटा वजनी पड़ रहा है। वे साढ़े तेईस घंटे मुश्किल में पड़ गए हैं। रिश्वत लेने में एकदम हाथ खिंच आते हैं पीछे, जैसे कोई जोर से कहता है कि क्या कर रहे हो? क्योंकि उस आधे घंटे में जो शांति और आनंद मुझे मिल रहा है, अब मैं चाहता हूं कि चौबीस घंटे पर फैल जाए।
मैंने कहा, वह तुम्हारा काम! साढ़े तेईस घंटे--इससे मेरा कोई संबंध नहीं है। उसकी तुम मुझसे कभी बात ही मत करना। उसकी तुम मुझसे बात ही मत करना।
छह महीने बाद वह आदमी दुबारा आया और उसने कहा कि या तो आपको जो आधा घंटा दिया है, वह मैं वापस ले लूं; लेकिन अब नहीं ले सकता वापस भी, क्योंकि जो आनंद मैंने उस आधा घंटे में पाया है, पूरे जीवन में नहीं पाया। और या फिर साढ़े तेईस घंटे भी आपको दे जाता हूं, क्योंकि अब इसका कोई मतलब नहीं रहा। अब मैं मांस खा नहीं सकता। अब मुझे यह ख्याल मुश्किल में डाल देता है कि मैं इतने दिन तक कैसे खाता रहा? अब मुझे जो तकलीफ होती है, वह यह कि मैं इतने दिन, कोई पैंतालीस वर्ष, कितना संवेदनहीन था कि खाता रहा! आज तो भीतर ले जाना मुश्किल हो गया है। आज मैं सोच भी नहीं पाता कि मैं इतने वर्षों तक शराब कैसे पीता रहा?
मैंने कहा, अब क्या दिक्कत है शराब पीने में? तो उसने मुझे कहा कि दिक्कत बहुत साफ हो गई है। पहले मैं अशांत था, शराब पीता था, अशांति मिट जाती थी। अब मैं शांत हूं, शराब पीता हूं, शांति मिट जाती है। और शांति मैं मिटाना नहीं चाहता, अशांति मैं मिटाना चाहता था।
फिर मैंने कहा कि तुम्हारी मर्जी, अब तुम जो ठीक समझो करना। वह अभी भी मुझे मिलते हैं तो मुझे कहते हैं, आपने मुझे बहुत धोखा दिया। आप मुझे पहले नहीं कहे, नहीं तो मैं वह आधा घंटा भी शायद आपको न दे सकता। मैंने कहा, मुझे आपके साढ़े तेईस घंटे से कोई प्रयोजन नहीं है। लेकिन कठिनाई क्या होती है, उलटा सब हो जाता है। उलटा सब हो जाता है।
महावीर का ध्यान ऐसा है कि जो उस ध्यान से गुजरेगा, वह मांसाहार नहीं
कर सकता है। महावीर कहते नहीं किसी को कि मांसाहार मत करो। वह ध्यान ऐसा है कि उससे गुजरेंगे तो मांसाहार नहीं कर सकते। इतने संवेदनशील हो जाएंगे कि यह बात इतनी मूर्खतापूर्ण मालूम पड़ेगी, जड़तापूर्ण मालूम पड़ेगी कि भोजन के लिए और किसी का प्राण लिया जाए! यह असंभव मालूम पड़ने लगेगी। महावीर के जो ध्यान से गुजरेगा, वह शराब नहीं पी सकता है, क्योंकि वह ध्यान इतने जागरण में ले जाता है, इतने आनंद में, कि शराब पीना मतलब उस सबको नष्ट करना होगा।
लेकिन हमारी हालत उलटी है। हम पकड़े हुए हैं कि मांस मत खाओ, शराब मत पीयो; यह मत करो, वह मत करो; इनको हम जोर से पकड़े हुए हैं! इनको मत करो, बस फिर जो महावीर को हुआ, वह आपको हो जाएगा!
कभी नहीं होने वाला। क्योंकि आप गलत ही दिशा से चल पड़े हैं। आप भूसा
बो रहे हैं, गेहूं का आपको पता ही नहीं है।

प्रश्नः इसी संबंध में इन्होंने पूछा है कि महावीर समानता के समर्थक थे, फिर भी उनके संघ में साध्वी संघ उपेक्षित क्यों रहा?

यह भी बहुत विचारणीय बात है, बहुत विचारणीय बात है। इसमें दो-तीन बातें समझ लेनी जरूरी हैं। महावीर के मन में स्त्री और पुरुष के बीच असमानता का कोई भाव नहीं है। समानता की तो उनकी पकड़ इतनी गहरी है कि मनुष्य में और पशु में भी, मनुष्य में और पौधे में भी वे असमानता का भाव नहीं रखते हैं। लेकिन फिर भी स्त्री और पुरुष के बीच साधु संघ में उन्होंने कुछ भेद किया है, और उसके कुछ कारण हैं। और वे कारण अब तक नहीं समझे जा सके हैं। न समझे जाने का रहस्य ख्याल में आपको आ सकता है।
महावीर स्त्री के विरोध में नहीं हैं, स्त्रैणता के विरोध में हैं।
और इसको नहीं समझा जा सका। महावीर पुरुष के पक्ष में नहीं हैं; लेकिन पुरुष होने का एक गुण है, उसके पक्ष में हैं। इन दोनों बातों को हम समझेंगे तो ख्याल में आ जाएगा। कई पुरुष हैं, जो स्त्रैण हैं; और कई स्त्रियां हैं, जो पुरुष हैं।
स्त्रैणता का क्या अर्थ है? स्त्रैणता का अर्थ हैः पैसिविटी। उसका अर्थ हैः निष्क्रियता। पुरुष का अर्थ हैः एक्टिविटी। उसका अर्थ हैः सक्रियता।
ऐसे भी स्त्री और पुरुष में आमतौर से स्त्री पैसिव है, पुरुष एक्टिव है। स्त्री सिर्फ प्रतीक्षारत है, पुरुष आक्रामक है। स्त्री अगर प्रेम भी करे तो भी आक्रमण नहीं करती, जाकर किसी को पकड़ नहीं लेती कि मुझे तुमसे प्रेम है। इतना भी नहीं करती। प्रेम भी करे तो चुपचाप बैठ कर प्रतीक्षा करती है कि तुम आओ और उससे कहो कि मैं तुम्हें प्रेम करता हूं। स्त्री आक्रामक नहीं है। स्त्रैण चित्त आक्रामक नहीं है। इससे स्त्री का ही संबंध नहीं हैं, बहुत पुरुष ऐसे हैं, जो इसी भांति प्रतीक्षा करेंगे। महावीर का कहना यह है--जैसा मैंने पीछे समझाया कि महावीर की पूरी साधना संकल्प की, श्रम की, श्रमण की साधना है--वे कहते यह हैं कि जिसे सत्य पाना है, उसे यात्रा पर निकलना होगा, उसे जाना पड़ेगा, उसे जूझना पड़ेगा, उसे चुनौती, साहस, संघर्ष में उतरना पड़ेगा। ऐसा बैठ कर सत्य नहीं मिल जाएगा। तो महावीर कहते हैं कि स्त्री को भी अगर सत्य पाना है तो पुरुष होना पड़ेगा! इस बात को बहुत गलत समझा गया। और ऐसा समझा गया कि स्त्री योनि से मोक्ष असंभव है। स्त्री को भी एक जन्म लेना पड़ेगा, पुरुष का, फिर पुरुष योनि से मोक्ष हो सकेगा। बात बिल्कुल और थी। पुरुष योनि से ही मोक्ष हो सकता है महावीर के मार्ग पर, लेकिन पुरुष योनि का मतलब पुरुष हो जाना नहीं है शरीर से, पुरुष योनि का मतलब ही केवल इतना है, वह पैसिविटी छोड़ देना, निष्क्रियता छोड़ देना।
जैसे एक स्त्री है, उसके मन को सहज यही लगता है कि वह कृष्ण का गीत गाए
और कहे कि तुम्हीं ले चलो जहां ले चलना हो, तुम्हीं हो मार्ग, तुम्हीं हो सहारे। मैं तो कुछ भी नहीं हूं, तुम्हीं हो सब, अब जहां मुझे ले जाओ। जितना भक्ति मार्ग है, वह सब स्त्रैण चित्त की उत्पत्ति है--स्त्री की नहीं; इसको ख्याल में ले लेना, नहीं तो भूल हो जाएगी।
स्त्रैण चित्त की उत्पत्ति है--जितना भक्ति मार्ग है। क्योंकि भक्त
यह कह रहा है कि मैं क्या कर सकता हूं? जैसे प्रेयसी अपने प्रेमी के कंधे पर हाथ रख ले, जैसे प्रेयसी अपने प्रेमी के हाथ में हाथ दे दे और अब प्रेमी जहां ले जाए, वह चली जाए। स्त्रैण चित्त यह कह रहा है कि कोई ले जाएगा तो मैं जाऊं। कोई पहुंचाए तो मैं पहुंच जाऊं। मैं समर्पण कर सकता हूं, मैं सब चरणों में रख दूं, लेकिन कोई मुझे ले जाए, मुझसे जाना होने वाला नहीं है। जैसे एक लता है, वह सीधी खड़ी नहीं हो पाती, कोई वृक्ष का सहारा मिल जाए
तो ही खड़ी हो सकती है। लता को वृक्ष का सहारा चाहिए। वह लता होने की उसके बीइंग में, उसके अस्तित्व में छिपी हुई बात है, उसे सहारा चाहिए।
स्त्री सहारा मांगती है। और महावीर सहारे के एकदम खिलाफ हैं। वे कहते हैं, सहारा मांगा कि तुम परतंत्र हुए। सहारा मांगो ही मत, बिल्कुल बेसहारा हो जाओ, टोटल हेल्पलेस। सहारा मांगना ही मत। जिस दिन तुम बिल्कुल बेसहारे खड़े हो, तुम्हीं सहारे बन जाओगे। लेकिन तुमने सहारा मांगा कि तुम पंगु हुए, तुम दीन हुए, तुम हीन हुए, तुम किसी के परतंत्र हुए। तो सहारा भगवान का भी मत मांगना! सवाल यह नहीं है कि किसका। सहारा ही मांगना दीन हो जाना है।

तो महावीर कहते हैं, सहारा मांगना ही मत।
यह अत्यंत परुष मार्ग है, यह बहुत पुरुष मार्ग है। इस पुरुष मार्ग पर स्त्री की कोई गति नहीं है--स्त्रैण चित्त की। शरीर से कोई स्त्री हो, गति हो सकती है।
एक तीर्थंकर हैं जैनों की, मल्लीबाई! वह स्त्री है, वह तीर्थंकर हो गई है। और दिगंबरों ने उसे मल्लीनाथ ही कहा, उसको मल्लीबाई भी नहीं कहा! इसमें भी अर्थ है। इसमें भी सिर्फ इतना अर्थ है कि उसे स्त्री कहना बेमानी है। मल्लीबाई को स्त्री कहना बेमानी है, क्योंकि वह ठीक पुरुष जैसा बेसहारा खड़े होने की हिम्मत कर सकी। उसने कोई सहारा नहीं मांगा। स्त्री कैसी है! इसलिए मल्लीबाई कहा ही नहीं दिगंबरों ने, उन्होंने कहा, मल्लीनाथ। और पीछे झगड़ा खड़ा हो गया कि मल्लीबाई स्त्री थी कि पुरुष? दिगंबर कहते हैं पुरुष, श्वेतांबर कहते हैं स्त्री। दोनों ठीक कहते हैं। मल्लीबाई स्त्री थी, लेकिन उसे स्त्री कहना बेमानी है। उसको स्त्री कहने का कोई मतलब ही नहीं है, उसे पुरुष ही कहना चाहिए। वह जो पुरुष कहने का अर्थ है, वह और है। वह यह अर्थ है कि उसके चित्त की पूरी दशा स्त्रैण नहीं है।
यहां काश्मीर में एक स्त्री हुई लल्ला। तो काश्मीर के लोग कहते हैं
कि हम दो ही नाम पहचानते हैंः अल्ला और लल्ला। मगर लल्ला को स्त्री कहना मुश्किल है। लल्ला को स्त्री नहीं कहा जा सकता। अकेली स्त्री है जो नग्न रही। महावीर नग्न रहे सो ठीक है; पुरुष नग्न रह सकता है। पुरुष चित्त की वह व्यवस्था है।
पुरुष क्यों नग्न रह सकता है? क्योंकि पुरुष चित्त का एक अनिवार्य लक्षण यह है कि वह इसकी फिक्र नहीं करता कि दूसरा उसके संबंध में क्या सोच रहा है। वह दूसरे की फिक्र ही नहीं करता। स्त्री चौबीस घंटे दूसरे की फिक्र में है। वह जो कपड़े पहन रही है इसलिए कि दूसरे को कैसा लगता है। वह सज-संवर कर जा रही है तो पूरे वक्त इसलिए कि दूसरे को कैसा लगता है। दूसरा एकदम महत्वपूर्ण है। चाहे वह पति हो, चाहे प्रेमी हो, चाहे समाज हो। स्त्री स्वयं में कभी खड़ी नहीं है, हमेशा दूसरे की नजर देख रही हैः दूसरे को कैसा लगता है।
महावीर नग्न खड़े हो गए, यह कोई बड़ी बात न थी। लेकिन लल्ला नग्न खड़ी हो गई, यह बड़ी भारी बात है। कोई भी पुरुष नग्न खड़ा हो सकता है, इसमें बड़ी घटना नहीं है। लेकिन पूरी पृथ्वी पर एक ही औरत नग्न रही--लल्ला! पूरे जीवन नग्न रही! इसके पास एक पुरुष चित्त है।
वह जो स्त्रैण भाव है कि दूसरा क्या कहता है, वह इतना महत्वपूर्ण है स्त्री के लिए कि दूसरा क्या कहता है! दूसरे को मैं कैसी लगती हूं, यह ज्यादा महत्वपूर्ण है। मैं कैसी हूं, यह इतना महत्वपूर्ण नहीं है--दूसरे को कैसी लगती हूं।
गांधी जी ठहरे हुए थे रवींद्रनाथ के पास शांति-निकेतन में। सांझ दोनों घूमने निकलने को हैं, तो रवींद्रनाथ ने गांधी जी को कहा कि रुकें दो मिनट, मैं जरा बाल संवार आऊं! वे भीतर गए हैं। एक तो गांधी जी को यह सुन कर ही बहुत बेमानी लगा कि बुढ़ापे में और बाल संवारने की इतनी चिंता! पर रवींद्रनाथ थे, कोई और होता तो शायद गांधी उसको वहीं कुछ कहते भी। एकदम से कुछ कहा भी नहीं जा सका।
रवींद्रनाथ भीतर चले गए हैं। दो मिनट क्या, दस मिनट बीत गए हैं! गांधी खिड़की से झांके हैं, वह आदमकद आईने के सामने खड़े हैं और बाल संवारे चले जा रहे हैं। वह खो ही गए हैं आईने में। पंद्रह मिनट बीत गए हैं, तब बरदाश्त के बाहर हो गया। भीतर गए और कहा कि यह क्या कर रहे हैं आप? रवींद्रनाथ ने चौंक कर देखा। अरे! कहा, मैं भूल गया। चलता हूं।
चलने लगे हैं तो रास्ते में गांधी जी ने उनसे कहा कि मुझे बड़ी हैरानी होती है। इस उम्र में और आप ऐसा बाल संवारते हैं! तो रवींद्रनाथ ने कहा, जब जवान था, तब बिना संवारे भी चल जाता था। जब से बूढ़ा हो गया हूं, तब से बहुत संवारना पड़ता है। बड़ी चिंता मन में लगती है कि किसी को देख कर कैसा लगूंगा। और मुझे तो ऐसा भी लगता है कि अगर मैं कुरूप हूं तो वह भी हिंसा है, क्योंकि दूसरे की आंख को दुख होता है। तो मुझे सुंदर होना चाहिए। दूसरे की

आंख को दुख पहुंचाना भी हिंसा ही है। तो उसको थोड़ा सा सुख मिल जाए मुझे देख कर, तो अहिंसा है। तो मैं तो जितना बन सके, सुंदर होने की कोशिश करता हूं। रवींद्रनाथ के पास स्त्रैण चित्त है। पुरुष हैं वे--अगर हिम्मत कोई करे तो जैसा मल्लीबाई को मल्लीनाथ कहा, ऐसा रवींद्रनाथ को रवींद्रबाई कहने में कोई हर्जा नहीं है। वह जो चित्त है न, वह जो चित्त है भीतर गहरे में, वह एकदम स्त्री का है। शायद सभी कवियों के पास वह होता है। असल में शायद काव्य का जन्म ही नहीं हो सकता पुरुष से। वह जो काव्य का जगत है, वह ही शायद स्त्री के चित्त का जन्म है।
इसलिए दुनिया में जितना विज्ञान बढ़ता जा रहा है, काव्य पीछे हटता जा रहा है। उसका कारण है कि विज्ञान पुरुष चित्त का जन्म है। और पुरुष चित्त जीतता चला जाएगा तो काव्य पीछे हटता चला जाएगा।
स्त्री का पूरा चित्त काव्य का है--सपने का, कल्पना का। वह पैसिव है, कुछ कर तो नहीं सकता, सिर्फ कल्पना ही कर सकता है। उसके भी कारण हैं। असल में कवि का मतलब है, पैसिव माइंड। ऐसा बैठ कर कल्पना कर सकता है, कर कुछ भी नहीं सकता। महल बहुत बना सकता है, लेकिन कल्पना में ही! बैठे-बैठे जो बन सकते हैं, वे ही महल बना सकता है। खड़े होकर और गिट्टी तोड़ कर और पत्थर जमा कर जो महल बनाने पड़ते हैं, वह उसके बस की बात नहीं है। शब्दों के महल बना सकता है, क्योंकि वह बैठ कर ही हो जाता है।
बल्कि और भी मजे की बात है। विज्ञान में करना पड़ता है आविष्कार, तो वह पुरुष चित्त डिस्कवर करता है, खोलता है; जो ढंका है, उसे उघाड़ता है। कवि डिस्कवर नहीं करता, वह तो ऐसा बैठा रह जाता चुपचाप। बल्कि सच यह है कि जब बड़ी कविता उसमें उतरती है, तब वह बिल्कुल पैसिव होता है, बिल्कुल वूमेन होता है, स्त्री होता है। उसमें उतरती है कोई चीज।
रवींद्रनाथ कहते हैं कि मैंने क्या गाया! जब मैं नहीं था, तब हे परमात्मा! तू मुझसे गाता है। जब मैं नहीं होता हूं, तब तू ही उतर आता है और मुझसे गाता है।
अब यह जो माइंड है न, यह बिल्कुल पैसिव माइंड है। इसमें कुछ उतरता है, इससे बहता है। यह प्रतीक्षारत, राह देखता, अवसर खोजता--लेकिन अपनी जगह चुप और मौन। तो सभी कवि चित्त स्त्री चित्त होंगे।
महावीर का यह जो जोर है, इसके पीछे कारण है। यह स्त्री और पुरुष के बीच नीचे-ऊंचे की बात नहीं है। यह स्त्रैण चित्त और पुरुष चित्त क्या कर सकते हैं, इस बात की--इस बात के संबंध में विचार है। इसलिए महावीर कहते हैं, स्त्री का मोक्ष नहीं।
इसको समझना चाहिए। इसका मतलब है स्त्रैण चित्त को मोक्ष नहीं। स्त्री मोक्ष जा सकती है, लेकिन चित्त पुरुष का होना चाहिए--महावीर के मार्ग से। अगर मीरा के मार्ग से कोई जाना चाहे तो मीरा कहेगी, पुरुष को कोई मोक्ष नहीं। मीरा के मार्ग से जाना हो तो स्त्री चित्त ही चाहिए। उस मार्ग से पुरुष के लिए कोई कोई मुक्ति हो नहीं सकती। क्योंकि पुरुष, पुरुष इस तरह की बात ही नहीं सोच सकता, जैसा मीरा सोच सकती है। और अगर कभी पुरुष सोचता है तो फौरन स्त्रैण हो जाता है।
जैसे देखें, अगर कबीर भी, या सूर अगर कृष्ण के प्रेम में पागल हो जाएं
तो सोचते क्या हैं? तो फौरन स्त्रैण चित्त की बातें शुरू हो जाती हैं! तो कबीर कहते हैं, मैं राम की दुल्हनिया! मैं तो राम की दुल्हन हूं! वह जो भाव है न, वह फौरन स्त्री का आना शुरू हो जाएगा। तो कहेंगे कि मैं प्रतीक्षा कर रहा हूं सेज पर तुम्हारी, तुम कब आओगे! वह जो भाव है, वह स्त्री का शुरू हो जाएगा। सेज तैयार हो गई है, फूल छिड़क दिए गए, सुगंध फैल गई, धूप जल गई, अभी तक तुम आए नहीं! वह प्रतीक्षा चलनी शुरू हो गई। वह स्त्री चित्त प्रतीक्षा करने लगा।
और जगत में दो ही तरह के चित्त हैं--स्त्री चित्त और पुरुष चित्त।
इसलिए बहुत गहरे में मुक्ति के दो ही मार्ग हैंः स्त्री का और पुरुष का।
महावीर का मार्ग पुरुष का मार्ग है, इसलिए महावीर के मार्ग पर स्त्री
के लिए कोई गुंजाइश नहीं है।

प्रश्नः ज्यादातर लोग तो मिक्सचर होते हैं।

हां, तो इसलिए उनके लिए बीच का कोई मार्ग होता है। इसलिए मार्ग बहुत हैं, लेकिन मौलिक रूप से दो ही मूल मार्ग होंगे। क्योंकि पुरुष और स्त्री-- मनुष्य जीवन में दो अति छोर हैं, जहां दो एक्सट्रीम्स पर दो तरह का अस्तित्व है। अधिक लोग बीच में होते हैं। अधिक लोग बीच में होते हैं, इसलिए अधिक लोग बीच का रास्ता पकड़ते हैं, जिसमें वे ध्यान भी करते हैं और पूजा भी करते हैं।
अब यह मजा है कि ध्यान पुरुष मार्ग का हिस्सा है और पूजा स्त्री मार्ग
का हिस्सा है। जिसमें वे पूजा और ध्यान का तालमेल कर लेते हैं--और पूजा भी करते रहते हैं और ध्यान भी करते रहते हैं! वह घोलमेल है। और मेरा ख्याल अपना यह है कि घोलमेल से तो मुक्ति बहुत मुश्किल है। क्योंकि वहां कुछ, कभी हम इस रास्ते पर थोड़ा जाते, कभी उस रास्ते पर थोड़ा जाते।
इसलिए बहुत ठीक चित्त का विश्लेषण जरूरी है कि किस व्यक्ति के लिए कौन सा मार्ग?
तो महावीर के मार्ग पर स्त्रियां--जैसा प्रश्न में पूछा है--उपेक्षित हैं, ऐसा नहीं, स्त्री चित्त उपेक्षित है। स्त्री चित्त उपेक्षित होगा ही। जैसा कि मीरा के मार्ग पर पुरुष चित्त उपेक्षित होगा।
मीरा गई वृंदावन और एक बड़ा साधु है, पुजारी है, संत है, वह उसके दर्शन
के लिए जाकर उसके द्वार पर खड़ी हो गई। उसने खबर भेजी कि मैं तो स्त्रियों को देखता नहीं, तो स्त्रियों से मिलता नहीं हूं! मीरा ने उत्तर भिजवाया कि मैं तो सोचती थी कि एक ही पुरुष है जगत में, दूसरा पुरुष भी है इसका मुझे पता न था! तुम दूसरे पुरुष भी हो? वह भी कृष्ण का भक्त है। तो मीरा ने खबर भिजवाई कि मैं तो सोचती थी कृष्ण एक ही पुरुष हैं और तुम कृष्ण के भक्त होकर तुम भी एक पुरुष हो! वह पुजारी भागा हुआ आया और उसने कहा कि माफ करना, भूल हो गई। भीतर चलो।
इसमें बड़ा अर्थ है। इसमें बड़ा अर्थ यह है कि एक तो पुजारी गलत बात कह गया। पुजारी को खुद स्त्रैण होना चाहिए, अगर वह कृष्ण का भक्त है तो। क्योंकि कृष्ण के साथ सखियों के सिवाय और किसी का निबाह नहीं। और किसी का कोई मार्ग नहीं वहां। वहां राधा जैसा चित्त ही चाहिए--पूर्ण समर्पित, पूरा सहारा लिए हुए; प्रतीक्षा करता हुआ; दूसरे के हाथ में हाथ डाले हुए--दूसरा ले जाए।
वह भी मार्ग है। अगर कोई पूर्णरूप से उस तरफ जाए तो उधर से भी उपलब्धि है। लेकिन महावीर का वह मार्ग नहीं है। इसलिए महावीर के मार्ग पर स्त्री चित्त उपेक्षित होगा ही, मगर वह स्त्री की उपेक्षा नहीं है। तो भूल हो जाएगी।
एक प्रश्न और उसने आगे पूछा है--और वे एक साध्वी के ही पूछे हुए प्रश्न हैं--तो उसने यह पूछा है कि महावीर के मार्ग पर यह बड़ी बेबूझ बात है कि एक दिन का दीक्षित साधु हो, सत्तर वर्ष की दीक्षित वृद्धा साध्वी हो, तो भी साध्वी को साधु को प्रणाम करना पड़ेगा! एक दिन के दीक्षित साधु को सत्तर वर्ष की दीक्षित वृद्धा साध्वी को, लेकिन प्रणाम साध्वी को ही साधु को करना पड़ेगा! तो उसने पूछा है, पुरुष के लिए इतना सम्मान और स्त्री के लिए इतना अपमान! जब कि महावीर समानता का ख्याल रखते हैं?
एक तो जो मैंने पूरी बात कही, वह ख्याल में रहे, महावीर के मन में स्त्री चित्त के लिए कोई जगह नहीं है, स्त्रैणता के लिए कोई जगह नहीं है-- एक। और दूसरा भी एक मनोवैज्ञानिक कारण है, जो ख्याल में रहे। और वह बड़े मजे का है, वह कभी ख्याल में नहीं आ सका।
यह बड़ी अदभुत बात है कि वृद्धा साध्वी एक दिन के दीक्षित जवान साधु को
भी नमस्कार करे! कोई साधु किसी साध्वी को कभी नमस्कार न करे! स्वभावतः, लगेगा कि पुरुष को बहुत सम्मान दे दिया गया, स्त्री को बहुत अपमानित कर दिया गया!
बात उलटी है, लेकिन बड़ी मनोवैज्ञानिक है, इसलिए एकदम से ख्याल में नहीं आती। बात यह है कि स्त्रियों से संयम की संभावना ज्यादा है पुरुषों की बजाय, सदा। पुरुष के असंयमी होने की संभावना बहुत ज्यादा है, स्त्री के संयमी होने की संभावना बहुत ज्यादा है।

उसके कारण हैं कि पुरुष आक्रामक है, उसका चित्त आक्रामक है। स्त्री
को जब तक कोई असंयम में न ले जाए, वह अपने से जाने वाली नहीं है, यह ध्यान रहे। उसको कोई लीड करे--चाहे मोक्ष की तरफ और चाहे नरक की तरफ, कोई उसका हाथ पकड़े और ले जाए तो ही वह जाती है; अपनी तरफ से वह कहीं जाती नहीं।
पुरुष इनीशिएटिव लेता है हर चीज में--चाहे पाप हो चाहे पुण्य, चाहे मोक्ष हो और चाहे नरक, चाहे अंधकार हो चाहे प्रकाश, पुरुष पहल करने वाला है। अगर पाप में भी कभी कोई ले जाता है तो पुरुष ही स्त्री को ले जाता है। ऐसा बहुत कम मौका है कि कभी कोई स्त्री किसी पुरुष को पाप में ले गई हो। कभी ले जाए तो उसका कारण यही होगा कि उसके पास पुरुष चित्त है, और कोई कारण नहीं।
लेकिन यह बहुत, बहुत मुश्किल घटना है कि स्त्री किसी को पाप में ले जाती हो, या पुण्य में, या धर्म में, यह सवाल ही नहीं है। इसलिए स्त्री नेता मुश्किल से हो पाती है। नेतृत्व, पहल करने की उसमें संभावना कम होती है। या हो, तो उसमें पुरुष चित्त की कोई न कोई बुनियादी आधारशिला होती है। महावीर यहां बहुत अदभुत मनोवैज्ञानिक सूझ का परिचय दे रहे हैं, जो कि फ्रायड के पहले किसी आदमी ने कभी दिया ही नहीं था। लेकिन सूझ इतनी गहरी है, एकदम से दिखाई नहीं पड़ती। चूंकि पुरुष ही पाप में ले जा सकता है, स्त्री कभी नहीं--और एक बात ध्यान रखें, इसके लिए महावीर ने बड़ा सुगम उपाय किया, स्त्री पुरुष को आदर दे। और जब स्त्री जिस पुरुष को आदर देती है, उसके अहंकार को कठिनाई हो जाती है उस स्त्री को पाप में ले जाने की। एक स्त्री अगर आपको आदर दे, पूज्य माने, सिर रख दे पैरों में, तो आपके अहंकार को कठिनाई हो जाती है अब इसको नीचे, क्योंकि अब इतना जिसने आदर दिया है, इस आदर को आप अपनी तरफ से उतार कर खंडित करें और आप इसे पाप की तरफ ले जाएं, यह आपके अहंकार को मुश्किल हो गई। आपका अहंकार अब संभल कर बैठा रहेगा-- क्योंकि जिसने इतना आदर दिया है, अब मैं नीचे उतरूं और उसके आदर-भाव को खंडित करूं, यह मुश्किल होगा।
महावीर ने एक बहुत साइकोलाजिकल डिवाइस, एक बड़ा मनोवैज्ञानिक उपाय किया। पुरुष ले जा सकता है स्त्री को पाप में और इसलिए स्त्री को कहा कि कितनी ही वृद्धा स्त्री हो, पुरुष को आदर दे, उसका पैर छू ले, सिर लगा दे उसके पैर से, ताकि उसके अहंकार को कठिनाई हो जाए कि वह किसी स्त्री को पाप में ले जाने की कल्पना भी न कर सके, वह असंभव हो जाए।
यहां अगर ध्यान से देखा जाए तो झुकती तो स्त्री है पुरुष के चरणों में, लेकिन वस्तुतः यहां पुरुष का पूरा अनादर हो गया है इस घटना में और स्त्री का पूरा आदर हो गया है। लेकिन वह देखना जरा मुश्किल मामला है। यहां स्त्री का पूरा सम्मान है इस मामले में। क्योंकि मामला यह है कि स्त्री पाप में किसी को अपनी तरफ से ले जाती ही नहीं।
इसलिए आप ध्यान रखें, महावीर के तेरह हजार साधु थे और चालीस हजार साध्वियां थीं। और यह अनुपात हमेशा ऐसा ही रहा है। और साध्वियां जितनी साध्वियां होती हैं, साधु उतने साधु नहीं होते--पैसिविटी के कारण। यानी वे चूंकि पहल नहीं करतीं किसी भी काम में, इसलिए वे जहां हैं, वहीं रुक जाती हैं।
यह भी बड़े मजे की बात है कि अगर स्त्री को कामवासना में न ले जाया गया
हो और उसे दीक्षित न किया जाए कामवासना में, तो स्त्री पूरे जीवन ब्रह्मचर्य से रह सकती है, उसमें कोई बाधा नहीं है, कठिनाई नहीं है। स्त्री को अगर कामवासना में दीक्षित न किया जाए तो वह पूरे जीवन ब्रह्मचर्य से रह सकती है। लेकिन पुरुष नहीं रह सकता। पुरुष की बड़ी कठिनाई है।
स्त्री की सारी शरीर की और मन की जो व्यवस्था है, वह बहुत अदभुत है, वह बहुत और तरह की है। पुरुष के व्यक्तित्व और शरीर की व्यवस्था बहुत और तरह की है। स्त्री को कामवासना में भी दीक्षित करना पड़ता है, धर्म-साधना में भी दीक्षित करना पड़ता है। वह पहल लेती ही नहीं। पहल उसके व्यक्तित्व का हिस्सा नहीं है। शुरुआत वह नहीं करती। शुरुआत कोई करता है, वह पीछे चलती है। अगर शुरुआत न की जाए तो पूरे जीवन भी स्त्री बिल्कुल निर्दोष रखी जा सकती है।

इसलिए निर्दोष लड़कियां तो मिल जाती हैं, निर्दोष लड़के मिलना बहुत मुश्किल है। क्वांरी लड़कियां मिल जाती हैं, कुंवारे लड़के मुश्किल से होते हैं। उसका क्वांरापन तोड़ना पड़ता है। लड़की का क्वांरापन तोड़ना पड़ता है, तभी टूटता है। और लड़के का क्वांरापन बहुत बचाना पड़े तो ही बच सकता है। यानी इन दोनों बातों में बुनियादी फर्क है।
और इसलिए, इसलिए लड़कियों पर जो हमें इतने नियंत्रण और बंधन मालूम पड़ते हैं, वे असल में लड़कियों पर नहीं हैं, लेकिन समझ बहुत कम है हमारी। लड़कियों को घर में रोका गया है, लड़कों से नहीं मिलने दिया गया है, नहीं दौड़ने-धूपने दिया गया है, उसका कारण यह नहीं है कि लड़कियों पर अविश्वास है, उसका कारण यह है कि उनको कभी भी इनीशिएट कहीं भी किया जा सकता है। लड़कों पर विश्वास नहीं है। वे जो लड़के बाहर हैं उन पर विश्वास नहीं है, वे विश्वास योग्य नहीं हैं। वे लड़कियों को पहल दे सकते हैं पाप की। और लड़कियां चूंकि कोई पहल दे नहीं सकतीं कभी भी... ।
महावीर ने यह जो व्यवस्था की कि हर स्थिति में साध्वी साधु को आदर दे, इसमें पुरुष के अहंकार की भी बड़ी तृप्ति हुई और साधुओं ने समझा होगा, हमारा बड़ा सम्मान भी हुआ, और आज भी वे यही समझ रहे हैं... !

प्रश्नः इसमें नमस्कार करने वाले का अहंकार टूटता है या जिसको नमस्कार किया जाता है, उसका अहंकार टूटता है?

नहीं, नहीं, अहंकार तोड़ना नहीं है, यहां पुरुष का महावीर अहंकार पूरी तरह सुरक्षित कर रहे हैं। पुरुष का अहंकार ही सुरक्षित कर रहे हैं। साध्वी पुरुष को नमस्कार करे... ।

प्रश्नः तो उसका अहंकार टूटता है?

किसका? साध्वी का टूटेगा अहंकार, पुरुष का मजबूत होगा। और मजबूत इसलिए कर रहे हैं वे कि पुरुष को अगर एक दफे पता चल जाए कि एक स्त्री ने मुझे आदर दिया, तो वह पुरुष उस स्त्री को पाप में इनीशिएट करने की व्यवस्था नहीं कर पाएगा। तो उसकी जो रुकावट खड़ी करे, मेरी बात आप समझ गए न? अगर एक स्त्री आपका पैर छू ले और आपके पैर में सिर रख दे, तो आप इस स्त्री को सेक्स की दिशा में ले जाने में एकदम असमर्थ हो जाएंगे--आप असमर्थ हो जाएंगे। इसलिए असमर्थ हो जाएंगे कि आपके अहंकार को अब बड़ी बाधा हो गई।
यानी जिसने इतना आदर दिया है, अब उसके सामने मैं इतना ओछा हो जाऊं, यह आपके लिए असंभव हो गया। आप अकड़ कर बैठ जाएंगे। आप अब आदर की रक्षा करेंगे। जो आदर आपको मिला है, उसकी आपको रक्षा करनी पड़ेगी। आप उस रक्षा को नहीं तोड़ सकते।
लेकिन स्त्री के मामले में उलटी बात है। अगर यह कहा जाए कि स्त्री को पुरुष आदर दे, उसका पैर छुए, तो इसमें भी समझने जैसा मामला है। स्त्री का चाहे तुम पैर छुओ, चाहे कोई शरीर का अंग छुओ, स्त्री का सेक्स उसके पूरे शरीर पर व्याप्त है। पुरुष का सेक्स सिर्फ उसके सेक्स सेंटर के आस-पास है, इससे ज्यादा नहीं। उसकी पूरी बॉडी सेक्सलेस है, सिर्फ सेक्स सेंटर को छोड़कर। लेकिन स्त्री का पूरा शरीर सेक्सुअल है। वह पूरे शरीर से कामुक है।
इसलिए पुरुष को सिर्फ संभोग से आनंद आ जाता है, स्त्री को सिर्फ संभोग
से आनंद कभी नहीं आता, जब तक कि उसके पूरे शरीर के साथ पुरुष न खेले, वह उसके पूरे शरीर को न जगाए, तब तक उसे कभी आनंद नहीं आता। और वह फ्रिजिड ही रह जाती है। वह कभी--जब तक उसका पूरा शरीर न जगाया जाए, उसका रोआं-रोआं न जग जाए, जब तक उसका पूरा शरीर न कंपने लगे और उसका पूरा शरीर ज्वरग्रस्त न हो जाए काम में, तब तक उसे रस नहीं आता। पुरुष को इस सबमें कोई मतलब नहीं है, उसके पूरे शरीर का कोई संबंध नहीं है! उसका सेक्स सेंटर रिलीज कर देता है, मामला खतम हो जाता है।

तो अगर पुरुष को स्त्री का पैर भी छुआया जाए तो भी स्त्री में सेक्स
की संभावना के जगने की शुरुआत हो सकती है। उसका पूरा शरीर सेक्सुअल है। उसका पूरा शरीर सेक्सुअल है और अगर पुरुष को उसका पैर छूने का मौका दिया जाए तो यह शुरुआत है, और यह शुरुआत आगे बढ़ सकती है।
और पुरुष अगर पहले ही झुका दिया गया तो अब उसको और झुकने में डर नहीं है, इसका भी ख्याल रख लिया जाए। अगर उसको पहले ही पैर में झुका दिया गया तो अब और नीचे जाने की क्या बात है? पैर में तो वह है ही। यानी अब उसको कोई भय भी नहीं है। अब वह स्त्री को किसी भी पाप के मार्ग में दीक्षित कर सकता है। इसलिए महावीर की बात तो बहुत अदभुत है, लेकिन मैं नहीं समझता कि पच्चीस सौ वर्ष में कभी कही भी गई है! और आमतौर से यही समझा गया है कि वह स्त्री को अपमानित कर रहे हैं, पुरुष को सम्मानित कर रहे हैं! मामला बिल्कुल ही उलटा है। पुरुष पूरी तरह अपमानित हुआ है इस घटना में और स्त्री पूरी तरह सम्मानित हुई है।

प्रश्नः इसका इंटरप्रिटेशन और किसी ने दिया है क्या, जैसा आपने दिया?

नहीं, अब तक तो मुझे ख्याल नहीं है कि किसी ने दिया है। अब तक तो मुझे ख्याल नहीं कि किसी ने दिया है।

प्रश्नः तो अभी तक जिन्होंने दिया इंटरप्रिटेशन वह यही दिया है!

वह तो यही है। वह तो यही है कि स्त्री जो है, वह नीची योनि है; पुरुष जो है, वह ऊंची योनि है; इसलिए पुरुष योनि को वह नमस्कार करे। लेकिन मैं उस व्याख्या को बिल्कुल ही गलत मानता हूं। उससे कोई संबंध ही नहीं है इस बात का।

प्रश्नः महावीर के जमाने में...

हां, पूछिए।

प्रश्नः बहुत से साधु और साध्वियां बन गए थे, लेकिन ध्यान में तो पीछे पड़ते होंगे वे, लेकिन पहले घर-बार छोड़ कर उनके साथ क्यों हो गए? आप तो ऐसी सलाह देते नहीं हैं!

पहली बात तो यह कि महावीर की जो व्यवस्था है, उन्होंने मनुष्य के चार वर्गीकरण किए हैंः श्रावक, श्राविका, साधु, साध्वी। महावीर की जो साधना- पद्धति है, वह श्रावक से शुरू होती है या श्राविका से। एकदम से कोई साधु नहीं हो सकता। एकदम से साधु होने का कोई सवाल ही नहीं उठता। महावीर की साधना का पूरा व्यवस्था क्रम है। पहले उसे श्रावक होना पड़े। और श्रावक की साधना--ध्यान, सामायिक श्रावक की है। जब वह उससे गुजर जाए, जब उसकी उतनी उपलब्धि हो जाए, फिर वह साधु के जीवन में प्रवेश कर सकता है।
सीधे महावीर उत्सुक नहीं हैं किसी को भी साधु की दीक्षा में लाने को। यानी जब साधु का जन्म हो जाए भीतर। श्रावक भूमिका है, जहां साधु का जन्म हो जाए, तो फिर वह जा सकता है। और तब भी उनका आग्रह नहीं है कि वह जाए ही, वह श्रावक रह कर भी मोक्ष पा सकता है।
यह बड़े मजे की बात है, सिर्फ महावीर यह कहने की हिम्मत किए हैं कि श्रावक रहते हुए भी सीधा मोक्ष जा सकता है, साधु होना अनिवार्य भी नहीं है बीच में। यानी श्रावक होते-होते भी वह साधु हो सकता है, इसमें भी कोई बाधा नहीं है। कोई मोक्ष में इससे बाधा नहीं है। लेकिन महावीर कहते यह हैं कि फिर उसको जैसा आनंदपूर्ण मालूम पड़े।
अगर मान लीजिए आप ध्यान में गहरे गए और आपको वस्त्र पहने रखना ही ठीक मालूम पड़ता है तो आप जारी रखें। और कहीं आपको ऐसा भीतर लगने लगता है कि छोड़ दें, कोई अर्थ नहीं इनमें, तो इसको भी क्यों रोकें? तो छोड़ दें। यानी महावीर मानते हैं सहज-भाव को कि अगर एक व्यक्ति को लगता है कि वह शांत हुआ,

ध्यानस्थ हुआ, घर में रह कर ही अगर यह चल सकता है तो ठीक है। नहीं चलता, उसे लगता है कि यह व्यर्थ हो गया है, छोड़ देना है, तो महावीर इसको भी नहीं रोकते। वह छोड़ दे, जाए। लेकिन रुकावट नहीं है उनकी कोई।

प्रश्नः और आग्रह भी नहीं है?

और आग्रह भी नहीं है, कोई आग्रह नहीं है।

प्रश्नः श्रावक से पहले साधु बनने को नहीं बोले?

नहीं, नहीं, वह बन ही नहीं सकता कोई। बनने का उपाय ही नहीं है। बनने का उपाय ही नहीं है। वह तो श्रावक की व्यवस्था से उसे गुजरना पड़े। फिर या तो वह श्रावक होने में ही साधु हो जाए और या वह जिसको हम साधु कहते हैं, वैसा हो जाए, इसमें कोई बाधा नहीं है। इसमें कोई बाधा नहीं है।

प्रश्नः परंपरा से प्रमाणित एवं निर्णीत महावीर के जीवन का बौद्धिक एवं तथ्य-पूर्ण आपका विश्लेषण क्या समाज को स्वीकृत होगा?

एक तो, कुछ समाज को स्वीकृत हो, ऐसी आवश्यकता भी नहीं है। समाज को स्वीकृत हो, इसका ध्यान भी नहीं है। समाज को स्वीकृत होने से ही वह ठीक है, ऐसा कोई कारण भी नहीं है। समाज को जो स्वीकृत है, वह वही है कि जैसा समाज है, उसको वह वैसा ही बनाए रखे।
निश्चित ही समाज को जब भी बदलने का ख्याल आता है या सवाल उठता है कि समाज बदले, दृष्टि बदले, विचार बदले, तो अस्वीकृति आती है। प्राथमिक रूप से तो जो मैं कह रहा हूं, उसकी अस्वीकृति की ही संभावना है--समाज से, बुद्धिमान से नहीं। लेकिन अगर जो मैं कह रहा हूं, वह बुद्धिमत्तापूर्ण है, वैज्ञानिक है, तथ्यगत है, तात्विक है, तो अस्वीकृति को टूटना पड़ेगा। अस्वीकृति जीत नहीं सकती, उसको हारना पड़ेगा। और अगर वह तथ्यपूर्ण नहीं है, अवैज्ञानिक है, तात्विक नहीं है, तो अस्वीकृति जीत जाएगी और जीतना चाहिए। तो पहली तो बात यह, मेरे मन में यह सवाल ही नहीं उठता कि कौन उसे स्वीकार करे, कौन अस्वीकार करे। यह सवाल नहीं है। मुझे जो सत्य मालूम पड़ता है, वह मुझे कह देना है। अगर वह सत्य होगा तो आज नहीं कल स्वीकार करना ही पड़ेगा।
सत्य को अस्वीकार करना असंभव है। लेकिन सत्य भी प्राथमिक रूप से अस्वीकार किया जाता है। बल्कि सत्य ही किया जाता है, क्योंकि हम जिस असत्य में जीते हैं, वह उससे विपरीत पड़ता है, तो वह अस्वीकृत होता है। सत्य पहले अस्वीकृत होता है। लेकिन अगर वह सत्य है तो टिक जाता है और स्वीकृति पाता है, और अगर असत्य है तो मर जाता है, गिर जाता है।
एक अदभुत व्यक्ति थे महात्मा भगवानदीन। वे जब किसी सभा में बोलते और लोग ताली बजाते तो बहुत उदास हो जाते। मुझसे वह कहते थे, जब कोई ताली बजाता है तो मुझे शक होता है कि मैंने कोई असत्य तो नहीं बोल दिया? क्योंकि इतनी भीड़ सत्य के लिए ताली बजाएगी एकदम से, इसकी संभावना नहीं है। वे मुझसे कहते कि मैं तो उस दिन की प्रतीक्षा करता हूं कि जब भीड़ एकदम से पत्थर मारे तो मैं समझूंगा, जरूर कोई सत्य बोला गया। क्योंकि भीड़ असत्य में जीती है, समाज असत्य में जीता है। और सत्य पर पहले तो पत्थर ही पड़ते हैं। मगर वह सत्य की पहली स्वीकृति है--पत्थर भी। और पत्थर पड़ गया और सत्य अगर सत्य है और बच गया, तो अस्वीकृति को आज नहीं कल मर जाना होता है। यह निरंतर की कथा यही है। सदा यही होगा।
अंधकार घना है, अज्ञान गहरा है। ज्ञान की पहली किरण उतरे, प्रकाश उतरे, तो पहला तो काम हमारा यह होता है कि हमारी आंखें एकदम बंद हो जाती हैं। क्योंकि अंधेरे में जीने वाला व्यक्ति प्रकाश को देखने की क्षमता भी नहीं जुटा पाता। पहला काम तो आंख बंद हो जाती है।
लेकिन आंख कितनी देर बंद रहेगी? आंख तो खोलनी ही पड़ेगी। और अगर प्रकाश
सच में प्रकाश था तो पहचाना भी जा सकेगा। कभी हजार वर्ष भी लगते हैं, कभी

दो हजार वर्ष भी लगते हैं। मेरी अपनी समझ यही है कि महावीर या बुद्ध को या क्राइस्ट को, कृष्ण को जो दिखाई पड़ा, वह आज भी कहां स्वीकृत हो सका है? अभी भी प्रतीक्षा है। अभी भी वह खड़ा प्रतीक्षा कर रहा है कि वक्त आएगा, वक्त आएगा, वक्त आएगा!
सत्य को अनंत प्रतीक्षा करनी पड़ती है, क्योंकि हमारा असत्य बड़ा गहरा है, हमारा अज्ञान बड़ा गहरा है। लेकिन उसकी चिंता सत्य को नहीं होती है। स्वीकृति की चिंता सिर्फ असत्य को होती है, यह ध्यान में रहे। क्योंकि असत्य स्वीकृति पर ही जी सकता है। सत्य तो बिना स्वीकृति के भी जीता है, उसका अपना जीवन है।
एक पुरानी कहानी है कि असत्य के पास अपने कोई पैर नहीं होते हैं। अगर उसे चलना भी हो तो उसे सत्य के पैर ही उधार लेने पड़ते हैं। अपने पैर उसके पास हैं ही नहीं।
यानी असत्य अपने पैर पर खड़ा ही नहीं हो सकता। असत्य खड़ा हो सकता है, आप
सब की स्वीकृति मिल जाए, तो वह सत्य जैसा भासने लगता है। असत्य को स्वीकृति मिले तो सत्य जैसा भासने लगता है। और सत्य को अस्वीकृति भी मिल जाए तो भी वह असत्य नहीं हो जाता, असत्य जैसा भासने लगता है। लेकिन सत्य सत्य है, असत्य असत्य है। और असत्य करोड़ों वर्ष तक चले तो भी असत्य है और सत्य बिल्कुल न चल पाए तो भी सत्य है। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता।
गैलीलियो ने जब पहली दफा यह कहा कि सूरज पृथ्वी का चक्कर नहीं लगाता है, पृथ्वी ही सूरज का चक्कर लगाती है तो ईसाइयों में भारी क्रोध पैदा हो गया! क्योंकि बाइबिल तो कहती है कि पृथ्वी थिर है, सूरज चक्कर लगाता है। तो क्या जीसस को पता नहीं था? क्या हमारे पैगंबरों को पता नहीं था?
सत्तर साल के बूढ़े गैलीलियो को हाथ में जंजीरें डाल कर पोप की अदालत में लाया गया! उस बूढ़े आदमी से कहा गया कि तुम यह कहो कि तुमने जो कहा है, यह असत्य है, और कहो कि पृथ्वी थिर है और सूरज चक्कर लगाता है, पृथ्वी चक्कर नहीं लगाती सूरज का!
गैलीलियो बढ़िया आदमी था। उसने कहा, जैसी आपकी मर्जी। उसने कागज पर लिख दिया कि आप कहते हैं तो मैं लिखे देता हूं कि सूरज ही चक्कर लगाता है पृथ्वी का, पृथ्वी चक्कर नहीं लगाती। लेकिन मैं कुछ भी लिखूं, इससे फर्क नहीं पड़ता, चक्कर तो पृथ्वी ही लगाती है। मैं क्या कर सकता हूं? यानी अब ऐसा है, मैं चक्कर लगाना थोड़े ही रोक सकता हूं। मैं इतना ही कह सकता हूं कि भई, मैं कहे देता हूं, लेकिन इससे कोई फर्क नहीं पड़ता है। इससे क्या फर्क पड़ता है? चक्कर तो पृथ्वी ही लगाती है। वह जिस पर उसने दस्तखत किए हैं, उसमें उसने यह लिखा है।
गैलीलियो भी इनकार कर दे, उसने लिखा है उसमें, तो भी क्या फर्क पड़ता है? कोई गैलीलियो थोड़े ही चक्कर लगवा रहा है! और ठीक है, आज इनकार हो जाएगा, लेकिन कितने दिन इनकार करोगे?
गैलीलियो बड़ा साधारण आदमी है, लेकिन बाइबिल हार गई, गैलीलियो जीत गया। क्योंकि सत्य जीतता है--न बाइबिल जीतती है, न गैलीलियो जीतता है; न क्राइस्ट जीतते, न कृष्ण; न महावीर, न मोहम्मद--जीतता सत्य है, हारता असत्य है। लेकिन वक्त लग सकता है।
असत्य अपने बचाने की सारी कोशिश करता है, अपनी सुरक्षा करता है। और उसकी सबसे बड़ी सुरक्षा है स्वीकृति, लोगों में स्वीकृति पैदा कर लेना। इसलिए असत्य स्वीकृति पर जीता है। उसके पास और जीने के लिए कुछ भी नहीं है, पैर उसके पास स्वीकृति के हैं। सत्य स्वीकृति की चिंता भी नहीं करता, वह अस्वीकृति में भी जी लेता है। क्योंकि अपने पैर हैं, अपनी श्वास है, अपने प्राण हैं। और वह प्रतीक्षा करता है, और अनंत काल तक प्रतीक्षा कर सकता है। कभी तो आंख खुलती है और चीजें दिखाई पड़ती हैं।
मुझे चिंता नहीं है जरा भी। मुझे कभी भी इस बात की चिंता नहीं हुई कि
जो मैं कह रहा हूं, उसे कौन मानेगा, कौन नहीं मानेगा। जिस व्यक्ति को यह चिंता होती है, वह सत्य कभी बोल ही नहीं सकता है। क्योंकि तब वह पहले आपकी तरफ देख लेता है कि आप क्या मानोगे, वही बोलना चाहिए। उसको मान्यता ज्यादा मूल्यवान है। और मान्यता जिन लोगों से पानी है, अगर वे सत्य को ही उपलब्ध होते, तो बात करने की कोई जरूरत न थी।

अंधेरे में खड़े लोगों से सूरज के लिए मान्यता लेनी है, तो वे अंधेरे में खड़े लोग कहते हैं कि सूरज से अंधेरा निकलता है, प्रकाश निकलता ही नहीं है। तो या तो उनकी स्वीकृति लेनी हो तो कहो कि बहुत गहरा अंधेरा सूरज से निकला है--वे ताली पीट देंगे! या उनसे कहो कि सूरज और अंधेरा--सूरज का अंधेरे से कोई संबंध ही नहीं है! सूरज से अंधेरा कभी निकला ही नहीं। सूरज तो अंधेरे को तोड़ता है। तो वे अंधे लोग कहेंगे, तो इसका मतलब है, तुम अकेले आंख वाले पैदा हुए हो? हम सब अंधे हैं?
और यह बात बड़ी अपमानजनक है कि कोई आदमी कहे कि मेरे पास आंख है और सब अंधे हैं, इससे बड़ा दुख होता है। तो फिर सब मिल कर अगर वह आंख वाले की आंख फोड़ने की कोशिश करें, तो उसमें कुछ हर्जा भी नहीं है, वे ठीक ही प्रतिकार ले रहे हैं। वह उनको चोट पहुंची, उनके मन को अपमान हुआ, उनके अहंकार को धक्का पहुंचा। लेकिन सत्य प्रतीक्षा करता है और प्रतीक्षा करने का धैर्य रखता है।

प्रश्नः आप कहते हैं, समाज असत्य पर जीता है। तो क्या असत्य समाज के लिए अनिवार्य है जीने के लिए?

जैसा समाज है हमारा, उस समाज के जीने के लिए असत्य अनिवार्य है। जैसा समाज है हमारा, दुख से... ।

प्रश्नः समाज तो सैकड़ों सालों से, लाखों सालों से चलता आ रहा है!

जैसा है अब तक का, जैसा हमारा समाज है--दुख से भरा हुआ, पीड़ा से भरा हुआ, शोषण से भरा हुआ, अहंकार से भरा हुआ, ईर्ष्या से भरा हुआ, द्वेष से भरा हुआ-- जैसा हमारा यह समाज है, इस समाज को अगर जिलाना हो तो यह असत्य पर ही जी सकता है।
अगर इस समाज को बदलना हो और नया समाज बनाना हो--आनंद से, प्रकाश से भरा हुआ, प्रेम से भरा हुआ; ईर्ष्या न हो, महत्वाकांक्षा न हो; घृणा न हो, द्वेष न हो, क्रोध न हो--तो फिर सत्य लाना पड़ेगा।

प्रश्नः यह तो सबकी इच्छा रही है!

यह सबकी इच्छा है, यह सबकी इच्छा है कि आनंद मिले, लेकिन मैं जैसा हूं, वैसा ही मिल जाए, मैं न बदलूं। सबकी इच्छा है आनंद मिले, लेकिन मुझे न बदलना पड़े, मैं जैसा हूं, वैसी हालत में आनंद मिले! और आनंद वैसी हालत में नहीं मिलता और मैं अपने को बदलने की तैयारी नहीं दिखलाता। बदलने की तैयारी दिखलाऊं तो ही आनंद मिल सकता है। यानी मैं यह कहता हूं कि प्रकाश तो मिले, लेकिन मुझे आंख न खोलनी पड़े। तो फिर मुश्किल है।
सबकी इच्छा है आनंद मिले, हर आदमी आनंद की ही कोशिश कर रहा है; और जो कोशिश कर रहा है, उससे सिर्फ दुख पा रहा है। यह बड़े मजे की बात है! यह ठीक ही आप पूछते हैं। हर आदमी आनंद पाना चाहता है, शांति पाना चाहता है, लेकिन जो कर रहा है शांति पाने के लिए, आनंद पाने के लिए, उस सबसे दुख पाता है, अशांति पाता है! लेकिन वह करने को नहीं बदलना चाहता।
अब जैसे एक आदमी महत्वाकांक्षी है, एंबीशस है, और वह कहता है कि मुझे आनंद चाहिए! लेकिन महत्वाकांक्षी चित्त कभी भी आनंदित नहीं हो सकता। क्योंकि जो भी मिल जाएगा, उससे वह असंतुष्ट हो जाएगा; और जो नहीं मिलेगा, उसके लिए पीड़ित हो जाएगा। यह कितना ही कुछ मिल जाए उसको, हमेशा उसका महत्वाकांक्षी चित्त आगे के लिए पीड़ा से भर जाएगा।
अब वह कहता है, मैं आनंदित होना चाहता हूं; और वह यह भी कहता है कि मैं महत्वाकांक्षी भी तो सिर्फ इसीलिए हूं कि मुझे आनंद चाहिए! अब महत्वाकांक्षा और आनंद में विरोध है, यह देखने को वह राजी नहीं है!
सिर्फ गैर-महत्वाकांक्षी, नॉन-एंबीशियस माइंड आनंद को उपलब्ध हो सकता है। उसका कोई दुनिया में आनंद नहीं छीन सकता। और महत्वाकांक्षी

चित्त को कोई आनंद दे नहीं सकता। लेकिन महत्वाकांक्षा चलाए रखना चाहते हैं हम और आनंदित होना चाहते हैं!
अब एक आदमी है और वह कहता है कि मैं प्रेम चाहता हूं--और प्रेम कभी देता नहीं! वह आप बिल्कुल ठीक कहते हैं कि वह प्रेम चाहता है। कहां कहता है कि हम प्रेम नहीं चाहते? लेकिन प्रेम देता कभी भी नहीं, सिर्फ मांगता है-- और सभी प्रेम मांगते हैं!
ऐसी हालत हो गई है, जैसे एक गांव में सभी भिखमंगे हों और सभी एक-दूसरे
के सामने हाथ जोड़े खड़े हों और सभी एक-दूसरे से भीख मांग रहे हों! और सभी भिखमंगे हों, और सब मांगना चाहते हों, देना कोई भी न चाहता हो, तो उस गांव की जो हालत हो जाए, वैसी हम सब की हालत हो गई है! प्रेम देना कोई भी नहीं चाहता, प्रेम मांगना चाहता है!
और यह भी ध्यान रहे, जो आदमी प्रेम देने की कला सीख जाता है, वह कभी मांगता ही नहीं। क्योंकि वह तो मिलना शुरू हो जाता है, उसके मांगने का सवाल नहीं रह जाता। मांगता सिर्फ वही है, जो दे नहीं पाता है।
तो अब बुनियाद यह है कि हम सब प्रेम चाहते हैं, ठीक है, इसमें कुछ बुरा
भी नहीं है। लेकिन प्रेम सिर्फ उन्हें ही मिलता है, जो चाहते नहीं और देते हैं, वह सूत्र है पाने का। और वह सूत्र हमारी समझ में नहीं आता, इसलिए भूल हो जाती है, इसलिए भटकन हो जाती है!
हां, क्या कहते हैं, कहिए?

प्रश्नः उसको अपने आपको बदलना पड़ता है, उस माहौल के हिसाब से, जो वह मांगता है?

समझा नहीं मैं, क्या कह रहे हैं?

प्रश्नः मतलब, अगर वह प्यार-मोहब्बत चाहता है, अगर वह सच्चाई चाहता है--उसको अपने आपको बदलना चाहिए माहौल के पहले?

पहले अपने को ही बदलना पड़ेगा।

प्रश्नः जब वह बदल जाएगा, फिर उसको मिल जाएगा वह?

मिल जाएगा, बिल्कुल ही मिल जाएगा। वही मैं कह रहा हूं--चाहते हम सब हैं, लेकिन जैसे हम हैं, वैसे ही में चाहते हैं! यह असंभव है। यह असंभव है। हम सब जाना चाहते हैं कि पहुंच जाएं आकाश में, लेकिन पृथ्वी से पांव नहीं छोड़ना चाहते! बड़ी मुश्किल बात है। गड़े रहना चाहते हैं जमीन में, पहुंचना चाहते हैं आकाश में! और अगर कोई यह कहे कि आकाश में जाना है तो तुम आकाश की फिक्र छोड़ो, पहले जमीन छोड़ो; तुम आकाश में पहुंचना शुरू हो जाओगे। क्योंकि जमीन छोड़ोगे तो जाओगे कहां? सिवाय आकाश के कहीं नहीं जा सकते हो। लेकिन वह आदमी कहता है, जमीन हम पीछे छोड़ेंगे, पहले हम आकाश में पहुंच जाएं। क्योंकि आप हमसे जमीन भी छीन लो और आकाश भी न मिले! हम मुश्किल में पड़ जाएं। लेकिन बात यह है कि जमीन छोड़ने से आकाश मिल ही जाता है, क्योंकि जाओगे कहां?
यह जो, हमारी जो कठिनाई है, हमेशा से हम यही चाहते रहे हैं कि आनंद हो, शांति हो, प्रेम हो--लेकिन जो हम करते रहे हैं, वह बिल्कुल उलटा है, एकदम उलटा है! उससे न शांति हो सकती है, न प्रेम हो सकता है, न आनंद हो सकता है। और प्रत्येक व्यक्ति के साथ यही कठिनाई है।
और प्रत्येक व्यक्ति द्वेष में जी रहा है, ईर्ष्या में जी रहा है, घनी जेलेसी में जी रहा है और चाहता है कि आनंद हो जाए! अब ईर्ष्यालु चित्त कैसे आनंद पा ले? ईर्ष्यालु चित्त सदा दुखी है, सड़क पर बड़ा मकान दिखता है तो दुखी है, बगिया लगी दिखती है तो दुखी है, कार दिखती है तो दुखी है, किसी की स्त्री दिखती है तो दुखी है, किसी के कपड़े दिखते हैं तो दुखी है! अब यह सब दिखेगा, यह जाएगा कहां? यह चारों तरफ है। हर चीज उसे दुख दे जाती है; जो भी दिखता है, वही दुख दे जाता है!

और ऐसा भी नहीं है कि बड़ा ही मकान दुख देता है। कभी-कभी यह भी दुख देता
है कि एक आदमी झोपड़े में रह रहा है और खुश है, यह भी दुख दे देता है! हद हो गई! यह झोपड़े में रह रहा है और खुश है! कभी एक भिखारी भी आनंदित दिख जाता है, तो वह भी दुख ही देता है, कि मेरे पास सब है और मैं सुखी नहीं! और यह भिखारी और आनंदित है, और सब आनंद ले रहा है!
तो वह ईर्ष्यालु चित्त दुख पैदा करने की कीमिया है--केमिस्ट्री है उसके पास। ईर्ष्यालु चित्त दुख पैदा करता है और ईर्ष्यालु चित्त चाहता सुख है! अब बड़ी मुश्किल हो गई। इस कंट्राडिक्शंस को अगर न देखा जाए, तो हम तो फंस गए, हम फिर जी नहीं सकते। चाहते रहेंगे सुख और पैदा करते रहेंगे दुख! और जितना दुख पैदा होगा उतना ज्यादा सुख चाहेंगे; और जितना ज्यादा दुख पैदा होगा, सुख की मांग बढ़ेगी, उतना ही जोर से ईर्ष्यालु होते चले जाएंगे और दुख पैदा होता चला जाएगा।
ऐसा एक-एक व्यक्ति इनर-कंट्राडिक्शन में, भीतरी विरोध में फंसा हुआ है। इस विरोध के प्रति सजग हो जाना ही साधना की शुरुआत है। इस विरोध के प्रति कि मैं जो चाह रहा हूं, मैं जो कर रहा हूं, वह वही है? मैं चाह तो रहा हूं कि मकान के ऊपर चढ़ जाऊं और सीढ़ियां नीचे की तरफ उतर रहा हूं। इस कंट्राडिक्शन को देखना जरूरी है कि यह तो मैं उलटा काम कर रहा हूं।
अगर मुझे सुखी होना है तो ईर्ष्या तो नीचे की तरफ ले जा रही है, ईर्ष्या तो दुख दे रही है इसी वक्त। अगर मुझे सुखी होना है तो ईर्ष्या से तो मुक्त हो जाना चाहिए, ताकि दुख मुझे कोई दे न सके, बड़ा मकान भी न दे सके, आनंदित आदमी भी न दे सके, कार भी न दे सके, स्त्री भी न दे सके, कोई दुख न दे सके। क्योंकि मेरे पास दुख की, वह जो तरकीब थी दुख पैदा करने की, वह विदा हो गई। अब मैं ईर्ष्यालु नहीं हूं। और जब मैं ईर्ष्यालु नहीं हूं तो हर चीज सुख दे सकती है। क्योंकि अब दुख का कोई कारण ही नहीं रहा, वह केमिस्ट्री ही टूट गई, वह सीक्रेट ही टूट गया; वह व्यवस्था, यंत्र टूट गया, जो दुख पैदा कर देता था।
जीवन के विरोध के प्रति जाग जाना कि हम जो चाहते हैं, उससे उलटा कर रहे हैं, साधना की शुरुआत है। और जब हमें यह दिखाई पड़ जाए तो उलटा हम कर न सकेंगे। हम कैसे उलटा करेंगे?
जैसे उदाहरण के लिए, एक आदमी रात सोना चाहता है, नींद लेना चाहता है। नींद उसे आती नहीं तो वह नींद लाने की तरकीबें करता है। पैर धोता है, आंख धोता है, पानी पीता है, राम-राम जपता है, माला फेरता है, करवट बदलता है, टहलता है, भेड़-बकरियां गिनता है, हजार तरकीबें करता है कि किसी तरह नींद आ जाए। लेकिन उसे पता नहीं कि जितनी तरकीबें वह कर रहा है, वे सब नींद को न आने देंगी। क्योंकि कोई भी प्रयास नींद को तोड़ने वाला है। वह कुछ भी न करे तो शायद नींद आ जाए। उसने कुछ भी किया, फिर नींद नहीं आ सकती। क्योंकि करना नींद के बिल्कुल उलटा है। नींद आती है न-करने में।
इसलिए एक दफे एक आदमी की नींद गड़बड़ हो गई, फिर एक वीशियस चक्कर में पड़ा वह। क्योंकि अब वह नींद लाने के उपाय करेगा! उपाय नींद को तोड़ेंगे! जितना नींद टूटेगी, उतने ज्यादा उपाय करेगा! जितने ज्यादा उपाय करेगा, उतनी ज्यादा नींद टूटेगी! अब वह एक चक्कर में पड़ गया है, जिसके बाहर खींचना मुश्किल है। उसको यह विरोध दिखाई पड़ जाए किसी दिन कि प्रयास से नींद कैसे आ सकती है? प्रयत्न से नींद कैसे आ सकती है? एफर्ट तो उलटा है नींद के, प्रयास तो उलटा है।
तो प्रयास न करे, पड़ा रह जाए; कह देः आ तो आ, न आ तो न आ; मैं कुछ नहीं करता। और वह थोड़ी देर में पाए कि नींद आ गई। क्योंकि जब कोई कुछ नहीं करता तो नींद आ ही जाती है, और जब कोई कुछ करता है तो नींद नहीं आती। चाहे वह मंत्र पढ़े, चाहे माला फेरे, चाहे कुछ भी करे, करना मात्र नींद का उलटा है। लेकिन हम पूरी जिंदगी कंट्राडिक्शंस में जीते हैं, पूरी जिंदगी! और तब मुश्किल होती चली जाती है।
इस बोध को जैसे ही कोई उपलब्ध हो जाता है और अपने भीतर अपने विरोध देखने लगता है, वैसे ही क्रांति शुरू हो जाती है। क्योंकि विरोध दिख जाएं तो फिर उनमें जीना मुश्किल है, फिर आप जी नहीं सकते। कैसे संभव है यह कि एक आदमी को जाना छत पर है और सीढ़ी नीचे उतर रहा है! और उसे दिख जाए कि उतर रहा

हूं नीचे की तरफ, जाना है ऊपर, तो क्या फिर नीचे उतर सकता है? बात खतम हो गई। ऊपर जाएगा ही।
और जब विरोध मिटता है तो योग पैदा होता है जीवन में, हार्मनी पैदा होती है। हम जो करना चाहते हैं, वही करते हैं; जो होना चाहते हैं, वही होते हैं। तब एक सरलता, सहजता आ जाती है; क्योंकि विरोध गए, चिंता गई। अपने ही भीतर खंड-खंड, उलटे-उलटे जा रहे थे, वह विदा हो गया।
हमारी हालत ऐसी है, जैसे किसी ने बैलगाड़ी में दोनों तरफ बैल जोत दिए हों, और दोनों तरफ से बैलगाड़ी चलने की कोशिश कर रही है!
अब इसमें सिर्फ अस्थिपंजर बैलगाड़ी के ढीले हुए चले जा रहे हैं। बैलगाड़ी कहीं जाती नहीं। कभी बैल इस तरफ के मजबूत पड़ जाते हैं तो दस कदम खींच लेते हैं, जब तक वे दस कदम खींचते हैं, तब तक थक जाते हैं; तब तक उलटे बैल मजबूत हो जाते हैं, वे दस कदम फिर खींच लेते हैं। और यही चल रहा है। एक चौगड्डे पर बैलगाड़ी, दोनों तरफ बैल जुते, यहीं-वहीं होती रहती है। करीब-करीब हम उसी जगह मरते हैं, जहां हम पैदा होते हैं, कोई फर्क नहीं पड़ता! क्योंकि वह हमें विरोध ही नहीं दिखाई पड़ता कि बैल चार पास में हैं तो एक ही तरफ जोत दो, दो तरफ क्यों जोते हुए हो? यह विरोध दिख जाए तो, तो एक नया जीवन शुरू होता है जो, जिसे हम पहचानते भी नहीं, जिसे हम जानते भी नहीं। तब आदमी वही करता है--वही, जो करना चाहिए। और वह उसी तरफ जाता है, जहां जाना है। तब स्वभावतः शांति आ जाती है, क्योंकि अशांति का कोई कारण नहीं रह जाता।

प्रश्नः आसक्ति अथवा राग जैसे कर्मबंध का कारण है, वैसे ही द्वेष और घृणा भी। महावीर ने संसार, शरीर, इन सबके प्रति घृणा का भाव पैदा करके संसार-त्याग का उपदेश क्यों दिया?

जो आप पूछते हैं न, जैसा राग-द्वेष दोनों एक ही तरह उपद्रव के कारण हैं। राग और द्वेष ऐसे ही हैं, जैसे एक आदमी सीधा खड़ा हो और एक आदमी शीर्षासन करता हुआ खड़ा हो; इन दोनों में कोई फर्क नहीं है। एक सिर नीचे करके खड़ा है, एक सिर ऊंचा करके खड़ा है। राग के ही उलटा जो है, वह द्वेष है। राग शीर्षासन करता हुआ द्वेष है। दोनों फांसते हैं, दोनों बांध लेते हैं। क्योंकि जिससे हम राग करते हैं, उससे भी हम बंध जाते हैं; जिससे हम द्वेष करते हैं, उससे भी हम बंध जाते हैं। मित्र भी बांधता है और शत्रु भी बांध लेता है। शत्रु से भी हम, शत्रु को भी भूल नहीं पाते, मित्र को भी नहीं भूल पाते, वे दोनों हमें बांध लेते हैं!
अगर हमारा एक मित्र मरता है तो भी हममें कमी हो जाती है; ध्यान रहे, हमारा एक शत्रु मरता है तो भी हममें एक कमी हो जाती है! एक खाली जगह वह भी छोड़ जाता है। शत्रु मर जाता है तो एक खाली जगह छोड़ जाता है भीतर। और कई दफे तो ऐसा हो सकता है कि आपकी सारी जान ही निकल जाए आपके शत्रु के मरने से। आपका बल ही खो जाए, क्योंकि बल ही उससे आता था, उसी के विरोध में बंध कर आता था।
दोनों बांधते हैं, दोनों जिंदगी को भरते हैं। और जिसको बंधन से ही उठना हो--और ऐसा भी नहीं है कि शत्रु ही दुख देते हैं, मित्र भी दुख देते हैं और शत्रु भी सुख देते हैं। फर्क थोड़ा सा पड़ जाता है। फर्क थोड़ा सा पड़ जाता है। मित्र भी दुख देते हैं, शत्रु भी कभी सुख देते हैं। अलग-अलग ढंग से देते हैं, लेकिन बांधते दोनों हैं।
और जिसे बंधन ही दुख हो गया हो--वह न शत्रु बनाता है, न मित्र बनाता है;
वह न राग बांधता है, न द्वेष बांधता है; वह न किसी के पक्ष में होता है, न किसी के विपक्ष में होता है। वह प्रत्येक चीज के प्रति एक साक्षी का भाव ले लेता है, वह एक विटनेस हो जाता है, दूर से खड़े होकर देखने लगता है। अपनी ही जिंदगी को दूर से खड़े होकर देखने लगता है। अपनी ही जिंदगी को भी एक दृश्य बना लेता है, खुद द्रष्टा हो जाता है।
और जैसे ही कोई द्रष्टा हो गया, राग-द्वेष के बाहर हो जाता है। जब तक कोई द्रष्टा नहीं है, तब तक राग-द्वेष के बाहर नहीं होता। जो कर्ता है, वह कभी राग-द्वेष के बाहर नहीं हो सकता। क्योंकि करेगा कुछ, तो मित्र बनेंगे,

शत्रु बनेंगे। करेगा कुछ, तो कुछ अपना लगेगा, कुछ पराया लगेगा। करेगा कुछ, तो किसी को बचाना चाहेगा, किसी को मिटाना चाहेगा। कर्ता हमेशा राग-द्वेष से घिर जाएगा। अकर्ता, साक्षी, जो कर नहीं रहा, सिर्फ देख रहा है। देखने की स्थिति में जो खड़ा हो जाता है, वह राग-द्वेष के बाहर हो जाता है।
यह जो प्रश्न पूछा है कि महावीर ऐसे तो कहते हैं कि राग-द्वेष बांध लेते हैं, लेकिन शरीर और संसार के प्रति वे घृणा सिखाते हैं, विराग सिखाते हैं। शरीर, संसार असार है, ऐसा सिखाते हैं। तो फिर यह तो फिर द्वेष शुरू हो गया शरीर-संसार के प्रति!
महावीर नहीं सिखाते हैं द्वेष संसार के प्रति या शरीर के प्रति, लेकिन महावीर को जिन्होंने नहीं समझा है, वे जरूर ऐसा ही सिखा रहे हैं। महावीर के शरीर को देख कर कोई कह सकता है कि ऐसा शरीर को प्रेम करने वाला आदमी मुश्किल से पैदा हुआ होगा। महावीर के शरीर को ही देख कर कोई कह सकता है। ऐसा प्रेम करने वाला शरीर को मुश्किल से कभी कोई हुआ होगा। न वे संसार के प्रति द्वेष सिखाते हैं, क्योंकि वे तो कहते ही यह हैं कि द्वेष बांध लेता है, घृणा बांध लेती है, तो वे कैसे सिखा सकते हैं? यह तो दूसरों को दिखाई पड़ता है। और दूसरों को क्यों दिखाई पड़ता है, उसका कारण है।
हम अगर राग से भरे हैं तो हम राग से ऊब जाते हैं। हर चीज उबा देती है।
जब राग ऊब जाता है तो घड़ी का पेंडुलम दूसरी तरफ जाना शुरू हो जाता है, वह द्वेष की तरफ चलना शुरू हो जाता है। जिस चीज से हम ऊब जाते हैं, उसको हम द्वेष करने लगते हैं, राग खतम हो जाता है। फिर उससे आप मुक्त होना चाहते हैं। कल तक आप उसको पकड़ना चाहते थे, आज आप हटना चाहते हैं।
लेकिन कल तक जब आपने उसको पकड़ा था तो पकड़ने का अभ्यास हो गया, अब ऊब गए पकड़ने से, अब हटना चाहते हैं! अभ्यास बाधा डाल रहा है, पकड़ने की आदत बन गई है। अब भागना चाहते हैं! द्वंद्व खड़ा हो गया।
महावीर द्वेष नहीं सिखाते--न शरीर के प्रति, न संसार के प्रति। क्योंकि महावीर द्वेष सिखा ही नहीं सकते हैं, यह सवाल ही नहीं है कि किसके प्रति। द्वेष द्वेष है, घृणा घृणा है, किसके प्रति यह सवाल नहीं है। महावीर तो यह सिखाते हैं कि अपने द्वेष, अपने राग, अपनी घृणा, अपने प्रेम, सबके प्रति जाग जाओ, विवेकपूर्ण हो जाओ। सबको जाग कर देख लो कि क्या-क्या है--यह द्वेष है, यह घृणा है, यह राग है, यह विराग है, इस सबको देख लो। और इसको तुम जिस दिन पूरी तरह देख लोगे, उस दिन तुम पाओगे कि राग और विराग एक ही चीज के दो छोर हैं, मित्रता-शत्रुता एक ही चीज के दो छोर हैं। और तब तुम समझ लोगे कि जैसे एक सिक्का किसी के पास हो रुपए का और वह चाहता हो कि एक पहलू बचा ले और दूसरे को फेंक दे, तो वह पागल है। चूंकि वे दोनों पहलू एक ही सिक्के के हैं--या तो दोनों फेंक सकता है या दोनों बच जाएंगे। हां, इतना फर्क हो सकता है कि कौन सा पहलू आप ऊपर रखें। यह हो सकता है कि सिक्के का सिर वाला पहलू आप ऊपर रखें, तो पीठ वाला नीचे रहेगा; लेकिन मौजूद रहेगा, हाथ में ही रहेगा।
तो जो आदमी प्रेम करता है, उसके ठीक नीचे ही घृणा छिपी बैठी रहती है, मौके की तलाश में रहती है कि कब सिक्का उलटे। जब इससे ऊब जाते हैं आप, सिक्का पलट लेते हैं, पीछे की तरफ देखने लगते हैं।
इसलिए मित्र के शत्रु हो जाने में देर नहीं है। असल तो बात यह है कि मित्र अगर कोई न हो तो उसको शत्रु बनाना ही मुश्किल है। यानी पहले उसका मित्र होना जरूरी है, तभी वह शत्रु बनाया जा सकता है। और शत्रु का मित्र बन जाने में भी कोई कठिनाई नहीं है। ये दोनों बातें घट सकती हैं, क्योंकि एक ही चीज के दो पहलू हैं।
राग है किसी को, वह विराग बन जाता है, अपने आप बन जाता है, कोई बनाना नहीं पड़ता। और जिस चीज से विराग है, अगर आप विराग ही करते चले जाएं, आप थोड़े दिन में पाएंगे कि विराग शिथिल होने लगा, राग पकड़ने लगा।
असल में जैसे घड़ी का पेंडुलम बाईं तरफ गया, तो जब वह बाईं तरफ जा रहा है, तब आपको ख्याल में भी नहीं है कि वह दाईं तरफ जाने की शक्ति अर्जित कर रहा है। जब वह बाईं तरफ जा रहा है, तब उसी वक्त, उसी जाने में वह दाईं तरफ जाने की शक्ति अर्जित कर रहा है, यह हमारे ख्याल में नहीं आता। और जितने दूर बाईं तरफ जाएगा, उतनी ही शक्ति अर्जित करके फिर दाईं तरफ जाएगा। और जब

वह दाईं तरफ गया तो आंख देख रही है दाईं तरफ गया; लेकिन जो गहरे में देख रहे हैं, वे कह रहे हैं, अब वह बाईं तरफ जाने की तैयारी कर रहा है। अब वह फिर बाईं तरफ जाएगा। ऐसे चित्त द्वंद्व के बीच घड़ी के पेंडुलम की तरह घूमता रहता है।
जिससे हम प्रेम करने जाते हैं, हमें ख्याल नहीं है कि हम उसे घृणा करने की शक्ति अर्जित कर रहे हैं। यह हमारे ख्याल में नहीं आता। इसलिए प्रेमी कितने जल्दी घृणा करने वाले बन जाते हैं, इसका बहुत मुश्किल है। कल तक जो प्रेयसी थी, परसों वही... कल तक हम कहते थे कि वह अगर न मिली तो जीवन व्यर्थ हो जाएगा, मर जाएंगे, आत्महत्या कर लेंगे। कल तक जिसके न मिलने से आत्महत्या कर लेते, हो सकता है कल उसके मिलने से ही आत्महत्या करनी पड़े। मैंने सुना है, एक पागलखाने में एक मनोवैज्ञानिक देखने गया था। तो वह पागलखाने का जो प्रमुख डाक्टर है, वह उसे एक कटघरे में एक आदमी को दिखलाता है कि बिल्कुल पागल है, बाल नोंच रहा है, सिर फोड़ रहा है, रो रहा है। वह मनोवैज्ञानिक पूछता है, इसको क्या हो गया?
तो डाक्टर अपने रजिस्टर में उसकी हिस्ट्री निकालता है, केस-हिस्ट्री,
और उसको कहता है, यह आदमी एक लड़की को प्रेम करता था, वह लड़की इसको नहीं मिल सकी, इसलिए यह पागल हो गया!
आगे बढ़ते हैं, दूसरी कोठरी में एक दूसरा जवान आदमी बंद है। वह भी सिर
के बाल उखाड़ रहा है, सिर तोड़ रहा है। ठीक वैसा ही काम कर रहा है, जैसा पहला कर रहा था! वह मनोवैज्ञानिक पूछता है, इसको क्या हो गया?
वह केस-हिस्ट्री उलट कर देखता है, वह कहता है कि इसको वह लड़की मिल गई,
जो उसको नहीं मिली थी! और उसके मिलने से इसकी यह हालत हो गई! वह एक न मिलने से पागल हो गए हैं, एक यह मिलने से पागल हो गए हैं।
तो महावीर तो यह सिखा ही नहीं सकते। बाएं जाना वह नहीं सिखा सकते; क्योंकि वे जानते हैं जो बाएं जाएगा, उसे दाएं जाना पड़ेगा। वे दाएं जाना नहीं सिखा सकते; क्योंकि वे जानते हैं, जो दाएं जाएगा, उसे बाएं जाना पड़ेगा। तो वे तो एक ही बात सिखा सकते हैं कि न तुम बाएं जाओ, न तुम दाएं जाओ, तुम ठहर जाओ, तुम बीच में खड़े हो जाओ।
वीतराग का यही अर्थ हैः न द्वेष, न घृणा; न राग, न विराग। विराग भी नहीं। तो महावीर विरागी नहीं हैं। और जो विरागी उनके पीछे पड़े हैं, वे बिल्कुल गलती में पड़े हुए हैं। महावीर से कुछ लेना-देना नहीं है उन विरागियों का। क्योंकि विरागी हुए कि उन्होंने राग अर्जित करना शुरू कर दिया। विरोध विरोध नहीं हैं, इस सत्य का दिखाई पड़ना बाहर ले आता है।
तो महावीर कहते हैंः खड़े हो जाओ, ठहर जाओ; दोनों को देख लो; जाओ कहीं मत; दोनों को पहचान लो। फिर तुम कहीं भी नहीं जाओगे; फिर तुम अपने में आ जाओगे।
तीन दिशाएं हैं, एक ट्राइएंगल है। एक प्रेम की तरफ जाता, एक घृणा की तरफ; एक राग की तरफ, एक विराग की तरफ; सारे द्वंद्व हैं। और जो द्वंद्वों से बच जाता है, वह ट्राइएंगल के, त्रिकोण के तीसरे बिंदु पर आ जाता है, जहां स्वयं का होना है। वहां जाना नहीं है, आना नहीं है, वहां ठहर जाना है। वहां प्रज्ञा थिर हो जाती है। वहां ठहर कर हम देख पाते हैं, या जो देखने लगता है, वह ठहर जाता है। क्योंकि देखने के लिए ठहरना अनिवार्य शर्त है। अगर राग और द्वेष को देखना है तो जाओ मत किसी की तरफ, ठहर कर देख लो कि राग क्या, द्वेष क्या, क्षमा क्या, क्रोध क्या!

प्रश्नः वह केवल-ज्ञान की भूमिका है?

बिल्कुल ही। वही केवल-ज्ञान की भूमिका है। जैसे ही कोई स्वयं में खड़ा
हो जाता है, वह उस द्वार पर पहुंच जाता है, जहां से ज्ञान की शुरुआत है। लेकिन स्वयं में खड़ा होना पहला बिंदु है, वहीं से यात्रा फिर भीतर की तरफ हो सकती है।
और हम या तो राग में होते हैं या द्वेष में होते हैं--स्वयं के बाहर होते हैं। राग-द्वेष में होने का अर्थ हैः स्वयं के बाहर होना, कहीं और होना। मित्र पर हों चाहे शत्रु पर हों, लेकिन हमारी चेतना, अटेंशन कहीं और

होगी--राग में भी, द्वेष में भी। जो आदमी धन इकट्ठा करने में पागल है, उसका ध्यान धन पर होगा। जो आदमी धन त्याग करने में पागल है, उसका ध्यान भी धन पर ही होगा। वे दोनों, धन पर ही दृष्टि-बिंदु होगी उनकी।
और सब द्वंद्वों से जिसकी दृष्टि-बिंदु लौट आती है, अपने पर खड़ी हो जाती है, चुपचाप देखने लगता है कि यह रहा त्याग, यह रहा भोग; न मैं भोग करता, न मैं त्याग करता; मैं खड़े होकर देखता हूं। ऐसी स्थिति में स्वयं का द्वार खुलता है, जहां से ज्ञान की परम भूमिका में जाया जा सकता है।
एक और ले लें तो पूरी बात हो जाए। हां, निगोद का कुछ था न कोई प्रश्न? क्या, निगोद के लिए ही पूछते थे न?

प्रश्नः हां, निगोद का मतलब क्या है?

निगोद की धारणा महावीर की बिल्कुल अपनी धारणा है, बड़ी मौलिक, जटिल भी
है बहुत। हां, निगोद का अर्थ है... संसार है, मोक्ष है, ये दो शब्द हमारी समझ में हैं। मोक्ष का मतलब हैः वे आत्माएं जो सब बंधनों के पार चली गईं। संसार का अर्थ हैः वे आत्माएं जो अभी बंधनों में हैं, पार जा सकती हैं। निगोद का अर्थ हैः वे आत्माएं जो बंधन में प्रसुप्त हैं--मोक्ष के उलटा। संसार मध्य में है, निगोद प्रथम है, मोक्ष अंतिम है। निगोद से आत्मा उठती है, संसार में आती है; संसार से उठती है, मोक्ष में जाती है। मोक्ष है मुक्ति, निगोद है पूर्ण अमुक्ति। जहां सब बिल्कुल अंधकार है, जकड़ गहरी है, यानी जहां इसका भी होश नहीं है कि बंधन है, जहां बंधन ही सब कुछ है। बंधन का होश भी स्वतंत्रता की शुरुआत हो गई। इस बात का पता चलना कि हाथ में जंजीरें हैं, संघर्ष शुरू हो गया। अब जंजीरें बरदाश्त नहीं की जाएंगी, तोड़नी पड़ेंगी। निगोद में इसका भी पता नहीं है।
निगोद का अर्थ हैः मूर्च्छित आत्माओं का लोक।
उसी मूर्च्छित आत्माओं के लोक से धीरे-धीरे आत्माएं उठतीं और इस मध्य लोक में आतीं; जहां अर्ध मूर्च्छा, अर्ध अमूर्च्छा चलती है; कभी चित्त जागता, कभी सो जाता; कभी हम जगे लगते, कभी सोए; कभी होश आता, कभी बेहोशी; कभी विवेकपूर्ण होते, कभी अविवेकपूर्ण। यहां निद्रा और जागृति के बीच में हम डोलते रहते हैं। जैसे रात निद्रा है और दिन जागरण है, और दोनों के बीच में एक स्वप्न की अवस्था है, जहां न तो हम पूरी तरह सोए होते, न पूरी तरह जागे होते।
स्वप्न का मतलब हैः आधा जागना, आधा सोना। इतने जागे भी होते कि सुबह याद रह जाता है कि सपना देखा, इतने सोए भी होते कि सपना चलता है और पता नहीं चलता कि सपना चल रहा है, लगता है कि सच चल रहा है--अर्ध अवस्था।
संसार है स्वप्न, निगोद है निद्रा, मोक्ष है जागृति--ये तीन अवस्थाएं हैं।
जो सवाल उठा, वह इसलिए उठा कि सारी आत्माएं आती कहां से हैं? महावीर यह
तो मानते नहीं कि इनका सृजन होता है, सृष्टि होती है। सृष्टि नहीं होती, आत्माएं सदा से हैं। तो आती कहां से हैं? संसार में आत्माएं आती कहां से हैं?
तो महावीर कहते हैं कि अमूर्च्छा का एक लोक है, जहां अमूर्च्छित आत्मा असंख्य, अनंत आत्माएं मौजूद हैं। अनंत--ध्यान में रहे। क्योंकि अगर अनंत न हो तो एक दिन वह चुक जाएगा। और इस जगत में ऐसा कुछ भी नहीं, जो अनंत न हो। इस जगत में बिना अनंत हुए कोई चीज हो ही नहीं सकती। यह भी समझ लेना जरूरी है। इसमें इनफिनिट होना, अनंत होना अनिवार्य है। कोई भी चीज संख्या में हो ही नहीं सकती। क्योंकि संख्या में अगर चीजें हों तो फिर जगत की सीमा बन जाएगी, फिर जगत असीम नहीं हो सकेगा। और जगत सीमित हो नहीं सकता। निगोद का अर्थ हैः अनंत आत्माएं जहां प्रसुप्त हैं अनंत काल से। वहां
से आत्माएं एक-एक, एक-एक उठती हैं। उठने वाली आत्माओं की संख्या है, संसार उनसे बनता है। फिर संसार से आत्माएं मुक्त होती चली जाती हैं दूसरे लोक में, जहां वे परम चैतन्य को उपलब्ध हो जाती हैं।
सवाल यह है कि क्या कभी ऐसा होगा कि सब आत्माएं मुक्त हो जाएं? ऐसा कभी नहीं होगा, क्योंकि आत्माएं अनंत हैं।

अब अनंत शब्द हमारे ख्याल में नहीं आता, क्योंकि हमारा मस्तिष्क जो है, वह अनंत को कंसीव नहीं कर पाता। हम बड़ी से बड़ी संख्या सोच सकते हैं, लेकिन अनंत नहीं। क्योंकि अनंत का मतलब है, जहां संख्या होती ही नहीं। हम यह भी सोच सकते हैं, असंख्य, लेकिन असंख्य का मतलब अनंत नहीं होता। असंख्य का मतलब होता है जिसकी संख्या गिनी न जा सके। असंख्य का मतलब होता है कि संख्या हम गिनें तो थक जाएं।
जैसे कोई आपसे पूछे, आपकी खोपड़ी पर बाल कितने हैं? तो आप कहें, असंख्य, कोई गिनती नहीं है। लेकिन ऐसा नहीं हो सकता, बालों की गिनती है। गिनना कठिन हो सकता है थोड़ा-बहुत, लेकिन गिना जा सकता है। इसमें कोई ऐसी अड़चन नहीं है। सब गिना जा सकता है। असंख्य जिसको हम कहते हैं, वह कभी संख्य हो जाएगा।
अनंत का मतलब है कि जहां संख्या अर्थहीन है, जहां हम कितना ही गिनें
तो भी गिनने को शेष रह जाएगा। कितना ही गिनें तो भी गिनने को शेष रह जाएगा! जहां शेष रहना अनिवार्य है, जहां अशेष कभी कोई चीज होती ही नहीं।
तो निगोद है मूर्च्छित आत्माओं का लोक, संसार है अर्ध मूर्च्छित आत्माओं का लोक, मोक्ष है परम अमूर्च्छित, पूर्ण जाग्रत आत्माओं का लोक। और हमारा मन चूंकि संख्याओं में ही सोचता है, इसलिए सवाल निरंतर उठते हैं कि कितनी अमूर्च्छित आत्माएं हैं? कितनी का सवाल नहीं है। कितनी आत्माएं मुक्त हो गई हैं? इसका भी कोई सवाल नहीं है। क्योंकि अनंत काल से आत्माएं मुक्त होती हैं, अनंत आत्माएं मुक्त हो गई हैं।
अनंत के साथ एक मजा है कि उसमें से कितना ही निकालो, पीछे उतना ही शेष रहता है, जितना था। इसको थोड़ा समझ लेना जरूरी है। क्योंकि वह हमारा जो आम गणित है, वह गणित इस बात को राजी नहीं होता। कहता है इस कमरे में कितने ही लोग हों, अनंत हों समझ लें, लेकिन अगर दो आदमी बाहर निकल गए तो फिर पीछे उतने ही तो नहीं रहे, जितने थे। हमारा गणित कहता है, ऐसा कैसे हो सकता है कि पीछे उतने ही रह जाएं, जितने थे? क्योंकि दो निकल गए।
और अगर हम यह मान लें कि दो के निकलने से पीछे कुछ कम हो गए तो फिर संख्या हो सकती है, फिर कोई सवाल नहीं है। क्योंकि कम होते चले जाएंगे, कम होते चले जाएंगे, कम होते चले जाएंगे; एक वक्त आएगा कि शून्य भी हो सकता है। तो यह गणित की बड़ी पहेलियों में से एक है कि अनंत में से हम कुछ भी निकालें, अनंत ही शेष रहता है, उसमें कुछ फर्क नहीं पड़ता।
इसलिए निगोद उतने का उतना ही है, जितना था। और उतना ही रहेगा, जितना था। और उतना ही सदा है, उतना ही सदा रहेगा। मुक्त आत्माएं रोज होती चली जाएंगी, मोक्ष में कोई भीड़ नहीं बढ़ जाएगी। उससे कुछ भीड़ बढ़ने का कोई सवाल नहीं है।
लेकिन हमारा जो गणित है संख्या का, उसे समझना बड़ा मुश्किल होता है। नॉन-युक्लिडियन जो ज्यामेट्री है, युक्लिड के विरोध में जो नए तरह की ज्यामेट्री पैदा हुई है और गणित के विरोध में भी जो नए तरह की हायर मैथेमेटिक्स पैदा हो रही है, उसकी समझ में आ सकती है बात, साधारणतः समझ में नहीं आ सकती।
जैसे उदाहरण के लिए, हम एक सीधी रेखा खींचते हैं जमीन पर, युक्लिड कहता है कि दो बिंदुओं के बीच निकटतम जो दूरी है, वह सीधी रेखा बन जाती है। निकटतम दूरी सीधी रेखा बन जाती है। एक सीधी रेखा हम खींच सकते हैं।
लेकिन नॉन-युक्लिडियन ज्यामेट्री, नई ज्यामेट्री जो युक्लिड के खिलाफ में विकसित हुई है, वह कहती है सीधी रेखा होती ही नहीं, क्योंकि जमीन गोल है। इसलिए कितनी ही सीधी रेखा खींचो, अगर उसको तुम दोनों तरफ बढ़ाते चले जाओ तो अंत में वह वृत्त बन जाएगी। इसलिए सब सीधी रेखाएं किसी बड़े वृत्त के खंड हैं। और वृत्त के खंड कभी सीधी रेखाएं नहीं हो सकते।
समझे न मेरा मतलब? मैं समझा रहा हूं यह कि इसका मतलब हुआ कि सीधी रेखा होती ही नहीं। बस इतना ही होता है कि हमारी आंख कम है, इसलिए हमको सीधी लगती है। अगर हम फैलाते चले जाएं तो अंततः वह एक बड़ा सर्किल बन जाएगी। और जब वह बड़ा सर्किल बन सकती है तो बड़े सर्किल का हिस्सा है। और सर्किल का हिस्सा, वृत्त का हिस्सा सीधा नहीं हो सकता, वह तिरछा है ही।

इसलिए कोई रेखा जगत में सीधी नहीं है। यह हमारे ख्याल में आना मुश्किल हो जाए--कि कोई भी रेखा जगत में सीधी नहीं? खींची ही नहीं जा सकती, खींचना ही असंभव है। क्योंकि जितना ही तुम खींचते चले जाओगे, अंत में वह मिल ही जाएगी। उसे कहां ले जाओगे? इसलिए कोई सीधी रेखा नहीं, सब वृत्त हैं, सब वृत्त-खंड हैं।
अब युक्लिड कहता है कि--एक बिंदु की व्याख्या में वह कहता है कि बिंदु
वह है, जिसमें लंबाई-चौड़ाई नहीं है। नॉन-युक्लिडियन ज्यामेट्री कहती है कि लंबाई-चौड़ाई जिसमें न हो, वह तो हो ही नहीं सकता। इसलिए कोई बिंदु नहीं है, सब रेखाओं के खंड हैं, छोटे खंड हैं।
समझ रहे हो न? रेखा है बड़े वृत्त का खंड और बिंदु है रेखा का खंड। और
सब बिंदुओं में लंबाई-चौड़ाई है, क्योंकि बिना लंबाई-चौड़ाई के कोई चीज हो ही नहीं सकती। सबमें लंबाई-चौड़ाई है। लेकिन युक्लिड की बात जब तक मानी जाती रही, तब तक बिल्कुल ठीक लगती थी, अब एकदम गड़बड़ हो गई, एकदम मुश्किल में पड़ गई।
गणित की जो व्यवस्थाएं हैं, जैसे कि हमारी संख्या की व्यवस्था है, हम
सब मानते हैं कि नौ तक संख्या होती है, एक से नौ तक संख्या होती है। कोई कभी नहीं पूछता कि इससे ज्यादा क्यों नहीं होती? और कोई कभी नहीं पूछता कि इससे कम में क्यों नहीं चल सकता? बस एक ट्रेडीशन है। किसी पहले आदमी को फितूर सवार हो गया, उसने नौ का हिसाब बना डाला है, वह चल पड़ा! और चूंकि गणित एक जगह पैदा हुआ, फिर सारी दुनिया में फैल गया, इसलिए कभी किसी ने नहीं सोचा।
लेकिन पीछे लोग पैदा हुए--जैसे लीबनिस हुआ, लीबनिस ने तीन के अंक से काम चला लिया। उसने कहा, तीन से ज्यादा की जरूरत नहींः एक, दो, तीन! फिर तीन के बाद आताः दस, ग्यारह, बारह, तेरह! फिर बीस आ जाता है! बाकी सब विदा कर दिया उसने। और उसने सब गणित हल कर लिए उतने ही से!
आइंस्टीन ने कहा, तीन की भी क्या जरूरत? दो से ही काम चल जाता हैः एक, दो; दस, ग्यारह, बारह; बीस, इक्कीस, बाइस--ऐसा चलता चला जाता है। वह कहता है, गिनती ही करनी है न? तो यह अगर हम पुराना गणित मानते हैं तो एक, दो, तीन, चार, पांच होता है--यह। अगर आइंस्टीन का मान लेते हैं तो एक, दो; दस, ग्यारह, बारह। ये बारह हो जाते हैं। ये पांच हैं नहीं, ये पांच सिर्फ हमारा गणित का हिसाब है। गणित का हिसाब बदल लें तो ये सब बदल जाएंगे।
तो हमारा संख्या का हिसाब है इस जगत में और हम सब चीजों को संख्या से तौलते हैं! जब कि सचाई यह है कि संख्या बिल्कुल ही झूठी बात है, आदमी की ईजाद है, कामचलाऊ है। क्योंकि यहां कोई भी चीज ऐसी नहीं, जिसकी संख्या हो, प्रत्येक चीज असंख्य है। और अगर असंख्य का हम ख्याल करें तो मैथेमेटिक्स बेकार हो जाता है, क्योंकि गणित का कोई मतलब ही नहीं रहता। जब असंख्य है, गिना ही नहीं जा सकता, गिनने योग्य ही नहीं है, और कितना ही निकाल लो बाहर, उतना ही फिर भी पीछे रह जाता है, तो जोड़-घटाने का क्या मतलब है? भाग का क्या मतलब है? गुणा का क्या मतलब है? कोई मतलब नहीं है।
तो अगर हम जगत की पूरी असंख्य व्यवस्था, अनंत व्यवस्था को ख्याल में लाएं तो सब गणित एकदम गिर जाता है, क्योंकि गणित बना है कामचलाऊ हिसाब से, कि हम उसमें गिनती करके काम चला लें। और उसी कामचलाऊ गणित से अगर हम जगत के सत्य को जानने जाएं तो हम मुश्किल में पड़ जाते हैं।
तो महावीर की बात एकदम नॉन-मैथेमेटिकल है, गणित से उलटी है। और जो भी सत्य के खोजी हैं उनकी बातें निरंतर गणित से उलटी हो जाएंगी, क्योंकि गणित सीमा के भीतर चलता है और सत्य असीम है इसलिए सब गणित गड़बड़ हो जाता है। इसलिए उपनिषद भी कहते हैं कि वह पूर्ण ऐसा है कि उससे अगर तुम पूर्ण
को भी बाहर निकाल लो तो भी पीछे पूर्ण ही शेष रह जाता है, उसमें जरा भी कमी नहीं पड़ती। मगर हमारे दिमाग में मुश्किल हो जाती है कि जब भी हम कुछ निकालते हैं तो पीछे तो कमी पड़ जाती है। क्योंकि हमने सीमित से ही कुछ निकाला है सदा, अगर हमने असीमित से कुछ निकाला होता तो हमको पता चलता। असीमित का हमें कोई अनुभव नहीं है।
इसलिए निगोद अनंत है, उसमें कभी कमी नहीं पड़ती। मोक्ष अनंत है, वहां कभी भीड़ नहीं होती। दोनों के बीच का संसार भी एक अर्थ में अनंत है, क्योंकि

दो अनंतों को जोड़ने वाली चीज अनंत ही हो सकती है। वह भी, वह भी संख्या में नहीं हो सकती। क्योंकि दो अनंतों का जो सेतु बनता है, ब्रिज है, वह कैसे सांत हो सकता है?
अनंतों को सांत जोड़ ही नहीं सकता। अनंतों को सिर्फ अनंत ही जोड़ सकता है। और तब सिर चकराने वाली सारी बात हो जाती है। उस तल पर जाकर गिनती का कोई मतलब नहीं है।
मोक्ष की धारणा तो बहुत लोगों को है ख्याल में, निगोद की धारणा महावीर
की अपनी है। और मैं मानता हूं, बिना निगोद की धारणा के मोक्ष की धारणा बेमानी है, हो नहीं सकती। क्योंकि वहां आत्माएं चलती चली जाएंगी। आएंगी कहां से?

प्रश्नः निगोद से आत्मा सीधे मोक्ष में नहीं पहुंच सकती?

नहीं, क्योंकि मूर्च्छित आत्मा कैसे पहुंच सकती है? उसे अमूर्च्छा के रास्तों से गुजरना पड़ेगा। आप जब सोने से जगते हैं तो एकदम नहीं जग जाते, बीच में तंद्रा का एक काल है, जिससे आप गुजरते हैं।
जैसे सुबह आप उठ गए हैं, आपको लगता है उठ गए हैं, लेकिन फिर करवट बदल कर आंख बंद कर लिए हैं। फिर घड़ी की आवाज सुनाई पड़ी, फिर उसने कहा कि उठिए, किसी ने कहा है, तो आप फिर उठे हैं, फिर आंख खोली, फिर करवट बदल कर सो गए हैं। सोने और जागने के बीच में--चाहे कितना ही छोटा हो--तंद्रा का एक काल है, निद्रा और जागरण के बीच में, जब न तो आप ठीक जाग गए होते हैं, न ठीक सोए होते हैं; सोने की तरफ भी झुकाव होता है, जागने की तरफ भी मन होता है; इन दोनों के बीच तनाव होता है, एक टेंशन होता है।
निगोद से सीधा कोई मोक्ष नहीं जा सकता। संसार से गुजरना ही पड़ेगा। कितनी देर गुजरता है, यह दूसरी बात है। कोई पंद्रह-बीस मिनट बिस्तर पर करवट बदल कर उठता है, कोई पांच मिनट, कोई एक मिनट, कोई एक सेकेंड। और जो बिल्कुल छलांग लगा कर उठ आता है, वह भी हमको सिर्फ दिखाई पड़ता है, बिल्कुल काल का कोई सूक्ष्म अंश उसको भी बिस्तर पर गुजारना पड़ता है जागने के बाद। तो संसार छोटा-बड़ा हो सकता है, कम-ज्यादा जीवन में कोई मुक्त हो सकता है, लेकिन संसार से गुजरना ही पड़े, वह अनिवार्य मार्ग है, जहां से मोक्ष का द्वार है।

प्रश्नः जैसे समुद्र है, समुद्र से बादल उठते हैं, उसका पानी बरसता है, बरफ बनती है, लेकिन फिर वह समुद्र में चली जाती है--तो एक चक्र है। इस तरह मुक्त आत्माएं फिर निगोद में भी किसी तरीके से जाती रहती होंगी?

नहीं, नहीं। ऐसा चक्र नहीं है, ऐसा चक्र नहीं है। क्योंकि पानी, भाप, समुद्र, तीन चीजें नहीं हैं। तीन चीजें नहीं हैं, एक ही चीज का यांत्रिक चक्र है। यांत्रिक चक्र है। पानी के बीच से कोई बूंद मुक्त होकर पानी के बाहर नहीं हो पाती, चक्र घूमता रहता है।
जहां तक मोक्ष का संबंध है, वहां से लौटना मुश्किल है। क्योंकि यांत्रिकता टूट जाए, चित्त पूर्ण चेतन हो जाए, पूरा कांशस हो जाए, तो ही मोक्ष को जा सकता है। पूर्ण चेतना से लौटना असंभव है।
हां, संसार में कोई चक्कर लगा सकता है। कितने ही चक्कर लगा सकता है संसार के भीतर। संसार के भीतर कोई कितने ही चक्कर लगा सकता है। एक मनुष्य हजार बार मनुष्य होकर चक्कर लगा सकता है, वही-वही चक्कर लगा सकता है, क्योंकि सोया हुआ है। अगर जग जाए तो चक्कर लगाना बंद कर दे, बाहर हो जाए चक्कर के। मोक्ष चूंकि समस्त चक्कर के बाहर हो जाने का नाम है, इसलिए वापस चक्कर नहीं लगाया जा सकता।
और पानी की बूंद तो चूंकि मूर्च्छित है, कहना चाहिए उसमें जो आत्माएं हैं, वे निगोद में ही हैं। पानी की बूंद में जो आत्माएं हैं, वे निगोद में ही हैं। पदार्थ का जो जगत है, कहना चाहिए, वह निगोद में ही है। वहां से अभी, वहां तो बिल्कुल ही पूरा चक्कर है, एकदम पूरा चक्कर है। इसीलिए प्रेडिक्टेबल है।

हम कह सकते हैं कि पानी को गरम करिएगा तो भाप बनेगा। ऐसा पानी कभी नहीं देखा गया जो इनकार कर दे कि भाप नहीं बनता हूं। तो उसके पास कोई चेतना नहीं है। हम प्रेडिक्ट कर सकते हैं पानी के बाबत।
लेकिन आदमी के बाबत प्रेडिक्शन मुश्किल है। ऐसा जरूरी नहीं है कि प्रेम करिएगा तो वह प्रेम करेगा ही। ऐसा बिल्कुल जरूरी नहीं है। साधारणतः जरूरी है, लेकिन एकदम जरूरी नहीं है। और इसलिए आदमी प्रेडिक्शन के थोड़ा बाहर है, क्योंकि उसमें थोड़ी चेतना है। उसका पक्का नहीं बताया जा सकता कि वह क्या करेगा।
सारे पदार्थ के बाबत पक्का बताया जा सकता है, इसलिए पदार्थ का विज्ञान बन गया। और आदमी का विज्ञान अभी तक नहीं बन पा रहा है! वह न बनने का कारण यह है कि पदार्थ की सारी व्यवस्था यांत्रिक है। नियम पक्का हैः इतने पर गरम करो, पानी बनेगा भाप; इतने पर ठंडे करो, बनेगा बरफ। इसमें कोई शक-शुबहा ही नहीं, चाहे तिब्बत में करो, चाहे चीन में करो, चाहे ईरान में करो, कहीं भी करो; वह भाप बनेगा उतने पर, उतने पर बर्फ बनेगा। वह नियम पक्का है, क्योंकि यांत्रिक है पूरी दौड़।
लेकिन जैसे-जैसे हम ऊपर आते हैं, यांत्रिकता टूटती चली जाती है। आदमी में आकर भी यांत्रिकता बहुत शिथिल हो जाती है। और आदमी के बाबत पक्का नहीं कहा जा सकता कि वह क्या करेगा, आप ऐसा करोगे तो वह क्या करेगा। बिल्कुल ही प्रेडिक्शन के बाहर काम करने वाला आदमी मिल सकता है। तरह-तरह के लोग हैं और उनकी तरह-तरह की चेतना है।
लेकिन मोक्ष में तो प्रेडिक्शन बिल्कुल ही खतम हो गया। क्योंकि वहां
तो चेतना पूर्ण मुक्त है, पूर्ण जाग्रत है। उसके बाबत तुम कुछ भी नहीं कह सकते। कुछ भी नहीं कह सकते कि ऐसा होगा। क्योंकि वहां कोई नियम का यंत्रवत व्यवहार नहीं है।
मनुष्य में इसीलिए तकलीफ होती है कि मनुष्य का विज्ञान नहीं बन पाता पूरी तरह से। मनुष्य का पूरा विज्ञान बनाना मुश्किल है। किसी को हम गाली देंगे तो साधारणतः वह क्रोध करेगा। लेकिन कोई महावीर मिल सकता है, और तब आप गाली दें और वह चुपचाप खड़ा रहे, और क्रोध न करे। तो अनप्रेडिक्टेबल है वह। क्योंकि वह आदमी जितना चेतन हो जाएगा, उतना ही उसके बाबत कुछ नहीं कहा जा सकता कि गणित के हिसाब से ऐसा होगा।
सारी प्रकृति चक्र है बिल्कुल। वर्षा आती है, सर्दी आती है, गर्मी आती है, एक चक्र घूम रहा है। नदियां हैं, पानी है, पर्वत हैं, पहाड़ हैं, बादल बने हैं, फिर लौट रहे हैं, फिर चक्कर चल रहा है। जितने नीचे उतरेंगे, चक्कर उतना सुनिश्चित है। जितने ऊपर उठेंगे, चक्कर उतना शिथिल है। जितने ऊपर उठते जाएंगे, चक्कर उतना शिथिल होता चला जाएगा। पूर्ण ऊपर उठ जाने पर चक्कर नहीं है, सिर्फ आप हैं। और कोई दबाव नहीं है, कोई दमन नहीं है, कोई जबरदस्ती नहीं है, सिर्फ आपका होना है। यही मुक्ति, स्वतंत्रता का अर्थ है।
अमुक्ति, बंधन, परतंत्रता का यही अर्थ है कि बंधे हुए चक्कर लगा रहे हैं, कुछ उपाय नहीं है। बटन दबाते हैं, बिजली को जलना पड़ता है। पंखा चलाते हैं, बटन दबाई, पंखे को चलना पड़ता है। कोई उपाय नहीं है, पंखे की कोई इच्छा नहीं है, कोई स्वतंत्रता नहीं है।
बंधन से मोक्ष की तरफ की जो यात्रा है, वह अचेतना से चेतना की यात्रा है, क्योंकि जितनी अचेतना होगी, उतना बंधा हुआ क्रम होगा; जितनी चेतना होगी, उतना मुक्त क्रम हो जाता है।

महावीर: मेरी दृष्टि में अठारहवां प्रवचन

वासना-चक्र के बाहर महावीर-छलांग

प्रश्नः महावीर के पूर्व-जन्म की स्थिति मोक्ष की स्थिति थी और आपका कहना है कि मोक्ष से लौटना नहीं होता, तो फिर उनका लौटना कृपया स्पष्ट करें।

महायान में एक बहुत मीठी कथा का उल्लेख है। बुद्ध का निर्वाण हुआ, वे मोक्ष के द्वार पर पहुंच गए, द्वारपाल ने द्वार खोल दिया, बुद्ध को कहाः स्वागत है, आप भीतर आएं। लेकिन बुद्ध पीठ करके उस द्वार की तरफ खड़े हो गए और उन्होंने द्वारपाल से कहा, जब तक पृथ्वी पर एक व्यक्ति भी अमुक्त है, तब तक मैं भीतर कैसे आ जाऊं? अशोभन है यह, उचित नहीं मालूम पड़ता। मेरे योग्य नहीं। लोग क्या कहेंगे कि अभी पृथ्वी पर बहुत लोग बंधे थे, बद्ध थे, दुखी थे और बुद्ध आनंद में प्रवेश कर गए! तो मैं रुकूंगा। मैं इस द्वार से अंतिम ही प्रवेश कर सकता हूं।
ऐसी कहानी महायान बौद्धों में है। कहानी ही है, लेकिन अर्थ रखती है। अर्थ यह रखती है कि एक व्यक्ति मुक्त भी हो सकता है; लेकिन मुक्त हो जाना ही मोक्ष में प्रवेश नहीं है। यह बात समझ लेनी चाहिए।
मुक्त होना मोक्ष का प्रवेश-द्वार है। मुक्त होकर ही कोई व्यक्ति मोक्ष में प्रवेश पा सकता है। मुक्त हुए बिना प्रवेश नहीं पा सकता, लेकिन मुक्त हो जाना ही प्रवेश नहीं है। ठेठ द्वार पर भी खड़े होकर कोई वापस लौट सकता है। और जैसा मैंने पीछे कहा, एक बार वापस लौटने का उपाय है। वह मैंने पीछे समझाया कि क्यों वैसा उपाय है।
जो उपलब्ध हुआ है, वह अगर अभिव्यक्त न हो पाया हो; जो पाया है, अगर वह बांटा न जा सका हो; जो मिला है, अगर वह दिया न जा सका हो, तो एक जीवन की वापस उपलब्धि की संभावना है। यह संभावना वैसी ही है, जैसा मैंने कहा कि कोई आदमी सायकिल चलाता हो, पैडिल चलाता हो, फिर पैडिल बंद कर दे चलाना तो भी सायकिल उसी क्षण नहीं रुक जाती है। एक मोमेंटम है गति का, प्रवाह है गति का कि पैडिल रुक जाने पर भी सायकिल थोड़ी दूर बिना पैडिल चलाई जा सकती है लेकिन अंतहीन नहीं जा सकती, बस थोड़ी दूर जा सकती है।
यह जो थोड़ी देर का वक्त है, जब पैडिल चलाना बंद हो गया तब भी सायकिल चल जाती है, ठीक ऐसे ही वासना से मुक्ति हो जाए तो भी थोड़े दूर जीवन चल जाता है। वह अनंत जीवन का मोमेंटम है। यह पैडिल चलाना बंद कर देने के बाद कोई चाहे तो थोड़ी देर सायकिल पर सवार रह सकता है, और कोई चाहे तो ब्रेक लगा कर नीचे उतर जा सकता है। सवार रहना ही पड़ेगा, ऐसी भी कोई अनिवार्यता नहीं है। पैडिल चलाना बंद हो गया है तो व्यक्ति उतर जा सकता है, लेकिन न उतरना चाहे तो थोड़ी देर चल सकता है, बहुत देर नहीं चल सकता।
जैसा मैंने कहा कि जीवन की व्यवस्था में एक जीवन समस्त वासना के क्षीण हो जाने पर भी चल सकता है। जरूरी नहीं है, कोई व्यक्ति सीधा मोक्ष में प्रवेश करना चाहे तो कर जाए, लेकिन मुक्त व्यक्ति चाहे तो एक जीवन के लिए वापस लौट आता है। ऐसे जो व्यक्ति लौटते हैं, इन्हीं को मैं तीर्थंकर, अवतार, पैगंबर, ईश्वर-पुत्र, ऐसे व्यक्ति कह रहा हूं। ऐसा व्यक्ति जो स्वयं मुक्त हो गया है और अब सिर्फ खबर देने, वह जो उसे फलित हुआ है, घटित हुआ है, उसे बांटने, उसे बताने चला आया है। हम भोगने आते हैं, वह बांटने आता है, उतना ही फर्क है। और जो स्वयं न पा गया हो, वह न तो बांट सकता है, न इशारा कर सकता है।
तो एक जीवन के लिए कोई भी मुक्त व्यक्ति रुक सकता है। जरूरी नहीं है, सभी मुक्त व्यक्ति रुकते हैं, ऐसा भी नहीं है; लेकिन जो व्यक्ति रुक जाते हैं इस भांति, वे हमें बिल्कुल ऐसे लगते हैं, जैसे ईश्वर के भेजे गए दूत हों। क्योंकि वे पृथ्वी पर हमारे बीच से नहीं आते, वे उस दशा से लौटते हैं, जहां से साधारणतः कोई भी नहीं लौटता है।

और इसीलिए अलग-अलग धर्मों में अलग-अलग धारणा शुरू हो गई। हिंदू मानते हैं कि वह अवतरण है परमात्मा का, ईश्वर स्वयं उतर रहा है। क्योंकि यह जो व्यक्ति है, इसे अब मनुष्य कहना किसी अर्थ में सार्थक नहीं मालूम पड़ता। क्योंकि न तो इसकी कोई वासना है, न इसकी कोई तृष्णा है, न इसकी कोई दौड़ है, न कोई महत्वाकांक्षा है, कोई एंबीशन नहीं है। यह अपने लिए जीता ही नहीं मालूम पड़ता, श्वास भी अपने लिए नहीं लेता है। तो सिवाय ईश्वर के यह कौन हो सकता है!
और मुक्त व्यक्ति करीब-करीब ईश्वर है। तो हिंदुओं ने उसे अवतरण कहा है--उतरना, ऊपर से उतरना। अवतरण का मतलब है, ऊपर से उतरना। वहां से उतरना, जहां हम जाना चाहते हैं। अवतरण का मतलब ही यह होता हैः जहां हम सब जाना चाहते हैं, वहां से कोई व्यक्ति उतर कर नीचे आ गया है।
स्वभावतः, शायद जिन्होंने भी अवतरण की यह धारणा बनाई, उन्हें वह ख्याल नहीं है कि यह व्यक्ति भी यात्रा करके ऊपर गया होगा। ऊपर गया होगा तो ही वापस लौट सकता है। उस आधे हिस्से पर उनकी दृष्टि नहीं है, इसलिए हिंदुओं ने अवतरण कहा है।
जैनों ने अवतरण नहीं कहा। जैनों ने अवतरण की बात ही नहीं कही, उन्होंने तीर्थंकर कहा है। तीर्थंकर का मतलब होता हैः शिक्षक, दि टीचर, गुरु। तीर्थंकर का अर्थ होता हैः जिसके मार्ग पर चल कर कोई पार जा सकता है, जिसके इशारे को समझ कर कोई पार उतर सकता है।
लेकिन पार उतरने का इशारा वही दे सकता है, जो पार तक हो आया हो, नहीं तो इशारा कैसे दे सकता है? अगर मैं इस किनारे खड़े होकर बता सकूं कि वह रहा दूसरा किनारा, तो अगर इसी किनारे से वह किनारा दिखता हो तो आपको भी दिखता होगा, तब मुझे बताने की कोई जरूरत नहीं है। किनारा कुछ ऐसा है कि दिखता नहीं है और जब भी कोई इशारा कर सकता है कि वह रहा किनारा, तो एक ही अर्थ है उसका कि उस किनारे से होकर लौटा हुआ व्यक्ति है, अन्यथा उसकी तरफ इशारा कैसे कर सकता है? अगर दिखाई पड़ता होता तो हमको भी दिखाई पड़ जाता।
हम सबको दिखाई नहीं पड़ता। उसका इशारा दिखाई पड़ता है, उस व्यक्ति की आंखों की शांति दिखाई पड़ती है, उसके प्राणों के चारों तरफ झरता हुआ आनंद दिखाई पड़ता है, उसकी ज्योति दिखाई पड़ती है, किनारा नहीं दिखाई पड़ता वह जो बताता है। लेकिन उसका इशारा दिखाई पड़ता है और वह आदमी आश्वासन देता हुआ दिखाई पड़ता है, उसका सारा व्यक्तित्व आश्वासन देता हुआ मालूम पड़ता है कि किसी दूसरे किनारे का अजनबी है। कहीं और, किसी और तल को छूकर लौटा है, कुछ उसने देखा है, जो हमें दिखाई नहीं पड़ता। लेकिन यह व्यक्ति भी उस किनारे की तरफ इशारा कैसे कर सकता है, जहां यह हो न आया हो? यह असंभव है। तीर्थंकर का मतलब ही यह हुआ कि जो उस पार को छूकर लौट आया है इस पार खबर देने।
और मैं मानता हूं कि उचित ही है कि जीवन में ऐसी व्यवस्था हो कि जो उस पार जा सके, वह कम से कम एक बार तो लौट कर खबर दे सके। अगर यह व्यवस्था न हो, अगर जीवन के अंतर्नियम का यह हिस्सा न हो, तो शायद हमें कभी भी खबर न मिले, तो शायद हमें कभी भी पता न चले।
आज कोई व्यक्ति चांद पर होकर लौट आया है तो चांद के संबंध में हमें बहुत सी खबर मिली है। चांद यहां से दिखाई भी पड़ता था, फिर भी खबर नहीं मिलती थी उसके बाबत। और परमात्मा तो यहां से दिखाई ही नहीं पड़ता है, उसकी खबर मिलने का तो कोई सवाल नहीं है यहां से। लेकिन कोई कभी उसे छूकर लौट आए तो ही खबर दे सकता है।
तो तीर्थंकर का अर्थ हैः ऐसा व्यक्ति जो छूकर उस किनारे को लौट आया-- शायद खबर देने ही, जो उसे मिला उसे बांटने, जो उसने पाया उसे बताने।
जैनों ने अवतरण की बात नहीं की, न करने का कारण है, क्योंकि ईश्वर की कोई धारणा उन्होंने स्वीकार न की। इसलिए एक ही रास्ता था कि जो व्यक्ति गया हो उस किनारे तक, वह वापस लौट कर खबर देने आ गया हो।
इसलिए मैं कहता हूं, जैसे कि जीसस--ईसाई हैं, वे न तीर्थंकर की बात की कोई धारणा करते, न अवतार की; वे तो सीधा ईश्वर-पुत्र की, ईश्वर के बेटे की! क्योंकि ईश्वर के संबंध में जो खबर देता हो, वह ईश्वर के इतना ही निकट होना चाहिए जितना कि बाप के बेटा हो। बेटे का और कोई मतलब नहीं है, उसका मतलब

इतना है कि जो उसके प्राणों के प्राण का हिस्सा हो, उसका ही खून बहता हो जिसमें, वही तो खबर दे सकेगा।
या और जगत में इस तरह की धारणाएं हैं। लेकिन उन सबमें एक बात सुनिश्चित है और वह यह कि जो जानता है, वही जना भी सकता है। जिसने जाना है, पहचाना है, देखा है, जीया है; वही खबर भी दे सकता है। उसकी खबर कुछ अर्थ भी रखती है।
मुक्त व्यक्ति एक बार लौट सकता है। महावीर के अब लौटने का कोई सवाल नहीं है, महावीर लौट चुके। लेकिन बुद्ध के लौटने का सवाल अभी बाकी है। बुद्ध के एक अवतरण की बात है। मैत्रेय नाम से कभी भविष्य में उनका एक अवतरण हो। क्योंकि बुद्ध को जो सत्य की उपलब्धि हुई है, वह इसी जीवन में हुई है, इसके पहले जीवन में नहीं। बुद्ध ने जो पाया है, वह इसी जीवन में पाया है। एक जीवन का उन्हें उपाय और मौका है अभी--वापस लौटने का। और बहुत सदियों से, जब से बुद्ध गए, तब से उनको प्रेम करने वाले, उन्हें जानने वाले प्रतीक्षा करते हैं उस अवसर की, जब कि बुद्ध अवतरित हो सकें, फिर आ सकें एक बार। बुद्ध के आने की एक बार उम्मीद है।
जीसस के भी एक बार आने की उम्मीद है। जीसस को भी जो उपलब्धि हुई है, वह इसी जन्म में हुई है, एक जन्म लिया जा सकता है। लेकिन एक ही लिया जा सकता है। और तब प्रतीक्षा भी की जा सकती है।
फिर हमें ऐसा कठिन मालूम पड़ता है कि बुद्ध को मरे पच्चीस सौ वर्ष होते हैं, या जीसस को मरे भी दो हजार वर्ष हो जाते हैं, तो दो हजार वर्ष तक वह जन्म नहीं हुआ दुबारा? हमारी समय की जो धारणा है, उसकी वजह से हमें ऐसी कठिनाई होती है। तो थोड़ी सी समय की धारणा भी समझ लेनी जरूरी है।
आप रात सोए और आपने एक सपना देखा, सपने में आपने देखा कि सैकड़ों वर्ष बीत जाते हैं। नींद टूटती है और आप पाते हैं, झपकी लग गई थी और घड़ी में अभी मुश्किल से एक मिनट हुआ है। और सपने में वर्षों बीत गए हैं। ऐसा सपना देखा, जिसमें सैकड़ों वर्ष बीत गए। और अभी आंख खुली है तो देखते हैं कि घड़ी में एक ही मिनट सरका है। झपकी लग गई थी कुर्सी पर और आप एक लंबा सपना देख गए थे। तब एक सवाल उठता है कि जागने का एक मिनट था, सपने में वर्षों कैसे बीत गए? इतना लंबा सपना, वर्षों बीतने वाला, एक मिनट में कैसे देखा जा सका? देखा जा सका इसलिए कि जागते की समय की धारणा अलग है, समय की गति अलग है; सोते की समय की गति अलग है।
मुक्त व्यक्ति के लिए समय की गति का कोई अर्थ नहीं रह जाता, समय की गति
है ही नहीं। हमारे तल पर समय की गति है।
हम ऐसा सोच सकते हैं कि हम एक वृत्त खींचें, और एक वृत्त की परिधि पर तीन बिंदु बनाएं, वे तीनों काफी दूरी पर हैं, फिर इन तीनों बिंदुओं से वृत्त के केंद्र की तरफ रेखाएं खींचें, जैसे-जैसे केंद्र के पास रेखाएं पहुंचती जाती हैं, वैसे-वैसे करीब होती जाती हैं। परिधि पर इतना फासला था, केंद्र के पास आते-आते फासला कम होता जाता है। केंद्र पर आकर दोनों रेखाएं मिल जाती हैं। परिधि पर दूर थीं, केंद्र पर एक ही बिंदु पर आकर मिल गई हैं। केंद्र पर परिधि से खींची गई सभी रेखाएं मिल जाती हैं। और जैसे-जैसे पास आती जाती हैं, वैसे पास होती चली जाती हैं।
समय का जितना बड़ा विस्तार है, जितना हम जीवन-केंद्र से दूर हैं, समय उतना बड़ा है; और जितना हम जीवन-केंद्र के करीब आते जाते हैं, समय छोटा होता चला जाता है। इसलिए कभी शायद ख्याल नहीं किया होगा कि दुख में समय बहुत लंबा होता है, सुख में बहुत छोटा होता है। किसी को अपना प्रियजन मिल गया है, रात बीत गई है और सुबह प्रियजन विदा हो गया है और वह कहता है, कितनी जल्दी रात बीत गई! इस घड़ी को क्या हो गया है कि आज जल्दी चली जाती है! घड़ी अपनी चाल से चलती है, घड़ी को कुछ मतलब नहीं है कि किसका प्रियजन मिला है, किसका नहीं मिला है।
घर में कोई बीमार है, उसकी खाट के किनारे बैठ कर आप प्रतीक्षा कर रहे हैं। चिकित्सक कहते हैं, बचेगा नहीं। रात बड़ी लंबी हो जाती है--ऐसा कि घड़ी के कांटे चलते हुए ही मालूम नहीं पड़ते! ऐसा लगने लगता है कि घड़ी आज चलती नहीं! रात बड़ी लंबी हो गई है!

दुख समय को बहुत लंबा देता है, सुख समय को एकदम सिकोड़ देता है। उसका कारण है, क्योंकि सुख भीतर के कुछ निकट है, दुख परिधि के और दूर परिधि पर कहीं है। आनंद समय को बिल्कुल मिटा देता है, इसलिए आनंद टाइमलेस है, आनंद कालातीत है; वहां समय है ही नहीं। साधारण से सुख में समय छोटा हो जाता है, साधारण से दुख में समय बड़ा हो जाता है!
आइंस्टीन से कोई पूछ रहा था कि आपकी सापेक्षता का सिद्धांत, आपकी जो थ्योरी ऑफ रिलेटिविटी है, उसे हमें समझाएं। तो आइंस्टीन ने कहा, बहुत मुश्किल है समझाना, क्योंकि जमीन पर थोड़े से लोग हैं, जो सापेक्ष की बात समझ सकें। क्योंकि सापेक्ष के लिए समझना बड़ा कठिन है।
सापेक्ष का मतलब है कि जो प्रत्येक परिस्थिति में छोटा-बड़ा हो सकता है, लंबा-नीचा हो सकता है, जिसका कोई थिर होना नहीं है!
फिर भी उसने कहा कि उदाहरण के लिए मैं कहता हूं कि तुम अपनी प्रेयसी
के पास बैठे हो, आधा घंटा बीत जाता है, कितना लगता है? तो उस आदमी ने कहा, क्षण भर।
उसने कहा कि छोड़ो प्रेयसी को, तुम एक जलते हुए स्टोव पर बिठा दिए गए हो
और आधा घंटा बैठे रखे गए हो।
उसने कहा, आधा घंटा! क्या आप कह रहे हैं? तब तक तो मर ही चुकूंगा। आधा घंटा जलते हुए स्टोव पर! अनंत हो जाएगा, समय का एक-एक क्षण गुजारना मुश्किल हो जाएगा, बहुत लंबा हो जाएगा; आधा घंटा बहुत ज्यादा हो जाएगा।
तो आइंस्टीन ने कहा, सापेक्ष से मेरा यही प्रयोजन है। समय वही है, लेकिन तुम्हारे चित्त की अवस्था के अनुसार बड़ा-छोटा हो जाता है।
स्वप्न में एकदम छोटे समय में कितनी लंबी यात्रा हो जाती है! जागने में नहीं हो पाती। जागने में समय की परिधि पर हम ज्यादा हैं, सोने में हम अपने भीतर आए हैं! स्वप्न भीतर की तरफ है, जागरण बाहर की तरफ है। स्वप्न में हम अपने भीतर बंद हैं, केंद्र के ज्यादा निकट हैं; जागने में ज्यादा दूर हैं। जब कोई व्यक्ति बिल्कुल केंद्र पर पहुंच जाता है, उसका नाम समाधि है। तब समय एकदम मिट जाता है, एकदम विलीन हो जाता है, समय होता ही नहीं। सब ठहर गया होता है। टाइमलेस मोमेंट हो जाता है, थिर क्षण हो जाता है।
यह जो समयरहित, कालातीत क्षण है, इस क्षण में ठहरे हुए को पच्चीस सौ साल बीत गए कि पच्चीस हजार साल बीज गए, कोई फर्क नहीं होता। इस जगह ठहरे हुए व्यक्ति को कोई फर्क नहीं होता।
सब फर्क परिधि पर हैं, केंद्र पर कोई फर्क नहीं है। वहां सब परिधि से खींची गई रेखाएं संयुक्त हो गई हैं।
तो ऐसा व्यक्ति प्रतीक्षा कर सकता है उस क्षण की, जब वह सर्वाधिक उपयोगी हो सके। और ऐसा भी हो सकता है कि कुछ शिक्षक प्रतीक्षा करते-करते ही मोक्ष में विदा ले लेते हों। शायद उनके योग्य पृथ्वी पर समय न बन पाता हो। बहुत बार ऐसा भी हुआ है कि कुछ शिक्षक प्रतीक्षा करते हुए विदा हो गए हैं, क्योंकि वह बन नहीं पाई बात। और इसलिए इस तरह की भी चेष्टाएं चलती हैं कि शिक्षक के जन्म लेने के पहले कुछ और व्यक्ति जन्म लेते हैं जो हवा और वातावरण तैयार करते हैं! जैसा जीसस के पहले हुआ।
जीसस के पहले एक व्यक्ति पैदा हुआ जॉन, संत जॉन। उसने सारे यहूदी मुल्कों में--जेरुसलम में, इजरायल में, सब तरफ खबर पहुंचाई कि कोई आ रहा है, तैयार हो जाओ। उसने हजारों लोगों को दीक्षित किया कि कोई आ रहा है, तैयार हो जाओ। लोग पूछते, कौन आ रहा है? तो वह कहता, प्रतीक्षा करो, क्योंकि तुम उसे देख कर ही समझ सकोगे, मैं कुछ बता नहीं सकता हूं! लेकिन कोई आ रहा है! उसकी उसने तैयारी की। उसने पूरी अपनी जिंदगी गांव-गांव घूम कर जीसस के लिए हवा तैयार की।
और जब जीसस आ गए तो जॉन ने जीसस को आशीर्वाद दिया, और इसके बाद वह चुपचाप रिटायर हो गया, वह चुपचाप विदा हो गया। फिर उसका कोई पता नहीं चला कि फिर जॉन कहां गया। जीसस ने, वह जो हवा उसने बनाई थी, उसका पूरा उपयोग कर लिया। बहुत बार ऐसा भी हुआ है जब कि कोई शिक्षक वापस लौटे तो वह कुछ और प्राथमिक शिक्षकों को भेजे, जो हवा पैदा कर दें।
थियोसाफी ने अभी एक बहुत बड़ी मेहनत की थी, लेकिन वह शायद असफल हो गई। मैत्रेय की, जैसा मैंने कहा कि बुद्ध के एक जन्म की संभावना है, तो

ब्लावट्स्की और दूसरे एनी बीसेंट, और दूसरे थियोसाफिस्टों ने मैत्रेय को लाने के लिए भारी प्रयास किया। यह प्रयास अपने किस्म का अनूठा था। इस प्रयास में बड़ी साधना चली। इसमें कुछ लोगों ने बड़े प्राणों को संकट में डाल कर आमंत्रण भेजा और कृष्णमूर्ति को तैयार किया इस बात के लिए, कि वह जो मैत्रेय की आत्मा है, वह कृष्णमूर्ति में प्रविष्ट हो जाए। और कोई बीस वर्ष, पच्चीस वर्ष कृष्णमूर्ति की तैयारी में लगाए गए। कृष्णमूर्ति की जैसी तैयारी हुई वैसी दुनिया में किसी आदमी की शायद ही कभी हुई हो। अत्यंत गुह्य साधनाओं से कृष्णमूर्ति को गुजारा गया। ठीक वक्त पर सारी तैयारियां पूरी हो गईं, सारी दुनिया से कोई छह हजार लोग एक स्थान पर इकट्ठे हो गए, जहां कृष्णमूर्ति में मैत्रेय की आत्मा को प्रविष्ट होने की घटना घटने वाली थी। लेकिन शायद कुछ भूल-चूक हो गई, वह घटना नहीं घटी!
और कृष्णमूर्ति अत्यंत ईमानदार आदमी हैं। अगर कोई बेईमान आदमी उनकी जगह होता तो शायद वह अभिनय करने लगता कि घटना घट गई है। कृष्णमूर्ति ने इनकार कर दिया गुरु होने से! कृष्णमूर्ति का सवाल भी न था, सवाल तो किसी और आत्मा का, आत्मा के लिए तैयारी थी उनके शरीर की! क्योंकि ऐसा अनुभव किया गया है कि मैत्रेय के उतरने में बड़ी बाधा पड़ रही है। कोई शरीर इस योग्य नहीं मिल पा रहा है कि मैत्रेय उतर जाएं। और कोई गर्भ ऐसा निर्मित नहीं हो रहा है कि मैत्रेय के लिए अवसर बन जाए। तो हो सकता है और दो-चार सौ वर्ष प्रतीक्षा करनी पड़े, या हो सकता है कि प्रतीक्षा समाप्त ही हो जाए, वह चेतना विदा हो जाए। लेकिन आशा कम है, वह प्रतीक्षा जारी रहेगी। कृष्णमूर्ति के लिए किया गया प्रयोग असफल हो गया, वह सफल नहीं हो सका।
और अब ऐसा कोई प्रयोग पृथ्वी पर फिलहाल नहीं किया जा रहा है। आकस्मिक, अब तक सदा आकस्मिक शिक्षक ही उतरे थे, कभी-कभी तैयारियां भी हुई थीं।
तो वह जो मैंने कहा, एक बार लौटने का उपाय है मुक्त आत्मा को। और यह हक
है उसका, अधिकार है, क्योंकि जिसने जीवन में इतना पाया, उसे अगर बांटने का और खबर देने का अधिकार भी न मिलता हो तो यह जीवन बड़ा असंगत और बड़ा तर्कहीन है। उपलब्धि के बाद अभिव्यक्ति का मौका अत्यंत जरूरी है। इसलिए मैंने कहा कि महावीर पिछले जन्म में उपलब्ध किए हैं, इस जन्म में बांट गए हैं। उनकी चेतना के लौटने का कोई सवाल नहीं है।
दूसरी एक बात पूछी है कि हम प्रकृति में तो चक्रीय गति देखते हैं। सब चीजें दोहरती हैं, घूमती हैं, हर चीज लौट कर फिर घूम जाती है। तो ऐसा मन में संभावना उठती है, कल्पना उठती है कि कहीं ऐसा तो नहीं है कि निगोद से आत्माएं मोक्ष तक जाती हों, फिर वापस निगोद में पड़ जाती हों! क्योंकि जहां सभी कुछ चक्र में घूमता हो, वहां सिर्फ एक आत्मा की गति को चक्रीय न माना जाए, यह कुछ नियम का खंडन होता हुआ मालूम पड़ता है!
सब चीजें लौट आती हैंः बीज वृक्ष बनता है, फिर वृक्ष से बीज आ जाते हैं, फिर बीज वृक्ष बनते हैं, फिर वृक्षों में बीज आ जाते हैं। सब लौटता चला जाता है।
किसी वैज्ञानिक को कोई पूछ रहा था कि मुर्गी और अंडे में कौन पहले है? बहुत जमानों से आदमी ने यह बात पूछी है कि कौन पहले है। उस वैज्ञानिक ने कहा, पहले का तो सवाल ही नहीं है, क्योंकि मुर्गी और अंडा दो चीजें नहीं हैं। तो उस आदमी ने पूछा, अगर दो चीजें नहीं हैं तो मुर्गी क्या है? मुर्गी क्या है फिर? तो उस वैज्ञानिक ने बहुत बढ़िया बात कही। उसने कहा कि मुर्गी-- एग्स वे टू प्रोड्यूस मोर एग्स। अंडे का रास्ता और अंडे पैदा करने के लिए। मुर्गी क्या है? तो उसने कहा कि अंडे का रास्ता और अंडे पैदा करने के लिए, और कुछ भी नहीं। यानी मुर्गी जो है, वह सिर्फ एक बीच का रास्ता है, जिससे अंडा और अंडे पैदा करने का रास्ता खोजता है, और कुछ भी नहीं। या इससे उलटा कह सकते हैं कि अंडा जो है, वह मुर्गी का रास्ता है और मुर्गी पैदा करने के लिए।
सब चीजें घूम रही हैं। घड़ी के कांटे की तरह सब घूम रहा है। सब फिर कांटे बारह पर आ जाते हैं। फिर कांटे बारह पर आ जाते हैं। सिर्फ आत्मा के लिए ही इस नियम को तोड़ना उचित भी तो नहीं मालूम पड़ता। क्योंकि विज्ञान बनता है निरपवाद नियमों से। अगर जीवन के सब पहलुओं पर यह सच है--कि बच्चा जवान होता है, जवान बूढ़ा होता है, बूढ़ा मरता है; बच्चे पैदा होते हैं, फिर

जवान होते हैं, फिर बूढ़े होते हैं, फिर मरते हैं--अगर यह चक्रीय गति ऐसी चल रही है और आत्मा का पुनर्जन्म मानने वाले भी इस चक्रीय गति को स्वीकार करते हैं कि जो अभी मरा वह फिर बच्चा होगा, वह फिर जवान होगा, फिर बूढ़ा होगा, फिर मरेगा, फिर बच्चा होगा, फिर वह चक्र घूमता रहेगा। तो सिर्फ आत्मा को यह चक्र क्यों लागू नहीं होगा?
साधारणतः लागू नहीं होता। नियम यही है और ऐसे ही सब घूमना चलता है। मुक्त आत्मा एक अनूठी घटना है, सामान्य घटना नहीं है। सामान्य नियम लागू भी नहीं होता।
असल में चक्र के बाहर जो कूद जाता है, उसी को मुक्त आत्मा कहते हैं।
सब तरह के चक्रीय गति के बाहर जो कूद गया है, उसको ही मुक्त कहते हैं।
इसलिए उसको चक्रीय गति में नहीं डाला जा सकता, नहीं तो मुक्त कहने का कोई मतलब नहीं है। मोक्ष का मतलब ही इतना है कि नियमों का जो चक्कर चल रहा है जगत का... ।
संसार का मतलब कभी आपने सुना?
संसार का मतलब होता हैः दि व्हील।
संसार का मतलब ही होता है सिर्फ इतना, संसार शब्द का मतलब होता हैः चक्र, जो घूम रहा है। संसार का मतलब है, जो घूम रहा है, जो घूमता ही रहता है। मुक्त का मतलब है, जो इस घूमने के बाहर छलांग लगा जाता है।
तो मुक्त को अगर हम फिर चक्रीय गति में रख लेते हैं तो मुक्ति व्यर्थ
हो गई। कोई मतलब न रहा, मुक्त होने का कोई अर्थ ही न रहा। अगर मोक्ष से फिर निगोद में आत्मा को आना है तो पागल हैं, जो मुक्त होने की कोशिश कर रहे हैं। फिर इसमें कोई मतलब ही नहीं, यह बेमानी बात है। अगर कांटे को बारह पर लौट ही आना है, वह कुछ भी करे--चाहे मुक्त हो और चाहे न हो, तो अर्थ क्या है मोक्ष का? फिर तो मोक्ष अर्थहीन हो गया।
मोक्ष का अर्थ ही यही है, यानी मुक्ति का प्रयोजन ही यही है कि इस चक्र में जिसमें कि हम घूमते ही रहे हैं, घूमते ही रहे हैं, घूमते ही रहेंगे, क्या इसमें घूमते ही रहना है या छलांग लगा जाना है? अगर घूमते ही रहना है तो हम जैसे हैं ठीक हैं, घूमते रहेंगे। अगर छलांग लगानी है तो हमें सजग होना पड़ेगा, जागना पड़ेगा इस चक्र के प्रति। चक्र के प्रति ही जागना है। और क्या है!
कल भी आपने क्रोध किया, कल भी आपने पश्चात्ताप किया; आज फिर आप क्रोध
कर रहे हैं, फिर पश्चात्ताप कर रहे हैं। फिर क्रोध है, फिर पश्चात्ताप है; फिर क्रोध है और चक्र है! हर क्रोध के पीछे पश्चात्ताप, हर पश्चात्ताप के आगे फिर क्रोध, एक चक्र में आप घूम रहे हैं!
और आप कह सकते हैं कि जब हर क्रोध के बाद पश्चात्ताप आया तो हर पश्चात्ताप के बाद क्रोध आएगा। और यह तो घूमना होता ही रहेगा। और अगर इस चक्र में ही खड़े रहते हैं तो घूमना जारी रहेगा।
लेकिन यह भी तो हो सकता है कि आप चक्र के बाहर छलांग लगा जाएं। छलांग लगाने का मतलब न तो क्रोध होगा, न पश्चात्ताप होगा, क्योंकि जिसने पश्चात्ताप किया, वह क्रोध करेगा और जिसने क्रोध किया, वह पश्चात्ताप करेगा। वे तो एक ही चक्र के हिस्से हैं।
छलांग लगाने का मतलब है कि एक आदमी न क्रोध करता, न पश्चात्ताप करता-- बाहर हो जाता है। तब उसे कोई गाली देता है तो न वह क्षमा करता है, न वह क्रोध करता है, न वह पश्चात्ताप करता है। वह कुछ करता ही नहीं, वह एकदम बाहर हो जाता है।
यह जो बाहर हो जाना है, यह जो छिटक जाना है, फिंक जाना है चक्र के बाहर,
तो फिर इसे चक्र में नहीं गिना जा सकता। अगर इसे भी चक्र में गिना जा सकता है तो महावीर नासमझ हैं, बड़ी भूल में पड़े हैं; बुद्ध भी नासमझ हैं, नासमझी में पड़ गए हैं; क्राइस्ट भी गलती कर रहे हैं। असल में तब मोक्ष की बात करने वाले सब पागल हैं। क्योंकि अगर सबको घूम ही जाना पड़ता है वापस, तो सब बात व्यर्थ हो गई, कोई अर्थ न रहा।
तो अगर हम मोक्ष की धारणा को, वह जो कंसेप्ट है, वह समझ लें, तो उसका मतलब ही कुल इतना है कि चक्र के बाहर कूदा जा सकता है। और जो व्यक्ति चक्र के प्रति सचेत हो जाएगा, वह बिना कूदे नहीं रह सकता है। क्योंकि चक्र

बिल्कुल कोल्हू के बैल की तरह घूम रहा है। और कोल्हू के बैल में कौन जुता रहना चाहेगा? एक दफा पता चल जाए, ख्याल आ जाए कि इस ट्रैक से नीचे उतरा जा सकता है, इस ट्रैक के बाहर हुआ जा सकता है।
जीवन का जो साधारण ट्रैक है, जो उसकी लोह-पटरी है, उससे अगर कोई छलांग लगा जाता है, तो उस छलांग का नाम ही मुक्त होना है। और उसको वापस चक्र में रखने का कोई उपाय नहीं है, क्योंकि उसे वापस चक्र में बिठाने का कोई उपाय नहीं है।
हां, जैसा मैंने कहा कि एक बार भर वह स्वयं अपनी स्वेच्छा से चाहे तो
उस चक्र में लौट सकता है, जिनमें वह अपने प्रियजनों को, अपने मित्रों को, अपने प्यारों को, उन सबको जिनके लिए भी वह खुशी, आनंद लाना चाहता है, एक बार फिर वापस आकर बैठ सकता है उस चक्र पर।
लेकिन चक्र पर बैठा हुआ भी वह घूमेगा नहीं। घूमेगा इसलिए नहीं कि अब घूमने का उसे कोई मतलब न रहा। और इसलिए हम उसे पहचान भी पाएंगे कि कुछ अलग तरह का आदमी है, कुछ भिन्न तरह की बात है। यह कुछ और अनुभव करके लौटा है। अब वह खड़ा भी होगा हमारे बाजार में, लेकिन बाजार का हिस्सा नहीं होगा। अब वह हमारे बीच भी खड़ा होगा, लेकिन ठीक हमारे बीच नहीं होगा; कहीं हमसे दूर और फासले पर होगा। उस व्यक्ति में दोहरी घटना घट रही होंगी, वह होगा हमारे बीच और हमसे बिल्कुल बियांड होगा, हमसे बिल्कुल अलग होगा! यह हम प्रतिपल अनुभव कर पाएंगे कि कहीं हमारा उससे मेल होता भी है और कहीं मेल होता भी नहीं; कहीं बात बिल्कुल अलग हो जाती है, वह कुछ और ही तरह का आदमी है!
यह जो वैज्ञानिक है, भौतिकवादी है, मैटीरियलिस्ट है, वह यही कह रहा है--वह यही कह रहा है कि यहां तो सब नियम वहीं पहुंच जाते हैं, जहां से हम आते हैं, अन्यथा जाने का कोई उपाय नहीं है। सागर का पानी सागर में पहुंच जाता है। पत्तों में आई मिट्टी वापस मिट्टी में पहुंच जाती है, पत्ते फिर गिर कर मिट्टी हो जाते हैं। वही वैज्ञानिक कहता है, वही भौतिकवादी कहता है--मैटीरियलिस्ट! उसमें और स्प्रिचुअलिस्ट में फर्क क्या है?
फर्क इतना ही है कि वह यह कहता है कि सब चीजें जहां से उठीं--डस्ट अनटू डस्ट, मिट्टी मिट्टी में लौट जाती है और सब खतम हो जाता है--बात क्या है! सब चीजें जहां से आती हैं, वहीं वापस चली जाती हैं।
लेकिन धार्मिक खोजी यह कह रहा है कि एक ऐसी भी जगह है, जहां से हम नहीं
आए हैं और जा सकते हैं। एक ऐसी भी जगह है, जहां से हम नहीं आए हैं और जा सकते हैं। और जहां हम चले जाएं तो फिर इस चक्कर में गिर जाने का कोई उपाय नहीं है, फिर इसमें सम्मिलित हो जाने का कोई उपाय नहीं है।
अगर नहीं यह संभव है तो धर्म की सारी संभावना खतम हो गई, साधना का सब अर्थ व्यर्थ हो गया। फिर कुछ बात ही नहीं है। फिर तो एक जड़ चक्र है, उसमें हम घूमते रहेंगे, घूमते रहेंगे, घूमते रहेंगे। आवागमन से छूटने की जो कामना है, यह उन लोगों को उठी है, जिन्हें यह घूमते हुए चक्र की व्यर्थता दिखाई पड़ गई है कि जन्मों-जन्मों से, अनंत जन्मों से एक सा घूमना हो रहा है! और हम हैं कि घूमते चले जा रहे हैं और इससे कभी छलांग लगाने का ख्याल नहीं आता।
छलांग लग सकती है, लगी है; किसी की भी लग सकती है। और छलांग बिल्कुल और घटना है, जिसके लिए फिर वे नियम लागू नहीं होते। जैसे आप छत पर खड़े हुए हैं, दस आदमी छत पर खड़े हुए हैं। कोई भी छत से नहीं गिर रहा है, दसों आदमी एक ही नियम के अंतर्गत हैं। एक आदमी छत पर से छलांग लगाता है, यह आदमी नियम के बाहर हो गया, छत पर जो नियम काम कर रहा था, उसके बाहर हो गया। छत इसे बचा रही थी ग्रेविटेशन से, जमीन की कशिश से बचा रही थी। यह उसके बाहर हो गया, छत के बचाव के बाहर हो गया। अब जमीन इसे खींचेगी अपनी तरफ, जो कि छत पर खड़े हुए किन्हीं लोगों को नहीं खींच सकती थी; क्योंकि उन पर नियम लागू नहीं होता था। एक पर्त के ऊपर वे खड़े थे, जो जमीन की कशिश को रोकने का काम करती थी। यह आदमी बाहर हो गया।
अभी जो हमने चांद पर आदमी भेजा, इसके लिए सारी, सबसे बड़ी कठिनाई क्या थी? सबसे बड़ी कठिनाई एक ही थी, और वह कठिनाई यह थी कि जमीन की कशिश से कैसे छूटना? जमीन का ग्रेविटेशन असली सवाल है। दो सौ मील तक जमीन के ऊपर चारों तरफ जमीन की कशिश का प्रभाव है। असली सवाल यह था कि इस दो सौ मील के बाहर

कोई चीज कैसे छलांग लगा जाए? क्योंकि जमीन यहां तक खींचती है; इसके बाहर, एक इंच बाहर हो गए कि जमीन का खींचना खतम हो जाता है।
तो जो सैकड़ों वर्षों से चिंतना चलती थी कि चांद पर कैसे पहुंचें या कहीं भी कैसे पहुंचें, उसमें सबसे बड़ी कठिनाई यह थी कि जमीन से कैसे छूटें? सवाल चांद पर पहुंचने का कठिन नहीं था। आमतौर से लोगों ने यही समझा है कि चांद पर पहुंचना असली सवाल था। यह सवाल गौण है, असली सवाल था जमीन के घेरे से कैसे छूटें? वह जमीन का जो ग्रेविटेशन है, वह इतने जोर से खींचता है--उसके बाहर कैसे हो जाएं?
उसके बाहर हो जाना ही सबसे बड़ा सवाल था। और उसके बाहर नहीं होते हैं
तो कहीं जा नहीं सकते।
और यह संभव नहीं हो सकता था--अभी संभव हो सका, क्योंकि हम इतना बड़ा विस्फोट पैदा कर सके राकेट के पीछे कि उस विस्फोट के धक्के में वह राकेट ग्रेविटेशन के घेरे के बाहर हो गया। एक दफा बाहर हो गया, पृथ्वी की पकड़ के, जकड़ के बाहर हो गया। अब वह कहीं भी जा सकता है। अब कोई सवाल नहीं है कहीं जाने का। जो दूसरा डर था वह चांद पर उतारने का डर था कि पता नहीं कितनी दूर से चांद का ग्रेविटेशन शुरू होगा! और कितने जोर से चांद खींचेगा या नहीं खींचेगा, या क्या करेगा!
तो ग्रेविटेशनल फील्ड्स की बात थी। हर एक कशिश का क्षेत्र है एक। हर नियम का एक क्षेत्र है। और उस नियम के बाहर उठने का उपाय है--अपवाद, बाहर तोड़ा जा सकता है उस क्षेत्र के।
जीवन की गहरी परिधि जो है हमारी, उसके केंद्र में--जैसे मैंने कहा, पृथ्वी का ग्रेविटेशन है--ऐसा जीवन के चक्र का जो केंद्र खोज लिया गया, वह वासना है। वह खोज लिया गया कि अगर जीवन के बाहर छिटकना है तो किसी न किसी रूप में वासना के बाहर निकलना होगा। वह जो वासना है, वह ग्रेविटेशनल फोर्स है। प्रत्येक के भीतर वह जो तृष्णा है, जिसको बुद्ध तन्हा कहते हैं; वह जो वासना है हमारी, जो हमें थिर नहीं होने देती--और कहती है वह लाओ, वह पाओ, वह बन जाओ--वह हमें चक्र में दौड़ाती रहती है। क्योंकि वह जहां-जहां इशारे करती है, वह चक्र के भीतर है। वह कहती है, धन कमाओ। वह कहती है, यश कमाओ। वह कहती है, स्वास्थ्य लाओ। वह कहती है, और जीयो, ज्यादा जीयो, ज्यादा उम्र बनाओ। वह जो भी हमसे कहती है, वे सब उस चक्र के भीतर के पहलू हैं। और जब हम एक आगे का इशारा तय कर लेते हैं कि वहां जाना है, तब हम चक्र के भीतर घूमने लगते हैं।
जो व्यक्ति एक क्षण को भी वासना के बाहर हो जाए, वह अंतरिक्ष में यात्रा कर गया, उस अंतरिक्ष में जो हमारे भीतर है। वह जीवन के चक्र के भीतर छलांग लगा गया। क्योंकि उसने कहा कि नहीं, मुझे न यश चाहिए, न धन चाहिए, न कोई काम चाहिए, मुझे कुछ चाहिए ही नहीं। मैं जो हूं, हूं। मैं कुछ होना ही नहीं चाहता। उसने बिकमिंग का ख्याल छोड़ दिया। उसने कहा, बीइंग ही काफी है। वासना का मतलब है कि मैं जैसा हूं, वैसा नहीं; जो मेरे पास है, वह नहीं;
जो भी उपलब्ध है, वह नहीं; कुछ और चाहिए! छोटा क्लर्क बड़ा क्लर्क होना चाह रहा है, छोटा मास्टर बड़ा मास्टर होना चाह रहा है, छोटा मिनिस्टर बड़ा मिनिस्टर होना चाह रहा है! वह सब, वह वासना का तीर उन्हें झुकाए चला जाता है और वह पूरे चक्कर में डाल देता है।
तो सारे खोजियों की खोज यह है कि एक क्षण के लिए भी वासनाओं के बाहर ठहर जाओ, और वह जो क्षेत्र था, जो चक्कर लगवाता था, उसके आप बाहर हो गए। और एक क्षण को आप बाहर हो गए तो आप हैरान हो जाते हैं यह बात जान कर कि जिसे हम अनंत जन्मों से पाने की आकांक्षा कर रहे थे, वह हमारे पास ही था, वह मिला ही हुआ था, वह हमें उपलब्ध ही था, अपनी तरफ देखने भर की जरूरत थी।
लेकिन अंतर्यात्रा नहीं हो सकती--जैसे अंतरिक्ष-यात्रा नहीं हो सकती,
जब तक कि जमीन की कशिश से न छूट जाएं--ऐसे ही अंतर्यात्रा नहीं हो सकती, जब तक कि हम वासना की कशिश से न छूट जाएं। और वासना की कशिश जमीन के ग्रेविटेशन से ज्यादा मजबूत है। क्योंकि जमीन की जो कशिश है, वह एक जड़ शक्ति है खींचने की; वासना की बड़ी सजग, चेतन शक्ति है खींचने की। और हमें पता ही नहीं चलता। हमें पता नहीं चलता!

आप रास्ते पर चलते हैं, आपको कभी पता चला कि जमीन आपको खींच रही है? आपको कोई पता नहीं चलता। हम उसी में पैदा होते हैं। हमें कभी पता ही नहीं चलता कि जमीन हमें कितने जोर से अपनी तरफ खींच रही है पूरे वक्त। यह तो पता चले तब, जब हम एक क्षण के लिए भी ग्रेविटेशन के बाहर हो जाएं।
अभी अंतरिक्ष में जो यात्री गए उनको पता चला कि यह तो बड़ा मुश्किल मामला है। एक सेकेंड भी कुर्सी पर बिना बेल्ट बांधे नहीं बैठा जा सकता! बेल्ट छूटा कि आदमी उठा, छप्पर से लग गया एकदम। और उनको पहली दफे जाकर पता चला कि वेटलेसनेस क्या बला है! वेट रहा ही नहीं, क्योंकि वेट जैसी कोई चीज ही नहीं है, वजन जैसी कोई चीज ही नहीं है, वह सिर्फ जमीन की कशिश है।
ख्याल हमको है कि हममें वजन है! वह वजन नहीं है, वह सिर्फ जमीन का खिंचाव है। चूंकि चांद पर जमीन की कशिश बहुत कम है, चांद छोटा है, इसलिए कोई भी आदमी किसी भी मकान को ऐसे ही छलांग लगा कर निकल जा सकता है, उसमें कोई कठिनाई नहीं है। चांद पर ये मकान आपके काम नहीं करेंगे, क्योंकि चोर के लिए आपका दरवाजा नहीं खोलना पड़ेगा, बस सिर्फ छलांग लगा कर आपकी छत पर आ जाएगा। क्योंकि वह जो चांद की कशिश है, वह बहुत कम है, आठ गुनी कम है। यानी अगर जो आदमी यहां जमीन पर आठ फीट छलांग लगा सकता है, वह वहां आठ गुनी छलांग लगा सकेगा इससे ज्यादा, क्योंकि उसका वजन कम हो गया।
लेकिन हमें पता ही नहीं है कि पूरे वक्त जमीन हमको खींचे हुए है! क्योंकि हम उसी में पैदा होते हैं, उसी में बड़े होते हैं और उसी में हम निर्धारित हो जाते हैं!
ऐसे ही हमको यह भी पता नहीं है कि वासना हमें चौबीस घंटे खींचे हुए है, क्योंकि हम उसी में पैदा होते हैं, हमें पता ही नहीं चलता! पैदा हुआ बच्चा और वासना की दौड़ शुरू हुई और वासना ने उसे पकड़ना शुरू कियाः उसे यह चाहिए, उसे यह चाहिए; उसे यह बनना है, उसे वह बनना है; दौड़ शुरू हो गई और चक्र जोर से घूमने लगा!
इस चक्र के बाहर जिसे भी छलांग लगानी हो, उसे वासना के बाहर उतर जाना पड़ता है। और वासना के बाहर साक्षी का भाव ले जाता है। जैसे ही कोई व्यक्ति साक्षी हो गया, वह वासना के बाहर चला जाता है।
और हमारी तो कठिनाई यह है कि जीवन में साक्षी होना तो बहुत कठिन, हम नाटक-फिल्म तक में साक्षी नहीं हो सकते! अगर एक दुखांत फिल्म से निकलते हुए लोगों के रूमाल जांच लिए जाएं तो आपको पता चलेगा एक आदमी नहीं निकला है, जो नहीं रोया हो!
वह तो अंधेरा रहता है तो बड़ी सुविधा रहती है। आदमी बगल में देख लेता है, कोई नहीं देख रहा, अपने आंसू पोंछ कर बैठ जाता है। फिल्म पर, पर्दे पर, जहां कुछ भी नहीं है; जहां सिवाय प्रकाश के कम-ज्यादा फेंके गए किरण-जाल के और कुछ भी नहीं है; वहां हम कितने दुखी, सुखी, आनंदित, क्या-क्या नहीं हो जाते!
थ्री डायमेंशनल फिल्म बनी हैं। तो जब पहली-पहली दफा उनका प्रदर्शन हुआ तो बड़ी हैरानी की बात हुई, क्योंकि थ्री डायमेंशनल फिल्म में तो बिल्कुल ऐसा दिखाई पड़ता है कि आदमी पूरा--ये तो सब हमारी जो फिल्में हैं, टू डायमेंशनल हैं; दो आयाम में बनी हैं। लंबाई है, चौड़ाई है; गहराई नहीं है। गहराई फिल्म में आ जाती है तो फिर सच्चे आदमी में और फिल्म के आदमी में कोई फर्क नहीं। पर्दे पर जो दिखाई पड़ रहा है, वह बिल्कुल सच्चा हो गया।
जब पहली दफा फिल्म बनी और लंदन में उसका प्रदर्शन हुआ थ्री डायमेंशनल फिल्म का--तो उसमें एक घोड़ा है, एक घुड़सवार है, जो भागा चला आ रहा है। सारे हाल के लोग एकदम झुक गए कि वह जो घोड़ा है, एकदम निकल न जाए हाल के अंदर से-- क्योंकि वह तो थ्री डायमेंशनल है! एक भाला फेंका उस घुड़सवार ने और सब लोग अपनी खोपड़ी बचा लिए। क्योंकि वह भाला जो है, कहीं खोपड़ी में न लग जाए; क्योंकि वह तो बिल्कुल फिंका। वह थ्री डायमेंशनल होने की वजह से उसका जो एफेक्ट है, उसका जो प्रभाव है, वह तो बिल्कुल ऐसे ही होने वाला है, जैसे असली भाले का होगा। तब पता चला कि आदमी उस स्थल में भी कितना भूल जाता है कि यह पर्दा है! और हम सब रोज ही भूलते हैं! वहां भी हम साक्षी नहीं रह पाते, वहां भी हमें यह पता नहीं चल पाता। बल्कि कई बार जिंदगी से ज्यादा हम वहां खो जाते हैं।

टाल्सटाय ने लिखा है कि मैं बड़ा हैरान हुआ। उसकी मां रोज थिएटर जाती।
और रूस की सर्दी! बर्फ पड़ती, बाहर थिएटर के कोच खड़ा रहता, बग्घी खड़ी रहती; बग्घी पर दरबान खड़ा रहता, क्योंकि उसकी मां कब बाहर आ जाए पता नहीं। तो दरबान को छोड़ा नहीं जा सकता, कोच विदा की नहीं जा सकती। शाही परिवार के लोग हैं। टाल्सटाय ने लिखा है कि मैं यह देख कर हैरान हुआ कि मेरी मां थिएटर में इतना रोती कि उसके रूमाल भीग जाते। बाहर हम आते और अक्सर ऐसा होता कि कोचवान जो बैठा रहता, वह बर्फ की वजह से मर जाता, तो उसे धक्के देकर बाहर फिंकवा दिया जाता, और मां आंसू पोंछती रहती फिल्म के! और उसके सामने वह मर गए आदमी को धक्के देकर हटा दिया जाता, दूसरा आदमी सड़क से पकड़ कर बिठाल लिया जाता और कोच घर चली जाती!
तो टाल्सटाय ने लिखा है कि मैं दंग हुआ, हैरान हुआ यह देख कर कि एक जिंदा आदमी मर गया हमारी कोच पर बैठा हुआ सिर्फ इसलिए कि हम उसको छुट्टी नहीं कर सकते; न हटा सकते हैं उसको, कोच रखनी पड़ेगी! मां किसी भी वक्त बाहर आ सकती है, तो उसी वक्त कोच तैयार चाहिए! तो वह बर्फ की ठंड में मर गया है, उसकी मां के सामने उसकी लाश फिंकवा दी गई है और दूसरा आदमी पकड़ कर कोच घर की तरफ चली गई! और मां पूरे रास्ते रोती रही उस फिल्म के लिए, या उस नाटक के लिए, जहां कोई मर गया था; या जहां कोई प्रेमी बिछुड़ गया था; या जहां कुछ और दुर्घटना घट गई थी।
तो कई बार ऐसा हो जाता है कि बाहर की जिंदगी भी हमें उतना ज्यादा नहीं पकड़ती, जितनी चित्र की कहानी पकड़ ले! क्योंकि बाहर की जिंदगी बहुत अस्तव्यस्त है और चित्र की कहानी बहुत व्यवस्थित है और आपके मन को कितना डुबा सके, उसकी सारी व्यवस्था की गई है। बाहर की जिंदगी में यह सब व्यवस्था नहीं है। वहां सारी व्यवस्था की गई है। आप कहां-कहां, आपके रग-रेशे को छुआ जा सके, कैसे आपको डुबाया जा सके, भुलाया जा सके, उसका सारा इंतजाम किया गया है, वह पूरा वैज्ञानिक है। बाहर की जिंदगी बड़ी अवैज्ञानिक है, वह चल रही है एक ढंग से, उसमें अभी कोई उतनी व्यवस्था नहीं है।
नाटक तक में हम साक्षी नहीं रह पाते! फिल्म तक में साक्षी नहीं रह पाते! और वासना से छूटना हो तो पूरा जीवन फिल्म की तरह, नाटक की तरह हो जाना जरूरी है--पूरा जीवन। और बहुत गहरे में हम खोज करेंगे तो फर्क ज्यादा नहीं है। बहुत गहरे में हम खोज करेंगे तो मेरा यह शरीर उसी तरह विद्युत-कणों से बना है, जिस तरह फिल्म के पर्दे पर बना हुआ शरीर विद्युत-कणों से बना है। बहुत गहरे हम खोज करेंगे तो फिल्म की कहानी या नाटक की कहानी जितना अर्थ रखती है, उससे ज्यादा हमारी जिंदगी की कहानी भी कौन सा अर्थ रखती है?
हां, फर्क इतना ही है कि वह तीन घंटे की मंच है, यह शायद सत्तर साल की मंच है, सौ साल की मंच है। यह नाटक सौ साल चलता है। और यह नाटक कंटिन्यूअस है। इसमें अभिनेता बदलते चले जाते हैं, पात्र बदलते चले जाते हैं; दूसरे आते चले जाते हैं और यह नाटक चलता ही रहता है! इस नाटक में दर्शक और अभिनेता अलग-अलग नहीं हैं; वे ही दर्शक हैं, वे ही अभिनय करने वाले हैं! और यह चलता ही चला जाता है! एक विदा होता है, दूसरा उसकी जगह ले लेता है--कभी मंच खाली नहीं होती। देखने वाले भी रहते हैं, करने वाले भी रहते हैं, क्योंकि वे दोनों एक ही हैं! और इसलिए इस लंबे मंच का हमें ख्याल नहीं आता कि यहां भी एक लंबा नाटक खेला जा रहा है।
यह जो हमें स्मरण आ सके कि एक लंबा नाटक खेला जा रहा है, तो शायद हम भी साक्षी हो सकें। और फिर शायद नाटक के इन पात्रों में क्या मैं हो जाऊं, यह ख्याल छूट जाए। जो हम हैं, शायद हम उसी को चुपचाप निभा कर और विदा हो जाएं। ऐसी चित्त की दशा में, जहां बिकमिंग छूट जाती है, वासना छूट जाती है, तृष्णा छूट जाती है, जहां हम दौड़ से बाहर खड़े हो जाते हैं, और दौड़ सिर्फ नाटक रह जाती है, व्यक्ति वह छलांग लगा लेता है, जहां ग्रेविटेशनल फोर्स डिजायर का, तृष्णा का टूट जाता है; और हम वहां खड़े हो जाते हैं, जहां मुक्त, बंधन के बाहर, कारागृह के बाहर कोई खड़ा होता है।
उस शांति को, उस आनंद को कहना मुश्किल है, इशारे किए जा सकते हैं, फिर
भी कुछ ठोस खबर नहीं दी जा सकती। क्योंकि नाटक में जो खोए हैं, नाटक में जो

भटके हैं, अभिनय ही जिन्हें जीवन हो गया है, उन्हें वास्तविक जीवन की कोई खबर समझ में नहीं आ सकती।
सच में जैसा है, वह बिल्कुल वैसा ही है, जैसा कि नाटक के मंच के पीछे ग्रीन रूम है। यहां जो राम बना था, रावण बना था, लड़ रहे थे, झगड़ रहे थे, पीछे ग्रीन रूम में जाकर एक-दूसरे को चाय पिला रहे हैं और गपशप कर रहे हैं! जिस दिन कोई देख पाता है जिंदगी को, तब हैरान होता है कि असली जिंदगी के नाटक में भी राम और रावण जब पर्दे के पीछे चले जाते हैं तो चाय पीते हैं और गपशप करते हैं। वहां भी झगड़े खतम हो जाते हैं और टूट जाते हैं। लेकिन वह ग्रीन रूम जरा गहरे में छिपा है और पर्दा बहुत लंबा है। और पर्दे के बाहर ही हम पूरे वक्त रहते हैं, इसलिए हमें पता ही नहीं कि पीछे ग्रीन रूम भी है!
इस बात का पता चल जाना ही, कि हम एक बड़े नाटक के हिस्से हैं... कभी आपने सोचा, अपने को एक नाटक के पात्र की तरह कभी देखा? कभी सुबह उठ कर आपने ख्याल किया कि एक नाटक शुरू होता है रोज सुबह? रात थक जाते हैं, सो जाते हैं, एक नाटक का अंत होता है रात; फिर रोज सुबह शुरू हो जाता है! और कभी आपने सोचा कि कई बार आपको ध्यान रखना पड़ता है कि नाटक में भूल-चूक न हो जाए! कई बार आपको ध्यान रखना पड़ता है।
एक फ्रेंच चित्रकार अमरीका जा रहा था। उसके भुलक्कड़ होने की बड़ी कहानियां थीं। उसकी पत्नी और उसकी नौकरानी, उसको दोनों विदा देने एयरपोर्ट आई हैं। उसने जल्दी में नौकरानी को चूम लिया है और पत्नी को कहा, खुश रहना, बच्चों का ख्याल रखना! और वह जाकर... वे दोनों घबड़ा गई हैं, क्योंकि वह, उसकी पत्नी ने कहा, यह क्या करते हैं? आप ख्याल नहीं करते, वह नौकरानी है! उसको आप चूमते हैं और मुझे नौकरानी बनाते हैं? मैं आपकी पत्नी!
उसने कहा, चलो बदले देता हूं! उसने कहा कि चलो, बदले देता हूं! पत्नी को चूम लिया है, नौकरानी को कहा, बच्चों का ख्याल रखना। उसने कहा, कभी-कभी चूक जाता हूं, ख्याल नहीं रख पाता। कभी-कभी चूक जाता हूं, ख्याल नहीं रख पाता। हम ख्याल रख पाते हैं, कुछ लोग चूक जाते हैं। ख्याल क्या रख रहे हैं हम चौबीस घंटे? यह मेरा पिता है, यह मेरी पत्नी है, यह मेरा बेटा है, इसका हमें ख्याल रखना पड़ता है चौबीस घंटे! और न ख्याल रखें तो दूसरे हमें ख्याल दिलाते हैं कि वे तुम्हारे पिता हैं, या खुद आदमी ख्याल दिलाता है कि मैं तुम्हारा पिता हूं! वह नाटक हमें पूरे वक्त याद रखना पड़ता है--कहीं भूल न जाएं, कहीं चूक न हो जाए। और जो इस नाटक को जितना अच्छी तरह से निभा लेता है, उतना कर्तव्यनिष्ठ है!
नहीं कहता हूं कि नाटक न निभाएं, नाटक निभाने के लिए ही है और बड़ा मजेदार भी है, उसमें कुछ ऐसी तकलीफ भी नहीं है। बस एक ही ख्याल न भूल जाए, और सब चाहे भूल जाएं, एक बात न भूल जाए कि सिर्फ नाटक है, और कहीं भीतर हमारे एक बिंदु है, जहां हम सदा बाहर हैं।
स्वामी राम अमरीका गए, उनकी बड़ी अजीब सी आदत थी। अमरीका में लोगों को बड़ी मुश्किल हुई, क्योंकि वे हमेशा थर्ड परसन में ही बोलते थे! यहां तो उनके मित्र उनको पहचानने लगे थे, लेकिन वहां बड़ी कठिनाई हुई। और हम अजीब-अजीब तरह के लोगों के थोड़े आदी भी हैं, सारी दुनिया इतनी आदी नहीं है। क्योंकि यहां महावीर, बुद्ध जैसे अजीब-अजीब लोग हुए हैं, उन्होंने हमें बहुत सी बातों की आदत डलवा दी है जो कि दुनिया में बहुत लोगों को नहीं भी है।
राम जब वहां पहुंचे तो वे लोग बड़ी मुश्किल में पड़ गए, क्योंकि वे कहते
कि राम को इस वक्त बहुत भूख लगी हुई है। तो अब जो आदमी सामने बैठा है, वह चारों तरफ देखता कि कौन राम? क्योंकि अगर मुझे भूख लगी है तो मैं कहूंगा, मुझे भूख लगी है। और राम यह कहते कि राम को बड़ी भूख लगी है! देखते क्या हो, कुछ इंतजाम करो। राम बड़ा परेशान हो रहा है। तो उन लोगों ने कहा कि कौन राम? तो उन्होंने कहा, यह राम! तो उन्होंने कहा, आप ऐसा क्यों नहीं कहते कि मैं? उन्होंने कहा, वैसा मैं कैसे कह सकता हूं? क्योंकि मैं तो खुद ही देख रहा हूं कि राम को तकलीफ हो रही है, तो मैं तो अलग ही कर सकता हूं। इकट्ठा कैसे हो सकता हूं? देख रहा हूं, राम को भूख लगी है, राम को मुश्किल हो रही है! राम को ठंड लगी, मैं देख रहा हूं। कई दफे ऐसा होता है, कई लोग राम को खूब

गाली देते हैं। हम बहुत हंसते हैं, कहते हैं, देखो राम कैसी पड़ी! कैसी मुश्किल में फंसे! आ गया न मजा!
अब यह जो यह जो ख्याल कि कहीं मैं अलग हूं, सारे खेल से कहीं दूर हूं, साक्षी बना देता है। वासना की दौड़ टूट जाती है। खेल फिर भी चलता है, क्योंकि आप अकेले खिलाड़ी नहीं हैं। खेल फिर भी चलता है, क्योंकि खिलाड़ी बहुत हैं। और फिर खेल भी क्या बिगाड़ना है! बड़े-बूढ़े छोटे बच्चों के साथ गुड़िया का खेल भी खेल लेते हैं।
एक मेरे मित्र एक घर में जापान में मेहमान थे। उन्हें कुछ पता न था। सुबह ही घर में बड़ी सज-धज शुरू हो गई और घर के बड़े-बूढ़े भी बड़े उत्तेजित मालूम पड़े! तो उन्होंने पूछा कि बात क्या है? तो उन्होंने कहा कि आज विवाह है एक, आप भी सम्मिलित हों। उन्होंने कहा, जरूर सम्मिलित हो जाऊंगा। सांझ आ गई, घर में बड़ी तैयारी चलती रही। बच्चों से लेकर बूढ़ों तक सब तैयारी में लगे हैं! वे भी बेचारे बहुत तैयार-वैयार हो गए, फिर गए और जब देखा जाकर तो बड़े हैरान हुए। जो विवाह हो रहा था, वह एक गुड़िया और एक गुड्डे का विवाह हो रहा था! पड़ोस के घर की एक लड़की ने गुड़िया की शादी रचाई थी और पड़ोस के दूसरे घर के एक लड़के ने अपने गुड्डे का विवाह रचाया था। उन दोनों का विवाह हो रहा था, लेकिन गांव के बड़े-बूढ़े, प्रतिष्ठित और मेयर भी मौजूद थे! तो मेरे मित्र ने कहा, यह क्या पागलपन है! और इतना साज-संवार चल रही थी और इतने बैंड-बाजे बज रहे थे और ठीक जैसे शादी हो रही थी!
तो मेरे मित्र ने उस घर के बूढ़े को कहा कि यह क्या पागलपन है? आप लोग
इन गुड़ियों के विवाह में सम्मिलित हुए? तो उन्होंने कहा कि इस उम्र में पता चल जाना चाहिए कि सभी विवाह गुड़ियों के हैं। उस बूढ़े ने कहा, इसलिए इसमें भी क्या फर्क है? यानी उसमें और इसमें कोई बहुत फर्क नहीं है। इसमें क्या फर्क है? अब ये बच्चे खेल खेल रहे हैं, हम उनमें सम्मिलित होते हैं। और हम उसी गंभीरता से सम्मिलित होते हैं, जितनी गंभीरता से हम असली विवाह में सम्मिलित होते हैं, ताकि बच्चे समझ लें कि असली विवाह भी गुड़ियों के खेल से ज्यादा नहीं हैं। बूढ़े दोनों में एक ही गंभीरता से सम्मिलित होते हैं।
उस बूढ़े का ख्याल देखते हैं? वह यह कह रहा है कि बच्चों को अभी से पता
चल जाए कि हमारी गंभीरता में कोई फर्क नहीं है--गुड़िया के विवाह में भी हम उसी गंभीरता से आते हैं, जैसे हम असली विवाह में आते हैं! दोनों में भी कोई फर्क नहीं है। हम दोनों का कोई भेद भी नहीं करते हैं। ठीक है, वह एक तल की गुड़ियों का विवाह है, यह दूसरी तल की गुड़ियों का विवाह है। लेकिन विवाह हो रहा है और लोग मजा ले रहे हैं और हम भागीदार हो जाते हैं। हम क्यों नाहक लोगों के इस रस में, इस राग-रंग में बाधा बन जाएं? ठीक है!
बुद्धिमान आदमी जिसको हम वाइज़ मैन कहें, विज़डम जहां आती है, बुद्धिमत्ता जहां आती है, वहां ऐसा नहीं होता कि जगत माया हो जाता है, वहां ऐसा नहीं होता कि जगत नाटक हो जाता है, वहां नाटक और जगत एक ही हो जाता है। ऐसा नहीं होता कि इसकी कोई निंदा आ जाती है कि यह नाटक है, तो गलत है, ऐसा भी कुछ नहीं हो जाता, वहां सब बराबर हो जाता है। वहां सब बराबर हो जाता है, जगत और नाटक एक हो जाते हैं। सिर्फ एक घटना घट जाती है कि साक्षी अलग खड़ा हो जाता है।
जिस दिन साक्षी अलग खड़ा हो जाए जीवन से, उसी दिन दौड़ के बाहर हो जाता है।
तो महावीर की साधना मौलिक रूप से साक्षी की साधना है। सभी साधनाएं मौलिक रूप से साक्षी की साधनाएं हैं। किस भांति हम देखने वाले हो जाएं, भोगने वाले न रह जाएं, करने वाले न रह जाएं--दर्शक, द्रष्टा, साक्षी हो जाएं। किस भांति सिर्फ साक्षी रह जाएं, जरा भी ख्याल न रहे।
एपीटेक्टस हुआ, एक अदभुत व्यक्ति हुआ। बीमारी भी आती, दुख भी आता, चिंता आती, तो भी लोग उसे वैसा ही पाते; जैसे जब वह स्वस्थ था, निश्चिंत था, शांत था, सुख था। लोगों ने हर हालत में उसे देखा, लेकिन वैसा ही पाया, जैसा वह था; उसमें कुछ फर्क नहीं देखा कभी भी। कुछ लोग उसके पास गए और कहा कि एपीटेक्टस, अब तो मौत करीब आती है, तुम बूढ़े हो गए।

तो उसने कहा, जरूर आए, देखेंगे! उसने कहा, जरूर आए, देखेंगे! मौत को देखोगे? उसने कहा, जब सब चीजें देखने की ताकत आ गई तो मौत को देखने की ताकत भी आ गई। वह तो जिंदगी को ही जो नहीं देख पाते, वही मौत को नहीं देख पाते। जो जिंदगी को देख लेता है, वह मौत को भी देख लेता है। एपीटेक्टस ने कहा, देखेंगे! बड़ा मजा आएगा। क्योंकि बड़े दिन हो गए, तब से मौत को नहीं देखा! बहुत समय हो गया, तब से मौत को नहीं देखा!
मौत आई है तो कई लोग इकट्ठे हो गए हैं। एपीटेक्टस मर रहा है लेकिन घर में संगीत बजाया जा रहा है, क्योंकि उसने अपने शिष्यों को, अपने मित्रों को कहा है कि मरते क्षण में मुझे रोकर विदा मत देना! क्योंकि रोकर हम उसको विदा देते हैं, जो जानता नहीं था। मुझे तुम हंस कर विदा देना, क्योंकि मैं जानता हूं। क्योंकि मैं मर ही नहीं रहा हूं। मैंने देखना सीख लिया है, हर स्थिति को देखना सीख लिया है। और जिस स्थिति को मैंने देखना सीखा, मैं उसी के बाहर हो गया उसी वक्त। अगर मैंने दुख को देखा, मैं दुख के बाहर हो गया। अगर मैंने सुख को देखा, मैं सुख के बाहर हो गया। अगर मैंने जीवन को देखा तो मैं जीवन के बाहर हो गया। तो तुमसे मैं कहता हूं कि मैं देखने की कला जानता हूं, मैं मौत को देख लूंगा और मौत के बाहर हो जाऊंगा। तुम इसकी फिकर ही मत करो। मैं जिस चीज को देखा, उसी के बाहर हो गया। तो मेरे जीवन भर का अनुभव यह है कि देखो और बाहर हो जाओ।
मगर हम देख ही नहीं पाते!
इसीलिए इस देश में तत्व-विचार को, फिलासफी को जो नाम दिया है, वह दर्शन
का दिया है।
दर्शन का मतलब हैः देखने की क्षमता।
दर्शन का मतलब फिलासफी नहीं है।
फिलासफी का मतलब हैः विचार का प्रेम। दर्शन का मतलब हैः देखने की क्षमता।
पश्चिम में फिलासफी है जो, उसे हमें दूसरे नाम देना चाहिए, मीमांसा कहना चाहिए, कुछ और कहना चाहिए, तत्व-विचार कहना चाहिए। भारत में जिसे हम दर्शन कहते रहे हैं; महावीर, बुद्ध या पतंजलि या कपिल या कणाद जिसको दर्शन कहे हैं, वह बात फिलासफी नहीं है। वे यह कह रहे हैं कि देखने की कला।
देख लो और बाहर हो जाओ। सोचने का सवाल नहीं है यहां--देखो और बाहर हो जाओ। और जिस चीज को देख लोगे, उसी के बाहर हो जाओगे।
यह कभी सोचा आपने, कि जिस चीज को आप देखने में समर्थ हो जाते हैं, आप तत्काल उसके बाहर हो जाते हैं। किसी भी चीज को देखें, आप बाहर हो जाएंगे। हम यहां इतने लोग बैठे हुए हैं और अगर आप गौर से देखें, आप फौरन बाहर हो जाएंगे। आप इतने लोगों को गौर से देखें और आप पाएंगे भीड़ गई, आप अकेले रह गए।
कभी कितने ही लाख की भीड़ में आप खड़े हों और गौर से चारों तरफ देखें और जाग जाएं--जस्ट सी एंड बी अवेयर--और आप अचानक पाएंगे, भीड़ गई, आप अकेले ही रह गए हैं। भीड़ है पर आप बिल्कुल अकेले रह गए हैं! जिस चीज को आप देखने की क्षमता जुटा लेंगे, उसी के बाहर हो जाएंगे। वह ट्रांसेंडेंस, पार हो जाना है।
तो इस चक्र से, जिस चक्र में सब चीजें एक सी घूमती चली जाती हैं, अगर हम द्रष्टा हो जाएं तो हम तत्काल बाहर हो जाते हैं।
पोम्पेई के शहर में आग लगी, क्योंकि पोम्पेई का ज्वालामुखी फूट गया था, सारा गांव भागा। जिसके पास जो था बचाने को, बचा सकता था, भागा बचा कर। किसी ने धन, किसी ने किताबें, किसी ने बही-खाते, किसी के पास फर्नीचर था, किसी के पास कपड़े थे, मोती थे, जवाहर थे--सब, जो जिसके पास था, लेकर भागा। फिर भी कोई पूरा नहीं बचा सका। क्योंकि जब आग लगती हो तो पूरा बचाना मुश्किल है। और जब भागने का सवाल हो, जिंदगी मुश्किल में पड़ी हो, तो बहुत ज्यादा बचाने की चेष्टा में खुद को अटकाया भी नहीं जा सकता।
लोग भागे, आधी रात थी। एक सिपाही चौरस्ते पर खड़ा है, जिसकी सुबह छह बजे ड्यूटी बदलेगी। सुबह छह बजे दूसरा आदमी आएगा, सुबह छह का घंटा बजेगा और उसकी छुट्टी होगी। और रात दो बजे नगर जल उठा है। सारा नगर भाग रहा है, वह पुलिस वाला अपनी जगह खड़ा है। जो भी उसके करीब से निकलता है, उससे कहता है,

भागो! यह कोई वक्त है खड़े रहने का? वह कहता है, लेकिन अभी छह कहां बजा? अभी सुबह छह बजे का आदमी आएगा, उसकी राह देखता हूं।
भीड़ में जो भी आदमी आए पुलिस वाले के पास, उसने कहा, क्या खड़े हो? लोगों ने धक्का दिया कि भागो यहां से, आग चली आ रही है। उसने कहा, लेकिन अभी छह का घंटा नहीं बजा और अभी वह आदमी नहीं आया! लोगों ने कहा, अब वह कभी नहीं आएगा। वह आदमी कब का भाग चुका होगा। और अब छह का घंटा भी कौन बजाएगा? सारा गांव भाग रहा है। जो आता है, वही उससे कहता है, कैसे खड़े हो? पागल हो!
तो वह सिपाही कहता है, अगर खड़े होना तुम भी सीख जाओ तो भागने की कोई जरूरत नहीं।
उस सिपाही ने कहा, अगर खड़े होना तुम भी सीख जाओ तो भागने की कोई जरूरत नहीं। और मुझ खड़े को भगाने की कोशिश कर रहे हो! आग लगी है, वह बाहर है। और कितनी ही आग लग जाए, अगर मैं खड़ा ही रहूं और देखता ही रहूं तो आग सदा ही बाहर रहेगी। क्योंकि देखने वाला तो मैं पीछे अलग ही छूट जाऊंगा हर बार। कितनी ही आग करीब आ जाए--करीब आ सकती है, शरीर में लग सकती है, कपड़ों में लग सकती है--लेकिन अगर मैं देखता ही गया तो मैं तो छूट ही जाऊंगा बाहर। तुम व्यर्थ भाग रहे हो, क्योंकि जहां तुम भाग रहे हो, आग वहां भी लग सकती है। और कहीं भी न भागोगे तो एक दिन आग लगेगी ही। मैं खड़ा हूं और खड़ा होना तुम सीख जाओ। लेकिन तुम भाग रहे हो तो तुम खड़े कैसे होओगे?
हम सब भाग रहे हैं और खड़े हम नहीं हो पाते। और भागने की जो दौड़ है, वह चक्रीली है, वह चक्कर वाली है, उसमें चक्कर हम लगाते चले जाते हैं। हर बार लगता है कि कहीं पहुंच रहे हैं, कहीं नहीं पहुंच पाते, क्योंकि चक्कर और आगे दिखाई पड़ने लगता है। लेकिन कोई खड़ा भी हो जाता है कभी, ऐसा पटरी से नीचे उतर कर खड़ा हो जाता है और देखने लगता है इस चक्कर को। और तब बहुत हंसी आती है, क्योंकि लोग व्यर्थ पागल की तरह दौड़े चले जा रहे हैं। और जिस जगह को छोड़ कर वे भाग रहे हैं, थोड़ी देर में उसी जगह पर आ जाएंगे, क्योंकि चक्कर गोल है और उसमें वे गोल घूम रहे हैं और कहीं कोई जा नहीं सकता। और सब भाग रहे हैं, एक-दूसरे के पीछे भागे चले जा रहे हैं!
जो व्यक्ति बाहर खड़ा हो जाता है, वह ऐसा ही हो जाता है, जैसे एक बड़ा नाटक चलता हो और कोई आदमी बाहर खड़ा होकर देखने लगा।
जीवन की कला जीवन में खड़े हो जाने की कला ही है। धर्म का विज्ञान दर्शक बन जाने का ही विज्ञान है।
और सारे शास्त्रों का सार और उन सारे व्यक्तियों की वाणी का अर्थ, जो जागे और जीए, जो पहचाने और पार हुए, एक ही शब्द में है--और वह यह है कि खड़े हो जाओ। दौड़ो मत--देखो। डूबो मत--पार खड़े हो जाओ, दूर खड़े हो जाओ। देखो--और डूबो मत।
अगर कोई अनडूबा खड़ा रह जाए एक क्षण को भी, तो जो आप कह रहे हैं कि क्या फिर लौटना नहीं हो जाएगा? नहीं, एक बार कोई खड़ा हो गया तो वह प्वाइंट ऑफ नो रिटर्न है, वहां से लौटने का सवाल ही नहीं है।
मगर हम चूंकि दौड़ रहे हैं, लौटेंगे; बहुत बार लौट चुके हैं! लौटते रहेंगे और दौड़ते ही रहेंगे! और कई बार ऐसा होता है कि थोड़े दौड़ कर हम नहीं उपलब्ध हो पाते तो हम सोचते हैं और तेजी से दौड़ें!
एक छोटी सी कहानी, और मैं अपनी बात पूरी करूं।
एक आदमी को अपनी छाया से डर पैदा हो गया! वह अपनी छाया से भयभीत होने लगा! वह अपनी छाया से बचने के लिए भागा। वह जितनी तेजी से भागा, छाया उसके पीछे भागी। उसने देखा कि छाया बड़ी तेज भाग सकती है! इतनी तेजी से काम नहीं चलेगा, और तेजी से भागना पड़ेगा। उसने अपनी सारी जान लगा दी। जितनी तेजी से वह भागा, छाया उतनी तेजी से भागी, क्योंकि छाया उसकी ही थी जिससे वह भाग रहा था। वह स्वयं से ही भाग रहा था। पहुंच कहां सकता था? छाया से छूट कैसे सकता था? अपने से ही छूटने का उपाय क्या था?
लेकिन गांव-गांव में खबर फैल गई और गांव-गांव में लोग उसके दर्शन करने लगे और फूल फेंकने लगे! उसको तो रुकने की फुरसत कहां थी? क्योंकि रुकता, तो छाया उतनी देर और जोर से जकड़ ले। और रुके और छाया फिर पकड़ ले। तो भागते ही चले जाना था। वह गांव-गांव में भागता रहता। उसकी पूजा होने लगी, उस पर फूल बरसने लगे, उसके चरणों में लाखों लोग झुकने लगे!

और जितने लोग ज्यादा झुकने लगे, जितने फूल गिरने लगे, वह उतनी तेजी से भागने लगा! और गांव-गांव में खबर हो गई कि ऐसा तपस्वी कभी नहीं देखा गया, जो एक क्षण नहीं ठहरता, जो रुकता ही नहीं, जो रात बेहोश होकर गिर पड़ता था जब थक कर तो वही उसकी नींद थी। और जब उसकी आंख खुलती थी, छाया दिखती थी, वह फिर भागना शुरू कर देता था!
आखिर ऐसे आदमी का क्या हल हो सकता था? वह आदमी मरा। वह छाया साथ ही रही
और मरा। जब मरा, तब उसकी लाश की भी छाया बन रही थी!
फिर लोगों ने उसको दफना दिया, एक कब्र बना दी बड़े दरख्तों के नीचे। और
एक फकीर के पास लोग पूछने गए कि हम उसकी कब्र पर क्या लिख दें?
तो वह फकीर आया, उसने कब्र देखी, दरख्तों की छाया थी। छाया में दरख्तों की कब्र की कोई छाया न बन रही थी। तो उस फकीर ने उसकी कब्र पर लिखा कि जो तू जीकर न पा सका, वह तेरी कब्र ने पा लिया है! तेरी कब्र ने पा लिया है! और पा लिया है इसलिए कि तू भागता था और कब्र तेरी खड़ी है। कब्र तेरी खड़ी है छाया में, न भागती न दौड़ती। उसकी छाया खो गई है! और पागल, तू भागता था धूप में और तेजी से, और छाया तेरी पीछा करती थी। अपनी कब्र से तू पाठ सीख ले तो अच्छा। नहीं तो ऐसी तेरी बहुत बार कब्रें बनेंगी और पाठ तू कभी न सीखेगा और भागता ही रहेगा।
खड़ा हो जाना सूत्र है।
ठहर जाना सूत्र है--छाया में ठहर जाना।
हम सब धूप में दौड़ रहे हैं! वासना, तृष्णा की गहरी धूप है और हम सबकी दौड़ है, तो फिर चक्र के बाहर नहीं हुआ जा सकता है।

महावीर: मेरी दृष्टि में उन्नीसवां प्रवचन

महावीरः सत्य अनेकांत

प्रश्नः भगवान महावीर ने इंद्र को स्पष्ट कहा कि मुझे स्वयं कर्मों
से युद्ध करना है, तो भी वह एक देवता को देख-रेख के लिए नियुक्त कर गया! इस घटना में क्या कोई औचित्य है?

इसमें दो बातें समझने योग्य हैं।
एक तो कर्मों से युद्ध, अज्ञान से युद्ध स्वयं ही करना है। महावीर इस बात की जरा भी तैयारी में नहीं थे कि कोई भी उनके संघर्ष में सहयोगी बने। सहयोगी को बिल्कुल ही स्वीकार न करना, बड़े मूल्य की बात है। चाहे स्वयं देवता ही सहयोग के लिए क्यों न कहें, महावीर सहयोग के लिए राजी नहीं हैं।
क्योंकि महावीर की दृष्टि यह है कि इस खोज में कोई संगी-साथी नहीं हो सकता है। और इस खोज में जो संगी-साथी के लिए रुकेगा, ठहरेगा; वह खोज से ही वंचित रह जाएगा। यह नितांत अकेले की खोज है।
और जिसे नितांत अकेले होने का साहस है, वही इस खोज पर जा भी सकता है।
मन तो हमारा यही करता है कि कोई साथ हो, कोई गुरु साथ हो, कोई मित्र साथ हो, कोई जानकार साथ हो, कोई मार्गदर्शक साथ हो, कोई सहयोगी साथ हो; अकेले होने के लिए हमारा मन नहीं करता।
लेकिन जब तक कोई अकेला नहीं हो सकता है, तब तक आत्मिक खोज की दिशा में इंच भर भी आगे नहीं बढ़ा जा सकता।
अकेले होने की सामर्थ्य, दि करेज टु बी अलोन, सबसे कीमती बात है।
हम तो दूसरे को साथ लेना चाहेंगे। महावीर को कोई निमंत्रण देता है आकर कि मुझे साथ ले लो, मैं सहयोगी बन जाऊंगा, तो भी वे सधन्यवाद वह निमंत्रण वापस लौटा देते हैं! कथा यह है कि देव इंद्र खुद कहता है आकर कि मैं साथ दूं, सहयोगी बनूं! तो वे कहते हैं, क्षमा करें, यह खोज ऐसी नहीं है कि कोई इसमें साथी हो सके, यह खोज तो नितांत अकेले ही करने की है।
क्यों? यह अकेले का इतना आग्रह क्यों है?
अकेले के आग्रह में बड़ी गहरी बातें हैं।
पहली बात तो यह है कि जब हम दूसरे का साथ मांगते हैं, तभी हम कमजोर हो जाते हैं। असल में साथ मांगना ही कमजोरी है। वह हमारा कमजोर चित्त ही है, जो कहता है साथ चाहिए। और कमजोर चित्त क्या कर पाएगा? जो पहले से ही साथ मांगने लगा, वह कर क्या पाएगा? तो पहली तो जरूरत यह है कि हम साथ की कमजोरी छोड़ दें।
और पूरी तरह जो अकेला हो जाता है--जिसके चित्त से संग की, साथ की मांग, समाज की, सहयोग की इच्छा मिट जाती है; यह बड़ी अदभुत बात है कि जो इस भांति अकेला हो जाता है, जिसे किसी के संग की कोई इच्छा नहीं है--सारा जगत उसे संग देने को उत्सुक हो जाता है! इस कहानी में जो दूसरा मतलब है, वह यह कि खुद देवता भी उत्सुक हैं उस व्यक्ति को सहारा देने को, जो अकेला खड़ा हो गया! जो साथ मांगता है, उसे तो साथ मिलता नहीं। नाम मात्र को लोग साथी हो जाते हैं, साथ मिलता नहीं। असल में मांग से कोई साथ पा ही नहीं सकता है।
लेकिन जो मांगता ही नहीं साथ, जो मिले हुए साथ को भी इनकार कर देता है, उसके लिए सारे जगत की शुभ शक्तियां आतुर हो जाती हैं साथ देने को। कहानी तो काल्पनिक है, मिथ है, पुराण है, गाथा है, प्रबोध कथा है। वह कहती यह है कि जब कोई व्यक्ति नितांत अकेला खड़ा हो जाता है तो जगत की सारी शुभ शक्तियां उसको साथ देने को आतुर हो जाती हैं!
लेकिन अगर ऐसा व्यक्ति उनका साथ लेने को भी तैयार हो जाए, तो भी भटक जाता है। तो भी भटक जाता है इसलिए कि फिर उसकी यह साथ लेने की बात इस बात की खबर है कि मन के किसी कोने में, किसी अंधेरे कोने में संग और साथ की इच्छा शेष रह गई थी। इसलिए निमंत्रण तो मिला है महावीर को कि हम साथ देते हैं, लेकिन वे कहते हैं, हम साथ लेते नहीं।

तो जब जगत की सारी शुभ शक्तियां भी साथ देने को तत्पर हों, तब भी वैसा आदमी अकेला होने को ही, अकेला ही होने की हिम्मत को कायम रखता है। यह बड़ा टेंपटेशन है, यह बड़ी उत्प्रेरणा है कि अगर भीतर कहीं भी कुछ, कहीं भी छिपा हो कोई भाव साथी का, संगी का, समाज का, तो वह प्रकट हो जाए।
महावीर उसे भी इनकार कर देते हैं! इस भांति वे अकेले खड़े हो जाते हैं।
और यह इतनी बड़ी घटना है मनोजगत में किसी व्यक्ति का पूर्णतया अकेले खड़े हो जाना, जिसके मन के किसी भी पर्त पर किसी तरह के साथ की कोई आकांक्षा नहीं रह गई, यह व्यक्ति एक अर्थ में अदभुत रूप से मुक्त हो गया। क्योंकि बांधती है हमारी साथ की इच्छा। गहरे में बंधन वही है।
समाज को छोड़ कर भागना बहुत आसान है, लेकिन समाज की इच्छा से मुक्त हो जाना बहुत कठिन। आदमी अकेला नहीं होना चाहता। कोई भी कारण खोज कर वह किसी के साथ होना चाहता है। अकेले में बहुत भयभीत होता है कि कोई भी नहीं है, मैं बिल्कुल अकेला हूं। हालांकि सच्चाई यह है कि जब सब हैं, तब भी हम अकेले हैं। तब भी कौन साथ है किसके? और कैसे कोई किसी के साथ हो सकता है? आस-पास हो सकते हैं, निकट हो सकते हैं, साथ कैसे हो सकते हैं?
हमारी यात्राएं अकेली हैं। लेकिन हम एक साथ का भ्रम पैदा कर लेते हैं! पति-पत्नी साथ का एक भ्रम पैदा कर लेते हैं। मित्र-मित्र पैदा कर लेते हैं, गुरु-शिष्य पैदा कर लेते हैं--एक भ्रम कि कोई साथ है, अकेला नहीं हूं। और मजे की बात यह है कि वह दूसरा आदमी भी इसी भ्रम में है कि कोई साथ है, अकेला नहीं हूं! और वे दोनों इस भ्रम को पोस कर बड़े सुख में हैं कि कोई साथ है, कोई डर नहीं! लेकिन साथ कौन किसके है? मैं मरूंगा तो बस मैं मरूंगा। मैं जीऊंगा तो बस मैं जीऊंगा। और आज भी अपने मन की गहराइयों में, वहां मैं अकेला हूं। वहां कौन साथ है मेरे?
तो जब तक मैं साथ मांगता रहूंगा, तब तक मैं अपने मन की गहराइयों में भी नहीं उतर सकता। क्योंकि साथ हो सकता है परिधि पर, केंद्र पर साथ नहीं हो सकता, वहां तो मैं अभी अकेला हो जाऊंगा। साथ हो सकता है परिधि पर, जहां हमारे शरीर छूते हैं बस वहां, उतनी दूर तक हम साथ हो सकते हैं। और जो व्यक्ति साथ के लिए आतुर है, वह परिधि पर ही जीएगा, वह कभी केंद्र पर नहीं सरक सकता। क्योंकि जैसे-जैसे अपने भीतर गया, वैसे-वैसे साथ खोया और गया। अभी हम इतने लोग यहां बैठे हैं, हम सब आंख बंद करके शांत हो जाएं और भीतर जाएं, तो यहां एक-एक आदमी ही रह जाता है, सब अकेले रह जाते हैं। यहां फिर कोई दूसरा साथ नहीं रह जाता। दो व्यक्ति एक साथ ध्यान में थोड़े ही जा सकते हैं। एक साथ बैठ सकते हैं जाने के लिए, जाएंगे तो अकेले-अकेले ही। और जैसे ही भीतर सरके कि वहां कोई भी नहीं है, फिर हम अकेले रह गए।
तो जो व्यक्ति साथ के लिए बहुत आतुर है, वह आदमी परिधि के भीतर नहीं जा सकता। साथ को पूरी तरह कोई इनकार कर दे, निगेट कर दे, अस्वीकार कर दे, तो ही अपने भीतर जा सकता है। क्योंकि तब परिधि पर होने का कोई रस नहीं रह जाता। यह थोड़ी समझने की बात है।
हम अपनी परिधि पर जीते ही इसलिए हैं कि वहां दूसरों के होने की सुविधा है। हम अपने केंद्र पर इसीलिए नहीं होते कि वहां हमारे अकेले होने का उपाय है, वहां कोई दूसरा साथ नहीं हो सकता।
समाज को छोड़ने का जो मतलब है, वह यह नहीं है कि एक आदमी जंगल भाग जाए। क्योंकि हो सकता है जंगल में वह वृक्षों के साथ दोस्ती कर ले, पक्षियों के साथ दोस्ती कर ले, जानवरों के साथ दोस्ती कर ले, पहाड़ों के साथ दोस्ती कर ले। यह सवाल नहीं है कि वह भाग जाए, क्योंकि वहां भी वह संग खोज लेगा, वहां भी वह साथ खोज लेगा।
सवाल गहरे में यह है कि कोई व्यक्ति परिधि से भीतर जाने का उपाय करे
तो उसे दिखाई पड़ेगा कि परिधि के संबंधों की जो आकांक्षा है, वह छोड़ देनी पड़ेगी।
इससे यह सवाल नहीं उठता है कि वह संबंध तोड़ देगा। संबंध रह सकते हैं, लेकिन अब उनकी कोई आकांक्षा उसके भीतर नहीं रह गई है। अब वे परिधि के खेल हैं। और जो लोग परिधि पर जी रहे हैं, वह उनके लिए परिधि पर खड़ा हुआ भी मालूम पड़ेगा, लेकिन अपने तईं वह अकेला हो गया है, वह निपट अकेला हो गया है और अपने भीतर जाना शुरू कर दिया है।

महावीर की जो अंतर्यात्रा है, उसमें चूंकि कोई संगी-साथी नहीं हो सकता, इसलिए वे सब संग को अस्वीकार कर देते हैं। लेकिन जैसे ही कोई सब संग अस्वीकार करता है, जीवन की सारी शक्तियां उसका साथी होना चाहती हैं! जो अकेला है, जो असहाय है, जो असुरक्षित है--जीवन उसके लिए सुरक्षा भी बनता है, सहारा भी बनता है, सहायता भी बनता है!
जीवन के आंतरिक नियम ऐसे हैं कि अगर पूर्णतया कोई हेल्पलेस है, कोई पूर्णतया असहाय है, तो सारा जीवन उसका सहायक बन जाता है। ये जीवन के भीतरी नियम हैं। ये नियम वैसे ही हैं, जैसे कि चुंबक लोहे को खींच लेता है। और हम कभी नहीं पूछते कि क्यों खींच लेता है? हम कहते हैं, यह नियम है कि चुंबक में ऐसी शक्ति है कि वह लोहे को खींच लेता है।
मैं आपसे यह कहना चाहता हूं कि यह भी नियम है कि जो व्यक्ति भीतर से पूर्णतः असहाय खड़ा हो गया, सारे जगत की सहायता उसकी तरफ चुंबक की तरह खिंचने लगती है। क्यों खिंचने लगती है, यह सवाल नहीं है। यह नियम है। नियम का मतलब यह है कि असहाय होते ही कोई व्यक्ति बेसहारे नहीं रह जाता, सब सहारे उसके हो जाते हैं। और जब तक कोई व्यक्ति अपना-अपना सहारा खोज रहा है, तब तक वह गहरे अर्थों में असहाय होता है।
वही कल मैं कहना भी चाहता था। कल की जो चर्चा थी, उसमें यह बात उठी थी
कि सुरक्षा चाहिए, सेफ्टी चाहिए, सिक्योरिटी चाहिए, तो हम ऐसा कुछ करें, जिसमें सुरक्षा रहे, असुरक्षित न हो जाएं। जब कि सच बात यह है कि असुरक्षित, पूर्ण असुरक्षित चित्त को ही परमात्मा की सुरक्षा उपलब्ध होती है। और जो खुद ही अपनी सुरक्षा कर लेता है, उसे परमात्मा की कोई सुरक्षा उपलब्ध नहीं होती, क्योंकि वह परमात्मा के लिए तो मौका ही नहीं दे रहा है, वह तो अपना इंतजाम खुद किए ले रहा है।
मैं एक कहानी कहता रहा हूं कि कृष्ण भोजन को बैठे हैं, और दो-चार कौर लिए हैं और भागे हैं थाली छोड़ कर! रुक्मिणी ने उनसे पूछा, आपको क्या हो गया? जाते कहां हैं? लेकिन उन्होंने सुना नहीं, वे द्वार तक चले गए हैं दौड़ते हुए, जैसे कहीं आग लग गई हो!
रुक्मिणी भी उठी, उनके दो-चार कदम पीछे गई है। फिर वह दरवाजे पर ठिठक गए, वापस लौट आए, थाली पर बैठ कर चुपचाप भोजन करने लगे!
रुक्मिणी ने कहा कि मुझे बड़ी पहेली में डाल दिया! एक तो आप ऐसे भागे कि मैंने पूछा कहां जा रहे हैं, तो उसका उत्तर देने तक की भी आपको सुविधा न थी। और फिर आप ऐसे दरवाजे से लौट आए कि जैसे कहीं भी न जाना था! हुआ क्या है?
तो कृष्ण ने कहा कि मुझे प्रेम करने वाला, मेरा एक प्यारा एक रास्ते
से गुजर रहा है। लोग उस पर पत्थर फेंक रहे हैं, और वह है कि मंजीरे बजाए चला जा रहा है और मेरा ही गीत गाए चला जा रहा है! लोग पत्थर फेंक रहे हैं और उसने उत्तर भी नहीं दिया है उनका कोई, मन में भी उत्तर नहीं दिया है, मन में भी वह सिर्फ देख रहा है कि लोग पत्थर मार रहे हैं, उसके माथे से खून की धारा बह रही है! तो मेरे जाने की जरूरत पड़ गई थी। इतने बेसहारे के लिए अगर मैं न जाऊं तो फिर मेरा अर्थ क्या है?
तो रुक्मिणी ने पूछा, फिर लौट क्यों आए? उन्होंने कहा, लेकिन जब तक मैं दरवाजे पर गया, वह बेसहारा नहीं रह गया था। उसने मंजीरे नीचे फेंक दिए और पत्थर हाथ में उठा लिए। उसने अपना इंतजाम कर लिया, अब मेरी कोई जरूरत नहीं। उसने मेरे लिए मौका नहीं छोड़ा है। वह खाली जगह नहीं छोड़ी है, जहां मेरी जरूरत पड़ जाए।
जब व्यक्ति अपना इंतजाम कर लेता है तो जीवन की शक्तियों के लिए कोई उपाय नहीं रह जाता। और हम सब अपना इंतजाम कर लेते हैं और इसीलिए हम वंचित रह जाते हैं।
संन्यासी का मतलब ही सिर्फ इतना है कि जो अपने लिए इंतजाम नहीं करता
और छोड़ देता है सब इंतजाम।
असुरक्षा में खड़ा हो जाना संन्यास है--टु बी इन इनसिक्योरिटी। सब तरह
की असुरक्षा में, जहां कि वह मानता ही नहीं कि मैं अपने लिए कोई सुरक्षा करूं। बड़ी कठिन बात है। क्योंकि मन को इस बात के लिए राजी करना कि

असुरक्षा में खड़े हो जाओ, मत करो इंतजाम! इंतजाम ही मत करो! छोड़ दो सब इंतजाम!
वह मलूक ने कहा है, उसकी बात बहुत कम समझी गई। कम समझी गई, लेकिन अगर महावीर को कहता तो महावीर समझते उसकी बात। मलूक ने कहा है कि पंछी काम नहीं करते, अजगर चाकरी नहीं करता! वह कहता है कि, मलूक कहता है कि सबको देने वाला राम है। पक्षी कोई काम नहीं करते, अजगर कोई नौकरी करने नहीं जाता! और मलूक कहता है कि सबको देने वाला राम है!
यह समझी नहीं गई बात। लोगों ने समझा कि यह तो बड़े आलस्य की बात सिखाई
जा रही है। यानी इसका तो मतलब यही है कि कोई कुछ न करे। इसका मतलब है कोई कुछ न करे और जैसे पक्षी और अजगर पड़े हैं, ऐसा पड़ा रह जाए; तब तो सब खतम हो जाए।
लेकिन मलूक कुछ और कह रहा है, वह आलस्य की बात नहीं कह रहा है। वह यह कह रहा है कि करो या न करो--भीतर से जैसा पक्षी असुरक्षित है कि कल का कोई पता नहीं, सांझ का कोई भरोसा नहीं; जैसे अजगर असुरक्षित पड़ा है, जिसके पास कोई बैंक बैलेंस नहीं, कोई इंतजाम नहीं, कोई सुरक्षा नहीं--ऐसा भी चित्त है। ऐसा भी चित्त हो सकता है। और जब ऐसा चित्त हो जाता है तो फिर राम ही सब कुछ हो जाता है सहारा, फिर कोई सहारा नहीं खोजना पड़ता। यह कोई आलस्य की शिक्षा नहीं है, यह बहुत गहरे में असुरक्षा के स्वीकार की शिक्षा है।
और महावीर ऐसी असुरक्षा में असंग खड़े हो गए हैं--न कोई संगी, न कोई साथी, क्योंकि वह भी हमारी सुरक्षा का उपाय है।
एक स्त्री अकेले होने में डरती है, उसे पति चाहिए। जगत बड़ा असुरक्षित है, जगत बड़ा भय देने वाला है। एक पति चाहिए, वह उसकी सुरक्षा बन जाएगा। पति भी शायद असुरक्षित है। शायद वह भी नहीं पाता इसमें कि सेफ्टी है, क्योंकि स्त्रियां उसे आकर्षित करेंगी, स्त्रियां उसे खींचेंगी। और तब बड़ी असुरक्षा पैदा हो सकती है। इसलिए एक स्त्री चाहिए, जो उसे दूसरी स्त्रियों के खिंचाव से बचाने के लिए सुरक्षा बन जाए, जो उसे दूसरे खिंचावों से रोक सके और कोई खतरा, कोई उपद्रव जिंदगी में न हो। जिंदगी व्यवस्थित हो जाए, सिस्टमैटिक हो जाए, सारा इंतजाम हो जाए और हम इंतजाम कर लें।
अहंकार इंतजाम जब करता है, तब परमात्मा का इंतजाम छोड़ देना पड़ता है।
और जब अहंकार सारी व्यवस्था छोड़ देता है, तो परमात्मा के हाथ सारी व्यवस्था चली जाती है।
महावीर इसलिए किसी तरह के सहयोग, संग, साथ, सुरक्षा लेने को तैयार नहीं हैं। वे कहते हैं, बिल्कुल अकेले, अकेले ही खोजेंगे। भटकेंगे, उसमें कुछ हर्ज नहीं है, क्योंकि भटकना भी खोज में अनिवार्य हिस्सा है। क्योंकि भटकने में ही वह प्राण, वह चेतना जगती है, जो पहुंचाएगी। तो भटकने का कोई भय नहीं है। इसलिए वे सब तरह के सहारे को इनकार करते हैं।
लेकिन ध्यान रहे, ऐसे व्यक्ति को सब तरह के सहारे स्वयं आकर उपलब्ध होने लगते हैं! जो भागते हैं जिन चीजों के पीछे, उन्हीं को नहीं उपलब्ध कर पाते, और जो ठहर जाते हैं या विपरीत चल पड़ते हैं, उनके पीछे चीजें चलने लगती हैं।
जीवन की गहराइयों में कहीं कोई बहुत शाश्वत नियमों की व्यवस्था भी है। उसमें एक नियम यह भी है कि जिसके पीछे आप भागेंगे, वह आपसे भागता चला जाएगा। और जिसका मोह आप छोड़ देंगे और अपनी राह चल पड़ेंगे, आप अचानक पाएंगे कि वह आपके पीछे चला आया है।
धन को जो छोड़ते हैं, उनके आस-पास धन चला आता है। मान को जो छोड़ते हैं, उनके आस-पास सम्मान की वर्षा होने लगती है। सुरक्षा जो छोड़ देते हैं, उन्हें सुरक्षा उपलब्ध हो जाती है। सब जो छोड़ देते हैं, शायद सब उन्हें उपलब्ध हो जाता है। एक घर जो छोड़ते हैं, शायद सब घर उनके हो जाते हैं। एक प्रेम की फिक्र जो छोड़ देते हैं, शायद सबका प्रेम उनका हो जाता है।
और महावीर इसे बहुत स्पष्ट देख रहे हैं, इसलिए वे कहीं बीच में कोई पड़ाव नहीं डालना चाहते। और इंद्र के निमंत्रण को अस्वीकार करने में उनकी यही भावना प्रकट हुई है। हां, इस संबंध में कोई प्रश्न हो, ख्याल में आता हो तो उठा लेंगे।

प्रश्नः आपने कहा, यह कथा है। यह कथा है या वास्तव में बातचीत हुई है इंद्र और महावीर में?

हां, यह बिल्कुल कथा है। बिल्कुल कथा है।

प्रश्नः तो फिर इसका उल्लेख इस ढंग से क्यों आया है कि महावीर ने इंद्र से बातचीत की?

असल में कठिनाई क्या है, हम कहानियां ही समझ सकते हैं। और कहानियां भी तभी समझ सकते हैं, जब वे ऐतिहासिक हों। इसकी बात कर ही लें।
हम कहानियां ही समझ पाते हैं। और कहानियां भी तब समझ पाते हैं, जब वे हमें ऐतिहासिक हैं, ऐसा कहा जाए। अगर कोई कहानी ऐतिहासिक नहीं, तो हम कहेंगे, बस कहानी है। फिर हम उसे समझ ही नहीं पाएंगे। जब कि सवाल यह नहीं है कि कहानी हुई या नहीं हुई, यह सवाल ही नहीं है। सवाल यह है कि कहानी क्या कहती है? क्या है अर्थ? क्या है प्रयोजन?
प्रयोजन तो खो जाते हैं और सामान्य मन जो है हमारा, वह जड़ता को पकड़ लेता है।
मैं एक शिविर में, एक पहाड़ पर था। एक जगह देखने गए, कोई सन-सेट प्वाइंट था--सूर्यास्त, वहां देखने गए। दो बहनें मेरे साथ थीं। बड़ी धूप थी, सूर्य तो ढल रहा था, लेकिन बड़ी धूप थी। शायद हम आधा घंटा जल्दी पहुंच गए थे। तो एक बेंच पर मुझे उन्होंने बिठा दिया। फिर उन्हें चिंता हुई कि बहुत धूप में मुझे ले आई हैं। तो वे दोनों मेरे सामने आकर खड़ी हो गईं और उन्होंने कहा कि हम आपके लिए छाया बने जाते हैं। हम आपके लिए छतरी बन जाएं, इसमें एतराज तो नहीं है? मैंने कहा, कोई भी एतराज नहीं है। लेकिन मैंने उनसे कहा कि इसको तुम लिख रखना। और तब कभी एक दिन यह बात जो है, ऐतिहासिक तथ्य बन जाएगी कि मैं धूप में था और दो बहनें मेरे लिए छतरी बन गईं। इसको तुम लिख रखना।
और उन्होंने जो कहा था, वह बिल्कुल ही ठीक कहा था, इसमें जरा भी भूल-चूक नहीं है कि वे छतरी बन गईं। लेकिन क्या वे छतरी बन गईं? और इसे लिखा जा सकता है। और इसे लिखने में जरा भी असत्य नहीं बोला जा रहा है। उन्होंने वही काम किया जो छतरी करती। वे मेरे लिए छाया बन गईं। उन्होंने धूप झेली, मैं छाया में बैठा रहा। और इसे लिखने में कोई कठिनाई नहीं है कि दो बहनें मेरे लिए छाया बन गईं, छतरी बन गईं।
लेकिन कभी यह उपद्रव की बात हो सकती है कि क्या दो स्त्रियां छतरी बन
गई थीं? तब हम काव्य नहीं समझ पा रहे हैं, तब हम बड़ी जड़ता से चीजों को पकड़ रहे हैं।
और अब तक काव्य नहीं समझा गया। और हमारा जो भी अदभुत व्यक्ति पैदा होता है, वह इतना अदभुत होता है कि उसके आस-पास काव्य पैदा होगा ही, उसके आस-पास कथाएं पैदा होंगी ही। कथाएं सच हैं ऐसा नहीं, व्यक्ति ऐसा था कि उसके आस-पास कथाएं पैदा होंगी ही। उसके व्यक्तित्व से ढेर काव्य पैदा होंगे। लेकिन बहुत जल्दी काव्य काव्य नहीं रह जाएगा हमारी पकड़ में, हम उसे जोर से पकड़ लेंगे। और जब हम जोर से पकड़ लेंगे, तब कविता तो मर जाएगी और तथ्य निकालने की चेष्टा शुरू हो जाएगी। वहीं जाकर जीवन झूठे हो जाते हैं। महावीर का, बुद्ध का, मोहम्मद का, जीसस का सारा जीवन झूठा हो गया। झूठे होने का कुल कारण इतना है कि जो काव्य था, जो कविता थी, और बड़े प्रेम में कही गई थी... । और बहुत बार ऐसा होता है कि इतनी अनूठी हैं जीवन की घटनाएं कि उन्हें शायद तथ्यों में कहा ही नहीं जा सकता, उनके साथ हमें काव्य जोड़ना ही पड़ता है। और जब हम काव्य जोड़ते हैं, तभी कठिनाई हो जाती है।
जैसे मैंने यह कहा अभी, मोहम्मद के संबंध में कहानी है कि जहां भी मोहम्मद जाते, एक बदली सदा उनके ऊपर छाया किए रहती। अब जिन लोगों ने भी मोहम्मद को जाना है, जो उनके पास जीए होंगे, उनको लगा होगा कि ऐसे आदमी पर सूरज भी धूप करे, यह ठीक नहीं है। ऐसे आदमी पर बदली भी ख्याल रखे, यह बिल्कुल ठीक है। यह बड़ा गहरा भाव है जो कवि ने, देखने वाले ने, प्रेम करने वाले ने फैला दिया है। और बदली पर वह फैला दिया है, जो उसके मन में था। जो

उसके मन में था कि ऐसे आदमी पर बदली भी छाया करे, यह जरूरी है। यानी बदली भी उपेक्षा करे ऐसे आदमी की, यह बरदाश्त के बाहर है। यह कविता तो ठीक थी, लेकिन फिर जब यह तथ्य की तरह पकड़ लेते हैं हम, तो बहुत कठिनाई हो जाती है, तब हम मुश्किल में पड़ जाते हैं।
तो मैं मानता हूं कि सभी महापुरुषों के, सभी उन अद्वितीय व्यक्तियों
के आस-पास हजार तरह के काव्य को जन्म मिलता है। उस काव्य को बाद के लोग इतिहास समझ लेते हैं और तब उन व्यक्तियों का जीवन ही झूठा हो जाता है। और अगर हम सिर्फ तथ्य लिखें, तो तथ्य इतने रूखे मालूम पड़ते हैं, कि महावीर जैसे व्यक्ति के आस-पास तथ्य लिखें कैसे? वे बिल्कुल रूखे मालूम पड़ते हैं, उनमें कोई जान नहीं मालूम पड़ती, उन पर काव्य चढ़ाना ही पड़ता है, उन्हें काव्य देना ही पड़ता है, नहीं तो वे बड़े रूखे-सूखे हो जाते हैं।
जैसे समझें, एक व्यक्ति किसी स्त्री को प्रेम करता हो, तो प्रेम में
वह ऐसी बातें कहता है, जो तथ्य नहीं हैं; लेकिन फिर भी सत्य हैं। और जरूरी नहीं है कि कोई चीज तथ्य न हो तो सत्य न हो, नहीं तो काव्य खतम ही हो जाएगा, फिर काव्य का कोई सत्य ही नहीं रह जाएगा।
और कुछ लोग हैं ऐसे, जैसे प्लेटो। तो वह प्लेटो कहता है कि कवि नितांत झूठे हैं और दुनिया से जब तक कविता नहीं मिटती, तब तक झूठ नहीं मिटेगा! ऐसे लोग हैं, जो कहते हैं कि कविता नितांत झूठी है।
लेकिन उनसे उलटे लोग भी हैं और उनकी पकड़ ज्यादा गहरी है, वे कहते हैं, अगर कविता ही झूठी है तो फिर जीवन में कुछ सच ही नहीं रह जाता, फिर जीवन सब व्यर्थ है।
अब एक युवक एक युवती को प्रेम करता हो तो वह उससे कहता है कि तेरा चेहरा चांद की तरह है। अब यह बात बिल्कुल अतथ्य है, फिक्शन है। इससे झूठी और कोई बात हो सकती है? किसी स्त्री का चेहरा और चांद की तरह कैसे हो सकता है? कहां चांद! अगर आइंस्टीन से जाकर कहो कि हम ऐसा मानते हैं कि एक स्त्री का चेहरा चांद की तरह है, तो वह कहेगा तुम बिल्कुल पागल हो गए हो। चांद का इतना वजन है कि एक स्त्री क्या, सारी स्त्रियां पृथ्वी की इकट्ठी होकर उस वजन को नहीं झेल पाएंगी। तो वह स्त्री का चेहरा कैसे हो सकता है? और चांद पर बड़े खाई-खड्ड हैं। यह कहां का बेहूदा ख्याल तुम्हारे दिमाग में आया कि तुम एक स्त्री को चांद सा बता रहे हो!
लेकिन जिसने कहा, वह फिर भी कहेगा कि नहीं, चेहरा तो चांद ही है। असल में वह कुछ और कह रहा है। वह यह कह रहा है कि चांद को देख कर जैसा लगता है-- चांद से कोई मतलब ही नहीं है--चांद को देख कर मन में जो छाया छूट जाती है, चांद को देख कर आंख बंद कर लो और मन में जो चांदी की धार छूट जाती है, चांद को सोचो और जो शीतलता मन को घेर लेती है, चांद को सोचो और जो प्रकाश और आभा मन को तर कर देती है, किसी का चेहरा देख कर भी वैसा हो सकता है!
चांद से कुछ लेना-देना नहीं है। और अगर किसी के चेहरे को देख कर किसी
को ऐसा हुआ है तो वह हकदार है कि कहे कि उसका चेहरा चांद की भांति है। लेकिन इस कविता को अगर कभी गणित और विज्ञान की कसौटी पर कसने चले गए तो गलती में पड़ जाओगे।
इसलिए मैं इन सारी बातों को रूपक कथाएं कहता हूं, जिनके माध्यम से कुछ बातें कही गई हैं, जो कि शायद और माध्यम से कही ही नहीं जा सकती हैं। जीसस से किसी ने पूछा कि आप कहानियां क्यों कहते हैं? आप सीधा क्यों नहीं कह देते? तो जीसस ने कहा, सीधी बात समझने वाले लोग अभी पैदा कहां हुए हैं, जो सीधी बात समझ जाएं। तो कहानी कहनी पड़ती है। फिर जीसस ने कहा, कहानी कहने में एक और फायदा है, जो नहीं समझ पाते उनका कोई नुकसान नहीं होता है। जो नहीं समझ पाते उनका कोई नुकसान नहीं होता, क्योंकि सिर्फ एक कहानी उन्होंने सुनी है। लेकिन जो समझ पाते हैं, वे कहानी में से वह निकाल लेते हैं, जो निकालना था।
और कभी-कभी सीधे सत्य नुकसान भी पहुंचा सकते हैं, अगर न समझ में आएं तो कठिनाई में डाल सकते हैं। क्योंकि उनको कहानी कह कर आप टाल नहीं सकते, तो वे आपकी जिंदगी पर भारी भी हो सकते हैं। लेकिन कहानी है तो टाल भी देते हैं। लेकिन जो देख सकता है, वह खोज लेता है।

कहानियां सत्यों को कहने का एक ढंग हैं--ऐसे ढंग से कि सत्य रूखा भी न
रह जाए, मृत भी न हो जाए, जीवंत हो जाए। लेकिन अगर नासमझ आदमी के हाथ में कहानियां पड़ जाएं तो उनको सत्य बना ले सकता है और सत्य बना कर सारे व्यक्तित्व को झूठ कर दे सकता है। तो मैं उनको रूपक कथाएं, बोध-कथाएं ही कहता हूं। उनमें बड़ा बोध छिपा है, लेकिन वे ऐतिहासिक तथ्य नहीं हैं।

प्रश्नः महावीर ने किसी दूसरे का सहारा लेने से इनकार कर दिया, सही बात है। लेकिन साथ ही साथ प्रश्न यह उठता है कि जितना महत्वपूर्ण सहारा न लेना है, उतना ही महत्वपूर्ण सहारा न देना भी होना चाहिए। लेकिन उनकी अभिव्यक्ति और उसके बाद फिर श्रावक और श्रमण और यह सारी चीज है--यह दूसरे को सहारा देने वाली बात हुई। तो इस पहलू पर क्यों नहीं विचार किया गया कि मैं जब सहारा नहीं लेता हूं तो मैं सहारा दूसरे को देने वाला भी कौन हूं?

इसे भी समझना चाहिए। यह बड़ा महत्वपूर्ण प्रश्न है। यह बड़ा महत्वपूर्ण प्रश्न है। और साधारणतः ऐसा ही दिखाई पड़ेगा कि अगर कोई व्यक्ति सहारा नहीं ले रहा है तो बिल्कुल ठीक बात यह है कि वह किसी को सहारा भी न दे। ऐसा बिल्कुल ठीक दिखेगा, यह बिल्कुल तर्कयुक्त मालूम पड़ेगा। लेकिन तर्क एकदम भ्रांत है और फैलेसियस है। कहां है फैलेसी, कहां है भ्रांति, वह समझ लेनी चाहिए।
जब हम यह कहते हैं कि सहारा नहीं लेना है तो इसका कुल मतलब इतना है, इसका कुल मतलब इतना है कि भीतर जाने में, भीतर जाने में, जब भी मैं भीतर जाऊं तो मैं किसी को साथ नहीं ले सकता हूं। कोई साथ लेने का उपाय नहीं है भीतर जाने में। भीतर मुझे अकेला ही जाना पड़ेगा। अकेले ही जाना एकमात्र मार्ग है वहां पहुंचने का। इसलिए मैं सब सहारे इनकार करता हूं। लेकिन यह बात अगर मैं किसी को कहने जाऊं--यह बात कि किसी का सहारा मत लेना, क्योंकि सहारा लोगे तो भटक जाओगे, सहारा लोगे तो भीतर न जा सकोगे--यह बात मैं अगर किसी को कहने जाऊं तो एक अर्थ में मैं सहारा दे रहा हूं। एक अर्थ में मैं सहारा दे रहा हूं, और एक अर्थ में मैं सारे सहारे से उसको बचा रहा हूं। ये दोनों बातें हैं।
महावीर जो सहारा दे रहे हैं, वह इसी तरह का है। वह इसी तरह का सहारा है
कि वे लोगों को कह रहे हैं कि मैं अकेला भीतर गया। जब तक मैंने सहारा पकड़ा, तब तक मैं भीतर नहीं गया। तुम भी तो कहीं सहारा नहीं पकड़ रहे हो? अगर सहारा पकड़ रहे हो तो भीतर नहीं जा सकोगे, बेसहारे हो जाओ। इसे अगर हम कहें तो कह सकते हैं, सहारा तो दे रहे हैं वे, लेकिन सहारा वे यह दे रहे हैं कि तुम सहारा मत पकड़ लेना, मेरा भी मत पकड़ लेना!
तो कठिनाई जो है, वह कल भी यह बात उठी थी, कल वह यह कह रहे थे महेश योगी,
कि अगर जो मैं कहता हूं तो फिर मुझे शिक्षक होने का कोई हक नहीं है। वह यह कह रहे थे कि अगर मैं खंडन करता हूं विधि का, तो फिर मुझे शिक्षक होने का कोई हक नहीं है।
वह ठीक कह रहे थे। लेकिन फिर भी मैं कहता हूं कि मुझे हक है। क्योंकि मैं जो खंडन करता हूं विधि का, वह मैं कहना चाहता हूं लोगों से कि किसी विधि से तुम न जा सकोगे। यह जो कठिनाई है न, हमारी जो कठिनाई है, मैं यह कहना चाहता हूं लोगों से कि किसी विधि से, किसी मेथड से तुम न जा सकोगे। इतना मुझे कहना है।
और जो मैं दे रहा हूं, यह कोई मेथड नहीं है। यह जो मैं दे रहा हूं, यह कोई मेथड नहीं है। यह केवल मैं यह खबर कर रहा हूं कि इस मेथड के चक्कर में तुम मत पड़ जाना, नहीं तो भटक जाओगे, मैं भटका हूं। यह खबर मैं तुम्हें दे देता हूं। और यह मैं तुम्हें कोई मेथड नहीं दे रहा हूं, इसलिए एक अर्थ में मैं शिक्षक नहीं हूं, और एक अर्थ में मुझे शिक्षक होने का हक है। हक का मतलब सिर्फ इतना है कि मैं इतनी बात कहने का हकदार हूं कि मैं किसी को इतनी बात कह दूं कि विधि से कोई कभी नहीं पहुंचा है, इसलिए तुम विधि मत पकड़ लेना। और मेरी बात भी मत पकड़ लेना, इसकी भी तुम खोज-बीन करना। क्योंकि इसको भी अगर तुमने पकड़ा तो यह तुम्हारी विधि हो जाएगी। इसलिए मैं कहता हूं कि जिंदगी बहुत जटिल है। वहां सीधे... ।

यूनान में एक तर्क चलता था। यूनान के नीचे सिसली छोटा सा एक द्वीप है।
और सोफिस्ट विचारक हुए, जो बड़े अदभुत थे एक अर्थ में, और एक अर्थ में बिल्कुल फिजूल थे। अदभुत इस अर्थ में थे कि जितना तर्क उन्होंने किया, जगत में किसी ने भी नहीं किया। और फिजूल इस अर्थ में थे कि उन्होंने सिर्फ तर्क किया, और कुछ भी नहीं किया। तो वे प्रत्येक चीज को खंडित कर सकते थे और प्रत्येक चीज का समर्थन कर सकते थे। क्योंकि उनका कहना यह था कि कोई भी चीज ऐसी नहीं है, जो एक पहलू से खंडित न की जा सके और दूसरे पहलू से समर्थित न की जा सके।
इसलिए वे कहते थे, यह सवाल ही नहीं है कि सत्य क्या है, सवाल यह है कि तुम्हारा दिल क्या है, तुम्हारी मर्जी क्या है! तो वे कहते थे, हम पैसे पर भी सत्य को सिद्ध करते हैं। उनको कोई नौकरी पर भी रख ले, तो वह जो कहेगा, वे उसको सही करेंगे। वह जो कहेगा, वे उसको सत्य सिद्ध कर देंगे! और कल उनसे विपरीत आदमी उनको नौकरी पर रख ले तो वे उसकी बात सिद्ध कर देंगे!
उनका कहना यह था कि कोई चीज सिद्ध है नहीं, जिंदगी इतनी जटिल है कि उसमें सब पहलू मौजूद हैं। और तर्क देने वाला सिर्फ उस पहलू को जोर से ऊपर उठा लेता है, जो पहलू वह सिद्ध करना चाहता है; और शेष पहलुओं को पीछे हटा देता है, और कुछ भी नहीं करता।
लेकिन अगर हमें पूरी जिंदगी देखनी हो तो हमें ख्याल रखना पड़ेगा कि यह बात सच है कि किसी का सहारा कभी मत लेना, क्योंकि सहारा भटकाने वाला होगा। और यह बात तो फिर इसके साथ ही जुड़ गई कि मैं आपको सहारा दे रहा हूं यह बात कह कर--अब आप क्या करिएगा? अब क्या करिएगा?
तो वे कहते थे... सिसली नीचे एक छोटा द्वीप है। और सोफिस्ट एक उदाहरण लेते थे कि सिसली से एक आदमी आया और उसने एथेंस में आकर कहा कि सिसली में सब लोग झूठ बोलने वाले हैं! तो एक आदमी ने खड़े होकर उससे पूछा कि तुम कहां के रहने वाले हो? उसने कहा, मैं सिसली का रहने वाला हूं। तो उसने कहा, हम बड़ी मुश्किल में पड़ गए। तुम कहते हो सिसली में सब झूठ बोलने वाले लोग हैं, तुम सिसली के रहने वाले हो, तुम एक झूठ बोलने वाले आदमी हो, अब हम तुम्हारी बात का क्या करें? और तुम कहते हो सिसली में सब झूठ बोलने वाले लोग हैं! अगर हम यह बात मान लें तो सिसली में कम से कम एक आदमी है, जो सच बोलता है, और तुम्हारी बात गलत हो जाती है। अगर हम यह बात न मानें, अगर हम यह बात न मानें कि सिसली में सब झूठ बोलने वाले लोग हैं, अगर हम यह न मानें तो हम तुम्हें झूठ मानते हैं तो भी मुश्किल हो जाती है। तो एक आदमी ने खड़े होकर कहा कि हम करें क्या? अब उस आदमी को शायद कुछ भी नहीं सूझा होगा कि अब वह क्या करे, क्या कहे!
जिंदगी इतनी जटिल है कि ये दोनों बातें सही हो सकती हैं। सिसली में सब झूठ बोलने वाले लोग हो सकते हैं, इस आदमी का वक्तव्य सही हो सकता है। क्योंकि यह हो सकता है कि सब लोग सब समय झूठ न बोलते हों! सब लोग झूठ बोलते हों, अलग-अलग समय झूठ बोलते हों! सब मौकों पर झूठ न बोलते हों! सब लोग झूठ बोलते हों, सब मौकों पर न बोलते हों! इस मौके पर यह आदमी न बोल रहा हो! जिंदगी इतनी जटिल है कि हम उसे जब कभी एक कोने से पकड़ कर आग्रह करने लगते हैं, तभी हमारा आग्रह झूठ हो जाता है।
परसों कोई पूछ रहा था अनेकांत के लिए, तो इस संदर्भ में वह ख्याल में
ले लेना जरूरी है। महावीर कहते हैं इस आग्रह को एकांत, कि जीवन के एक पहलू को पकड़ कर कोई इस तरह दावा करे कि पूरी जिंदगी है! तो वह कहते हैं, यह है एकांत, यह है एकांतवादी। इसने एक कोना देखा है और एक ही कोने को देख कर पूरी जिंदगी के मामले में निष्कर्ष निकाल लिए! इसने सब कोने अभी नहीं देखे। और महावीर कहते हैं, सब कोने अगर यह देख लेगा तो यह दावा छोड़ देगा। क्योंकि इसे ऐसे कोने मिलेंगे, जो ठीक इससे विपरीत हैं और इतने ही सही हैं, जितना यह सही है! और तब यह दावा नहीं करेगा।
महावीर बड़े अदभुत हैं। वे कहते हैं, सत्याग्रह भी गलत है, सत्य का आग्रह भी गलत है, क्योंकि वह भी एकांत है। क्योंकि सत्य के अनेक पहलू हैं। और सत्य इतनी बड़ी बात है कि ठीक एक सत्य से विपरीत सत्य भी सही मिल सकता है, और दोनों एक साथ सही हो सकते हैं!

इसलिए महावीर कहते हैं कि मैं अनेकांतवादी हूं। अनेकांतवादी का मतलब
यह होता है कि जो सब एकांतों का स्वीकार करता है और सब एकांतों का एकांत की तरह अस्वीकार करता है। जो एक आदमी आकर महावीर को कहता है, आत्मा शाश्वत है कि अशाश्वत? तो महावीर कहेंगे, शाश्वत भी, अशाश्वत भी! वह आदमी कहेगा, यह दोनों कैसे हो सकते हैं? तो महावीर कहेंगे, किस कोने से खड़े होकर तुम देखते हो। अगर तुम शरीर को ही आत्मा समझते हो, जैसा कि नास्तिक समझता है, तो अशाश्वत है। अगर तुम आत्मा को शरीर से भिन्न समझते हो, परिवर्तन से भिन्न समझते हो, जैसा कि आत्मवादी समझता है, तो आत्मा शाश्वत है। और मैं कोई एक वक्तव्य न दूंगा, क्योंकि एक वक्तव्य एकांत होगा।
अनेकांत का अर्थ है कि जीवन के सब पहलुओं को एक साथ स्वीकृति।
वह हम सब कहानी जानते हैं कि एक हाथी के पास पांच अंधे खड़े हो गए हैं।
और जिसने पैर छुआ है, उसने कहा कि हाथी खंभे की तरह है, केले के वृक्ष की तरह है! जिसने कान देखे हैं, उसने कहा कि हाथी! तुम पागल हो गए हो! हाथी मैंने देखा है, छुआ है, जाना है, हाथी गेहूं साफ करने वाले सूप की तरह है! और उन सबने अपने-अपने दावे किए हैं। और उनके कोई भी दावे गलत नहीं हैं। और उनके सब दावे गलत हैं। क्योंकि हाथी न तो खंभे की तरह है, न सूप की तरह है! और हाथी में कुछ है जो सूप की तरह है और कुछ है जो खंभे की तरह है!
महावीर कहते हैं कि अगर कोई आदमी दीया जला कर वहां पहुंच जाए और उन पांच अंधों को विवाद करते देखे तो वह आदमी जिसने दीया जला लिया है, वह क्या करे? वह किसका साथ दे? वह किस वादी के साथ हो जाए--सूपवादी के साथ कि खंभवादी के साथ? वह किस इज्म के साथ हो जाए जिसने दीया जला लिया?
वह प्रत्येक अंधे से कहेगा कि तुम ठीक कहते हो, लेकिन पूरा ठीक नहीं कहते हो। और वह प्रत्येक अंधे से कहेगा कि तुम्हारा तुम जिसे विरोधी समझ रहे हो वह भी तुम्हारा विरोधी नहीं है, वह भी हाथी के एक अंग के बाबत बात कर रहा है, तुम भी एक अंग के बाबत बात कर रहे हो। और पूरा हाथी, तुम जो कहते हो उन सबका जोड़ और उससे ज्यादा भी है, सिर्फ जोड़ ही नहीं है। क्योंकि एक अंधे का अनुभव खंभे का और एक अंधे का अनुभव सूप का। अगर इन पांचों अंधों के अनुभव को भी हम जोड़ लें तो भी असली हाथी नहीं बनेगा। वह असली हाथी इन सबके अनुभव से ज्यादा भी है। क्योंकि कुछ तो ऐसा है, जो हाथी ही अनुभव कर सकता है कि वह क्या है, जिसको न अंधा अनुभव कर सकता, और न दीया जलाने वाला अनुभव कर सकता है।
यानी पूरी तरह देख लो हाथी को, तो भी हाथी हाथी कैसा अनुभव करता है, यह
हम कभी अनुभव नहीं कर सकते। वह भी एक अनुभव है। और हो सकता है हाथी का वह अनुभव, अगर हाथी कभी कह सके, तो न तो पांच अंधों से मेल खाए और न दीया जलाने वाले से मेल खाए, हाथी को जो अनुभव होता हो।
तो महावीर यह कहते हैं कि अनुभव के अनंत कोण हैं। और प्रत्येक कोण पर खड़ा हुआ आदमी सही है। बस, भूल यहां हो जाती है कि वह अपने कोण को सर्वग्राही बनाना चाहता है, आल कांप्रिहेंसिव कर लेता है। वह कहता है, यहां जो मैंने जाना, वही सब ठीक है। और हम जल्दी करते हैं इस बात की। इसकी जल्दी होती है हमारे मन में। क्योंकि हमें ऐसा लगता है कि अगर हमने एक ही कोना जान लिया और पूरी तरह से जान लिया तो हम सोचते हैं कि बस जानना पूरा हो गया! अब हमने पूरा जान लिया।
यहां समझ लें, यह बिजली का बल्ब जला हुआ है। इस बिजली के बल्ब को बुझाना हो तो एक आदमी डंडे से बल्ब को चोट कर दे, बल्ब बुझ जाएगा। दूसरा आदमी कैंची लाए और वायर को काट दे, बल्ब बुझ जाएगा। तीसरा आदमी बटन दबा दे, बल्ब बुझ जाएगा। और प्रत्येक आदमी जाकर यह कह सकता है... जिस आदमी ने कैंची से वायर काटा, वह कह सकता है कि बिजली वायर थी, काटी कि गई। जिस आदमी ने बल्ब फोड़ दिया, वह कह सकता है कि बिजली बल्ब थी, फोड़ी कि गई। तीसरा आदमी कहता है, बटन बिजली थी, दबाई कि खतम हुआ। और यह भी हो सकता है कि बटन भी न दबे, बल्ब भी न फूटे, तार भी कायम रहे और बिजली खो जाए। किसी ने यह भी देखा हो, तो वह कहे कि इस सबमें कोई भी बिजली नहीं है। क्योंकि ये सब बरकरार थे और मैंने देखा कि एक दिन बिजली नहीं थी। ये चारों आदमी अपनी-अपनी दृष्टि से बिल्कुल ही ठीक कहते हैं। और प्रत्येक की दृष्टि ऐसी लगती है कि दूसरे की दृष्टि के विरोध में है!

लेकिन महावीर यह कहते हैं कि विरोधी दृष्टि ही नहीं है, अनेकांत का मतलब यह है। महावीर यह कहते हैं कि विरोधी दृष्टि ही नहीं है, सब कांप्लीमेंटरी विजंस हैं। यह बड़ी अदभुत बात है। वे यह कहते हैं कि विरोधी जैसी कोई चीज ही नहीं है, कंट्राडिक्टरी कोई है ही नहीं, सब कांप्लीमेंटरी व्यूज हैं! और सब एक-दूसरे के परिपूरक हैं और सब एक ही सत्य के कोने हैं! यह बात कभी किसी आदमी ने नहीं कही थी। विरोधी दृष्टि ही नहीं है! जो हमें विरोधी दिखाई पड़ रही है, वह सिर्फ हमारी सीमित दृष्टि के कारण विरोधी दिखाई पड़ रही है! अगर हम पूरे को देख सकें तो वह विरोधी नहीं रह जाने वाली है, वह भी एक सहयोगी दृष्टि है, कांप्लीमेंटरी है। पूरे सत्य को वह भी घेरती है।
और फिर भी महावीर कहते हैं कि सब दृष्टियां हम जोड़ लें, तब भी सत्य पूरा नहीं हो जाता; क्योंकि और दृष्टियां हो सकती हैं, जो हमारे ख्याल में ही न हों। तो इसलिए अनेक की संभावना रखते हैं वे, एक का आग्रह नहीं करते। और उस युग में उनके कम से कम प्रभाव पड़ने का कारण यही था।
बुद्ध की एक दृष्टि है, उनकी दृष्टि पक्की है। वे अपनी दृष्टि पर बिल्कुल सख्ती से खड़े हैं। उस दृष्टि में वह इंच मात्र यहां-वहां नहीं हिलते। और जब कोई आदमी सख्ती से एक दृष्टि पर बात करता है तो लोगों को अपील भी होती है, क्योंकि लगता है कि वह आदमी कुछ जानता है, ढीला-ढाला नहीं है दिमाग उसका, हर किसी बात में हां नहीं कह देता, हर किसी बात में न नहीं कह देता; बहुत साफ विजन है।
अब यह बड़े मजे की बात है, साफ विजन जिसको हम कहते हैं, वह एकांतवादी होता है! क्योंकि वह बिल्कुल एक बात पक्की कह देता है कि बिल्कुल सूप जैसा है हाथी, इसमें रत्ती भर गुंजाइश नहीं शक की। और जो इससे अन्यथा कहता है, वह पागल है, नासमझ है, अज्ञानी है, मूढ़ है; वह साफ कह देता है। और वह बिल्कुल पक्का है। उसने हाथी को सूप की तरह जाना है और बात खतम हो गई है।
लेकिन एक आदमी है, जो कहता है, हां, हाथी सूप की तरह भी है; हां, हाथी सूप की तरह नहीं भी है! हां, हाथी खंभे की तरह भी है, हाथी खंभे की तरह नहीं भी है! जो सब दृष्टियों में कहता है कि हां, ऐसा भी है; हां, ऐसा नहीं भी है! मेरे पिता हैं, मुझे निरंतर बचपन में उनसे बहुत परेशानी रही। मेरी समझ के ही बाहर था। मेरे घर में सब तरह के लोग थे। नास्तिक भी थे घर में मौजूद, कोई कम्युनिस्ट भी था, कोई सोशलिस्ट था, कोई कांग्रेसी था। बड़ा परिवार, उसमें सब तरह के लोग थे। घर पूरी की पूरी एक जमात थी, जिसमें सब तरह के लोग थे! और अपनी-अपनी दृष्टि पर बड़े पक्के लोग थे। और जिसे ठीक समझते थे, उसको ठीक ही समझते थे; जिसको गलत समझते थे, उसको गलत ही समझते थे! इसमें कोई समझौते का उपाय भी न था!
और मैं बड़ा हैरान था कि मेरे पिता को अगर जाकर कोई कहे कि ईश्वर नहीं है, तो वह कहेंगे कि ठीक कहते हो! और कोई कहे ईश्वर है, तो वह कहेंगे कि ठीक कहते हो! यह मैंने बहुत बार सुना उनके मुंह से, सब तरह की बात में स्वीकृति देखी, तो मैंने उनसे पूछा कि यह बात क्या है? आप सब बातों को स्वीकार कर लेते हो, यह तो बड़ी मुश्किल बात है! या तो हम सब नासमझ हैं कि हमारी किसी बात पर आपको कोई, इस योग्य ही नहीं है कि आप उसको इनकार करें--सब ठीक कैसे हो सकते हैं?
उन्होंने कहा कि सत्य बहुत बड़ा है। इतना बड़ा है कि वह सबको समा लेता है। उसमें आस्तिक भी समा जाता है और नास्तिक भी। और सत्य अगर इतना छोटा है कि उसमें सिर्फ आस्तिक समाता है, तो ऐसे सत्य की कोई जरूरत नहीं है, बहुत छोटा है, अत्यंत संकीर्ण है। और सत्य संकीर्ण कैसे हो सकता है? सत्य होगा विराट, उसमें सब समा जाएंगे, इसलिए सबके लिए हां कहा जा सकता है।
और कोई चाहे तो सबके लिए न भी कह सकता है! न इसलिए कह सकता है कि कोई भी सत्य पूरे को नहीं घेरेगा और हां इसलिए कह सकता है कि कोई भी सत्य पूरे सत्य का हिस्सा होगा।
और इसलिए जो जानता है, वह बड़ी मुश्किल में पड़ जाएगा कि वह क्या कहे! हां कहे कि न कहे? या दोनों कहे? या चुप रह जाए?
तो महावीर की जो स्थिति है, वह ऐसी लगी है उस समय लोगों को कि जैसे कन्फ्यूज्ड है, महावीर साफ नहीं मालूम पड़ते--हर किसी बात में हां कहते हैं,

हर किसी में न कहते हैं! इसका मतलब है या तो इन्हें पता नहीं, या पता है तो साफ-साफ पता नहीं। या साफ-साफ पता है तो पता नहीं ये लोगों के साथ क्या करना चाहते हैं, किस तरह की बातें कहते हैं! इसलिए महावीर का विचार सार्वलौकिक नहीं बन पाया, सारे जगत में प्रचारित नहीं हो सका।
आज जब जीसस, मोहम्मद, कृष्ण, बुद्ध का या कन्फ्यूशियस का नाम लिया जाता है तो अक्सर ही साथ में महावीर का नाम नहीं लिया जाता है! महावीर का नाम छोड़ दिया जाता है! महावीर कोई अंतर्राष्ट्रीय नाम नहीं है अभी भी! करोड़ों लोग मिल जाएंगे पृथ्वी पर, जो महावीर के नाम को कभी भी नहीं सुने हैं!
यह बड़ी हैरानी की बात है। इतना अदभुत व्यक्ति, इतने कम लोगों तक उसकी खबर पहुंची हो, कुछ गहरा कारण है। और वह गहरा कारण यह कि महावीर वादी नहीं हैं। और जो वादी नहीं है, उसकी बात हमारी समझ में आना बहुत मुश्किल हो जाएगी। वह सुबह कुछ, सांझ कुछ, दोपहर कुछ मालूम पड़ेगा। उसका हर वक्तव्य दूसरे वक्तव्य का विरोधी मालूम पड़ेगा! वह सेल्फ-कंट्राडिक्शन से भरा हुआ मालूम पड़ेगा कि कभी यह आदमी यह कह देता है, कभी यह कह देता है! हम कंसिस्टेंट आदमी चाहते हैं। हम चाहते हैं सुसंगत; जो बात कहे, फिर वही कहता रहे।
टाल्सटाय ने कहीं कहा है कि जब मैं जवान था तो मैं सोचता था कि कंसिस्टेंट विचारक ही असली विचारक है, जो बिल्कुल सुसंगत बात कहता है। एक चीज कहता है तो उसके विरोध में कभी दूसरी बात नहीं कहता। लेकिन अब जब मैं बूढ़ा हो गया हूं तो मैं जानता हूं कि जो सुसंगत है, उसने विचार ही नहीं किया। क्योंकि जिंदगी सारे कंट्राडिक्शंस से भरी है। जो विचार करेगा, उसके विचार में भी कंट्राडिक्शंस आ जाएंगे--आ ही जाएंगे। वह ऐसा सत्य नहीं कह सकता, जो एकांगी, पूर्ण और दावेदार हो। उसके प्रत्येक सत्य की घोषणा में भी झिझक होगी। लेकिन झिझक उसके अज्ञान की सूचक बन जाएगी, जब कि झिझक उसके ज्ञान की सूचक है!
अज्ञानी जितनी तीव्रता से दावा करता है, उतना ज्ञानी के लिए करना बहुत मुश्किल है। असल में अज्ञान सदा दावा करता है, दावा कर सकता है। क्योंकि समझ इतनी कम है, देखा इतना कम है, जाना इतना कम है, पहचाना इतना कम है कि उस कम में वह व्यवस्था बना सकता है। लेकिन जिसने सारा जाना और जिंदगी के सब रूप देखे, उसे व्यवस्था बनानी मुश्किल हो जाती है।
महावीर के अनेकांत का यही अर्थ है कि कोई दृष्टि पूरी नहीं है, कोई दृष्टि विरोधी नहीं है, सब दृष्टियां सहयोगी हैं और सब दृष्टियां किसी बड़े सत्य में समाहित हो जाती हैं। और जो बड़े सत्य को जानता है, जो विराट सत्य को जानता है--न वह किसी के पक्ष में होगा, न वह किसी के विपक्ष में होगा। ऐसा व्यक्ति ही निष्पक्ष हो सकता है।
यह बड़े मजे की बात है कि सिर्फ अनेकांत की जिसकी दृष्टि हो वही निष्पक्ष हो सकता है। और इसलिए मैं कहता हूं कि जैनी अनेकांत की दृष्टि वाले लोग नहीं हैं। क्योंकि वे पक्षधर हैं, उनका पक्ष है, उनकी प्रिज्युडिस है। वे कहते हैं, हम महावीर के पक्ष में हैं!
और महावीर का कोई पक्ष नहीं हो सकता। क्योंकि अनेकांत जिसकी दृष्टि है, उसका पक्ष कहां? सब पक्ष उसके हैं, कोई पक्ष उसका नहीं है। सब पक्षों में अनुस्यूत सत्य उसका है, लेकिन किसी पक्ष का दावा उसका नहीं है। तो महावीर का पक्ष कैसे हो सकता है?
महावीर को दोहरे नुकसान पहुंचे। पहला नुकसान तो यह पहुंचा कि बहुजन
तक उनकी बात नहीं पहुंच सकी। दूसरा नुकसान यह पहुंचा कि जिन तक उनकी बात पहुंची, वे पक्षधर हो गए! तो कुछ मित्र न बन पाए, और जो मित्र बने, वे शत्रु सिद्ध हुए! यह इतनी दुर्घटनापूर्ण बात है कि एक तो मित्र न बन पाए बहुत, क्योंकि बात ऐसी थी कि इतने मित्र खोजने मुश्किल थे। जो मित्र बने, वे शत्रु सिद्ध हुए, क्योंकि वे पक्षधर हो गए! और महावीर पक्षधरता के विपरीत हैं।
अब यह बड़े मजे की बात है कि अनेकांत को भी उनके अनुयायियों ने अनेकांतवाद नाम दे दिया!
अनेकांत का मतलब है, वाद का विरोध।

अनेकांत का मतलब है, वाद नहीं।
क्योंकि वाद हमेशा पक्ष होगा, दृष्टि होगी, नय होगा, एक दावा होगा। वाद का मतलब ही होता है दावा। अनेकांत को वाद जोड़ देना, फिर दावा शुरू हो गया। यानी फिर अनेकांत के पीछे चलने वाले लोगों ने एक नया दावा बनाया, और जब कि वह दावे का विरोध था!
इसी ख्याल में यह भी समझ लेना चाहिए कि महावीर शायद हजार, दो हजार वर्ष बाद पुनः प्रभावी हो सकें, उनका विचार फिर बहुत लोगों के काम में आ सके। क्योंकि जैसे-जैसे दुनिया आगे बढ़ रही है, एक बहुत अदभुत घटना घट रही है। वह यह है कि वादी चित्त नष्ट हो रहा है, वादी चित्त रोज-रोज नष्ट हो रहा है। पक्षधर रोज-रोज बेमानी होता जा रहा है। और जितनी बुद्धिमत्ता और विवेक बढ़ रहा है, उतना आदमी निष्पक्ष होता चला जा रहा है!
संप्रदाय जाएगा, वाद जाएगा--आज नहीं कल, ज्यादा दिन टिकने वाला नहीं है। जिस दिन वाद चला जाएगा, उस दिन हो सकता है कि आज जो नाम बहुत महत्वपूर्ण मालूम पड़ते हैं, वे कम महत्वपूर्ण हो जाएं; और जो नाम आज तक एकदम ही गैर-महत्व का मालूम पड़ा है, वह एकदम पुनः महत्व स्थापित कर सकता है।
लेकिन जैन अगर महावीर के पीछे पड़े रहे तो महावीर के विचार की क्रांति
सब लोगों तक कभी भी नहीं पहुंच सकती है। यानी महावीर के आस-पास जो पक्षधर लोग इकट्ठे हो गए हैं, उन्होंने महावीर की गर्दन घोंट दी है।

प्रश्नः आंतरिक जीवन में असुरक्षा का भाव काफी कठिन है, लेकिन वह कर सकेंगे। व्यावहारिक जीवन में या बाह्य जीवन में वह असुरक्षा का भाव कैसे प्रयोग किया जा सकता है? जैसे कि बिजनेस है या तो सर्विस है, या तो जो बाह्य जीवन है, इसमें असुरक्षा का भाव कैसे प्रयोग कर सकते हैं?

समझा मैं। असल में सवाल बाहर और भीतर का नहीं है, सवाल इस बात का है, इस सत्य को जानने का कि हम असुरक्षित हैं। आपको कोई असुरक्षा का भाव भी नहीं करना है, यह तथ्य है, यह सिर्फ एक फैक्ट है कि हम असुरक्षित हैं। क्या सुरक्षित है--बाहर या भीतर, या कहीं भी?
संबंध सुरक्षित हैं?
नहीं हैं सुरक्षित। कल जो अपना था, वह आज भी अपना होगा, यह पक्का है?
जो आज अपना है, वह कल सुबह अपना होगा, यह पक्का है? कुछ भी पक्का नहीं है। सम्मान सुरक्षित है?
जरा भी सुरक्षित नहीं है। कल जिसके पीछे भीड़ थी, आज वह आदमी जिंदा है
या मर गया, इसका भी कोई पता नहीं चलता। कौन सी चीज सुरक्षित है? धन सुरक्षित है?
असुरक्षा भाव नहीं है, असुरक्षा इस सत्य का बोध है कि जीवन असुरक्षित है। जैसा जीवन है, वह असुरक्षित है। न जन्म का भरोसा, न जवानी का भरोसा, न शरीर का भरोसा, किसी भी चीज का कोई भरोसा नहीं है।
इस सत्य का बोध और इस सत्य के बोध के साथ जीना--भीतर, बाहर, दोनों तलों पर।
मैं यह नहीं कहता हूं कि एक आदमी मकान न बनाए। मैं यह कहता हूं कि मकान बनाते वक्त भी जाने कि असुरक्षा खतम नहीं होती, असुरक्षा अपनी जगह खड़ी है; मकान रहे तो, मकान न रहे तो। ज्यादा से ज्यादा जो फर्क पड़ता है, वह इतना कि जिसके पास मकान नहीं है उसे असुरक्षा प्रतीत होती है और जिसके पास मकान है उसे प्रतीत नहीं होती, लेकिन वह खड़ी अपनी जगह है, उसमें कोई फर्क नहीं पड़ गया।
गरीब भी असुरक्षित है, अमीर भी, लेकिन अमीर को सुरक्षा का भ्रम पैदा होता है! तो यह मैं नहीं कहता हूं, यह मैं नहीं कहता हूं कि परिवार न बसाएं, कि विवाह न करें, कि मित्र न बनाएं, यह मैं नहीं कहता हूं। यह जानते हुए कि सब असुरक्षित है, और तब आपकी क्लिंगिंग नहीं होगी, तब आप जी-जान से नहीं पकड़ लेंगे, क्योंकि आप जानते हैं कि न पकड़ो या पकड़ो, असुरक्षा अपनी जगह खड़ी है! तब धन भी होगा तो आप धनी नहीं हो पाएंगे, क्योंकि धनी होने का कोई कारण नहीं है। तब धन भी होगा, आप दरिद्र बने रहेंगे, क्योंकि आप जानते हैं कि

दरिद्रता अपनी जगह खड़ी है, वह धन से नहीं मिट जाती। तब कितना ही अच्छा स्वास्थ्य होगा तो भी मौत भूल नहीं जाएगी, क्योंकि आप जानेंगे, अच्छे और बुरे स्वास्थ्य का सवाल नहीं है--मौत है, वह खड़ी है। वह बीमार के लिए भी खड़ी है, स्वस्थ के लिए भी खड़ी है।
असुरक्षा का बोध, अवेयरनेस ऑफ इनसिक्योरिटी, असुरक्षा की भावना नहीं। यानी आपको करनी नहीं है, यह करने का सवाल ही नहीं है। मजा तो यह है, हम सुरक्षा की भावना कर-कर के असुरक्षा के बोध को मिटाते हैं और असुरक्षा सत्य है!
अभी भावनगर में था तो एक चित्रकार को मेरे पास लाए। वह कई वर्ष अमरीका
रह कर लौटा और बड़ी प्रतिभा का युवक है। लेकिन परेशान हो गए हैं मां-बाप, पत्नी परेशान है! वे सब मेरे पास आए--पत्नी, मां-बाप। बूढ़े हैं और एक ही लड़का है और उसी पर सब लगा दिया है! और अब बड़ी मुश्किल हो गई है! उन्होंने मुझे आकर कहा कि हम बड़ी मुश्किल में पड़ गए हैं, हमारा लड़का बिल्कुल ही व्यर्थ की असुरक्षाओं से परेशान है, व्यर्थ के भय इसे पीड़ित किए हुए हैं, जो कभी नहीं होना, उसके साथ यह मरा जा रहा है!
क्या हुआ है?
कहा कि यह लड़का अगर बाहर जाए, किसी को अंधा देख ले, तो एकदम घर लौट आता है, बिस्तर पर लेट जाता है, कंपने लगता है। और कहता है, कहीं मैं अंधा तो नहीं हो जाऊंगा! अब बताइए, उसकी मां और पिता मुझे कहने लगे, यह क्या पागलपन है? कोई मर जाए पड़ोस में तो उसकी हमें फिक्र नहीं होती, जितनी हमें इसकी फिक्र होती है कि इसको पता न चल जाए। क्योंकि इसे पता चला कि यह दो-चार दिन के लिए बिल्कुल ठंडा हो जाता है और कहता है कि मैं मर तो नहीं जाऊंगा!
हम समझा-समझा कर परेशान हो गए, उन्होंने मुझे कहा। अमरीका में उसका मनोविश्लेषण भी करवाया, उससे भी कुछ हित नहीं हुआ। हिंदुस्तान के भी कुछ डाक्टरों को दिखा चुके हैं, उससे कुछ फायदा नहीं हुआ। जिसके पास भी ले जाते हैं वह कहता है, ये फिजूल के भय हैं। अभी तुम पूरे जवान हो, कहां मर जाओगे? तुम्हारी आंखें बिल्कुल ठीक हैं। हम परीक्षाएं करवा देते हैं आंख की, आंख तुम्हारी बिल्कुल ठीक है।
वह यह कहता, यह सब तो ठीक है; लेकिन क्या यह पक्का है कि आंख ठीक हो तो अंधा नहीं हो सकता आदमी? क्या यह बिल्कुल पक्का है कि आदमी जवान हो तो नहीं मरता? वह यह कहता, यह हम सब समझ जाते हैं; लेकिन फिर भी भय पकड़ता है। एक आदमी लंगड़ा हो गया है तो मुझे डर लगता है, मैं लंगड़ा तो नहीं हो जाऊंगा? और वह युवक मेरे पास बैठा है, वह इतना डरा हुआ है! मैंने उसके पिता को, उसकी मां को और उसकी पत्नी को कहा कि तुम सरासर झूठी बातें इस युवक को सिखा रहे हो, एकदम झूठी। वह युवक बिल्कुल ठीक कह रहा है।
मैंने इतना कहा कि वह युवक जो सिर झुकाए, रीढ़ नीची किए बैठा था, उसकी रीढ़ ऊंची हो गई, उसने सिर ऊंचा किया! उसने मुझे गौर से देखा। उसने कहा, क्या कहते हैं आप, मैं ठीक कहता हूं? मैंने कहा, तुम ठीक कहते हो। आंख का कोई भरोसा नहीं, जिंदगी का भी कोई भरोसा नहीं। और तुम्हारे मां-बाप सरासर झूठ बोल कर तुममें एक भ्रम पैदा करवाना चाहते हैं। जब कि सच तुम्हीं कहते हो और ये बिल्कुल झूठ कहते हैं। तुम बिल्कुल ठीक कहते हो।
लेकिन मैंने कहा कि तुम इससे भागना क्यों चाहते हो? भाग कहां सकते हो? क्या तुम मरने से बच सकते हो? कोई रास्ता है बचने का? उसने कहा कि कैसे बच सकता हूं? तो फिर मैंने कहा, फिर मृत्यु की स्थिति है, इसको स्वीकार कर लेना चाहिए। जिससे बच ही नहीं सकते, वह है, तो फिर इसमें चिंता की क्या बात है?
तो उसने कहा, नहीं ऐसी चिंता की बात नहीं मालूम होती, लेकिन ये सब मुझे समझाते हैं कि नहीं, यह बात ही झूठ है, तो मैं द्वंद्व में पड़ जाता हूं। उधर तो मुझे लगता है कि मौत होगी और ये लोग कहते हैं कि नहीं, नहीं होगी; तो मैं द्वंद्व में पड़ जाता हूं, मैं परेशानी में... । आप कहते हैं, मौत होगी? मैंने कहा, वह बिल्कुल पक्का है। कल सुबह भी पक्का नहीं कि तुम जिंदा उठोगे। इसलिए आज की रात मिली है, ठीक से सो जाओ, कल सुबह का कोई भरोसा नहीं। मैंने उससे पूछा कि तुम्हें आंख जाने का डर क्या है?

तो उसने कहा, फिर मैं पेंट कैसे कर पाऊंगा? अगर मेरी आंख चली गई तो मैं पेंट कैसे करूंगा?
तो मैंने कहा, जब तक आंख है, तब तक तुम पेंट कर लो, क्योंकि आंख का कोई भरोसा नहीं, कल न भी हो। तो जब तुम्हारी आंख नहीं होगी, तब तुम पेंट नहीं कर सकोगे। अभी तुम्हारी आंख है तो तुम उससे पेंट नहीं कर रहे हो, और आंख नहीं होगी इस चिंता में नष्ट किए दे रहे हो! वह तो है पक्का, आंख खतम हो सकती है। अगर यह पक्का है तो तुम शीघ्रता से पेंट करो, क्योंकि आंख खो जाएगी। और दुनिया में कोई तुम्हें भरोसा नहीं दिलवा सकता। मैं तुम्हें कोई भरोसा नहीं दिलवाता।
मां-बाप लाए थे मेरे पास इसलिए कि मैं उसे आश्वासन दे दूं। वे तो बहुत घबड़ा गए कि आप यह क्या कह रहे हैं? हम तो और मुश्किल में पड़ जाएंगे। मैंने कहा, मुश्किल में आप नहीं पड़ेंगे।
वह युवक दूसरे दिन सुबह मेरे पास आया, उसने कहा, चार साल बाद मैं पहली दफा सो पाया! क्योंकि जब मैंने कहा ऐसा है, और ऐसा हो सकता है, तो अब क्या सवाल है? अब ठीक है, बात खतम हो गई।
संघर्ष कहां है? अगर मौत है और उसकी स्वीकृति है तो संघर्ष कहां है? नहीं, मौत है और स्वीकृति नहीं है! तो हम मौत नहीं है ऐसे भाव पैदा करते रहते हैं! और इस तरह की व्यवस्था करते हैं कि पता ही न चले कि मौत है। मरघट गांव के बाहर बनाते हैं इसीलिए कि ऐसा पता न चले कि मौत जिंदगी का कोई हिस्सा है--जिंदगी के बाहर! गांव में किसी को पता ही नहीं चलता कि कोई मरता है!
मरघट होना चाहिए गांव के ठीक बीच में, जहां से दिन में दस दफे निकलना पड़े आदमी को, और दस दफे खबर आए कि मौत खड़ी है। उसको बनाते हैं गांव के बाहर, ताकि किसी को पता ही न चले कि मौत है! हां, जब कोई मर जाए तो उसको भेज आते हैं, लेकिन जिंदा आदमी को बचाते हैं!
कोई मर जाए, रास्ते से अरथी निकलती हो तो बच्चे को मां भीतर घर के बुला लेती है, दरवाजा बंद कर देती है कि अरथी निकलती है बेटा, भीतर आ जाओ! जब कि मां में थोड़ी समझ हो तो सब बच्चों को बाहर ले आना चाहिए कि बेटा, अरथी निकलती है इसको ठीक से देख लो। कल मैं मरूंगी, परसों तुम मरोगे। यह जीवन का सत्य है, इससे भागने का, बचने का कोई उपाय नहीं है।
असुरक्षा के बोध का यह मतलब है, उसकी हमें पूरी कांशसनेस होनी चाहिए,
वह अचेतन में दबा न रह जाए, चेतन, हमें ख्याल में हो। तो हमारी जिंदगी बिल्कुल दूसरी होगी। कुछ जो-जो चल रहा है, उसमें कुछ फर्क नहीं हो जाएगा, लेकिन आप बिल्कुल बदल जाएंगे।
आप बिल्कुल बदल जाएंगे। आपकी पकड़ बदल जाएगी, आसक्ति बदल जाएगी, राग बदल जाएगा, द्वेष बदल जाएगा। आप आदमी दूसरे हो जाएंगे, क्योंकि क्या राग करना, क्या द्वेष करना! अगर जिंदगी इतनी असुरक्षित है तो यह सब पागलपन का क्या अर्थ है? क्यों ईर्ष्या करनी! क्या आकांक्षा करनी! क्या महत्वाकांक्षा! वह बोध आपकी इन सारी चीजों को मिटा जाएगा। यानी मेरा सारा जोर इस बात पर है कि अगर हम जीवन के तथ्य को देख लें तो हम सत्य की तरफ अपने आप गति कर जाएंगे।
हम क्या किए हैं कि तथ्य तक को झुठला दिया है! सब तरफ से लीप-पोत कर ऐसा
कर दिया है कि वह तथ्य ही नहीं रहा है! और झूठ से सत्य की यात्रा नहीं हो सकती। तथ्य से सत्य तक जाया जा सकता है, लेकिन तथ्य को छिपा कर, बदल कर, तोड़-मरोड़ कर, परवर्ट करके हम कभी सत्य तक नहीं जा सकते।
महावीर भी उसी को संन्यास कहते हैं। लेकिन अब जिसको हम संन्यासी कहते हैं, वह हमारा बिल्कुल उलटा आदमी है। संन्यासी हमारे गृहस्थ से आज ज्यादा सुरक्षित है! गृहस्थ का दिवाला निकल सकता है, संन्यासी का कोई दिवाला निकलने का सवाल नहीं है! गृहस्थ के ऊपर हजार चिंताएं और झंझटें हैं। संन्यासी के ऊपर वे चिंताएं और झंझटें भी नहीं हैं! संन्यासी बिल्कुल सिक्योर्ड है।
अगर आज संन्यासी को हम देखें तो आज उलटी बात दिखाई पड़ती है, वह यह कि संन्यासी ज्यादा सुरक्षित है। न बाजार के भाव से कोई चिंता है, न किसी बात से कोई चिंता है, न कोई दिक्कत है, न कोई कठिनाई है! खाने-पीने का इंतजाम

है, भक्त हैं, समाज है, मंदिर है, स्थानक है--सब इंतजाम है, आश्रम है--सब इंतजाम है! संन्यासी इस समय सबसे ज्यादा सुरक्षित हालत में है!
जब कि संन्यासी का मतलब यह है कि जिसने सुरक्षा का मोह छोड़ दिया, जो इस बोध के प्रति जाग गया कि सब असुरक्षित है। और जो अब सुरक्षा के ख्याल में भी नहीं रहा है। अब जो जीने लगा, असुरक्षा में ही जीने लगा! कल की बात ही नहीं करता, भविष्य का विचार ही नहीं करता, योजना नहीं बनाता, बस क्षण-क्षण जीए चला जाता है। जो होगा होगा, वह उसके लिए राजी है। मौत, तो राजी है। जीवन, तो राजी है। दुख, तो राजी है। सुख, तो राजी है।
ऐसी चित्त दशा का नाम रिननसिएशन या संन्यास है। और ऐसा व्यक्ति अगृही है। अगर बहुत गहरे में खोजने जाएं तो सुरक्षा गृह है, असुरक्षा अगृह है।
सुरक्षा में जीने वाला, सुरक्षा की व्यवस्था करने वाला गृहस्थ है।
सुरक्षा में न जीने वाला, असुरक्षा की स्वीकृति में जीने वाला संन्यस्थ है, अगृही है।
इसमें एक प्रश्न किसी ने पूछा है कि महावीर ने संन्यासियों से यह क्यों कहा कि तुम गृहस्थों की विनय मत करना? उनको तुम नमस्कार मत करना, उनका तुम आदर मत करना, ऐसी बात क्यों महावीर ने कही?
इसे संन्यासी और गृहस्थ के बीच बना लेने से गलती हो जाती है। असल में अगर हम बहुत गौर से देखें तो जो असुरक्षित व्यक्ति है, जो ऐसे जी रहा है जैसे हवा-पानी जीता है। वह जो सुरक्षा के भ्रम में और सपने में और नींद में खोया है... यह ऐसा ही है कि जैसे कोई कहे कि जागे हुए आदमी को, कि तू सोए हुए आदमी को नमस्कार मत करना! यह ऐसा ही है, जैसे कोई कहे जागे हुए आदमी को कि सोए हुए आदमी को नमस्कार मत करना। क्योंकि बिल्कुल बेकार है, आदमी सोया हुआ है। सोए हुए को आदर मत देना, क्योंकि कहीं ऐसा न हो कि आदर उसके सोए हुए होने को और बढ़ाए। तो लगता तो ऐसा है... ।
लेकिन महावीर के पीछे आने वाले साधुओं ने इससे दूसरा ही मतलब निकाला है! उन्होंने इसे बिल्कुल अहंकार की प्रतिष्ठा बना लिया है! यानी वे कुछ ऊंचे हैं, अहंकार में प्रतिष्ठित हैं, सम्मानित हैं, पूज्य हैं, दूसरे को उनकी पूजा करनी है!
लेकिन बड़े मजे की बात है कि महावीर ने यह कहीं नहीं कहा कि साधु गृहस्थ से पूजा ले। संन्यासी गृहस्थ से विनय मांगे, यह भी कहीं नहीं कहा। कहा इतना है कि गृहस्थ को अगृही विनय न दे। क्योंकि गृहस्थ से मतलब ही इतना है कि जो अज्ञान में घिरा हुआ खड़ा है। इसके अज्ञान को तोड़ना है तो इसके अहंकार की तृप्ति को जगह-जगह से गिराना जरूरी है, इसके अहंकार को बढ़ाना उचित नहीं है।
अहंकार न बढ़ जाए गृही का इसलिए महावीर कहते हैं, साधु उसे विनय न करे। लेकिन उन्हें पता नहीं था शायद कि उनका साधु ही इसको अहंकार का पोषण बना लेगा और साधु ही इस अहंकार में जीने लगेगा कि उसे पूजा मिलनी चाहिए और वह अविनीत हो जाएगा! और महावीर को कल्पना भी नहीं है कि साधु अविनीत हो सकता है, इसलिए वे कहते हैं। यानी बड़ी कठिनाई जो है, उनको कल्पना ही नहीं है कि साधु और अविनीत हो सकता है!
साधुता का तो मतलब ही हैः पूर्ण विनम्रता में जीना, चौबीस घंटे। यानी कोई न भी हो पास में तो भी विनम्रता में ही जीना, वह तो साधुता का मतलब ही है। क्योंकि साधुता का मतलब है सरलता। और सरलता अविनम्र कैसे होगी?
तो महावीर को यह कल्पना ही नहीं है कि साधु और अविनम्र हो सकता है। हां, गृहस्थ अविनम्र हो सकता है, क्योंकि अहंकार में जीता है, वही उसका घर है, तो उसे विनय मत देना। लेकिन भूल हो गई मालूम होता है। भूल ऐसी हो गई कि उन्हें पता नहीं कि साधु भी एक प्रकार का गृहस्थ हो सकता है! इसका कोई ख्याल नहीं है उन्हें कि साधु भी बदला हुआ गृहस्थ हो सकता है। सिर्फ कपड़े बदल कर, वेश बदल कर साधु हो सकता है और उसकी चित्त-वृत्तियों की सारी मांग वही हो, जो गृहस्थ की होती है, उससे भी ज्यादा हो। पर इसकी कोई कल्पना ही नहीं थी।
असल बात यह है कि जिसे हम साधु कह रहे हैं, वह साधु ही नहीं है। यह बड़े मजे की बात है कि जिसे हम गृहस्थ कह रहे हैं, वह तो गृहस्थ है; जिसे हम साधु कह रहे हैं, वह साधु नहीं है, वह गृहस्थ का ही दूसरा रूप है! साधु एकदम

पृथ्वी से विलीन हो गया है। साधु खोजना ही मुश्किल है। ऐसे तो लाखों में संख्या है, लेकिन साधु खोजना मुश्किल है।
जापान के एक सम्राट ने एक दफा अपने वजीरों को कहा कि तुम जाकर पता लगाओ, अगर कहीं कोई साधु हो तो मैं उससे मिलना चाहता हूं। तो वजीरों ने कहा, यह बहुत मुश्किल काम है। सम्राट ने कहा, मुश्किल? मैं तो रोज सड़क से भिक्षुओं को, साधुओं को निकलते देखता हूं। उन वजीरों ने कहा कि वह सब ठीक है, वे दिखने वाले साधु हैं। साधु ही चाहिए न? बहुत कठिन है, वर्षों लग सकते हैं। फिर भी हम खोज करते हैं। उन्होंने बहुत खोज-बीन की। आखिर वे खबर लाए कि एक पहाड़ पर एक बूढ़ा है। और जल्दी करिए, क्योंकि वह किसी भी क्षण मर सकता है, अत्यंत बूढ़ा है। आप जल्दी चलिए। हम सब खोज-बीन करके लाए हैं--वह आदमी है कि साधु है।
सम्राट गया तो वह बूढ़ा वृक्ष से दोनों पैर फैलाए हुए आराम से टिका हुआ बैठा था। सम्राट जाकर खड़ा हो गया तो उसने न तो सम्राट को उठ कर नमस्कार किया, जैसा कि सम्राट की अपेक्षा थी! क्योंकि सम्राट आया है तो कम से कम उठ कर नमस्कार करना चाहिए, न उसने पैर सिकोड़े, वह पैर फैलाए ही बैठा रहा! न उसने इसकी कोई फिक्र की कि सम्राट आया है तो कुछ हुआ है! वह जैसा बैठा था, बैठा रहा!
सम्राट ने कहा कि आप जाग तो रहे हैं न? नींद में तो नहीं हैं? मैं सम्राट हूं। खड़े होकर नमस्कार करने का शिष्टाचार नहीं निभाते हैं आप! पैर फैला कर अशिष्ट ग्रामीणों की तरह बैठे हैं! और मैं तो यह सुन कर आया कि मैं एक साधु के पास जा रहा हूं!
वह बूढ़ा खूब खिल-खिला कर हंसने लगा। और उसने कहा कि कौन सम्राट और कौन साधु! ये सब नींद के हिस्से हैं। उस बूढ़े ने कहा, कौन सम्राट, कौन साधु! ये सब नींद के हिस्से हैं। कौन किसको आदर दे, कौन किससे आदर ले? ये सब नींद के हिस्से हैं। अगर साधु के पास आना हो तो सम्राट होना छोड़ कर आओ, क्योंकि सम्राट और साधु का मेल कैसे होगा? बड़ा मुश्किल हो जाएगा। तुम कहीं पहाड़ पर खड़े हो, हम कहीं गड्ढे में विश्राम कर रहे हैं। मेल कहां होगा? मुलाकात कैसे होगी? साधु से मिलना है तो सम्राट होना छोड़ कर आओ। और रही पैर सिकोड़ने-फैलाने की बात। अगर शरीर पर ही नजर है तो यहां तक आने की व्यर्थ कोशिश क्यों की? अगर इस पर ही दृष्टि अटकी है तो नाहक तुम पहाड़ चढ़े, मेहनत हुई, पसीना बह गया। वापस लौट जाओ।
बात सुन कर सम्राट को लगा कि आदमी असाधारण है। उसके पास कुछ दिन रुका, उसके जीवन को देखा, परखा, पहचाना। उसके जीने को समझा। बहुत आनंदित हुआ। जाते वक्त एक बहुमूल्य मखमल का कोट, जिसमें लाखों रुपए के हीरे-जवाहरात जड़े हैं--उसने कहा कि मैं यह कोट आपको भेंट करना चाहता हूं।
तो उस साधु ने कहा कि तुम भेंट करो और मैं न लूं तो तुम दुखी होओगे। लेकिन तुम तो भेंट करके चले जाओगे, ये जंगल के पशु-पक्षी ही यहां मेरे जान-पहचान के हैं, ये सब मुझ पर बहुत हंसेंगे कि बुढ़ापे में भी इसको बचपना सूझा? उस फकीर ने कहा, बुढ़ापे में इसको बचपना... ! ये सब हंसेंगे, बहुत हंसेंगे! ये सब बंदर, ये पक्षी, ये सब बहुत हंसने लगेंगे कि इस बूढ़े को देखो, क्या सूझा! ये बंदर, ये पक्षी, ये कौए, ये तोते, इनको हीरे-जवाहरात का कोई भी मूल्य नहीं है। तुम सोचते हो कि करोड़ों की चीज दिए जा रहे हो, लेकिन वे आंखें कहां, जो इनको करोड़ों का समझती हैं? इधर मैं निपट अकेला हूं। ये पशु-पक्षी मेरे साथी हैं, ये इनको कंकड़-पत्थर समझेंगे और मुझको पागल समझेंगे। तुम यह कोट ले जाओ। किसी दिन कोई बहुमूल्य चीज तुम्हें लगे तो ले आना, जिसको यहां भी समझा जा सके। इस एकांत पहाड़ पर, इन सूने खड़े वृक्षों के नीचे, ये पक्षी, यह आकाश, ये चांद-तारे जिसे बहुमूल्य समझ सकें, किसी दिन हो तो ले आना।
वह सम्राट वापस लौटा। उसने अपने वजीरों से कहा कि मुझे कुछ न कुछ तो भेंट देनी ही चाहिए। लेकिन ऐसी कौन सी बहुमूल्य चीज है जिसे मैं वहां ले जा सकूं?
तो उन वजीरों ने कहा कि वह तो सिर्फ आप ही हो सकते हैं। लेकिन आपको बदल
कर जाना पड़े, साधु होकर जाना पड़े, क्योंकि वह बहुमूल्य चीज सिर्फ साधुता ही हो सकती है जो उस पहाड़ पर, उस एकांत जंगल में भी पहचानी जा सके। आदमी के

मूल्य तो राजधानी की सड़कों पर पहचाने जा सकते हैं, परमात्मा के मूल्य एकांत में भी पहचाने जा सकते हैं। जहां कोई भी पारखी नहीं है, वहां भी वे परखे जा सकते हैं।
साधुता का अर्थ ही खो गया है। तो साधु के नाम से जो बैठे हैं, वे आमतौर
से बदले हुए गृहस्थ हैं, जिन्होंने कपड़े बदल लिए हैं। और वे काम वही कर रहे हैं।
अब एक साधु मुझे मिलते थे। तो मैंने उनसे कहा कि यह मुंह-पट्टी आप बांधे हुए हैं, यह सच में आपको लगती है कि कुछ बांधने जैसी है? उन्होंने कहा कि बिल्कुल नहीं लगती। तो फिर मैंने कहा, इसे छोड़ देनी चाहिए।
तो उन्होंने कहा कि छोड़ अगर इसे दें तो कल खाने-पीने का क्या हो? ठहरने का क्या हो? कौन सम्मान दे? यह मुंह-पट्टी की वजह से सब व्यवस्था है! यह गई, सब व्यवस्था चली जाएगी!
अब यह मुंह-पट्टी भी व्यवस्था का इंतजाम है! यह भी पट्टा है इस बात का
कि तुम हमें सुरक्षा दोगे, हम यह मुंह-पट्टी बांधते हैं, हम यह गेरुआ वस्त्र पहनते हैं।
यह हमें दिखाई नहीं पड़ता कि ये भी सिक्योरिटी मेजर्स हैं। वैसे ही, जैसे हम कुछ इंतजाम कर रहे हैं, ऐसा ही यह भी साधु इंतजाम कर रहा है। यह भी हिम्मत करने को राजी नहीं है कि खड़ा हो जाए, कि कोई दे देगा तो ठीक, नहीं देगा तो नहीं देगा। रोटी मिलेगी तो ठीक, नहीं मिलेगी तो नहीं मिलेगी। इतनी हिम्मत जुटा कर यह खड़ा न हो जाए तो इसे गृहस्थ से भिन्न कहने का कारण क्या है?
सिर्फ एक ही कारण है कि गृहस्थ दूसरों का शोषण करता है, यह गृहस्थों
का शोषण करता है। गृहस्थ जो शोषण करता है, उसकी वजह से पापी हुआ जा रहा है; और यह उन पापियों का जो शोषण करता है, उसकी वजह से पापी नहीं हो रहा है! यह पुण्यात्मा है! यह किसी बंधन में नहीं है! इसने बंधन में न होने का भी इंतजाम किया हुआ है! लेकिन इंतजाम ही बंधन है, यह इसे ख्याल में नहीं है। यह साधु की जो कल्पना महावीर के मन में है, उस कल्पना का साधु इतना विनम्र होगा कि उसे विनीत होने की जरूरत ही नहीं है। विनीत होना पड़ता है सिर्फ अहंकारियों को। वह इतना सरल होगा कि कौन साधु है, कौन गृहस्थ है-- इसकी पहचान मुश्किल होगी।
लेकिन जो उन्होंने कहा है, वह सिर्फ यह कहा है कि मूर्च्छित व्यक्ति
को जाग्रत व्यक्ति सम्मान न दे।
लेकिन मजा यह है कि बिना इसकी फिक्र किए कि हम जाग्रत हैं या नहीं, सम्मान न दिया जाए तो सब गड़बड़ हो जाता है। उसमें आधी शर्त ख्याल में रखी गई, कि जाग्रत व्यक्ति मूर्च्छित को सम्मान न दे। दूसरा मूर्च्छित है, यह पक्का है, लेकिन हम जाग्रत हैं या नहीं, यह अगर पक्का नहीं है तो शर्त कहां पूरी हो रही है! और दूसरा मूर्च्छित है, यह पता भी हमें तभी चल सकता है, जब हम जाग्रत हों। पता ही नहीं चल सकता कि आदमी सोया हुआ है। यहां दस आदमी कमरे में सोए हुए हैं, सिर्फ जागे हुए आदमी को पता चल सकता है कि बाकी लोग सोए हुए हैं। सोए हुओं को पता नहीं चल सकता कि कौन सोया हुआ है!
और जाग्रत व्यक्ति को कैसी विनम्रता, कैसा अविनय! वह सवाल ही नहीं है,
वह प्रश्न ही नहीं है। पर ध्यान उनका यही है कि मूर्च्छित को सम्मान कम हो; अमूर्च्छित को सम्मान हो, ताकि समाज अमूर्च्छा की तरफ बढ़े और व्यक्ति अमूर्च्छित दिशा की तरफ अग्रसर हो।
साधु के लिए सम्मान के लिए बड़ा ध्यान उन्होंने किया है। और सिर्फ इसलिए कि साधु वह है, जो सम्मान नहीं मांगता। जो सम्मान नहीं मांगता, जो सम्मान की आकांक्षा नहीं करता। जो समाज ऐसे व्यक्तियों को सम्मान देता है, वह समाज धीरे-धीरे निरहंकारिता की तरफ बढ़ने का कदम उठाता है।

महावीर: मेरी दृष्टि में बीसवां प्रवचन

महावीरः परम-स्वातंष्य की उदघोषणा

प्रश्नः कस्तूर भाई ने पूछा है कि महावीर प्राकृत भाषा में क्यों बोले, संस्कृत में क्यों नहीं?

यह प्रश्न सच में गहरा है। संस्कृत कभी भी लोक-भाषा नहीं थी, सदा से पंडित की भाषा है, दार्शनिक की, विचारक की। प्राकृत लोक-भाषा थी--साधारणजन की, अशिक्षित की, अपढ़ की, ग्रामीण की। शब्द भी बड़े अदभुत हैं।
प्राकृत का मतलब हैः नेचुरल, स्वाभाविक।
संस्कृत का मतलब हैः रिफाइंड, परिष्कृत।
प्राकृत से ही जो परिष्कृत रूप हुए थे, वे संस्कृत बने। प्राकृत मौलिक, मूल भाषा है। संस्कृत उसका परिष्कार है।
इसलिए संस्कृत शब्द शुरू हुआ उस भाषा के लिए, जो संस्कारित हो चुकी।
साधारणजन के असंस्कारों से जिसे छुड़ा लिया गया। संस्कृत धीरे-धीरे इतनी परिष्कृत होती चली गई कि वह अत्यंत थोड़े से लोगों की भाषा रह गई।
लेकिन पंडित-पुरोहित के यह हित में है कि जीवन का जो भी मूल्यवान है,
वह सब ऐसी भाषा में हो, जिसे साधारणजन न समझता हो। साधारणजन जिस भाषा को समझता हो, उस भाषा में अगर धर्म का सब कुछ होगा तो पंडित-पुरोहित और गुरु बहुत गहरे अर्थों में अनावश्यक हो जाएंगे। उनकी आवश्यकता मूलतः शास्त्र का अर्थ करने में है--शास्त्र क्या कहता है इसका अर्थ! साधारणजन की भाषा में ही अगर सारी बातें होंगी तो पंडित का क्या प्रयोजन? वह किस बात का अर्थ करे?
पुराने जमाने में विवाद को हम कहते थे--शास्त्रार्थ!
शास्त्रार्थ का मतलब हैः शास्त्र का अर्थ!
दो पंडित लड़ते हैं--विवाद यह नहीं है कि सत्य क्या है, विवाद यह है कि शास्त्र का अर्थ क्या है! पुराना सारा विवाद सत्य के लिए नहीं है, शास्त्र के अर्थ के लिए है! व्याख्या क्या है शास्त्र की! और इतनी दुरूह, इतनी परिष्कृत शब्दावली विकसित की गई थी कि साधारणजन की तो हैसियत के बाहर है कि वह क, ख, ग भी समझ ले! और जिस बात को साधारणजन कम से कम समझ पाए, उस बात को जो समझता हो, वह अनिवार्यरूपेण जनता का नेता और गुरु हो सकता है।
इसलिए इस देश में दो परंपराएं चल रही थीं। एक परंपरा थी जो संस्कृत में ही लिखती और सोचती थी। वह बहुत थोड़े से लोगों की, एक प्रतिशत लोगों का भी उसमें हाथ न था; बाकी सब दर्शक थे। ज्ञान का जो गंभीर आंदोलन चलता था, वह बहुत अल्प, थोड़े से इंटेलेक्चुअल्स, थोड़े से अभिजातवर्गीय लोगों का था। जनता को तो जो जूठा उससे मिल जाता था, वही उसके हाथ पड़ता था। जनता अनिवार्यरूप से अज्ञान में रहने को बाध्य थी।
महावीर और बुद्ध दोनों ने जन-भाषाओं का उपयोग किया, जो लोग बोलते थे, उसी भाषा में वे बोले। और शायद यह भी एक कारण है कि हिंदू-ग्रंथों में महावीर के नाम का कोई उल्लेख नहीं हो सका। न उल्लेख होने का कारण है-- क्योंकि संस्कृत में न उन्होंने कोई शास्त्रार्थ किए, संस्कृत में न उन्होंने कोई दर्शन विकसित किया, संस्कृत में न उनके ऊपर उनके समय में कोई शास्त्र निर्मित हुआ! तो संस्कृत को जानने वाले जो लोग थे--जैसे आज भी यह हो सकता है, आज भी हिंदुस्तान में अंग्रेजी दो प्रतिशत लोगों की अभिजात भाषा है--यह हो सकता है कि मैं हिंदी में बोलता ही चला जाऊं तो दो प्रतिशत लोगों को यह पता ही न चले कि मैं भी कुछ बोल रहा हूं। वे अंग्रेजी में पढ़ने और सुनने के आदी हैं। और तब यह भी हो सकता है कि एक बिल्कुल साधारणजन अंग्रेजी में बोलता हो, तो वह दो प्रतिशत लोगों के लिए विचारणीय बन जाए। महावीर चूंकि अत्यंत जन-भाषा में बोले, इसलिए पंडितों का जो वर्ग था, स्कालर्स की जो दुनिया थी, उसने उनको बाहर ही समझा। वे ग्राम्य ही थे, उनको उसने भीतर नहीं लिया। इसलिए किसी ग्रंथ में भी--हिंदू-ग्रंथ में--महावीर का कोई उल्लेख नहीं है। यह बड़े आश्चर्य की बात है। महावीर जैसी प्रतिभा का

व्यक्ति पैदा हो और देश की सबसे बड़ी परंपरा, मूल-धारा की परंपरा में, उसके शास्त्रों में, उस समय के लिपिबद्ध ग्रंथों में, उसका कोई नाम उल्लेख भी न हो! विरोध में भी नहीं! अगर कोई हिंदू-ग्रंथों को पढ़े तो शक होगा कि महावीर जैसा व्यक्ति कभी हुआ भी या नहीं हुआ? अकल्पनीय मालूम पड़ता है कि ऐसे व्यक्ति का नाम उल्लेख--विस्तार तो बात दूसरी है--नाम उल्लेख भी नहीं है! और मैं उसके बुनियादी कारणों में एक कारण मानता हूं कि महावीर उस भाषा में बोल रहे हैं, जो जनता की है। पंडितों से शायद उनका बहुत कम संपर्क बन पाया। हो सकता है हजारों पंडित अपरिचित ही रहे हों कि यह आदमी क्या बोलता है! क्योंकि पंडितों का एक अपना बुर्जुआपन, एक अभिजात भाव है, वे साधारणजन नहीं हैं! न वे साधारणजन की भाषा में बोलते, न सोचते। वे असाधारणजन हैं! वे किसी चूजन-फ्यू, चुने हुए लोग हैं, उन चुने हुए लोगों की दुनिया का सब कुछ न्यारा है! साधारणजन से उसका कुछ लेना-देना नहीं! साधारणजन तो भवन के बाहर हैं, मंदिर के बाहर हैं! कभी-कभी दया करके, कृपा करके साधारणजन को भी वे कुछ बता देते हैं, लेकिन गहरी और गंभीर चर्चा तो वहां मंदिर के भीतर चल रही है, जहां अपढ़ को, साधारण को प्रवेश निषिद्ध है। महावीर और बुद्ध की बड़ी से बड़ी क्रांतियों में एक क्रांति यह भी है कि उन्होंने धर्म को ठेठ बाजार में लाकर खड़ा कर दिया। ठेठ गांव के बीच में! वह किसी भवन के भीतर बंद चुने हुए लोगों की बात न रही! सबकी, जो सुन सकता है, जो समझ सकता है, उसकी बात हो गई। और इसीलिए उन्होंने संस्कृत का उपयोग नहीं किया।
और भी कारण हैं।
असल में प्रत्येक भाषा, जो किसी परंपरा से संबद्ध हो जाती है, उसके अपने एसोसिएशन हो जाते हैं। उसका प्रत्येक शब्द एक निहित अर्थ ले लेता है। और उसका किसी भी शब्द का प्रयोग खतरे से खाली नहीं है, क्योंकि उस शब्द का प्रयोग करते ही उस शब्द के साथ जुड़ी हुई परंपरा का सारा भाव पीछे खड़ा हो जाता है। इस अर्थ में जनता की जो सीधी-सादी भाषा है, वह अदभुत है। वह काम करने की, व्यवहार करने की, जीवन की भाषा है। उसमें बहुत अनगढ़ शब्द हैं, जिनको नए अर्थ दिए जा सकते हैं।
और महावीर को जरूरी था कि वे जैसा सोच रहे थे, वैसे अर्थ के लिए नई शब्दावली हो। कठिन था उनको कि संस्कृत से वे शब्दावली को उपयोग में ला सकें, क्योंकि संस्कृत सैकड़ों वर्षों से, हजारों वर्षों से परंपराबद्ध विचार की एक विशेष दिशा में काम कर रही थी। उसके प्रत्येक शब्द का अर्थ हो गया था। उसमें ईश्वर का एक अर्थ था। वह अर्थ निश्चित हो गया था। ईश्वर शब्द का प्रयोग करना खतरे से खाली न था, क्योंकि वह अर्थ उसके पीछे खड़ा हो जाता था। तो उचित यह था कि ठीक अनगढ़ जनता की भाषा को सीधा उठा लिया जाए। उसे नए अर्थ, नए तराश, नए कोने उसको दिए जा सकते हैं।
तो वह सीधी जनता की भाषा उठा ली और उस जनता की भाषा में अदभुत चमत्कारपूर्ण व्यवस्था दी। यह और भी कारणों से उपयोगी है। यह यह भी बताता है कि महावीर का मन जिसको शास्त्रीय कहते हैं, एकेडेमिक कहते हैं, वह नहीं था। कुछ लोग होते हैं, जिनका मन शास्त्रीय होता है। जो सोचते हैं तो शास्त्र में! समझते हैं तो शास्त्र में! जीते हैं तो शास्त्र में। शास्त्र के बाहर उन्हें कोई जीवन होता ही नहीं! अगर उनकी बातचीत सुनने जाएंगे तो ऐसा पता चलेगा कि जिंदगी यानी शास्त्र! शास्त्र के बाहर कहीं कुछ है ही नहीं! और शास्त्र बड़ी संकीर्ण चीज है। जिंदगी बड़ी विराट चीज है। उनके प्रश्न भी उठते हैं तो जिंदगी से नहीं आते, वे किताब से आते हैं! वे अगर कुछ पूछेंगे भी तो वे इसलिए पूछते हैं कि उन्होंने जो कुछ किताबें पढ़ी हैं! उनकी सीधी जिंदगी से कोई प्रश्न नहीं उठते!
और इस लिहाज से, बड़े हैरानी की बात है यह कि कभी ग्रामीण से ग्रामीण व्यक्ति भी जीवन से संबंधित प्रश्नों की बात उठा देता है, जब कि पंडित से वैसी आशा करनी असंभव है। पंडित प्रश्न भी उधार ही पूछता है! यानी प्रश्न भी उसका अपना नहीं होता, उत्तर तो बहुत दूर की बात है! वह प्रश्न भी उसने किताब में पढ़ा होता है! और जब वह प्रश्न पूछता है, तब उसके पास उत्तर तैयार होता है। यानी वह आपसे कोई बड़े प्रश्न से उत्तर की आकांक्षा नहीं कर रहा

है, वह शायद आपका परीक्षण ही कर रहा है कि आपको भी यह उत्तर पता है या नहीं पता है!
उत्तर भी उसके पास है, प्रश्न भी उसके पास है! प्रश्न से भी पहले वह उत्तर को पकड़ कर बैठा हुआ है! और अब वह जो प्रश्न उठा रहा है, वह आथेंटिक नहीं है, प्रामाणिक नहीं है, उसके प्राणों से नहीं आता है! तो शास्त्रीय लोग भी हैं, जिनकी सारी जिंदगी किताबों के बंद पन्नों के भीतर गुजरती है! महावीर खुली जिंदगी के पक्षपाती हैं--खुले आकाश के नीचे नग्न खड़े हैं। खुली जिंदगी, कच्ची जिंदगी, जो रॉ लाइफ जैसी है, वे उसको छूना और स्पर्श करना चाहते हैं। और सीधा, आमने-सामने एनकाउंटर करना चाहते हैं जिंदगी का। इसलिए शास्त्र को बिल्कुल हटा देते हैं। शास्त्रीयता को हटा देते हैं। शास्त्रीय व्यवस्था को हटा देते हैं।
और हमेशा ऐसी जरूरत पड़ जाती है कि कुछ लोग वापस जिंदगी का हमें स्मरण दिलाएं। नहीं तो किताबें बड़ी खतरनाक भी हैं। किताब, किताब, किताब, धीरे- धीरे हम यह भूल ही जाते हैं कि जिंदगी कुछ और है, किताब कुछ और है। एक तो घोड़ा वह है, जो बाहर सड़क पर चल रहा है। एक घोड़ा वह है, जो शब्दकोश में लिखा हुआ है। घोड़े का अर्थ शब्दकोश में दिया हुआ है। घोड़ा सड़क पर चल रहा है। जिंदगी भर जो किताबों में उलझे रहते हैं, वे किताब के घोड़े को ही असली घोड़ा समझने लगें तो बहुत आश्चर्य नहीं है।
हां, इतना जरूर है कि किताब के घोड़े पर चढ़ने की भूल कोई कभी नहीं करता। लेकिन किताब के परमात्मा पर प्रार्थना करने की भूल निरंतर हो जाती है! किताब का परमात्मा इतना ही सही मालूम होने लगता है, जितना कि असली परमात्मा होगा! लेकिन किताब का परमात्मा एक बात ही और है।
शब्द आग आग नहीं है। और किसी मकान पर आग लिख देने से मकान नहीं जल जाता है। आग बात ही और है। आग तो कुछ बात ऐसी है कि आग शब्द भी जल जाएगा उसमें। वह भी नहीं बच सकेगा।
लेकिन भूल होने का डर है कि शब्द आग को कहीं हम आग न समझ लें। और शब्द परमात्मा को कहीं हम परमात्मा न समझ लें। और जो शब्दों की दुनिया में जीते हैं, उनसे यह भूल होती ही है। उन्हें याद ही नहीं रह जाता कि कब जिंदगी से वे खिसक गए हैं और एक शब्दों की दुनिया में भटक गए हैं! उसका अपना जगत है। महावीर उस शब्द-जाल से भी बाहर आ जाना चाहते हैं। इसलिए शब्द-जाल था संस्कृत का। आम जनता की बातचीत तो सीधी-सादी है। उसमें जाल नहीं है। न व्याख्या है, न परिभाषा है। जिंदगी को इंगित करने वाले शब्द हैं। उन्होंने वे ही शब्द पकड़ लिए, और सीधी जनता से बात की। वे जनता के आदमी हैं इस अर्थों में। वे पंडित नहीं हैं। और उन्होंने यह भी न चाहा कि उनके शास्त्र निर्मित हों।
किसी ने पूछा भी है एक सवाल, कि महावीर के बहुत पूर्व काल से लिखने की कला विकसित हो गई थी और जैसा जैन तो कहते हैं कि खुद प्रथम तीर्थंकर ने लोगों को लिखने की कला सिखाई! तो प्रथम तीर्थंकर को हुए तो कितना काल व्यतीत हो चुका था, लोग खुद लिखना जानते थे, पढ़ना जानते थे, किताब बन सकती थी! फिर महावीर के जीते जी, महावीर ने जो कहा, उसका शास्त्र क्यों निर्मित नहीं हुआ?
हमें ऐसा लगता है कि लिखने की कला न हो, तो ही शास्त्र निर्मित होने में बाधा पड़ती है। लिखने की कला हो तो शास्त्र निर्मित होना ही चाहिए। मेरी अपनी दृष्टि यह है कि महावीर की चूंकि बुद्धि शास्त्रीय नहीं है, उन्होंने नहीं चाहा होगा कि उनका शास्त्र निर्मित हो। और जब तक उनका बल चला होगा, तब तक उन्होंने उसे रोकने की कोशिश की होगी।
उसके भी कारण हैं। क्योंकि जैसे ही शास्त्र निर्मित होता है, वैसे ही व्यक्ति की चेतना जीवन से, अस्तित्व से, एक्झिस्टेंस से अलग होकर शब्दों की दुनिया में प्रवेश कर जाती है। और एक ऐसे काल्पनिक लोक में भटकने लगती है, जो लगता बहुत सच है, लेकिन होता बिल्कुल भी नहीं है।
तो महावीर ने सुनिश्चित रूप से शास्त्र को रोकने की कोशिश की होगी। इसलिए मर जाने के दो-तीन सौ, चार सौ वर्षों तक, जब तक कि लोगों को उनका स्मरण रहा होगा स्पष्ट कि शास्त्र नहीं लिखने हैं, तब तक शास्त्र नहीं लिखा जा सका होगा। लेकिन हमारा मोह भारी है, हम प्रत्येक चीज को स्मृति

में रख लेना चाहते हैं। तो कहीं ऐसा न हो कि महावीर का कहा हुआ विस्मरण हो जाए, कहीं ऐसा न हो कि महावीर विस्मरण हो जाएं। तो हमारे पास उपाय क्या है-- हम लिपिबद्ध कर लें, शास्त्रबद्ध कर लें, फिर नहीं खोएगा! महावीर खो जाएंगे, शास्त्र बचेगा!
लेकिन कभी हमें सोचना चाहिए कि जब महावीर जैसा जीवंत व्यक्ति भी खो जाता है तो शास्त्र में तुम बचा कर क्या महावीर को बचा सकोगे? महावीर जैसे व्यक्ति तो यही उचित समझेंगे कि जब व्यक्ति ही विदा हो जाता है, और जहां सभी चीजें परिवर्तनीय हैं, और सभी आती हैं और चली जाती हैं, वहां कुछ भी थिर न हो। वहां शब्द और शास्त्र भी थिर न हो, वह भी खो जाए। क्योंकि जीवन का नियम जब यह है--जन्मना और मर जाना, होना और मिट जाना--और महावीर को भी जब वह जीवन का नियम नहीं छोड़ता है, तो महावीर की वाणी पर भी यह क्यों लागू न हो? हम क्यों यह आशा बांधें कि हम शब्दों को बचा कर बचा लेंगे? क्या बचेगा हमारे हाथ में!
अंगारा कभी नहीं बचता। अंगारा तो बुझ ही जाता है। राख बच सकती है। अंगारे को आप सदा नहीं रख सकते। राख को सदा रख सकते हैं। राख बड़ी सुविधापूर्ण है, कन्वीनिएंट है। अंगारे को तो थोड़ी देर ही रखा जा सकता है, क्योंकि जीवंत है। अंगारा तो बुझेगा, अंगारे को आप सतत नहीं रख सकते। असल में अंगारा जिस क्षण जलना शुरू हुआ है, उसी क्षण बुझना भी शुरू हो गया है। एक पर्त जल गई है, वह राख हो गई; दूसरी पर्त जल रही है, वह राख हो रही है; तीसरी पर्त जलेगी, वह राख होगी। पर्त-पर्त थोड़ी देर में अंगार जो है, वह राख हो जाएगा। अंगारा तो नहीं बचेगा, अंगारा तो जाएगा; क्योंकि अंगारा जीवित है। जो भी जीवित है, वह जाएगा।
लेकिन राख बचाई जा सकती है करोड़ों वर्षों तक। क्योंकि राख मृत है। उस
पर जीवन के नियम काम नहीं करते। वह मरा हुआ हिस्सा है, जिससे जीवन जा चुका। नियम तो हो चुका पूरा, राख पड़ी रह गई है। अब राख को हम बांध कर रख सकते हैं! और खतरा यह है कि कहीं राख को हम अंगार न समझने लगें। कभी राख अंगार थी, लेकिन राख बनी ही तब, जब अंगार न हो गया।
अब इसमें बहुत मजा है सोचने जैसा! सोचने की दो बातें हैं--राख अंगार थी
और राख अंगार नहीं थी। राख अंगार थी इसका मतलब यह कि अंगार से ही राख आई है। अंगार के जीने से ही राख का आना हुआ है। लेकिन एक अर्थ में राख कभी भी अंगार नहीं थी, क्योंकि जहां-जहां राख हो गई थी, वहां-वहां अंगार तिरोहित हो गया था। राख जो थी, वह जीवित अंगार की छूटी हुई छाया है। जीवित अंगार की जो छाया छूट गई, जो रेखा छूट गई। अंगार तो गया, राख हाथ में रह गई। राख को संजो कर रखा जा सकता है।
महावीर ने चाहा होगा कि राख को भी मत सजाना, संवारना; क्योंकि असली सवाल अंगार था, वह तो बचेगा नहीं, उसे तो तुम संभाल नहीं सकोगे--राख संभाल कर रख लोगे! और फिर कल यह धोखा होगा तुम्हारे मन को कि यही है अंगार! और तब इतनी बड़ी भ्रांति पैदा होगी, जितनी महावीर की सब वाणी खो जाए, तो भी पैदा होने को नहीं है।
हिम्मतवर आदमी रहे होंगे। अपनी स्मृति के लिए कोई व्यवस्था न करना, बड़े साहस की बात है। मृत्यु के विरोध में हम सभी ये उपाय करते हैं कि किसी तरह--हम तो मरेंगे, लेकिन किसी तरह स्मृति की एक रेखा हमारे पीछे शेष रह जाए! वह बची ही रहे। फिर वह शब्द हो, कि पत्थर पर लगा हुआ नाम हो, कि शास्त्र हो, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता!
हमारा मन, मरने वाला मन, न मरने की आकांक्षा करता है! मरेगा सब, यह हमें पता है, तो न मरने के लिए हम कुछ व्यवस्था कर जाते हैं!
महावीर ने जीते जी न मरने की कोई व्यवस्था नहीं की। क्योंकि महावीर
की दृष्टि यह है, जो मरने वाला है, वह मरेगा ही; जो नहीं मरने वाला है, वह नहीं ही मरता है। और जो मरने वाले को बचाने की कोशिश करते हैं, वे बड़ी भ्रांति में पड़ जाते हैं, वे अक्सर राख को अंगार समझ लेते हैं!
शास्त्र में जो धर्म है--वह राख है!
जीवन में जो धर्म है--वह अंगार है!
तो जीते जी उन्होंने शास्त्र निर्मित नहीं होने दिया। तीन-चार सौ वर्ष तक, जब तक कि लोगों को ख्याल रहा होगा उस आदमी का, उसके निषेध का, उसके

इनकार का, तब तक उन्होंने टेंपटेशन को, प्रलोभन को रोका होगा। लेकिन जब वह स्मृति शिथिल पड़ गई होगी, भूल गई होगी, धीरे-धीरे विस्मरण के गर्त में चली गई होगी, तब उनके सामने सबसे बड़ा सवाल यही रह गया होगा कि हम कैसे सुरक्षित कर लें, जो भी उन्होंने कहा है!
यह ध्यान रखने की बात है कि आज तक जगत में जो भी महत्वपूर्ण है, जो भी सत्य है, जो भी सुंदर है--वह लिखा नहीं गया है, वह कहा ही गया है! जो भी महत्वपूर्ण है आज तक पूरी पृथ्वी पर--वह लिखा नहीं गया है, वह कहा ही गया है!
कहने में एक बड़ी जीवंत बात है। लिखने में सब मुर्दा हो जाता है। क्योंकि जब हम कहते हैं तो कोई सामने होता है, जिससे कहते हैं। अकेले में तो कह नहीं सकते। कोई जीवंत सामने होता है। लिखने में कोई सामने नहीं होता, अंधकार होता है।
कहते हैं हम किसी से, लिखते हैं हम न किसी के लिए! किसी के लिए नहीं लिखते! कौन पढ़ेगा? कोई भी पढ़ेगा। तो लिखने के समक्ष कोई भी मौजूद नहीं है, सिर्फ लिखने वाला मौजूद है। बोलने के समक्ष--सिर्फ बोलने वाला मौजूद नहीं है, बोलने वाले से भी ज्यादा सुनने वाला मौजूद है। और एक जीवंत संपर्क है। इस जीवंत संपर्क के कारण न तो उन्होंने शास्त्रों की भाषा उपयोग की, न शास्त्रीयता उपयोग की, न अपने पीछे शास्त्र की रेखा बनने दी है।
और लोकमानस की, सामान्यजन की... बहुत पुराना संघर्ष है यह, अभी भी पूरा नहीं हो पाया। ऐसी धारणा रही है कि धर्म जो है, वह थोड़े से चुने हुए लोगों की बात है! और सत्य जो है, वह बहुत थोड़े से लोगों की समझ की बात है, सबकी बात नहीं है!
मुझसे लोग आ-आकर कहते हैं कि आप ऐसी बातें लोगों से मत कहिए, ये बातें
तो बहुत थोड़े से लोगों के लिए हैं! सामान्य आदमी को मत कहिए, सामान्य आदमी इनसे भटक जाएगा!
अब यह बड़े मजे की बात है कि सामान्य आदमी को सत्य भटकाता है; और असत्य
जो है, वह मार्ग पर लाता है! और मेरी दृष्टि यह है कि वह बेचारा सामान्य ही इसीलिए है कि उसे सत्य की कोई खबर नहीं मिलती।

प्रश्नः बोलते हैं न अधिकारी को ज्ञान देना चाहिए!

कोई भी अनधिकारी नहीं है--ज्ञान की दृष्टि से। और कौन निर्णायक है कि कौन अधिकारी है? निर्णय कौन करेगा?
फूल नहीं कहता कि अधिकारी को सौंदर्य दिखाई पड़ेगा, अधिकारी को सुगंध देंगे। सूरज नहीं कहता कि अधिकारी को प्रकाश मिलेगा। श्वास नहीं कहती कि अधिकारी के हृदय में चलूंगी। खून नहीं कहता, अधिकारी के भीतर बहूंगा। सारा जगत नहीं कहता, अधिकारी की मांग नहीं करता। सिर्फ ज्ञान के संबंध में पंडित कहता है, अधिकारी पहले पक्का हो जाए! क्यों?
सारा जीवन अनधिकारी को मिला हुआ है, सिर्फ ज्ञान भर अधिकारी को मिलेगा? तो भगवान बड़ा नासमझ है, अनधिकारियों को जीवन दे देता है! और पंडित बड़ा ज्ञानी है, वह अधिकारी का पक्का कर ले, तब ज्ञान देता है!
अधिकारी की बात ही अत्यंत व्यापारिक और तरकीब की बात है। तब वह उसको देना चाह रहा है, जिससे उसे कुछ मिलता हो। वह मिलना किसी भी तल पर हो सकता है--इज्जत, आदर, श्रद्धा, धन, मान, सम्मान। वह किसी भी तरकीब से उसको देगा, जिससे कुछ मिलने का पक्का हो। और उसको देगा, जो उसका अपना है। सबको नहीं दे देगा। ऐसे खुले हाथ, अपरिचित, अनजान, अजनबी ले जाए, ऐसा नहीं कर देगा। इसी वजह से ज्ञान को गुरु-शिष्य की परंपरा में बांधने की तरकीब चली! वह सबसे खतरनाक तरकीब है। उस तरकीब में कभी भी ज्ञान विस्तीर्ण नहीं हो सका। एडीसन को अगर पता चल गया कि बिजली कैसे बनती है, तो वह ज्ञान सबके लिए
हो गया। और एडीसन ने नहीं पूछा कि अधिकारी कौन है जिसके घर में बिजली जले। वह ज्ञान सबका हो गया, वह सबके उपयोग में आ गया। सबके लिए खुली किताब हो गई, जो भी उपयोग में लाना चाहे, ले आए।
विज्ञान इसीलिए जीता धर्म के खिलाफ कि धर्म था थोड़े से लोगों के हाथ में, और विज्ञान ने सत्य को दे दिया सबके हाथ में। विज्ञान की जीत का कारण

यह है कि विज्ञान ने पहली दफे ज्ञान को सार्वलौकिक बना दिया, युनिवर्सल बना दिया। और धार्मिक लोगों ने ज्ञान को बना लिया था बिल्कुल ही सीमित दायरे में, रेखा में बहने वाला, सोच-विचार कर किसको देना, नहीं देना! और कई बार ऐसा होता था कि जानने वाला आदमी पात्र को, अधिकारी को खोजते-खोजते ही मर जाता था। और उसे अधिकारी भी नहीं मिलता था!
मैंने सुना है एक फकीर हिमालय की एक तराई पर रहता था और नब्बे वर्ष का
हो गया था। अनेक बार लोगों ने आकर उससे कहा था कि हमें ज्ञान दो। पर उसने कहा, अधिकारी के सिवाय ज्ञान तो किसी को मिल नहीं सकता। अधिकारी लाओ! शर्तें उसकी ऐसी थीं कि वैसा आदमी पूरी पृथ्वी पर भी खोजना मुश्किल था। अधिकारी की शर्तें उसकी ऐसी थीं! यानी ऐसा ही है कि जैसे कोई डाक्टर किसी से कहे कि हम बीमार को दवा नहीं देते, हम तो स्वस्थ आदमी को दवा देंगे, स्वस्थ आदमी ले आओ!
अब मेरी अपनी समझ यह है कि स्वस्थ आदमी डाक्टर के पास जाएगा नहीं। अधिकारी जो हो गया है, वह किसी से मांगने जाएगा नहीं। क्योंकि जिस दिन अधिकार उपलब्ध होता है, उस दिन तो अपनी ही उपलब्धि हो जाती है। उस दिन कोई किसी के पास जाता है? जिस दिन पात्रता पूरी होती है, उस दिन तो परमात्मा खुद ही उतर आता है। उस दिन किसी को कोई पूछने जाता है? तलाशने जाता है? अनधिकारी ही खोजता है, अधिकारी खोजेगा भी क्यों? यानी खोज का सवाल ही नहीं है। अधिकारी का तो मतलब है कि जिसका अधिकार हो गया, अब तो ज्ञान उसे मिलेगा। अब यह कोई मामला नहीं, इसका हक हो गया। यानी अब तो वह सीधी मांग कर सकता है इस बात की। तो अधिकारी तो किसी के पास जाता नहीं। जाता है अनधिकारी। और वे अनधिकारी के लिए शर्तें हैं!
तो लोग थक गए थे, फिर वह बूढ़ा हो गया, बहुत बूढ़ा! फिर एक दिन उसने एक आदमी को--रास्ते से गुजरता था--उसको कहा, सुनो! ज्यादा दिन नहीं हैं, मैं तीन दिन में मर जाऊंगा। और गांव में जितने लोगों को खबर हो सके पहुंचा दो, जिसको भी ज्ञान चाहिए हो, जो मैंने जाना है, सुनना चाहता हो, वह एकदम चला आए। उस आदमी ने कहा, लेकिन मेरा गांव बहुत छोटा है और अधिकारी वहां कोई भी नहीं। उसने कहा, अब अधिकारी, गैर-अधिकारी का सवाल नहीं है, क्योंकि तीन दिन बाद मैं मर जाने को हूं। तुम तो जाते जाओ, जो भी आ जाए, उसको ले आओ।
वह आदमी गांव में गया, उसने डुंडी पीट दी। उस बूढ़े से तो लोगों का कभी कुछ संबंध नहीं बन सका था। फिर भी किसी की दुकान पर आज काम नहीं था तो उसने कहा, चलो मैं चला चलता हूं। किसी को आज नौकरी नहीं मिली थी तो उसने कहा, चलो मैं भी चला चलता हूं। किसी की पत्नी मर गई थी, उसने कहा कि चलो हम भी चलते हैं। किसी का कुछ हो गया था। कोई दस-बारह लोग मिल गए और वे पहाड़ पर चढ़ कर गए।
लेकिन वह जो ले जा रहा था, वह मन में बड़ा चिंतित था कि इनको तो वह सबको फौरन ही बाहर निकाल देगा, क्योंकि इनमें कोई भी अधिकारी नहीं है, कोई भी पात्र नहीं है। उसने डरते-डरते जाकर कहा कि दस-बारह लोग आए हैं, लेकिन आपके अधिकार के नियम में कोई उतरेगा?
उसने कहा, वह बात ही मत करो। एक-एक को भीतर लाओ। तो उसने पूछा कि आपने
वह अधिकार की बात छोड़ दी? उसने कहा, सच बात यह है कि जब तक मेरे पास ही नहीं था, तब तक मैं इस भांति अपने को बचाता था कि अनधिकारी को कैसे दूं। मेरे पास ही नहीं था देने को कुछ! लेकिन यह मानने की भी हिम्मत नहीं पड़ती थी कि मेरे पास ही नहीं है। तो तरकीब मैंने यह निकाली थी कि पात्र कहां है जिसको मैं दूं? लेकिन अब जब मुझे हो गया है, तब प्राण ऐसे आतुर हैं कि कोई अपात्र भी आ जाए, क्योंकि अपात्र भी, जो मैं दूंगा, उसको लेते ही पात्र हो जाएगा, क्योंकि अपात्र रह कैसे सकेगा? तो अब मेरी फिक्र नहीं है कि तुम किसको लाते हो; तुम ले आओ, बस मैं उसको कह देना चाहता हूं। अब कोई अपात्र नहीं है। मैं अज्ञानी था, सब अपात्र थे! मैं ज्ञानी हुआ हूं, सब पात्र हो गए हैं! महावीर ने इस संबंध में बड़ी भारी क्रांति की। ठेठ बाजार में पहुंचा
दी सारी बात। इससे क्रोध भी बहुत हुआ। ट्रेड सीक्रेट्स की बातें भी तो हैं। पंडित का धंधा इस पर चलता था कि बात गुप्त थी, इसोटेरिक थी, छिपी हुई थी। बात सबमें खुल गई तो बहुत मुश्किल हो गया।

आप जानते हैं कि डाक्टर प्रिस्क्रिप्शन लिखता है दवाई का, तो लैटिन
और ग्रीक का उपयोग करता है। सीधी-सादी अंग्रेजी का भी उपयोग नहीं करता, हिंदी की तो बात दूर! लैटिन और ग्रीक शब्दों का उपयोग दवाइयों के नाम के लिए किया जाता है! उसका कारण है कि अगर आपको उसका ठीक-ठीक नाम, जो आप जानते हैं, पता चल जाए, तो आप उसके लिए पांच रुपए देने को राजी नहीं होंगे। आप कहेंगे, यह बाजार में दो पैसे में मिल सकती है। सीक्रेट यह है कि वह जो उसने लिखा है, वह आपकी पकड़ के बाहर है कि क्या है। हो सकता है उसने लिखा हो अजवाइन। लेकिन लिखा है लैटिन में--अजवाइन का सत! और आप गए बाजार में, कहने लगे अजवाइन का सत तो हम घर ही निकाल लेंगे, इसके लिए हम पांच या दस रुपए नहीं दे सकते। लेकिन अजवाइन का सत लिखा है ग्रीक में, और आपको कुछ पता चलता नहीं कि क्या मतलब है। आप दो पैसे की चीज भी दस रुपए में खरीद कर लाते हैं। और बड़ी प्रसन्नता से घर लौटते हैं कि दवा मिल गई!
पूरा मेडिकल प्रोफेशन बेईमानी कर रहा है, क्योंकि अगर सीधी-सीधी बातें लिख दी जाएं तो सब दुकानें दवाई की खतम होने के करीब पहुंच जाएं, क्योंकि दवाइयां बहुत सस्ती हैं। और उन्हीं चीजों से बनी हैं, जो बाजार में आम मिल रही हैं। लेकिन एक तरकीब उपयोग की जा रही है निरंतर, कि नाम अंग्रेजी में भी नहीं है सीधा, लैटिन और ग्रीक में नाम है! तो अंग्रेजी पढ़ा-लिखा आदमी भी नहीं समझ सकता। फिर डाक्टर जिस ढंग से लिखते हैं, वह ढंग भी कारण है उसमें। यानी वह लैटिन और ग्रीक भी आप ठीक से नहीं समझ सकते कि क्या लिखा हुआ है, वह भी सिर्फ दुकानदार समझता है, जो बेचता है दवा! वह भी पक्का समझता है कि नहीं समझता--बड़े अज्ञान में भी काम चलता है!
मैंने सुना है कि एक आदमी को किसी की चिट्ठी आई थी। किसी डाक्टर ने चिट्ठी लिखी थी, उसके घर पर उसने भोज बुलवाया हुआ था। और डाक्टर नहीं आ सकता था तो उसने क्षमा मांगी थी। लेकिन निरंतर आदत के वश उसने उसी ढंग से लिख दिया था, जैसा वह प्रिस्क्रिप्शन लिखता था। उस आदमी ने बहुत पढ़ा; उसकी कुछ समझ में नहीं आया कि वह आ रहा है कि नहीं आ रहा है! तो उसने सोचा कि छोड़ो, मेरी समझ में नहीं आएगा, जरा चल कर केमिस्ट को दिखा लूं, वह तो कम से कम डाक्टरों की भाषा समझता है, वह बता देगा कि क्या लिखा है। उसने जाकर वह चिट्ठी केमिस्ट को दी।
केमिस्ट ने चिट्ठी देखी, कहा कि रुकिए, भीतर गया दो बोतलें निकाल कर
ले आया! उसने कहा, माफ करिए, यह बोतल का सवाल ही नहीं है। इसमें उसने सिर्फ क्षमा मांगी है कि मैं आज भोज में आ सकूंगा कि नहीं, यह मेरी समझ में नहीं आ रहा है कि बात क्या है।
यह जो सारा का सारा खेल चलता है... तो पंडित ने एक तरकीब निकाली हुई है बहुत पुराने दिन से, वह यह है कि जनता की भाषा में सीधी-सीधी बात मत कहना कभी भी। उसको ऐसी शब्दावली में कहना कि जनता के लिए वह रहस्य हो जाए। वह उसकी समझ के बाहर पड़ जाए। और तब वह तुमसे समझने आएगी।
इसलिए दुनिया में दो तरह के लोग हुए हैं। एक जो जीवन के रहस्य को खुला बनाना चाहते हैं, ताकि प्रत्येक के लिए द्वार खुल जाए। और एक मिस्ट्रीफायर्स हैं, जो जीवन में जो रहस्य नहीं ही है, उसको जबरदस्ती चारों तरफ से गोल-गोल करके उसे ऐसी स्थिति में खड़ा कर देना चाहते हैं कि वह किसी के लिए भी सीधा-सरल सत्य न हो जाए।
उमर खय्याम ने लिखा है कि जब मैं जवान था तो मैं साधुओं के पास गया, संतों के पास गया, ज्ञानियों के पास गया, पंडितों के पास गया--एंड केम आउट ऑफ दि सेम डोर व्हेअरइन आई वेंट इन--और उसी दरवाजे से बाहर आया जिससे भीतर गया; क्योंकि मेरी कुछ पकड़ में ही नहीं पड़ा कि वहां हो क्या रहा है। सबके पास गया, लेकिन उसी दरवाजे से वापस लौटना पड़ा, जिस दरवाजे से गया था। यानी वही का वही वापस लौटा, जो मैं था, क्योंकि मेरी कुछ पकड़ में नहीं पड़ा कि वहां हो क्या रहा है! कौन सी बातें वहां चल रही हैं! किन शब्दों की वे बातें कर रहे हैं! किन लोगों की चर्चा हो रही है! जीवन से उनका कोई सीधा संपर्क नहीं है।
महावीर की क्रांतियों में एक क्रांति इसको भी गिनना चाहिए कि उन्होंने धर्म के गुह्य रूप को, वह जो इसोटेरिक था, वह जो छिपा हुआ था, उसको

उघड़ा हुआ कर दिया। इसलिए पंडित उन पर अगर नाराज रहे हों तो आश्चर्य नहीं है, क्योंकि उन्होंने बड़ा बुरा काम किया।
ऐसे जैसे कि कोई डाक्टर सीधी हिंदी में लिखने लगे कि अजवाइन का सत ले आओ! तो दूसरे सारे डाक्टर उस पर नाराज हो जाएं कि तुम क्या कर रहे हो? तुम क्या सब धंधा चौपट करवा देने को हो? तो महावीर पर पंडितों की नाराजगी बड़ी अर्थपूर्ण है।
इसलिए उन्होंने सीधी-सीधी जन-भाषा का उपयोग किया है। और शास्त्रों की भाषा को एकदम छोड़ दिया है, जैसे कि शास्त्र हों ही न। महावीर इस तरह बोल रहे हैं जैसे कि शास्त्र रहे ही नहीं, उनका उल्लेख भी नहीं करते! ऐसा नहीं है कि उन शास्त्रों में कुछ भी न था। उन शास्त्रों में बहुत कुछ था। और महावीर जो कह रहे हैं, कोई खोज करेगा तो उन शास्त्रों में भी मिल जाएगा। लेकिन महावीर उन शास्त्रों को बीच में लाना ही नहीं चाहते हैं। क्योंकि उनको लाते ही शास्त्रीयता आती है, पांडित्य आता है, सारी दुकान आती है, सारी व्यवस्था! वे ऐसे बोल रहे हैं, जैसे कि कोई पहला आदमी जमीन पर खड़े होकर बोल रहा हो, जिसको किसी शास्त्र का कोई पता नहीं। यह सोचने जैसी बात है।
क्या तेरा सवाल है बोल?

प्रश्नः गोशालक ने तेजोलेश्या का प्रयोग किया तो दो साधु तो महावीर
की जान बचाने के लिए उठ खड़े हुए और उनका शरीर कपड़ों की भांति जल गया और वे मर गए। जब तीसरा उठा तो महावीर ने उसको रोक लिया। तो जब दो मर गए तो उस समय वे तटस्थता क्यों रखे? या फिर उनमें इतनी करुणा थी तो उन्होंने क्यों नहीं उनको बचाया?

असल में कहानियों को समझना बहुत मुश्किल होता है, क्योंकि वे प्रतीक हैं। और उन प्रतीकों में बड़ी बातें हैं, जो खोली जाएं तो ख्याल में आ सकती हैं, न खोली जाएं तो बड़ी कठिनाइयां पैदा करती हैं।
महावीर पर गोशालक ने तेजोलेश्या का प्रयोग किया है। वह एक ऐसी मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया, एक ऐसी यौगिक प्रक्रिया का प्रयोग कर रहा है कि जिसमें कोई भी जल जाए और भस्म हो जाए।
इसका प्रश्न बहुत बढ़िया है कि महावीर को बचाने के लिए एक साधु उठा, वह नष्ट हो गया; दूसरा उठा, वह मर गया; महावीर देखते रहे! तीसरा उठा, उसको महावीर ने रोक लिया! यह यह पूछती है कि क्या दो के समय महावीर तटस्थता रखे और तीसरे के समय तटस्थता छोड़ दी? या कि दो के समय उन्हें कोई करुणा न आई और तीसरे पर करुणा आ गई? क्या बात है? अगर रोकना था तो पहली बार ही रोक देना था, ताकि दो व्यक्ति न मर पाते। या नहीं ही रोकना था, तटस्थ ही रहना था, तो तटस्थ ही रहना था--कोई मरता या जीता, इसकी कोई चिंता नहीं होनी थी।
इसमें बहुत बातें हो सकती हैं। पहली तो बात यह है कि व्यक्ति किसलिए उठा, यह बड़ा महत्वपूर्ण है। जो व्यक्ति उठा पहला, जरूरी नहीं है कि महावीर को बचाने उठा हो। सिर्फ दिखाने उठा हो कि मैं बचा सकता हूं। सिर्फ अहंकार से उठा हो। और अहंकार को कोई भी नहीं बचा सकता, महावीर भी नहीं बचा सकते। अहंकार तो जलेगा और नष्ट होगा। अहंकार को महावीर भी नहीं बचा सकते। कहानी तो सीधी-सीधी होती है, लेकिन पीछे हमें उतरने की जरूरत होती है। पहला आदमी किसलिए उठा? क्या वह यह सोचता है कि क्या करेगा गोशालक मेरा, मैं उससे ज्यादा प्रबल हूं! अभी उसे पछाड़ कर रख दूंगा! तो महावीर चुपचाप बैठे रह गए होंगे। क्योंकि असल में वहां एक महावीर का साधु और दूसरा गोशालक ऐसा नहीं था, वहां दो गोशालक थे। वहां जो झगड़ा खड़ा हो गया था, उसमें एक महावीर का साधु नहीं था। उसमें दो गोशालक थे, दो अहंकार थे; जो लड़ने को खड़े हो गए थे। तो महावीर चुप रह गए होंगे। चुप रहना ही पड़ेगा, कोई उपाय न रहा होगा।
तीसरे व्यक्ति के संबंध में क्यों महावीर उसे रोक दिए हैं? हो सकता है, तीसरा व्यक्ति किसी अहंकार से न उठा हो, विनम्र सीधा-सादा आदमी रहा हो। सिर्फ आहुति देने उठा हो, कोई अहंकार से नहीं। एक व्यक्ति और मरे, इतनी देर भी महावीर जी जाएं, इसलिए उठा हो। तो महावीर ने रोका हो कि बस... ।

असल में कहानियां ये सब नहीं कह पातीं, और हजारों साल से चलने के बाद रूखे तथ्य हाथ में रह जाते हैं, जिनके पीछे की सब व्यवस्था साथ में नहीं रह जाती कि क्या कारण होगा! लेकिन अगर महावीर को हम समझ सकते हैं, तब हमें बहुत कठिनाई नहीं मालूम पड़ती। जिन दो व्यक्तियों को बचाने के लिए वे नहीं कुछ कहे हैं, वे दो व्यक्ति ऐसे होंगे, जिनके बचाने के लिए कुछ कहा ही नहीं जा सकता है। वे दो व्यक्ति ऐसे होंगे, जो महावीर के लिए खड़े ही नहीं हो रहे हैं, अपने लिए ही खड़े हो रहे हैं। जो गोशालक को भी कुछ दिखा देना चाहते हैं कि हम भी कुछ हैं। तो महावीर के पास सिवाय दर्शक होने के कोई उपाय नहीं रह गया होगा।
तीसरे व्यक्ति को उन्होंने रोका है, तो जरूर इसका मतलब गहरा हो सकता है। गहरा यह हो सकता है कि तीसरा व्यक्ति न अहंकार से उठा हो। न--यह भी एक अहंकार है कि मैं बचा लूंगा--इस भाव से भी न उठा हो। सिर्फ उठा इसलिए हो कि इतनी देर तक और--मैं मरूंगा, उतनी देर तक महावीर और बचते हैं। इतनी विनम्रता से उठा हो तो फिर महावीर को कुछ कहना पड़ेगा, रोकना पड़ेगा। महावीर के चित्त में क्या होता है, यह हमें कठिन हो जाता है, क्योंकि
हम तो ऊपर से तथ्य देखते हैं न, कि दो को मर जाने दिया और एक को बचाया! हमें ख्याल में नहीं आता कि क्या कारण भीतर हो सकते हैं। भीतर से महावीर के देखने खड़े होंगे तो सिवाय इसके और कुछ भी नहीं दिखाई पड़ेगा। उन दो के प्रति भी करुणा रही होगी। उन दो के प्रति भी करुणा रही होगी--क्योंकि महावीर के लिए करुणा कोई शर्तबंद चीज नहीं है, कि इस व्यक्ति के लिए रहेगी और उसके लिए नहीं रहेगी। लेकिन वे दोनों करुणा के लिए बहरे रहे होंगे। महावीर यह भी जानते हो सकते हैं कि उन्हें रोकने से कोई मतलब नहीं है। क्योंकि कुछ लोग हैं, जो रोकने से और बढ़ते हैं!
हजार बातें हैं। कुछ लोग हैं, जो रोकने से और बढ़ते हैं! न रोके जाएं तो शायद रुक जाएं; रोकने से और तेजी में आते हैं। अहंकारी व्यक्ति ऐसा ही होता है, उसे रोको तो वह और तेज होता है। तो महावीर चुप रहे हों।
एक घटना मैं तुम्हें समझाऊं। मैं जब पढ़ता था तो एक युवक मेरे साथ पढ़ता था, उसका एक बंगाली लड़की से प्रेम था। वह इतना दीवाना था, इतना पागल था, कि वह दो साल यूनिवर्सिटी छोड़ कर कलकत्ता जाकर रहा, ताकि ठीक बंगाली हाव-भाव, बंगाली भाषा, बंगाली कपड़ा, उठना-बैठना, सब बंगाली हो जाए! वह दो साल बंगाली होकर लौट आया। और इतना बंगाली हो गया था कि वह हिंदी भी बोलता तो ऐसे बोलता जैसे कि बंगाली हिंदी बोलता है! वह हिंदी भी ठीक नहीं बोलता था फिर, हिंदी में भी वही भूलें करता था, जो बंगाली को करनी चाहिए। ऐसा बिल्कुल निपट बंगाली होकर आ गया था!
लेकिन ऐन वक्त पर उस लड़की ने इनकार कर दिया! उस लड़की को भी मैं पूछा कि क्या बात हो गई है? क्या इनकारी का कारण है? तो उस लड़की ने कहा कि वह मेरे पीछे इतना पागल है और इतनी गुलाम वृत्ति से भरा हुआ है कि ऐसे गुलाम को पति की तरह पाना मुझे आनंदपूर्ण नहीं है। यानी कोई व्यक्ति तो चाहिए! यानी जिसमें कुछ तो अपना हो, कुछ व्यक्तित्व हो। तो मैं नहीं... ।
अब बड़ी मजेदार घटना घटी कि वह बेचारा सिर्फ इसलिए झुका चला जा रहा था,
और सब स्वीकार करता चला जाता था! वह लड़की कहे रात तो रात, और लड़की कहे दिन तो दिन, ऐसा भाव ले लिया था उसने! लेकिन यही कारण उस लड़की को विवाह से इनकार करने का बना। उसने इनकार कर दिया।
वह तो... मैं जानता था कि कुछ खतरा होगा। एक रात मुझे खबर आई, कोई नौ बजे होंगे। एक ही बेटा था अपने बाप का वह, वृद्ध बाप थे। जिस दिन यह घटना घटी, उसने इनकार किया; उसने एक कमरे में अपने को बंद कर लिया, ताला अंदर से लगा लिया, और जो भी बाहर से कहे दरवाजा खोलो, वह कहे अब मेरी लाश निकलेगी और मुझसे बात मत करो। अब जिंदा मेरे निकलने की कोई जरूरत नहीं है। घबराहट फैल गई। भीड़ इकट्ठी हो गई, सब प्रियजन इकट्ठे हो गए। बूढ़ा बाप रोए। जितना रोए, उतनी उसकी जिद्द बढ़ती जाए!
मुझे खबर आई, मैं गया। मैंने देखा वहां बाहर का सब इंतजाम, मैंने कहा
कि ये सब मिल कर इसको मार डालेंगे। क्योंकि उसका जोश बढ़ता चला जा रहा है भीतर। जितना वे समझाते हैं कि अच्छी लड़की ला देंगे! वह कहता, अच्छी लड़की? मेरे लिए कोई लड़की ही नहीं है दूसरी। अच्छे-बुरे का सवाल नहीं है। जितना

वे समझाते हैं कि ऐसा करेंगे, वैसा करेंगे--बेटा, दरवाजा खोलो! बेटा है कि बढ़ता चला जा रहा है! वह रुकता नहीं!
मैं वहां गया, भीड़ वहां इकट्ठी है, दस-पच्चीस लोग थे। मैंने उनसे कहा
कि अगर आप उसे बचाना चाहते हैं तो कृपा कर दरवाजे से हट जाएं, मुझे बात करने दें। मैं दरवाजे पर गया। मैंने उससे कहा, अरुण, अगर मरना है तो इतना शोरगुल मचाने की जरूरत नहीं, मरने वाले इतना शोरगुल नहीं मचाते। ये जीने वालों के ढंग हैं--इतना शोरगुल मचाना। मरने वाले चुपचाप मर जाते हैं, तुम्हें तीन घंटे हो गए, क्या तीन-चार साल लगेंगे तुम्हें मरने में? तुम जल्दी मरो; ताकि हम सब लोग तुम्हें मरघट तक पहुंचा कर निश्चिंत हो जाएं। उसने चुपचाप सुना, कुछ नहीं बोला! अभी बड़ा चिल्ला-चिल्ला कर बोलता था! मैंने कहा, बोलते क्यों नहीं? उसने कहा, हां, मैं मर जाऊंगा। मैंने कहा, तुम... इसमें हमें कोई एतराज ही नहीं है। कौन किस को रोक सकता है कभी? मरने वाले को कोई नहीं रोक सकता। आज रोकेंगे, कल मर जाओगे। इसलिए रोकें भी क्यों? दरवाजा खोलो। मरने वाले ऐसे दरवाजे बंद करके भयभीत दिखाई पड़ते हैं? एक ही तो भय है जिंदगी में कि मर न जाएं, और तो फिर कोई भय ही नहीं है। और तुमने जब वह भय भी त्याग कर दिया, अब तुम किससे डर कर अंदर बंद हो-- दरवाजा खोलो!
उसने दरवाजा खोला और मुझे नीचे से ऊपर तक ऐसे देखा, जैसे मैं उसका दुश्मन हूं। और मैंने कहा कि तुम मेरे साथ गाड़ी में बैठ जाओ और चलो। उसने कहा, कहां जाना है? मैंने कहा कि भेड़ाघाट, जबलपुर में अच्छी जगह है मरने के लिए। समझदार आदमी कम से कम मरने के लिए अच्छी जगह तो चुन ले! नासमझ तो जिंदा रहने के लिए भी अच्छी जगह नहीं चुनता। तो तू भेड़ाघाट मर। और मैं तेरा मित्र रहा इतने दिन तक, तो मेरा कर्तव्य है कि तुझे आखिरी विदा कर आऊं। यानी मित्र का यही मतलब है कि जो हर वक्त काम आए, मुसीबत के वक्त काम आए। इस वक्त तेरे कोई काम नहीं पड़ेगा। इस वक्त मैं ही तेरे काम पड़ सकता हूं। तो उसने मुझे ऐसे देखा कि यह आदमी पागल हो गया है क्या! लेकिन अब मुझसे कुछ कहने की हिम्मत न रही। क्योंकि अब धमकी देने का कोई सवाल न था कि मैं मर जाऊंगा। यह धमकी तो बेमानी थी। वह चुपचाप चला आया!
रात हम दोनों सोए, दोनों तरफ बिस्तर लगा कर बीच में एक अलार्म घड़ी रख कर। मैंने कहा, अब ठंडी रात है, और हो सकता है कि मेरी नींद न खुले, और अलार्म बजे, तो तुम कृपा करके मुझे उठा देना, क्योंकि तीन बजे हमें निकल चलना चाहिए, एक घंटे का रास्ता है। एक घंटे का रास्ता है। तुम वहां कूद जाना, मैं अंतिम नमस्कार करके लौट आऊंगा। और मुझे फिर वापस भी आना है। और भोर होने के पहले आना चाहिए, नहीं तो तुम तो मरोगे, फंसूंगा मैं। तो तीन बजे ही ठीक होगा।
उसने मुझे, सब बातें वह मेरी ऐसे सुनता था, ऐसे चौंक कर, लेकिन वह मुझसे कुछ कहता नहीं था! रात हम सो गए, अलार्म बजा तो उसने जल्दी से बंद किया। जब मैं हाथ ले गया तो वह अलार्म बंद कर रहा था! उसका हाथ मैंने हाथ में ले लिया। मैंने कहा, ठीक है, मेरी भी नींद खुल गई। उसने कहा, लेकिन अभी मुझे बहुत ठंड मालूम होती है। मैंने कहा, ये सब जीने वालों की ही बातें हैं, ठंड मालूम होना, गर्मी मालूम होना। ये कोई मरने वालों के ख्याल नहीं हैं। ठंड का अब क्या सवाल? यह आखिरी ठंड है। घंटे भर की बात है, सब खतम! और मुझे वापस भी लौटना है। मैंने उससे कहा कि ठंड मुझे लगेगी, क्योंकि तू जब डूब जाएगा, तब मुझे वापस भी फिर आना है।
वह एकदम गुस्से में बैठ गया और बोला कि आप मेरे दोस्त हो कि दुश्मन? आप मेरी जान लेना चाहते हो? मैंने आपका क्या बिगाड़ा है? मैंने कहा, मैं तुम्हारी जान नहीं लेना चाहता हूं और न तुमने कभी मेरा कुछ बिगाड़ा है। लेकिन अगर तुम जीना चाहते हो तो मैं जीने में साथी हो जाऊंगा। अगर तुम मरना चाहते हो, मैं उसमें साथी हो जाऊंगा। मैं तुम्हारा साथी हूं। तुम्हारी क्या मर्जी है?
उसने कहा कि मैं जीना चाहता हूं। मैंने कहा, फिर सांझ से इतना शोरगुल क्यों मचा रहे हो?
अब इस आदमी को क्या हुआ, देखते हो? वह आदमी अब भी जिंदा है। और जब भी मुझे मिलता है तो मुझसे कहता है कि आपने मुझे बचाया, नहीं तो मैं मर जाता।

वे सारे बाहर के लोग मुझे मारने की तैयारी करवा रहे थे। वे जितना मुझे बचाने की बातें करते, उतना मेरा जोश चढ़ता चला जाता। आदमी के मन को समझना बड़ा मुश्किल है, एकदम मुश्किल है। और आदमी कैसे काम करता है? किस भांति आदमी का चित्त काम करता है? वह आदमी कभी नहीं बचता, वह मर ही जाता। उसका मरना पक्का था उस दिन।
तो क्यों महावीर किसी को नहीं रोकते हैं, किसी को रोकते हैं, इसे एकदम ऊपर से नहीं पकड़ लेना। इसे बहुत भीतर से देखने की बात होनी चाहिए कि महावीर के लिए क्या कारण हो सकता है। करुणा उनकी समान है। लेकिन व्यक्ति भिन्न-भिन्न हैं। रोकना किसके लिए सार्थक होगा, किसके लिए नहीं सार्थक होगा, यह भी वे जानते हैं। कौन रोकने से रुकेगा, यह भी वे जानते हैं। कौन रोकने से और बढ़ेगा, यह भी वे जानते हैं। कौन किस कारण से बढ़ रहा है, यह भी वे जानते हैं। और इसलिए हो सकता है दो व्यक्तियों को नहीं, दो सौ व्यक्तियों को भी हो सकता है न रोकते।
एक-एक व्यक्ति भिन्न-भिन्न है। उसकी सारी व्यवस्था भिन्न-भिन्न है।
और उस व्यक्ति को अगर हम गौर से देखेंगे तो हमें उसके साथ भिन्न-भिन्न व्यवहार करना पड़ेगा। इसका मतलब यह नहीं है कि मैं भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के साथ भिन्न-भिन्न हो जाता हूं। मैं न भी भिन्न-भिन्न होऊं, तब भी प्रत्येक व्यक्ति भिन्न है, और उसे देख कर मुझे कुछ करना जरूरी है।
फिर और भी बहुत सी बातें महावीर देखते हैं जो कि साधारणतः नहीं देखी
जा सकतीं। उनकी मैं इसलिए बात नहीं करता हूं कि वे एकदम अदृश्य की बातें हैं। महावीर यह देख सकते हैं, इस व्यक्ति की उम्र समाप्त हो गई है, यह सिर्फ निमित्त है इसके मरने का, इसलिए चुप भी रह सकते हैं। और कोई कारण भी न हो, सिर्फ इतना ही देखते हैं, यह आदमी की उम्र तो गई है और सिर्फ निमित्त है इसके मरने का। और निमित्त सुंदर है, इसे मर जाने दें। और एक व्यक्ति, उम्र समाप्त नहीं हुई है और व्यर्थ उलझाव में पड़ा जाता है, व्यर्थ उपद्रव में पड़ रहा है, सोच सकते हैं, रोक लें। किन्हीं क्षणों में मरना भी हितकर है, जीने से भी ज्यादा हितकर है किन्हीं क्षणों में। लेकिन उतने क्षण की अनुभूति और उतनी गहराई का बोध हमें नहीं ख्याल में आ सकता है।
अगर मैं किसी को प्रेम करता हूं तो कोई ऐसा क्षण भी हो सकता है, जब मैं उसको चाहूं कि वह मर ही जाए। हालांकि यह कैसी बात है! क्योंकि जिसको हम प्रेम करते हैं, उसे हम कभी भी नहीं मरने देना चाहते। चाहे जीना उसका मरने से ज्यादा दुखदायी हो जाए, तो भी हम उसे जिंदा रखना चाहते हैं कोई भी हालत में।
वह बड़ी उलटी बात है। एक बूढ़ा बाप है, नब्बे साल का हो गया है, बीमार है, दुखी है, आंख नहीं है, उठ नहीं सकता, बैठ नहीं सकता, फिर भी बेटे, बहू, बेटियां प्रेम में उसको जिंदा रखे चले जा रहे हैं, इसकी चेष्टा कर रहे हैं उसको जिंदा रखने की!
अब पता नहीं यह प्रेम है या बहुत गहरे में टार्चर की इच्छा है। कहना बहुत मुश्किल है। इस बुड्ढे को सताने की बहुत गहरी इच्छा काम कर रही है, ऊपर से प्रेम की भाषा है? या कि सच में ही प्रेम है? अगर सच में यह प्रेम है तो बड़ा अजीब प्रेम मालूम पड़ता है, कि मेरे सुख के लिए, कि आप जिंदा रहें, मैं आपको दुख में भी जिंदा रखना चाहूं, तो प्रेम नहीं है। मैं दुखी होना पसंद करूंगा। आप मर जाएंगे, मुझे दुख होगा, पीड़ा होगी, एक खाली घाव रह जाएगा, जो कभी नहीं भरेगा, वह मैं पसंद करूंगा। लेकिन यह पीड़ा और दुख आपका नहीं सहूंगा।
मगर ऐसे प्रेम को समझ पाना बहुत कठिन होगा कि कोई बेटा अपने बाप को लाकर और जहर दे दे, और कहे कि अब नहीं जीना है आपको, क्योंकि मेरा प्रेम नहीं कहता कि आपको जिलाऊं। मुझे दुख होगा आपके मरने से, वह दुख मैं सहूंगा। लेकिन आप, मुझे दुख न हो इसलिए जीएं... !
ऐसे क्षण हो सकते हैं। लेकिन उस बेटे का प्रेम फिर समझ में आना बहुत मुश्किल हो जाएगा। लेकिन कभी एक वक्त आएगा दुनिया में जब कि बेटे इतना प्रेम भी करेंगे, पत्नियां इतना प्रेम करेंगी, पति इतना प्रेम करेंगे। प्रेम का मतलब ही यह है कि हम दूसरे को दुख में न डाल रखें। उसे हम कितने

सुख में ले जा सकें। मेरा विचार न हो प्रमुख, कि उसके होने न होने से मुझे क्या होगा, यह सवाल नहीं है बड़ा।
तो इसलिए किसी भी घटना में बहुत गहरे उतरने की जरूरत है और तब हमें ख्याल में आ सकता है कि क्या प्रयोजन रहे होंगे। और न भी ख्याल में आए तो भी जल्दी निष्कर्ष मत लेना, क्योंकि जल्दी निष्कर्ष बहुत महंगी चीज है। और महावीर जैसे व्यक्तियों के प्रति जल्दी निष्कर्ष बहुत ही महंगा है। क्योंकि उन्हें समझना हमें सदा कठिन है, उन्हें मिसअंडरस्टैंड करना हमें सदा सरल है। उस तरह के जो व्यक्ति हैं, उन्हें समझना तो हमें सदा ही कठिन है। हमारी गहरी से गहरी समझ भी संदिग्ध ही रहेगी। हां, उनके संबंध में कोई नासमझी, कोई मिसअंडरस्टैंडिंग बनानी अत्यंत सरल है। क्योंकि जिस जगह हम खड़े होते हैं, वहां से जो हमें दिखाई पड़ता है, हम वही सोच सकते हैं।
हम वही सोच सकते हैं न, जहां हम खड़े हैं! जिन्हें दूर तक दिखाई पड़ता है,
वे क्या सोचते हैं, वे कैसे सोचते हैं, वे सोचते भी हैं कि नहीं सोचते हैं, यह भी हमारे लिए तय करना मुश्किल हो जाता है। वे किस भांति जीते हैं? क्यों उस भांति जीते हैं? अन्यथा क्यों नहीं जीते? यह भी हमें सोचना मुश्किल हो जाता है। हम ज्यादा से ज्यादा अपना ही रूप प्रोजेक्ट कर सकते हैं। हम यही सोच सकते हैं कि इस हालत में हम होते तो क्या करते! दो आदमियों को न मरने देते, या फिर तीनों को ही मरने देते। दो ही उपाय थे हमारे सामने। पर चूंकि हम, उस चेतना स्थिति का हमें कोई अनुभव नहीं है, जो बहुत दूर तक देखती है, बहुत दूरगामी है, और जिसका हमें कोई ख्याल नहीं है।
महावीर और गोशालक--जब गोशालक उनके साथ था--तो एक गांव के पास से गुजर रहे हैं। और गोशालक उनसे पूछता है, जो होने वाला है, वही होता है? महावीर कहते हैं, ऐसा ही है। जो होने वाला है, वही होता है। तो पास में ही जिस खेत से वे गुजर रहे हैं, दो पंखुड़ियों वाला एक पौधा लगा हुआ है, जिसमें अभी कली आने को है, कल फूल बनेगी। गोशालक उस पौधे को उखाड़ कर फेंक देता है और महावीर से कहता है कि यह पौधा फूल होने वाला था और अब नहीं होगा।
वे दोनों गांव से भिक्षा लेकर वापस लौटते हैं। इस बीच पानी गिर गया है
और वह जो पौधा फेंका था निकाल कर, पानी गिरने से कीचड़ हो गई है, उस पौधे ने फिर कीचड़ में जड़ें पकड़ ली हैं, वह फिर खड़ा हो गया है! जब वे उसी जगह से वापस लौटते हैं तो महावीर उससे कहते हैं कि देख, वह कली फूल बनने लगी है। वह पौधा पकड़ लिया है जमीन फिर, और कली फूल बन रही है।
जिसे दूर तक दिखाई पड़ता है, उसे बहुत सी बातें दिखाई पड़ती हैं, जो हमारे ख्याल में भी कभी नहीं होतीं। और जिंदगी इतना लंबा विस्तार है कि जैसे कोई किसी एक उपन्यास के एक पन्ने को फाड़ ले और उस पन्ने को पढ़े, तो क्या तुम सोचते हो कि उस पन्ने से पूरे उपन्यास के बाबत कोई नतीजा निकाल सके? कुछ भी न निकाल सके। हो सकता है उपन्यास बिल्कुल उलटे नतीजों पर अंत हो, जो उस पन्ने में लिखा है उससे बिल्कुल भिन्न चली जाए। क्योंकि यह पन्ना सिर्फ उस लंबी यात्रा का एक छोटा सा हिस्सा है। पूरा उपन्यास जानना पड़े।
जिंदगी में हम भी क्या करते हैं कि एक टुकड़े को उठा लेते हैं और उस टुकड़े को फैला कर पूरी जिंदगी को जांचने चल पड़ते हैं! मुश्किल है। ऐसा नहीं जांचा जा सकता। पूरी जिंदगी देखनी पड़े। और पूरी जिंदगी को देखें हम, तो इस एक टुकड़े को भी समझ सकते हैं। नहीं तो यह टुकड़ा भी हमारी समझ में नहीं आ सकता।
और क्या तेरा एक था, वह और बोल दे।

प्रश्नः ध्यान के लिए शुद्धीकरण की आवश्यकता है। और जब भी व्यक्ति का
मन केंद्र पर है, जब भी व्यक्ति केंद्र पर है तो उसकी जो बाह्य क्रिया है, उठना-बैठना, यह सब उसकी सहज अवस्था में हो जाती है। तो जब भी महावीर बैठते हैं ध्यान के लिए, तो जैसे कुक्कुटासन है और गौदोहासन है--यह विचित्र अवस्था है!

हूं, हूं, यह भी समझने जैसी बात है। महावीर को ज्ञान भी हुआ गौदोहासन में! जैसे कोई गौ को दुहते वक्त बैठता है उकडूं, ऐसे बैठे-बैठे महावीर को

परम ज्ञान की उपलब्धि हुई है। ये बड़े अजीब आसन हैं। न तो वे गौ दुह रहे थे, यह बड़ी उलटी स्थिति मालूम पड़ती है। ऐसा महावीर बैठे किसलिए थे? ध्यान में, ध्यान अवस्थित होने में ऐसे किसी आसन की कभी बात भी नहीं है। इसे समझना चाहिए।
इसमें तीन बातें समझनी जरूरी हैं। इसमें तीन बातें जरूरी हैं। पहली बात तो यह समझनी जरूरी है कि हमें ऐसा लगता है कि गौदोहासन बड़ा असहज है। ऐसा नहीं है। किसी को सहज हो सकता है। सहज और असहज हमारी आदतों की बातें हैं।
पश्चिमी व्यक्ति को हम यहां ले आएं तो जमीन पर बैठना इतना असहज है, पालथी मार कर बैठना तो ऐसी असहज बात है कि इसे एक पश्चिमी व्यक्ति को सीखने में छह महीने भी लग सकते हैं। और छह महीने मालिश भी चले उसकी और बेचारा हाथ-पैर भी सिकोड़े, तभी वह ठीक से पालथी मार कर--और फिर भी वह सहज नहीं होने वाला। यानी फिर भी वह जब बैठा है तो वह चेष्टारत ही होगा। क्योंकि पश्चिम में नीचे बैठता ही नहीं कोई, सब कुर्सी पर बैठते हैं। इसलिए नीचे बैठने की जो हमारे लिए अत्यंत सहज बात मालूम होती है, वह
जो लोग नहीं बैठते, उनके लिए अत्यंत असहज है। क्या सहज है? जो अभ्यास में है, वही हमें सहज मालूम पड़ता है। जिसका अभ्यास नहीं है, वह असहज मालूम होने लगता है।
हो सकता है महावीर निरंतर पहाड़ में, जंगल में, वर्षा में, धूप में, ताप में, सर्दी में; न कोई घर, न कोई द्वार; न बैठने के लिए कोई आसन, न कोई कुर्सी, न कोई गद्दी; कुछ भी नहीं है। यह बहुत कठिन नहीं है कि महावीर सहज जंगल में रोज उकडूं ही बैठते रहे हों। यह बहुत कठिन नहीं है। फिर महावीर की एक धारणा और अदभुत है। महावीर कहते हैं, जितना कम से कम पृथ्वी पर दबाव डाला जा सके उतना अच्छा, क्योंकि उतनी कम हिंसा होने की संभावना है। महावीर रात सोते हैं तो करवट नहीं बदलते! क्योंकि जब एक ही करवट सोया
जा सकता हो तो दूसरी करवट लक्जरी है। है न? दूसरी करवट जो है, अत्यंत विलासपूर्ण है। जब एक ही करवट सोया जा सकता हो, तो अकारण दूसरी करवट लेने में व्यर्थ ही कोई चींटी, कोई मकोड़ा मर जाए, क्या जरूरत? एक ही करवट से काम चल जाता है। कम से कम हिंसा है एक करवट में ही। दूसरी करवट में कुछ हिंसा हो ही जाती है, हो ही जाएगी। और हमसे शायद न भी हो, महावीर से तो हो ही जाएगी। किसी वृक्ष के तले जंगल में सो रहे हैं, करवट बदलेंगे, पचास चींटियां मर जा सकती हैं।
फिर महावीर कहते हैं, अनावश्यक है, लक्जूरिअस है, यानी विलासपूर्ण है, आमोदपूर्ण है। जरूरत क्या है? एक करवट काफी है। तो महावीर एक ही करवट सो लेते हैं, वे दूसरी करवट बदलते ही नहीं रात भर।
तो ऐसा जो व्यक्ति है, वह मुझे लगता है कि उकडूं बैठना पृथ्वी पर सबसे
कम दबाव डालता है, क्योंकि दोनों पंजे ही छूते हैं। पालथी मार कर पृथ्वी का ज्यादा हिस्सा घेरता है। और इतनी ज्यादा हिंसा की संभावना बढ़ जाती है। तो कुछ आश्चर्य नहीं कि महावीर ऐसे ही उकडूं बैठते रहे हों। उनकी जो दृष्टि है, उनकी अपनी जो समझ है, वह समझ यह है कि क्यों व्यर्थ किसी के जीवन को नुकसान पहुंचाना?
तो हमें असहज लगता हो तो पहली बात तो यह समझनी चाहिए कि हमें असहज लगता हो, इसलिए असहज है, ऐसा मत सोचना। हमारे लिए अभ्यासगत नहीं है, किसी के लिए अभ्यासगत हो सकता है। सारी पृथ्वी पर लोग अलग-अलग ढंग से उठते, बैठते, सोते, खाते-पीते हैं। जो हमें बिल्कुल सहज लगता है, दूसरे को बिल्कुल सहज न लगेगा।
हम हाथ जोड़ कर नमस्कार करते हैं, बिल्कुल सहज लगता है। कुछ कौमें हैं,
जो जीभ निकाल कर नमस्कार करती हैं! दो आदमी मिलेंगे तो दोनों जीभ निकाल देंगे! अब हम सोच भी नहीं सकते कि किसी से नमस्कार करना हो तो जीभ निकाल दो। और अगर किसी से नमस्कार किया जीभ निकाल कर, तो झगड़े की संभावना ज्यादा है। हमारे लिए बिल्कुल असहज बात मालूम पड़ती है कि क्या पागलपन है कि दो आदमी मिलें तो जीभ निकालें! लेकिन दो आदमी मिलें तो हाथ जोड़ें, यह कौन सी बात है? अगर हाथ जोड़े जा सकते हैं, जीभ निकाली जा सकती है।

कुछ कौमें हैं, जो मिलती हैं तो नाक से नाक रगड़ कर नमस्कार करती हैं। बिल्कुल उनके लिए सहज मालूम होगा। लेकिन हम दो आदमियों को सड़क पर नाक से नाक लगाते देखें, हमें थोड़ी हैरानी होगी कि कुछ दिमाग खराब हो गया है। पश्चिम में चुंबन अत्यंत सरल, सहज सी बात है। हमारे लिए भारी ऊहापोह की बात है कि कोई आदमी सड़क पर दूसरे आदमी को चूम ले। चुंबन हमारे लिए नमस्कार नहीं है। पश्चिम में सहज नमस्कार का हिस्सा है।
जो अभ्यास में हो जाता है हमारे वह सहज लगने लगता है, जो अभ्यास में नहीं वह असहज लगने लगता है।
महावीर अहिंसा की दृष्टि से दो पंजों पर बैठते रहे होंगे। वह सर्वाधिक न्यूनतम हिंसा उसमें है। दूसरा, उनके लिए सहज भी हो सकता है। अगर आप दस आदमियों को रात सोते देखें, तो आप दसों आदमियों को अलग ढंग से सोते देखेंगे। क्योंकि हम देखते नहीं, नहीं तो अगर एक-एक आदमी को... अभी अमरीका में एक उन्होंने लेबोरेटरी बनाई, जिसमें अब तक वे दस हजार लोगों को सुला कर देख चुके हैं। कोई बीस साल से एक्सपेरिमेंट चलता है, और जिसमें अजीब नतीजे निकाले उन्होंने। कोई दो आदमी एक जैसा सोते तक नहीं! यानी और सब बातें तो बेजोड़ हैं ही, यानी दो आदमी सोते भी अपने-अपने ढंग से हैं। सोने का ढंग, उठने का ढंग भी अपना-अपना है।
दूसरी बात यह ध्यान देनी चाहिए कि इस जगत में असहज कुछ भी नहीं है। परिस्थिति अनुकूल-प्रतिकूल, व्यक्ति के सोचने-समझने का ढंग, जीने की व्यवस्था अलग-अलग स्थितियां ला सकती है। जैसे आमतौर से महावीर या तो खड़े होकर ध्यान करते हैं, वह भी साधारण नहीं लगता। क्योंकि साधारणतः लोग बैठ कर ध्यान करते हैं। महावीर खड़े होकर ध्यान करते हैं। महावीर की जो ध्यान की व्यवस्था है, वह शायद खड़े होकर करने में ज्यादा सरल पड़ती है, क्योंकि मूर्च्छा और तंद्रा का कोई उपाय नहीं है।
और हो सकता है, उकडूं बैठने में भी वही दृष्टि हो। उकडूं बैठ कर भी आप
सो नहीं सकते। जितने आप एट ईज हो जाते हैं, उतनी ही तंद्रा के आने की संभावना बढ़ जाती है। नींद आ सकती है। महावीर कहते हैं, पूर्ण सजग भीतर रहना है। पूर्ण सजगता के लिए उनका अथक श्रम है। हो सकता है, निरंतर प्रयोग से उन्हें लगा हो कि उकडूं बैठ कर नींद आने का कोई उपाय नहीं है। वे उकडूं बैठने लगे हों।
फिर वे ट्रेडीशनल माइंड नहीं हैं, यह भी समझ लेना चाहिए। महावीर परंपरागत मस्तिष्क नहीं हैं। जिसको नॉन-कनफर्मिस्ट कहते हैं, परंपरा- मुक्त, बल्कि एक अर्थ में परंपरा-निषेधक, वे वैसे व्यक्ति हैं। वे किसी भी चीज में किसी का अनुकरण करेंगे, ऐसा नहीं है। उन्हें जो सहज और आनंदपूर्ण लगेगा, वे वैसा ही करेंगे। जगत में किसी ने किया हो या न किया हो, यह सवाल नहीं है। तो इसमें भी क्यों?
लेकिन हम सब परंपरा-अनुयायी होते हैं। सब कैसे बैठते हैं, वैसे ही हम बैठते हैं! सब कैसे खड़े होते हैं, वैसे ही हम खड़े होते हैं! सब कैसे वस्त्र पहनते हैं, वैसे ही हम वस्त्र पहनते हैं! सब कैसी बातें करते, वैसी ही हम बातें करते हैं! क्योंकि सबके साथ हमें रहना है और सबसे भिन्न होकर खड़ा होना अत्यंत कठिन है। इसलिए सबके साथ यूनिफार्मिटी बांध कर चलना सरल मालूम पड़ता है।
महावीर इस तरह के व्यक्ति नहीं हैं। वे कहते हैं, सब क्या करते हैं, यह सवाल नहीं है; मुझे क्या करने जैसा लगता है, वही सवाल है। और हो सकता है, मुझसे पहले किसी को भी करने जैसा न लगा हो; और हो सकता है, मेरे बाद भी किसी को करने जैसा न लगे; लेकिन जो मुझे करने जैसा लगता है, उसका हमें अधिकार है। मैं वैसे ही जीऊंगा, वैसा ही करूंगा। इस अर्थों में वे निपट व्यक्ति- स्वातंष्य के अपूर्व पक्षपाती हैं--पूर्ण व्यक्ति-स्वातंष्य के। यानी ऐसी-ऐसी बातों में भी, जिनमें कि हम कहेंगे, इसमें स्वातंष्य की क्या जरूरत है?
यह भी समझ लेना जरूरी है इस प्रसंग में कि हमारे शरीर की और हमारे मन
की दशाओं के बीच में एक तरह का तादात्म्य हो जाता है। जैसे आपने देखा हो, कोई आदमी चिंतित होगा, सिर खुजलाने लगेगा। सभी नहीं खुजलाने लगेंगे। कोई

चिंतित होगा तो सिर खुजलाने लगेगा। अगर यह आदमी बिना कारण भी सिर खुजलाने लगे तो आप पाएंगे, यह चिंतित हो जाएगा।
यह एसोसिएशन हो जाता है। यह एसोसिएशन हो जाता है, प्रत्येक चीज जुड़ जाती है। तो एक आदमी की शारीरिक गतिविधि में भी उसकी मानसिक गतिविधि जुड़ जाती है। अगर शरीर की गतिविधि बदल दी जाए तो उसके मन की पुरानी गतिविधि के तोड़ने में सहायता मिलती है।
तो कई बार साधक ऐसी व्यवस्था करता है, जिसमें उसका ओल्ड माइंड, उसका पुराना मन अभिव्यक्ति न पा सके। क्योंकि पुराने मन की जो-जो आदतें थीं, वह उनके बिल्कुल विपरीत काम करने लगता है। वह उस पुराने मन को मौका नहीं देता सबल होने का।
हमें यह ख्याल में नहीं है कि हमारी छोटी-छोटी बातें जुड़ी हुई हैं। हमें यह भी ख्याल में नहीं है कि हम खास तरह के कपड़े जब पहनते हैं तो हम खास तरह के आदमी हो जाते हैं। और दूसरी तरह के कपड़े पहनते हैं तो दूसरी तरह के आदमी हो जाते हैं। और एक ढंग से बैठते हैं, तो एक तरह के आदमी हो जाते हैं; और दूसरे ढंग से बैठते हैं, दूसरे ढंग के आदमी हो जाते हैं। क्योंकि हमारा जो मस्तिष्क है, वह इन छोटे-छोटे संकेतों पर जीता और चलता है। बहुत छोटे- छोटे संकेत उसने पकड़ रखे हैं!
अब हो सकता है कि महावीर का उकडूं बैठना एक अजीब घटना है। साधारणतः कोई उकडूं नहीं बैठता। उनका यह उकडूं बैठना, यह गौदोहासन में ध्यान करने जाना, मेरी दृष्टि में गहरे से गहरा यह अर्थ रखता है कि चित्त को इस तरह बैठने के कोई जोड़ नहीं हैं पुराने। इस शरीर की स्थिति में बैठने पर पुराना चित्त असर्ट नहीं कर सकता, वह जोर नहीं डाल सकता। और नए चित्त की तरफ ले जाने में सरलता हो सकती है।
और अंतिम बात ख्याल में लेनी चाहिए वह यह... ।
एक झेन फकीर हुआ, उसकी मृत्यु करीब आई। वह मरने के करीब है। सब मित्र
और प्रियजन इकट्ठे हो गए हैं। वह बड़ा ख्यातिनाम है, लाखों लोग उसे प्रेम करते हैं, हजारों लोगों तक खबर पहुंच गई है। उसके झोपड़े के चारों तरफ मेला लग गया है। निकटतम शिष्य उसके आस-पास खाट के खड़े हैं। वह खाट से उठ कर खड़ा हो गया और उसने कहा कि मैं एक बात पूछना चाहता हूं, कभी तुमने किसी आदमी के खड़े-खड़े मर जाने की खबर सुनी?
तो उन लोगों ने कहा, खड़े-खड़े मर जाने की! कोई खड़ा-खड़ा मरेगा किसलिए? लोग सोए-सोए ही मरते हैं, क्योंकि मरने के पहले ही लोग लेट जाते हैं। तभी भीड़ में से एक आदमी ने कहा कि नहीं-नहीं, ऐसा नहीं है। मैंने एक फकीर के संबंध में सुना है, पक्का मुझे पता नहीं, कि वह खड़ा-खड़ा ही मर गया था।
तो उसने कहा, फिर जाने दो। तुमने कभी किसी आदमी के चलते-चलते मरने की खबर सुनी है? तो लोगों ने पूछा, आप ये बातें क्यों पूछ रहे हैं? चलते-चलते मरना! कोई चलते-चलते किसलिए मरेगा? असल में चलना रुक जाता है, इसीलिए तो मरता है। फिर भी भीड़ में से एक आदमी ने कहा कि नहीं-नहीं, यह भी हमने सुना है। कभी प्राचीन समय में एक आदमी हुआ है, जो चलते-चलते मर गया।
तो उस फकीर ने कहा, यह भी जाने दो। मतलब अपने लिए कोई ढंग खोजना पड़ेगा,
उस फकीर ने कहा, जैसा कि कोई भी न मरा हो। तो लोगों ने कहा, आप ये क्या बातें कर रहे हैं? उस फकीर ने कहा, अच्छा तो ऐसा करो कि शीर्षासन करते हुए किसी के मरने की खबर सुनी? लोगों ने कहा, यह न तो सुना और न सोचा कभी कि कोई आदमी शीर्षासन करते मर जाएगा!
उस फकीर ने कहा, तो चलो फिर यही ठीक रहेगा। क्योंकि दूसरों के जैसे क्या मरना! मरने में एक आथेंटिसिटी होनी चाहिए न! एक अपनी प्रामाणिकता होनी चाहिए। क्या दूसरे जैसे मरना! सब लोग ऐसे ही मरते हैं... ।

प्रश्नः यह अहंकार नहीं है?

समझो पहले, जल्दी मत करो।
वह आदमी शीर्षासन के बल खड़ा हो गया और मर गया। लेकिन लोग बहुत डरे। और उसकी लाश को कौन नीचे उतारे, यह भी भय समा गया। क्योंकि मतलब यह है कि आदमी मर ही गया सच में? क्योंकि शीर्षासन वह अब भी कर रहा था। मर तो गया था।

सांस लोगों ने जांच ली; हृदय के पास जाकर देखा, धक-धक बंद है, सांस बंद है। लोगों को फिर भी यह लगे कि जो आदमी अभी शीर्षासन कर रहा है, इसको ठठरी पर बांधना!
तो भीड़ में बड़ी शंका फैल गई। तो लोगों ने कहा कि अच्छा ठहरो थोड़ा, इसको कुछ मत करो। इसकी बहन भी पास में रहती है, वह भी भिक्षुणी है एक मंदिर में, पास के मंदिर में है। तो उसको बुला लाओ। वह इसकी बड़ी बहन है। इसकी आदतों से ठीक से परिचित भी होगी--इसके साथ क्या करना चाहिए।
बहन भागी आई। उसने आकर उसको जोर का धक्का दिया और कहा कि अभी तक शरारत नहीं छोड़ते हो? मरते वक्त भी कोई ऐसी बातें करनी पड़ती हैं? जिंदगी भर अपने जैसे होने की दौड़ थी, अभी मरने में भी उसको कायम रखोगे? तो वह आदमी खिलखिलाया, हंसा और गिर गया और मर गया। अभी तक वह मरा नहीं था। यानी अभी तक वह मजाक कर रहा था, मरने के लिए भी मजाक कर रहा था!
एकदम से सोचोगे तो फौरन ख्याल आ जाएगा कि ऐसा आदमी अहंकारी तो नहीं? लेकिन जो आदमी अपनी मौत के साथ भी मजाक कर सकता है, वह अहंकारी हो सकता है? हम अपनी जिंदगी के साथ भी मजाक नहीं कर सकते। असल में हम सदा दूसरे के साथ मजाक करते हैं। अहंकार सदा दूसरे के साथ मजाक करता है, सिर्फ निरहंकारी अपने साथ भी मजाक कर सकता है। जिंदगी की तो बात जिंदगी, मरने वक्त भी इतना नॉन-सीरियस है, अहंकारी कभी भी नॉन-सीरियस नहीं होता, अहंकारी सदा सीरियस है, सदा गंभीर। सब चीजें गंभीर हैं वहां। यह आदमी कैसा बच्चों के खेल जैसा मामले को ले रहा है--मरने को! और उसमें भी खिलवाड़ कर रहा है! और जब वह गिर पड़ा हंसते हुए तो उस भीड़ में हंसी का फव्वारा छूट गया कि क्या अदभुत आदमी था! मरते वक्त भी... !
और उसकी बहन इतना कह कर धक्का मार कर चली गई। उसने कहा कि यह क्या शरारत करते हो? बचपन से नटखटपन की आदत अभी भी जारी रखे हो? गंभीर होना चाहिए साधु को! यह क्या तुम गैर-गंभीरता कर रहे हो? मरना हो तो ढंग से मरो, जैसा लोग मरते हैं। उसको धक्का दे दिया, वह खूब खिल-खिला कर हंसा है, गिर पड़ा और मर गया है!
अहंकार हमें जल्दी से ख्याल में आ सकता है, क्योंकि हमारा ख्याल यह है
कि जब भी कोई व्यक्ति व्यक्ति होने की कोशिश करता है तो वह अहंकारी है। और यह बड़े मजे की बात है कि जिस व्यक्ति के पास व्यक्तित्व नहीं होता, उसी के पास अहंकार होता है। इसे थोड़ा समझ लेना।
असल में अहंकार सब्स्टीट्यूट है व्यक्तित्व का। जो नहीं है, उसकी घोषणा करके हम अपने मन को समझा रहे हैं। लेकिन जिसके पास व्यक्तित्व होता है, उसे अहंकार होता ही नहीं। दिख सकता है बहुत बार, क्योंकि वह आदमी आथेंटिकली इंडिविजुअल होगा। वह जैसा है, वैसा ही होगा, वह इस दुनिया की कोई फिक्र नहीं करेगा।
लेकिन न फिक्र करना उसका, उसका मोटिव नहीं है, उसकी इच्छा नहीं है। वह
तो जो होना चाहता है, वह है। अब इसमें अगर इनकार हो जाता है सारे जगत को तो हो जाए, इस इनकार को करने वह नहीं गया है। जब कोई व्यक्ति जो होने को पैदा हुआ है, वही हो जाता है, तभी वह अहंकार से मुक्त होता है।
और अहंकार है क्या असल में? अहंकार उस आत्मा का सब्स्टीट्यूट है, जो हमारे भीतर होनी चाहिए और नहीं है। उसकी जगह हम अहंकार को बनाए हुए हैं। अहंकार जो है, वह आत्मा का धोखा देने का काम कर रहा है। जैसे किसी आदमी के पास असली हीरे नहीं हैं तो उसने नकली हीरे की अंगूठी पहन रखी है एक। नकली हीरे की अंगूठी जो है, वह असली हीरे की झलक पैदा करती है दूसरों की आंखों में। लेकिन जिसके पास असली हीरे की अंगूठी है, वह नकली हीरे की अंगूठी किसलिए पहने? वह उसे फेंक देगा। वह दो कौड़ी की हो गई।
जिसके पास आत्मा है, वह अहंकार से उसका संबंध ही गया। क्योंकि अहंकार
की जरूरत ही इसलिए थी कि कोई आत्मा तो भीतर थी नहीं, तो हमने एक फाल्स एंटाइटी खड़ी कर रखी थी कि यह मैं हूं। अहंकार कहता था, यह मैं हूं! और उसे पता था ही नहीं कि वह कौन है! जिसे पता चल जाए कि वह कौन है, वह फेंक देगा। अहंकार से उसे क्या लेना-देना रहा।
लेकिन हमें ऐसे आदमी को पहचानना बहुत मुश्किल हो जाएगा। क्योंकि हम
दो ही भाषाएं समझते हैंः या तो वह अहंकारी हो तो हम समझते हैं, या विनम्र

हो तो हम समझते हैं। और विनम्रता जो है, अहंकार का ही सूक्ष्मतम रूप है। और ऐसा जो व्यक्ति है, न तो अहंकारी होगा, न विनम्र होगा। न वह किसी के हाथ जोड़ने जाएगा और न किसी से हाथ जुड़वाने की चिंता रखेगा। वह जैसा है, वैसा जीएगा। और वैसा आदमी दुनिया को कहेगा, तुम जैसा जीना चाहो, जीयो। लेकिन ऐसे व्यक्ति को हमें पहचानना बहुत मुश्किल हो जाएगा। बहुत बार ऐसा व्यक्ति हमें अहंकारी मालूम पड़ेगा, क्योंकि ऐसे व्यक्ति की मौजूदगी ही हमारे अहंकार को चोट पहुंचाएगी। और ऐसा व्यक्ति चूंकि विनम्रता ग्रहण नहीं करेगा, इसलिए हमारे अहंकार को ऐसे व्यक्ति से कोई तृप्ति नहीं मिलेगी।
विनम्रता है क्या? दूसरे के अहंकार को तृप्ति देना। तो जो व्यक्ति दूसरे के अहंकार को तृप्ति दे देता है, हम कहते हैं, यह बड़ा विनीत आदमी है, बहुत विनम्र आदमी है! लेकिन उसकी विनम्रता हम पहचानते कैसे हैं? पहचानते इसलिए हैं कि वह इतना झुक कर हमें नमस्कार करता है। हमें न! मुझे नमस्कार करता है झुक कर, तो मेरे अहंकार को तृप्ति दे रहा है, तो मेरे लिए विनम्र हो गया।
असल में विनम्रता की भाषा भी अहंकारियों ने खोजी है। अब वह दूसरों को कहते हैं, सब विनम्र हो जाओ, विनम्रता बड़ी ऊंची चीज है। क्योंकि अगर विनम्र सब हो जाओगे तो ही वे अहंकार को खड़ा कर सकेंगे। नहीं तो उनका अहंकार कहां खड़ा होगा? सभी अविनम्र हो गए तो मुश्किल हो जाएगी।
लेकिन जो व्यक्ति होने की खोज है, सर्च फॉर दि इंडिविजुअल है, उसमें न
तो कोई अहंकार है, न कोई विनम्रता है। वह यह कह रहा है कि मैं मैं हूं, आप आप हैं, इन दोनों में झगड़ा क्या है? यानी मुझे मुझे होने दें, आप आप हों; इसमें कोई झगड़ा नहीं लेना है। वह न विनम्रता पाल रहा है, न अहंकार पाल रहा है। वे दोनों एक ही चीजें हैं। वह यह कह रहा है कि मैं मैं हूं, तुम तुम हो; अब बीच में झंझट क्या लेनी है? तुम तुम रहो, मुझे मुझे होने दो।
लेकिन यह हमें बहुत कठिन मालूम पड़ेगा। क्योंकि यह आदमी यह कह रहा है
कि हमसे... तो हमारे अहंकार से इसका कोई संबंध नहीं मिलता। हम चाहते हैं या तो हमारी गर्दन दबाए, तो हम समझें कि यह कुछ है। या हम इसकी गर्दन दबाएं तो हम समझें कि यह कुछ है। लेकिन वह यह कहता है, कोई किसी की गर्दन मत दबाओ। तुम तुम हो, मैं मैं हूं। कृपा करो, तुम्हें जैसा रहना हो, तुम रहो; मुझे जैसा रहना है, मुझे रहने दो। लेकिन न हम खुद रह सकते हैं, वैसे जैसे हमें रहना चाहिए; न हम दूसरे को रहने देना चाहते हैं!
और फिर जो आदमी अपने पर मजाक कर ले, वह आदमी बहुत अदभुत है। अपने पर मजाक करना बहुत कठिन बात है। दूसरे पर मजाक हम करते हैं। और दूसरे पर मजाक हम करते ही इसलिए हैं कि मजाक एक शिष्ट तरकीब है दूसरे को अपमानित करने की। एक शिष्ट तरकीब है। एक तरकीब है, जिसमें दूसरा हमसे झगड़ भी नहीं सकता, क्योंकि मजाक ही तो कर रहे हैं, और हम उसे गहरी चोट भी पहुंचा देते हैं। हम उसे अपमानित भी कर देते हैं। अपमानित करने का जो शिष्ट ढंग है, वह मजाक है। तो दूसरे का व्यंग्य हम कर सकते हैं, दूसरे पर हंस सकते हैं। लेकिन अपने पर हंसने वाला आदमी, अपनी जिंदगी पर हंसने वाला आदमी और अपनी मौत पर भी हंसने वाला आदमी बहुत अनूठा है। बहुत ही अनूठा है। क्योंकि वह बुनियादी खबर दे रहा है कि अब दूसरे का तो सवाल ही नहीं रहा, यह हम खुद ही अपने पर हंसने जैसी हालत पाते हैं। खुद अपने पर भी हंसने जैसी हालत पाते हैं। यानी यह जो मेरा व्यक्तित्व है, यह भी हंसने योग्य ही है। इसमें कुछ ऐसी बात नहीं है, इसे गंभीरता से लेने का सवाल नहीं है।
लेकिन दुनिया में साधु-संत बड़े गंभीर होकर बैठे हैं, अति गंभीर होकर बैठे हैं! और उनकी गंभीरता का एक बड़ा बुनियादी कारण है कि उन्होंने दूसरों का मजाक करना बंद कर दिया और अपना मजाक वे सीख नहीं पाए हैं। उनकी गंभीरता का जो बहुत गहरे में कारण है, हंसें कैसे? दूसरे की मजाक बंद कर दी है, क्योंकि वह गलत थी। और अपनी मजाक का शुरू करना तो बहुत कठिन बात है, वह हो नहीं सकती। तो वे गंभीर हो गए हैं, भारी गंभीर हो गए हैं।
यह जो गंभीरता दिखती है साधु में, उसका कारण यह है। नहीं तो वह एकदम हलका हो जाएगा, एकदम वेटलेस हो जाएगा। एकदम हलका हो जाए, क्योंकि बात ही क्या है? वह किसी भी चीज पर हंस सकता है। और जो अपने पर हंस सकता है, वह जब

कभी दूसरे पर भी हंसता है तो चोट नहीं पहुंचाता। जो अपने पर हंस सकता है, वह अगर दूसरे पर भी हंसता है तो चोट नहीं पहुंचाता; बल्कि जो आदमी अपने पर हंस सकता है और दूसरे पर हंसता है, तो उस दूसरे को लगता है कि वह आदमी हमको भी अपना ही मानता है। नहीं तो इसके बिना हंसता भी नहीं। समझ रही हो न उसकी बात? हमें जो जल्दी से ख्याल उठते हैं, उनको बहुत जल्दी मत पकड़ लेना। बहुत गहरे से गहरे जाकर खोजना चाहिए कि कहां क्या हो सकता है।
यह जो मैंने घटना कही इस फकीर की, वह इसीलिए कही कि मैं यह कह सकूं कि व्यक्ति हैं, जो मरने का भी अपना ढंग, जो मृत्यु को भी एक प्रामाणिकता और एक व्यक्तित्व देना चाहते हैं! और महावीर इन व्यक्तियों में अदभुत हैं। वे प्रत्येक चीज को अपना व्यक्तित्व--जैसा उन्हें लगता है। यानी संसार के शास्त्र कहें कि गौदोहासन में किसी को ज्ञान हुआ है? और महावीर गौदोहासन में बैठ कर ज्ञान को पा लेंगे!
कबीर के मरने का वक्त आया। तो मरते वक्त तक कबीर काशी में थे। काशी के पास थोड़ी दूर पर मगहर एक गांव है। और कथा यह है कि काशी में तो गधा भी मरे तो देवता हो जाता है। और मगहर में अगर देवता भी मरे तो गधा हो जाता है। तो लोग काशी मरने आते हैं! मगहर के लोग तो सब काशी मरने आते हैं, क्योंकि मगहर में तो बड़ा डर रहता है। तो काशी में, एक दस-पांच दिन पहले मरने के करीब कोई हुआ, कि उसको ले आते हैं, सांस काशी में टूटे।
कबीर जिंदगी भर काशी में रहे, मरने का वक्त आया तो कहा कि मुझे मगहर ले चलो! तो लोगों ने कहा, आप पागल हो गए हैं? मगहर से तो कोई मरने यहां आता है। जिंदगी भर तो यहां जीए, मगहर मरने जाते हो? मगहर में मरता है आदमी, गधा हो जाता है!
कबीर ने कहा, वह ठीक है। अगर काशी में मरने की वजह से देवता हुए तो अपना क्या हुआ! यानी काशी की वजह से हो गए देवता, अपना क्या हुआ! अगर मगहर में मर कर देवता हो सके तो कुछ बात भी होगी, लगेगा कि कुछ किया भी। और अगर मगहर में मरने से गधा हुए तो वह मगहर की वजह से हुए; काशी में मरने से देवता हुए, वह काशी की वजह से हुए। दोनों में कोई फर्क नहीं है, क्योंकि किसी और ही वजह से बात हो गई। फर्क तो अपनी वजह से होना चाहिए। तो मुझे पता कैसे चले कि अपनी ही वजह से देवता हुए हैं? काशी में तो झंझट हो जाएगी। अगर हो गए देवता तो काशी की वजह होगी। मगर मरे कबीर मगहर में! अब ऐसे जो लोग हैं... ।
तो महावीर यह कह रहे हैं कि यह कोई सवाल नहीं है कि इस आसन में ध्यान होगा, कि उस आसन में ध्यान होगा। आसन से ध्यान का कोई संबंध ही नहीं है। यह तीसरी बात जो मैं कहना चाहता थाः आसन से ध्यान का कोई संबंध ही नहीं है। ध्यान किसी भी आसन में हो सकता है। क्योंकि ध्यान है आंतरिक घटना, आसन है बाहर शरीर की स्थिति। और आसन का ठीक से अर्थ समझ लें। तो जो आसान हो, वही आसन है। तो जो जिसको आसान हो! सभी को एक जैसा आसान नहीं भी होता है।
तो महावीर यह भी इससे सूचना देना चाह रहे हैं कि कोई पद्मासन में, कि सिद्धासन में ही ध्यान होगा और ज्ञान की उपलब्धि होगी, वह गलत है, क्योंकि इस भांति तो तुम ज्ञान को शरीर की बैठक से बांध रहे हो। शरीर से क्या लेना- देना है! भीतर जो है वह, वह किसी भी आसन में हो सकता है।
महावीर की वह जो गौदोहासन की स्थिति, जिसमें उनको केवल-ज्ञान हुआ, जैनियों ने हिम्मत नहीं की कि अपने मंदिरों में वैसी मूर्तियां बना कर रखें। मूर्तियां सब बनाई हैं पद्मासन में, क्योंकि पुरानी धारणा यह है कि ज्ञानी को पद्मासन में ज्ञान होता है!
अब ये मजे की बातें हैं। यानी वह आदमी सब गड़बड़ करके गया, तुमने सब फिर व्यवस्थित कर दिया, वही पुराने का पुराना! वह आदमी ऐसे आसन में बैठ कर केवल-ज्ञान को उपलब्ध हुआ... ।

प्रश्नः वह तो निर्वाण की स्थिति की है!

असली घटना तो केवल-ज्ञान की है, निर्वाण वगैरह तो मूल्य की बातें नहीं हैं। असली घटना तो केवल-ज्ञान की है, जब केवल-ज्ञान घटित हुआ। निर्वाण तो अच्छे आदमी को हम मर गया ऐसा कहना ठीक नहीं समझते, इसलिए निर्वाण वगैरह

कहते हैं। यानी अच्छा आदमी मरता है तो मर गया, ऐसा कैसे कहें, इसलिए इसको निर्वाण कहते हैं। वह तो सिर्फ शरीर का छूटना है। मगर उससे भी गहरे में शरीर पहले छूट चुका, वह है केवल-ज्ञान की घटना।
लेकिन वह हमने हिम्मत नहीं की। क्योंकि महावीर हमको तक एब्सर्ड मालूम पड़ेंगे ऐसे गौदोहासन में बैठे हुए! हमको भी ऐसा लगेगा कि यह तो जरा कुछ जंचती नहीं बात। तो कैसे महावीर जंचने चाहिए, हम वैसा उनको बना लेते हैं! और सदा यह होता है, सब बातों में यह होता है, कैसे जंचने चाहिए!
अब दिगंबर महावीर के नग्न चित्र भी बनाएंगे--तो कितनी हमारी कमजोरी है--तो एक झाड़ के पास बनाएंगे, जिसमें झाड़ की शाखाओं में उनकी नग्नता छिपा देंगे! यानी जो लंगोटी उन्होंने छोड़ी है, तैयार करवा देंगे! मगर नग्न सीधा खड़ा न कर सकेंगे! तस्वीर बनाएंगे, एक झाड़ की शाखाएं निकाल देंगे और झाड़ की शाखाओं में नंगापन छिपा देंगे! ये महावीर से ज्यादा होशियार लोग हैं!
अब या तो ऐसे ही झाड़ के पास ही महावीर खड़े रहते रहे हों कि कहीं नंगापन
न दिख जाए। तो फिर झंझट क्या है? इससे तो लंगोटी अच्छी, कि अपन कहीं जा भी तो सकते हैं पहन कर! यह झाड़ के साथ खड़े रहना तो बहुत ही गड़बड़ है। लेकिन हमारा जो दिमाग है, अत्यंत क्षुद्र, वह सब फौरन ढाल लेता है अपने हिसाब से। और फिर जो शक्ल हम बनाते हैं, जो व्यवस्था हम देते हैं, वह हमारी होती है। वह सच्ची नहीं होती।
अब एक आदमी नंगा होने की हिम्मत करे तो उसके अनुयायी उसको नंगा न होने देंगे। अगर वह हो ही जाए, न माने, तो वे कोई तरकीबें निकाल लेंगे और पीछे उसको लीप-पोत कर बराबर कर देंगे, कि वह आदमी नंगा नहीं था! और इस तरह सारी चीजों में चलता है। और इसलिए क्रांतियां पैदा होती हैं और मर जाती हैं। और इसलिए रोज-रोज क्रांति की जरूरत पड़ जाती है। रोज-रोज उन लोगों की जरूरत है, जो फिर से आकर चीजों को तोड़ दें।
और यह बड़ी ही दुर्भाग्यपूर्ण घटना है, लेकिन यही होता रहा है कि जितना बड़ा क्रांतिकारी होगा, उसको उतना ही ज्यादा लीप-पोत दिया जाएगा। इसलिए यह ख्याल में रखना चाहिए कि दुनिया में जो बड़े क्रांतिकारी नहीं हुए, उनकी आथेंटिक, प्रामाणिक स्थिति हमें उपलब्ध है। वे जैसे थे, वैसा हमें उपलब्ध है। लेकिन दुनिया में जो बड़े क्रांतिकारी हुए, उनको हमने लीप-पोत दिया, उनका हमें कोई पता नहीं कि वे कैसे थे! बिल्कुल और ही शक्ल उपलब्ध है, जैसे कि वे कभी भी नहीं रहे होंगे!
तो यह प्रश्न ठीक ही है। वे सब चीजों में जो उन्हें ठीक लगता है, वैसा
ही करते हैं। वे किसी देवता से नहीं पूछेंगे, किसी गुरु से नहीं पूछेंगे। वे यह नहीं कहेंगे कि इस आसन में नहीं होगा। यह कैसे बैठे हो? ऐसे कहीं ज्ञान हुआ है किसी को? तो वे कहेंगे, तुम अपने रास्ते जाओ। क्योंकि ज्ञान को अगर आना है तो मेरी शर्तों पर, मैं कोई ज्ञान की शर्तें मानने जाने वाला नहीं हूं। यानी मेरी शर्तों पर, मैं जैसा हूं, उसको वैसे में ही आना है। और अगर कोई व्यक्ति इतना हिम्मतवर और साहसी है तो परमात्मा को उसी की शर्तों पर आना पड़ेगा। शर्तों का मतलब यह कि वह जैसा है, उसको वैसा ही आना पड़ेगा। कोई रुकावट इसमें नहीं पड़ सकती।
यह अगर ख्याल में आ जाए तो व्यक्ति-स्वातंष्य की धारणा स्पष्ट होती है। तब मैं कहता हूं कि किसी भी आसन में--सोए, बैठे, लेटे, खड़े, कैसे भी ध्यान हो सकता है। यह अपने-अपने चुनाव की बात है कि कैसा उसके लिए सरल लग सकता है। क्योंकि गौदोहासन तक में एक व्यक्ति मोक्ष जा चुका, इसलिए अब चिंता की बात नहीं है। यानी अब, अब किसी भी आसन में यह घटना घट सकती है। लेकिन शायद ही एकाध जैन मुनि हो, जो गौदोहासन में बैठा मिल जाए। वह परंपरागत ढंग बांध कर बैठा हुआ है, उसको चलाए चला जाता है!
ये परंपरा को तोड़ने के प्रतीक हैं सिर्फ। यानी ऐसा व्यक्ति छोटी-मोटी चीजों में भी परंपरा को तोड़ देना चाहेगा। यानी ऐसी क्षुद्र बातों में भी वह कहेगा कि नहीं, मैं जैसा हूं, वैसा हूं। और प्रत्येक व्यक्ति में इतना साहस आना चाहिए, तो ही व्यक्ति साधक हो सकता है। और जिस दिन परम साहस प्रकट होता है, उस दिन सिद्ध होने में क्षण भर की देर नहीं है।

महावीर: मेरी दृष्टि में
इक्कीसवां प्रवचन

अनेकांतः महावीर का दर्शन-आकाश

प्रश्नः आपने पिछले दिनों भगवान महावीर के संबंध में एकांत वाली बात कही थी। वह क्या रियलाइजेशन जो भगवान महावीर का था--वह भी एकांत ही था? क्या वह संपूर्ण नहीं था? यह मेरा प्रश्न है।

इस संबंध में दो बातें समझनी चाहिए, दो शब्द समझने चाहिए। एक शब्द है दृष्टि और दूसरा शब्द है दर्शन।
दृष्टि होगी एकांगी, सदा ही एकांत होगी, अधूरी होगी, खंड होगी। दृष्टि
का मतलब है, एक जगह मैं खड़ा हूं, वहां से जैसा दिखाई पड़ता है। जो दिखाई पड़ता है, वह भी उतना ही महत्वपूर्ण है। और जिस जगह मैं खड़ा हूं, वह भी कम महत्वपूर्ण नहीं है--कहां से मैं देख रहा हूं! जहां से खड़े होकर मैं देख रहा हूं, वैसा मुझे दिखाई पड़ेगा, वह दृष्टि होगी।
और इसी के संदर्भ में दर्शन शब्द को समझना बड़ा कीमती है। दर्शन का मतलब है, जहां सब दृष्टियां मिट गईं, जहां मेरे खड़े होने की कोई जगह न रही। सच में जहां मैं ही न रहा, वहां जो होगा, उसका नाम है दर्शन। दर्शन सदा ही समग्र होगा और दृष्टि सदा ही खंड होगी।
तो जिसे हम आत्मानुभूति या रियलाइजेशन कहें, वह वह क्षण है, जब दृष्टियां सब मिट गईं। असल में देखने वाला भी मिट गया। असल में वह जगह भी मिट गई, जहां हम खड़े थे, वह भी मिट गया जो खड़ा हो सकता था, सब मिट गया। मेरी तरफ से कुछ भी न बचा। तो अब जो मुझे प्रतीति होगी, अब जो अनुभव घटित होगा, वह घटित समग्र होगा। तो महावीर का जो दर्शन है--या बुद्ध का या कृष्ण का या क्राइस्ट का या मोहम्मद का--दर्शन सदा ही समग्र होगा। दर्शन कभी भी अधूरा नहीं हो सकता। क्योंकि अधूरा बनाने वाली जो भी बातें थीं, वे सब समाप्त हो गईं।
और एक तरह से समझें। जब तक मेरे चित्त में विचार है, तब तक मेरे पास दृष्टि होगी, दर्शन नहीं होगा। क्योंकि मैं अपने विचार के चश्मे से देखूंगा। मेरे विचार का जो रंग होगा, वही उस चीज पर भी पड़ जाएगा, जिसे मैं देखूंगा। और दर्शन होगा तब, जब मैं निर्विचार हो जाऊंगा। जब कोई विचार मेरे पास न होगा, जब विचार मात्र नहीं होगा, खाली जगह से मैं देखूंगा--जहां मेरा कोई पक्ष नहीं, कोई वाद नहीं, कोई विचार नहीं, कोई शास्त्र नहीं, कोई सिद्धांत नहीं, मैं हिंदू नहीं, मुसलमान नहीं, ईसाई नहीं, जैन नहीं--जब मैं कोई भी नहीं हूं, सिर्फ निपट खाली मन रह गया है, वहां से जब देखूंगा तो जो होगा, वह दर्शन होगा।
विचार दृष्टि तक ले जाता है, निर्विचार दर्शन तक।
एक बात और समझनी उपयोगी है। दर्शन कितना ही समग्र हो--समग्र होगा ही-- लेकिन जब दर्शन को कोई प्रकट करने जाएगा, तब फिर दृष्टि शुरू हो जाएगी। क्योंकि दर्शन को फिर प्रकट करने के लिए विचारों का उपयोग करना पड़ेगा। और जैसे ही विचार का उपयोग किया कि समग्र नहीं हो सकता। असल में विचार की एक व्यवस्था है, वह कभी भी टोटल और पूरी नहीं हो सकती। विचार चीजों को तोड़ कर देखता है और वस्तु सत्य में चीजें सब जुड़ी हुई हैं।
अगर हम विचार से देखने जाएंगे तो जन्म अलग है, मृत्यु अलग है। और जन्म
और मृत्यु को विचार में जोड़ना अत्यंत कठिन है। क्योंकि जन्म बिल्कुल उलटी चीज है, मृत्यु बिल्कुल उलटी चीज है। लेकिन वस्तुतः जीवन में जन्म और मृत्यु एक ही चीज के दो छोर हैं। वहां जन्म अलग नहीं है, मृत्यु अलग नहीं है। जो जन्म पर शुरू होता है, वही मृत्यु पर विदा होता है। वे एक ही यात्रा के दो बिंदु हैंः पहला बिंदु जन्म है, अंतिम बिंदु मृत्यु है।
अगर हम जीवन को देखेंगे तो ये इकट्ठे हैं और अगर विचार में सोचने जाएंगे तो जन्म और मृत्यु अलग-अलग हो जाएंगे। अगर हम विचार में सोचेंगे तो काला और सफेद बिल्कुल अलग-अलग हैं, ठंडा और गरम बिल्कुल अलग-अलग हैं, लेकिन अगर अनुभव में सोचने जाएंगे तो ठंडा और गरम एक ही चीज के दो रूप हैं, और

काला और सफेद भी एक ही छोर के, एक ही स्पैक्ट्रम के दो छोर हैं। लेकिन जब भी हम प्रकट करने चलेंगे तो हमें फिर विचार का उपयोग करना पड़ेगा।
तो मोहम्मद को, महावीर को, बुद्ध को, कृष्ण को, क्राइस्ट को जो अनुभूति होती है, वह तो समग्र है; लेकिन जब वे उसे अभिव्यक्त करते हैं, तब वह समग्र नहीं रह जाती, तब वह एक दृष्टि रह जाती है। और इसीलिए जो प्रकट दृष्टियां हैं, उनमें विरोध पड़ जाता है। दर्शन में कोई विरोध नहीं है, लेकिन प्रकट दृष्टि में विरोध है।
मैं और आप श्रीनगर आएं, तो श्रीनगर तो एक ही है जिसमें मैं आऊंगा और आप आएंगे। फिर हम दोनों श्रीनगर से गए, फिर कोई हमसे पूछता है कि क्या देखा? तो जो मैं कहूंगा, वह भिन्न होगा, जो आप कहेंगे उससे!
श्रीनगर तो एक था, हम आए एक ही नगर में थे, लेकिन हो सकता है मुझे झील पसंद हो और मैं झील की बात करूं, और आपको पहाड़ पसंद हो और आप पहाड़ की बात करें। और हो सकता है मुझे दिन पसंद हो, मैं सूरज की बात करूं, और आपको रात पसंद हो और आप चांद की बात करें। और हमारी दोनों बातें ऐसी मालूम पड़ने लगें कि हम दो नगरों में गए होंगे। क्योंकि एक चांद की बात करता है, एक सूरज की; एक अंधेरे की बात करता है, एक उजाले की; एक सुबह की बात करता है, एक सांझ की; एक पहाड़ की बात करता है, एक झील की। शायद सुनने वाले को मुश्किल हो जाए यह बात कि ये पहाड़ और झील और ये चांद और सूरज और ये रात और दिन, ये किसी एक ही नगर के हिस्से हैं। वे इतने विरोधी भी मालूम पड़ सकते हैं कि तालमेल बिठालना मुश्किल हो जाए।
वे जो खबरें हम ले जाएंगे, वे दृष्टियां होंगी, वे विचार होंगे। लेकिन
जो हमने जाना और जीया था, वह दर्शन था। उस दर्शन में श्रीनगर एक था। वहां रात-दिन जुड़े थे, पहाड़-झील जुड़ी थी, वहां अच्छा-बुरा जुड़ा था। वहां सब इकट्ठा था। लेकिन जब हम बात करने गए, चुनाव हमने किया, छांटा, तो हम खड़े हो गए और हमने एक दृष्टि से चुनाव किया।
तो जैसे ही कोई बात बोली जाएगी, वैसे ही दृष्टि बन जाएगी। और यही बड़ा खतरा रहा है कि दृष्टियों को दर्शन समझने की भूल होती रही है। और इसलिए जैनों की एक दृष्टि है, दर्शन नहीं; हिंदुओं की एक दृष्टि है, दर्शन नहीं; मुसलमानों की एक दृष्टि है, दर्शन नहीं। अगर दर्शन की हम बात करते हैं तो हिंदू, मुसलमान, जैन सब खो जाएंगे। वहां तो एक ही रह जाएगा, वहां कोई दृष्टि नहीं है, कोई विचार नहीं है।
महावीर का जो अनुभव है, वह तो समग्र है, लेकिन अभिव्यक्ति समग्र हो ही नहीं सकती। जब भी हम कहने जाते हैं, तभी समग्र को हम कह नहीं सकते। परमात्मा का अनुभव तो बहुत बड़ी बात है, छोटे से, सरल से अनुभव भी समग्ररूपेण प्रकट नहीं होते।
आपने एक फूल को देखा, बहुत सुंदर है ऐसा अनुभव किया, फिर आप कहने गए।
तो जब आप कहते हैं, तब आपको ही लगता है कि कुछ बात अधूरी रह गई। यानी बहुत-बहुत सुंदर है, ऐसा कहने पर भी कुछ भी पता नहीं चलता, फूल जैसा था उसका। वह जो आपको अनुभव हुआ था जीवंत, वह जो आपका संपर्क हुआ था फूल से, वह जो सौंदर्य आप पर प्रकट हुआ था, वह जो सुगंध आई थी, वह जो हवाओं में फूल का नृत्य देखा था, वह जो सूरज की किरणों में फूल की खुशी देखी थी, वह कितने ही बार कहिए बहुत-बहुत सुंदर है; तब भी लगता है कि बात कुछ अधूरी रह गई, कुछ बेस्वाद, बिना सुगंध की, मृत, मुर्दा रह गई। कुछ पता नहीं चलता। वह जो देखा था, उसका कोई पता नहीं चलता।
तो जब हम साधारण सी बात भी कहने जाते हैं, तो जो अनुभव किया था, उस अनुभव में बहुत कमी पड़ जाती है। और जब असाधारण अनुभव को कहने कोई जाता है, तब तो इतनी कमी पड़ जाती है, जिसका कोई हिसाब लगाना कठिन है। और इसीलिए दुनिया में जो संप्रदाय हैं, वे कही हुई बात पर निर्भर हैं, जानी हुई बात पर नहीं। अगर जानी हुई बात पर कभी संप्रदाय निर्मित हो जाए, यह असंभव है, क्योंकि जो जाना गया है, वह भिन्न है ही नहीं।
एक बार ऐसा हुआ कि फरीद यात्रा कर रहा था। कुछ मित्र साथ थे। और कबीर
का आश्रम निकट आया तो फरीद के मित्रों ने कहा, कितना अच्छा न हो कि हम कबीर के पास दो दिन रुक जाएं! आप दोनों की बातें होंगी, तो हम तो धन्य हो जाएंगे। शायद ऐसा जन्मों में ऐसा अवसर मिले कि कबीर और फरीद का मिलना हो और लोग सुन

लें। फरीद ने कहा, तुम कहते हो तो जरूर रुक जाएंगे, लेकिन बात शायद ही हो। तो उन्होंने कहा, लेकिन बात क्यों नहीं होगी? उन्होंने कहा, वह तो चल कर ठहरेंगे तो ही पता चल सकता है।
कबीर के मित्रों को भी खबर लग गई है, उन्होंने कहा कि फरीद निकलता है यहां से, रोक लें, प्रार्थना करें, हमारे आश्रम में रुक जाए दो दिन। आप दोनों की बातें होंगी, कितना आनंद होगा! कबीर ने कहा, रोको जरूर, आनंद भी बहुत होगा, लेकिन बातें शायद ही हों। पर उन्होंने कहा, बातें क्यों न होंगी? तो कबीर ने कहा, वह तो फरीद आ जाए तो पता चले।
फरीद को रोक लिया गया है। वे दोनों गले मिले हैं, वे दोनों हंसे हैं,
वे दोनों पास बैठे हैं--दो दिन बीत गए हैं, लेकिन कोई बात नहीं होती। सुनने वाले तो बहुत ऊब गए हैं, बहुत घबड़ा गए। फिर विदाई भी हो गई, फिर कबीर गांव के बाहर जाकर छोड़ भी आए। वे मिले गले, रोए भी, लेकिन फिर भी नहीं बोले! छूटते ही कबीर के शिष्यों ने पूछा, यह क्या पागलपन है? दो दिन आप बोले नहीं? फरीद के शिष्यों ने पूछा, यह क्या हुआ? हम तो घबड़ा गए। दो दिन यह कैसी चुप्पी! तो कबीर ने कहा, जो मैं जानता हूं, वही फरीद जानते हैं, अब बोलने का उपाय क्या है? दो अज्ञानी बोल सकते हैं, एक ज्ञानी एक अज्ञानी बोल सकता है, दो ज्ञानियों के बोलने का उपाय क्या है? और जो बोलता, वह नाहक अज्ञानी बन जाता। क्योंकि जो वह बोल कर कहता, वह दूसरे ने जो जाना है, उससे इतना छोटा होता--वह दूसरे के पास तो जाना हुआ है और एक बोल कर कहता, तो जाने हुए के सामने बोल कर कहना बहुत कठिन बात है। क्योंकि उसको लगता है कि अरे! उसका जाना हुआ तो अपार है और बोला हुआ छोटा सा! तो जो बोलता, वह नासमझ होता। फरीद से कहा, तो फरीद ने कहा कि बोलते? कबीर के सामने बोलते? तो तुम मुझे पागल बना देते। बोल कर मैं फंसता! क्योंकि जो बोलता, वह बोलते से ही गलत हो जाता।
जो जाना गया है, उसके सामने बोला हुआ सब गलत है--सब। न जाना गया हो तो सभी बोला हुआ सच मालूम पड़ता है। लेकिन जिसने जाना हो, उसके सामने बोला गया इतना फीका है, इतना फीका... ।
जैसे मैंने आपको देखा हो, आपको देखा हो निकट से, जाना हो, पहचाना हो।
और फिर कोई मुझे सिर्फ आपका नाम बता दे और नाम को ही परिचय बता दे, तो नाम क्या परिचय बनेगा! जिस व्यक्ति को मैं जानता हूं, उसका नाम क्या परिचय बनेगा! हां, जिसको हम नहीं जानते, उसके लिए नाम भी परिचय बन जाता है। लेकिन जिसको हम जानते हैं, उसके नाम से क्या फर्क पड़ता है! कोई परिचय नहीं बनता। नाम कोई परिचय है? तो परिचय नहीं है।
तो फरीद ने कहा कि जरूरी था कि मैं चुप रह जाऊं, क्योंकि बोल कर मैं जो कहता, वह सिर्फ नाम होता। और उस आदमी ने उसे जाना है, और उसका सिर्फ नाम लेना एकदम बचकाना था।
जहां ज्ञान है, वहां भेद नहीं है। और जहां शब्द है, वहां अभेद होना असंभव है। जैसे ही शब्द का प्रयोग किया, भेद पड़ने शुरू हो गए। यह ऐसे ही है, जैसे हम सूरज की किरण को देखें, वहां कोई भेद नहीं है। सूरज की किरण सीधी और साफ है। लेकिन एक प्रिज्म ले लें, और फिर सूरज की किरण को देखें, तो प्रिज्म सात टुकड़ों में तोड़ देता है। प्रिज्म के इस पार सूरज की इकहरी किरण देखनी मुश्किल है। प्रिज्म के उस पार सूरज की सात खंडों में विभाजित किरण देखनी मुश्किल है। शब्द प्रिज्म का काम कर रहा है। जो जाना गया है, वह शब्द के उस पार है; और जो कहा गया है, वह शब्द के इस पार है। शब्द के इस पार सब टूट जाता है खंड-खंड, शब्द के उस पार सब अखंड है।
इसलिए महावीर ने जो जाना है, वह तो समग्र है। लेकिन जो कहा है, वह चाहे महावीर कहें, चाहे कोई भी कहे, वह समग्र नहीं हो सकता। वह एकांत ही होगा, वह खंड ही होगा। और इसीलिए जैन खंडित होगा, वह एकांती होगा। क्योंकि उसने तो जो कहा है, वह पकड़ेगा। महावीर का समग्र उसकी पकड़ में नहीं आने वाला। इसलिए वह जैन होकर बैठ जाएगा। वह अनेकांत को भी वाद बना लेगा। वह महावीर के दर्शन को भी दृष्टि बना लेगा और उसको पकड़ कर बैठ जाएगा।
इसलिए सभी अनुयायी खंड सत्य को पकड़ने वाले होते हैं। और यह भी समझ लेना जरूरी है कि जिसने खंड सत्य को पकड़ा है, वह जाने-अनजाने अखंड सत्य का दुश्मन हो जाता है। क्योंकि उसका आग्रह यह होता है कि मेरा खंड ही समग्र

है। और सभी खंड वालों का यही आग्रह होता है, मेरा खंड समग्र है। सभी खंड मिल कर समग्र हो सकते हैं, लेकिन प्रत्येक खंड का यह दावा कि मैं समग्र हूं, दूसरे खंड का भी यही दावा कि मैं समग्र हूं, ये दावे मिल कर समग्र नहीं हो सकते।
ये दावे सारी मनुष्य-जाति को खंड-खंड बांट देते हैं। मनुष्य इसी तरह--
जो कि अखंड है--टुकड़ों में, संप्रदायों में, सेक्ट्स में बंट कर टूट गया है।
दृष्टि पर हमारा जोर होगा तो संप्रदाय होंगे। अगर दर्शन पर हमारा जोर होगा तो संप्रदायों का कोई उपाय नहीं।
मेरा सारा जोर दर्शन पर है, दृष्टि पर जरा भी नहीं। महावीर का भी जोर दर्शन पर है। और यह बड़े मजे की बात है कि जितनी दृष्टियों से हम मुक्त होते चले जाएंगे, उतना हम दर्शन के निकट पहुंचते हैं। आमतौर से शब्द से ऐसा भ्रम होता है कि दृष्टि ही दर्शन देगी, लेकिन दृष्टि ही सबसे बड़ी बाधा है दर्शन में।
अगर मेरी कोई भी दृष्टि है तो मैं पूरे सत्य को कभी भी नहीं जान सकता हूं। अगर मेरी कोई दृष्टि नहीं है, मैं दृष्टि-मुक्त, दृष्टि-शून्य होकर खड़ा हो गया हूं, तो ही मैं पूर्ण को जान सकता हूं। क्योंकि तब पूर्ण को मेरे तक आने में कोई भी बाधा नहीं।

प्रश्नः दर्शन और अनुभूति एक ही बात है?

हां, बिल्कुल ही एक बात है।

प्रश्नः महावीर ने घर में ही रह कर साधना क्यों नहीं की? बाहर जाने की क्या आवश्यकता थी?

ये सवाल भी हमें उठते हैं, ये प्रश्न भी हमें महत्वपूर्ण मालूम पड़ते हैं, क्योंकि घर और बाहर हमें दो विरोधी चीजें मालूम पड़ती हैं। हमें ऐसा लगता है कि घर एक अलग दुनिया है और बाहर एक अलग दुनिया है। हमें कभी भी ख्याल नहीं आता कि घर और बाहर, बाहर और भीतर एक ही विराट के दो हिस्से हैं। एक श्वास मेरे भीतर गई तो मैं कहता हूं भीतर, और एक क्षण भीतर नहीं है
कि बाहर हो गई, और मैं कहता हूं बाहर। जो एक क्षण पहले बाहर थी, वह एक क्षण बाद भीतर हो जाती है; जो एक क्षण भीतर थी, वह एक क्षण बाद बाहर हो जाती है। क्या बाहर है और क्या भीतर है? कौन सा घर है और कौन सा घर से अतिरिक्त अन्यथा है?
हमारी जो दृष्टि है, वह हमने बड़ी सीमित बना रखी है। घर से हमारा मतलब है, जो अपना है। और बाहर से हमारा मतलब है, जो अपना नहीं है। लेकिन क्या ऐसा नहीं हो सकता कि किसी के लिए कुछ भी ऐसा न हो जो अपना नहीं है? और अगर किसी व्यक्ति के लिए ऐसा हो जाए कि कुछ भी ऐसा नहीं है जो अपना नहीं है, तो घर और बाहर का सवाल समाप्त हो गया। तब घर ही रह गया, बाहर कुछ भी न रहा; या उलटा भी कह सकते हैं कि बाहर ही रह गया, घर कुछ भी न रहा। एक बात तय है कि जिस व्यक्ति को दिखाई पड़ना शुरू होगा, उसे बाहर और भीतर की जो भेद-रेखा है, वह मिट जाएगी। वही बाहर है, वही भीतर है।
ये हवाएं हमारे घर के भीतर भर गई हैं तो हम कह रहे हैं घर के भीतर, और हमें ख्याल नहीं है कि प्रतिपल ये हवाएं बाहर हुई चली जाती हैं, और प्रतिपल जो बाहर थीं, वे भीतर चली आती हैं। घर के भीतर हवाएं कुछ अलग हैं घर के बाहर से? यह जो प्रकाश घर में आ गया है, यह कुछ अलग है उस प्रकाश से जो बाहर है?
हां, इतना ही फर्क है कि दीवालों ने इसे थोड़ा मद्धिम किया है, दीवालों
ने इसकी प्रखरता छीन ली है, दीवालों ने इसे थोड़ा अंधेरा किया है, दीवालों ने उसे उतना ही ताजा और जीवंत नहीं रहने दिया है, जितना वह बाहर है। हवाएं भी जो घर के भीतर आ गई हैं, थोड़ी गंदी हो गई हैं। दीवालों ने, सीमाओं ने उनकी स्वच्छता छीन ली है, ताजगी छीन ली है।

और अगर कोई व्यक्ति घर के भीतर बैठे-बैठे पाता है कि अस्वच्छ हो गया
है सब, और द्वार के बाहर जाकर खुले आकाश के नीचे खड़ा हो जाता है, तो हम नहीं कहते कि उसने घर छोड़ दिया है, हम इतना ही कहते हैं कि घर के बाहर और बड़ा घर है, जहां और स्वच्छ हवाएं हैं, और स्वच्छ सूरज है, और साफ-सुंदर जगत है। आदमी की बनाई हुई दीवालें हैं। और गौर से हम देखें तो हमारे मोह की दीवालें हैं, जो हमारा घर बनाती हैं।
मैंने सुना है, एक मकान में आग लग गई है। उसका घर का मालिक छाती पीट-पीट कर रो रहा है। भीड़ इकट्ठी है। और तभी एक आदमी आकर उससे कहता है कि आप व्यर्थ रो रहे हैं, आप नाहक रो रहे हैं। मकान तो बेच दिया गया है। आपके लड़के ने उसे बेच दिया है और उसके रुपए भी मिल गए हैं। जैसे ही वह आदमी सुनता है कि मकान बेच दिया गया है और रुपए मिल गए हैं, वह आदमी हंसने लगता है, उसके आंसू सूख जाते हैं! वह हंस रहा है! अब भी मकान में आग लगी है, मकान अब भी जल रहा है, लेकिन अपना नहीं है अब, अब कोई फिकर न रही! वही मकान जल रहा है, वही आदमी है, लेकिन सब बदल गया! बीच से मेरे का एक संबंध टूट गया।
और तभी लड़का भागा हुआ आया और उसने कहा, किसने आप से कह दिया कि रुपए मिल गए हैं? रुपए मिलने का वायदा था, रुपए मिले नहीं हैं। और वह आदमी नट गया है। वह कहता है, जले हुए मकान के अब क्या रुपए देंगे! और उस आदमी की आंख में फिर आंसू आ गए हैं, वह फिर छाती पीटने लगा है कि मर गए, लुट गए।
अभी भी मकान जल रहा है। और हो क्या रहा है इस बीच? मकान को पता भी नहीं होगा कि उससे संबंधित आदमी रो भी लिया, हंस भी लिया, फिर रोने लगा है। मकान सिर्फ जल रहा है। लेकिन उस आदमी के बीच का एक संबंध बदलता जा रहा है। वह मेरा जुड़ जाता है तो दुख शुरू हो जाता है, मेरा छूट जाता है तो वह आदमी हंसने लगता है।
तो मकान बांधे हुए है या हमारा मेरा बांधे हुए है? इसे अगर हम ठीक से समझ लें तो हमें दिखाई पड़ेगा, मेरा हमारा घेरा है। बहुत गहरे में मेरे का भाव, ममत्व हमारा मकान है। और ध्यान रहे, जो कहता है मेरा, वह अनिवार्य रूप से शेष को तेरे में बदल देता है। जो कहता है मेरा, वह शेष को शत्रु बना लेता है। जो कहता है अपना, वह दूसरे को पराया बना देता है।
गांधी जी के आश्रम में एक भजन गाया जाता थाः वैष्णव जन तो तेने कहिए
जे पीर पराई जाने रे। कोई मुझे पढ़ कर सुना रहा था तो मैंने कहा कि इसमें थोड़ा सुधार कर लेना चाहिए। असल में वैष्णव जन तो वह है, जो पराए को ही नहीं जानता, पराए की पीर बहुत दूसरी बात है। पराए की पीर भी जाननी हो तो पराए को मानना जरूरी है और अपने को भी मानना जरूरी है। वैष्णव जन तो वह है, जो जानता ही नहीं कि कोई पराया है। और तभी यह संभव भी है कि पराए की पीर उसे अपनी मालूम होने लगे--तभी जब कि पराया न रह जाए।
तो एक हमारे मैं का घेरा है, मैं का घेरा है। वही हमारा घर है। मेरा घर, मेरी पत्नी, मेरे पिता, मेरा बेटा, मेरा मित्र--एक मेरे की हमने दुनिया बनाई हुई है। उस मेरे की दुनिया में हमने कई तरह की दीवालें उठाई हुई हैं। पत्थर की भी उठाई हैं, प्रेम की भी उठाई हैं, घृणा की भी उठाई हैं, द्वेष की भी, राग की भी, और एक घर बनाया है।
जब कोई पूछता है, महावीर ने घर क्यों छोड़ दिया? क्या घर में ही संभव नहीं था?
नहीं, घर में संभव नहीं था। घर ही असंभावना थी। अगर हम बहुत गौर से देखेंगे, वह जो मेरे का भाव था, वही तो असंभावना थी। वही रोकता था, वही समस्त से नहीं जुड़ने देता था। लेकिन अगर किसी को दिखाई पड़ गया हो कि सब ही मेरा है, या कुछ भी ऐसा नहीं जो मेरा है और तेरा है, तो फिर कौन सा घर है जो अपना है और कौन सा है जो अपना नहीं है?
हमें एक ही बात दिखाई पड़ती है कि महावीर ने घर क्यों छोड़ा? वह क्यों दिखाई पड़ती है, क्योंकि हम घर को पकड़े हुए लोग हैं। हमारे लिए जो सर्वाधिक महत्वपूर्ण है वह यह कि इस आदमी ने घर क्यों छोड़ा? क्योंकि हम घर को पकड़े हुए लोग हैं। घर को छोड़ने की बात ही असह्य है। कल्पना भी असह्य है कि घर छुड़ा लिया जाए। इस आदमी ने घर क्यों छोड़ा? लेकिन हम समझ नहीं पा रहे कि घर की धारणा क्या है, कंसेप्ट क्या है!

महावीर ने घर छोड़ा, या कि घर मिट गया? जैसे ही जाना तो घर मिट गया। जैसे ही समझा, तो मेरा और अपना कुछ भी न रहा, सब का सब हो गया। यह अगर हमें दिखाई पड़ जाए तो बड़ा फर्क पड़ेगा।
हम यहां बैठे हुए हैं, दस करोड़ मील दूर पर सूरज है। वह अगर ठंडा हो जाए अभी, अभी ठंडा हो जाए तो हमें पता भी नहीं चलेगा कि वह ठंडा हो गया, क्योंकि उसी के साथ हम सब ठंडे हो जाएंगे। दस करोड़ मील दूर जो सूरज है, वह भी हमारे प्राण के स्पंदन को बांधे हुए है। वह भी हमारे घर का हिस्सा है। उसके बिना हम हो ही नहीं सकते। वह हमारे होने को भी संभाले हुए है। लेकिन कब हमने सूरज को अपने घर का साथी समझा है? कब हमने माना है कि सूरज भी अपना मित्र परिवार का है?
लेकिन जिसे हमने कभी परिवार का नहीं समझा है, उसके बिना हम कोई भी नहीं होंगे। न परिवार होगा, न हम होंगे। वह दस करोड़ मील दूर बैठा हुआ सूरज भी हमारे हृदय की धड़कन का हिस्सा है। वह घर के भीतर है या बाहर है, अगर यह सवाल पूछा जाए तो क्या उत्तर होगा? सूरज घर के भीतर है या घर के बाहर?
अगर सूरज को घर के बाहर करते हैं हम, तो हम जीवित नहीं रह सकते एक क्षण। सूरज भी हमारे घर के भीतर हो तो ही हम जीवित हैं। हवाएं जो सारी पृथ्वी को घेरे हुए हैं, ये हवाएं हमारे घर के भीतर हैं या बाहर? अगर यह हवा एक क्षण को न हो जाए, तो हम उसी क्षण न हो जाएंगे। तो हमारा घर क्या है? और सूरज तो पास है, दूर के चांद-तारे भी, दूर के और ग्रह-उपग्रह भी, दूर के और बड़े सूरज-महासूरज भी हैं, वे सब भी किसी न किसी अर्थों में हमारे जीवन का हिस्सा हैं।
पत्नी ने आपका खाना बना दिया है तो वह आपके घर के भीतर है, लेकिन एक गाय ने घास चरी है और आपके लिए दूध बना दिया है, वह आपके घर के भीतर नहीं है? और घास को सीधा आप चर कर दूध नहीं बना सकते हैं, बीच में एक गाय चाहिए, जो घास को उस स्थिति में ट्रांसफार्म करे, जहां से वह आपके योग्य हो जाए। लेकिन घास ने भी कुछ किया है। उसने मिट्टी को ट्रांसफार्म किया है और घास बन गया है। घास आपके घर के भीतर है या बाहर? क्योंकि अगर घास न हो तो आपके होने की कोई संभावना नहीं है। और घास अगर न हो तो मिट्टी को खाकर गाय भी दूध नहीं बना सकती है। और घास मिट्टी ही है, लेकिन उस फार्म में, उस रूप में, जहां से गाय उसका दूध बना सकती है, और जहां से दूध आपका भोजन बन सकता है। क्या हमारा घर है और क्या हमारे घर के बाहर है?
अगर हम आंख खोल कर देखना शुरू करें तो हमें पता चलेगा कि सारा जीवन एक परिवार है, जिसमें एक कड़ी न हो तो कुछ भी नहीं होगा। जीवन मात्र एक परिवार है, जिसमें एक छोटी सी कड़ी न हो, एक सामने पड़ा हुआ पत्थर भी किसी न किसी अर्थों में हमारे जीवन का हिस्सा है, अगर वह भी न हो तो हम नहीं कह सकते कि क्या होगा। सब बदल सकता है।
तो जिसको जीवन की इतनी विराटता का दर्शन हो जाएगा, वह कहेगा, यह मेरा
और वह मेरा नहीं? नहीं, वह कहेगा कि सभी सब हैं, सभी मेरे हैं, सभी अपने हैं, या कोई भी अपना नहीं है। ये दो भाषाएं रह जाएंगी उसके पास। अगर वह पाजिटिव ढंग से बोलेगा, विधायक ढंग से बोलेगा तो वह कहेगा, मेरा ही परिवार है सब। और अगर वह निषेधात्मक ढंग से बोलेगा तो वह कहेगा, मैं ही नहीं हूं, परिवार कैसा! ये दो उपाय रह जाएंगे। और ये दोनों उपाय एक ही अर्थ रखते हैं, एक ही अर्थ रखते हैं।
तो महावीर ने कुछ छोड़ा--घर, परिवार--गलत है। बड़े परिवार के दर्शन हुए, छोटा परिवार खो गया। और जिसको सागर मिल जाए, वह बूंद को पकड़े बैठा रहे? कैसे पकड़े बैठा रहेगा? बूंद को तभी तक कोई पकड़ सकता है, जब तक सागर न मिला हो। और सागर मिल जाए तो हम कहेंगे बूंद को आपने छोड़ा? असल में हमें सागर दिखाई नहीं पड़ता, सिर्फ बूंद ही दिखाई पड़ती है। बूंद को पकड़े हुए लोग, बूंद को छोड़ते हुए लोग, ऐसे हमें दिखाई पड़ते हैं। हमें सागर दिखाई नहीं पड़ता। लेकिन जिसे सागर दिखाई पड़ गया, वह कैसे बूंद को पकड़े रहे? अब तो बूंद को पकड़ना निपट अज्ञान हो जाएगा।
ज्ञान विराट में ले जाता है, अज्ञान क्षुद्र को बांध कर पकड़ा देता है।
अज्ञान क्षुद्र में ही रुक जाता है। ज्ञान निरंतर विराट से विराट में चलता जाता है।

महावीर ने घर नहीं छोड़ा, घर को पकड़ना असंभव हो गया। और इन दोनों बातों में फर्क है। जब हम कहते हैं, घर छोड़ा, तो ऐसा लगता है कि घर से कोई दुश्मनी है। और जब मैं कहता हूं कि घर को पकड़ना असंभव हो गया, तो ऐसा लगता है कि और बड़ा घर मिल गया, और विराटतर घर। उसमें पहला घर छूट नहीं गया, सिर्फ बड़े घर का हिस्सा हो गया है।
यह हमारे ख्याल में आ जाए तो रिननसिएशन का, त्याग का एक नया अर्थ ख्याल में आ जाएगा। त्याग का अर्थ कुछ छोड़ना नहीं है, त्याग का बहुत गहरा अर्थ विराट को पाना है। लेकिन त्याग शब्द में खतरा है, उसमें छोड़ना छिपा हुआ है। उसमें लगता है, कुछ छोड़ा।
मेरी दृष्टि में महावीर या बुद्ध या कृष्ण जैसे लोगों को त्यागी कहने में बुनियादी भूल है। इनसे बड़े भोगी खोजना असंभव है--अगर हम अर्थ समझ लें तो। त्याग का अर्थ है कुछ छोड़ना, भोग का अर्थ है कुछ पाना। महावीर से बड़ा भोगी असंभव है, क्योंकि जगत में जो भी है, सब उसका ही हो गया है। उसका भोग भी अनंत हो गया, उसका घर भी अनंत हो गया, उसकी श्वास भी अनंत हो गई, उसके प्राण भी अनंत हो गए, उसका जीवन भी अनंत हो गया है।
इतने विराट को भोगने की सामर्थ्य क्षुद्र चित्त में नहीं होती। क्षुद्र क्षुद्र को ही भोग सकता है, इसलिए क्षुद्र को पकड़ लेता है। लेकिन जब विराट होने लगे द्वार... ।
एक नदी है, वह चली है हिमालय से, सागर में गिर गई है। दो तरह से देखी जा सकती है यह बात। कोई नदी से पूछ सकता है, तूने किनारे क्यों छोड़ दिए? तूने किनारों का त्याग क्यों किया? ऐसे भी पूछा जा सकता है नदी से--किनारे क्यों छोड़े तूने? और नदी ऐसा भी कह सकती है, किनारे मैंने छोड़े नहीं, किनारे अनंत हो गए। किनारे अब भी हैं, लेकिन अब उनकी कोई सीमा न रही, अब वे असीम हो गए। अब तक छोटे-छोटे किनारे थे। एक छोटी सी धार थी, बहती थी। और नदी रोज छोटे किनारे छोड़ती चली आई इसलिए बड़ी होती चली गई थी।
गंगोत्री पर बड़ा छोटा किनारा था गंगा का, फिर आकर सागर के पास बड़े-बड़े किनारे हो गए। लेकिन फिर भी किनारे थे। फिर सागर में उसने अपने को छोड़ दिया। सागर के बड़े किनारे हैं, लेकिन फिर भी किनारे हैं। कल वह भाप बनेगी और आकाश में उड़ जाएगी, और भी किनारे छोड़ देगी। और कोई किनारा नहीं रह जाएगा।
जीवन की खोज मूलतः किनारों को छोड़ने की या बड़े किनारों को पाने की खोज है। लेकिन जिसको असीम और अनंत मिल जाता हो, उससे जब हम पूछने जाते हैं कि तुमने किनारे क्यों छोड़े, तो क्या उत्तर होगा उसके पास? सिर्फ हंसेगा और कहेगा कि तुम भी आओ और छोड़ कर देखो। क्योंकि जो मैंने पाया है, वह इतना ज्यादा है, और उसमें वह पुराना मौजूद ही है, जो तुम कहते हो छोड़ दिया। वह कहीं छोड़ा नहीं है।
घर छूटा नहीं है महावीर का, सिर्फ बड़ा हो गया। इतना बड़ा हो गया कि हमें दिखाई भी नहीं पड़ता, क्योंकि हमें छोटे घर ही दिखाई पड़ सकते हैं। अगर घर बहुत बड़ा हो जाए तो फिर हमें दिखाई नहीं पड़ता।
त्याग से हटा देनी चाहिए बात और विराट भोग पर ज्यादा एंफेसिस और जोर दिया जाना चाहिए। और मेरी अपनी समझ है कि चूंकि त्याग से हमने बांध लिया इन सब महापुरुषों को, इसलिए हम इनके निकट नहीं पहुंच पाए। क्योंकि त्याग बहुत गहरे में किसी व्यक्ति को भी अपील नहीं कर सकता है। बहुत गहरे में त्याग की बात ही निषेध की बात है--छोड़ो, छोड़ो, छोड़ो! यह छोड़ो, यह छोड़ो, यह छोड़ो! छोड़ने की भाषा ही मरने की भाषा है। छोड़ना सुसाइडल हैं, आत्मघाती है। इसलिए अगर धर्म इस बात पर जोर देता हो कि छोड़ो, छोड़ो, छोड़ो, तो बहुत थोड़े से लोग हैं, जो उसमें उत्सुक हो सकते हैं। और अक्सर ऐसा होगा कि रुग्ण लोग उत्सुक हो जाएंगे और स्वस्थ लोग उत्सुक नहीं रह जाएंगे। क्योंकि स्वस्थ भोगना चाहता है, रुग्ण छोड़ना चाहता है, क्योंकि भोग नहीं सकता। बीमार, आत्मघाती चित्त के लोग इकट्ठे हो जाएंगे धर्म के नाम पर। स्वस्थ, जीवंत, जीवन को जीने वाले लोग अलग चले जाएंगे। कहेंगे, धर्म हमारा नहीं है।
इसलिए तो लोग कहते हैं कि युवावस्था में धर्म की क्या जरूरत? वह तो वृद्धावस्था के लिए है। जब कि चीजें अपने से छूटने लगती हैं तो छोड़ ही दो।

जब कि चीजें अपने से ही छूटने लगती हैं, तो फिर अब क्या दिक्कत है? छोड़ दो! छूट ही रहा है, छीना ही जा रहा है, तो छोड़ ही दो। लेकिन जब जीवन भोग रहा है, पा रहा है, उपलब्ध कर रहा है, तब छोड़ने की भाषा समझ में नहीं आती।
इसलिए मंदिरों में, मस्जिदों में, गिरजों में बूढ़े लोग दिखाई पड़ते हैं, जवान आदमी दिखाई नहीं पड़ता। वह छोड़ने पर जो जोर था, उसने दिक्कत डाल दी है।
मैं इस जोर को एकदम बदल डालना चाहता हूं। मैं कहता हूं, भोगो! और बड़ा भोगो, और बड़ा! परमात्मा को भोगो। और उसका भोग बहुत अनंत है, और तुम क्षुद्र पर मत रुक जाना। क्षुद्र को छोड़ना तो इसलिए कि विराट को भोगना है।

प्रश्नः वहां अपना अस्तित्व मिट जाता है?

जितने हम विराट होते चले जाएंगे, उतना ही अस्तित्व मिटता चला जाएगा। लेकिन असल में अस्तित्व मिट जाता है, ऐसा कहना गलत है। मेरा अस्तित्व मिट जाता है, इतना ही कहना सही है। ईगो चली जाती है, अस्तित्व तो रहेगा।

प्रश्नः अभी नदी सागर में गिर गई तो नदी का कैसे पता लगेगा?

पता न लगेगा, लेकिन नदी है, अस्तित्व तो है। नदी में जो कण-कण था, एक कण
भी नहीं खोया, सब है। हां, नदी की तरह नहीं है, सागर की तरह है। और नदी की तरह अब नहीं खोजा जा सकता। नदी मर गई, लेकिन नदी का जो अस्तित्व था, एक्झिस्टेंस था, वह पूरा का पूरा शेष है। नदी की इंडिविजुअलिटी मर गई।

प्रश्नः और फिर आप कहते हैं, छोड़ना तो सुसाइडल है!

बिल्कुल सुसाइडल है। छोड़ने की भाषा ही सुसाइडल है। तो मैं यह कह रहा हूं कि भोगने की... ।
नदी से यह मत कहो कि नदी होना छोड़ो। नदी से कहो, सागर होना सीखो। मैं जो, जो फर्क कर रहा हूं, नदी से यह मत कहो कि छोड़ो, छोड़ो, छोड़ो। नदी से यह कहो, भोगो, विराट सागर सामने है। रुको मत, दौड़ो, कूद जाओ सागर में। भोगो! सागर को भोगो।
तो मुझे लगता है कि जगत को ज्यादा धार्मिक जीवन दिया जा सकता है। क्योंकि सामान्य चित्त जो हमारा है, सामान्य चित्त का जो भाव है, वह भोगने का है, त्यागने का नहीं है। और सामान्य चित्त को अगर धर्म की तरफ उठाना है तो उसे विराट भोग का आमंत्रण बनाना चाहिए।
अभी उलटा हो गया है। जो छोटा-मोटा भोग चल रहा है, उसका भी निषेध करने
का आमंत्रण बना हुआ है। उसे भी निगेट करो, उसे भी इनकार करो। और यह मैं मानता हूं कि अगर हम विराट को भोगने जाएंगे तो क्षुद्र का निगेशन हो जाने वाला है, वह हमें करना नहीं पड़ेगा। वह तो नदी को सागर बनना है तो वह नदी नहीं रह जाएगी। यह कोई कहने की बात नहीं है। नदी को सागर बनना है तो उसे नदी होना छोड़ना ही पड़ेगा, लेकिन इस पर जोर मत दो।
ये दो घटनाएं घट रही हैं। नदी मिट रही है, एक घटना है; नदी सागर हो रही है, यह दूसरी घटना है। किस पर जोर देते हैं आप? अगर सागर होने पर जोर देते हैं तो मैं मानता हूं कि ज्यादा नदियों को आप आकर्षित कर सकते हैं कि वे सागर बन जाएं। और अगर आप कहते हैं कि नहीं, नदी मिट जाओ और सागर की बात मत करो! तो शायद ही कोई एकाध बीमार नदी को आप राजी कर लें, जो मिटने को राजी हो जाए, जो कि होने से घबड़ा गई हो। बाकी नदियां तो रुक जाएंगी। वे कहेंगी, हम बहुत आनंदित हैं, हमें नहीं मिटना है। हां, मिटना तभी सार्थक हो सकता है, जब विराट का मिलना सार्थक हो रहा हो, अर्थ ले रहा हो।
तो मेरा जोर जो है, वह इस बात पर है कि धर्म को त्याग मत बनाओ, धर्म को
और विराट भोग बनाओ। त्याग आएगा, वह आटोमैटिक होगा, वह सीधा अपने आप होगा। अगर आपको आगे की सीढ़ी पर पैर रखना है तो पीछे की सीढ़ी छूटेगी, लेकिन इस पर जोर मत दो कि पीछे की सीढ़ी छोड़नी है। जोर इस पर दो कि आगे की सीढ़ी पानी है।

प्रश्नः जैसे त्याग शब्द ने गलती की अभी तक, वैसे ही आपका भोग शब्द भी गलती कर दे, इसलिए आपको अलग शब्द देना पड़े।

बिल्कुल कर सकता है। बिल्कुल कर सकता है। सब शब्द गलती कर सकते हैं।
क्योंकि शब्द गलती नहीं करते... ।

प्रश्नः इसलिए वह जो विचार है, वह दूसरे शब्द में आना चाहिए। भोग का शब्द है, उसके लिए दूसरा शब्द ही देना पड़े?

इससे कोई फर्क नहीं पड़ता।

प्रश्नः नहीं, लोगों की समझ में तो वही आएगा न फिर?

इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। कोई भी शब्द हम दे दें, सब शब्द गलती कर सकते हैं। क्योंकि अंततः शब्द गलती नहीं करते, अंततः लोग गलती करते हैं। लेकिन त्याग शब्द व्यर्थ हो गया है। वह गया! और त्याग के विपरीत और कोई शब्द नहीं है अभी सिवाय भोग के, जो सार्थकता ले सकता है। लेकिन जो मैं कह रहा हूं, अगर उसे ठीक से समझा जाए तो मेरा भोग त्याग के विपरीत नहीं है, मेरा भोग त्याग में से ही है। क्योंकि मैं कह रहा हूं कि दूसरी सीढ़ी पर पैर रखना है तो पहली सीढ़ी छोड़नी ही पड़ेगी। लेकिन जोर मेरा दूसरी सीढ़ी पर पैर रखने पर है। जोर मेरा... ।

प्रश्नः आगे बढ़ने पर है?

हां, आगे बढ़ने पर है। जोर मेरा पिछली सीढ़ी छोड़ने पर नहीं है। एंफेसिस
जो है, वह इस बात पर है कि अगली सीढ़ी पाओ, इसे मैं भोग कह रहा हूं। पिछली जो एंफेसिस थी, वह इस पर थी कि जिस सीढ़ी पर खड़े हो, उसे छोड़ो। वह एंफेसिस छोड़ने पर थी।
पिछली सीढ़ी छोड़ो, इसके लिए बहुत कम लोगों को राजी किया जा सकता है। क्योंकि जिस पर हम खड़े हैं, उसे भी छोड़ दें? हां, जो उस सीढ़ी पर अत्यंत दुख में हैं, शायद वे छोड़ने को राजी हो जाएं। वे कहें कि इससे बुरा तो कुछ भी नहीं हो सकता। इसे तो छोड़ ही देते हैं, फिर जो होगा, होगा। रुग्ण चित्त त्याग की भाषा को समझ लेगा, स्वस्थ चित्त त्याग की भाषा को नहीं समझ सकेगा। वृद्ध चित्त त्याग की भाषा को समझ लेगा, युवा चित्त त्याग की भाषा को नहीं समझ सकेगा।
इसलिए मैं कह रहा हूं कि पिछले पांच हजार वर्षों में धर्म ने जो भी रूप-रेखा ली है, वह रुग्ण, न्यूरोटिक, विक्षिप्त, वृद्ध, बीमार--इस तरह के लोगों को आकर्षित करने का कारण बना। वह त्याग शब्द ने, उस पर जोर देने का यह परिणाम हुआ है। स्वस्थ, जीवंत, जीने के लिए लालायित, वह उस तरफ नहीं गया। उसने कहा, जब जीवन की लालसा चली जाएगी, तब देखेंगे, अभी तो हमें जीना है।
मैं यह कह रहा हूं कि यह जो जीवंत धारा है, इसे आकर्षित करो। और यह तभी आकर्षित होगा, जब इसे विराट जीवन का ख्याल सामने हो। छोड़ना नहीं है, पाना है। और छोड़ना होगा ही इसमें, क्योंकि बिना छोड़े कुछ भी पाया नहीं जा सकता है। असंभव ही है कि हम बिना छोड़े कुछ भी पा लें। कुछ भी हम पाने चलेंगे तो कुछ छोड़ना पड़ेगा। और इसलिए सवाल छोड़ने के विरोध का नहीं है, सवाल एंफेसिस का है, जोर का है। हम किस चीज पर जोर देते हैं।
भोग शब्द में बहुत निंदा छिप गई है। वह त्यागियों ने पैदा की है। और इसलिए मैं भोग का ही उपयोग करना चाहता हूं--जान कर ही। क्योंकि वह जो भोग की निंदा है, वह इन त्यागियों ने ही पैदा की है। वे कहते हैं, भोग की बात ही मत करो, रस की बात ही मत करो, सुख की बात ही मत करो, क्योंकि त्याग करना है। मेरा कहना यह है कि यह पूरी की पूरी भाषा गलत हो गई है। इसने गलत तरह
के आदमियों को आकर्षित किया है, स्वस्थ आदमी को आकर्षित नहीं किया।

जीवन को भोगना है उसकी गहराइयों में। जीवन को जीना है उसकी आत्यंतिक उपलब्धियों में, उसके पूर्ण रस में, उसके पूर्ण सौंदर्य में। परमात्मा इस अर्थों में प्रकट होना चाहिए कि जो व्यक्ति जितना परमात्मा में जा रहा है, उतने जीवन की गहराइयों में जा रहा है।
अभी तक का जो त्यागवादी रुख था, वह ऐसा था कि जो व्यक्ति परमात्मा की तरफ जा रहा है, वह जीवन की तरफ पीठ कर रहा है, वह जीवन को छोड़ कर भाग रहा है। वह जीवन की गहराइयों में नहीं जा रहा, वह जीवन का इनकार ही कर रहा है। वह कहता है, जीवन हमें नहीं चाहिए, हमें मृत्यु चाहिए। इसलिए वह मोक्ष की बातें करता है। मृत्यु चाहिए, हमें जीवन नहीं चाहिए। हमें ऐसी मृत्यु चाहिए, जो फिर जीवन हो ही नहीं।
यह सारी की सारी जो जोर है, यह मैं जानता हूं कि अगर कोई परमात्मा को जीवन की तरह मान कर चलेगा तो भी यह सब छूट जाएगा, जो त्यागी कह रहा है, वह सब छूटेगा, वह बचने वाला नहीं है, लेकिन तब उस छूटने पर जोर नहीं होगा। यानी मेरा जोर यह है कि आपके हाथ में पत्थर हैं तो मैं आपसे नहीं कहता कि आप पत्थर फेंक दो। मैं आपसे कहता हूं कि सामने हीरों की खदानें हैं। मैं नहीं कहता आप पत्थर फेंको, मैं यह कहता हूं कि हीरे बड़े पाने योग्य हैं और सामने चमक रहे हैं। मैं यह जानता हूं कि हाथ खाली करने पड़ेंगे, क्योंकि बिना हाथ खाली किए हीरों पर हाथ भरेंगे कैसे आप? पत्थर छूट जाएंगे, लेकिन यह छूटना बड़ा सहज होगा। आपको शायद पता भी नहीं चलेगा कि कब आपने हाथ से पत्थर गिरा दिए हैं और हीरे हाथ में भर लिए हैं! शायद आपको ख्याल भी नहीं आएगा कि मैंने पत्थर छोड़े हैं, क्योंकि जिसे हीरे मिल गए हों, वह पत्थर छोड़ने की बात ही नहीं कर सकता।
लेकिन पुराना जोर इस बात पर था कि पत्थर छोड़ो। और इसलिए ऐसे लोग हैं
कि जो पत्थर छोड़ने के आधार पर ही जिंदगी भर जी रहे हैं, कि हमने पत्थर छोड़े हैं! उन्हें कुछ मिला कि नहीं, इसका कोई पता नहीं है। उन्हें आगे की सीढ़ी मिली कि नहीं मिली है! क्योंकि मैं यह कहता हूं, मैं यह कहता हूं कि यह हो सकता है पत्थर छोड़ दिए जाएं और हीरे न मिलें, लेकिन यह कभी नहीं हो सकता कि हीरे मिल जाएं और पत्थर न छोड़े जाएं। यह जो मेरा फर्क है, यह कभी नहीं हो सकता कि हीरे मिल जाएं और पत्थर न छोड़े जाएं। लेकिन यह हो सकता है कि पत्थर छोड़ दिए जाएं और हीरे न मिलें। हाथ खाली भी रह जा सकते हैं।
त्याग की भाषा ने बहुत से लोगों के हाथ खाली करवा दिए हैं। अच्छा, जिसके हाथ खाली हैं, वह उन लोगों पर क्रोध से भर जाता है, जिनके हाथ भरे हैं। इसलिए हमारा साधु-संन्यासी बहुत गहरे कंडेमनेशन में जीता है। वह चौबीस घंटे उनकी निंदा कर रहा है, जिनके हाथ भरे हैं, जो भोग रहे हैं, जो जीवन में सुख पा रहे हैं! वह उन सबके लिए गालियां दे रहा है, उनको नरक भेजने का इंतजाम कर रहा है! उनको सड़वा डालेगा, आग में जलवा डालेगा, वह सब इंतजाम कर रहा है!
ये उसकी मानसिक तृप्तियां हैं, जो खाली हाथ का आदमी ले रहा है उन लोगों से बदला, जिनके हाथ भरे हुए हैं और जो राजी नहीं हैं खाली हाथ करने को। और जो लोग उनके आस-पास इकट्ठे हुए हैं, उनको भी उनके हाथ खाली दिखाई पड़ते हैं, भरा हुआ कुछ दिखाई पड़ता नहीं! क्योंकि मेरा मानना यह है कि अगर भरा हुआ कुछ दिखाई पड़े तो स्वाभाविक होगा कि हम भी उस यात्रा पर निकल जाएं, जहां आदमी और फुलफिल्ड हुआ है, और भी भर गया है।
आप एक संन्यासी के पास जाते हैं, एक त्यागी के पास जाते हैं, तो आप भला कितनी ही प्रशंसा करें उसके त्याग की, आप कितना ही कहें, बड़ी हिम्मत का आदमी है, इसने यह छोड़ा, यह छोड़ा, यह छोड़ा; लेकिन न तो उसकी आंखों में, न उसके व्यक्तित्व में, न उसके जीवन में, वह सुगंध नहीं दिखाई पड़ती जो आने की है-- कुछ आया, कुछ उतरा!
और मेरा मानना है कि अगर उसके जीवन में कुछ आ जाए तो वह भी त्याग की बातें बंद कर देगा। क्योंकि वह भूल जाएगा उन पत्थरों को, जो छोड़े। क्योंकि अब हीरों की चर्चा होगी, जो पाए।
लेकिन जो भी त्याग की बातें किए चला जा रहा है, अभी भी पत्थर छोड़ने की बातें किए चला जा रहा है, निश्चित है कि उसके हाथ में कुछ और नहीं आया। पत्थर छूट गए हैं, और एक ही रस रह गया है उसका कि मैंने इतने पत्थर छोड़े,

मैंने यह-यह छोड़ा, यही उसका रस रह गया है। और हम जो चारों तरफ इकट्ठे लोग हैं, हमें भी और कुछ दिखाई नहीं पड़ता है उसमें, सिर्फ छोड़ना दिखाई पड़ता है! छोड़ना कभी भी चित्त के लिए आकर्षण नहीं बन सकता। असहज है, सहज नहीं है। पाना ही चित्त के लिए सहज आकर्षण है।
तो वह अगर हमारे ख्याल में हो जाए, वह अगर साफ हो जाए तो महावीर ने घर छोड़ा, इस भाषा को हम नहीं बोलेंगे। यह महावीर ने घर छोड़ा, यह तथ्य है। तथ्य इतना है कि महावीर घर में नहीं रहे। लेकिन इसको हम किस तरह से देखें, यह हम पर निर्भर है; यह महावीर पर निर्भर नहीं है अब। और मेरी अपनी दृष्टि यह है कि महावीर घर छोड़ कर जितने आनंदित दिखाई पड़ते हैं, जितने प्रसन्न दिखाई पड़ते हैं, उनके जीवन में जैसी सुगंध मालूम पड़ती है, वह खबर देती है कि घर छोड़ा नहीं, बड़ा घर मिल गया। यानी वह अगर घर ही छूटता और आंगन में खड़े रह गए होते बाहर सड़क पर, तो यह हालत नहीं होने वाली थी। बड़ा घर मिल गया, महल मिल गया, झोपड़ा ही छूटा है। इसलिए जो छूटा है उसकी बात ही नहीं है। जो मिल गया है, वह चारों तरफ से उनको आनंद से भरे दे रहा है।
लेकिन महावीर के पीछे चलने वाले साधु को देखें! तो उसको कुछ भी नहीं मालूम पड़ता। ऐसा लगता है, वह सड़क पर खड़ा हो गया है। जो था, वह खो दिया; और जो मिलने की बात थी, वह मिला नहीं है। तो वह अधूरे में अटक गया है। वह एक कष्ट में जी रहा है, वह एक परेशानी में जी रहा है। लेकिन हम, इसे भी थोड़ा सोच लेना चाहिए, कि हम किसी को परेशानी में जीते देख कर आदर क्यों देते हैं? असल में यह भी बड़ी गहरी हिंसा का भाव है। एक आदमी जब परेशानी में होता है तो हम उसको आदर देते हैं। और परेशानी अगर वालंटरी है, खुद ही स्वेच्छा से ली है, तब हम और भी आदर देते हैं। क्यों लेकिन?
यह हमारा आदर भी रुग्ण है। असल में हम दूसरे को दुख देना चाहते हैं-- सब! हम सब दूसरे को दुख देना चाहते हैं। हम सब सैडिस्ट हैं। भीतर से हमारे चित्त में यही होता है कि किसको कितना दुख दे दें। और जब कोई ऐसा आदमी मिल जाता है जो दुख खुद ही वरण करता है, तो हम बड़े आदर से भर जाते हैं, कि यह आदमी बिल्कुल ठीक है। यह हमारी भीतर की किसी बहुत गहरी आकांक्षा को तृप्त करता है। यह हमारे भीतर कहीं इस बात को तृप्त करता है कि ठीक!
आप देखें, एक आदमी सुखी हो जाए तो आप सुखी नहीं होते। एक आदमी ज्यादा
से ज्यादा सुख में जाने लगे तो आप दुख में जाने लगते हैं। किसी का सुख में जाना आपका दुख में जाना बन जाता है। लेकिन किसी का दुख में जाना आपका दुख में जाना नहीं बनता। हालांकि हो सकता है, कभी कोई आदमी दुख में पड़ा हो तो आप बड़ी सहानुभूति प्रकट करते हों। लेकिन अगर थोड़ा भीतर झांकेंगे तो आप पाएंगे, सहानुभूति में भी रस आ रहा है। हो सकता है कोई आदमी बहुत सुखी हो गया, बड़े मकान में जीने लगा है, तो हो सकता है आप प्रशंसा भी करते हों, और कहते हों कि बहुत अच्छा है, भगवान की बड़ी कृपा है। लेकिन इसमें भी ईर्ष्या छुपी होगी, इसमें भी भीतर ईर्ष्या घाव कर रही होगी मन को।
लेकिन जब कोई आदमी वालंटरली, स्वेच्छा से दुख में जाता है, तब हम उसको बड़ा आदर देते हैं, क्योंकि वह वही काम कर रहा है, जो हम चाहते थे कि करे। इसलिए त्यागियों, तपस्वियों, तथाकथित छोड़ने वाले लोगों को जो इतना सम्मान मिला है, उसका कारण है। आप किसी सुखी आदमी को कभी सम्मान नहीं दे सकते। दुखी! और दुख खुद ओढ़ा गया हो, तब तो हम उसके पैरों में सिर रख देते हैं कि आदमी अदभुत है!
यह भी मेरा मानना है कि मनुष्य-जाति भीतर से रुग्ण है इसकी वजह से त्यागियों को सम्मान है। अगर मनुष्य-जाति स्वस्थ होगी तो सुखी लोगों को सम्मान होगा। जो स्वेच्छा से ज्यादा से ज्यादा सुखी हो गए हैं, उनका सम्मान होगा। और यह भी ध्यान रहे, हम जिसको सम्मान देते हैं, धीरे-धीरे हम भी वैसे होते चले जाते हैं। दुख को सम्मान दिया जाएगा तो हम दुखी होते चले जाएंगे। सुख को सम्मान दिया जाएगा तो हम सुख की यात्रा पर कदम बढ़ाएंगे। लेकिन अब तक सुखी आदमी को सम्मान नहीं दिया गया। अब तक सिर्फ दुखी आदमी को सम्मान दिया गया है। यह मनुष्य-जाति के भीतर दूसरे को दुख देने की प्रबल आकांक्षा का ही हिस्सा है।

प्रश्नः तो इसका मतलब यह है, त्यागी आपस में एक-दूसरे को सम्मान नहीं देंगे, जो त्यागी ही होंगे? मान लीजिए त्याग में ही हमारा सारा संसार बन जाता है, तो आपस में एक-दूसरे को सम्मान नहीं मिलेगा?

मिलेगा अगर बड़ा त्यागी मिल जाए तो। यानी अपने को और ज्यादा दुख देने वाला मिल जाए तो मिलेगा। कारण वही होगा। छोटा त्यागी बड़े त्यागी को सम्मान देगा। क्योंकि छोटा त्यागी एक दफे खाता है, बड़ा त्यागी एक दफे भी नहीं खा रहा है! छोटा त्यागी पंद्रह दिन खाता है, बड़ा त्यागी महीने भर भूखा बैठा हुआ है! तो छोटे त्यागी को बड़े त्यागी को सम्मान देना पड़ेगा, लेकिन बात वही है। बात वही है।
दूसरे को दुख में देख कर हमारे मन में सम्मान पैदा होना बात ही गलत है। दूसरे को किसी भी तरह के दुख में देख कर, कष्ट में देख कर... ।
एक आदमी कांटे पर लेटा हुआ है तो लोग उसके पैर छुएंगे। लेकिन किसी को कांटे पर लेटा हुआ देख कर पैर छूना बड़ी खतरनाक बात है। क्योंकि यह इस बात की खबर है कि जो भी कांटे पर सोने की तैयारी करेगा, हम उसको आदर देने की तैयारी दिखला रहे हैं! यानी हम यह कह रहे हैं कि लोग दुखी होने की तैयारी करें तो हम उनको आदर देंगे। कांटे पर सोओ तो हम ज्यादा आदर देंगे; और लोहे की कीलें भोंक ले शरीर में, तो और ज्यादा आदर देंगे।
यूरोप में ईसाइयों का एक पंथ था, जो जूतों में नीचे लोहे की कीलें लगा लेता था--अंदर पैर के, कीलें! और उनके पैरों में घाव होते। उनमें जो गुरु होते, वे सिर्फ जूते में ही न लगाते, वे एक पट्टा भी बांधते कमर में, और उस पट्टे में भी गहरे कीले गड़े रहते जो पूरे वक्त छिदते रहते! उठें, बैठें, हिलें, करवट लें, और खून बहता रहता, मवाद बहती रहती। तो जिस व्यक्ति से जितनी ज्यादा मवाद बहती, वह उतना परम-गुरु हो जाता! यानी इस बात का नाप-जोख रखना पड़ता कि किसके कितने घाव हैं! तुम दस कीलें गड़ाए हुए हो कि पंद्रह? तो दस वाला पंद्रह वाले को आदर देता!
एक दूसरा संप्रदाय था, जो कोड़े मारने वालों का संप्रदाय था कि सुबह उठ
कर साधु अपने शरीर को नंगा करके कोड़े मारता--फ्लैजलेटिस्ट कहलाते वे। अपने को कोड़ा मारता। जो जितने ज्यादा कोड़े मारता, इसकी चर्चा होती गांव में कि फलां आदमी एक सौ एक कोड़े मारता है सुबह! हमको यह बात अजीब लगती है। फलां आदमी दो सौ एक मारता है, चमड़ा बिल्कुल उधेड़ डालता है, लहूलुहान हो जाता है, उसका उतना आदर होता!
लेकिन हम भी कहते हैं कि फलां साधु ने पंद्रह दिन का उपवास किया है, फलां साधु ने इक्कीस दिन का उपवास किया है, फलां आदमी महीने भर से उपवास पर है। इसके हम अखबार में फोटो भी निकालते हैं, जुलूस भी निकालते हैं, कि यह आदमी दो महीने उपवास किया है! यह बड़ा अदभुत आदमी है। दो महीने भूखा मरा है। यह भी फ्लैजलेटिज्म है। यह भी कोड़े ही मारना है, यह भी खीलें ही ठोंकना है। लेकिन हमें ख्याल में नहीं है कि आज तक मनुष्य-जाति क्यों दुख देने वाले लोगों को--खुद को दुख देने वाले लोगों को इतना आदर क्यों देती रही? जरूर कहीं कोई रुग्ण भाव काम कर रहा है! कहीं जरूर कोई हमारे मन में दूसरे लोगों को दुख दिया जाए... ।

प्रश्नः तो त्याग के लिए जैसे ग्रेडेशंस बताए आपने कि ज्यादा से ज्यादा दुख देना, वैसे भोग के लिए आप ग्रेडेशंस कैसे बताएंगे? भोग तो अदृश्य होगा?

भोग भी दिखता है। भोग भी दिखता है। चूंकि हमने त्याग के बाबत चिंतन किया, इसलिए ग्रेडेशंस बन गए, अगर हम भोग के लिए चिंतन करेंगे तो ग्रेडेशंस बन जाएंगे। भोग भी दिखता है। वह भी दिखता है कि कौन आदमी कितना आनंदित है, कौन आदमी कितना शांत है। कौन आदमी प्रत्येक चीज से कितना सुख लेता है।
यानी समझ लें कि एक आदमी फूल के पास खड़ा हुआ है, फूल के पौधे के पास खड़ा हुआ है, गुलाब के पास खड़ा हुआ है, तो वह आदमी भी हमें दिखता है, जो अपना हाथ कांटे में चुभा रहा है; तो वह आदमी हमको नहीं दिखेगा जो फूल की सुगंध ले

रहा है? वह भी दिख जाएगा। लेकिन हमने देखा नहीं! वह हमें यही थोड़े ही दिखेगा कि यह आदमी कांटे में हाथ चुभाता है, तभी दिखाई पड़ता है। फूल की सुगंध लेते हुए नहीं दिखाई पड़ता! लेकिन अब तक हमने उस आदमी को आदर दिया है, जिसने गुलाब के कांटे को हाथ में चुभा लिया है और खून बहा दिया है! हमने कहा, यह आदमी अदभुत है। हमने उस आदमी को आदर नहीं दिया, जिसने फूल की सुगंध ली है! हमने कहा, यह तो आदमी साधारण है। फूल की सुगंध तो कोई भी लेता है, असली सवाल तो कांटा चुभाने का है।
अब बड़ा मजा यह है कि असली सवाल फूल की सुगंध लेने का ही है, कांटा चुभाने का नहीं है। कांटा चुभाने वाला भी बीमार है, रुग्ण है, साइकिएट्रिक है वह, उसकी मनोवैज्ञानिक स्थिति गड़बड़ है। और कांटा चुभाने वाले को आदर देने वाला भी खतरनाक है, वह भी रुग्ण है। फूल सूंघने वाला भी स्वस्थ है और फूल सूंघने वाले को सम्मान देने वाला भी स्वस्थ है।
एक ऐसा समाज चाहिए, जहां सुख का समादर हो, दुख का अनादर हो। लेकिन हुआ उलटा है। और इस समाज ने इस तरह का धर्म पैदा कर लिया और इस जगत में जो सबसे ज्यादा सुखी लोग थे, उनको सबसे ज्यादा दुखी लोगों की श्रेणी में रख दिया! महावीर जैसे व्यक्ति को सर्वाधिक सुखी लोगों में से गिना जाना चाहिए। यानी इसके आनंद की कोई सीमा लगानी मुश्किल है। यह आदमी चौबीस घंटे आनंद में है। लेकिन हमारी वह त्याग की दृष्टि ने वह सारा आनंद क्षीण कर दिया। बल्कि हमने क्या कहना शुरू किया, हमने कहना यह शुरू किया कि यह आदमी इतने आनंद में इसीलिए है कि इसने इतना-इतना त्याग किया! जो इतना-इतना त्याग करेगा, वह इतने आनंद में हो सकता है।
त्याग कर रहा है आदमी, लेकिन उतने आनंद में नहीं हो जाता है। बात उलटी है। यह आदमी इतने आनंद में है, इसलिए इससे इतने त्याग हो गए। ये त्याग हो जाना, इतने आनंद में होने का परिणाम था। और कोई आदमी इतने आनंद में होगा तो उससे इतने त्याग हो जाएंगे।
लेकिन हमने उलटा पकड़ा। हमने पकड़ा कि इतने-इतने त्याग करो, तो देखो, महावीर इतने आनंद में हुआ! तुम भी इतने त्याग करोगे तो तुम भी इतने आनंद में हो जाओगे। बस, बात एकदम गलत हो गई। वह त्याग करने से कोई आनंद में नहीं हो जाएगा। हाथ के पत्थर छोड़ देने से हीरे नहीं आ जाते, लेकिन हीरे आ जाएं तो पत्थर छूट जाते हैं। त्याग पीछे है, प्रथम नहीं है। यह मैं कह रहा हूं। और अगर महावीर को हम इस भाषा में देखें--और मुझे लगता है कि यही सही भाषा है उनको देखने की--तो हमारा धर्म के प्रति, जीवन के प्रति पूरा दृष्टिकोण अलग होगा। महावीर ने घर नहीं छोड़ा, बड़ा घर पाया--छोड़ने की भाषा के ही मैं विरोध में हूं--बड़ा घर पाया। और बड़ा घर पाया, छोटा घर छूट गया। छूट गया इसका मतलब यह नहीं कि वे उसके दुश्मन हो गए। छूट गया उसका मतलब यह है कि अब छोटे घर में रहना असंभव हो गया। जब बड़ा घर मिल गया, छोटा घर उसका हिस्सा हो गया, उससे ज्यादा नहीं रह गया।

प्रश्नः जैसे कि त्याग शब्द मिसलीडिंग है, वैसा ही भोग शब्द भी मिसलीडिंग हो सकता है न?

वह तो वही माणिक बाबू कहते हैं, प्रत्येक चीज मिसलीडिंग हो सकती है।
यह सवाल नहीं है, प्रत्येक चीज हो सकती है। लेकिन अगर इसमें भी चुनाव करना हो तो मैं कहता हूं कि भोग की मिसलीडिंग होना ठीक है, उसका भी मैं कहता हूं। अगर यह भी चुनाव करना हो कि भोग या त्याग दोनों ही अगर मिसलीडिंग-- मिसलीडिंग हो सकते हैं--तो भी मैं कहता हूं कि फिर भोग का ही मिसलीड करना ठीक है। इसलिए कहता हूं कि वह जीवन के स्वस्थ, जीवन के सरल और सहज होने का प्रतीक है।
और यह भी बड़े मजे की बात है कि जो आदमी भोगने चलेगा, उससे त्याग धीरे- धीरे अनिवार्य हो जाएंगे, वह कितना ही मिसलीडिंग हो। यानी मेरा कहना यह है कि जो आदमी भोगने चलेगा, वह जैसे-जैसे भोग में उतरेगा, वैसे-वैसे बड़े भोग की संभावनाएं प्रकट होंगी, और त्याग उससे अनिवार्य हो जाएंगे। लेकिन जो आदमी त्याग करने चलेगा, उससे पुराने भोग की संभावनाएं छिन जाएंगी और नए भोग की संभावनाएं प्रकट नहीं होंगी। वह आदमी सूखता चला जाएगा।

यानी यह बात सच है कि ज्यादा खाना भी खतरनाक है, न खाना भी खतरनाक है, फिर भी अगर दोनों में से चुनना हो तो मैं कहूंगा ज्यादा खाना ही चुन लेना। क्योंकि न खाने वाला तो मर ही जाएगा। ज्यादा खाने वाला बीमार ही पड़ सकता है। और ज्यादा खाने वाला आज नहीं कल इस अनुभव पर पहुंच जाएगा कि कम खाना सुखद है। लेकिन न खाने वाला कभी इस अनुभव पर नहीं पहुंचेगा, क्योंकि वह मर ही जाएगा।
यानी जो मैं कह रहा हूं, यानी मेरा कहना यह है कि अगर भूल भी चुननी हो-- भूल तो सब जगह संभव है, भूल सब जगह संभव है, क्योंकि आदमी, आदमी अज्ञान में है, इसलिए कुछ भी पकड़ता है तो भ्रांति ला सकता है। लेकिन फिर भी भ्रांति ऐसी चुननी चाहिए, जिससे लौटने का उपाय हो। जैसे न खाने से लौटने का कोई उपाय नहीं है। लेकिन ज्यादा खाने से लौटने का उपाय है। मेरा मतलब आप समझ रहे हैं न? ज्यादा खाने से लौटने का उपाय है और ज्यादा खाना खुद दुख देगा। लौटना पड़ेगा। लेकिन न खाना दुख नहीं देता, समाप्त ही करता है, मिटा ही डालता है। उससे लौटने की संभावना कम हो जाती है।
फिर यह बात तो ठीक ही है कि सभी शब्द हमें भरमा सकते हैं, भटका सकते हैं। क्योंकि हम शब्दों से वही अर्थ निकाल लेना चाहते हैं, जो हम चाहते हैं कि निकले। हम वह नहीं देखना चाहते, जो कि कहा गया है। यह तो हमेशा रहेगा। यह हमेशा होगा। इसलिए जो आदमी जिन शब्दों का प्रयोग करता है, उन शब्दों के लिए बहुत साफ दृष्टि साथ देनी चाहिए।
तो जो मैं कह रहा हूं, मैं यह कह रहा हूं कि भोग अंततः त्याग बन जाता है, लेकिन त्याग अंततः भोग नहीं बनता। जो मैं कह रहा हूं, भोग अंततः त्याग बन जाता है।
यानी मैं यह कह रहा हूं कि एक वेश्या भी ब्रह्मचर्य को उपलब्ध हो सकती है, लेकिन जो जबरदस्ती ब्रह्मचर्य थोप कर साध्वी बन गई है, उसका ब्रह्मचर्य को उपलब्ध होना बहुत मुश्किल है। एक वेश्या का अनुभव भी निरंतर उसे ब्रह्मचर्य की दिशा में गतिमान करता है, लेकिन थोपा हुआ ब्रह्मचर्य निरंतर सेक्स की दिशा में गतिमान करता है। और कहीं नहीं ले जा सकता। अगर ले भी जाएगा तो और वासना, और वासना की तरफ चित्त को झुकाएगा। फिर जीवन की सहजता में ही भोग हो, असहजता में न हो, यह अच्छा है। इसलिए मेरा ऐसा कहना है।

प्रश्नः एक अंतर हम जानना चाहते हैं कि किन्से रिपोर्ट जो सेक्स पर प्रकाशित हुई, उसमें लिखा है कि वे लोग जो कि खुद को कोड़े मारते हैं अथवा दूसरे को कोड़े मारते हैं, वे लोग जो कि स्वयं को दुख देते हैं और दूसरे को दुख देना पसंद करते हैं, ऐसे सारे लोग जो हैं, वे सेक्स परवर्ट्स होते हैं!

यह बिल्कुल ही ठीक है।

प्रश्नः इसी ढंग से इधर जिसे हम त्यागी कहते हैं... ।

सेक्स परवर्ट है!

प्रश्नः जो धूनी रमाता है साल भर। अच्छा दोनों के सेक्स परवर्शन में क्या दोनों को हम एक ही स्तर पर रख सकते हैं? या इनमें दोनों में इस परवर्शन में कोई फर्क है?

समझा, आपकी बात बहुत ठीक है। सारे पिछले सौ वर्षों के मनोविज्ञान की खोज यह है कि दूसरे को दुख देना या अपने को दुख देना या दुखियों को आदर देना या दुख की संभावनाओं को सहारा देना, किसी न किसी प्रकार की काम-शक्ति का विकृत रूप है, सेक्स परवर्शन है। यह बिल्कुल ही सत्य की बात है।
असल में इसे समझना जरूरी है। असल में काम या सेक्स सुख की निम्नतम संभावना है--सुख की। समझना चाहिए कि काम जो है, प्रकृति के द्वारा दिया गया सहज सुख है। इससे कोई ऊपर उठे और बड़े सुख खोज ले, तो फिर काम के सुख की जरूरत नहीं रह जाती। इससे कोई ऊपर उठे, और बड़े सुख खोज ले, तो काम के सुख की

कोई जरूरत नहीं रह जाती। धीरे-धीरे काम रूपांतरित होता है, ट्रांसफार्म होता है और अंततः ब्रह्मचर्य बन सकता है। लेकिन इससे बड़े सुख कोई न खोजे और इस सुख को भी इनकार कर दे, तो फिर दुख की संभावनाएं शुरू होती हैं। क्योंकि नीचे दुख की संभावना है। यह सीमा रेखा है। सेक्स के नीचे दुख की संभावनाएं हैं, सेक्स के ऊपर सुख की संभावनाएं हैं। अगर कोई बड़े सुख खोज ले तो सेक्स से मुक्त हो जाता है। अगर कोई बड़े सुख न खोजे और सेक्स को इनकार कर दे, तो नीचे के दुखों में उतर आता है।

प्रश्नः तो सेक्स क्या है--बीच की सीढ़ी?

बीच की रेखा है।

प्रश्नः क्या है वह?

जहां से हमारे सुख दुखों में रूपांतरित होते हैं। वह सीमा रेखा है, जहां नीचे दुख हैं, ऊपर सुख हैं। इसलिए दुखी आदमी सेक्सुअल हो जाता है। बहुत सुखी आदमी नॉन-सेक्सुअल हो जाता है। क्योंकि उसके लिए एक ही सुख है। एक ही सुख है। जैसे दरिद्र समाज है, दीन समाज है, दुखी समाज है, तो वह एकदम बच्चे पैदा करेगा। गरीब आदमी जितने बच्चे पैदा करता है, अमीर आदमी नहीं करता। अमीर आदमी को अक्सर तो गोद लेने पड़ते हैं!
उसका कारण है। गरीब आदमी एकदम बच्चे पैदा करता है। उसके पास एक ही सुख है, बाकी सब दुख ही दुख हैं। इस दुख से बचने के लिए एक ही मौका है उसके पास कि वह सेक्स में चला जाए। वह ही उसके लिए एकमात्र सुख का अनुभव है, जो उसे हो सकता है। वह वही है।
अमीर आदमी को और भी बहुत सुख हैं। सुख छितर जाता है तो सेक्स इंटेंस नहीं रह जाता। उसकी इंटेंसिटी कम हो जाती है, उसकी तीव्रता कम हो जाती है। सुख और जगहों में फैल जाता है। बहुत तरह के सुख वह लेता है। संगीत का भी लेता है, साहित्य का भी लेता है, नृत्य का भी लेता है, विश्राम का भी लेता है। उसका सुख और तलों पर भी फैलता है। फैलने की वजह से सेक्स इंटेंसिटी कम हो जाती है। गरीब और किसी तरह के सुख नहीं लेता, बस एक ही सुख रह जाता है कि सेक्स भर उसको सुख देता है। बाकी सब दुख ही दुख हैं दिन भर। श्रम, मेहनत, गिट्टी फोड़ना, तोड़ना, वही सब है।
सेक्स जो है, वह प्रकृति के द्वारा दिया गया सुख भाव है। अगर कोई आदमी इसमें ही जीता चला जाए तो सामान्यतः जीवन दुख होगा, सेक्स सुख होगा। और आदमी सारे दुख सहेगा सिर्फ सेक्स के सुख के लिए। लेकिन अगर इससे ऊपर उठना शुरू हो जाए, यानी और खोजें हैं, वही धर्म का सारा का सारा जो जगत है, वह सेक्स के ऊपर सुख खोजने का जगत है। जैसे-जैसे ऊपर, सेक्स के ऊपर सुख मिलना शुरू होता है, वह जो शक्ति सेक्स से प्रकट होकर सुख पाती थी, वह नए द्वारों से झांक कर सुख पाने लगती है। और धीरे-धीरे सेक्स के द्वार से विदा लेने लगती है, ऊपर उठने लगती है।
इसको कोई कुंडलिनी कहे, कोई और नाम दे, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। कुल मामला इतना है कि सेक्स सेंटर के पास सारी शक्ति इकट्ठी है, वह रिजर्वायर है। अगर आप शक्ति को ऊपर ले जा सकते हैं तो वह रिजर्वायर नीचे की तरफ शक्ति को फेंकना बंद कर देगा। और अगर आप ऊपर नहीं ले जा सकते हैं तो वह रिजर्वायर रिलीज करेगा। और बड़े मजे की बात है कि सेक्स का जो सुख है साधारणतः, वह रिलीज का ही सुख है। इतनी शक्ति इकट्ठी हो जाती है कि वह भारी, टेंस हो जाती है, उसको रिलीज कर दिया।
अब समझ लो कि एक आदमी ऊपर भी नहीं गया और सेक्स के रिजर्वायर को भी उसने रिलीज करना बंद कर दिया, तो अब उसकी शक्तियां नीचे उतरनी शुरू होंगी-- सेक्स से भी नीचे। और ये शक्तियां क्या करेंगी? क्योंकि सेक्स सुख की सीमा है, उसके नीचे दुख की सीमाएं हैं। अब ये शक्तियां क्या करेंगी? ये सैडिस्ट या मैसोचिस्ट हो जाएंगी। या तो ये खुद को सताएंगी या दूसरे को सताएंगी। और मजे की बात यह है कि जो मजा आएगा, वह सेक्सुअल जैसा ही है। यानी जो आदमी अपने को कोड़े मार रहा है, वह आदमी कोड़े मार कर उतनी शक्ति रिलीज कर

देगा, जितनी सेक्स से होती तो सुख देती। उतनी शक्ति रिलीज होकर वह थक कर विश्राम करेगा। उसको बड़ा आराम मिलेगा। हमको लगेगा कि इस आदमी ने बड़ा कष्ट दिया अपने को, उसके लिए एक तरह का आराम है वह, क्योंकि शक्ति रिलीज हो गई। और ऐसा जो आदमी, जो खुद को दुख देने में सुख पाने लगेगा--यह एक तरह का खुद को दुख देने में सुख पाना है--जो आदमी खुद को दुख देने में सुख पाने लगेगा, वह दूसरों को दुख देने में भी सुख पाने लगेगा। वह दूसरों को भी सताएगा, दूसरों को भी परेशान करेगा, दूसरों को भी परेशान करने के कई उपाय खोजेगा।
अब टंडन जी पूछते हैं कि क्या ये धार्मिक परवर्ट और साधारण परवर्ट में कोई फर्क है?
थोड़ा फर्क है। साधारण जो विकृत व्यक्ति है, वह धार्मिक विकृत व्यक्ति
से अच्छी हालत में है। अच्छी हालत में है! अच्छी हालत में इसलिए है कि उसको भी यह बोध निरंतर होगा कि कुछ पागलपन हो रहा है, कुछ गलती हो रही है, कुछ भूल हो रही है। मैं कुछ बीमार हूं।
धार्मिक परवर्ट को यह भी नहीं होता। उससे गलती हो ही नहीं रही, वह साधना कर रहा है! कर वह वही रहा है, लेकिन जो वह कर रहा है, उसके लिए उसने बड़े जस्टीफिकेशंस खोज रखे हैं, उसने बड़े न्याययुक्त कारण खोज रखे हैं। इसलिए वह कभी अपने को पागल, विक्षिप्त या रुग्ण भी नहीं समझेगा--एक।
और दूसरी बात यह है कि साधारण जो इस तरह का विक्षिप्त आदमी है, वह अपनी विक्षिप्तता को छिपाएगा, प्रकट नहीं करेगा। हो सकता है वह रात में अपनी पत्नी की गर्दन दबाए, कांटे चुभाए... ।
जान कर आप हैरान होंगे, सैडिज्म शब्द ही उस आदमी से चला, डी सादे एक बहुत बड़ा लेखक हुआ। उसके प्रेम करने का ढंग ही यह था--इसी से सैडिज्म, दुखवादी शब्द बना--कि वह जब भी किसी स्त्री को प्रेम करे तो उसके लिए कोड़ा, चाकू, कांटे अपने साथ रखे! एक बैग ही था उसके पास। कि जब स्त्री को प्रेम करे तो दरवाजे बंद करके पहला काम कि उसको कोड़े मारेगा! उसको नग्न कर देगा और उसको कोड़े मारना शुरू करेगा! और वह भागेगी, चीखेगी, चिल्लाएगी; जितनी चीखेगी, चिल्लाएगी, उतना ही उसको आनंद आने लगेगा! कांटे चुभाएगा, उसने सब इंस्ट्रूमेंट बना कर रखे थे इस तरह के, कि कैसे स्त्री को सताना!
आमतौर से हमको ख्याल में नहीं आता। आमतौर से हमको ख्याल में नहीं आता
कि अगर प्रेम में कोई व्यक्ति किसी स्त्री को चिंउटी ले रहा है तो वह बहुत छोटे अंशों में सैडिज्म है। वह टार्चर करने की बहुत छोटी सी बात है। प्रेम में एक-दूसरे को लोग नाखून भी खपा देंगे, नोंच भी डालेंगे। मगर वह प्रेम में हमको ख्याल में नहीं आएगा कि यह नाखून गपाना या यह नोंचना, या एक-दूसरे को जोर से दबाना, यह कोई सैडिज्म है। यह सैडिज्म ही है। बहुत सूक्ष्म है। और बड़ा सबके लिए सामान्य, नार्मल सैडिज्म है, इसलिए ख्याल में नहीं आता। अब एक आदमी जरा इसमें आगे चला गया, उसको नाखून काफी नहीं मालूम पड़ते तो उसने कांटे बना रखे हैं! वह कांटे से चुभाता है, तो फिर मालूम पड़ता है। लेकिन मजे की बात यह है कि डी सादे से सैकड़ों स्त्रियों का संबंध रहा।
वह आदमी बहुत अदभुत था। उसको न मालूम कितनी स्त्रियां प्रेम करने लगें, ऐसा आदमी था! और बड़ा प्रतिभाशाली भी था। जिन स्त्रियों ने उसको प्रेम किया है, उनका भी कहना यह है कि जो आनंद उसके साथ आया, वह कभी किसी के साथ नहीं आया।
अब यह बड़े मजे की बात है कि उसका कोड़ा मारना भी स्त्रियां पसंद करती थीं! उसका कारण यह है कि वह कोड़े मार कर इतनी ऑरजि पैदा कर देता था--औरत दौड़ रही है, वह कोड़े मार रहा है, वह कांटे चुभा रहा है, वह बाल खींच रहा है, वह नाखून चुभा रहा है, वह काट रहा है! तो स्त्री के पूरे शरीर को वह इतना कंपन से भर देता कि जब वह सेक्स में जाता उसके साथ, तो स्त्री जिसको क्लाइमेक्स कहें, वह छू पाती, जो कि साधारणतः स्त्रियां नहीं छू पातीं। संभोग में सौ में से अट्ठानबे स्त्रियां क्लाइमेक्स को कभी नहीं पहुंच पातीं। क्योंकि उनका पूरा शरीर ही नहीं जग पाता। तो इतना सताने के बाद भी स्त्रियां उसको पसंद करतीं कि वह आदमी अदभुत है। और उसका कहना यह था कि जब तक मैं सता न लूं, तब तक मुझे कुछ रस आता ही नहीं, मुझे कुछ आनंद नहीं आता।

ठीक डी सादे जैसा एक दूसरा आदमी था मैसोच, जिसके नाम पर मैसोचिज्म चला। वह उलटा काम था उसका। वह अपने को ही सताएगा। डी सादे दूसरे को सताएगा, वह अपने को ही सताएगा! वह सब तरह से अपने को सताएगा और सता कर बड़ा सुखी होगा।
असल में हमारे पास जो शक्ति बच जाती है, या तो हम उसे सुख की दिशा में गतिमान कर सकते हैं या दुख की दिशा में--दो ही दिशाएं हैं, तीसरी कोई दिशा नहीं है। आप ठहर नहीं सकते बीच में। तो या तो आप सुख की दिशा में अपनी शक्तियों को ले जाएं, और नहीं तो फिर शक्तियां दुख की दिशा में जाना शुरू हो जाएंगी।

प्रश्नः नार्मल दिशा भी हो सकती है?

नार्मल का कुल मतलब इतना है--नार्मल का कुल मतलब इतना है कि थोड़ा सुख, थोड़ा दुख; और कुछ मतलब नहीं होता नार्मल का। यानी वह आदमी दोनों ही काम कर रहा हैः मैसोचिस्ट भी है, सैडिस्ट भी है। यानी वह आदमी थोड़ा अपने को भी सताता है, थोड़ा दूसरे को भी सताता है। सताने के कई ढंग हो सकते हैं, हमको ख्याल में नहीं होते। यानी असल में होता क्या है, नार्मल आदमी कैसे-कैसे सताता है, वह हमें पता ही नहीं चलता। जरा ही सीमा के बाहर जाता है, तब पता चलना शुरू होता है कि यह तो मामला गड़बड़ हो गया, यह आदमी कुछ गड़बड़ हो गया। कह मैं यह रहा हूं कि दो ही दिशाएं हैं। या अगर बीच में ठहरते हैं आप, तो दोनों दिशाओं का घोलमेल आपके व्यक्तित्व में होगा। कभी आप सताएंगे भी... । इसलिए यह होता है कि पति कभी पत्नी को सताएगा भी, कभी प्रेम भी करेगा; सताएगा, फिर प्रेम करेगा; प्रेम करेगा, फिर सताएगा। पत्नी भी सताएगी, एक दिन प्रेम करती दिखाई पड़ेगी, दूसरे दिन सताती दिखाई पड़ेगी। सुबह से उपद्रव मचाएगी, सांझ पैर दाबेगी! यह कुछ समझ में आना मुश्किल होता है कि यह हो क्या रहा है! यानी ये दोनों बातें एक साथ क्यों चलती हैं?
और ध्यान रहे कि जिसको हमने थोड़ी देर प्रेम किया, थोड़ी देर बाद हम उसको सताएंगे। क्योंकि वह एक नारमैलिटी खतम हुई, अब दूसरी शुरू हुई। अब थोड़ी देर में हम सताने का उपाय खोजेंगे। अक्सर यह होगा कि पति-पत्नी लड़ते, लड़ते, लड़ते, लड़ते बड़े प्रेम में आ जाएंगे और प्रेम में आते, आते, आते, आते फिर लड़ना शुरू कर देंगे। यह इस तरह उनका सर्कल चलता रहेगा। वह जिसको भी हम सताएंगे, थोड़ी देर में सताने का काम पूरा हो जाएगा, फिर प्रेम करेंगे, फिर प्रेम करेंगे, फिर सताएंगे। नार्मल का इतना ही मतलब होता है।
एबनार्मल का मतलब यह होता है कि या तो वह सुख की दिशा में चला जाता है,
तो भी एबनार्मल है। और या दुख की दिशा में चला जाता है, तो भी एबनार्मल है। असाधारण है वह व्यक्ति। लेकिन सुख की दिशा में जाने से शायद अंततः वह परमात्मा तक पहुंच जाता है, क्योंकि परमात्मा परम सुख है। और दुख की दिशा में जाने से शायद वह शैतान तक पहुंच जाता है, क्योंकि शैतान होना अंतिम दुख है।
यह जो मैं कह रहा हूं, और वह जो प्रश्न पूछा गया है वह यह, कि इसमें धार्मिक और साधारण में--तो धार्मिक आदमी इन्हीं कामों को प्रकट में करेगा, अधार्मिक आदमी इनको अप्रकट में करेगा। और धार्मिक आदमी प्रकट में करेगा, इसलिए धार्मिक आदमी ज्यादा खतरनाक भी है। क्योंकि वह प्रकट में करके इनको फैलाता भी है, इनका विस्तार भी करता है। और मजा यह है कि वह धार्मिक आदमी लोगों में यह भाव पैदा करता है कि ये जो वह काम कर रहा है, ये कोई विक्षिप्तता के नहीं हैं। ये काम बड़ी साधना के हैं, बड़ी ऊंची बात कर रहा है वह। और पागल आदमी को यह ख्याल आ जाए कि वह ऊंची बात कर रहा है तो फिर पागलपन के ठीक होने की संभावना ही खतम होती है।
हिंदुस्तान में पागलों की संख्या कम है, यूरोप में पागलों की संख्या ज्यादा है। लेकिन अगर संन्यासी, साधुओं और सताने वालों की संख्या हिंदुस्तान के पागलों से जोड़ दी जाए, तो संख्या बराबर हो जाती है। उसका कुल कारण है, यहां डायवर्शन है, वहां डायवर्शन भी नहीं है। वहां जो आदमी पागल है, वह पागल है। जो आदमी पागल नहीं है, वह पागल नहीं है। यहां पागल और गैर-पागल के बीच एक रास्ता और है कि वह आदमी इस तरह... ।

मैं एक आदमी को जानता हूं जबलपुर में, जो एक सौ आठ बार बर्तन साफ करेंगे, तब पानी भर कर लाएंगे। यह आदमी यूरोप में हो तो पागल हो जाएगा। यह आदमी हिंदुस्तान में हो तो धार्मिक हो जाएगा। उसको लोग कहते हैं कि परम धार्मिक आदमी है! शुद्धि का कैसा ख्याल! वह आदमी एक सौ आठ दफा बर्तन घिसेगा! और इसमें भी अगर कोई स्त्री निकल गई बीच में, तो वह खतम हो गई पहलीशृंखला! फिर एक से शुरू करेगा!
यह जो आदमी है, यहां धार्मिक है! इसको कई लोग पैर छुएंगे और कहेंगे कि परम धार्मिक आदमी है! कभी-कभी दिन-दिन बीत जाएगा उसका इसी में! क्योंकि नल पर धो रहा है वह, स्त्री फिर निकल गई। तो वह खतम हो गया पहला वाला, फिर अशुद्ध हो गया बर्तन, अब वह फिर शुद्ध कर रहा है! अब यह आदमी यूरोप में पागल होगा, फौरन पागलखाने भेजा जाएगा। यहां यह आदमी मंदिर में बैठ जाएगा, पुजारी हो जाएगा, साधु हो जाएगा। इसको आदर मिलने लगेगा।
तो धार्मिक परवर्शन ज्यादा खतरनाक है, वह हमें दिखाई नहीं पड़ता।
अब जैसे मेरा अपना मानना है, महावीर के जीवन में घटना है, जिससे समझ में आए। महावीर ने सब तरह के उपकरण बंद कर दिए। साथ में कोई साधन नहीं रखेंगे। क्योंकि महावीर को लगा होगा और लगेगा, कि साधन भी एक बोझ हो जाते हैं। और जिस व्यक्ति ने सारे जीवन को अपना ही मान लिया, अब ठीक है, कल सुबह जो होगा, होगा। तो महावीर कुछ साथ न रखेंगे। कौन बोझ को ढोता फिरे! जब सभी अपने हैं तो बात खतम हो गई है। अब परमात्मा ही फिक्र करेगा। तो वे कोई उपकरण नहीं रखते। वे बाल बनाने के लिए उस्तरा भी नहीं रखते। जब बाल बहुत बढ़ जाते हैं तो उखाड़ देते हैं। जब बाल बहुत बढ़ जाते हैं उसको उखाड़ डालते हैं।
महावीर के लिए यह बाल का उखाड़ना जरा भी विक्षिप्तता का कारण नहीं था!
यह अत्यंत सहज बात थी। कुछ नहीं रखना है साथ, सरलतम यही है कि कभी बाल उखाड़ दिए। साल, दो साल में बढ़ गए, फिर उखाड़ दिए। यात्रा चलती रही। इतना सा भी सामान साथ क्यों रख कर बांधना? क्यों बोझ लेना? क्योंकि सामान का बोझ नहीं है गहरे में, गहरे में सामान को पकड़ कर रखने में सुरक्षित होने की कामना है। तो वे असुरक्षित पूरा जीते हैं। कोई सुरक्षा का भाव नहीं, कुछ रखने का भाव नहीं। जहां जो मिल गया!
तो हाथ में ही खाना लेकर ले लेते हैं। कौन बर्तन का उपद्रव साथ में करे! तो हाथ में ही खाना ले लेते हैं। हाथ से ही खाना खा लेते हैं।
लेकिन महावीर का यह बाल उखाड़ना कुछ पागलों के लिए बहुत अपीलिंग मालूम पड़ा होगा। पागलों का एक वर्ग है, जो बाल उखाड़ता है, जो बाल उखाड़ने में रस लेता है। वह भी एक तरह का सताना है अपने को।
तो इसमें बहुत कठिनाई नहीं है कि महावीर का बाल उखाड़ना देख कर कुछ पागल, जो बाल उखाड़ने में रस लेते हों, महावीर के पीछे साधु हो गए हों। इसलिए साधु हो गए हों कि अब बाल उखाड़ना साधारण, कोई उनको पागल नहीं कह सकता अब। अब तो वे बाल उखाड़ सकते हैं।
महावीर नग्न हो गए हैं। क्योंकि अगर कोई व्यक्ति इतना सरल हो जाए, इतना निर्दोष हो जाए कि उसे नग्नता का बोध भी न रहे... ।
और यह बड़े मजे की बात है कि खुद की नग्नता का बोध हमें तभी तक होता है,
जब तक हम दूसरे के शरीर को नग्न देखना चाहते हैं, यह इंटररिलेटेड है। जब तक हम दूसरे के शरीर को नग्न देखना चाहते हैं, तब तक हम हमारा शरीर कोई नग्न न देख ले, इससे भयभीत होते हैं। ये दोनों बातें एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। जब तक हम दूसरे के कपड़े उघाड़ना चाहते हैं, तब तक हम खुद पर कपड़े ढांकना चाहते हैं। लेकिन जिस आदमी का दूसरे के शरीर को नग्न देखने का भाव चला गया हो, वह नग्न खड़ा हो सकता है। महावीर नग्न खड़े हो गए।
लेकिन कुछ लोग हैं, जिनको एग्जिबीशनिस्ट कहते हैं, जो दूसरों को अपने
को नंगा दिखाना चाहते हैं, यह पागलों का वर्ग है। तो महावीर के आस-पास ऐसे एग्जिबीशनिस्ट आकर अगर संन्यासी हो गए हों, जो कि चाहते थे कि कोई उन्हें नंगा देखे, तब तो उपद्रव हो गया। यानी उनकी चाह बिल्कुल दूसरी है, लेकिन घटना एक सी मालूम होती है।
अभी यूरोप में या कई मुल्कों में एग्जिबीशनिस्ट पर रोक है। कुछ लोग हैं, कुछ परसेंटेज है उनका, जो कि रास्ते के किनारे खड़े रहेंगे, कोई अगर

अकेला निकल रहा है तो पैंट खोल कर नंगा होकर एकदम भाग जाएंगे उसको दिखा कर। इन पर रोक है, कि यह आदमी खतरनाक है।
अब इनको यह क्या हो रहा है? इनको क्या रस आ रहा है? दूसरा इनको नंगा देख ले, यह इनका रस है। और ये पागल हैं, ये निपट पागल हैं। लेकिन हिंदुस्तान में ये नंगे साधु हो सकते हैं! और तब इनका पागलपन हमें पता ही नहीं चलेगा। ये पूजा का कारण बन जाएंगे।
अब कठिनाई जो है जीवन को समझने में वह यह है कि जीवन में दोनों घटनाएं
घट सकती हैं, इसलिए बड़ी कठिनाई है। एक आदमी इसलिए नग्न हो सकता है कि अब उसके मन में कुछ नग्नता को छिपाने, ढांकने, देखने का कोई भाव ही नहीं रहा। वह परम सरल हो गया है, तो बच्चे की तरह नग्न हो सकता है। और एक आदमी पागल की तरह नग्न हो सकता है कि नग्न होने में उसे रस है कि दूसरे उसको नंगा देखें। और ये दोनों घटनाएं एक साथ घट सकती हैं। और इसलिए बड़ी कठिनाई है जीवन में साफ-साफ समझने में।
लेकिन कठिनाई पहचानी जा सकती है, नियम बनाए जा सकते हैं। जो आदमी सरलता की वजह से नग्न हुआ है, वह जीवन के और हिस्सों में भी सरल होगा।

प्रश्नः यह भी भोग हुआ फिर? नग्नता और बाल उखाड़ना भी भोग हुआ?

हां, बिल्कुल भोग हुआ। उनके लिए भोग ही है। उनके लिए भोग ही है। और नग्नता का आनंद है उनके लिए पूरा। उनके लिए पूरा आनंद है, उनके लिए भोग का ही हिस्सा है। उनके लिए कपड़े छोड़े गए हैं ऐसा नहीं, नग्नता आई--ऐसा। यानी जोर इस पर नहीं है कि कपड़े छोड़े, नग्नता आई। एक सरलता आई और जीवन इतना सरल हो गया कि जैसे एक बच्चे का, एक पशु-पक्षी का जीवन जैसा सरल, निर्दोष है, वैसा वे खड़े हो गए।
लेकिन यह आदमी जीवन के और हिस्सों में एकदम सरल होगा, सब हिस्सों में सरल होगा; सब तरह से सरल होगा, निष्कपट होगा, निर्दोष होगा। और इसके जीवन के और हिस्सों में कहीं पागलपन के लक्षण नहीं होंगे। लेकिन जो आदमी एग्जिबीशनिस्ट है, जो सिर्फ इसलिए नंगा हुआ है कि दूसरे लोग उसे नंगा देखें, यह उसकी बीमारी है। यह आदमी दूसरे हिस्सों में सरल नहीं होगा। यह दूसरे हिस्सों में जटिल होगा। दूसरे हिस्सों में भी इसकी विक्षिप्तता प्रकट होगी, इसका पागलपन प्रकट होगा।
और इस देश में इस पर निर्णायक निर्णय लेने की जरूरत पड़ गई है अब। क्योंकि यह कोई पांच हजार साल से उपद्रव चल रहा है। उस उपद्रव में तय करना मुश्किल हो गया है कि कौन आदमी आथेंटिक, प्रामाणिक रूप से है, कौन आदमी पागलपन का सिर्फ झुकाव है उसका, वह पूरा कर रहा है। ये दोनों ही हो सकते हैं। इसलिए बहुत साफ रेखा खींचनी जरूरी है। इसलिए जो आदमी कपड़े छोड़ने पर जोर देगा, वह आदमी एग्जिबीशनिस्ट है। और जो आदमी, कपड़े छूट जाएंगे जिससे, वह आदमी एक नग्नता को उपलब्ध हो रहा है जो निर्दोष है, इनोसेंट है। धार्मिक पागलपन ज्यादा खतरनाक चीज है, क्योंकि उसमें धर्म भी जुड़ा हुआ है। अब हमें दिखाई नहीं पड़ता कि पागलपन सीधा हो तो एक अर्थ में सरल होता है। एक अर्थ में, क्योंकि पागल आदमी बेचारा निरीह हो जाता है। धार्मिक पागल निरीह नहीं होता, दूसरे को निरीह करता है। खुद तो उनके ऊपर खड़ा हो जाता है।
अब जैसे कि सेंट जोन ऑफ आर्क को एक पोप ने आग में जलाए जाने की सजा दी।
आग में जला दी गई वह औरत। जलाई इसलिए गई कि वह धर्म के विपरीत बातें कर रही है। तो पोप को पूरा मजा है इस बात का कि वह धार्मिक आदमी है और एक औरत को जला रहा है, क्योंकि वह अधार्मिक बातें कर रही है। वह भगवान का काम कर रहा है।
अब एक स्त्री को जलाना, और जोन जैसी सरल स्त्री को जलाना, एकदम अधार्मिक कृत्य था। लेकिन पोप को एक तृप्ति है! अगर दूसरा आदमी यह काम करता तो वह आदमी पागल सिद्ध होता, क्रिमिनल होता, अपराधी होता। पोप अपराधी नहीं हुआ, पोप धार्मिक कार्य कर रहा है! एक औरत को उसने सामने जलवा दिया खड़े करवा कर, आग लगवा कर!

सात साल बाद दूसरे पोप जब सत्ता में आए, तो उन्होंने विचार किया, उन्होंने पाया कि नहीं, यह तो ज्यादती हो गई। जोन तो बड़ी सरल औरत थी और उसे तो संत की पदवी दिया जाना चाहिए। तो वह सेंट जोन बनी। सात साल बाद दूसरे पोप ने उसको सेंट बना दिया! लेकिन जिस पोप ने आग लगवाई थी, वह पोप अपराधी हो गया। लेकिन वह मर चुका था, अब क्या किया जाए?
तो इस पोप ने उसको सजा दी कि उसकी हड्डियों को निकाल कर जूते मारे जाएं और सड़क पर घसीटा जाए! उस मरे हुए पोप की हड्डियां निकाली गईं, उसकी कब्र खोदी गई, उसको जूते मारे गए, उसके ऊपर थूका गया और उसकी हड्डियों को सड़क पर घसीट कर अपमानित किया गया!
अब यह आदमी धार्मिक है फिर! यानी अब यह मजा, ये जो दिमाग हैं, इनको कहना चाहिए ये पागल हैं। यानी उससे भी ज्यादा पागल है यह; यह पहले पोप से भी ज्यादा पागल है। उससे कम पागल नहीं है। लेकिन इसका पागलपन दिखाई नहीं पड़ेगा। इसका पागलपन एक धार्मिक परिभाषा ले रहा है। यह धार्मिक एक गारबेज पैदा करेगा शब्दों की और यह बिल्कुल ठीक मालूम पड़ेगा! और यह जो कर रहा है, उचित मालूम पड़ेगा। धर्म इसको औचित्य दे रहा है--इसकी विक्षिप्तता को! धर्म ने बहुत तरह की विक्षिप्तताओं को औचित्य दिया है। और इस औचित्य
को तोड़ देने की जरूरत है। और यह साफ समझ में आ जाना चाहिए, यह तभी टूटेगा, जब हम दुखवाद को धर्म से अलग करें; नहीं तो नहीं टूटेगा। क्योंकि वह जो दुखवाद है, उसी के भीतर सारा औचित्य छिप जाता है। दूसरे को दुख देना भी, अपने को दुख देना भी, सब उसमें छिप जाता है।
इसलिए मेरी दृष्टि में धर्म सुख की खोज है--परम सुख की, उसे हम आनंद कहें। और धार्मिक व्यक्ति वह है, जो स्वयं भी आनंद की तरफ निरंतर गति करता है और चारों तरफ भी निरंतर आनंद बढ़े, इसके लिए चेष्टारत होता है। न वह स्वयं को दुख देता, न वह दूसरे को दुख देने की आकांक्षा करता है; न उसके मन में दुख का कोई आदर है, न कोई सम्मान है। ऐसे व्यक्ति को अगर धार्मिक हम कहें तो परम आनंद की दिशा धर्म बनता है। नहीं तो अब तक तो वह परम दुख की दिशा बना हुआ है!
एक और आखिरी ले लें।

प्रश्नः महावीर नासाग्र दृष्टि से ध्यानावस्थित हुए। क्या यह ध्यान
की ही मुद्रा है?

यह बड़ी महत्वपूर्ण बात है--नासाग्र दृष्टि। नासाग्र दृष्टि का मतलब हैः आंख आधी बंद, आधी खुली। अगर नाक के अग्र भाग को आप आंख से देखेंगे, तो आधी आंख बंद हो जाएगी, आधी खुली रहेगी। न तो आंख बंद, न आंख खुली। साधारणतः हम दो ही काम करते हैंः या तो आंख बंद होती है नींद में या आंख खुली होती है जागरण में। नासाग्र दृष्टि होती ही नहीं। कोई कारण नहीं है उसका। आंख पूरी खुली होती है या आंख पूरी बंद होती है। दोनों के बीच में एक बिंदु है, जहां आंख आधी खुली, आधी बंद है।
अगर हम खड़े होंगे और नासाग्र दृष्टि होगी, तो करीब चार फीट तक जमीन हमें दिखाई पड़ेगी। करीब चार फीट तक हमें जमीन दिखाई पड़ेगी। तो साधारणतः कोई भी नासाग्र नहीं होता।
इसमें दो-तीन बातें महत्वपूर्ण हैं। एक तो यह कि पूरी बंद आंख, आंखों
के जो स्नायु हैं भीतर, उनको निद्रा में ले जाती है। पूरी बंद आंख निद्रा में ले जाती है। आंख जैसे ही बंद होती है पूरी, तो मस्तिष्क के जो स्नायु आंख से जुड़े हैं, वे एकदम शिथिल हो जाते हैं और निद्रा हो जाती है। पूरी खुली आंख जागरण में लाती है।
ध्यान दोनों से अलग अवस्था है, न तो वह निद्रा है, न वह जागरण है। वह निद्रा जैसा शिथिल है और जागरण जैसा चेतन है। ध्यान तीसरी अवस्था है। नींद नहीं है वह, और जागरण भी नहीं है वह; और नींद भी है और जागरण भी है।
उसमें दोनों के तत्व हैं। नींद में जितनी शिथिलता होती है, रिलैक्स्ड, उतना ध्यान में होना चाहिए। और जागरण में जितना चैतन्य होता है, होश होता है, अवेयरनेस, उतनी ध्यान में होनी चाहिए।

तो ध्यान जो है, वह मध्य अवस्था है। और नासाग्र दृष्टि आंख के पीछे के स्नायुओं को मध्य अवस्था में छोड़ देती है। वह बड़ी वैज्ञानिक बात है। उस हालत में न तो स्नायु इतने तने होते, जितने कि जागरण में तने होते हैं; न इतने शिथिल होते, जितने कि निद्रा में शिथिल हो जाते हैं और सो जाते हैं। मध्य में होते हैं। एक मध्य बिंदु, सम बिंदु होता है।
तो नासाग्र दृष्टि का यौगिक तो बहुत मूल्य है, फिजियोलाजिकल बहुत मूल्य है, और ध्यान के लिए वह कीमती प्रभाव पैदा करती है।
दूसरी बात यह समझने की है कि पूरी आंख बंद कर ले व्यक्ति, तो एनक्लोज्ड हो जाता है, सब तरफ से बंद हो जाता है, जगत से टूट जाता है। पूरी बंद आंख जो है, एक व्यक्ति को आयलैंड बना देती है। उसका जगत से सब संबंध टूट गया। वह बंद हो गया अपने में। पूरी खुली आंख व्यक्ति को बाहर के जगत से जोड़ देती है और अपने को वह विस्मरण कर जाता है। उसे अपना कोई पता ही नहीं रह जाता। और सब हो जाता है, वही भर मिट जाता है। बंद आंख में सब मिट जाता है, वही रह जाता है। खुली आंख में सब सत्य हो जाता है और खुद ही भर मिट जाता है। आधी बंद, आधी खुली आंख में यह भी अर्थ है कि न तो हम टूटे हुए हैं सबसे,
वह बात भी गलत है; सबसे हम जुड़े हैं; और न ही यह बात सच है कि सभी सच है और हम झूठे हैं। हम भी हैं और सब भी है।
महावीर का सारा जोर सम पर है निरंतर। सम्यक शब्द उनका सर्वाधिक प्रयोग में आने वाला शब्द है। प्रत्येक चीज में सम, प्रत्येक बात में मध्य, प्रत्येक बात में वहां खड़े हो जाना है, जहां अतियां न हों--अन-अति। आंख के मामले में भी उनकी अन-अति है। वे कहते, न तो पूरी खुली आंख, न पूरी बंद--आधी। संसार भी सत्य है आधा, जितना हमें दिखाई पड़ता है, उतना सत्य नहीं है। हम भी सत्य हैं, लेकिन आधे; जितना बंद आंख से मालूम पड़ते हैं, उतने नहीं।
शंकर कहते हैं, सब जगत असत्य है, सत्य है ही नहीं जगत में। आंख बंद हो
तो जगत एकदम असत्य हो जाता है। क्या सत्य है?
तो जो व्यक्ति आंख बंद करके ध्यानावस्थित होने की चेष्टा करेगा, वह माया के किसी न किसी सिद्धांत के करीब पहुंच जाएगा। क्योंकि जब आंख बंद में उसे आत्म-अनुभव होगा तो जगत एकदम असत्य मालूम पड़ेगा, है ही नहीं।
तो जिन लोगों ने, शंकर ने, अद्वैत ने, जिन्होंने कहा है कि जगत इल्यूजरी है, उसका कारण है। वह बंद आंख का अनुभव है। अगर बंद आंख से ध्यान किया गया तो जगत इल्यूजरी हो ही जाएगा। क्योंकि कुछ बचता ही नहीं वहां, सिर्फ स्वयं बच जाता है। बंद आंख में बाहर के जगत का कोई अनुभव नहीं रह जाता, स्वयं की अनुभूति रह जाती है। वह इतनी प्रखर होती है कि कोई भी कह देगा कि बाहर जो था, वह सब असत्य था। वह सत्य नहीं था।
अगर कोई बाहर के जगत में पूरी आंख खुली करके जी रहा है, जैसे चार्वाक।
तो वह कहता है, भीतर-वीतर कुछ भी नहीं है, आत्मा-वात्मा सब झूठी बातें हैं। खाओ, पीयो, मौज करो। यह बाहर पूरी खुली आंख का अनुभव है कि बाहर ही सब कुछ हैः खाओ, पीयो, मौज करो। भीतर कुछ भी नहीं है। भीतर गए कि मरे। भीतर है ही नहीं कुछ। आत्मा जैसी कोई चीज नहीं है। अगर कोई पूरी खुली आंख के अनुभव से जीए तो इंद्रियों के रस ही शेष रह जाते हैं, आत्मा विलीन हो जाती है। तब जगत सत्य होता है, आत्मा असत्य हो जाती है।
और महावीर कहते हैंः जगत भी सत्य है और आत्मा भी सत्य है। जगत असत्य नहीं है और आत्मा भी असत्य नहीं है। और महावीर कहते हैं कि यह एक दृष्टि है। आंख बंद करके अगर कोई अनुभव करेगा तो स्वयं सत्य मालूम पड़ेगा, जगत असत्य मालूम पड़ेगा। यह दूसरी दृष्टि है कि कोई आदमी कभी ध्यान में बैठेगा ही नहीं आंख बंद करके और बाहर के जगत में ही जीएगा तो वह कहेगा, आत्मा- वात्मा सब असत्य है, जगत ही सत्य है। ये दो दृष्टियां हैं। यह दर्शन नहीं है।
महावीर कहते हैंः जगत भी सत्य है, आत्मा भी सत्य है; पदार्थ भी सत्य है, परमात्मा भी सत्य है। दोनों एक बड़े सत्य के हिस्से हैं। दोनों सत्य हैं।
और वह प्रतीक है, वह नासाग्र दृष्टि। यानी महावीर कभी पूरी आंख बंद करके ध्यान नहीं करेंगे, पूरी खुली आंख रख कर भी ध्यान नहीं करेंगे; आधी

आंख खुली, आधी बंद। और बाहर और भीतर एक संबंध बना रहे--जागे भी, न जागे भी। बाहर और भीतर एक प्रवाह होता रहे चेतना का। ऐसी स्थिति में जो ध्यान को उपलब्ध होगा, उस ध्यान में उसे ऐसा नहीं लगेगा, मैं ही सत्य हूं; ऐसा भी नहीं लगेगा कि बाहर असत्य है, या बाहर ही सत्य है--ऐसा लगेगा कि सत्य दोनों में है और दोनों को जोड़ रहा है।
वह आधी खुली आंख प्रतीकात्मक रूप से भी अर्थ रखती है और ध्यान के लिए सर्वोत्तम है। लेकिन थोड़ी कठिन है। क्योंकि दो अनुभव हमें बहुत सरल हैंः खुली आंख, बंद आंख। थोड़ी कठिन है, लेकिन सर्वोत्तम है।

प्रश्नः आप चार्वाक को भी उसी श्रेणी में लेते हैं, जिस श्रेणी में शंकर हैं?

नहीं, उससे बिल्कुल उलटी श्रेणी है वह।

प्रश्नः पर स्तर दोनों का एक ही है?

नहीं, नहीं, स्तर भी एक नहीं है। स्तर भी एक नहीं है। लेकिन दोनों अधूरे सत्यों को कह रहे हैं--इस मामले में भर एक हैं। स्तर भी एक नहीं है... ।

प्रश्नः शंकर ने बंद आंख में ध्यान किया और उनको दुनिया असत्य मालूम... ।

उनको दुनिया असत्य मालूम पड़ेगी।

प्रश्नः चार्वाक ने खुली आंख से ध्यान किया... ।

ध्यान किया ही नहीं, बस खुली आंख रखी। खुली आंख में ध्यान करने का उपाय नहीं है। खुली आंख में तो बाहर का जगत ही सब कुछ है। और उसी में जीया; खाया, पीया, मौज किया; और कभी भीतर गया नहीं। क्योंकि भीतर जाना पड़ता तो आंख बंद करनी पड़ती। भीतर गया नहीं।
जोड था अभी पश्चिम में एक विचारक। उसने लिखा है कि उससे कई दफा लोगों
ने कहा कि कभी ध्यान भी करो। गुरजिएफ से वह मिलने गया होगा, तो गुरजिएफ ने कहा कि कभी आंख भी बंद करो।
तो उसने कहा, फुरसत कहां लेकिन? सुबह उठता हूं तो भाग-दौड़ शुरू होती है। सांझ जब सोता हूं, तब तक भागता रहता हूं। कहां फुरसत? ध्यान के लिए अलग वक्त कहां? या तो जागता हूं या सोता हूं। फुरसत कहां है? और तीसरी बात के लिए उपाय कहां है? और तीसरी बात होती कहां है? या तो जागो या सोओ। सोओ तो तुम्हीं रह जाते हो; जागो तो सब रह जाते हैं, तुम नहीं रह जाते हो।
जोड ने जो कहा, वह ठीक कहा है। ऐसे ही अगर चार्वाक से कोई कहता, तो वह कहता, कैसा ध्यान! जागते हैं; जब थक जाते हैं, सो जाते हैं। जब थकान मिट जाती, फिर जग जाते हैं। जीते हैं इंद्रियों में, इसलिए जितनी देर जाग सको, जीयो। जितना जाग कर जी सको, जीयो। जितना भोग सको, भोगो। प्रत्येक चीज का रस लो। और भीतर-वीतर क्या है? भीतर कुछ भी नहीं है, भीतर एक झूठ है। क्योंकि भीतर जो कभी गया नहीं है, भीतर झूठ हो ही जाएगा। तो चार्वाक बाहर ही जी रहा है! वह जो दि आउटर है, वही उसके लिए सत्य है।
शंकर जैसे व्यक्ति भीतर ही जी रहे हैं! तो जो दि इनर है, वही सत्य है;
और बाहर का सब असत्य हो गया! एक अर्थ में ये दोनों समान हैं। इस अर्थ में कि ये आधे सत्य को पूरा सत्य कह रहे हैं, इस अर्थ में समान हैं। फिर भी चुनाव करना हो तो शंकर चुनने योग्य हैं, चार्वाक चुनने योग्य नहीं है। क्योंकि चार्वाक यह कह रहा है कि बस इतना ही जीवन है--यह खाओ-पीयो, बस इतना ही जीवन है। और महावीर जो कह रहे हैं, वे यह कह रहे हैं, ये दोनों बातें सत्य हैं।

प्रश्नः यह तो दोनों बातों को आप उलटा कर रहे हैं! आप कह रहे हैं कि चुनना ही हो तो शंकर को चुनो।

हां, हां, बिल्कुल ही।

प्रश्नः तो वह त्याग की तरफ गया!

नहीं, मैं कह रहा हूं कि वह ज्यादा गहरे भोग की तरफ गया। क्योंकि अंतस में जितना भोग है, उतना बाहर नहीं है। नहीं, यह मैं नहीं कह रहा हूं। ऐसी भूल हो जाती है मेरी निरंतर बातों से। शंकर... ।

प्रश्नः चार्वाक भोगी है साधारणतः... ।

साधारणतः हम चार्वाक को भोगी कहेंगे; साधारणतः चार्वाक को मैं त्यागी कहूंगा। मैं कहूंगा कि वह जो अंतर्भोग है, बड़ा भोग है, उसको छोड़ रहा है! चार्वाक यह कह रहा है कि घी भी ऋण लेकर पीना पड़े तो पीयो। ऋण-विण की फिकर मत करो, बस घी मिलना चाहिए। तो वह घी पर ही जी रहा है। लेकिन बहुत बाहर जी रहा है। खाने-पीने तक उसका भोग है। लेकिन एक अंतर्भोग भी है, उस तरफ उसकी कोई दृष्टि नहीं है, कोई ध्यान नहीं है! शंकर ही बड़े भोगी हैं, क्योंकि शंकर ज्यादा गहरे भोग में जा रहे हैं।
और महावीर चूंकि प्रत्येक चीज में एक संतुलन और समता का ध्यान रखते हैं, वे यह कह रहे हैं कि वे न चार्वाक को गलत कहेंगे; चार्वाक उनके पास आए, वे कहेंगे कि बिल्कुल ठीक कहते हो तुम, बाहर सत्य है। गलत इतनी ही बात है कि तुम भीतर नहीं गए, वहां भी सत्य है। शंकर को भी वे यही कहेंगे कि बिल्कुल ही ठीक कहते हो, एकदम ठीक ही बात है कि भीतर सत्य है। लेकिन बाहर जिससे तुमने आंखें बंद की हैं, तुम्हारे आंख बंद करने से वह असत्य नहीं हो जाता, सिर्फ इतना ही कि तुम्हें पता पड़ना बंद हो जाता है। वह बाहर है।
और पूरा जीवन बाहर और भीतर से मिल कर बना है। एक को तोड़ देना दूसरे के हित में अधूरापन है, एकांगी दृष्टि है। इस अर्थ में वे अनेकांती हैं। वे प्रत्येक पहलू पर, प्रत्येक पहलू पर क्या-क्या विरोध है, वे दोनों में से सत्य को निचोड़ लेना चाहते हैं।

महावीर: मेरी दृष्टि में बाईसवां प्रवचन

जागा सो महावीरः सोया सो अमहावीर

प्रश्नः अगर मन ही जागरण है, तो इसकी मूर्च्छा का क्या कारण है? यह मूर्च्छा कहां से पैदा हुई?

महावीर से किसी ने पूछा, साधु कौन है?
स्वभावतः अपेक्षा रही होगी कि महावीर साधु की परिभाषा करेंगे। लेकिन महावीर ने जो किया, वह परिभाषा नहीं थी, इशारा था।
उन्होंने कहा, साधु वह है, जो जाग्रत है; और असाधु वह है, जो मूर्च्छित है।
सुत्ता, सो अमुनिः वह जो सोता है, वह असाधु है।
असुत्ता, मुनिः जो नहीं सोता है, जागा हुआ है, वह साधु है।
यह सवाल पूछने जैसा है कि अगर जागृति, चेतना हमारा स्वभाव है, स्वरूप है, तो फिर यह मूर्च्छा कहां से आ गई है?
इसे समझना भी उपयोगी होगा। मूर्च्छा का अर्थ हमें ख्याल में नहीं है। मूर्च्छा का अर्थ जागृति से उलटा नहीं है, मूर्च्छा का अर्थ है जागृति का और कहीं उपस्थित होना। यह ख्याल में आ जाए तो कठिनाई नहीं रह जाएगी। हमें ऐसा लगता है कि अगर स्वभाव जागृति है तो फिर मूर्च्छा कहां है?
समझ लें, एक टार्च हमारे पास है, जिसका स्वभाव प्रकाश है, और टार्च जल रही है। फिर हम कहते हैं, जब टार्च जल रही है और स्वभाव टार्च का प्रकाश है, फिर अंधेरा कहां है? लेकिन टार्च का एक फोकस है और जिस बिंदु पर पड़ता है, वहां तो प्रकाश है, शेष सब जगह अंधेरा हो जाता है। और यह भी हो सकता है कि टार्च खुद अंधेरे में हो, इसमें कुछ विरोध नहीं है। टार्च का फोकस बाहर की तरफ पड़ रहा है, यद्यपि टार्च का स्वभाव प्रकाश है, लेकिन टार्च खुद अंधेरे में खड़ी है।
हमारा स्वभाव तो जागरण है, लेकिन हमारी जागृति बाहर की तरफ फैली हुई है। हम तब भी जाग्रत हैं। एक आदमी सड़क पर चल रहा है, चारों तरफ देखता है, दुकानें दिखाई पड़ रही हैं, लोग दिखाई पड़ रहे हैं। नहीं तो चलेगा कैसे अगर सोया हुआ हो? सब दिखाई पड़ रहा है, सिर्फ एक आदमी को छोड़ कर, जो वह स्वयं है। सब तरफ जागृति फैली हुई है, सब दिखाई पड़ रहा है--सड़क, दुकान, मकान, तांगा, कार, रिक्शा--सब; सिर्फ एक बिंदु भर दिखाई नहीं पड़ रहा, वह जो स्वयं है! इसका मतलब यह हुआ कि जागृति दो तरह से हो सकती हैः बहिर्मुखी और अंतर्मुखी। अगर बहिर्मुखी जागृति होगी तो अंतर्मुखता अंधकारपूर्ण हो जाएगी। वहां मूर्च्छा हो जाएगी। मूर्च्छा का कुल मतलब इतना है कि प्रकाश की धारा उस तरफ नहीं बह रही है। अगर जागृति अंतर्मुखी होगी तो बाहर की तरफ मूर्च्छा हो जाएगी। साधारणतः जागृति के ये दो ही रूप हो सकते हैं, अंतर्मुखता और बहिर्मुखता। अगर कोई बहिर्मुखी है तो अंतर्मुखता में बाधा पड़ेगी, अगर कोई अंतर्मुखी है तो बहिर्मुखता में बाधा पड़ेगी।
लेकिन अंतर्मुखता का अगर और विकास हो तो एक तीसरी स्थिति भी जागृति
की उपलब्ध होती है, जहां अंतर और बाह्य मिट जाता है, जहां सिर्फ प्रकाश रह जाता है। वह पूर्ण जाग्रत, जहां बाहर और भीतर का भेद भी मिट जाता है। लेकिन बहिर्मुखता से कभी कोई इस तीसरी स्थिति में नहीं पहुंच सकता है।
पहली स्थिति है बहिर्मुखता, दूसरी स्थिति है अंतर्मुखता, तीसरी स्थिति है ट्रांसेंडेंस। तीसरी स्थिति है दोनों के पार हो जाना। और इस पार हो जाने का जो बिंदु है, वह अंतर्मुखता है। इस पार हो जाने का बिंदु बहिर्मुखता नहीं है। क्योंकि जब हम बाहर हैं, तब तो हम अपने पर भी नहीं हैं। तो अपने से और ऊपर जाने की तो कोई संभावना नहीं है। बाहर से लौट आना है अपने पर, और फिर अपने से भी ऊपर चले जाना है। उस स्थिति में बाहर-भीतर सब प्रकाशित हो जाते हैं।

मूर्च्छा का अर्थ अभी जिसे हम समझ लें, वह इतना ही है कि हम बाहर हैं। बाहर हैं का मतलब हमारा अटेंशन, हमारा ध्यान बाहर है। और जहां हमारा ध्यान है, वहां जागृति है; और जहां हमारा ध्यान नहीं है, वहां मूर्च्छा है।
समझो कि तुम भागी चली जा रही हो, मकान में आग लग गई है, पैर में कांटा
गड़ गया है, लेकिन पता नहीं चलता कि पैर में कांटा गड़ा है। मकान में लगी है आग तो पैर में गड़े कांटे का पता कैसे चले? सारा ध्यान आग लगे हुए मकान पर अटक गया है। पैर तक जाने के लिए ध्यान की एक छोटी सी किरण भी नहीं है, जो शरीर से पैर तक पहुंच जाए यात्रा करके और पता लगा ले कि कांटा गड़ गया है। फिर मकान की आग बुझ गई है, फिर सब ठीक हो गया, और अचानक पैर का कांटा दुखने लगा है! इतनी देर तक पैर के कांटे का कोई पता नहीं था, क्योंकि ध्यान वहां नहीं था, ध्यान कहीं और था। जहां हमारा ध्यान है, वहां हम जाग्रत थे। जहां हमारा ध्यान नहीं था, वहां हम मूर्च्छित थे।
काशी नरेश ने कोई पचास वर्ष पहले एक आपरेशन कराया। वह अपने तरह का आपरेशन था, क्योंकि वे किसी तरह की मूर्च्छा की दवा लेने को तैयार न थे और डाक्टर बिना मूर्च्छा की दवा दिए उतना बड़ा पेट का आपरेशन करने को तैयार न थे। लेकिन नरेश का कहना था कि मुझे गीता पढ़ने दी जाए। जब मैं गीता पढूंगा, तब फिर कोई खतरा नहीं है। क्योंकि मेरा सारा चित्त वहां होगा। तो मूर्च्छित करने की अलग से जरूरत क्या है? मैं वहां मूर्च्छित रहूंगा ही पेट में। लेकिन डाक्टर इस बात को मानने को राजी न थे। इसमें खतरा था। एक सेकेंड को भी अगर ध्यान पेट पर आ गया तो मृत्यु हो जाएगी। उतना बड़ा आपरेशन था।
तो पहले उन्होंने प्रयोग के लिए जांच-पड़ताल की और पाया कि वह जब गीता पढ़ते हैं, तब वह कहीं भी नहीं रह जाते, बस वह गीता ही पर हो जाते हैं। तो यह पहला आपरेशन था अपने तरह का, जो एक व्यक्ति की ध्यान की धारा को एक तरफ बहाने से किया गया। आपरेशन हुआ और सफल हुआ। वे अपनी गीता पढ़ते रहे और पेट का उनका आपरेशन किया गया! किसी भी तरह की बेहोशी की कोई दवा नहीं दी गई थी! और जिन डाक्टरों ने किया, वे चकित ही रह गए।
अब कुल हुआ इतना कि अगर किसी का चित्त पूरा गीता की तरफ प्रवाहित हो सके तो कोई कठिनाई नहीं है कि उसका एक अंग काट दिया जाए और उसे पता न चले। क्योंकि पता चलता है ध्यान की धारा को। ध्यान की धारा वहां तक जाए तो पता चलता है, नहीं तो नहीं पता चलता है।
कई बार उलटी घटनाएं भी घटी हैं। एक आदमी दो या तीन वर्षों से पैरालिसिस से बीमार एक मकान में पड़ा हुआ था। हिल-डुल भी नहीं सकता, उठ भी नहीं सकता। चिकित्सक परेशान थे, क्योंकि वस्तुतः उस आदमी को पैरालिसिस नहीं थी, लकवा नहीं था। कोई शारीरिक कारण न थे। किसी न किसी तरह उसको मानसिक लकवा था। उसे ख्याल था कि लकवा लग गया है। और ख्याल इतना मजबूत हो गया था कि वह हाथ-पैर हिला-डुला भी नहीं सकता था, उठ भी नहीं सकता था! फिर तीन साल से निरंतर पड़ा था बिस्तर पर। और ध्यान निरंतर लकवे पर ही रहा तीन वर्षों तक, वह लकवा मजबूत ही होता चला गया था।
तीन वर्ष बाद एक दिन आधी रात उसके मकान में आग लग गई और एक सेकेंड को उसका ध्यान लकवे से हट कर आग पर चला गया, जो बिल्कुल स्वाभाविक था। वह आदमी निकल कर मकान के बाहर आ गया। जब बाहर आ गया और लोगों ने उसे देखा, तो लोगों ने कहा, अरे तुम? तो उसने देखा, वह वापस लकवा खाकर गिर पड़ा।
क्या, हुआ क्या? यह आदमी बाहर आया कैसे? अगर यह लकवा सच में था तो यह आदमी बाहर मकान के आ नहीं सकता। पूरी अटेंशन उसकी लकवे से हट गई। इतने जोर से हटी, मकान में आग लगी, कि उसे स्मरण भी न रहा कि मेरा शरीर भी है, शरीर को लकवा भी है। यह कोई बात स्मरण न रही, वह बाहर आ गया। लेकिन जैसे ही स्मरण दिलाया गया कि वह वापस गिर पड़ा! अब वह खुद ही नहीं मान सकता कि यह कैसे संभव हुआ! यह अब गिर जाना क्या है? फिर पूरा का पूरा ध्यान लकवे पर आ गया। हमारा ध्यान जहां है, वहां हम जाग्रत हो जाते हैं। जहां से हमारा ध्यान हट जाता है, वहां हम मूर्च्छित हो जाते हैं। अगर हम ठीक से समझें तो मूर्च्छा हमारी जागृति की छाया है। जहां मूर्च्छा होती है, वहां जागृति नहीं होती; जहां जागृति होती है, वहां मूर्च्छा नहीं होती। लेकिन जिस तरफ जागृति का रुख होगा, उससे ठीक उलटी तरफ मूर्च्छा का रुख होगा।

तो एक तरफ देखने में प्रश्न ठीक मालूम पड़ता है कि स्वभाव हमारा जागरण है, चेतना है, तो यह अचेतना कैसी? यह मूर्च्छा कैसी? लेकिन इसी स्वभाव के कारण है वह भी। वह भी इसी की छाया है पीछे पड़ने वाली।
हम रास्ते पर चलते हैं, सूरज निकला हुआ है, हमारी छाया बनती है। हम पूरे प्रकाशित हैं, पीछे एक छाया बनती है। हम प्रकाशित हैं, यह भी सूरज के कारण; और हमारे पीछे जो छाया बनती है, यह भी सूरज के कारण। छाया बनने का कारण कोई और नहीं है और हमारे प्रकाशित होने का कोई कारण और नहीं है। लेकिन हम पूछ सकते हैं कि जो हम तक को प्रकाशित कर देता है, वह इतनी सी छाया को प्रकाशित नहीं करता?
असल में जितने हिस्से में हम प्रकाश को रोक लेते हैं, उतने हिस्से में पीछे छाया बन जाती है। वह छाया हमारे द्वारा रोका गया प्रकाश है। अगर हम कांच के व्यक्ति हों तो फिर छाया नहीं बनेगी। क्योंकि हम ट्रांसपैरेंट होंगे, फिर हमारे आर-पार किरण निकल जाएगी, फिर कोई छाया नहीं। कांच की कोई छाया नहीं बनेगी। जितना पारदर्शी होगा, उतनी छाया नहीं बनेगी। अगर थोड़ा भी अपारदर्शन है, तो उतनी छाया बन जाएगी। तो अगर पूर्ण पारदर्शी व्यक्तित्व हो, तो फिर छाया नहीं बनेगी सूरज की।
इसे इस तरह भी समझना चाहिए कि हमारा स्वभाव तो प्रकाश है, लेकिन अभी हमारा प्रकाश किन्हीं-किन्हीं केंद्रों पर प्रवाहित होता है। वह दीए की भांति कम, बैटरी की भांति ज्यादा है। बैटरी भी दीया बन सकती है, सिर्फ उसके फोकस को अलग कर देने की बात है। ऊपर से फोकस को अलग करके अगर हम बैटरी को रख देंगे तो बैटरी दीया बन जाएगी। असल में बैटरी दीया ही है, सिर्फ उस पर एक फोकस भी लगा हुआ है। अगर हम दीए पर भी एक फोकस लगा दें तो प्रकाश बंध जाएगा और उस धारा में बहेगा।
तो हमारा चित्त जो है, वह फोकस का काम कर रहा है पूरे वक्त। भीतर प्रकाश है, चित्त फोकस का काम कर रहा है। जितना बड़ा हमारा चित्त होता है, जैसा चित्त होता है, वैसा फोकस बनता है। जिस चीज पर हमारा चित्त अटक जाता है, सारे प्रकाश की धारा वहीं बहने लगती है। चित्त बाहर भी ले जा सकता है और अगर हम चित्त को बंद कर दें तो भीतर भी ले जा सकता है। लेकिन अगर चित्त बिल्कुल मिट जाए तो फोकस टूट जाए। फिर बाहर-भीतर कुछ न रह जाए, सिर्फ प्रकाश रह जाए।
चित्त के तोड़ने की साधना ही अंततः... क्योंकि समझिए मेरी बात को--चित्त
जो है, बीच का माध्यम है। और चित्त का उपयोग है। और जैसे हमारी आंख है, हमने ख्याल नहीं किया, आंख है हमारी, पूरे वक्त आंख की पुतली छोटी-बड़ी होती रहती है। जितने प्रकाश की जरूरत है, वह उस मात्रा में छोटी या ज्यादा हो जाती है। धूप में तुम जाओ तो पुतली सिकुड़ कर छोटी हो गई, क्योंकि उतनी रोशनी को भीतर जाने की कोई जरूरत नहीं है। अंधेरे में तुम आए, पुतली बड़ी हो गई, क्योंकि अब ज्यादा प्रकाश भीतर जाए तो ही दिखाई पड़ सकता है। तो पूरे वक्त आंख की जो पुतली है, उसका जो लेंस है, वह पूरे वक्त छोटा हो रहा, बड़ा हो रहा--आटोमेटिक; जैसी जरूरत है, वैसा हो जा रहा है।
वैसे ही हमारा चित्त भी है, वह भी छोटा-बड़ा हो रहा है पूरे वक्त। और जैसी जरूरत है, वैसा उसका फोकस बन जाता है। अगर मकान में आग लगी है तो फोकस एकदम छोटा हो जाता है। सब तरफ से प्रकाश को खींच कर मकान पर ही रोक देता है, क्योंकि इस समय इमरजेंसी की बात है। इस वक्त और कहीं ध्यान जाए कि पिक्चर देखने जाना है, कि परीक्षा देनी है, कि किताब पढ़नी है, तो फिर यह मकान की आग को कौन बचाएगा?
तो इस वक्त चित्त सब चीजों को अलग कर देता है और फोकस बिल्कुल छोटा सा
हो जाता है, जो सिर्फ मकान को देखता है। बस, मकान में आग लगी है।
तुम एक खतरे से गुजर रहे हो, नीचे खाई है, खड्ड है, एक पैर फिसल जाए, नीचे गिर जाओगे। चित्त का फोकस एकदम छोटा हो जाएगा। अब तुम्हें कुछ न दिखाई पड़ेगा। अब तुम्हें बस वह दो फीट का छोटा सा रास्ता, और तुम; और फोकस सारा का सारा वहीं हो जाएगा। सब तरफ से चित्त हट आएगा। ऊपर चांद-तारे भी होंगे, किसी मतलब के नहीं हैं अब। चित्त के लिए इतनी ही जरूरत है अभी कि वह सजग रहे, छोटा फोकस हो। थोड़ी जगह पर ज्यादा प्रकाश पड़े।

खतरे के बाहर हो। एक आदमी आरामकुर्सी पर बैठा हुआ है, अभी वह घोड़े पर सवार था और एक पतली सी पगडंडी से निकलता था पहाड़ की, जहां से गिरता तो प्राण निकल जाते, तो चित्त का फोकस एकदम छोटा हो गया था। बस एक-एक कदम दिखाई पड़ रहा था। वही आदमी घर लौट आया, अब वह आरामकुर्सी पर बैठा हुआ है, चित्त का फोकस खूब बड़ा हो गया। अब वह जमाने भर की बातें एक साथ सोच रहा है। जमाने भर की बातों को एक साथ सोच रहा है--घर की, दुकान की, मित्रों की, दुश्मनों की। अब चित्त का बिल्कुल फोकस पूरा बड़ा हो गया है। बड़ा पर्दा हो गया है, जैसे फिल्म का, जिसमें हजारों चीजें चल रही हैं एक साथ। और कोई चिंता नहीं, वह आराम से बैठा हुआ है।
आरामकुर्सी पर बैठ कर चित्त का फोकस सबसे बड़ा होता है। क्योंकि उस वक्त फिर कोई चिंता नहीं, कोई इमरजेंसी नहीं, कोई खतरा नहीं; आप निश्चिंत बैठे हैं। चित्त को जहां भागना है, भागना है; दौड़ना है, दौड़ना है; जो चित्र बनाने हैं, बनाने हैं। कितना ही बड़ा हो जाए। इमरजेंसी में, दुर्घटना में चित्त एकदम छोटा फोकस ले लेता है।
यह चित्त हमारा फोकस ले रहा है। और इस चित्त को बाहर देखने की निरंतर जरूरत है। बचपन से पैदा हुए कि बाहर देखने की जरूरत है, भीतर देखने की जरूरत नहीं है। भूख लगती तो मां को देखना पड़ता है, प्यास लगती तो पानी को देखना पड़ता है। चौबीस घंटे बचपन से चित्त को बाहर देखना पड़ रहा है। जीवन जो है, बाहर के साथ निरंतर संघर्ष है। तो धीरे-धीरे, धीरे-धीरे, धीरे-धीरे, अनंत जन्मों में निरंतर बाहर देखते-देखते यह स्मृति ही भूल जाती है कि चित्त का फोकस भीतर की तरफ भी हो सकता है। यह सवाल ही नहीं उठता। करीब-करीब फिक्स्ड फोकस हो गया। चीजें ठहर गईं। अब वह बाहर की तरफ ही देख पाता है। भीतर का सवाल भी नहीं उठता कि भीतर कैसे देखे?
ध्यान का मतलब यही है कि हम चित्त के फोकस को भीतर की तरफ ले जाने का उपाय करते हैं। बाहर की तरफ से शिथिल करते हैं, बाहर की तरफ से बंद करते हैं कि भीतर जा सके। धीरे-धीरे-धीरे-धीरे-धीरे यह स्थिति आ जाए कि चित्त भीतर की तरफ भी देखने लगे, जैसा अभी बाहर की तरफ देखता है। यह नंबर दो की स्थिति--अंतर्मुखता, इंट्रोवर्शन। लेकिन तब भी पूर्ण जागरण नहीं है। क्योंकि चित्त भीतर देखेगा तो बाहर हम मूर्च्छित हो जाएंगे।
इसलिए यह हो सकता है कि एक आदमी ध्यान में बैठा हुआ है और उसके पैर पर सांप काट जाए, उसे पता न चले। वाल्मीकि की कथा है, वह ध्यान में बैठे हैं, चारों तरफ चींटियों ने आकर बांबी बना ली उनके पूरे शरीर पर, तो उनको पता ही नहीं है! रामकृष्ण अंतर्मुखी हो जाते तो तीन-तीन चार-चार दिन बेहोश पड़े रहते। न फिर भोजन है, न फिर पानी है, न कोई सवाल है! फिर चार दिन उनको कुछ पता नहीं। वह चित्त भीतर की तरफ चला गया।
पहली बात खतरनाक थी, दूसरी बात कुछ कम खतरनाक नहीं है। चूंकि पहली बात जीवन की व्यर्थता में उलझा देती थी एकदम और भीतर से तोड़ देती थी, दूसरी बात जीवन से तोड़ देती है और भीतर ऐसे डुबा देती है कि सब तरफ से दरवाजे बंद हो गए! पहली बात भी अधूरी थी, दूसरी बात भी अधूरी है।
असल में एक तीसरी स्थिति और है, जब कि हम फोकस ही तोड़ देते हैं। न हम भीतर देखते, न बाहर देखते, सिर्फ देखना रह जाता है, सिर्फ प्रकाश रह जाता है--न बाहर की तरफ बहता हुआ, न भीतर की तरफ बहता हुआ--सिर्फ प्रकाश। डिफ्यूज्ड लाइट रह जाता है, जिसका कोई फोकस नहीं है। जैसे एक दीया जल रहा है, सब तरफ एक सा प्रकाश फैल गया।
पर दीए से भी हम ठीक से नहीं समझ सकते। दीए से भी हम ठीक से नहीं समझ सकते, क्योंकि फिर भी दीए का भी बहुत गहरे में छोटा सा फोकस है। इसलिए दीया छूट जाता है, अपने प्रकाश के बाहर छूट जाता है। उदाहरण के लिए ख्याल में ले लेने की बात है।
तीसरी स्थिति है, जहां न व्यक्ति अंतर्मुखी है, न बहिर्मुखी है; जहां व्यक्ति सिर्फ है; न बाहर की तरफ देख रहा, न भीतर की तरफ देख रहा; बस है। यह बस होना मात्र का नाम है जागृति, पूर्ण जागृति।
तो महावीर कहते हैं, ऐसा जो पूरी तरह जाग गया, वह साधु है। जो सोया है,
वह असाधु है।

असाधु दो तरह के हो सकते हैं। एक, जो बाहर की तरफ सोया हुआ है; एक, जो भीतर की तरफ सोया हुआ है। साधु एक ही तरह का हो सकता हैः जो अब सोया ही हुआ नहीं है, जिसकी मूर्च्छा अब कहीं भी नहीं है।
और इसलिए एक और छोटा सा बारीक फर्क ख्याल में ले लेना चाहिए कि इसीलिए कनसनट्रेशन, एकाग्रता और मेडिटेशन, ध्यान में बुनियादी फर्क है, जो मैं निरंतर जोर देता हूं। कनसनट्रेशन का मतलब ही यह है कि ध्यान किसी एक बिंदु पर एकाग्र हो जाए। लेकिन शेष सब जगह सो जाएगा।
जैसा कि महाभारत में कथा है कि द्रोण ने पूछा है अपने सारे शिष्यों से
कि वृक्ष पर तुम्हें क्या दिखाई पड़ता है? तो किसी ने कहा, पूरा वृक्ष दिखाई पड़ता है। किसी ने कहा, वृक्ष के पीछे सूरज निकला है, वह भी दिखाई पड़ता है। किसी ने कहा, दूर जो गांव है, वह भी दिखाई पड़ता है, पूरा आकाश दिखाई पड़ता है; बादल दिखाई पड़ते हैं, सब दिखाई पड़ता है। अर्जुन कहता है कि कुछ भी नहीं दिखाई पड़ता, सिर्फ वह जो पक्षी लटकाया हुआ है नकली, उसकी आंख दिखाई पड़ती है। तो द्रोण कहते हैं, तू ही ठीक एकाग्र-चित्त है। एकाग्र-चित्त का मतलब यह हुआ कि जिस बिंदु को हम देख रहे हैं, बस सारा ध्यान वहीं हो गया है, सिकुड़ कर एक जगह आ गया है। शेष के प्रति बंद हो गया, शेष के प्रति सो गया।
तो एकाग्रता एक बिंदु के प्रति जागरण और शेष सब बिंदुओं के प्रति सो जाना है। चंचलता भी एक बिंदु के प्रति जागरण, शेष सबके प्रति सोना है, लेकिन चंचलता-एकाग्रता में थोड़ा फर्क है।
एकाग्रता का बिंदु बदलता नहीं, चंचलता का बिंदु निरंतर बदलता चला जाता है। फर्क नहीं है दोनों में। एकाग्रता में एक बिंदु रह गया है, शेष सब सो गया है। सब तरफ मूर्च्छा है, बस एक बिंदु की तरफ जागृति रह गई है। चंचलता में भी यही है, लेकिन फर्क इतना है कि चंचलता में यह एक बिंदु तेजी से बदलता रहता है। अभी यह है, अभी वह है, अभी वह है। रहता एक ही बिंदु हैः कभी क, कभी ख, कभी ग, और शेष के प्रति सोया रहता है।
ध्यान का मतलब है, ऐसा कोई बिंदु ही नहीं है, जिसके प्रति चित्त सोया हुआ है। बस, जागा हुआ है। तो ध्यान एकाग्रता नहीं है। ध्यान चंचलता भी नहीं है। ध्यान बस जागरण है। और इसे और गहराई में समझें, तो आमतौर से हम किसी के प्रति जागते हैं। किसी के प्रति जागते हैं, सिर्फ जागते नहीं। अगर हम किसी के प्रति जागते हैं तो हम समग्र के प्रति नहीं जाग सकते। अगर तुम मेरी बात सुन रहे हो, तो शेष सारी आवाजें जो जगत में चारों तरफ हो रही हैं, वे तुम्हें सुनाई नहीं पड़ेंगी। मेरी तरफ एकाग्रता हो जाएगी। तो बाहर कोई पक्षी चिल्लाया, कोई कुत्ता भौंका, कोई निकला; उसका तुम्हें पता नहीं चलेगा। यह एकाग्रता हुई।
जागरूकता का अर्थ होगा कि एक साथ, युगपत, जो भी हो रहा है; वह सब पता चल रहा है। हम किसी एक चीज के प्रति जागे हुए नहीं हैं। समस्त जो हो रहा है, उसके प्रति जागे हुए हैं। मेरी बात भी सुनाई पड़ रही है, कौआ आवाज लगा रहा है, वह भी सुनाई पड़ रहा है, एक कुत्ता भौंका, वह भी सुनाई पड़ रहा है। और यह अलग-अलग नहीं, क्योंकि काल में ये एक साथ घट रहे हैं। यानी अभी जब हम बैठे हैं, तब हजार घटनाएं घट रही हैं। इन सबके प्रति एक साथ जागा हुआ होना।
तो महावीर उसको ही अमूर्च्छा कहेंगे, जागरण कहेंगे। और ऐसा जागरण इतना बड़ा हो जाए कि न केवल बाहर की आवाज सुनाई पड़ रही, अपने श्वास की धड़कन भी सुनाई पड़ रही है, अपने आंख का पलक का हिलना भी पता चल रहा है, भीतर चलते विचार भी पता चल रहे हैं। जो भी हो रहा है, इस क्षण में जो भी हो रहा है, जो भी इस क्षण में मेरी चेतना के दर्पण पर प्रतिफलित हो रहा है, वह सब मुझे पता चल रहा है।
अगर वह समग्र मुझे पता चल रहा है--भीतर से लेकर बाहर तक, तो फोकस टूट गया, तब जागरण रह गया। यह पूर्ण स्वभाव की उपलब्धि हुई।
यह पूर्ण स्वभाव सदा से हमारे पास है। हम उसका उपयोग ऐसा कर रहे हैं।
हम उसका उपयोग ऐसा कर रहे हैं कि वह कभी पूर्ण नहीं हो पाता, बल्कि अपूर्ण बिंदुओं पर हम पूरी ताकत लगा कर सीमित कर लेते हैं। जागरण हमारे पास है, लेकिन हमने कभी जागरण का समग्र के प्रति प्रयोग नहीं किया है। नहीं प्रयोग करने के कारण शेष के प्रति मूर्च्छा है, कुछ के प्रति जागरूकता है।

और इसलिए यह सवाल पैदा हो जाता है कि मूर्च्छा कहां से आई?
मूर्च्छा कहीं से भी नहीं आई है, मूर्च्छा हमारे द्वारा निर्मित है।
और निरंतर अनुभव और समझ से दिखाई पड़ जाएगा तो मूर्च्छा विसर्जित हो जाएगी। और तब हम ट्रांसपैरेंट हो जाएंगे, पारदर्शी हो जाएंगे। तब सिर्फ जागरण होगा, उसकी कोई छाया नहीं बनेगी। कहीं भी कोई छाया नहीं बनेगी।

प्रश्नः तीर्थंकरों के जीवन में हम यह नहीं देखते कि पूर्व तीर्थंकरों की परंपरा के आचार्य या साधु विद्यमान थे, परंतु महावीर के समय पार्श्वनाथ की परंपरा के आचार्य थे केशी आदि। वह परंपरा बाद में भी चलती रही है, इसका क्या कारण था? नए तीर्थंकर का जन्म तो पुरातन परंपरा के लुप्तप्राय होने पर होता है। जब आचार्य पार्श्वनाथ के उपासक थे तो नवीन संघ की स्थापना अथवा नवीन तीर्थ की स्थापना क्यों की गई? और पुरानी भी कैसे चलती रही?

पहली बात तो यह समझनी चाहिए कि परंपरा बनती ही तब है, जब जीवित खो जाता है। परंपरा जीवित की अनुपस्थिति पर रह गई सूखी रेखा है। परंपरा तो चल सकती है करोड़ों वर्ष तक, और जीवित न हो। असल में जो भी जीवित है, उसकी, जब तक वह जीवित है, परंपरा बनती ही नहीं। परंपरा बनती ही तब है, जब जीवित खो जाता है। और हमारे हाथ में सिर्फ अतीत का मृत बोझ रह जाता है, वही परंपरा को बनाता है।
मैंने सुना है, एक घर में बूढ़ा बाप था, उसके छोटे बच्चे थे। बाप भी मर गया, मां भी मर गई, तब बच्चे बहुत ही छोटे थे। देर उम्र में वे बच्चे हुए थे। फिर वे बड़े हुए, तो उन बच्चों ने निरंतर देखा था अपने पिता को, कि रोज भोजन के बाद आले पर जाकर वह कुछ उठाता-रखता था। पिता के मर जाने पर उन्होंने सोचा कि यह काम रोज का था। यह कोई साधारण काम न होगा। जरूर कोई अनुष्ठान होगा। तो उन्होंने जाकर आले पर देखा तो वहां बाप ने दांत साफ करने के लिए एक छोटी सी लकड़ी रख छोड़ी थी। वह पिता रोज भोजन के बाद उठता, आले पर जाकर दांत साफ करता।
उन बच्चों ने सोचा कि इस लकड़ी का जरूर कोई अर्थ है। यह तो उन्हें पता नहीं था कि अर्थ क्या हो सकता है। यह भी पता नहीं था कि पिता बूढ़ा था, उसे दांत साफ करने के लिए लकड़ी की जरूरत थी। पर इतना वे करते थे नियमित रूप से कि आले के पास जाते, लकड़ी को उठा कर देखते, वापस रख देते। तो पिता का नियम रोज पालन करते थे।
फिर वे बड़े हुए। फिर उन्होंने बहुत कमाई की, फिर उन्होंने नया मकान बनाया। तो उन्होंने सोचा इतनी छोटी सी लकड़ी भी क्या रखनी! अब उन्हें कुछ भी पता न था कि वह लकड़ी किसलिए थी। तो उन्होंने एक सुंदर कारीगर से एक बड़ा लकड़ी का डंडा बनवाया, उस पर खुदाई करवाई और उसे आले में उन्होंने स्थापित कर दिया! बड़ा आला बनाया। अब रोज उठाने की तो बात न रही। उनके भी बच्चे पैदा हो गए थे, उन बच्चों ने भी अपने पिता को बड़े आदर भाव से उस आले के पास जाते देखा था।
फिर उनके पिता भी चल बसे। फिर उनके बच्चे रोज जाकर वहां नमस्कार कर लेते थे, क्योंकि उनके पिता उस आले के पास भोजन के बाद जरूर ही जाते थे। यह नियमित कृत्य हो गया था। परंपरा बन गई। अब यह परंपरा थी। अब इसमें कुछ भी अर्थ न रह गया था। एक जड़ लीक पकड़ जाती है, जो पीछे चलती है।
महावीर के समय में लीक थी। पिछले तीर्थंकर के विचार की लीक छूट गई थी। आचार्य थे, साधु थे; लेकिन मृत थी धारा। मृत धारा कितने ही समय तक चल सकती है। और मृत धारा जिद्दी हो जाती है। महावीर ने नई विचार-दृष्टि को जन्म दे दिया। नई हवा फैली, नया सूरज निकला, लेकिन पुरानी लीक पर चलने वाले लोगों ने नए को स्वीकार नहीं किया। वे अपनी लीक को बांधे हुए चलते चले गए। तो ऐसा भी हुआ कि महावीर ने जो कहा था, वह भी चला; और जो पिछली परंपरा का था, वह भी चलता रहा एक मृत धारा की तरह। थोड़ी सी उसकी रूप-रेखा भी चलती रही।
यह प्रश्न सार्थक दिखाई पड़ता है, लेकिन सार्थक नहीं है। परंपरा मात्र होने से कुछ जीवित नहीं होता। बल्कि उलटी ही बात है, जब कोई चीज परंपरा

बनती है, तब मर गई होती है, तभी परंपरा बनती है। और आचार्यों का होना जरूरी नहीं है कि वे किसी जीवित परंपरा के वंशधर हों।
सच तो यह है कि उनका होना इसी बात की खबर है कि अब कोई जीवित अनुभवी व्यक्ति नहीं रह गया, जो जानता हो। इसलिए जो जाना गया था, उस जाने गए को जानने वाले लोग--जानने वाला स्वयं नहीं--जो किसी ने जाना था कभी, उसको जानने वाले लोग गुरु का काम निबाहने लगते हैं। साधु भी थे। लेकिन न तो साधु से कुछ होता है, न शिक्षकों से, गुरुओं से कुछ होता है, जब तक कि जीवित अनुभव को लिए हुए कोई व्यक्ति न हो। और वे व्यक्ति खो गए थे। वे व्यक्ति नहीं थे।
इसलिए महावीर के मार्गदर्शन में इस बात से कोई अवरोध नहीं पड़ता है कि पिछले तीर्थंकर के लोग शेष थे। उनमें जो भी थोड़े समझदार, जीवित साधक थे, वे तो महावीर के साथ आ गए। जो नहीं थे, जिद्दी थे, अंधे थे, आग्रह रखते थे, वे अपनी लीक को पकड़ कर चलते चले गए!
फिर ऐसे व्यक्तियों का जन्म पिछले व्यक्तियों से नहीं जोड़ा जा सकता। जोड़ने की कोई जरूरत नहीं है। जब भी जगत में जरूरत होती है, प्राण पुकार करते हैं, तब कोई न कोई उपलब्ध चेतना करुणावश वापस लौट आती है। जब भी जरूरत होती है--जरूरत पर निर्भर है। हमारी पुकार पर निर्भर है। जैसे इस युग में धीरे-धीरे पुकार कम होती चली गई है।
किसी ने पीछे कहा था कि एक वक्त था कि लोग ईश्वर को इनकार करने का भी कष्ट करते थे, अब अधिक लोग तो ऐसे हैं जो इनकार करने का कष्ट भी नहीं उठाना चाहते। ईश्वर को इनकार करने में भी उत्सुकता थी, जो इनकार करता था, वह रस लेता था। अब ऐसे लोग अधिक हैं जो कहेंगे, बस, छोड़ो। ठीक है, हो तो हो, न हो तो न हो! ईश्वर के अस्तित्व को इनकार करने की भी फुरसत किसी को नहीं है! स्वीकार करने की यात्रा तो बहुत दूर है, स्वीकार की खोज तो बहुत दूर है, लेकिन इनकार करने के लिए भी फुरसत में कोई नहीं है! लोग कहेंगे कि ठीक है। नीत्शे ने कहा है कि जल्दी वह वक्त आएगा--ईश्वर के लिए कहा, कि जल्दी
वह वक्त आएगा--जब तुम्हें कोई इनकार भी नहीं करेगा। तुम उस दिन के लिए तैयार रहो। यानी पूजेगा नहीं, यह तो बात दूसरी है; इनकार नहीं करेगा, उस वक्त के लिए भी तुम तैयार रहो!
ठीक कहा उसने। पूरे युग की एक की भाव-दृष्टि बता दी है कि स्थिति क्या है। और जिसकी हमारे गहरे प्राणों में आकांक्षा और प्यास होती है, वह आकांक्षा और प्यास ही उसका जन्म बनती है।
एक गड्ढा है। पहाड़ पर पानी गिरता है, पहाड़ पर नहीं भरता पानी, गिरता पहाड़ पर है, भरता गड्ढे में है। गड्ढा तैयार है, प्रतीक्षा कर रहा है, पानी भागा हुआ चला आता है, गड्ढे में भर जाता है। शायद हममें से कोई यह कहे कि पानी की बड़ी करुणा है कि वह गड्ढे में भर गया।
शायद हममें से कोई कहे कि गड्ढे की बड़ी पुकार है, क्योंकि वह खाली है, इसलिए पानी को आना पड़ा। बाकी गहरे में ये दोनों बातें एक साथ सच हैं। जब भी जरूरत है, जब भी प्राण प्यासे हैं, तभी कोई भी उपलब्ध चेतना इस गड्ढे को भरने के लिए उतर आती है।
जरूरत थी महावीर के वक्त। पुरानी परंपरा चलती थी, पुराने गुरु थे, लेकिन मृत थे, कोई जीवन उनमें न था। इसलिए उनके आविर्भाव पर कोई असंगति की बात नहीं कही जा सकती।

प्रश्नः महावीर ने हमें नया क्या दिया? प्रेम की चर्चा तो जब से मनुष्य-जाति है, तबसे ही होती आई है।

हूं! सत्य न तो नया है, न पुराना है; सत्य सदा है। और जो सदा है, वह न तो कभी पुराना होता और न कभी नया हो सकता है। जो नया होता है, वह कल पुराना हो जाएगा। जो आज पुराना दिखता है, वह कल नया था। लेकिन सत्य न तो नया है, क्योंकि सत्य कभी पुराना नहीं होगा; और न सत्य पुराना है, क्योंकि सत्य कभी नया नहीं था। असल में सत्य के संबंध में नए और पुराने शब्द एकदम व्यर्थ हैं। नया वह होता है, जो जन्मता है। पुराना वह होता है, जो बूढ़ा होता है। सत्य न जन्मता, न बूढ़ा होता, न मरता।

लहर नई हो सकती है, लहर पुरानी भी हो सकती है, लेकिन सागर न नया है, न पुराना है। बादल नए हो सकते हैं, बादल पुराने भी हो सकते हैं, लेकिन आकाश न नया है, न पुराना है। असल में आकाश वह है, जिसमें नया बनता, पुराना होता; पुराना मिटता, नया बनता है। लेकिन स्वयं आकाश न तो नया है, न पुराना है। सत्य भी नया और पुराना नहीं है। इसलिए जब भी कोई दावा करता है कि यह सत्य बहुत प्राचीन है, तब वह मूढ़तापूर्ण दावा करता है। या जब कोई दावा करता है कि यह सत्य बिल्कुल नया है, तब वह भी मूढ़तापूर्ण दावा करता है। नए-पुराने के दावे ही नासमझी से भरे हुए हैं।
और दो ही तरह के दावेदार लोग दुनिया में हुए हैं। एक हैं जो कहते हैं
कि यह सत्य पुराना है, हमारी किताब में लिखा हुआ है। और हमारी किताब इतने हजार वर्ष पुरानी है। दूसरे दावेदार हैं, वे कहते हैं, यह सत्य बिल्कुल नया है, क्योंकि किसी किताब में नहीं लिखा हुआ है। लेकिन सत्य के संबंध में ऐसे कोई दावे नहीं किए जा सकते हैं। फिर भी, फिर क्या कहा जा सकता है? फिर यही कहा जा सकता है कि जो सत्य निरंतर है, उससे भी हमारा निरंतर संबंध नहीं रहता है। संबंध कभी-कभी होता है।
सत्य निरंतर है, सत्य एक निरंतरता है, कंटिन्यूटी है, शाश्वतता है, इटरनिटी है। लेकिन इससे यह जरूरी नहीं है कि आकाश हमारे ऊपर निरंतर है तो हम आकाश को देखते भी हों। यह जरूरी नहीं है। कोई आदमी जीवन भर जमीन को देखते हुए भी गुजार दे सकता है।
और अगर कोई एक ऐसा गांव हो, जहां के सारे लोग जमीन की तरफ देख कर ही वक्त गुजारते हों, और उस गांव में किसी को पता ही न हो कि आकाश भी है, और अगर एक आदमी आकाश की तरफ आंखें उठाए और चिल्ला कर लोगों को पुकारे कि देखते हो, आकाश है? तुम क्यों जमीन की तरफ आंखें गड़ाए हुए मरे जा रहे हो?
तो शायद उनमें से कोई कहे कि इसने बड़ा नया सत्य बताया! या शायद कोई उनमें से कहे, इसमें क्या नया है? हमारे बाप-दादों ने, हमारे पुरखों ने आकाश की बातें किताबों में लिखी हुई हैं। लेकिन वे दोनों ही गलत होंगे। सवाल यह नहीं है कि आकाश के संबंध में कुछ कहा गया है कि नहीं कहा गया है। सवाल यह भी नहीं है कि आकाश के संबंध में जो कहा गया है वह नया है या पुराना है। सवाल यह है कि क्या उससे हमारा निरंतर संबंध है?
महावीर जो कहते हैं, बुद्ध जो कहते हैं, जीसस जो कहते हैं, कृष्ण जो कहते हैं, वह शायद वही है, जो निरंतर मौजूद है। लेकिन उससे हमारा निरंतर संबंध टूट जाता है। वे फिर चिल्ला-चिल्ला कर, पुकार-पुकार कर उस तरफ आंखें उठवाते हैं। आंखें उठ भी नहीं पातीं कि हमारी आंखें फिर वापस लौट आती हैं। इस अर्थ में अगर हम देखेंगे, तो जब भी कोई व्यक्ति सत्य को उपलब्ध होता है तो कहना चाहिए, नया ही उपलब्ध होता है। व्यक्ति नया ही उपलब्ध होता है सत्य को। सत्य चाहे नया-पुराना नहीं है, लेकिन व्यक्ति तो जब भी उपलब्ध होता है, तो वह उसका अनुभव है और नया है और पहली दफे हुआ है, और उसे कभी भी नहीं हुआ था। और इस अर्थ में भी सत्य को नया कहा जा सकता है, क्योंकि दूसरे का सत्य बासा हो जाता है और हमारे लिए कभी भी काम का नहीं होता। हमारे लिए तो फिर काम का होगा, जब वह फिर नया होकर हमारा संबंध उससे जुड़ जाए।
महावीर ने क्या नया दिया, यह सवाल नहीं है। क्योंकि नया अगर दिया भी होगा तो अब एकदम पुराना हो गया। सवाल यह नहीं है कि महावीर ने क्या नया दिया। सवाल यह है कि आमजन जैसा जीता है, क्या महावीर उससे भिन्न जीए? वह जीना बिल्कुल नया था। नया इस अर्थ में नहीं कि वैसा पहले कभी भी कोई नहीं जीया होगा। कोई भी जीया हो, करोड़ों लोग जीए हों, तो भी फर्क नहीं पड़ता। जब मैं किसी को प्रेम करता हूं तो वह प्रेम नया ही है। मुझसे पहले करोड़ों लोगों ने प्रेम किया है, लेकिन कोई प्रेमी यह मानने को राजी नहीं होगा कि मैं जो प्रेम कर रहा हूं, वह बासा और पुराना है। वह नया ही है, उसके लिए बिल्कुल नया है। और दूसरे का प्रेम किसी दूसरे के किसी काम का नहीं है। वह अनुभूति अपनी ही काम की है।
तो महावीर बिल्कुल ही अपने तईं सत्य को उपलब्ध होते हैं। जो उन्हें उपलब्ध हुआ है, वह बहुतों को उपलब्ध हुआ होगा, बहुतों को उपलब्ध होता रहेगा। लेकिन उस उपलब्धि पर किसी व्यक्ति की कोई सील-मुहर नहीं लग जाती।

यानी मैं अगर कल सुबह उठ कर सूरज को देखूं, तो आप आकर मुझसे यह नहीं कह सकते हैं कि तुम बासे सूरज को देख रहे हो, क्योंकि मैं भी इस सूरज को देख चुका हूं। इसे करोड़ों लोग देख चुके हों, तब भी सूरज बासा नहीं हो जाता आपके देखने से। और जब मैं देखता हूं, तब मैं नया ही देखता हूं--उतना ही ताजा, जितना ताजा आपने देखा होगा। सूरज पर कुछ बासे होने की, कुछ बासे होने की छाप नहीं बन जाती। सत्य पर भी नहीं बन जाती।
ठीक है, प्रेम की चर्चा बहुत लोगों ने की है, बहुत लोग करते रहेंगे, लेकिन फिर भी जब भी कोई प्रेम को उपलब्ध होगा, तब वह नया ही उपलब्ध होगा। महावीर जब प्रेम को उपलब्ध हुए हैं, जिसे वे अहिंसा कहते हैं, तो वे नए ही उपलब्ध हुए हैं।
सत्य के संबंध में तो नया-पुराना नहीं होता, लेकिन अनुभूति के संबंध में नया-पुराना होता है। और अभिव्यक्ति के संबंध में तो बहुत नया-पुराना होता है। महावीर ने जो अभिव्यक्ति दी है अहिंसा को, वह तो एकदम अनूठी और नई है। शायद वैसी किसी ने भी पहले नहीं दी थी। अभिव्यक्ति नई हो सकती है, क्योंकि अभिव्यक्ति पुरानी पड़ जाती है। अब महावीर की अभिव्यक्ति भी पुरानी पड़ गई। आज अगर मैं कुछ कहूंगा, कल पुराना पड़ जाएगा। कल तो बहुत दूर है, मैंने कहा और वह पुराना पड़ा। क्योंकि मैंने कहा कि वह अतीत में गया। अभिव्यक्ति नई भी होती है, अभिव्यक्ति इसीलिए पुरानी भी पड़ जाती है। सत्य न नया होता और इसीलिए पुराना भी नहीं पड़ता है।
लेकिन फिर भी जब किसी व्यक्ति को उपलब्ध होता है तो एकदम नया ही उपलब्ध होता है--ताजा, युवा, अछूता, अस्पर्शित, एकदम कुंवारा। और इसलिए जिसको उपलब्ध होता है, वह अगर चिल्ला कर कहता है कि नया सत्य मिल गया, तो उस पर नाराज भी नहीं हो जाना है। उसे ऐसा ही लगा है। उसके जीवन में पहली दफे ही यह सूरज निकला है। किसी और के जीवन में निकला होगा, इससे संबंध भी क्या है? उसे बिल्कुल ही नया हुआ है। वह एकदम ताजा हो गया उसके स्पर्श से। इसलिए वह चिल्ला कर कह सकता है कि बिल्कुल नया है।
शास्त्रों में खोजी जा सकती है वही बात, जो उसे हुई है। और शास्त्र का अधिकारी कह सकता है कि क्या नया है? हमारी किताब में लिखा है। वह लिखा होगा किताब में। सारी किताबों में भी लिखा हो, तब भी जब व्यक्ति को सत्य मिलेगा तो उसकी प्रतीति ताजे की, नए की उपलब्धि की ही होगी। इसे हम यूं भी कह सकते हैं कि सत्य सदा जीवंत है, इसलिए सदा ताजा और नया है। यह हमारे कहने की दृष्टि पर निर्भर करता है कि हम क्या कहते हैं।
मेरी अपनी समझ यह है कि प्रत्येक व्यक्ति को सत्य नया ही उपलब्ध होता है। और सत्य सदा से है, लेकिन जब वह व्यक्ति संबंधित होता है, तब उसके लिए नया हो जाता है। और प्रत्येक व्यक्ति जो अभिव्यक्ति देता है अपनी अनुभूति को, वह भी नई होती है। क्योंकि वैसी अभिव्यक्ति कोई दूसरा व्यक्ति नहीं दे सकता है। क्योंकि वैसा कोई दूसरा व्यक्ति न हुआ है, न है, न हो सकता है। असल में मेरे पैदा होने में--अब हम कितनी साधारण सी बात समझते हैं एक व्यक्ति का पैदा हो जाना! मेरे पैदा होने में या आपके पैदा होने में कितना बड़ा जगत इनवाल्व्ड है, इसका हमें कोई ख्याल नहीं है! मेरे पैदा होने में आज तक, इस समय के बिंदु तक विश्व की जो भी स्थिति थी, वह सब की सब जिम्मेवार है। और अगर मुझे फिर से पैदा करना हो तो ठीक इतनी ही विश्व की स्थिति पूरी की पूरी पुनरुक्त हो, तो ही मैं पैदा हो सकता हूं, नहीं तो नहीं पैदा हो सकता। मेरे पिता चाहिए, मेरी मां चाहिए। वे भी उन्हीं पिताओं और माताओं से पैदा होने चाहिए, जिनसे वे पैदा हुए। और वे भी... ।
और इस तरह हम पीछे लौटते चले जाएं। तो हम पाएंगे कि पूरी विश्व की स्थिति एक छोटे से व्यक्ति को पैदा होने में संयुक्त है, जुड़ी हुई है। और अगर इसमें एक इंच भी इधर-उधर हो जाए तो मैं पैदा नहीं हो सकूंगा, जो भी होगा, वह कोई दूसरा होगा। और अगर मुझे पैदा करना हो तो इतने जगत का पूरा का पूरा अतीत फिर से पुनरुक्त हो, तभी मैं पैदा हो सकता हूं, जिसकी कोई संभावना नहीं दिखाई पड़ती। यह कैसे पुनरुक्त होगा?
तो एक व्यक्ति को दुबारा पैदा नहीं किया जा सकता। और इसलिए एक व्यक्ति के अनुभव को, उसकी अभिव्यक्ति को भी दुबारा पैदा नहीं किया जा सकता। इस अर्थ में हम देखने चलें तो सत्य का अनुभव चूंकि व्यक्तिगत है,

इंडिविजुअल है, एक-एक को होता है। वह एकदम एक ही अनुभव भी प्रत्येक को भिन्न-भिन्न होता है।
रवींद्रनाथ ने लिखा है कि एक बूढ़ा आदमी था जो रवींद्रनाथ के पड़ोस में रहता था। पिता के दोस्तों में से था, तो अक्सर उनके घर आ जाता। और रवींद्रनाथ को बहुत परेशान करता। क्योंकि रवींद्रनाथ जो ईश्वर की, आत्मा की, परमात्मा की कविताएं लिखते तो खूब हंसता, और ऐसा हाथ पकड़ कर हिला कर कहता, अनुभव हुआ है? ईश्वर को देखा है? और इतना खिलखिला कर हंसता कि रवींद्रनाथ ने लिखा है कि उस आदमी से डर पैदा हो गया। क्योंकि वह कहीं सड़क पर मिल जाता तो मैं बच कर निकल जाता, क्योंकि वह वहीं पकड़ लेता, कहता अनुभव हुआ है ईश्वर का? ईश्वर को देखा है? और मेरी हिम्मत न पड़ती कहने की। और सच में ही अनुभव क्या हुआ था! कविताएं लिख रहा था। तो वह आदमी इतना ज्यादा परेशान करने लगा था।
लेकिन एक दिन, रवींद्रनाथ ने कहा, वर्षा के दिन हैं, वह घर के बाहर समुद्र की तरफ गए हैं, सूरज निकला है, सुबह का वक्त है। तो समुद्र के जल पर भी सूरज का प्रतिबिंब बना है, और रास्ते के किनारे जो पोखर और डबरे और गंदे पानी के गड्ढे भरे हैं, उन सबमें भी सूरज का प्रतिबिंब बना है। और रवींद्रनाथ लौटते वक्त उनको अचानक ऐसा लगा है कि सागर का जो प्रतिबिंब है और इस गंदे डबरे में जो प्रतिबिंब बन रहा है, इन दोनों में कोई भेद है? क्या गंदे डबरे में बनने की वजह से प्रतिबिंब भी गंदा हो गया है? रवींद्रनाथ को यह प्रश्न उठा। डबरा गंदा है, लेकिन जो प्रतिबिंब बना है, क्या वह प्रतिबिंब भी गंदे डबरे में गंदा हो जाएगा? और स्वच्छ जल में स्वच्छ होगा--प्रतिबिंब?
अचानक जैसे एक विस्फोट हो गया। उन्हें लगा कि प्रतिबिंब को तो गंदा डबरा छू भी कैसे सकता है? वह जो रिफ्लेक्शन है, वह कैसे गंदा होगा? वह तो चाहे शुद्ध जल में बने, चाहे गंदे जल में, वह तो वही है। लेकिन फिर भी सागर में वह और दिखाई पड़ रहा है, गंदे डबरे में और दिखाई पड़ रहा है।
उस दिन वह इतनी खुशी से लौटे कि रास्ते पर जो भी मिलने लगा, वह इतने आनंद से भर गए कि उसे गले लगाते, आलिंगन करते। होश न रहा। वह आदमी भी मिल गया, जिससे वह बच कर निकलते थे। वह आदमी भी मिल गया। उनको पहली दफे लगा आज कि वह भी ईश्वर है, क्योंकि आज उन्हें पहली दफे यह ख्याल हुआ था कि डबरा कोई कैसा भी हो... उसे भी उन्होंने गले लगा लिया और आलिंगन करने लगे।
उस आदमी ने कहा कि ठीक है, ठीक है; अब मैं पहचाना कि तुझे हो गया है। अब नहीं पूछूंगा। उस आदमी ने कहा, अब नहीं पूछूंगा! क्योंकि जब मैं तेरे पास आता था तो तू ऐसा बचता था मुझसे कि मुझे लगता था, इसको कैसे ईश्वर का अनुभव हुआ होगा? मैं भी तो ईश्वर ही हूं। यानी अगर ईश्वर का अनुभव हो गया तो अब किससे बचना? किससे भागना? अब तुझे हो गया, अब ठीक है। अब मैं देखता हूं तेरी आंख में।
तीन दिन तक यह हालत रही। आदमी चुक गए तो गाय, भैंस, घोड़े, जो भी मिल जाते, उनसे भी गले लगते! वे भी चुक गए तो वृक्ष! तीन दिन यह अवस्था थी। रवींद्रनाथ ने लिखा है कि उन तीन दिनों में जो जाना, बस फिर वह जीवन भर के लिए संपदा बन गया। सब चीज में वही दिखाई पड़ने लगा। वह एक छोटी सी घटना ने, कि गंदे डबरे में बना हुआ प्रतिबिंब सागर में बने प्रतिबिंब से गंदा थोड़े ही हो जाएगा! वह तो वही है।
फिर भी सागर का प्रतिबिंब सागर का प्रतिबिंब है, डबरे का डबरे का है।
तो महावीर में जो प्रतिबिंब बनेगा सत्य का, वह वही है जो मुझमें बने, आपमें बने, किसी में बने। लेकिन फिर भी महावीर का महावीर का होगा, मेरा मेरा होगा, आपका आपका होगा। चांद तो वही है, सूरज तो वही है, सत्य तो वही है, लेकिन प्रतिबिंब--प्रतिबिंब भी वही है, लेकिन जिन-जिन में बनता है, वे अलग-अलग हैं। और फिर जब वे उसकी अभिव्यक्ति देने जाते हैं, तब तो और अलग हो जाते हैं।
महावीर के पहले भी चर्चा थी प्रेम की, बाद में भी रहेगी, लेकिन महावीर में जो प्रतिबिंब बना है, वह निपट महावीर का अपना है। वैसा प्रतिबिंब न कभी बना था, न बन सकता है।

प्रश्नः क्या आप मत-मतांतरों के पक्षपाती हैं? क्या बुद्ध के अनुयायी बौद्ध, महावीर के जैन, ईसा के ईसाई आदि संप्रदाय समाप्त करके मानव-धर्म की एक स्थापना नहीं की जा सकती?

मैं मत-मतांतरों का तनिक भी पक्षपाती नहीं हूं। न तो कोई जैन है, न कोई बौद्ध है, न कोई हिंदू है, न कोई ईसाई है, न कोई मुसलमान है। दुनिया में दो तरह के ही लोग हैं सिर्फः धार्मिक और अधार्मिक। और जो धार्मिक है, वह बुद्ध हो सकता है, महावीर हो सकता है, कृष्ण हो सकता है, क्राइस्ट हो सकता है; लेकिन हिंदू, जैन, मुसलमान, ईसाई नहीं हो सकता है। धार्मिक व्यक्ति तो उस स्रोत पर पहुंच जाता है। उस स्रोत पर पहुंचे हुए व्यक्ति को फिर सांप्रदायिक होने का कोई कारण नहीं रह जाता।
दो तरह के लोग हैं, मैंने कहा, धार्मिक और अधार्मिक। तो धार्मिक व्यक्ति तो स्वयं ही वही हो जाता है, जो बुद्ध या महावीर हो सकते हैं। अधार्मिक व्यक्ति न बुद्ध हो पाता, न महावीर हो पाता, तो वह जैन हो जाता और बौद्ध हो जाता! अधार्मिक आदमियों के संप्रदाय हैं, धार्मिक आदमी का कोई संप्रदाय नहीं है।
इसे ऐसा भी कह सकते हैं कि धर्म का कोई संप्रदाय ही नहीं है, सब संप्रदाय अधर्म के हैं। अधार्मिक आदमी महावीर होने की हिम्मत नहीं जुटा पाता; जीसस नहीं हो सकता, बुद्ध नहीं हो सकता, कृष्ण नहीं हो सकता। अधार्मिक आदमी क्या करे? अधार्मिक आदमी भी धार्मिक होने का मजा लेना चाहता है और धार्मिक हो नहीं सकता, क्योंकि धार्मिक होना एक बड़ी क्रांति से गुजरना है, तब वह एक सस्ता रास्ता निकाल लेता है। वह कहता है, महावीर तो हम नहीं हो सकते लेकिन जैन तो हो सकते हैं। वह यह कहता है कि हम महावीर को मान तो सकते हैं अगर महावीर नहीं हो सकते, मानने में तो कोई कठिनाई नहीं हमें। हम महावीर के अनुयायी तो हो सकते हैं, तो हम जैन हैं।
लेकिन उसे पता नहीं कि जिन हुए बिना जैन कोई कैसे हो सकता है? जिसने जीता नहीं सत्य को, वह जैन कैसे हो सकता है? महावीर इसलिए जिन हैं कि उन्होंने जीता सत्य को। यह इसलिए जैन है कि यह महावीर को मानता है! प्रबुद्ध हुए बिना कोई बुद्ध या बौद्ध कैसे हो सकता है? जागे बिना कोई बौद्ध कैसे हो सकता है? बुद्ध जाग कर बुद्ध हुए। जागने का अर्थ ही रखता है बुद्ध शब्द। गौतम बुद्ध--गौतम तो उनका नाम है; बुद्ध का अर्थ है जागा हुआ, जो जाग गया। बुद्ध को तो जागना पड़ा बुद्ध होने के लिए। लेकिन हम जागने की तो हिम्मत नहीं जुटा पाते, तो हम बुद्ध को मान लेते हैं और बौद्ध हो जाते हैं!
जीसस को तो सूली पर लटकना पड़ा क्राइस्ट होने के लिए। लेकिन सूली पर लटकना तो बहुत मुश्किल, तो हम एक सूली बना लेते हैं लकड़ी की, चांदी की, सोने की, गले में लटका लेते हैं और क्रिश्चियन हो जाते हैं! ये तरकीबें हैं धार्मिक होने से बचने की! संप्रदाय तरकीबें हैं धार्मिक होने से बचने की। धर्म का कोई संप्रदाय नहीं है। धार्मिक आदमी का कोई मत नहीं है। धार्मिक आदमी का कोई पक्ष नहीं है। सब अधार्मिक आदमी के झगड़े हैं।
मेरा तो कोई पक्ष नहीं, कोई मत नहीं। महावीर से मुझे प्रेम है, इसलिए महावीर की बात करता हूं। बुद्ध से मुझे प्रेम है, तो बुद्ध की बात करता हूं। कृष्ण से मुझे प्रेम है तो कृष्ण की बात करता हूं। क्राइस्ट से प्रेम है तो क्राइस्ट की बात करता हूं। किसी का अनुयायी नहीं हूं। और किसी का मत चलना चाहिए, इसका भी पक्षपाती नहीं हूं।
इस बात का जरूर आग्रह मन में है कि इन सबको समझा जाना चाहिए। क्योंकि इन्हें समझने से बहुत परोक्ष रूप से हम अपने को समझने में निरंतर समर्थ होते चले जाते हैं। इनके पीछे चलने से कोई कहीं नहीं पहुंच सकता, लेकिन इन्हें अगर कोई पूरी तरह से समझे तो स्वयं को समझने के लिए बड़े गहरे आधार उपलब्ध हो जाते हैं।
और दूसरी बात पूछी है कि क्या एक मानव-धर्म की स्थापना नहीं की जानी चाहिए?
वे सब नासमझी की बातें हैं। दुनिया में कभी एक धर्म स्थापित नहीं हो सकता। असल में सभी धर्मों ने यह कोशिश कर ली है, और इस कोशिश ने इतना

पागलपन पैदा किया, जिसका हिसाब नहीं। इस्लाम भी यही चाहता है कि एक ही धर्म स्थापित हो जाए--इस्लाम! ईसाई भी यही चाहते हैं कि एक धर्म स्थापित हो जाए! बौद्ध भी यही चाहते हैं, जैन भी यही चाहेंगे कि एक ही धर्म रह जाए-- मानव-धर्म! लेकिन मानव-धर्म उनका वही होगा, जो उनका धर्म है! उसको ही वे मानव मात्र का धर्म बना देना चाहते हैं।
यह कोशिश असफल होने को बंधी हुई है। क्योंकि मनुष्य-मनुष्य इतना भिन्न-भिन्न है कि कभी एक धर्म होगा, यह असंभव है। हां, धार्मिकता हो सकती है, एक धर्म नहीं। इन दोनों बातों के भेद को भी समझना चाहिए।
तो मैं किसी मानव-धर्म के भी पक्ष में नहीं हूं। क्योंकि अगर मैं मानव-धर्म की किसी कोशिश में लगूं तो वह सिर्फ हजार धर्मों में एक हजार एक और होगा, इससे ज्यादा कुछ भी नहीं हो सकता। सभी धर्म जब आए तो वे मानव-धर्म की ही आवाज लेकर आए! और उन्होंने कहा कि मनुष्य का एक धर्म स्थापित करना है। लेकिन उन्होंने एक की संख्या और बढ़ा दी और उनसे कोई अंतर नहीं पड़ सका। मेरी दृष्टि यह है कि मानव-धर्म एक हो, यह बात ही गलत है। धार्मिकता हो जीवन में! धार्मिकता के लिए किसी संगठना की जरूरत नहीं है कि सारे मनुष्य इकट्ठे हों। एक ही मस्जिद में इकट्ठे, एक मंदिर में, एक झंडे के नीचे--ये सब पागलपन की बातें हैं। धर्म का इनसे कोई लेना-देना नहीं है। हां, पृथ्वी धार्मिक हो, इसकी चेष्टा होनी चाहिए। मनुष्य धार्मिक हो, इसकी चेष्टा होनी चाहिए। कोई एक मनुष्य-धर्म निर्मित करना है तो फिर वही पागलपन शुरू होगा। और फिर एक संप्रदाय खड़े होकर नया उपद्रव करेगा और कुछ भी नहीं कर सकता है।
तो मैं किसी मानव-धर्म को स्थापित करने की चेष्टा में भी नहीं हूं। मेरी तो चेष्टा कुल इतनी है कि धार्मिकता क्या है, टु बी रिलीजियस होने का मतलब क्या है, यह साफ हो जाए। और जगत में धार्मिक होने की आकांक्षा जग जाए। और फिर जिसको जिस ढंग से धार्मिक होना हो, वह हो। वे कैसी टोपी लगाएं, वे चोटी रखें कि दाढ़ी रखें, कि वे कपड़े गेरुए पहनें कि सफेद पहनें, कि वे मंदिर में जाएं कि मस्जिद में, कि पूरब हाथ जोड़ें कि पश्चिम में, यह एक-एक व्यक्ति की स्वतंत्रता हो। इसके लिए कोई संगठन, कोई शास्त्र, कोई परंपरा आवश्यक नहीं है।
तो मैं इस चेष्टा में नहीं हूं कि एक मानव-धर्म स्थापित हो। मैं इस चेष्टा में हूं कि धर्मों के नाम से संप्रदाय विदा हों। बस वे जगह खाली कर दें, उनकी कोई जगह न रह जाए। आदमी हो, संप्रदाय न हों। और आदमी को धार्मिक होने की कामना कैसे पैदा हो, उसका प्रयास हो। फिर हर आदमी अपने ढंग से धार्मिक हो और जिसको जैसा ठीक लगे, वैसा हो। सिर्फ धार्मिक होने की बात समझ में आ जाए कि क्या है! उतनी बात ख्याल में आ जाए तो दुनिया में धार्मिकता होगी, संप्रदाय नहीं होंगे। लेकिन कोई मानव-धर्म नहीं बन जाएगा, धार्मिकता होगी। और एक-एक व्यक्ति अपने ढंग से धार्मिक होगा। और जगत में दो तरह के लोग रह जाएंगेः धार्मिक और अधार्मिक। अधार्मिक वे, जो धार्मिक होने के लिए राजी नहीं हैं।
लेकिन मेरी अपनी दृष्टि यह है कि अगर संप्रदाय मिट जाएं तो अधार्मिक आदमी अत्यल्प रह जाएगा। क्योंकि बहुत से लोग तो इसलिए अधार्मिक हैं कि ये सांप्रदायिक जो लोग हैं, इनकी मूर्खताएं देख कर कोई बुद्धिमान आदमी धर्म के साथ खड़े होने को राजी नहीं है। कोई बुद्धिमान आदमी इनके साथ खड़ा नहीं हो सकता। ये बुद्धुओं की इतनी बड़ी जमातें हैं कि इनमें बुद्धिमान का खड़ा होना मुश्किल है। तो वह अंततः अधार्मिक जैसा प्रतीत होने लगता है। और खोज-बीन की जाए तो शायद पता चले कि उसके धार्मिक होने की अभिलाषा इतनी तीव्र थी कि इनमें से कोई उसे तृप्त नहीं कर सका, इसलिए वह अलग खड़ा हो गया। अगर संप्रदाय मिट जाएं तो दुनिया में धार्मिक आदमी के प्रति भी जो विरोध है, वह भी विलीन हो जाएगा।
और धार्मिकता तो इतने आनंद की बात है कि यह असंभव है ऐसा आदमी खोजना,
जो धार्मिक न होना चाहता हो। लेकिन धार्मिकता बननी चाहिए स्वतंत्रता। धार्मिकता बननी चाहिए सहजता। धार्मिकता बननी चाहिए सविचार, विवेक। धार्मिकता न तो हो पाखंड, न हो दमन, न हो जबरदस्ती, न हो जन्म से, न हो रिचुअल से, न हो क्रिया-कांड से। धार्मिकता हो मन से, समझ से,

अंडरस्टैंडिंग से। तो पृथ्वी पर धर्म होगा--मानव-धर्म नहीं; रिलीजन नहीं, रिलीजसनेस। और उस पर मेरा जोर है।
और मेरा कहना है कि कोई आदमी क्या अपने को कहता है, इससे क्या प्रयोजन है? वह क्या है, यह सवाल है। वह कैसी प्रार्थना करता है, यह सवाल नहीं है। वह किससे प्रार्थना करता है, यह सवाल नहीं है। वह प्रेयरफुल है, प्रार्थनापूर्ण है, यह सवाल है। वह आदमी किस शास्त्र को सत्य कहता है, किस परंपरा को सत्य कहता है, यह बात व्यर्थ है। सार्थक बात यह है, क्या वह आदमी सत्य के अन्वेषण में संलग्न है? वह आदमी किस प्रकार के प्रेम को--ईसाइयत के प्रेम को, कि जैनियों की अहिंसा को, कि बौद्धों की करुणा को--किसका शोरगुल मचाता है, किसका नारा लगाता है, यह सवाल नहीं है। सवाल यह है, क्या वह आदमी प्रेमपूर्ण है? क्या वह आदमी अहिंसक है? क्या उस आदमी में करुणा है?
और करुणा का कोई लेबिल हो सकता है? और प्रेम पर कोई छाप हो सकती है कि कैसा प्रेम? किताबें हैं ऐसी जिनके शीर्षक हैंः क्रिश्चियन लव, ईसाई प्रेम! अब ईसाई प्रेम क्या बला होगी? क्या मतलब होगा ईसाई प्रेम का? प्रेम हो सकता है।
यह हमारे ख्याल में आ जाए तो मैं किसी मानव-धर्म के लिए चेष्टारत नहीं हूं। पुरानी दो तरह की चेष्टाएं हुईं, दोनों असफल हो गईं। एक चेष्टा तो किसी एक धर्म ने कोशिश की कि वह सबका धर्म बन जाए, वह सफल नहीं हो सकी। उससे बहुत रक्तपात हुआ, बहुत उपद्रव फैला, बहुत फैनेटिसिज्म पैदा हुआ। फिर उससे हार कर एक दूसरी चेष्टा हुई, वह यह कि सब धर्मों में सारभूत जो है, उसको निकाल कर, निचोड़ कर इकट्ठा कर लिया जाए। जैसे थियोसाफी ने वह प्रयोग किया, कि सब धर्मों में जो-जो महत्वपूर्ण है, सबको निकाल लो।

प्रश्नः अकबर ने भी किया था।

अकबर ने भी दीने-इलाही की शक्ल में उसकी कोशिश की। अकबर भी असफल हुआ, थियोसाफी भी असफल हुई। वह भी संभव नहीं हो सका। वह कोशिश भी इसीलिए असफल हुई कि उसने भी सब संप्रदायों को मान्यता तो दे ही दी। यानी यह तो कहा नहीं कि सांप्रदायिक होना गलत है। उसने कहा कि सांप्रदायिक होने में कोई गलती नहीं है। तुम्हारे पास भी सत्य है, वह भी हम ले लेते हैं! कुरान से भी, बाइबिल से; हिंदू से, मुसलमान से; सबसे ले लेते हैं! सबको जोड़ कर हम एक मानव-धर्म बना लेते हैं!
उससे कोई संप्रदाय खंडित न हुआ। संप्रदाय अपनी जगह खड़े रहे और थियोसाफी एक नया संप्रदाय बन गया! उससे कुछ फर्क नहीं पड़ा। थियोसाफिस्ट का अपना लॉज, अपना मंदिर, अपनी व्यवस्था हो गई। थियोसाफिस्ट की अपनी पूजा का ढंग, अपना हिसाब हो गया! यह एक नया धर्म खड़ा हो गया। उसका अपना तीर्थ बना, अपना सब हिसाब हुआ, वह सब ठीक हो गया। लेकिन उससे किसी पुराने संप्रदाय को कोई चोट नहीं पहुंची।
दो कोशिशें की गईंः या तो एक धर्म सर्वग्राही हो जाए, वह नहीं हुआ; और फिर कोशिश यह की गई कि सभी धर्मों में जो सार है, उसको इकट्ठा कर लिया जाए, वह भी असफल हो गया।
अब मैं आपको तीसरी दिशा सुझाना चाहता हूं और वह यह कि संप्रदाय मात्र
का विरोध किया जाए, संप्रदाय मात्र को विसर्जित किया जाए और धार्मिकता की स्थापना की चेष्टा की जाए। धर्म की नहीं, धार्मिकता की।
अगर वह संभव हो सके तो मानव-धर्म तो नहीं बनेगा; कोई एक धर्म नहीं, एक चर्च नहीं होगा, एक पोप नहीं होगा, एक झंडा नहीं होगा; लेकिन फिर भी बहुत गहरे अर्थों में मानव-धर्म स्थापित हो जाएगा। उस गहरे अर्थ में ही मेरी दृष्टि है।

महावीर: मेरी दृष्टि में
तेईसवां प्रवचन

महावीरः आत्यंतिक स्वतंत्रता के प्रतीक

प्रश्नः यह सच है कि आत्मा अमर है, ज्ञानस्वरूप है, फिर कैसे अज्ञान में गिरती है? कैसे बंधन में गिरती है? कैसे शरीर ग्रहण करती है--जब कि शरीर छोड़ना है, जब कि शरीर से मुक्त होना है? यह कैसे संभव हो पाता है?

यह सवाल महत्वपूर्ण है और बहुत ऊपर से देखे जाने पर समझ में नहीं आ सकेगा। थोड़े भीतर गहरे झांकने से यह बात स्पष्ट हो सकेगी कि ऐसा क्यों होता है। जैसे, इस कमरे में आप हैं और आप इस कमरे के बाहर कभी भी नहीं गए हैं, कभी गए ही नहीं। इस कमरे में आप हैं, बड़े आनंद में हैं, बड़ी शांति में हैं, बड़े सुरक्षित। न कोई भय, न कोई अंधकार, न कोई दुख; लेकिन इस कमरे के बाहर आप कभी नहीं गए हैं।
तो इस कमरे में रहने की दो शर्तें हो सकती हैंः एक तो यह कि आपको कमरे
के बाहर जाने की कोई स्वतंत्रता नहीं है। यानी आप जाना भी चाहें तो आप नहीं जा सकते हैं। आप परतंत्र हैं इस कमरे में रहने को--एक तो शर्त यह हो सकती है। दूसरी शर्त यह हो सकती है कि आप स्वतंत्र पूरे हैं बाहर जाने को, लेकिन आप अपनी समझ के कारण बाहर नहीं जाते हैं। क्योंकि बाहर दुख है, क्योंकि बाहर पीड़ा है, बाहर भटक जाना है, बाहर अशांति है। ये दो शर्तें हो सकती हैं।
अगर आप परतंत्र हैं बाहर जाने के लिए, तो आपका सुख, आपकी शांति, आपकी सुरक्षा, सभी थोड़े दिनों में आपको कष्टदायी हो जाएंगी, क्योंकि परतंत्रता से बड़ा कष्ट और कोई भी नहीं है। अगर आपको सुख में रहने के लिए भी बाध्य किया जाए तो सुख भी दुख हो जाएगा।
बाध्यता इतना बड़ा दुख है कि बड़े से बड़े सुख को--यानी एक आदमी को हम कहें कि हम तुम्हें सारे सुख देते हैं सिर्फ स्वतंत्रता नहीं, यानी यह भी स्वतंत्रता नहीं देते कि अगर तुम चाहो तो इन सुखों को भोगने से इनकार कर सको, तुम्हें भोगना ही पड़ेगा--तो परतंत्रता इतना बड़ा दुख है कि सारे सुखों को मिट्टी कर देगी। और अगर यह शर्त हो इस कमरे के भीतर रहने की कि बाहर नहीं जा सकते, सुख नहीं छोड़ सकते, तो ये सब सुख अत्यंत दुख हो जाएंगे। और बाहर निकलने की प्यास इतनी तीव्र हो जाएगी, विद्रोह इतना गहरा हो जाएगा, जिसका हिसाब लगाना मुश्किल है। और यह शर्त कि बाहर नहीं जा सकोगे, अनिवार्य रूप से बाहर ले जाने का कारण बनेगी। और यह भी हो सकता है फिर कि बाहर दुख हो, लेकिन फिर भी आप भीतर आना पसंद न करें, क्योंकि भीतर से बाहर जाने की कोई आज्ञा नहीं है। एक स्थिति यह है।
दूसरी स्थिति यह है कि आपको पूरी स्वतंत्रता है, आप बाहर जाएं या भीतर रहें। लेकिन आप कभी बाहर नहीं गए हैं। आपने भीतर के सब सुख, सब शांति, सब ज्ञान जाना है। लेकिन बाहर अज्ञात है, और आप बाहर जाते हैं। और जाएंगे तो ही तो जान सकेंगे कि बाहर क्या है! जानेंगे, जानने के लिए यात्रा करेंगे, भटकेंगे, दुख भोगेंगे, तब फिर वापस लौटेंगे। और अब जब आप वापस आएंगे तो पहले का ही सुख आपको करोड़ गुना ज्यादा मालूम पड़ेगा, क्योंकि बीच में दुख का एक अनुभव, अज्ञान का एक अनुभव--पीड़ा से आप गुजरे हैं।
हो सकता है कि पहले वह कमरे के भीतर के सुख आपको सुख भी न मालूम पड़े हों, क्योंकि आपको कोई दुख न था; और प्रकाश आपको प्रकाश न मालूम पड़ा हो, क्योंकि आपने अंधेरा न देखा था। अब जब आप बाहर के जगत से वापस लौटते हैं, तब आप जानते हैं कि प्रकाश क्या है। क्योंकि आपने अंधेरा जाना, क्योंकि आपने पीड़ा जानी, इसलिए आप अब आनंद को पहचानते हैं। तो पहले का सुख रहा भी होगा तो भी बोधपूर्वक न रहा होगा, कांशस नहीं हो सकते हैं उसके आप। आप मूर्च्छित ही रहे होंगे, उस सुख में भी मूर्च्छित रहे होंगे। लेकिन जब बाहर के सारे दुखों को झेल कर, बड़ी कठिनाइयों से वापस कदम उठा-उठा कर अपने घर पर आप पहुंचते हैं, तब आप सचेतन पहुंचते हैं।

यानी मेरा कहना यह है कि आत्मा उसी अवस्था में पुनः पहुंचती है, जिस अवस्था में वह थी। यह संसार की पूरी यात्रा उसे किसी नई जगह नहीं पहुंचा देती है--वहीं, जहां वह सदा थी। लेकिन इस यात्रा के बाद पहुंचना अनुभव को सचेतन, गहरा, अदभुत बना देता है। यानी वही स्थिति अब मोक्ष मालूम होती है-- वही स्थिति! वह स्थिति तब भी थी, लेकिन तब वह मोक्ष न थी, हो सकता है, तब वह बंधन जैसी ही मालूम पड़ी हो। क्योंकि आपको विपरीत कोई अनुभव न था।
आत्मा स्वतंत्र है स्वयं के बाहर जाने के लिए, इसके लिए कोई परतंत्रता नहीं है। आत्मा स्वतंत्र है भटकने के लिए। और स्वतंत्रता का हमेशा यही अर्थ होता है, जहां भूल करने की स्वतंत्रता न हो, वहां स्वतंत्रता नहीं है। भूल करने की स्वतंत्रता गहरी से गहरी स्वतंत्रता है।
आत्मा स्वतंत्र है, पहली बात। यानी आत्मा अमर है, आत्मा ज्ञानपूर्ण है; उतना ही गहरा यह सत्य भी है कि आत्मा स्वतंत्र है, उस पर कोई परतंत्रता नहीं है। स्वतंत्रता का मतलब होता है कि वह चाहे तो सुख उठाए, चाहे तो दुख उठाए; चाहे तो ज्ञान में जीए और चाहे तो अंधकार में खो जाए; चाहे तो वासना में जीए और चाहे वासना से मुक्त हो जाए। स्वतंत्रता का मतलब यह है कि ये दोनों मार्ग उसके लिए बराबर खुले हुए हैं। और इसलिए बहुत अनिवार्य है कि स्वतंत्रता की यह संभावना उसे उन स्थितियों में ले जाएगी, जो दुखदायी हों। और तभी उस अनुभव से वह वापस लौट सकती है।
तो मैंने जैसा कहा निगोद, निगोद वह स्थिति है, जहां आत्माएं वही हैं,
जो वे हैं। निगोद वह स्थिति है, जहां उन्होंने कोई विपरीत अनुभव नहीं किया। निगोद वह स्थिति है, जहां उन्होंने स्वतंत्रता का उपयोग नहीं किया। इसलिए निगोद एक परतंत्रता की स्थिति है।
संसार वह स्थिति है, जहां आत्मा ने स्वतंत्रता का उपयोग करना शुरू किया। वह भटकी, उसने भूलें कीं, उसने दुख पाए, उसने शरीर ग्रहण किए, उसने न मालूम कितने प्रकार के शरीर ग्रहण किए, उसने हजारों तरह की वासनाएं पालीं और पोसीं और प्रत्येक वासना के अनुकूल शरीरों को ग्रहण किया। यह भी उसकी स्वतंत्रता है। यानी अगर मैंने शरीर ग्रहण किया है तो यह मेरा डिसीजन है, यह मेरा निर्णय है। इसमें दुनिया में कोई मुझे धक्के नहीं दे रहा है कि तुम शरीर ग्रहण करो। यह मेरी परम स्वतंत्रता की संभावना का ही एक हिस्सा है कि मैं शरीर ग्रहण करूं।
फिर मैं कौन सा शरीर ग्रहण करूं, यह भी मेरी स्वतंत्रता है--कि मैं चींटी बनूं, कि हाथी बनूं, कि आदमी बनूं, कि देवता बनूं, कि प्रेत बनूं, क्या बनूं, यह भी सवाल मेरे ऊपर ही निर्भर है। इसके लिए भी कोई मुझे धक्के नहीं दे रहा है। लेकिन चूंकि मेरी आत्मा स्वतंत्र है, इसलिए मैं इन सारी चीजों का उपयोग कर सकता हूं। और उपयोग के बाद ही मैं इनसे मुक्त हो सकता हूं, इनके पहले मुक्त भी नहीं हो सकता।
इसलिए निगोद में जो आत्मा है, वह अमुक्त है। अमुक्त का कुल मतलब इतना
है कि उसने स्वतंत्रता का उपभोग ही नहीं किया।

प्रश्नः निगोद में तो आत्मा मूर्च्छित रहती है!

वही मतलब है, मूर्च्छित का भी वही मतलब है। सचेतन वह मोक्ष में होगी।
और सचेतन वह तभी होगी, जब दुख उठाएगी, पीड़ा उठाएगी, कष्ट भोगेगी, तभी सचेतन होगी। जब अपनी स्वतंत्रता का दुरुपयोग करेगी, तभी सचेतन होगी।

प्रश्नः निगोद से आत्मा संसार में क्यों आती है?

हां, वही बात हो रही थी। तुम जरा देर से आए, जरा पीछे सुन लेना। यानी मैं यह कह रहा हूं कि स्वतंत्रता, फ्रीडम जो है, वह आत्मा का मूलभूत हिस्सा है। और स्वतंत्रता का अर्थ ही यह होता है कि मैं जहां जाना चाहूं, मेरे ऊपर कोई बंधन नहीं है।
अगर मैं वासना में उतरना चाहूं तो मैं गहरी से गहरी वासना में उतर सकता हूं। संसार की कोई शक्ति मुझे रोकने को नहीं है। बल्कि, चूंकि आत्मा

स्वतंत्र है, इसलिए संसार की प्रत्येक शक्ति मुझे साथ देगी। मैं वासना में उतरना चाहता हूं, संसार मेरे लिए सीढ़ियां बना देगा। परमात्मा की सारी शक्तियां मेरे हाथ में मुझे उपलब्ध हो जाएंगी। मैं शरीर ग्रहण करूं, कैसा शरीर ग्रहण करूं। तो मेरी वासना जैसी होगी, वैसा मैं शरीर ग्रहण कर लूंगा। यह सारी की सारी स्वतंत्रता का ही हिस्सा है।
लेकिन जब यह शरीर ग्रहण करना, यह दुख, यह पीड़ा, यह परेशानी, यह भटकन, यह अनंत यात्रा, यह आवागमन, यह पुनरुक्ति, बार-बार, बार-बार यह चक्कर जब जोर पकड़ने लगेगा, जब सफरिंग गहरी होगी, तो मुझे कुछ न कुछ याद पड़ना शुरू हो जाएगा--कोई घर, जो मैंने कभी छोड़ दिया।
यह जो हमें स्मृति है न, वह निगोद की है। यानी यह जो हमको स्मरण है कि कहीं कुछ गलत हो रहा है। अशांत नहीं होना है, शांत होना है। शांति अच्छी लगती है, अशांति बुरी लगती है। क्यों? शांति में हम किसी क्षण में रह चुके हैं, अन्यथा यह कैसे संभव था? दुख बुरा लगता है, आनंद अच्छा लगता है। आनंद की कोई गहरी स्मृति कहीं भीतर है, जो कहती है कि वापस लौट चलो, वही अच्छा था।
लेकिन उसको भी इतना अनंत-अनंत काल व्यतीत हो गया है उस यात्रा में गए हुए, कि बहुत स्पष्ट चित्र नहीं है कि हम कहां लौट जाएं? क्या करें? लेकिन बार-बार ऐसा अनुभव होता है कि कहीं हम गलत हैं, कहीं किसी फारेन लैंड में हैं, कहीं किसी विजातीय, किसी विदेशी जगत में हम हैं। जहां हमें होना चाहिए, वहां हम नहीं हैं। समथिंग मिसप्लेस्ड। कुछ न कुछ चीज कहीं और रख गई है, ऐसा प्रतिपल प्रतीत होता रहता है।
यही प्रतीति धर्म बनती है। इसी प्रतीति की गहरी से गहरी जिज्ञासा फिर
से पुनर्खोज बनती है उस जगह की, जहां से हमने स्वतंत्रता का उपयोग शुरू किया था, उस बिंदु की, जहां हम थे और जहां से हम चल पड़े। अब हम फिर वापस लौटें। यह जो वापस लौटना है, यह भी हमारा निर्णय है। यह उसी स्वतंत्रता का सदुपयोग है। हम वापस लौटते हैं।
हम उसी बिंदु को अब फिर पुनः उपलब्ध जब होंगे, तो यह बिंदु यद्यपि वही होगा, लेकिन हम बदल गए होंगे।
इसे समझ लेना जरूरी है। उसी जगह हम फिर वापस पहुंच जाएंगे, जहां से हमने यात्रा शुरू की थी। लेकिन जब हम अब पहुंचेंगे, जगह वही होगी, लेकिन हम? हम बदल गए होंगे।
मुल्ला नसरुद्दीन के जीवन में एक बहुत अदभुत घटना है। वह एक गांव के बाहर बैठा हुआ है, अपने गांव के बाहर एक झाड़ के नीचे। चांदनी रात है, एक व्यक्ति उसके पास आया, जिसने हजारों रुपयों से भरी एक थैली उसके सामने पटकी और कहा, नसरुद्दीन, मैं करोड़पति हूं। मेरे पास रुपयों के अंबार हैं, लेकिन सुख नहीं। तो मैं सारी पृथ्वी पर घूम रहा हूं कि सुख कैसे पाऊं? कहां पाऊं? और मुझे कहीं सुख नहीं मिला। हां, लोगों ने मुझे बार-बार कहा कि नसरुद्दीन से मिलो, शायद वह तुम्हें सुख का कोई रास्ता बता दे। तो मैं कैसे सुख पाऊं? सब मेरे पास है, सुख नहीं है। मुझे कोई रास्ता बताओ! नसरुद्दीन ने दो क्षण उसे देखा, आंख बंद की, फिर एकदम से उठा और उसकी
वह जो लाखों रुपए की थैली थी, उसको लेकर भागा। वह आदमी चिल्ला कर उसके पीछे भागा कि नसरुद्दीन! यह तुम क्या कर रहे हो? तुमसे ऐसी आशा न थी। यह तुम कर क्या रहे हो! तुम मेरे रुपए चुरा कर भागे जा रहे हो!
नसरुद्दीन तो तेजी से भागा। गांव उसका परिचित है। वह आदमी अपरिचित है। वह गली-कूचों में चक्कर देने लगा। आधी रात का वक्त है, गांव सन्नाटे में है। वह आदमी चिल्लाता है, लोग उठते भी हैं तो भी किसी की समझ में नहीं आता कि हो क्या गया है! पूरे गांव में चक्कर देकर और नसरुद्दीन ने उस आदमी को थका मारा है। वह बिल्कुल लथड़ गया है, चिल्ला रहा है कि हाय, लुट गया! हे भगवान बचाओ! मर गया! अब मेरा क्या होगा? और वह भागता हुआ पूरे गांव में चक्कर लगवा रहा है।
आखिर में वह नसरुद्दीन उसी झाड़ के नीचे आकर थैली को पटक कर झाड़ के पीछे खड़ा हो गया। वह आदमी आया, उसने थैली हाथ में ले ली। उसने कहा, धन्यवाद, हे भगवान धन्यवाद!

नसरुद्दीन ने कहा, दिस इज़ टू वन मेथड ऑफ गेटिंग हैप्पीनेस। यह भी एक तरकीब है सुख पाने की। उसने कहा कि देख, यही थैली तेरे पास पहले भी थी, लेकिन तूने ऐसे पटक दिया था जैसे कचरा। यही थैली अब भी है, लेकिन बीच के अनुभव ने... । यह भी सुख पाने की एक तरकीब है। नसरुद्दीन ने उससे कहा कि यह भी एक तरकीब है!
और मेरी अपनी समझ यह है कि मोक्ष और निगोद में इतना ही फर्क है। जो थैली थी, वह खो दी गई। थैली थी, यह निगोद है। यह मोक्ष की यात्रा का पहला बिंदु है, जहां हम थे। थैली खो दी गई, यह संसार है। थैली वापस पा ली गई, यह मोक्ष। और यह खो देना बहुत अनिवार्य है। नहीं तो आप इस थैली में क्या है, इसका अर्थ ही भूल जाएंगे। यह खो देना अनिवार्य हिस्सा है। और खोकर जब आप दुबारा पाते हैं, तब आपको पता चलता है कि आनंद क्या है। निगोद में भी वही था, पर उसे खोना जरूरी था, ताकि वह पाया जा सके।
असल में जो मिला ही हुआ है, उसका हमें पता होना बंद हो जाता है। जो हमें मिला ही हुआ है, धीरे-धीरे हम उसके प्रति अचेतन हो जाते हैं, मूर्च्छित हो जाते हैं। क्योंकि उसे याद रखने की कोई जरूरत ही नहीं होती। यह सवाल ही मिट जाता है हमारे मन से कि वह है, क्योंकि वह है ही। वह इतना है कि जब हम थे, तब वह था। तो जरूरी है कि उसे फिर से सचेतन होने के लिए खो दिया जाए।
तो संसार आत्मा की यात्रा में खोने का बिंदु है, और वह भी हमारी स्वतंत्रता है। पर निगोद और मोक्ष में जमीन-आसमान का फर्क है। बिल्कुल एक ही स्थितियां हैं, लेकिन निगोद बिल्कुल मूर्च्छित है, मोक्ष बिल्कुल अमूर्च्छित है। और निगोद को मोक्ष बनाने की जो प्रक्रिया है, वह संसार है। यानी इस प्रक्रिया के बिना निगोद मोक्ष नहीं बन सकता।
इसलिए अगर हम स्वतंत्रता के तत्व को समझ लें तो हमें सब समझ में आ जाएगा कि यह सारी यात्रा हमारा निर्णय है। यह हमारा चुनाव है। हमने ऐसा चाहा है, इसलिए ऐसा हुआ है। हमने जो चाहा है, वही हो गया है। कल अगर हम न चाहेंगे इसे, तो यह होना बंद हो जाएगा। परसों अगर हम बिल्कुल न चाहेंगे, निर्णय छोड़ देंगे, च्वाइस छोड़ देंगे--वही संन्यास का अर्थ है कि जब हम न चाहेंगे, हम छोड़ देंगे; हम नहीं चाहते हैं अब--हम वापस लौटना शुरू हो जाएंगे। वही बिंदु हमें फिर उपलब्ध होगा, लेकिन हम बदल गए होंगे। इस खोने की यात्रा में हमने विपरीत का अनुभव किया होगा। हमने दरिद्रता जानी होगी, अब वह संपत्ति हमें फिर संपत्ति मालूम पड़ेगी। दुख जाना होगा, वह आनंद हमें आनंद मालूम पड़ेगा।
और इसलिए प्रत्येक आत्मा के जीवन में यह अनिवार्य है कि वह संसार से घूमे। और इसलिए कई बार ऐसा हो जाता है कि संसार में जो बहुत गहरे उतर जाते हैं, जिनको हम पापी कहते हैं, वे उतनी ही तीव्रता से वापस भी लौट आते हैं। और जो साधारणजन जिसे हम कहते हैं, जो पाप भी नहीं करता, जो संसार में भी गहरे नहीं उतरता, वह शायद मोक्ष की तरफ भी उतनी जल्दी नहीं लौटता, क्योंकि लौटने में तीव्रता तभी होगी, जब दुख और पीड़ा भी तीव्र हो जाएं। जब हम इतनी पीड़ा से गुजरेंगे कि लौटना जरूरी हो जाएगा। लेकिन अगर हम बहुत पीड़ा से नहीं गुजरे तो शायद लौटना जरूरी न हो।
जैसे वह थैली लेकर नसरुद्दीन भागा था, पूरी थैली लेकर भाग गया था, पीड़ा भारी थी। वह दो रुपए लेकर भागा होता तो हो सकता था उस आदमी ने थैली बांधी होती और अपने घर चला गया होता कि ठीक है, जाने दो। लेकिन तब इस थैली की उपलब्धि का वह रस नहीं हो सकता था, क्योंकि यह थैली फिर वही की वही थी। और वह आदमी फिर गांव-गांव में पूछता कि आनंद का रास्ता क्या है, सुख कैसे मिले? नसरुद्दीन ने कहा यह कि सुख को खोओ, तो मिलेगा! अब यह बड़ा उलटा मालूम पड़ता है। जिसे पाना है, उसे खोओ! क्योंकि अगर वह पाया ही हुआ है तो उसका पता ही नहीं चलेगा।
तो संसार में हम वही खोते हैं, जो हमें मिला हुआ है। मोक्ष में हम वही
पा लेते हैं, जो हमें मिला ही हुआ था। और यह सारा का सारा जो चक्र है, वह स्वतंत्रता के केंद्र पर घूमता है। और जितना ज्ञान, जितना आनंद, उससे भी गहरी स्वतंत्रता, फ्रीडम। इसलिए मुक्ति की हमारी इतनी आकांक्षा है, बंधन

का इतना विरोध है। और मुक्त हम होना चाहते हैं--लेकिन बंधन को अनुभव कर लेंगे तभी।

प्रश्नः आत्मा स्वतंत्र है, लेकिन वासना के कारण परतंत्र हो गई?

वासना भी उसकी स्वतंत्रता है।

प्रश्नः वही चुनती है वह भी?

वही चुनती है। बंधन भी वही चुनती है। यानी मैं स्वतंत्र हूं कि चाहूं
तो हथकड़ी अपने हाथ में बांध लूं, कोई मुझे रोकने वाला नहीं है। मैं स्वतंत्र हूं कि चाहूं तो हथकड़ी अपने हाथ में बांध लूं, कोई मुझे रोकने वाला नहीं है। और इसके लिए भी स्वतंत्र हूं कि चाबी से लॉक करके चाबी को फेंक दूं कि उसे खोजना ही मुश्किल हो जाए, इसके लिए भी मैं स्वतंत्र हूं। मैं इसके लिए भी स्वतंत्र हूं कि अपनी हथकड़ी पर सोना चढ़ा लूं और उसको आभूषण बना लूं। मैं इसके लिए भी स्वतंत्र हूं। लेकिन अंतिम निर्णय मेरा ही है। यहां कोई किसी को परतंत्र नहीं कर रहा है। हम होना चाहते हैं तो हो रहे हैं, हम नहीं होना चाहते तो नहीं होंगे।
बहुत गहरे में जो बंधन है वासना का, वह भी हमारा चुनाव है। कौन तुमसे कहता है कि वासना करो? तुम्हें लगता है कि वासना को जानें, पहचानें; शायद उसमें भी सुख हो, उसे खोजें; तो तुम यात्रा करो। यात्रा जरूरी है ताकि तुम जानो कि सुख वहां नहीं था और दुख ही था। और दुख अगर वासना का प्रकट हो जाएगा तो तुम वासना छोड़ दो। तब भी तुम्हें कोई रोकने नहीं आएगा कि क्यों वासना छोड़ी जा रही है? कोई तुम्हें कहने नहीं आया कभी कि क्यों तुम वासना पकड़ रहे हो?
मनुष्य की स्वतंत्रता परम है, अल्टिमेट है, चरम है। उसके ऊपर कोई भी नहीं कहने वाला कि तुम यह क्यों... ? और स्वतंत्रता तभी पूर्ण है, जब बुरे के भी करने का हक हो।
अगर कोई यह कहे कि अच्छा-अच्छा करने की स्वतंत्रता है, बुरा करने की नहीं, तो स्वतंत्रता कैसी है यह? यानी हमेशा यह ध्यान रहे कि अगर अच्छे ही अच्छे करने की स्वतंत्रता हो... ।
एक बाप अपने बेटे से कहे कि तुझे मंदिर जाने की स्वतंत्रता है, लेकिन वेश्यालय जाने की नहीं, तो यह मंदिर जाने की स्वतंत्रता कैसी स्वतंत्रता हुई? यह तो परतंत्रता हुई। बाप कहे कि मंदिर जाने की तुझे स्वतंत्रता है, बस तू मंदिर ही जा सकता है। वेश्यालय जाने की स्वतंत्रता नहीं है, वहां तू नहीं जा सकता। तो यह स्वतंत्रता कैसी हुई?
यह स्वतंत्रता न हुई, यह मंदिर जाने को स्वतंत्रता का नाम देना झूठा है। यह बाप परतंत्रता को स्वतंत्रता के नाम से लाद रहा है। लेकिन अगर बाप स्वतंत्रता देता है तो वह कहता है कि तुझे हक है, कि तू चाहे तो मधुशाला जा, तू चाहे तो मंदिर जा। तू अनुभव कर, सोच, समझ। जो तुझे ठीक लगे, कर। परम स्वतंत्रता का मतलब होता है, सदा भूल करने की स्वतंत्रता भी।

प्रश्नः और इसी स्वतंत्रता के कारण ही भूल होती है?

स्वतंत्रता के कारण भूल नहीं होती। स्वतंत्रता के कारण भूल नहीं होती।

प्रश्नः चुनाव बुरे का ही होता है न?

यह जरूरी नहीं है।

प्रश्नः ज्यादातर?

यह जरूरी नहीं है। यह जरूरी नहीं है। क्योंकि चुनाव बुरे का करने के बाद जिन्होंने चुनाव भले का किया है, वह भी चुनाव उन्हीं का है। यानी जो मोक्ष गए हैं, मोक्ष जाने में वे उतना ही चुनाव कर रहे हैं, जितना जो संसार में आ रहे हैं, वे चुनाव कर रहे हैं। असल में जो मंदिर की तरफ जा रहा है, वह भी उसका चुनाव है, जो वेश्यालय की तरफ जा रहा है, वह भी उसका चुनाव है; जहां तक स्वतंत्रता का संबंध है, दोनों बराबर हैं। स्वतंत्रता का दोनों उपयोग कर रहे हैं। यह दूसरी बात है कि एक बंधन बनाने के लिए उपयोग कर रहा है, एक बंधन तोड़ने के लिए उपयोग कर रहा है। यह बिल्कुल दूसरी बात है।
और इसके लिए भी हमें स्वतंत्रता होनी चाहिए कि अगर मैं बंधन ही बनाना चाहता हूं और हथकड़ी ही डालना चाहता हूं तो दुनिया में मुझे कोई रोक न सके, नहीं तो वह भी परतंत्रता होगी। यानी अगर मान लो, मैं हथकड़ी डाल कर बैठना चाहता हूं, जंजीरें बांध कर पैरों में, और दुनिया मुझे कहे कि हम न करने देंगे, तो यह तो परतंत्रता हो जाएगी। यानी यह परतंत्रता होगी और हथकड़ियां मुझे डालने की स्वतंत्रता स्वतंत्रता ही है, क्योंकि अंतिम निर्णायक मैं हूं।
और जो मैं कह रहा हूं, वह यह कह रहा हूं कि अगर सुख को जानना हो तो दुख
की स्वतंत्रता भोगनी ही पड़ेगी। उसकी ही पृष्ठभूमि में, उसकी ही काली पृष्ठभूमि में सुख की सफेद रेखाएं उभरेंगी।
हम वहीं लौट जाते हैं, जहां से हम आते हैं, लेकिन न तो हम वही रह जाते, न वही बिंदु वही रह जाता। क्योंकि हमारी सब दृष्टि बदल जाती है। एक संत फिर बच्चा हो जाता है, लेकिन एक बच्चा संत नहीं है।

प्रश्नः तो फिर मोक्ष की अवस्था में फिर अगर वह वापस चाहे, प्रयास करे आना--समझो करुणावश ही--तो फिर वह एक चुन सकता है। चुनाव तो फिर भी हो सकता है?

बिल्कुल चुनाव हो सकता है। बिल्कुल चुनाव हो सकता है। बिल्कुल चुनाव
हो सकता है, लेकिन सिर्फ करुणावश ही।

प्रश्नः हां, करुणावश ही फिर आना... ?

करुणावश ही, करुणावश ही हो सकता है चुनाव आने का। लेकिन फिर वह संसार में आता नहीं, हमें दिखता भर है आया हुआ। यह भी समझ लेना जरूरी है। हम जिस भांति संसार में आते हैं, फिर वह उस भांति संसार में नहीं आता।
मैं पीछे कहीं एक वक्तव्य दिया हूं। जापान में एक फकीर था, जो छोटी- मोटी चोरी कर लेता और जेलखाने चला जाता। और उसके घर के लोग परेशान थे। वह बूढ़ा हो गया। उसके अनुयायी परेशान थे। वे कहते थे, हमारी बड़ी बदनामी होती है तुम्हारे पीछे। और तुम आदमी ऐसे हो कि हमें प्रेम करना पड़ता है। तुम्हारे पीछे हम भी बदनाम होते हैं--कि किसको तुम मानते हो, जो चोरी करता है और जेल चला जाता है! अब तो तुम बूढ़े हो गए, अब तो यह बंद करो।
लेकिन वह कहता कि फिर वे जो जेल में बंद हैं, उनको खबर कौन देगा कि बाहर कैसा मजा है! तो मैं उन्हें खबर देने जाता हूं। और कोई रास्ता नहीं है इसलिए छोटी-मोटी चोरी कर लेता हूं, और जेल चला जाता हूं। और वहां जो बंद हैं, उनको खबर देता हूं बाहर की, कि बाहर कैसी स्वतंत्रता है! उनको कौन खबर देगा? वहां अगर चोर ही चोर जाते रहेंगे, और चोर ही चोर वहां जाते हैं। लेकिन इस फकीर का जाना बहुत भिन्न है। और यह फकीर एक अर्थों में जाता
ही नहीं, क्योंकि न तो यह चोरी करता है चोरी के लिए--जब यह भीतर इसको हथकड़ियां डाली जाती हैं तब भी यह कैदी नहीं है, और जब यह जेल में बंद किया जा रहा है तब भी यह कैदी नहीं है। यह कैद से बाहर का आदमी है। बल्कि और कैदियों को भी मुक्त करने के ख्याल से आया हुआ है।
तो जो बुद्ध या महावीर या जीसस जैसा आदमी जमीन पर आता है तो हमें लगता
है कि वह आया, सच में वह आता नहीं। सच में यानी इस अर्थ में कि अब यह संसार उसके लिए संसार नहीं है। यह संसार अब उसके लिए संसार नहीं है। अब यह उसके अनुभव की यात्रा नहीं है, यह हो चुकी। अब इसमें उसकी कोई पकड़ नहीं है, कोई

जकड़ नहीं है। अब इसमें कोई रस नहीं है। इसमें कुल करुणा इतनी है कि वे जो और भटक रहे हैं, उनको वह खबर दे जाए कि एक और लोक है, जहां पहुंचना हो गया है, जहां पहुंचना हो सकता है। इस करुणावश उतरना हो सकता है, लेकिन यह करुणा अंतिम वासना है।
यह करुणा भी अंतिम वासना है। क्योंकि अगर बहुत गौर से देखें तो करुणा में भी थोड़ा सा अज्ञान शेष है। बहुत थोड़ा सा अज्ञान, जिसको अज्ञान नहीं कह सकते, लेकिन जिसको ज्ञान भी नहीं कहा जा सकता। बहुत बारीक अज्ञान की रेखा शेष है, वह यह है कि किसी को मुक्त किया जा सकता है--एक। क्योंकि जो अपनी स्वतंत्रता से अमुक्त हुए हैं, उनको तुम कैसे मुक्त करोगे? दो--कोई दुख में है, यह भी अज्ञान है। क्योंकि वह दुख उसका बिल्कुल निर्णय है। और तीसरा--किसी को भी उसके समय के पहले वापस लौटाया जा सकता है, यह भी संभव नहीं है। उसका अनुभव तो पूरा होगा ही। यानी अगर इस सब पर हम गौर करें तो यह, इसलिए करुणा जो है, वह अंतिम, दि लास्ट इग्नोरेंस है। पर इसे इग्नोरेंस कहने में, अज्ञान कहने में भी बुरा लगता है। क्योंकि वह इतने प्रेम से जन्मता है वैसा अज्ञान! इसलिए वह एक बार, एकाध बार जन्म ले सकता है, इससे ज्यादा नहीं। क्योंकि तब तक वह करुणा भी क्षीण हो जाएगी, वह भी गल जाएगी।

प्रश्नः विलीन हो जाएगी?

हां, वह भी विलीन हो जाएगी।

प्रश्नः यह बात आपने कैसे कही कि समय के पहले नहीं लौटाया जा सकता?

समय के पहले का मतलब यह नहीं है कि किसी का समय कोई तय है। समय के पहले
का मतलब यह है कि उसका पूरा भोग तो हो जाए। समय के पहले का मतलब यह नहीं है कि एक तारीख तय है कि उस तारीख को तुम लौटोगी। तारीख तय नहीं है, लेकिन तुम्हारा अनुभव तो पूरा हो जाए। उसके पहले तुम्हें नहीं लौटाया जा सकता।

प्रश्नः वह मेरे पर ही डिपेंड करता है कब लौटना?

बिल्कुल ही, तुम पर ही निर्भर करता है। नहीं तो परतंत्र हो जाओगी तुम, फिर मुक्ति नहीं हो सकती तुम्हारी कभी भी। अगर किसी ने तुम्हें मुक्त कर दिया तो यह नई तरह की परतंत्रता होगी यह, कभी तुम मुक्त नहीं हो सकतीं। और इसको मैं कहता हूं परम स्वतंत्रता है आत्मा को--दुख भोगने की, नरकों की यात्रा करने की, पीड़ाओं में उतरने की; ईर्ष्याओं में, जलन में, सब में उतर जाने की उसे पूरी स्वतंत्रता है। और कोई उसे नहीं लौटा सकता जब तक कि... ।

प्रश्नः उनके उतरने की जरूरत क्या है फिर? जो आत्माएं उतरती हैं, जो अपनी करुणा की अंतिम इच्छा से उतरती हैं, उनके उतरने की भी जरूरत नहीं है?

वही तो मैं कह रहा हूं कि सच में जरूरत नहीं है।

प्रश्नः कोई चेंज ही नहीं होगा अगर सब बराबर ही है!

सच में कोई जरूरत नहीं है। लेकिन यह मैं कह रहा हूं कि करुणा अंतिम वासना है और यह उनका चुनाव है। यानी यह जो मैं कह रहा हूं कि स्वतंत्रता, परम स्वतंत्रता है हमें। अगर मैं आज मुक्त हो जाता हूं और फिर भी लौट आना चाहता हूं, तो दुनिया में मुझे कोई रोकने को नहीं है। यानी मुझे अगर ऐसा लगता है कि आपके द्वार पर खटखटाऊं, यह भी जानते हुए, यह भी हो सकता है कि मैं जानता होऊं भलीभांति कि किसी को जगाया नहीं जा सकता उसके पहले, यह भी हो सकता है कि मैं जानता होऊं कि किसी को जागने के पहले जगाया नहीं जा सकता, सबकी अपनी सुबह है और वक्त पर होगी। सबकी नींद पूरी होगी, तभी वे जागेंगे। और हो सकता है बीच में जगाना दुखद भी हो, क्योंकि वे फिर सो जाएं। यानी आखिर नींद तो पूरी हो जानी चाहिए न किसी की! मैं जाकर उसका पांच बजे

दरवाजा खटखटा दूं और वह जग भी आए, करवट बदले, और फिर सो जाए। और शायद पहले वह छह बजे उठ आता, अब वह आठ बजे उठे, क्योंकि वह जो बीच का गैप पड़ा, यह भी नुकसान दे जाए उसे। यह जानते हुए भी!
यानी यह सवाल आप जगेंगे कि नहीं यह नहीं है, सवाल यह है कि मैं जाग कर
जो आनंद अनुभव कर रहा हूं, वह मुझे परेशान किए दे रहा है, वह आनंद मुझे कहे दे रहा है कि जाओ, किसी के द्वार खटखटा दो। यानी अब बहुत गहरे में हम समझें तो आप नहीं हैं सेंटर करुणा के। यानी आप जगेंगे कि नहीं, यह विचारणीय नहीं है, लेकिन जो जग गया है, वह एक ऐसे आनंद को अनुभव करता है कि अंतिम वासना उसकी यह होगी कि वह अपने प्रियजनों को खबर कर दे। अपने प्रियजनों को खबर कर दे, भला प्रियजन उसको गाली दें कि बेवक्त नींद तोड़ दी। यह कौन दुश्मन दरवाजा खटखटा रहा है! यह दूसरी बात है, यानी यह सवाल ही नहीं है। यह बहुत गहरे में देखने पर यह करुणा उसका अपना चुनाव है। इससे आपसे कोई बहुत संबंध नहीं है।
वासना भी अपना चुनाव है। जैसे समझ लें कि मैं आपको प्रेम करने लगूं। मैं आपको प्रेम करने लगूं तो यह मेरा चुनाव है। जरूरी नहीं है कि आप मुझे प्रेम करें। और जरूरी नहीं है कि मेरे प्रेम से आपको आनंद भी मिले। और यह भी हो सकता है कि मेरा प्रेम आपको दुख दे। और यह भी हो सकता है कि मेरा प्रेम आपको परेशानी में डाले। यह सब हो सकता है, फिर भी मैं आपके लिए प्रेम से भरा हुआ हूं। यह मेरी भीतरी बात है। और मैं प्रेम करूंगा। और यह आपके लिए क्या लाएगा, कुछ भी नहीं कहा जा सकता। हालांकि मेरा प्रेम कोशिश करेगा कि आपके लिए हित आए, भला आए, मंगल आए; लेकिन यह जरूरी नहीं है।
करुणा को मैं कह रहा हूं अंतिम वासना। सारी वासनाएं जिसकी क्षीण हो गईं, उसका मतलब है कि उस आदमी को आनंद उपलब्ध हो गया। उसकी सारी वासनाएं क्षीण हो गईं, उसे आनंद उपलब्ध हो गया। अंतिम वासना एक रह जाती है कि यह आनंद औरों को भी उपलब्ध हो जाए। अब अपने लिए पाने को कुछ भी शेष नहीं रहा। अपने लिए पाने को कुछ भी शेष नहीं रहा। उसने आनंद पा लिया। अब एक अंतिम वासना शेष रह जाती है, जो यह कहती है कि यह आनंद औरों को भी उपलब्ध हो जाए। और वह भी इतना तीव्र भाव है! हालांकि वह भी चुनाव है।
इसलिए जरूरी नहीं है कि सभी शिक्षक वापस लौटें। इसलिए मैंने कहा कि
यह मौज की बात है कि कोई सीधा चुपचाप विलीन हो सकता है मोक्ष में। लेकिन कोई ठिठक जाए, वापस लौट आए। हालांकि वह भी एक जन्म, दो जन्म के बाद विलीन हो जाएगा। जाएगा कहां? जाने का सवाल नहीं है कहीं और। लेकिन वह अंतिम उपाय कर सकता है।
लेकिन यह भी अज्ञान का ही हिस्सा है--बहुत गहरे में। क्योंकि अगर पूर्ण ज्ञान हो तो यह बात भी खतम हो जाने वाली है कि ठीक है, जो जा रहा है अपनी-अपनी स्वतंत्रता है, अपनी-अपनी यात्रा है। लेकिन वैसा पूर्ण ज्ञानी हमें अत्यंत कठोर मालूम पड़ेगा, अत्यंत कठोर। क्योंकि राह चलते अगर कोई प्यासा पड़ा है तो शायद वह उसको पानी भी न दे। क्योंकि वह कहेगा, अपनी-अपनी यात्रा है। हालांकि बहुत हमें कठोर मालूम पड़ेगा, हद कठोर मालूम पड़ेगा। अपनी-अपनी यात्रा है। प्यास भी तुम्हारा चुनाव है। तुमने जो पीछे किया, जो हुआ, जैसे तुम चले, वैसे तुम पहुंचे।

प्रश्नः व्यक्तित्व तो रहेगा उतनी देर तक, जितनी देर वह चुनाव में है
या जितनी देर इस वासना में है?

हां, व्यक्तित्व रहेगा तब तक। तब तक व्यक्तित्व रहेगा, जब तक जरा सी भी, क्षीण वासना भी शेष है करुणा की, तब तक व्यक्तित्व रहेगा। पूर्ण वासना निषेध होने पर ही व्यक्तित्व विलीन हो जाता है।
तो पूर्ण--वैसा व्यक्ति तो हमें बहुत कठोर मालूम पड़ेगा, यानी शायद हम उसे समझ ही न पाएं कि यह आदमी कैसा है! कोई आदमी कुएं में डूब कर मर रहा हो तो वह खड़ा देखता रहेगा। अपनी-अपनी यात्रा है, अपना-अपना चुनाव है। इसको तो पकड़ना ही मुश्किल हो जाएगा, इसको तो पहचानना ही मुश्किल हो जाएगा।
कोई आदमी आग में हाथ डाल रहा हो तो वह खड़ा देखता रहेगा। वह कहेगा, अपना-अपना अनुभव है, अपना-अपना ज्ञान है। आग में हाथ डालोगे, तब अनुभव होगा

कि हाथ जलता है, तब जानोगे कि जलता है। अब मैं कह कर क्यों व्यर्थ की बाधा डालूं? मेरे कहने से कुछ होगा नहीं। तुम तो हाथ डालोगे ही, तभी तुम जानोगे। और अगर बिना हाथ डाले तुमने जान लिया तो हो सकता है और कष्टों में पड़ जाओ। क्योंकि मैं तुम्हें कह दूं कि आग में हाथ डालने से हाथ जलता है और तुम मान जाओ, लेकिन तुम्हारा अनुभव न हो, कल तुम्हारे घर में आग लग जाए और तुम भीतर पड़े रहो और तुम सोचो कि कौन जलता है! तो जिम्मेवार कौन होगा? यानी फिर तो जिम्मेवार मैं ही होऊंगा न! इससे तो अच्छा था कि तुम हाथ डाल लेते और जल जाते, तो कल जब तुम्हारे घर में आग लगती तो तुम निकल बाहर हो जाते। क्योंकि तुम्हारा अनुभव काम करता।
अपना अनुभव ही काम करता है।
और इसलिए व्यक्तित्व के विदा होने की जो अंतिम वेला होगी, उस वेला में करुणा प्रकट होगी। वह ऐसे ही है, जैसे सूर्यास्त की लालिमा। कभी ख्याल नहीं किया कि सूर्यास्त की लालिमा का क्या मतलब है?
सुबह भी लालिमा होती है, लेकिन वह उदय की लालिमा है, वह वासना की। अभी सूरज बढ़ेगा और चढ़ेगा, अभी फैलेगा और विस्तीर्ण होगा, अभी जलेगा और तपेगा, अभी दोपहर पाएगा, जवान होगा। सुबह की लालिमा सिर्फ खबर है जन्म की। वह भी वासना है, लेकिन विकासमान, फैलने वाली, एक्सपैंडिंग।
सांझ को फिर आकाश लाल हो जाएगा, वह सूर्यास्त की लालिमा है, लेकिन विदा की। वह अंतिम लालिमा है, लेकिन अब फैलने की नहीं, अब सिकुड़ने की है। अब सब सिकुड़ता जा रहा है। सब सूरज सिकुड़ रहा है, सब किरणें वापस लौट रही हैं, सूरज डूबा चला जा रहा है।
लेकिन लौटती किरणें भी तो लालिमा फेंकेंगी। उगती किरणों ने फेंकी थी।
और अगर किसी को पता न हो तो उगते और डूबते सूरज में भेद करना मुश्किल हो सकता है। अगर पता न हो, एक आदमी दो-चार दिन बेहोश रहा हो और एकदम होश में लाया जाए और उससे कहा जाए, यह सूरज डूब रहा है कि उग रहा है? तो उसे थोड़ा वक्त लग जाए। क्योंकि उगता और डूबता सूरज एक सा लगता है। किरणों का जाल एक में फैलता होता, एक में सिकुड़ता होता। एक में लालिमा बढ़ती होती, एक में घटती होती। लेकिन लालिमा दोनों में होती, किरणें दोनों में होतीं। थोड़ी देर लग सकती है उसे भी पहचानने में कि यह लालिमा सिकुड़ने की है कि फैलने की है।
तो पहला जन्म, जहां व्यक्तित्व किरण होता है, वहां से वासना फैलती है। वासना है फैलती हुई इच्छाएं, फैलती हुई--सूर्योदय। जब सब इच्छाएं सिकुड़ जाती हैं और सूरज का सिर्फ गोल हिस्सा रह गया डूबता हुआ, आखिरी; लेकिन फिर भी लालिमा है; डूबते की है, लेकिन फिर भी है। यह आखिरी लालिमा है। यह करुणा है। यह डूब जाएगा। और कई बार चूक हो जाती है। हम समझते हैं कि सूरज उग रहा है और जब तक हम समझ पाते हैं, तब तक वह डूब जाता है। तब हम उससे कुछ लाभ नहीं ले पाते। यह बहुत बार होता है।
बुद्ध गांव में आते, महावीर भी गांव में आते; तुम्हारे गांव में भी आए होंगे, तुम भी उस गांव में रहे होओगे। जीसस भी आए, कृष्ण भी आए; लेकिन हो सकता है तुमने समझा हो कि यह अभी सूर्योदय हो रहा है। यह आदमी वासनाग्रस्त है। और तुम चूक गए होओ और तब तक सूरज डूब गया। फिर रोते बैठे रहो। तब कुछ भी नहीं हो सकता, तब जानने के लिए कोई उपाय नहीं रह जाता। लेकिन उगता-डूबता सूरज एक जैसे मालूम पड़ते हैं। तो हो सकता है बुद्ध जिस गांव में आए हों, अनेक लोगों ने सोचा हो कि यह भी सब वासना है।
एक गांव में बुद्ध तीन बार गुजरे जीवन में। और गांव में एक आदमी था, जो अपनी दुकान पर लगा रहा। और लोगों ने उससे कहा भी कि बुद्ध आए हैं, तो उसने कहा कि दुबारा आएंगे, तब! अभी तो बहुत ग्राहकी है, अभी तो मौसम है, अभी तो खरीद-फरोख्त का वक्त है! दुबारा जब आएंगे, तब सुन लूंगा। ऐसा तीन बार बुद्ध उस गांव से गुजरे।
आखिर बुद्ध भी क्या कर सकते हैं? कितनी बार गांव से गुजर सकते हैं! आखिर बुद्ध की भी सीमा है। और गांव बहुत हैं। और बुद्ध भी कर क्या सकते हैं? अगर ग्राहकी चलती ही रहे और दुकान बंद ही न करनी हो, तो कोई भी क्या कर सकता है? तीसरी बार भी बुद्ध गुजरे, तब वह आदमी बूढ़ा हो गया था। फिर उससे

लोगों ने कहा कि चलते नहीं हो? उसने कहा, आज तो बहुत काम है। दुबारा जब आएंगे!
फिर बुद्ध दुबारा उस गांव में नहीं आए। लेकिन एक दिन उस गांव में खबर
आई कि पड़ोस के जंगल में, पड़ोस के गांव में बुद्ध का अंतिम दिन है। लोग इकट्ठे हो रहे हैं दूर-दूर से। वे मरने के करीब हैं और उन्होंने कह दिया है कि वे जल्दी ही डूब जाएंगे, अस्त हो जाएंगे। तो जिन्हें जो पूछना हो, भागो। तो उस आदमी ने दुकान बंद की। शायद दुकान भी बंद नहीं कर पाया। घर के लोगों ने कहा, क्या करते हो यह? अभी बहुत वक्त है। अभी काम है, अभी दुकान पर लोग हैं। उसने कहा कि वह तो ठीक है, लेकिन फिर उस आदमी से मिलना नहीं हो पाएगा। और बहुत चूक गया, काफी चूक गया। वह आदमी भागता हुआ दूसरे गांव गया। बुद्ध ने, वहां लोग जो इकट्ठे हुए थे, उनसे पूछा कि तुम्हें कुछ और पूछना हो! तो उन सबने कहा कि हमने इतना पूछा और इतना जाना, अब कुछ भी पूछने को नहीं है। अब तो करने को है कि हम कुछ करें। तो बुद्ध ने कहा, फिर मैं विदा लूं। तीन बार उन्होंने पूछा, जैसी उनकी आदत थी। क्योंकि हो सकता है, एक दफे संकोच में कोई न पूछे, हो सकता है दूसरी दफे हिम्मत न जुटा पाए, तीसरी दफे तो पूछ ले। तो तीन बार उन्होंने पूछा--कि कुछ पूछना? कुछ पूछना? कुछ पूछना? लेकिन लोग रो रहे थे। उन्होंने कहा, कुछ भी नहीं पूछना है, अब क्या पूछने को है? तब बुद्ध ने कहा, फिर मैं विदा लूं। और वे वृक्ष के पीछे चले गए। ध्यान में बैठे और डूबने लगे।
तब वह आदमी भागा हुआ पहुंचा। तब उसने जाकर कहा कि बुद्ध कहां हैं? तो लोगों ने कहा, चुप! अब बात मत करना, अब वे जा चुके। अब वे वृक्ष के पीछे चले गए। अब वे शांति से अपने में उतर रहे हैं, वापस डूब रहे हैं! व्यक्तित्व छोड़ रहे हैं, निर्वाण में जा रहे हैं। पर उस आदमी ने कहा, मेरा क्या होगा? क्योंकि मैं तो चूक ही गया, उनसे कुछ पूछना था। तो उन लोगों ने कहा, पागल हो गए हो? वे चालीस साल से इसी इलाके में चक्कर लगाते थे, तब तू कहां था? उसने कहा, दुकान पर बहुत भीड़ थी। भीड़ तो आज भी थी, लेकिन तब मैंने समझा अभी सूरज उगता हुआ है, तब मुझे यह ख्याल न था कि डूबने का वक्त भी जल्दी आ जाएगा। पर मुझे पूछना है, देर मत करो, क्योंकि सूरज तो डूबा जा रहा है। लेकिन भिक्षुओं ने कहा कि चुप, जोर से आवाज मत करना। अन्यथा वे इतने करुणावान हैं कि वापस लौट सकते हैं।
लेकिन तभी बुद्ध बाहर आ गए वृक्ष के और उन्होंने कहा, ऐसा मत करो, नहीं
तो सदियों तक लोग मेरा नाम धरेंगे कि बुद्ध जिंदा थे और एक आदमी पूछने आया और द्वार से खाली हाथ लौट गया। अभी मैं हूं। क्या तुझे पूछना है?
यह जो लौटना है, यह उतना ही लौटना है, जितना कि सच में कोई मोक्ष से लौटे। इसमें कुछ बहुत फर्क नहीं है। पर यह अंतिम वासना है और यह अंतिम वासना भी अर्थपूर्ण है। यह है, इसलिए जगत में इतने ज्ञान की संभावना हो सकी। यह है, इसलिए जगत में इतने विचार का जन्म हो सका। अगर यह न हो तो जगत में प्रकाश की कोई खबर ही न आए। अगर कोई आदमी इतना करुणावान न हो कि इसलिए चोरी करे कि जेलखाने में आए, तो जेलखाने के लोग हो सकता है भूल ही जाएं कि बाहर कोई जगत भी है। नहीं पक्का है कि इनकी बात सुन कर हम जग ही जाएंगे, लेकिन एक बात पक्की है कि ये जगे हुए लोग हमारे मन में भी लौटने की, जगने की कोई न कोई सूक्ष्म वासना पैदा कर जाते हैं। ये जगे हुए लोग, इनकी मौजूदगी, इनकी बात, इनका चलना, इनका उठना, इनका बैठना, हमारे भीतर भी कहीं कोई, कहीं कोई धक्का दे जाता है। शायद अपने घर की याद दिला जाते हैं।
यह करुणा इसलिए अर्थपूर्ण है। यानी मेरी दृष्टि में तो जगत में कुछ
भी अर्थहीन नहीं है। वासना भी अर्थपूर्ण है, करुणा भी अर्थपूर्ण है, निगोद भी अर्थपूर्ण है, मोक्ष भी अर्थपूर्ण है। संसार किसी से कम अर्थपूर्ण नहीं। लेकिन सबके पीछे जो परम तथ्य है, वह स्वतंत्रता का है। वह हम स्वतंत्रता के तत्व का प्रयोग कर रहे हैं। कैसा कर रहे हैं, यह हम पर निर्भर है। अपने ही हित के लिए कर रहे हैं, अहित के लिए कर रहे हैं, यह हम पर निर्भर है। अपने सुख के लिए कर रहे हैं, अपने दुख के लिए कर रहे हैं, यह हम पर निर्भर है। और इसकी भी स्वतंत्रता है।
और महावीर या बुद्ध जैसे व्यक्तियों ने ईश्वर को जो इनकार किया, उसमें एक कारण यह भी है। ईश्वर के इनकार में, भगवान के इनकार में भगवत्ता

का इनकार नहीं है। दि गॉड इज़ रिफ्यूटेड बट नाट दि डिवाइन। ईश्वर इनकार कर दिया है, लेकिन ईश्वरपन में पूर्ण स्वीकृति है। अगर ईश्वर को मानें तो स्वतंत्रता खंडित हो जाएगी। स्वतंत्रता फिर पूरी नहीं हो सकती। और अगर उसके रहते स्वतंत्रता पूरी है, तो वह बेमानी है। यानी अगर वह है भी और उसको हम कहते भी हैं कि वह स्रष्टा, नियामक, और फिर कहते हैं कि आदमी पूरा स्वतंत्र। तो महावीर कहते हैं, इन दोनों में मेल नहीं है। उसकी मौजूदगी भी बाधा बनेगी। उसका नियमन किसी तरह की परतंत्रता होगा।
परमात्मा का इनकार करते हैं, ताकि परतंत्रता का कोई उपाय न रह जाए। इसका यह मतलब नहीं है कि वे परमात्मा को इनकार करते हैं, इसका मतलब यह है कि परमात्मा के व्यक्तित्व को इनकार कर देते हैं। और परमात्मा को डिफ्यूज्ड बीइंग बना देते हैं। वे कहते हैं कि वह सबमें व्याप्त, लेकिन नियामक नहीं। सबमें व्याप्त परम स्वतंत्र जो है, वही परमात्मा है। उसके ऊपर वे किसी को नहीं बिठाते, क्योंकि उसके ऊपर बिठालने से परतंत्रता में खंडन हो जाएगा।
फिर हो सकता है, परमात्मा की इच्छा हो--जैसा कि साधारण आस्तिक मानता
है कि उसकी इच्छा हुई तो उसने जगत बनाया--तो फिर हम बिल्कुल परतंत्र मालूम होते हैं। यानी हमारी इच्छा से हम जगत में नहीं हैं, उसकी इच्छा से हम जगत में हैं। तो फिर उसकी इच्छा होगी तो जगत मिटा देगा, हम मोक्ष में हो जाएंगे। और जब तक उसकी इच्छा नहीं होगी तब तक कोई उपाय भी नहीं है! तब जगत बहुत बेमानी है, कठपुतलियों का खेल हो जाता है, जिसमें कोई अर्थ नहीं रह जाता।
जहां स्वतंत्रता नहीं है, वहां कोई अर्थ नहीं है। जहां परम स्वतंत्रता है, वहां प्रत्येक चीज में अर्थ है। और परम स्वतंत्रता की घोषणा के लिए ईश्वर को इनकार कर देना पड़ा कि उसको नहीं हम कोई जगह देंगे, वह है नहीं।
साधारण आस्तिक की दृष्टि में ईश्वर नियामक है, नियंता है, स्रष्टा है, क्रिएटर, कंट्रोलर है। तो स्वतंत्रता खतम हो गई।
परम आस्तिक, गहरे आस्तिक की दृष्टि में ईश्वर यानी स्वतंत्रता। गॉड ईक्वल टू फ्रीडम, टोटल फ्रीडम। वह जो परम स्वतंत्रता के व्याप्त कण-कण हैं, उन सबका समग्र नाम ही परमात्मा है।
अगर इसको हम समझ पाएं तो फिर पापी को दोष देने का कोई कारण नहीं। इतना
ही कहने की जरूरत है कि तूने स्वतंत्रता को जिस ढंग से चुना है, वह दुख लाएगी। इससे ज्यादा कुछ भी कहने का नहीं। लेकिन वह कह सकता है कि अभी मुझे दुख अनुभव करने हैं। निंदा का कोई कारण नहीं, कंडेमनेशन का कोई सवाल नहीं। मैं कहता हूं कि मुझे गड्ढे में उतरना है। आप कहते हैं, गड्ढे में प्रकाश नहीं होगा, सूरज की किरणें गड्ढे तक नहीं पहुंचेंगी, वहां अंधेरा है।
मैं कहता हूं, लेकिन मुझे गड्ढे का अनुभव लेना है। तो अगर आपने अनुभव लिया हो गड्ढे का तो गड्ढे में जाने की सीढ़ियां मुझे बता दें। अगर आप गए हों गड्ढे में, और आप जरूर गए होंगे, क्योंकि आप कहते हैं, वहां सूरज की किरणें नहीं पहुंचतीं। मैं भी जानना चाहता हूं, मैं गड्ढे में जाना चाहता हूं, ताकि गड्ढे में जाने की वासना विदा हो जाए। तो निंदा कहां है?
मेरी दृष्टि में पापी से पापी व्यक्ति की कोई निंदा नहीं है और पुण्यात्मा से पुण्यात्मा व्यक्ति की कोई प्रशंसा नहीं है। क्योंकि सवाल नहीं है यह। यानी वह अपनी स्वतंत्रता का उपयोग कर रहा है, तुम अपनी का करो। और मजा यह है कि तुम तो सुख के लिए कर रहे हो, प्रशंसा की बात क्या है? प्रशंसा ही करनी हो तो उसकी करो, जो अपनी स्वतंत्रता का दुख के लिए उपयोग कर रहा है। यानी अजीब आदमी है, हिम्मतवर भी है, साहस की भी जरूरत है। क्योंकि दुख उठाता है और दुख में जाने के लिए स्वतंत्रता का और उपयोग कर रहा है। हो सकता है, वह इतना दुख जान कर लौटे कि उसके लिए सुख की गहराइयों का अंत न रहे।
सभी को जाना पड़ेगा अंधकार में, ताकि वे प्रकाश तक आ सकें। और सभी को स्वयं को खोना पड़ेगा, ताकि वे स्वयं को पा सकें। यह बहुत उलटी बात मालूम पड़ती है, लेकिन यही है। और कोई अगर इसको भी पूछे कि ऐसा क्यों है? तो बेमानी पूछता है। ऐसा है। यानी कोई अगर ऐसा भी पूछे कि ऐसी स्वतंत्रता

क्यों है? अब इसका कोई मतलब नहीं है। ऐसा है। और इससे अन्यथा नहीं है, इसके सिवाय जानने का कोई उपाय नहीं है।
आग जलाती है। कोई पूछे कि क्यों जलाती है? तो हम कहेंगे, आग जलाती है।
बस एक उपाय है कि न जलना हो, हाथ मत डालो आग में; जलना हो, हाथ डाल दो; बाकी आग जलाती है। और आग क्यों जलाती है, इसका कोई उपाय नहीं है। और बर्फ क्यों ठंडा है? बर्फ ठंडा है और आग आग है। और उपाय यह है कि तुम बर्फ में ठंडक न चाहते हो तो मत जाओ, चाहते हो तो चले जाओ, बाकी बर्फ ठंडा है और आग गर्म है। और चीजें जैसी हैं, वैसी हैं।
स्वतंत्रता जो है, वह जगत की मौलिक स्थिति है। स्टेट ऑफ अफेयर्स--ऐसा है। और इससे अन्यथा नहीं है। और इसके आगे जाने का कोई उपाय नहीं है। क्योंकि अगर कोई कहे कि किसने यह स्वतंत्रता दी? तो ध्यान रहे, दी गई स्वतंत्रता स्वतंत्रता नहीं होती। अगर कोई कहे, किसने यह स्वतंत्रता दी? तो दी गई स्वतंत्रता स्वतंत्रता नहीं होती। फिर वह भारतीय स्वतंत्रता जैसी हो जाती है। किसी ने स्वतंत्रता नहीं दी है। अगर कोई कहे कि किसने स्वतंत्रता ली? तो स्वतंत्रता तभी लेनी पड़ती है, जब कि परतंत्रता हो। नहीं तो स्वतंत्रता लेने का कोई सवाल नहीं है।
अगर स्वतंत्रता है--तो न तो कोई उसे देता, न उसे कोई लेता; वह है। वह जगत का स्वरूप है, वह वस्तुस्थिति है, वह स्वभाव है। और उसके उपयोग की बात है अब। कोई उसको दुख के लिए करता है, करे। कोई सुख के लिए करता है, करे। सुख वाला चिल्ला कर कह सकता है कि भई देखो, उस तरफ जाते हो, दुख होगा। फिर भी दुख वाला कह सकता है कि आप गए, तब मैं नहीं चिल्लाया। आप क्यों परेशान होते हैं? मुझे जाने दें। तो बात समाप्त हो जाती है। इससे ज्यादा कोई मतलब नहीं है।
मुझे निरंतर लोग पूछते हैं कि आप इतना लोगों को समझाते हैं, क्या हुआ? मैंने कहा, यह तो पूछना ही गलत बात है। अगर हम यह पूछते हैं तो हम उनकी स्वतंत्रता पर बाधा डालते हैं। यानी मेरा काम था कि मैंने चिल्ला दिया। यह मेरा चुनाव था चिल्लाना। उन्होंने मुझे कहा भी नहीं था कि चिल्लाओ। यह मेरी मौज थी कि मैं चिल्लाया। यह मेरा चुनाव था। उनकी मौज थी कि उन्होंने सुना, या मौज थी कि नहीं सुना, या मौज थी कि सुना और अनसुना किया। इस सबमें वे स्वतंत्र थे। इसके आगे पूछने की जरूरत ही नहीं। इसके आगे बात का कोई सवाल ही नहीं।
हम सब अपनी स्वतंत्रता में जी रहे हैं और दुख या सुख हमारे निर्णय हैं। और इसलिए बड़ी मौज है। इसलिए जिंदगी बड़ी रसपूर्ण है। क्योंकि कहीं कोई रोकने वाला नहीं है, कहीं कोई मालिक नहीं है, हम ही मालिक हैं। और इतना समझ में आ जाए तो फिर और क्या समझने को शेष रह जाता है?

प्रश्नः यहीं रहना है, फिर कभी न निगोद की अवस्था और न मोक्ष की अवस्था... ?

उनका निर्णय है।

प्रश्नः वह भी उनका ही निर्णय है?

बिल्कुल निर्णय है। कोई निर्णायक है ही नहीं आपके सिवाय। वह उनका निर्णय है। अब जैसे कि नसरुद्दीन उसका थैला लेकर भाग गया। वह आदमी यह भी निर्णय कर सकता है कि ठीक है, ले जाओ, हम नहीं आते पीछे, और कभी न लौटे। वह उसका निर्णय है कि वह पीछा करता है। और तब तक पीछा करता है, जब तक पा नहीं लेता। लेकिन वह कह सकता है कि ठीक है, ले जाओ।
तो हो सकता है नसरुद्दीन को उसे खोजना पड़े कि वह आदमी कहां गया? और हालत उलटी हो जाए। हालत यह हो जाए कि नसरुद्दीन खोजते थक जाए, दुखी हो जाए, परेशान हो जाए। क्योंकि वह कोई चोर तो था नहीं, वह तो बेचारे को लौटाना था।

प्रश्नः यह निर्णय करना कौन कराता है, उसका उत्तर नहीं है?

कोई नहीं कराता, आप करते हैं। आप करते हैं। कोई कराएगा तो फिर कैसे बात हो गई? आप करते हैं।

प्रश्नः जैसे स्वतंत्रता है, वैसे ही उत्तर हो गया न?

हां, बिल्कुल वैसे ही है। आप ही निर्णय करते हैं। स्वतंत्रता का मतलब
यह हुआ कि निर्णायक आप हैं। और आप ही निर्णय करते हैं।

प्रश्नः प्रारब्ध क्या हुआ फिर?

कुछ भी प्रारब्ध नहीं है--आपके किए हुए निर्णय हैं। आपके किए हुए निर्णय हैं।

प्रश्नः सब अपने ही पुरुषार्थ हैं?

हां, हां, अपने किए हुए निर्णय प्रारब्ध बन जाते हैं। जैसे कि समझो कि मैंने एक निर्णय किया कि इस कमरे में बैठूंगा, तो एक ही हो सकता है न! या तो कमरे में बैठूं या बाहर बैठूं। निर्णय करते ही से प्रारब्ध शुरू हो जाता है। निर्णय का मतलब है कि मैं प्रारब्ध निर्मित कर रहा हूं।
अब मैं एक ही काम कर सकता हूं, या तो बाहर बैठूं या भीतर। भीतर बैठता हूं तो यह प्रारब्ध हो गया मेरा। निर्णय, काम शुरू हो गया। अब मैं बाहर नहीं हो सकता इसी के साथ। एक ही साथ बाहर नहीं हो सकता। अगर बाहर जाऊंगा तो भीतर नहीं होऊंगा। तो भीतर के सुख-दुख भीतर मिलेंगे, बाहर के सुख-दुख बाहर मिलेंगे। अब वह फिर मेरा प्रारब्ध होगा, क्योंकि मैंने निर्णय किया और वह मैं भोगूंगा।
अब एक आदमी ने निर्णय किया कि मैं धूप में बैठूंगा। तो ठीक है, तो धूप
का जो भी फल होने वाला है, वह मिलने वाला है। इसमें कोई दुनिया में जिम्मेवार नहीं है। धूप का काम है, वह धूप है; आपका काम है कि आप निर्णय किए हैं बाहर बैठने का।
आपका चेहरा काला हो जाएगा; वह जिम्मेवारी आपकी है, वह प्रारब्ध हो जाएगा। लेकिन आज अगर चेहरा काला हो गया तो उसको ठीक करने में दस दिन लग जाएंगे। तो दस दिन तक प्रारब्ध पीछा करेगा। क्योंकि वह जो हो गया, उसका क्रम होगा फिर।
तो हम जिसको प्रारब्ध कहते हैं, वे हमारे अतीत में किए गए निर्णयों का इकट्ठा सार-अंश है। वह हमने निर्णय किए थे, वह उनकी व्यवस्था हो गई है। वह हमको करना पड़ रहा है।

प्रश्नः और अभी पुरुषार्थ करेंगे तो फिर... ?

बिल्कुल ही। वह तो सवाल ही नहीं पुरुषार्थ और प्रारब्ध का। पुरुषार्थ
का मतलब ही नहीं कुछ है। तुम स्वतंत्र हो आज भी। और आज तुम जो करोगी, वह फिर निर्णय बनेगा, और फिर एक तरह का प्रारब्ध निर्मित होगा उससे।
बहुत गौर से देखें तो मोक्ष भी एक प्रारब्ध है। वह जो आदमी स्वतंत्र होने का निर्णय करता, करता, करता, करता, अंततः मुक्त हो जाता है। संसार भी एक प्रारब्ध है।
प्रारब्ध का मतलब ही इतना होता हैः तुमने कुछ निर्णय किया, फिर उस निर्णय का फल भोगा।

प्रश्नः शास्त्रों में पुरुषार्थ और भवितव्यता बताई है, उसका क्या है?

शास्त्रों से मुझे कुछ मतलब ही नहीं है। शास्त्रों से क्या लेना- देना! शास्त्र लिखने वाले की मौज थी कि उसने लिखे, तुम्हारी मौज है, पढ़ो न

पढ़ो! उससे क्या फर्क पड़ता है! नहीं, वह कहीं बांधता नहीं। उससे क्या लेना- देना है? उससे क्या प्रयोजन है?

प्रश्नः व्यक्तिगत इच्छा, वही मेन इंपार्टेंट प्वाइंट है?

वही है। वही है।

प्रश्नः तो यह रहने की भी स्वतंत्रता अपनी है?

बिल्कुल अपनी है।

प्रश्नः कोई अथॉरिटी नहीं है?

यह भी कोई कभी नहीं आएगा आपको रोकने, कि आप कितनी देर हो गए भटकते हुए। कोई सवाल नहीं है। क्योंकि कोई है नहीं। कोई है नहीं, जो आपसे आकर कहेगा कि अनंत काल हो गया।

प्रश्नः और फिर वासना के बाद मुक्त अवस्था में, उस समय स्वतंत्रता का उपयोग वह संसार में आने के लिए करता है?

नहीं कर सकता, क्योंकि एक आदमी आग में हाथ डालने के लिए पहली दफा स्वतंत्रता का उपयोग कर सकता है; लेकिन जल जाने के बाद उपयोग करेगा, मुश्किल है। मेरा मतलब समझी न तू! एक आदमी स्वतंत्रता का उपयोग कर सकता है आग में हाथ डालने का।
एक बच्चा है, वह दीए पर हाथ रख कर लौ पकड़ सकता है। स्वतंत्रता का उसने उपयोग किया। लेकिन हाथ जल गया, अनुभव हुआ। अब दुबारा इस बच्चे से कम आशा है कि यह आग की लौ पकड़े, क्योंकि इसका अनुभव भी इसके साथ खड़ा हो गया। अब इस स्वतंत्रता का वैसा उपयोग करना मुश्किल है।
तो जो मुक्त हो गया, वह संसार के दुख झेलने के लिए वासना करे, यह असंभव है। यह असंभावना उसके अनुभव के कारण है, और कोई नहीं है। चाहे तो आ जाए, लेकिन चाह नहीं सकता। यानी यह जो, चाहे तो कोई रोकने वाला नहीं है उसको। महावीर अगर सिद्धशिला छोड़ कर और वापस दिल्ली आना चाहें तो कोई रोक नहीं सकता। कौन रोकने वाला है? लेकिन महावीर नहीं आ सकते, क्योंकि अब अनुभव भी साथ है। दिल्ली का अनुभव काफी भोग लिया, वह दुख काफी झेल लिया। वह अनुभव इतना गहरा हो गया कि उसका कोई अर्थ नहीं है, उसका कोई प्रयोजन नहीं है।

महावीर: मेरी दृष्टि में चौबीसवां प्रवचन

दुख, सुख और महावीर-आनंद

दुख, सुख और आनंद, इन तीन शब्दों को समझना बहुत उपयोगी है।
दुख और सुख भिन्न चीजें नहीं हैं, बल्कि उन दोनों के बीच जो भेद है, वह ज्यादा से ज्यादा मात्रा का, परिमाण का, डिग्री का है। और इसलिए सुख दुख बन सकता है और दुख सुख बन सकता है। जिसे हम सुख कहते हैं, वह भी दुख बन सकता है; और जिसे दुख कहते हैं, वह भी सुख बन सकता है। इन दोनों के बीच जो फासला है, जो भेद है, वह विरोधी का नहीं है। भेद मात्रा का है।
एक आदमी को हम गरीब कहते हैं और एक आदमी को हम अमीर कहते हैं। गरीब और अमीर में भेद किस बात का है? विरोध है दोनों में?
आमतौर से ऐसा दिखता है कि गरीब और अमीर विरोधी अवस्थाएं हैं, लेकिन सचाई यह है कि गरीबी और अमीरी एक ही चीज की मात्राएं हैं। एक आदमी के पास एक रुपया है तो गरीब है और एक करोड़ रुपया है तो अमीर है। अगर एक रुपए में गरीब है, तो एक करोड़ में अमीर कैसे हो सकता है? इतना ही हम कह सकते हैं कि एक करोड़ गुना कम गरीब है। और अगर एक करोड़ वाला अमीर है तो एक रुपए वाला गरीब कैसे है? फिर इतना ही हम कह सकते हैं कि वह एक करोड़ गुना कम अमीर है। इन दोनों में जो भेद है, वह भेद ऐसा नहीं है, जैसा दो विरोधियों में होता है। वह भेद ऐसा है, जैसा एक ही चीज की मात्राओं में होता है। लेकिन गरीबी दुख हो सकती है और अमीरी सुख हो सकती है। और गरीब दुखी है और अमीर होना चाहता है।
तो दुख और सुख में भी जो भेद है, वह भेद भी मात्रा का ही है इसी भांति। हमारी सारी सुख की अनुभूतियां दुख से जुड़ी हुई हैं और हमारी सारी दुख की अनुभूतियां भी सुख से जुड़ी हुई हैं। इन दोनों के बीच जो डोल रहा है, वह संसार में है। संसार में होने का मतलब इतना ही नहीं है कि सिर्फ दुखानुभूति। अगर संसार में सिर्फ दुख की अनुभूति हो तो कोई भटके ही नहीं, फिर तो भटकने का उपाय ही न रहा। भटकता सिर्फ इसलिए है कि सुख की आशा होती है, अनुभूति दुख की होती है। और सुख मिल जाता है तो मिलते ही दुख में बदल जाता है।
संसार की अनुभूति को दो-तीन तरह से देखना चाहिए। एक तो यह कि सुख सदा भविष्य में होता है--कल मिलेगा। और कल मिलने वाले सुख के लिए आज हम दुख झेलने को तैयार होते हैं! आज के दुख को हम इस आशा में झेल लेते हैं कि कल सुख मिलेगा। अगर कल सुख की कोई आशा न हो तो आज के दुख को एक क्षण भी झेलना कठिन है।
उमर खय्याम ने एक गीत लिखा है और उस गीत में वह कहता है कि मैं बहुत जन्मों से भटक रहा हूं और सबसे पूछ चुका हूं कि आदमी भटकता क्यों है? लेकिन कोई उत्तर नहीं मिलता। और तब मैंने थक कर एक दिन आकाश से ही पूछा कि तूने तो सब भटकते लोगों को देखा है, और उन सबको भी देखा जो भटकन के बाहर हो गए हैं, और उन सबको भी देखता रहेगा जो भटकन में आएंगे, और उनको भी देखता रहेगा जो भटकन के बाहर होंगे। तू ही मुझे बता दे कि आदमी भटकता क्यों है? तो चारों तरफ आकाश से--वह उस अपने गीत में कहता है--मुझे आवाज सुनाई पड़ीः आशा के कारण! बिकाज ऑफ होप!
आदमी भटकता क्यों है? आशा के कारण! और आशा क्या है? इस बात की संभावना
कि कल सुख मिलेगा। इस बात की, इस बात का आश्वासन कि कल सुख मिलेगा। आज दुख झेल लो, कल सुख मिलेगा!
आज का दुख हम झेलते हैं कल के सुख की आशा में! फिर कल जब सुख मिलता है
तो बड़ी आश्चर्यजनक घटना घटती है। सुख मिलते ही फिर दुख हो जाता है। जो चीज उपलब्ध हो जाती है, कितनी कल्पना की थी कि उसके मिलने पर यह होगा, यह होगा, यह होगा।
और प्रत्येक व्यक्ति अपने अनुभव को थोड़ा जांचेगा तो हैरान होगा कि मैंने कितने-कितने सपने संजोए--यह होगा, यह होगा, यह होगा। फिर वह चीज मिल गई, और पाया कि कुछ भी न हुआ। वे सब के सब सपने कहां खो गए, कुछ पता न चला। वे

सब की सब कल्पनाएं कैसे विलीन हो गईं, कुछ पता न चला। चीज हाथ में आई कि जो- जो उसके मिलने की संभावना में छिपा हुआ सुख था, वह एकदम तिरोहित हो जाता है।
जब तक नहीं मिलता, तब तक प्रतीक्षा में सुख मालूम होता है; जब मिल जाता है, सब सुख समाप्त हो जाता है! फिर नई दौड़ शुरू हो जाती है। क्योंकि जहां दुख है, वहां से हम भागेंगे। यह भी समझ लेना चाहिए। जहां दुख है, वहां हम रुक नहीं सकते। वहां से हम भागेंगे। क्योंकि जहां दुख है, वहां कैसे रुका जा सकता है? दुख भगाता है। दुख से हम हट जाना चाहते हैं। और दुख से हटने का उपाय क्या है? एक ही उपाय दिखाई पड़ता है साधारणतः, और वह यह है कि सुख की किसी आशा में हम आज के दुख को भुला दें, विस्मरण कर दें।
तो फिर जैसे ही दुख शुरू होता है, हम नई आशा सुख की बनाते हैं। उस आशा में हम वह सब डाल देते हैं, जो हमारे दुख से विपरीत है। वह सब समाविष्ट कर देते हैं, जो हम चाहते हैं कि हो। और इस तरह आदमी जीता दुख में है! जीता दुख में है, होता दुख में है; लेकिन आंखें उसकी सुख में लगी रहती हैं! जैसे आदमी चलता पृथ्वी पर है और देखता सदा आकाश को रहे। आकाश पर देखने में एक सुविधा हो सकती है कि पृथ्वी पर होना भूल जाए, फिर भी होगा पृथ्वी पर।
हम खड़े हैं दुख में, लेकिन आंखें सदा सुख में अटकी रहती हैं! इससे सुविधा यह हो जाती है कि दुख को हम भूल जाते हैं और दुख को झेलने की क्षमता उपलब्ध कर लेते हैं।
अब अगर बहुत गहरे में देखा जाए तो सुख जो है, वह सिर्फ संभावना है, सत्य कभी भी नहीं। दुख सदा सत्य है, तथ्य है, वास्तविक है। लेकिन दुख कैसे झेला जाए? तो हम उसे सुख की आशा में झेल लेते हैं। कल का सुख आज के दुख को सहने योग्य, सहनीय बना देता है!
और वह सुख जो कल का है, वह कभी मिलता नहीं। और जिस दिन मिल जाता है, भूल-चूक से, उसी दिन हम पाते हैं कि भ्रांति टूट गई, इल्यूजन टूट गया। वह जो आशा हमने बांधी थी, गलत सिद्ध हुई। लेकिन इससे सिर्फ इतना ही हम समझ पाते हैं कि यह सुख गलत था! दूसरे सुख गलत नहीं हैं, उनकी आशा में आगे दौड़ते रहो। यह भूल थी, लेकिन अब यह भूल भ्रांत सिद्ध हो गई, टूट गई, दुख आ गया, तो अब फिर चित्त भागेगा।
यानी हम एक आशा से उखड़ते हैं, लेकिन आशा मात्र से नहीं उखड़ जाते। एक सुख की व्यर्थता को जान लेते हैं, लेकिन सुख मात्र की व्यर्थता को नहीं जान पाते हैं। इसलिए दौड़ जारी रहती है। अगर दुख ही हो जीवन में और सुख की कोई संभावना का भाव भी न हो, तब तो एक व्यक्ति एक क्षण संसार में नहीं रह सकता। एक क्षण भी रहना मुश्किल है। एक क्षण में ही मुक्त हो जाए। लेकिन आशा उसे आगे गतिमान रखती है।
और वह जो मैंने कहा कि मुक्त व्यक्ति को जो मिलता है, उसे सुख नहीं कहना चाहिए--शब्द तो हम कोई भी उपयोग कर सकते हैं--उसे सुख नहीं कहना चाहिए, क्योंकि उसे जो मिलता है, वह सुख और दुख दोनों से भिन्न है। इसलिए उसे आनंद कहना चाहिए। उसे नया शब्द देना चाहिए। अब यह बड़े मजे की बात है कि आनंद से विपरीत शब्द तुमने न सुना होगा। सुख-दुख एक-दूसरे के विपरीत हैं, लेकिन आनंद के विपरीत कौन सा शब्द है?
आनंद के विपरीत कोई शब्द नहीं है। आनंद के विपरीत कोई अवस्था ही नहीं है। और आनंद सुख नहीं है, अगर उसे सुख बनाया तो वह बात और होगी। वह फिर दुख की दुनिया शुरू हो गई।
तो साधारणतः हम कहते हैं, वह व्यक्ति आनंद को उपलब्ध होता है, जो दुख
से मुक्त हो जाता है। लेकिन इस कहने में थोड़ी भ्रांति है। कहना ऐसा चाहिए, आनंद को वह व्यक्ति उपलब्ध होता है, जो सुख-दुख से मुक्त हो जाता है। क्योंकि वे जो सुख-दुख हैं, वे कोई दो चीजें नहीं हैं। और इसलिए साधारणजन को निरंतर यह गलती हो जाती है समझने में कि वह आनंद को सुख ही समझ लेता है। वह समझता है, दुख से मुक्त हो जाना सुख है। इसलिए बहुत से लोग सत्य की खोज में या मोक्ष की खोज में भी वस्तुतः सुख की ही खोज में होते हैं।
इसलिए महावीर ने एक बहुत बढ़िया काम किया। सुख के खोजी को उन्होंने कहा, वह स्वर्ग का खोजी है। आनंद के खोजी को उन्होंने कहा, वह मोक्ष का खोजी है। मोक्ष और स्वर्ग में जो फर्क है, वह खोज का है। दुख का खोजी नरक का

खोजी है, सुख का खोजी स्वर्ग का खोजी है, लेकिन दोनों से जो मुक्ति का खोजी है, वह मोक्ष का खोजी है। स्वर्ग मोक्ष नहीं है।
महावीर के पहले बहुत व्यापक धारणा यही थी कि स्वर्ग परम उपलब्धि है! उसके आगे क्या उपलब्धि! सब सुख जहां मिल गया, वह परम उपलब्धि है। लेकिन इस बड़े मनोवैज्ञानिक सत्य को समझना चाहिए कि जहां सुख होगा, वहां दुख अनिवार्य है। जैसे जहां उष्णता होगी, वहां शीत अनिवार्य है। जैसे जहां प्रकाश होगा, वहां अंधकार अनिवार्य है। असल में ये एक ही सत्य के दो पहलू हैं और एक साथ ही जीते हैं। और इनमें से एक को बचाना और दूसरे को फेंक देना असंभव है। ज्यादा से ज्यादा इतना ही किया जा सकता है कि हम एक को ऊपर कर लें और दूसरा नीचे हो जाए। जब हम सुख के भ्रम में होते हैं, तब दुख नीचे छिपा होता है और प्रतीक्षा करता है कि कब प्रकट हो जाऊं। और जब हम दुख में होते हैं, तब सुख नीचे छिपा होता है और प्रतिपल आशा दिए जाता है कि अभी प्रकट होता हूं, अभी प्रकट होता हूं। लेकिन दोनों चीजें एक ही हैं।
और यह अगर समझ में आ जाए तो सुख का भ्रम टूटता है। सुख का भ्रम टूटे तो दुख का साक्षात होता है। सुख का भ्रम बना रहे तो दुख का साक्षात नहीं होता। क्योंकि उस भ्रम के कारण हम दुख को सहनीय बना लेते हैं। हम उसे सह जाते हैं, झेल जाते हैं।
सुख का भ्रम दुख का पूर्ण साक्षात नहीं होने देता। जैसा दुख है, उसे पूरा प्रकट नहीं होने देता। उसकी पूरी पैनी धार हमें छेद नहीं पाती। सुख दुख की धार को बोथला कर देता है। असल में हम दुख की तरफ देखते ही नहीं, हम सुख की तरफ ही देखे चले जाते हैं! दुख इधर पैरों के नीचे से निकलता है, लेकिन हम कभी आंख गड़ा कर दुख को नहीं देखते! हम सदा एस्केप कर जाते हैं। दुख से सुख की आशा में हम सदा भागे चले जाते हैं। जो व्यक्ति सुख के भ्रम से मुक्त होगा, जिसे यह दिखाई पड़ेगा कि सुख जैसा कुछ भी तो नहीं है... ।
लौट कर पीछे देखो तो ख्याल में आ सके। हम सदा देखते हैं आगे, इसलिए ख्याल में नहीं आता है। लौट कर पीछे देखो, कब था जब सुख पाया? ऐसा कौन सा क्षण था जब सुख पाया? पीछे लौट कर देखो, क्योंकि वहां घटनाएं घट चुकी हैं। ऐसा कौन सा क्षण था जब सुख पाया?
तो बड़ी हैरानी होगी पीछे लौट कर देखने पर। एकदम मरुस्थल मालूम पड़ता है, जहां सुख का कोई फूल कभी नहीं खिला। हालांकि बहुत बार, जब यह जो अब अतीत हो गया, पास्ट हो गया, जब अतीत नहीं था, भविष्य था, तो इसमें भी हमने सोचा था कि सुख मिलेगा, मिलेगा, मिलेगा। फिर वह अतीत हो गया और हमारी आशा और भविष्य में चली गई। कल जो भविष्य था, आज अतीत हो गया है। आज जो भविष्य है, कल अतीत हो जाएगा। और अतीत को लौट कर देखो कि सुख कभी मिला? हालांकि ठीक इतनी ही आशा तब भी थी। मिलने की, पाने की, उपलब्धि की इतनी ही धारणा तब भी थी। वह नहीं मिला लेकिन। और उतनी ही धारणा अब भी है। और आगे भी हम वही कर रहे हैं, जो हमने पीछे किया था। आज को झेल रहे हैं कल की आशा में। इसलिए आज को देख नहीं पाते।
इस सूत्र को समझ लेना चाहिएः जो सुख के भ्रम में है, वह दुख का साक्षात्कार नहीं कर सकता है।
सुख का भ्रम, साक्षात्कार दुख का होने ही नहीं देता। बल्कि असलियत तो यही है कि हम सुख का भ्रम ही इसलिए पैदा करते हैं, ताकि दुख का साक्षात्कार न हो सके।
एक आदमी भूखा पड़ा है। भूख का साक्षात्कार नहीं कर पाता, क्योंकि वह उस वक्त कल भोजन जो बनेगा, मिलेगा, मिल सकता है, उसके सपने देख रहा है। एक आदमी बीमार पड़ा है। वह बीमारी का साक्षात्कार नहीं कर पाता, क्योंकि वह उन सपनों में खोया है, कल जब वह स्वस्थ हो जाएगा।
हम पूरे समय चूक गए हैं उस जगह से, जहां हम हैं। और जहां हम हैं, वहां निरंतर दुख है। शायद उस दुख को झेलना इतना कठिन है कि हमें चूकना पड़ता है, भागना पड़ता है; एस्केप कर जाते हैं, पलायन कर जाते हैं।
सुख का भ्रम टूट जाए तो भागोगे कहां, यह कभी सोचा? अगर सुख का भ्रम टूट जाए तो हम भागेंगे कहां? हम जाएंगे कहां? हमें दुख में जीना पड़ेगा, दुख भोगना पड़ेगा, दुख जानना पड़ेगा। दुख के साथ आंखें गड़ानी पड़ेंगी, क्योंकि कोई उपाय नहीं कहीं और जाने का। हम हैं और दुख है।

जो व्यक्ति दुख का साक्षात्कार करे, वह उस तीव्रता पर पहुंच जाता है, जहां से वापसी शुरू होती है, जहां से वह लौटता है। जो मैंने सुबह कहा, दुख की पूरी पीड़ा, पूरी सफरिंग, जब सब तरफ से कांटे दुख के उसे छेद लेते हैं, और भविष्य में कोई आशा नहीं रह जाती, और आगे कुछ भी उपाय नहीं रह जाता, तब वह जाएगा कहां? जब आगे बाहर भविष्य में कोई आशा नहीं, तब वह अपने में लौटता है। जिस दिन दुख का पूरा साक्षात्कार होता है, उसी दिन वापसी शुरू हो जाती है, उसी दिन व्यक्ति लौटने लगता है।
इसे समझ लेना। दुख से भागोगे तो सुख में पहुंच जाओगे। दुख में जागोगे
तो आनंद में पहुंच जाओगे। दुख से भागे कि सुख। वह भागने की तरकीब है। दुख से नहीं भागे, दुख में खड़े ही हो गए, दुख को पूरा देखा ही, दुख का साक्षात किया--और रूपांतरण शुरू हुआ। क्योंकि जैसे ही दुख का पूरा साक्षात्कार होगा, हम वही फिर कैसे कर सकेंगे, जो दुख लाता है? हम फिर उन्हीं ढंगों से कैसे जी सकेंगे, जिससे दुख आता है? हम फिर उन्हीं वासनाओं, उन्हीं तृष्णाओं में कैसे घिरेंगे, जिनका फल दुख है? हम फिर वे ही बीज कैसे बोएंगे, जिनके फलों में दुख आता है?
लेकिन यह दुख के पूरे साक्षात्कार से--एनकाउंटर विद सारो। वह है वहां पीड़ा, सफरिंग है, लेकिन उसको हमने कभी आंख मिला कर देखा नहीं। दुख का साक्षात अनिवार्यरूपेण आनंद की यात्रा बन जाता है। तुम्हें जाना नहीं पड़ता, बस तुम जाना शुरू हो जाते हो। क्योंकि तुम पहचानते हो कि यह-यह मैंने किया।
बुद्ध कहते हैं, यह किया, उससे यह हुआ, तो यह मत करो, उससे यह नहीं होगा--ऐसा नियम है।
हमने यह किया--मैंने गाली दी, गाली लौटी। मैंने गाली दी, मैंने दुख दिया, दुख आया। अब अगर इस दुख का पूरा-पूरा बोध मुझे हो जाए, इसका छुरा मेरी छाती में पूरा घुस जाए और मैं कोई सपने देख कर इसे भुला न दूं, तो क्या होगा? तो यही होगा न कि कल मैं गाली नहीं दूंगा! कल मैं किसी को दुख नहीं पहुंचाऊंगा! क्योंकि पहुंचाया गया दुख वापस लौट आता है। और तब दुख की संभावना क्षीण होती चली जाएगी। उदाहरण के लिए मैंने कहा।
इसी तरह जीवन के प्रत्येक विकल्प पर कैसे-कैसे दुख पैदा होता है, वह मुझे दिखाई पड़ना शुरू हो जाएगा। जो चीज दिखाई पड़नी शुरू हो जाएगी... ।
कोई आदमी दुख में कभी नहीं उतरता। सब आदमी सुख की नाव पर सवार होते हैं। दुख की नाव पर कोई सवार नहीं होता। कौन दुख की नाव पर सवार होने को राजी होगा? अगर पक्का पता है कि यह नाव दुख की है और दुख के घाट पर उतार देगी, तो कौन सवार होगा? हम नाव में सवार होते हैं दुख की, लेकिन घाट सदा सुख का होता है, इसलिए सवार हो जाते हैं। इसलिए आशा यह रहती है कि कोई फिक्र नहीं, अभी थोड़ा, राह में नाव अगर थोड़ा कष्ट भी देती है, डूबने का डर भी देती है, तो भी कोई फिक्र नहीं, घाट उस पार सुख है।
लेकिन दुख की नाव सुख के घाट पर कैसे पहुंच सकती है? असल में दुख देने वाला साधन सुख का साध्य कैसे बन सकता है? असल में प्रथम कदम पर जो हो रहा है, वही अंतिम पर भी होगा। बहुत गहरे में दि फर्स्ट इज़ दि लास्ट। क्योंकि वहीं से शुरुआत हो गई।
अगर मैंने एक ऐसा कदम उठाया जो अभी दुख दे रहा है, तो यह कैसे संभव है
कि यही कदम कल और आगे बढ़ कर सुख दे देगा?
इतना ही संभव है कि कल और आगे बढ़ कर यह और ज्यादा दुख दे देगा। क्योंकि
आज तो छोटा है, कल और बड़ा हो जाएगा। मैं दस कदम और उठा लूंगा, परसों और दस कदम उठा लूंगा, और यह रोज बढ़ता चला जाएगा। यह दुख का छोटा सा बीज रोज वृक्ष होता चला जाएगा। इसमें और शाखाएं निकलेंगी, इसमें और फल लगेंगे, इसमें और फूल लगेंगे। और न केवल फूल, बल्कि एक बीज बहुत जल्दी वृक्ष से हजार, करोड़ बीज हो जाएगा। वे बीज गिरेंगे और वृक्ष उठेंगे। और यह फैलता चला जाएगा। और यह अंतहीन फैलाव है। यानी एक बीज कितने वृक्ष पैदा कर सकता है, कोई हिसाब लगाया है किसी ने भी कभी? शायद पृथ्वी पर जितने वृक्ष हैं, एक ही बीज पैदा कर सकता है। पृथ्वी पर थोड़े ही वृक्ष हैं, शायद सारे ब्रह्मांड में जितने वृक्ष हैं, एक ही बीज पैदा कर सकता है। एक बीज की कितनी फैलने की अनंत संभावना है, इसे अगर सोचने जाओगे तो एकदम घबड़ा ही जाओगे। अनंत

संभावना है इसलिए कि एक बीज करोड़ बीज हो सकता है। फिर प्रत्येक बीज करोड़ बीज होता चला जाता है, होता ही चला जाता है। इसका कोई फैलाव का रुकाव नहीं है।
तो हम जो पहला कदम उठाते हैं, वह बीज बन जाता है और अंतिम फल उसकी सहज परिणति है। लेकिन हम उठा लेते हैं इस आशा में, कि बीज तो जहर का बो देते हैं, इस आशा में कि फल अमृत के होंगे।
वे कभी अमृत के नहीं होते हैं। बार-बार हमने अनुभव किया है। निरंतर-निरंतर, प्रतिपल हमने यह जाना है कि बीज बोए थे, वही फल आ गए।
लेकिन हम अपने को धोखा देने में कुशल हैं। और जब फल आते हैं तो हम कहते हैं, जरूर कहीं कोई भूल हो गई। जरूर कहीं कोई भूल हो गई, जरूर कहीं कोई गलती हो गई, जरूर परिस्थितियां अनुकूल न थीं। हवाएं ठीक न बहीं, सूरज वक्त पर न निकला, वर्षा ठीक समय पर न हुई, ठीक वक्त खाद न डाला गया, इसलिए फल कड़वे आ गए। सब चीज पर दोष देते हैं, एक चीज को छोड़ जाते हैं, कि बीज जहरीला था!
और मजे की बात यह है कि अगर वर्षा समय पर न हुई हो, अनुकूल परिस्थिति न मिली हो, माली ने ठीक वक्त खाद न दिया हो, सूरज न निकला हो, इस कारण सिर्फ इतना ही हो सकता है कि फल जितना बड़ा हो सकता था, उतना बड़ा न हुआ हो। यानी इस कारण इतना ही हो सकता है कि जितना जहरीला फल मिला, वह छोटा ही रहा हो। और बड़ा जहरीला फल मिल सकता था, अगर सब अनुकूल होता।
इसे थोड़ा समझना चाहिए। जितना दुख हमें मिलता है, आमतौर से हम कह देते हैं कि यह परिस्थितियों के ऊपर निर्भर है। यह परिस्थितियां हमें दुख दे रही हैं। मैं तो ठीक हूं। मित्र गलत है, पत्नी गलत है, पिता गलत है, पति गलत है--संसार ही गलत है, परिस्थितियां गलत हैं--मैं तो ठीक हूं। ऐसे हम बीज को बचा रहे हैं। मैंने जो किया, वह ठीक है। लेकिन अनुकूल न मिला साथ, हवाएं उलटी बह गईं, सूरज न निकला, सब गड़बड़ हो गया।
लेकिन ध्यान रहे, अगर प्रतिकूल परिस्थितियों में इतना कड़वा फल आया तो अनुकूल परिस्थितियों में कैसा कड़वा फल आता, इसका कोई हिसाब है? हमें ख्याल में नहीं है। हम जो इच्छाएं करते हैं, अगर वे पूरी की पूरी पूरी हो जाएं तो हम इतने बड़े दुख में गिरें, जितने दुख में हम कभी भी नहीं गिरे। इसे थोड़ा समझना चाहिए।
आमतौर से हम सोचते हैं कि हम इसलिए दुखी हैं कि हमारी इच्छाएं पूरी नहीं होतीं। हमारा तर्क यह है, हमारे दुख का कारण यह है कि हम जो इच्छा करते हैं, वह पूरी नहीं होती। जब कि सचाई यह है कि हमारे दुख का कारण यह है कि हम जो इच्छा करते हैं, वह दुख का बीज है। और वह बिना पूरे हुए इतना दुख दे जाती है, अगर पूरी हो जाए तो कितना दुख दे जाएगी, बहुत मुश्किल है कहना। सोचें, कोई भी एक इच्छा को सोचें, अगर वह बिल्कुल पूरी हो जाए।
एक प्रेमी है, वह एक प्रेयसी को चाहता है। जितनी देर नहीं मिलती है प्रेयसी उतनी देर आशा का सुख वह भोगता है, प्रतीक्षा का सुख भोगता है। अभी इच्छा पूरी नहीं हुई। हालांकि उस वक्त वह बहुत दुखी रहता है। उस वक्त उससे पूछो तो वह कहेगा, मैं इतना दुखी हूं, जिसका कोई हिसाब नहीं। क्योंकि जिसे पाना है, वह नहीं मिल रहा है। हजार बाधाएं आ रही हैं।
एक प्रेमी को जब वह अपनी प्रेयसी को पाने की खोज में लगा है, या एक प्रेयसी अपने प्रेमी को पाने की खोज में लगी है, जब तक वह नहीं मिल गया है, जो जानते हैं वे कहेंगे, जितना सुख उस वक्त भोग लिया, वही काफी है। हालांकि वह कोई भी नहीं कहेगा कि मैंने सुख भोगा उस वक्त। इतनी पीड़ा झेली, जिसका कोई हिसाब नहीं है।
लेकिन प्रेयसी मिल जाए, एक इच्छा पूरी हुई मिलने की। और मिलते ही जो आशाएं थीं, वे सब तत्काल क्षीण हो जाएंगी। क्योंकि पाने का जो, आक्रमण का, विजय का, जीतने का, सफल होने का जो भी सुख था, वह सब गया। सफल हो गए। पा लिया। वह जो इतने दिन तक आशा थी कि पाने पर यह होगा, यह होगा, यह होगा; वह आशा भी गई। क्योंकि वह सब आशा पाने से संबंधित न थी, वह सब आशा हमारे ही सपने और काव्य थे, हमारी ही कल्पनाएं थीं, जो हमने आरोपित की थीं। और एक प्रेयसी दूर से जैसी लगती है, वैसी पास से नहीं।
दूर के ढोल ही सुहावने नहीं होते, दूर की सभी चीजें सुहावनी होती हैं। असल में दूरी एक सुहावनापन पैदा करती है। फासला जो है, वह बहुत चार्मिंग

है। जितनी दूरी, उतना सुखद। क्योंकि दूर से हम चीजों को पूरा-पूरा नहीं देख पाते हैं। असल में दूर से हम ठीक से देख ही नहीं पाते हैं। थोड़ा सा देख पाते हैं, बहुत नहीं देख पाते हैं। जो नहीं देख पाते हैं, वह हम अपना सपना ही उसकी जगह रख देते हैं।
दूर से एक व्यक्ति को हम देखते हैं, दिखती है रूप-रेखा, लेकिन बहुत कुछ
हम अपने सपने से उसमें जोड़ देते हैं। जो हमने ही जोड़ा है, जिसमें दूसरे व्यक्ति का कोई कसूर नहीं है। जो हमने ही जोड़ा है। लेकिन निकट आने पर जो हमने जोड़ा था, वह पिघल कर बहने लगेगा। निकट आने पर जो हमने सपना जोड़ दिया था, काव्य जोड़ दिया था, वह मिटने लगेगा। जैसा व्यक्ति था, वैसा प्रकट होगा। ऐसा हमने कभी भी नहीं सोचा था।
असल में हम सोच भी कैसे सकते हैं कि दूसरा व्यक्ति कैसा होगा? हम सिर्फ कामना कर सकते हैं कि ऐसा हो। लेकिन हमारी कामनाओं के अनुकूल न किसी व्यक्ति का जन्म हुआ है। उस व्यक्ति का जन्म उसकी अपनी कामनाओं के अनुकूल हुआ है। कोई किसी दूसरे व्यक्ति की इच्छाओं के अनुकूल पैदा नहीं हुआ है इस जगत में। प्रत्येक व्यक्ति अपनी इच्छाओं के अनुकूल पैदा हुआ है। लेकिन हमने अपनी इच्छाएं आरोपित की थीं, वे मिलते ही खंडित हो जाएंगी। और वह व्यक्ति प्रकट होगा, जैसा हमने उसे कभी भी नहीं जाना था। और जितने हमने सपने जोड़े थे, वास्तविकता उन सबको तोड़ देती है, एक-एक चीज को तोड़ देती है। फिर हमने चाहा था कि व्यक्ति पूरा मिल जाए। यानी मैं कहूं रात, तो वह कहे रात। मैं कहूं दिन, तो वह कहे दिन। यह इच्छा पूरी नहीं होती। क्योंकि ऐसा व्यक्ति ही खोजना कठिन है कि आप जो कहें, वैसा ही हो जाए। और मजे की बात यह है कि उसने भी यही कामनाएं की थीं! उसने भी यही कामनाएं की थीं कि मैं कहूं रात तो रात, और मैं कहूं दिन तो दिन। दोनों के प्रेम की कसौटी यही थी। उसकी भी कसौटी यही है। और तब बड़ी मुश्किल हो गई बात। क्योंकि आप भी उससे कहलवाना चाहते हैं, वह भी आपसे कहलवाना चाहता है। और सोचा था शांति, और होगा संघर्ष। सोचा था सुख, और होगा विषाद।
लेकिन मजे की बात यह है कि हम यह कहेंगे, यह तो इसलिए हो रहा है--यही मैं समझाना चाह रहा हूं--हम कहेंगे, यह तो इसलिए हो रहा है कि मैंने जो चाहा था, वह नहीं हो सका। मैंने चाहा था कि मैं कहूं रात, तो वह भी कहे रात। यह नहीं हो सका, इसलिए मैं दुखी हूं। इच्छा के कारण दुखी नहीं हूं, गलत व्यक्ति मिल गया। गलत व्यक्ति मिल गया, इच्छा पूरी नहीं होती, इसलिए दुखी हूं। इच्छा का तर्क यही है। उसका तर्क यही है कि मैं पूरी नहीं हो रही इसलिए तुम दुखी हो। काश, मैं पूरी हो जाऊं तो सुख हो जाए! काश दूसरा व्यक्ति मिल जाता इसकी जगह!
लेकिन समझो एक क्षण को कि इच्छा पूरी हो गई, कि तुमने कहा रात, तो उस दूसरे व्यक्ति ने कहा रात, हालांकि दिन था। तुमने उसके पैर में जंजीरें बांधीं, तो भी तुमने कहा आभूषण, तो उसने कहा आभूषण! तुमने उस व्यक्ति को पाया कि वह तुम्हारे बिल्कुल ही--तुम जैसे हो, वैसा ही है--तुम्हारी छाया। और मजे की बात यह है कि ऐसे व्यक्ति को पाकर जितना दुख होगा, उसका हम अनुमान नहीं लगा सकते। क्योंकि वह व्यक्ति ही नहीं होगा, वह एक मशीन होगा। वह एक यंत्र होगा। उसमें कोई व्यक्तित्व नहीं होगा। उसमें कोई आत्मा नहीं होगी। और जिस व्यक्ति में कोई आत्मा नहीं, जिसमें कोई व्यक्तित्व नहीं, उसे तुम प्रेम कर पाओगे? उसे तुम एक क्षण प्रेम नहीं कर सकते हो।
यदि इच्छा पूरी हो जाए तो जितना दुख होगा, उतना इच्छा के न पूरे होने
से कभी भी नहीं हुआ है। कोई भी छाया नहीं खरीदना चाहता, हम व्यक्ति चाहते हैं। मगर हमारी इच्छा बड़ी अनूठी है। हम ऐसा व्यक्ति चाहते हैं जो हमारी माने। ये दोनों बातों में कोई मेल ही नहीं है। अगर वह व्यक्ति होगा तो अपने ढंग से जीएगा। और अगर हमारी मानेगा तो व्यक्ति नहीं होगा। उसमें कोई आत्मा नहीं होगी, वह मरी हुई चीज होगी। वह फर्नीचर की तरह होगा, जिसे कहीं भी उठा कर रख दिया, वह वहीं रखा रह गया है। यह मैंने उदाहरण के लिए कहा। हमारी कोई भी इच्छा यदि पूरी हो जाए--समझ लें, इसको छोड़ दें, एक दूसरा उदाहरण ले लें--एक आदमी गरीब है और वह कहता है कि मैं इसलिए दुखी हूं कि जितना धन मैं चाहता हूं, वह मुझे नहीं मिलता। अगर मुझे उतना धन मिल जाए तो मैं दुखी न रहूं।

ठीक है, उसे उतना धन दे दिया जाए। पहली तो बात यह कि उतना धन मिलने पर उसकी इच्छा आगे चली जाएगी। वह कहेगी, इतने से क्या होता है? यह तो कुछ भी नहीं है। और चाहिए, और चाहिए। समझ लें कि उसकी इच्छा है कि सारे जगत का धन उसे मिल जाए। यह पूरी नहीं होती, इसलिए बड़ा दुख है। समझ लें कि एक आदमी की यह इच्छा पूरी हो जाए कि उसे सारी पृथ्वी का धन मिल जाए, क्या आपको पता है कि वह कितना दुख झेलेगा?
आपको कल्पना में नहीं है। क्योंकि धनी होने का मजा इसमें था--धनी होने
का मजा ही इसमें था कि दूसरे धनियों को पीछे छोड़ा। धनी होने का मजा ही इसमें था कि प्रतियोगिता थी, प्रतिस्पर्धा थी, कांप्टीशन था, उसमें हम जीते। अगर एक व्यक्ति को सारे पृथ्वी का धन मिल जाए उसकी इच्छा के अनुकूल, वह व्यक्ति एकदम उदास हो जाएगा। क्योंकि न अब कोई प्रतिस्पर्धा है, न कोई प्रतिस्पर्धा का उपाय है। अगर सारी पृथ्वी का धन एक व्यक्ति को मिल जाए तो वह आत्महत्या कर लेगा। क्योंकि वह कहेगा, अब क्या? अब क्या करें? और वह इतना उदास हो जाएगा... ।
सिकंदर के संबंध में कथा है कि सिकंदर से डायोजनीज ने कहा कि यदि तूने सारी पृथ्वी जीत ली तो सोचा है कि फिर क्या होगा? सिकंदर ने कहा, अभी तो जीतना ही मुश्किल है। लेकिन डायोजनीज ने कहा, समझ ले जीत ही ली, फिर क्या होगा? क्योंकि दूसरी पृथ्वी नहीं है जीतने को।
और कहानी है कि सिकंदर एकदम उदास हो गया यह बात सुन कर कि दूसरी पृथ्वी नहीं है। सिकंदर एकदम उदास हो गया। उसने कहा कि यह मैंने कभी ख्याल नहीं किया। लेकिन सच ही अगर पूरी पृथ्वी जीत ली, तो फिर? दूसरी पृथ्वी तो नहीं है, फिर क्या करूंगा?
वह डायोजनीज से पूछने लगा कि फिर क्या करूंगा? यह तो तुम ठीक कहते हो, लेकिन ऐसी चिंताएं मत उठाओ, क्योंकि इस पृथ्वी को जीतना बहुत मुश्किल है। ऐसी चिंताएं ही मत उठाओ।
लेकिन डायोजनीज ने कहा कि यह चिंता उठाने जैसी है। क्योंकि कामना तेरी यह है कि सारी पृथ्वी को जीत कर मैं सुखी हो जाऊंगा। मैं यह कहता हूं कि मान ले तूने सारी पृथ्वी जीत ली, अब तू सुखी होगा कि दुखी हो जाएगा? और डायोजनीज खूब हंसने लगा।
उसने कहा कि जब होगा होगा, लेकिन तू अभी दुखी हो गया, यह बात सोच कर ही
कि सारी पृथ्वी जीत ली तो फिर? यह सवाल है कि फिर क्या?
हमारी इच्छाएं पूरी नहीं होतीं तो हम दुख पाते हैं। और हमारी इच्छाएं पूरी हो जाएं तो हम परम सुख पाएंगे। लेकिन हम यही समझते हैं कि हम दुख पाते हैं कि हमारी इच्छाएं पूरी नहीं होतीं!
टाल्सटाय ने एक कहानी लिखी है। एक बाप की तीन बेटियां हैं, तीनों की अलग-अलग जगह शादी हो गई है। एक लड़की किसान के घर है, एक लड़की एक कुम्हार के घर है, एक लड़की एक जुलाहे के घर है, जो कपड़े बुनता और रंगता है। वर्षा आने के दिन हैं, लेकिन वर्षा नहीं आई।
कुम्हार बड़ा खुश है, उसकी पत्नी भगवान को धन्यवाद दे रही है कि भगवान तेरा धन्यवाद! क्योंकि हमारे सब घड़े बनाए हुए रखे थे, अगर वर्षा आ गई तो हम मर जाएंगे। एक आठ दिन पानी रुक जाए, तो हमारे सब घड़े पक जाएं और बाजार चले जाएं।
लेकिन किसान की पत्नी बड़ी परेशान है। क्योंकि खेत तैयार है और पानी नहीं गिर रहा। और अगर आठ दिन की देर हो गई तो फिर फसल बोने में देरी हो जाएगी। और फिर बड़ा मुश्किल हो जाएगा। वैसे ही बहुत देर हो गई है और सब मुश्किल है। वह भगवान से रोज कह रही है कि हे भगवान, तू यह कर क्या रहा है? हमारे बच्चे भूखे मर जाएंगे। तू पानी जल्दी गिरा!
वह तीसरी लड़की है, वह जुलाहे के घर है। उसके कपड़े तैयार हो गए हैं, उसने रंग कर लिया है। और वह भगवान से कहती है, अब तेरी मर्जी। चाहे आज गिरा, चाहे कल गिरा, अब हमें कोई फर्क नहीं पड़ता है! यानी अब कोई बात नहीं है। क्योंकि उसका काम पूरा हो गया है, उसकी तैयारी पूरी हो गई है। उसने काम अपने घर में समेट लिया है। और वह हाथ जोड़ कर भगवान से कहती है, अब तेरी मर्जी! अब आज गिरा या कल, हमारा काम पूरा हो गया। हर हालत में हम खुश हैं। अब पानी आज गिरे कि कल, कोई फर्क नहीं पड़ता है!

कहानी में भगवान अपने देवताओं से पूछता है कि बोलो, मैं क्या करूं? मैं किसकी इच्छा पूरी कर दूं? और भगवान कहता है, ये तो सिर्फ तीन लोग हैं, अगर सारी पृथ्वी के लोगों की इच्छाएं पूछी जाएं और सब पूरी कर दी जाएं, तो इसी वक्त पृथ्वी समाप्त हो जाए--इसी वक्त!
हमारी इच्छाएं और हमारी इच्छाओं की दौड़ और हम उनसे क्या पाना चाह रहे हैं, हमें कुछ भी पता नहीं है। लेकिन भ्रांति चलती चली जाती है, क्योंकि हमारा ख्याल यह होता है कि दुख मिल रहा है इसलिए कि इच्छा पूरी नहीं हुई; सुख मिलता, अगर इच्छा पूरी हो जाती।
लेकिन जो गहरे इस विचार में उतरेगा, उसे पता चल जाएगा, कोई इच्छा की पूर्ति सुख नहीं ला सकती और बड़ा दुख लाती है। अपूर्ति इतना दुख ला रही है तो पूर्ति कितना लाती! गणित ऐसा समझना चाहिए। नहीं पूरा हुआ तो इतना दुख मिल रहा है, पूरा हो जाता तो कितना दुख मिलता! क्योंकि जब बीज को कम सुविधा मिली, तब वह इतना जहरीला फल ले आया, पूरी सुविधा मिलती तो कितना जहर लाता! कितना जहर लाता!
प्रत्येक इच्छा दुख में ले जाती है, लेकिन सुख में ले जाने का आश्वासन देती है! प्रत्येक नाव दुख की है, लेकिन सुख के घाट पर उतार देने का वचन है! और हजार बार हम नाव में बैठते हैं रोज, और हजार बार दुख की नाव दुख के घाट पर उतार देती है लेकिन हम कहते हैं, कहीं कोई भूल हो गई! अन्यथा ऐसा कैसे हो सकता था कि जो नाव सुख के घाट की तरफ चली थी, वह दुख के घाट पर कैसे पहुंच जाती? लेकिन हम यह कभी नहीं पूछते कि कहीं नाव ही तो दुख की नहीं है? सवाल घाट का है ही नहीं। सवाल घाट का है ही नहीं, सवाल यह है नहीं कि आप कहां पहुंचेंगे। सवाल यह है कि आप कहां से चलते हैं? आप किस पर सवार हैं? यह सवाल है ही नहीं कि फल कैसा होगा। सवाल यह है कि बीज कैसा बोया है? जीसस कहते हैं, जो बोओगे, वही तुम काटोगे। लेकिन काटते वक्त पछताना मत, पछताना हो तो बोते वक्त। काटते वक्त पछताने का क्या सवाल है? फिर तो काटना ही पड़ेगा।
लेकिन हम सब काटना कुछ और चाहते हैं, बोते कुछ और हैं! और यह जो, यह जो द्वंद्व है चित्त का कि बोते कुछ और हैं, काटना कुछ और चाहते हैं, यह हमें भटकाता रह सकता है अनंत काल तक, अनंत जन्मों तक।
इस भ्रम को तोड़ देने की जरूरत है। इससे जाग जाने की जरूरत है। और एक सूत्र समझ लेने की जरूरत है कि जो हम बोते हैं, वही हम काटते हैं। हो सकता है बीज पहचान में न आता हो। क्योंकि बीज जाहिर नहीं है, अप्रकट है, अनमैनिफेस्ट, अभी अभिव्यक्त नहीं हुआ है। यहां एक बीज रखा है; हो सकता है, हम न पहचान सकें कि इसका वृक्ष कैसा होगा! क्योंकि बीज में वृक्ष है, लेकिन दिखाई नहीं पड़ता।
तो जीसस कहते हैं, जो तुम बोते हो, वही तुम काटते हो। मैं इससे उलटी बात भी जोड़ देना चाहता हूं कि जो तुम काटो, समझ लेना कि वही तुमने बोया था। क्योंकि हो सकता है, बोते वक्त तुम न पहचान सके होओ। बोते वक्त पहचानना जरा कठिन भी है, क्योंकि बीज में कुछ दिखाई नहीं पड़ता साफ-साफ कि बीज क्या हो जाएगा? जहर होगा कि अमृत होगा? तो हो सकता है, बोते वक्त भूल हो गई हो, लेकिन काटते वक्त तो भूल हो ही नहीं सकती। हो सकता है नाव में बैठते वक्त ठीक से न समझ पाए हों कि नाव क्या है, लेकिन घाट पर उतरते वक्त तो समझ ही पाएंगे कि घाट कैसा है! नाव ने कहां पहुंचा दिया, यह तो समझ में आ जाएगा! तो काटते वक्त देख लेना कि अगर दुख कटा हो, तो जान लेना कि दुख बोया था। और तब जरा समझने की कोशिश करना कि आगे दुख के बीज को तुम पहचान सको कि वे कौन-कौन से बीज हैं, जो दुख ले आते हैं। कितनी बार ईर्ष्या दुख लाती है, कितनी बार घृणा दुख लाती है, कितनी बार क्रोध दुख लाता है, लेकिन हम हैं कि बीज फिर उन्हीं का बोए चले जाते हैं! और बार-बार हम पछताते हैं कि यह दुख क्यों? दुख हमें झेलना नहीं है और बीज हमें दुख के ही बोने हैं! और इस द्वंद्व में कितना समय हम व्यतीत करते हैं! और कितने जन्म और कितने जीवन! लेकिन द्वंद्व हमें दिखाई नहीं पड़ता! क्योंकि हमारी खूबी यह है, हमारा मजा यह है, हमारा डिल्यूजन, वह जो सेल्फ डिसेप्शन है, आत्म-वंचना है, वह यह है कि हम सिर्फ जो कटता है, उस वक्त नाराज होते हैं कि यह गलत चीज कटी। लेकिन हमने जो बोया था, हम उसका ख्याल ही नहीं करते!

अगर गलत कटा है, तो गलत बोया था। और इसके दोनों के तारतम्य को समझ लेना जरूरी है, ताकि कल हम गलत न बोएं। जिस घाट पर हम उतरे हैं, वह खबर है हमारी नाव की कि हम किस नाव पर बैठ गए थे। लेकिन हम कल फिर उसी नाव पर बैठते हैं और दूसरे घाट पर फिर उतरने की कल्पना करते हैं!
और आश्चर्यजनक है यह कि आदमी रोज-रोज वही-वही भूल करता है! नई भूलें भी आदमी नहीं करते! नई भूल भी कोई करे तो भी कहीं पहुंच जाए। भूल भी पुरानी ही करते हैं! लेकिन कुछ ऐसा है कि पीछे जो हमने किया, वह हम भूल जाते हैं, और फिर-फिर हम वही सोचने लगते हैं।
एक आदमी ने अमरीका में आठ विवाह किए। उसने पहला विवाह किया और बड़ी आशाओं से--जैसा कि सभी लोग करते हैं--बड़ी आशाओं से, लेकिन सब आशाएं छह महीने में मिट्टी में मिल गईं। तो उसने समझा कि औरत गलत मिल गई, जैसा कि सभी आदमी समझते हैं। उसने भी समझा कि स्त्री गलत मिल गई, इसलिए सब आशाएं धूमिल हो गईं। आशाएं गलत थीं, ऐसा नहीं, स्त्री गलत मिल गई! तो उसने तलाक दे दिया।
दूसरी स्त्री फिर साल भर लगा कर उसने बामुश्किल खोजी। अब वह बड़ा खुश था, क्योंकि अब पहले अनुभव के बाद उसने खोज-बीन की थी। शादी की फिर उतनी ही आशाओं के साथ, लेकिन पाया कि छह महीने में सब गड़बड़ हो गया। तब उसने समझा कि फिर स्त्री गलत मिल गई। इस तरह उस आदमी ने आठ शादियां कीं जीवन में, और हर बार वही हुआ! आठवीं शादी के बाद वह एक मनोवैज्ञानिक के पास गया और उसने कहा कि मैं बड़ी मुश्किल में पड़ गया हूं। मैं आठ विवाह कर चुका और जिंदगी गंवा चुका। अब तो उपाय भी नहीं है नौवां करने का। लेकिन हुआ क्या? मुझे हर बार वैसी की वैसी औरत मिल गई और मैंने इतनी खोज-बीन की!
उस मनोवैज्ञानिक ने कहा, वह तो ठीक है, लेकिन तुम्हारे खोज-बीन के मापदंड क्या थे? तुम्हारे खोज-बीन के मापदंड क्या थे? अगर कसौटी वही थी तुम्हारी जिससे तुमने पहली औरत को कसा था, तो कसौटी फिर भी वही रही होगी जिससे तुमने दूसरी को कसा। और तुम हर बार उसी टाइप की स्त्री को खोज लाए, जिस टाइप की स्त्री को तुम खोज सकते थे। तुम जिस तरह के आदमी हो, उस तरह का आदमी जैसी स्त्री खोज सकता था, बार-बार खोज लाया।
हो सकता है, बहुत संभावना है कि बहुत पुराने दिनों में इसी अनुभव के आधार पर एक ही विवाह की व्यवस्था कर ली गई हो; क्योंकि एक आदमी एक ही तरह की स्त्रियां खोज सकता है साधारणतः। यानी इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। वह हर बार सिर्फ नाम बदल जाएगा, शक्ल बदल जाएगी, लेकिन स्त्री वह वैसी ही खोज लाएगा। उसकी जो खोज का दिमाग है, उस दिमाग से वह वैसी स्त्री फिर खोज लाएगा। तो इसकी बार-बार फिजूल की परेशानी में क्यों पड़ना? कुछ समझदार लोगों ने कहा हो कि एक ही विवाह काफी है एक जन्म के लिए। तुम एक ही दफे खोज लो और वही बहुत है।
और यह भी हो सकता है कि इसी अनुभव के आधार पर कि व्यक्ति जो भी खोजेगा,
वह चूंकि उसका पहला अनुभव होगा, इसलिए भूल उसमें निश्चित हो जानी है। इसलिए जिनके अनुभव हो चुके हैं--उसके मां-बाप खोजते। इस सबके पीछे... यानी जो कि इस अनुभव से गुजर चुके हैं और बेवकूफी भोग चुके हैं और नासमझी झेल चुके हैं, वे शायद ज्यादा ठीक से खोज सकें। और यह आदमी की पहली खोज होगी और यह गलत हो जाएगा, इसकी बहुत संभावना है। इसलिए हो सकता है कि वह मां-बाप पर छोड़ दिया गया हो।
इधर निरंतर के अनुभव के बाद अमरीका में कुछ मनोवैज्ञानिक यह कहने लगे हैं कि बाल-विवाह शुरू कर दो! क्योंकि इसमें कोई मतलब नहीं मालूम पड़ता। यह दुखद है यह बात। यह दुखद है, यह बात दुखद है कि बाल-विवाह हों, यह बात भी दुखद है कि मां-बाप बच्चे का विवाह तय करें, लेकिन जैसी स्थिति है, उसमें यही सुखद मालूम पड़ता रहा है। इससे भिन्न होना अभी कठिन है। और वह तब हो सकता है, जब हम दुख के बीजों को समझ लें। तो हम जो खोज करें, वह बहुत और तरह की हो। हम जिस नाव पर सवार हों, वह और तरह की हो--जीवन के सब मामलों में। तो सुख को, दुख को अलग मत समझना, सुख और दुख को एक समझना। हां, जरा देरी लगती है दोनों के फल पकने में। फासला है, फासले की वजह से दो समझ लिए जाते हैं--फासले की वजह से। दृष्टि छोटी है हमारी और फासला बड़ा है। हमको इस कमरे की दोनों दीवालें दिखाई पड़ती हैं, तो हम जानते हैं कि दोनों दीवालें इसी

कमरे की हैं। और हम ऐसी भूल न करेंगे कि इस दीवाल को बचा लें और उसको मिटा दें। क्योंकि ऐसी भूल हम करेंगे तो वह दीवाल भी गिरेगी, यह पूरा मकान गिरेगा। अगर दीवालें गिरानी हों, दोनों गिरा दो, न गिरानी हों तो दोनों को बचने दो। इसके सिवाय कोई रास्ता नहीं। क्योंकि हमें दोनों दीवालें दिखाई पड़ती हैं। लेकिन कमरा इतना बड़ा हो सकता है कि जब भी हमें दिखाई पड़ती हो, एक ही दीवाल दिखाई पड़ती हो। दूसरी दीवाल इतने फासले पर हो कि हम कभी जोड़ ही न पाते हों कि यह कमरा और यह दीवाल उसी दीवाल से जुड़े हैं, यह वही कमरा है। और जिंदगी बड़ी है, उसमें फासले बड़े हैं और आदमी की दृष्टि बड़ी छोटी है। ज्यादा दूर तक वह देख नहीं पाता। उसे खबर नहीं हो पाती कि कब मैंने क्या बोया था, कब मैं क्या काट रहा हूं! कब मैंने एक मकान बनाया था, उसकी यह दूसरी दीवाल है। और ये दोनों एक हैं।
इसको ठीक से पर्सपेक्टिव मिल जाए, दृष्टि मिल जाए दूर तक देखने की, तो
हम अपने सब दुखों को अपनी सुखों की आकांक्षा में छिपा हुआ पाएंगे। अपने सब दुखों को हम अपने सुखों के सपनों में छिपा हुआ पाएंगे। हमारे सब दुख हमारे सुख की आशाओं में ही पैदा किए गए हैं। हमारे सब दुख हमने ही सुख की संभावनाओं में बोए थे, काटते वक्त दुख निकले। संभावनाएं सुख की थीं और बीज हमने दुख के ही बोए थे।
इसे हम देखें, अपनी जिंदगी में खोजें। अपने दुख को देखें। और अपने पीछे लौट कर देखें कि हम कैसे उनको बोते चले आए। और कहीं ऐसा तो नहीं है कि आज भी हम वही कर रहे हैं! अगर यह दिखाई पड़ जाए तो तुम सुख की आशा छोड़ दोगे। सुख की आशा एकदम ही दुराशा है, असंभावना है। सुख की संभावना ही नहीं है। अगर ऐसा दिखाई पड़ जाए कि जीवन में सुख की संभावना ही नहीं है, दुख ही होगा; चाहे तुम उसे कितना ही सुख कहो, आज नहीं, कल वह दुख हो जाएगा। अगर जिंदगी में दुख की ही संभावना है तो सुख की आशा छूट जाती है। और जिस व्यक्ति की सुख की आशा छूट जाती है, वह दुख के साथ सीधा खड़ा हो जाता है। भागने का उपाय न रहा। यहां दुख है और यहां मैं हूं, और हम आमने-सामने हैं।
और मजे की बात यह है कि जो आदमी दुख के सामने सीधा खड़ा हो जाता है, उसका दुख ऐसे तिरोहित हो जाता है कि जैसे कभी था ही नहीं! तब दुख नहीं जीत पाता, क्योंकि तब दुख के जीतने की तरकीब ही गई। तरकीब थी सुख की संभावना में। दुख के जीत की जो तरकीब थी, जो टेक्नीक था, वह था सुख की संभावना में। वह सुख की संभावना ही गई। दुख यह सामने खड़ा है और मैं यहां खड़ा हूं। और अब कोई उपाय नहीं है, न मेरे भागने का, न दुख के भागने का। और दुख और हम आमने-सामने हैं। यह एनकाउंटर है, यह साक्षात्कार है।
इस साक्षात्कार में जो रहस्यपूर्ण घटना घटती है वह यह, कि दुख तिरोहित हो जाता है। मैं अपने पर वापस लौट आता हूं, क्योंकि सुख पर जाने की चेष्टा छोड़ देता हूं। सुख पर जाने का एक रास्ता था, वह रास्ता मैंने छोड़ दिया। अब दुख के सामने सीधा खड़ा हो गया। अब एक ही रास्ता है कि मैं अपने पर लौट आऊं। और यह जो अपने पर लौट आना है... क्योंकि दुख में तो कोई रह ही नहीं सकता। या तो सुख की आशा में भागेगा, या अपने पर लौट आएगा; या तो आनंद में चला जाएगा या सुख में चला जाएगा। सुख में हम जाते रहे हैं और आनंद में नहीं पहुंच पाए हैं!
अगर हम दुख में सीधे खड़े हो जाएं तो हम आनंद में पहुंच जाते हैं। आनंद सुख नहीं है। आनंद सुख-दुख का अभाव है। आनंद में न सुख है, न दुख है। इसीलिए बुद्ध ने आनंद शब्द का प्रयोग नहीं किया। बुद्ध ने बड़ा ही समझ कर शब्दों का प्रयोग किया। इतनी समझ किसी आदमी ने कभी नहीं दिखाई। क्योंकि आनंद में, कितना ही समझाओ, सुख का भाव छिपा हुआ है। यानी कितना ही मैं समझाऊं कि आनंद सुख नहीं है, आप फिर भी कहेंगे, आनंद कैसे मिले? और जब आप कहेंगे, तब आपके मन में यही होगा कि सुख कैसे मिले? शब्द बदल लेंगे, लेकिन भाव सुख का ही रहेगा। तो आप कहेंगे, ठीक है, फिर तरकीब बताइए कि आनंद कैसे पाया जाए? दुख है, दुख से कैसे बचा जाए? कोई टेक्नीक, कोई विधि बताइए कि हम आनंद कैसे पा लें? आनंद तो पाना जरूरी है।
और अगर आप भीतर गौर से देखेंगे तो आनंद गलत शब्द आप प्रयोग कर रहे हैं। आप यह कह रहे हैं, सुख पाना जरूरी है, सुख कैसे पाया जाए? दुख से कैसे बचा जाए? बहुत कठिन है आदमी को समझाना कि आनंद सुख नहीं है। और आमतौर से हम

दोनों का पर्यायवाची प्रयोग करते हैं! एक आदमी सुखी है तो कहता है, बड़े आनंद में हैं! बड़े आनंद में हैं, कहता है!
बुद्ध ने इसलिए प्रयोग कियाः शांति। वे कहते हैं, आनंद नहीं। आनंद शब्द ठीक नहीं है, खतरनाक है। शांति में भाव बिल्कुल दूसरा है। शांति का अर्थ हैः न सुख, न दुख, सब शांत है। कोई तरंग नहीं है--न दुख की, न सुख की। न कोई भाव है--न सुख का, न दुख का। न कहीं जाना है, न कहीं आना है--ठहर गया सब। रुक गए। मौन है, चुप है, झील पर एक भी लहर नहीं है--ऐसी। इसलिए बुद्ध कहते हैं, आनंद नहीं। मैं आनंद का आश्वासन नहीं देता। क्योंकि मैं तुम्हें आनंद का आश्वासन दूंगा और तुम सुख का आश्वासन ले लोगे।
यह जो कठिनाई है, जो कठिनाई है, बात आनंद की की जाएगी, समझी सुख की जाएगी, क्योंकि हमारी आकांक्षा सुख की है। अगर हम दुख के साक्षात के लिए भी तैयार होंगे तो सिर्फ इसलिए कि दुख से कैसे बच जाएं। और अगर कोई दुख से बचने के लिए दुख का साक्षात करेगा तो साक्षात कर ही नहीं सकता। क्योंकि जिससे हम बचना चाहते हैं, उसको हम कैसे साक्षात करेंगे? उसे हम देखेंगे कैसे उसकी परिपूर्णता में? हम तो भाग जाएंगे उसके पहले कि वह दिखाई पड़े। मुझे भी प्रीतिकर है, शब्द शांति महत्वपूर्ण है। मगर बात वही है, बात वही है। जहां सब शांत हो गया। सब--दुख ही नहीं, सुख भी--जहां सब शांत हो गया। हमें ख्याल में नहीं है कि दुख एक तरह की अशांति है, जो अप्रीतिकर है। और सुख एक तरह की अशांति है, जो शायद प्रीतिकर लगती है। लेकिन सुख की अशांति भी तीव्र हो जाए तो मृत्यु ला सकती है। और दुख की अशांति भी तीव्र हो तो मृत्यु ले ही आती है।
मैंने सुना है, एक आदमी को लाटरी मिल गई। उसे एक लाख रुपया मिलने को है। उसकी पत्नी बहुत घबड़ा गई। खबर आई, पति दफ्तर में था। वह चपरासी है। एक लाख की बात सुनते ही कहीं उसका खातमा न हो जाए! वह बहुत डर गई है। खबर आ गई घर में, पति दफ्तर से लौटने को है। वह क्या करे? तो वह भागी हुई पास के चर्च में गई। वह ईसाई है। उसने जाकर चर्च के पादरी को कहा कि आपसे बुद्धिमान आदमी कोई भी नहीं। आपसे मैं सलाह लेने आई हूं कि क्या किया जाए? खबर आई है कि मेरे पति को एक लाख रुपए मिल गए। लेकिन हम गरीब आदमी हैं और पति एक लाख रुपए की बात सुन कर पागल हो जाए, हृदय-गति बंद हो जाए।
उस चर्च के पुरोहित ने कहा, घबड़ाओ मत, मैं आता हूं। मैं संभाल लूंगा। मैं धीरे-धीरे बात प्रकट करूंगा।
दफ्तर से पति लौट आया है, वह चर्च का पादरी आया है, उस पादरी ने कहा कि सुनते हो भई, पच्चीस हजार रुपए मिले हैं तुम्हें इनाम! सोचा कि धीरे-धीरे बढ़ाऊंगा। धक्का कम होता जाएगा। पच्चीस हजार, फिर पच्चीस हजार, फिर पच्चीस हजार। उस आदमी ने कहा, क्या कहते हैं, पच्चीस हजार--सच! अगर पच्चीस हजार मिले हैं तो आधे मैं आपको दे दूंगा। पादरी का उसी वक्त हार्ट फेल हो गया! साढ़े बारह हजार! और इकट्ठा हमला पड़ गया उस पर। उसको कोई, उसको तो कल्पना भी नहीं थी। इस आदमी को तो थोड़ा ख्याल भी था। इसको थोड़ा ख्याल भी था कि लाटरी मिल सकती है। लेकिन पादरी को तो ख्याल भी नहीं हो सकता था कि साढ़े बारह हजार मिल सकते हैं। उसने कहा, साढ़े बारह हजार दे दोगे? सच कह रहे हो? उसने कहा कि अगर लाटरी मिल गई पच्चीस की, तो दिए! उस आदमी का तो हार्ट फेल हो गया!
सुख भी इतना तीव्र हो सकता है एक आघात में, कि प्राण ले ले। और बड़े मजे
की बात है यह कि दुख बहुत कम लोगों के प्राण लेता है, सुख बहुत लोगों के ले लेता है! सुख बहुत लोगों के ले लेता है, दुख बहुत कम लोगों के लेता है। क्योंकि दुख में, कितना ही बड़ा दुख हो, हम सदा सुख की आशा में भागे हुए रहते हैं। इसलिए पूरे दुख का कभी भी इंपैक्ट, घाव नहीं पड़ पाता। लेकिन पूरे सुख में हम कहीं नहीं भागे होते हैं, हम बिल्कुल थक गए होते हैं और हमला पूरा हो जाता है। हम बच ही नहीं पाते, क्योंकि दुख की तरफ तो हम भागते नहीं। दुख में तो हम सुख की तरफ भागते रहते हैं। मन हमारा सुख में लगा रहता है कि ठीक है, ठीक है; आज नहीं कल, आज नहीं कल सुख आएगा; आएगा। हम वहां होते हैं। यहां दुख होता है। दुख की चोट हमें पूरा कभी नहीं हमला कर पाती, लेकिन सुख की चोट बहुत बुरा हमला कर जाती है। क्योंकि हम कहीं नहीं होते, वहीं होते हैं। उसी वक्त सीधा मुकाबला हो जाता है।

सुख भी एक अशांति है--प्रीतिकर हम समझ सकते हैं उसे। हम चाहते हैं ऐसी अशांति। इसे अगर ठीक से समझें, तो हम चाहते हैं ऐसी अशांति। और अशांति को चाहना--कितनी देर चाहोगे? घड़ी, आधा घड़ी में चाह मिट जाएगी, अशांति रह जाएगी। समझ लीजिए कि अभी आप सब मिल कर इतना हंस-खुश हो रहे थे, समझ लीजिए इसे जरा चलने दीजिए और घंटे भर सही, और फिर लोग उठने लगेंगे, और दरवाजा बंद कर दीजिए कि आज तो पूरी रात खुशी मनानी है। तो फिर आप पाएंगे कि दो घंटे बाद लोग कहते हैं कि हम गर्दन दबा देंगे, अगर किसी ने गड़बड़ की। बिल्कुल हमको हंसना नहीं है। हमें बिल्कुल बाहर जाना है, हम सुनना नहीं चाहते अब। क्यों? क्योंकि थोड़ी देर तक हम अशांति को भी चाह सकते हैं--पर कितनी देर? थोड़ी देर में चाह चली जाएगी और अशांति रह जाएगी।
एक आदमी सितार बजा रहा है, बड़ा प्रीतिकर है, लेकिन है तो शोरगुल। है तो शोरगुल ही, कितनी देर सहोगे? अशांति ही है। जो शांति को जानता है वह कहेगा, यह क्यों शोरगुल मचा रहे हो? यह है शोरगुल। लेकिन समझो कि अच्छी लग रही है, प्रीतिकर अशांति है, थोड़ी देर चाही जा सकती है। चाहो, कितनी देर चाहोगे? घड़ी, दो घड़ी; घंटे, दो घंटे; रात, दो रात; फिर उस सितार बजाने वाले की गर्दन दबाने का मन होगा, कि अब या तो बंद करो या हम तुम्हें बंद कर देंगे।
तो वह कहेगा कि तुम तो इतने खुश होते थे, तुम तो इतने प्रभावित थे और तुम तो इतना आनंद प्रकट करते थे, ताली बजाते थे, गर्दन क्यों दबाते हो? हम तो उसी खुशी में और ज्यादा बजाए चले जा रहे हैं। लेकिन उस आदमी को पता नहीं कि अशांति की चाह खतम हो जाती है थोड़ी देर में, और फिर अशांति रह जाती है। और फिर तबीयत होती है कि अब कब बंद हो जाए! अब यह कब समाप्त हो!
प्रीतिकर अशांति को हम सुख कहते हैं, अप्रीतिकर अशांति को हम दुख कहते हैं।
और इसे ध्यान रखना, अगर प्रीतिकर अशांति को जारी रखा जाए तो प्रीतिकर बिंदु नष्ट हो जाएगा, अशांति रह जाएगी। और अगर अप्रीतिकर अशांति को भी जारी रखा जाए तो अप्रीतिकर बिंदु नष्ट हो जाएगा और अशांति भी सहने योग्य, प्रीतिकर हो जाएगी।
एक आदमी रेल के दफ्तर में काम करता है तो सितार नहीं सुनता, रेलगाड़ी
के इंजन, सीटियां और सब आवाजें सुनता है। वहीं सोता भी है रात, तो सो लेता है। सात दिन की ड्यूटी के बाद घर लौटता है आठवीं रात, तो नींद नहीं आती। क्योंकि वह जो अशांति थी, वह जो शोरगुल था, वह उसके माहौल का हिस्सा था। उसके बिना सोए कैसे? एक बड़े वातावरण का हिस्सा वह भी है। उतनी अशांति चाहिए, नहीं तो वह सो नहीं सकता। वह मुश्किल में पड़ जाएगा। वह सब हिस्सा हो गया। वह भी बहुत दिन सुने जाने पर प्रीतिकर अप्रीतिकर हो जाता है, अप्रीतिकर प्रीतिकर भी हो सकता है। इसका मतलब क्या है? इसका मतलब यह है कि दोनों तनाव हैं, और दोनों तनाव में रूपांतरण हो सकता है। वे एक-दूसरे में यात्रा करते रहते हैं।
अभी वह एक मित्र यहां मेरे पीछे आकर ठहरे थे पूना के। उन्होंने कहा कि
हम एक दिन हाउस-बोट में ठहरे थे आकर--बहुत आनंद आया। फिर दूसरी दफा आए तो हमने पंद्रह दिन के लिए इकट्ठा ही बुक कर लिया और पैसे दे दिए। और हम ऐसी मुसीबत में पड़ गए कि ये पंद्रह दिन कैसे पूरे हों! क्योंकि वही पानी, वही नाव, वही रोज वहां जाना! इतनी घबड़ाहट हो गई कि हम चौथे दिन भाग गए वह पैसे छोड़ कर वहां से। क्योंकि वह तो घबड़ाने वाला हो गया।
वह जो सुखद मालूम हो रहा है, वह कितनी देर सुखद होगा, यह सोचा कभी? और
जो दुखद मालूम हो रहा है, अगर उसमें जीए ही चले जाओ, तो कितनी देर दुखद रहेगा? दोनों अशांतियां हैं, दोनों एक-दूसरे में मिली-जुली हैं, दोनों एक-दूसरे के छोर हैं। बहुत जल्दी यहां से वहां यात्रा हो जाती है, वहां से यहां यात्रा हो जाती है।
इस सत्य को समझ लेने वाला व्यक्ति इस यात्रा पर ही नहीं जाता। वह जैसा है, वहीं खड़ा हो जाता है। जो आता है, उसे ही देखता है। और आता दुख ही है, सुख आता ही नहीं। सुख सिर्फ आता लगता है और आते लगते ही में चलता है उसका सब हिसाब। आते ही विलीन होना शुरू हो जाता है। दुख ही आता रहता है।
जो व्यक्ति इसको देखने खड़ा होता है--दुख पूरा अपने पूरे अंधकार में, अपनी पूरी पीड़ा में, अपने पूरे रूप में प्रकट होता है। उसके साथ ही वे सब

बीज प्रकट हो जाते हैं, जो उसने बोए थे, जो वह अब भी बो रहा है। इस वक्त भी हो सकता है बगीचे में बैठा बो रहा हो। हाथ रुक जाता है, वह आदमी वापस खड़ा हो जाता है। वह चुपचाप दुख को देख लेता है, जी लेता है, भोग लेता है, लेकिन भागता नहीं। भोगा हुआ दुख मिट जाता है। भागा हुआ दुख आगे बढ़ जाता है। ऐसा जो भोग लेता है, वह भीतर चला आता है।
और जो दुख में भी नहीं भागता, वह शांत हो जाता है, क्योंकि अब अशांत होने का क्या कारण रहा? जो दुख में भी नहीं भागता, वह अशांत कैसे होगा? अशांत हो सकता था भागता तो। अब वह भागता ही नहीं है, अब तो जो भी है, वह ठीक है। वह शांत हो जाता है। वह आनंद को उपलब्ध हो जाता है, वह अपने पर लौट आता है। ऐसी यात्रा से पहुंचता है व्यक्ति मुक्ति में। लेकिन यह यात्रा जरूरी है।
ऐसा कभी नहीं होता, ऐसा नहीं होता कि एक व्यक्ति का सुख का भ्रम टूट जाए और आनंद उपलब्ध न हो। ऐसा होता ही नहीं। ऐसा हो ही नहीं सकता।
यह ऐसा ही है जैसे कोई कहे, सौ डिग्री तक पानी तो गर्म हो गया, लेकिन भाप नहीं बनता। तो हम कहेंगे, ऐसा हो ही नहीं सकता। तो तुम्हारी डिग्री नापने में कहीं भूल हो गई होगी। सौ डिग्री तक पानी गर्म हो ही गया है तो भाप बनेगा ही। इसमें कोई उपाय ही नहीं है दूसरा। यह भाप बनेगा ही। क्योंकि सौ डिग्री तक गर्म होना यानी भाप बनना। ये दो चीजें नहीं हैं। वह डिग्री तो द्वार है, जहां से भाप बनेगा। अगर उस डिग्री तक पहुंच गया तो भाप बनेगा। ऐसा नहीं हो सकता कि सौ डिग्री पर ठहर जाए और कहे कि भाप नहीं बनते हैं, सौ डिग्री पर रुक जाते हैं। सौ डिग्री तो गरम हो गए, लेकिन भाप नहीं बनते--ऐसा नहीं होता। लेकिन डिग्री नापने में गलती हो सकती है।
और पानी की डिग्री नापने में गलती बहुत कम होगी, क्योंकि पानी हमसे अलग-थलग है। अपनी स्थिति नापने में हमेशा भूल हो जाती है।
सुख का भ्रम हमारा मिटता नहीं। बल्कि सच तो यह है कि हम आनंद की खोज में भी सुख के लिए ही जाते हैं। जो गहरा उपद्रव है, वह यह है कि आनंद की खोज में भी हम किसलिए जाते हैं? क्या हम दुख के साक्षात से गए? अगर दुख के साक्षात से गए तो जाना ही नहीं पड़ेगा, हम पहुंच जाएंगे। अगर दुख के साक्षात्कार से गए हैं तो हमें जाना नहीं पड़ेगा, हम पहुंच ही जाएंगे। लेकिन हम दुख के साक्षात्कार से नहीं गए। हम दुख से बचने के लिए सुख खोजते रहे। फिर किसी ने कहा कि सुख भ्रम है, और हमारी थोड़ी समझ में भी पड़ा, क्योंकि अतीत का अनुभव हमारा भी कहता है कि हां, सुख पाया नहीं। लेकिन क्या तुम्हारा भविष्य का मन भी कहता है कि सुख नहीं पा सकोगी?
जब मैं कहता हूं कि सुख भ्रम है, सुख कभी नहीं पाया, तो तुम्हारा मन भी कहता है कि ठीक कहते हैं आप, सुख भ्रम है। बहुत बार सुख पाने की संभावना थी, फिर मिला नहीं--लेकिन अतीत में। लेकिन क्या तुम्हारा मन यह भी बात मानने को तैयार होता है कि भविष्य में भी सुख नहीं मिल सकता है?
नहीं, इस पर राजी नहीं होता! बस यहां जरा सी चूक हो जाती है। मन कहता है
कि अगर आप कहते हैं कि इस तरह से नहीं मिलेगा, छोड़िए, लेकिन आनंद कैसे मिलेगा, यह बताइए। वह कहता है, आनंद कैसे मिलेगा, यह बता दें। तो हम वही पा लें, छोड़ें सुख को! और आनंद तो सुख से भी बड़ी चीज है। हम सुख ही छोड़ देते हैं, आनंद पा लेते हैं! आनंद की क्या तरकीब है? फिर आदमी भजन कर रहा है, ध्यान कर रहा है, पूजा कर रहा है, प्रार्थना कर रहा है। फिर वह अब आनंद की तरकीब खोज रहा है!
इसलिए जो मैंने उस दिन कहा कि कोई तरकीब नहीं है, कोई मेथड नहीं है! क्योंकि विधि हो सकती है सुख पाने की। यहां तो सवाल कुल इतना है कि जो स्थिति है, उसको जान लो और तुम आनंद में पहुंच जाओगे। आनंद में पहुंचने के लिए तुम्हें अतिरिक्त कुछ भी न करना पड़ेगा, एक इंच चलना न पड़ेगा। लेकिन हमारे चित्त की जो तरकीब है, वह यह है, वह कहता है, ठीक है; आप ठीक कहते हैं, सुख तो नहीं मिला, लेकिन आगे मिल सकता है? ठीक है, कोई हर्ज नहीं, सुख न कहिए, आनंद कहिए, हम आनंद ही खोजने जाते हैं। वह कहां है आनंद? हम कैसे उस आनंद को पाएं?
अब यह आदमी फिर दुख से भाग रहा है। अभी तक यह सुख का नाम लेकर भागता था,
अब आनंद का लेकर भाग रहा है! अभी तक यह शराबघर में जाता था कि वहां सुख मिल

जाएगा, अब यह कहता है, वहां नहीं मिलता; तो अब यह मंदिर में जाता है! यह कहता है कि वहां आनंद मिल जाए। लेकिन जाता है कहीं! शराबघर छोड़ता है, मंदिर खोजता है--लेकिन जाता है कहीं। भाग रहा है। शराबघर में जाने वाला उतना ही भाग रहा है, जितना मंदिर में जाने वाला भाग रहा है। फर्क जरा भी नहीं है भागने की दृष्टि से।
यह मैं नहीं कह रहा हूं कि जाकर आदमी शराब पीने लगे। कह मैं यह रहा हूं, दोनों भाग रहे हैं। भागने की दृष्टि से कोई भी फर्क नहीं है। हां, एक का भागना ऐसा हो सकता है कि समाज-सम्मत न हो, ऐसा हो सकता है कि स्वास्थ्य को नुकसान पहुंचाता हो। एक का भागना ऐसा हो सकता है कि स्वास्थ्य को भी फायदा करता हो, समाज-सम्मत भी हो; लेकिन भागना जारी है।
तो मैं जो कह रहा हूं, समझ लो उसे ठीक से। मैं यह नहीं कह रहा हूं कि मैं तुम्हें कोई आनंद की तरकीब बताऊंगा। मैं तुमसे यह नहीं कह रहा हूं कि तुम आनंद में जा सकती हो। यह भी नहीं कह रहा हूं तुमसे कि तुम आनंद पा सकती हो भविष्य में। मैं तुमसे भविष्य की बात ही नहीं कर रहा हूं। मैं तुमसे इतना कह रहा हूं कि वर्तमान में तुम दुख के लिए जाग सकते हो। उसके आगे मुझे नहीं कहना। मैं इतना ही कहता हूं, सौ डिग्री तक पानी गरम करो। आगे पानी अपना संभाल लेता है, उसकी तुम्हें चिंता नहीं करनी है। वह भाप बनेगा। लेकिन हमें होता क्या है, हमें सारी शिक्षाएं खतरनाक हो गई हैं। सब शिक्षक हमें रेडीमेड फार्मूला दे देते हैं। वे कह देते हैं कि सुख है ही नहीं जीवन में। बस, बात खतम हो गई। वे समझते हैं, बात खतम हो गई। तुमने भी सुन ली, तुमने भी समझा कि ठीक बात तो कह रहे हो, बिल्कुल बात खतम हो गई। सुख है कहां जीवन में!
लेकिन सवाल यह नहीं है कि सुख जीवन में है या नहीं। सवाल यह है कि क्या तुम इस सत्य पर पहुंचे हो कि तुम्हारे लिए सुख की कोई संभावना नहीं--कभी भी, अनंत काल में? क्या इस सत्य पर तुम पहुंचे हो? क्या यह तुम्हारी प्रतीति बन गई है कि अनंत काल तक भी तुम्हारे लिए सुख की कोई संभावना नहीं है? सुख है ही नहीं कभी--ऐसी तुम्हारी प्रतीति है? तो फिर क्या करोगे तुम? तब तुम आनंद के लिए भी नहीं पूछोगे। तुम कहोगे, कैसा आनंद? सुख की कोई संभावना ही नहीं है, दुख ही है। और दुख में ही जीना है, वहीं खड़े होना है। यही सत्य है, इसमें ही खड़े होंगे।
ऐसे अगर तुम खड़े हो गए तो तुम आनंद में पहुंच जाओगे। वह तुम्हारा पहुंचना नहीं है। यानी तुम कुछ करके वहां नहीं पहुंच जाओगे, यह खड़े हो जाना तुम्हें पहुंचा देगा। और तुम इसमें खड़े होने को राजी नहीं। तुम कहते हो कि ठीक है, यह दुख तो ठीक है, आप हमें आनंद में पहुंचने का रास्ता बताइए। फिर आनंद भविष्य में हो जाएगा--कल। वह सुख का काम करने लगेगा। उससे क्या फर्क पड़ता है? फिर स्वर्ग हो जाएगा, फिर मोक्ष हो जाएगा--कल। फिर पोस्टपोनमेंट शुरू हो जाएगा।
सुख की भूल क्या थी? सुख की भूल थी पोस्टपोनमेंट। सुख का भ्रम क्या था? स्थगन, आगे के लिए, कल। सुख का कसूर क्या था बेचारे का? आशा थी सुख भविष्य की। आनंद भी बन सकता है भविष्य की आशा। आनंद भी बन सकता है स्थगन कल के लिए। आनंद भी बनेगा कल की संभावना। तो तुमने सुख से तुम जो काम ले रहे थे, तुमने आनंद से भी वही काम ले लिया! फिर भाग शुरू हो गई। यह सवाल थोड़े ही था कि तुम किसके लिए भविष्य में जाते थे? सवाल यह था कि तुम वर्तमान से चले जाते थे, कहीं और चले जाते थे। इस दुख को भुला देते थे। सुख के नाम से भुलाते थे कि आनंद के नाम से, कोई फर्क नहीं पड़ता।
मैं यह कह रहा हूं कि तुम्हें संभावना ही नहीं है। तुम्हें सुख मिलेगा ही नहीं। तुम सुख पा ही नहीं सकते हो। आनंद-वानंद भी नहीं पा सकते। समझ रहे हो मेरी बात? मेरी बात यह है, तुम पा ही नहीं सकते हो। इस जाल
को तुम पूरा समझ लो कि इसमें पाना हो ही नहीं सकता। खड़े हो जाओ। खड़े हो ही जाओगे! जब पा नहीं सकते, तो नहीं दौड़ोगे। पा सकते हो, तो दौड़ोगे। नहीं पा सकते, नहीं दौड़ोगे। खड़े हो जाओ। खड़े हुए कि पा लोगे। लेकिन उसे तुम भविष्य का आश्वासन मत बनाना, नहीं तो दौड़ जारी रहेगी।
मेरी बात समझ पड़ती है न? और इसलिए मुझे निरंतर दिक्कत होती है समझाने में। क्योंकि बारीक सा मामला है, जरा में खिसक जाते हैं हम।

और तब कोई मुझसे कह सकता है फिर आपकी हम बात ही क्यों सुनें, जब आप कहते हैं कि आनंद मिलेगा ही नहीं, पा ही नहीं सकते हो? तो हम फिजूल आपके साथ परेशान हो रहे हैं!

प्रश्नः और आपको परेशान कर रहे हैं!

और आपको परेशान कर रहे हैं! लेकिन मैं तुमसे कह रहा हूं कि तुम अगर यह जान लोगे तो पा भी सकते हो। लेकिन उसे कभी आशा मत बनाना, उसे कभी भविष्य का साध्य मत बनाना, उसे कभी लक्ष्य मत बनाना। वह बनेगी उपलब्धि, तुम तो जो है, उसे जानना। वह आएगा अपने से। वह आना बिल्कुल सहज है।

महावीर: मेरी दृष्टि में पच्चीसवां प्रवचन

महावीरः मेरी दृष्टि में

महावीर पर इतने दिनों तक बात करनी अत्यंत आनंदपूर्ण थी। यह ऐसे ही था, जैसे मैं अपने संबंध में ही बात कर रहा हूं। पराए के संबंध में बात की भी नहीं जा सकती। दूसरे के संबंध में कुछ कहा भी कैसे जा सकता है? अपने संबंध में ही सत्य हुआ जा सकता है।
और महावीर पर इस भांति मैंने बात नहीं की, जैसे वे कोई दूसरे और पराए हैं। जैसे हम अपने आंतरिक जीवन के संबंध में ही बात कर रहे हों, ऐसी ही उन पर बात की है। उन्हें केवल निमित्त माना है, और उनके चारों ओर उन सारे प्रश्नों पर चर्चा की है, जो प्रत्येक साधक के मार्ग पर अनिवार्य रूप से खड़े हो जाते हैं। महत्वपूर्ण भी यही है।
महावीर एक दार्शनिक की भांति नहीं हैं, एक सिद्ध, एक महायोगी हैं। दार्शनिक तो बैठ कर विचार करता है जीवन के संबंध में, योगी जीता है जीवन को। दार्शनिक पहुंचता है सिद्धांतों पर, योगी पहुंच जाता है सिद्धावस्था पर। सिद्धांत बातचीत हैं, सिद्धावस्था उपलब्धि है। महावीर पर ऐसे ही बात की है, जैसे वे कोई मात्र कोरे विचारक नहीं हैं। और इसलिए भी बात की है कि जो इस बात को सुनेंगे, समझेंगे, वे भी जीवन में कोरे विचारक न रह जाएं। विचार अदभुत है, लेकिन पर्याप्त नहीं है। विचार कीमती है लेकिन कहीं पहुंचाता नहीं। विचार से ऊपर उठे बिना कोई व्यक्ति आत्म-उपलब्धि तक नहीं पहुंचता है।
महावीर कैसे विचार से ऊपर उठे, कैसे ध्यान से, कैसी समाधि से--ये सब बातें हमने कीं। कैसे महावीर को परम जीवन उपलब्ध हुआ और कैसे परम जीवन की उपलब्धि के बाद भी वे अपनी उपलब्धि की खबर देने वापस लौट आए, उस करुणा की भी हमने बात की। जैसे कोई नदी सागर में गिरने के पहले पीछे लौट कर देखे एक क्षण को, ऐसे ही महावीर ने अपने अनंत जीवन की यात्रा के अंतिम पड़ाव पर पीछे लौट कर देखा है।
लेकिन उनके पीछे लौट कर देखने को केवल वे ही लोग समझ सकते हैं, जो अपने जीवन की अंतिम यात्रा की तरफ आगे देख रहे हों। महावीर पीछे लौट कर देखें, लेकिन हम उन्हें तभी समझ सकते हैं, जब हम भी अपने जीवन के आगे के पड़ाव की तरफ देख रहे हों। अन्यथा महावीर को नहीं समझा जा सकता है।
साधारणतः महावीर को हुए पच्चीस सौ वर्ष हो गए। वे अतीत की घटना हैं। इतिहास यही कहेगा। मैं यह नहीं कहूंगा। साधक के लिए महावीर भविष्य की घटना हैं। उसकी अपनी दृष्टि से वह महावीर के होने तक आगे कभी पहुंचेगा। इतिहास की दृष्टि से अतीत की घटना हैं, पीछे बीते हुए समय की। साधक की दृष्टि से आगे की घटना हैं। उसके जीवन में आने वाले किसी क्षण में वह वहां पहुंचेगा, जहां महावीर पहुंचे हैं। और जब तक हम उस जगह न पहुंच जाएं, तब तक महावीर को समझा नहीं जा सकता है। क्योंकि हम उस अनुभूति को कैसे समझेंगे जो अनुभूति हमें नहीं हुई है? अंधा कैसे समझेगा प्रकाश के संबंध में? और जिसने कभी प्रेम नहीं किया और प्रेम नहीं दिया, वह कैसे समझेगा प्रेम के संबंध में? हम उतना ही समझ सकते हैं, जितने हम हैं, जहां हम हैं। हमारे होने की स्थिति से हमारी समझ ज्यादा नहीं होती।
इसलिए महापुरुष के प्रति अनिवार्य होता है कि हम नासमझी में हों। महापुरुष को समझना अत्यंत कठिन है, बिना स्वयं महापुरुष हो जाए। जब तक कि कोई व्यक्ति उस स्थिति में खड़ा न हो जाए, जहां कृष्ण हैं, जहां क्राइस्ट हैं, जहां मोहम्मद हैं, जहां महावीर हैं, तब तक हम समझ नहीं पाते। और जो हम समझते हैं, वह अनिवार्यरूपेण भूल भरा होता है।
इसलिए एक बात ध्यान में रखनी चाहिए, महावीर को समझना हो तो सीधे ही महावीर को समझ लेना संभव नहीं है, महावीर को समझना हो तो बहुत गहरे में स्वयं को समझना और रूपांतरित करना ज्यादा जरूरी है। लेकिन हम तो शास्त्र से समझने जाते हैं, और तब भूल हो जाती है! शब्द से, सिद्धांत से, परंपरा से

समझने जाते हैं, तभी भूल हो जाती है! हम तो स्वयं के भीतर उतरेंगे, तो उस जगह पहुंचेंगे, जहां महावीर कभी पहुंचे हों, तभी हम समझ पाएंगे।
मैंने जो बातें कीं इन दिनों में, उन बातों का शास्त्रों से कोई संबंध नहीं है। इसलिए हो सकता है बहुतों को वे बातें कठिन भी मालूम पड़ें, स्वीकार योग्य भी न मालूम पड़ें, जिनकी शास्त्रीय बुद्धि है, उन्हें अत्यंत अजनबी मालूम पड़ें। वे शायद पूछें भी कि शास्त्रों में यह सब कहां है?
तो उनसे मैं पूर्व ही कह देना चाहता हूं कि शास्त्रों में हो या न हो,
जो स्वयं में खोजेगा, वह सब इसको पा लेता है। और स्वयं से बड़ा न कोई शास्त्र है और न कोई दूसरी आप्तता, कोई और अथारिटी है।
वे मुझसे यह भी पूछ सकते हैं कि मैं किस अधिकार से कह रहा हूं यह? तो उनसे पूर्व से यह भी कह देना उचित है कि मेरा कोई शास्त्रीय अधिकार नहीं है, न मैं शास्त्रों का विश्वासी हूं। बल्कि जो शास्त्र में लिखा है, वह मुझे इसीलिए संदिग्ध हो जाता है कि शास्त्र में लिखा है। क्योंकि वह लिखने वाले के चित्त की खबर देता है, जिसके संबंध में लिखा गया है उसके चित्त की नहीं। फिर हजारों वर्ष की गर्द उस पर जम जाती है। और शास्त्रों पर जितनी धूल जम गई है, उतनी किसी और चीज पर नहीं जमी है।
एक मुझे स्मरण आता है कि एक आदमी एक घर में शब्दकोश बेचने के लिए गया है, डिक्शनरी बेच रहा है। घर की गृहिणी ने उसे टालने को कहा है कि शब्दकोश हमारे घर में है, वह सामने टेबल पर रखा है। हमें कोई और जरूरत नहीं है। लेकिन उस आदमी ने कहा कि देवी जी, क्षमा करें! वह शब्दकोश नहीं है, वह कोई धर्मग्रंथ मालूम होता है।
स्त्री तो बहुत परेशान हुई। वह धर्मग्रंथ था! पर दूर से टेबल पर रखी किताब को कैसे वह व्यक्ति पहचान गया? तो उस गृहिणी ने पूछा, कैसे आप जाने कि वह धर्मग्रंथ है? उसने कहा, उस पर जमी हुई धूल बता रही है। शब्दकोश पर धूल नहीं जमती। रोज उसे कोई खोलता है, देखता है, पढ़ता है। उसका उपयोग होता है। उस पर इतनी धूल जमी है कि निश्चित कहा जा सकता है कि वह धर्मग्रंथ है! सब धर्मग्रंथों पर बड़ी धूल जम जाती है। क्योंकि न तो हम उसे जीते हैं,
न उसे जानते हैं। फिर धूल इकट्ठी होती चली जाती है। सदियों की धूल इकट्ठी हो जाती है। उस धूल में से पहचानना ही मुश्किल हो जाता है कि क्या क्या है। इसलिए मैंने महावीर और अपने बीच शास्त्र को नहीं लिया है, उसे अलग ही रखा है। महावीर को सीधे ही देखने की कोशिश की है। और सीधे हम सिर्फ उसे ही देख सकते हैं, जिससे हमारा प्रेम हो। जिससे हमारा प्रेम न हो, उसे हम कभी भी सीधा नहीं देख सकते। और वही हमारे सामने पूरी तरह प्रकट होता है, जिससे हमारा प्रेम हो।
जैसे सूरज के निकलने पर कली खिल जाती है और फूल बन जाती है, ऐसा ही जिससे भी हम आत्यंतिक रूप से प्रेम कर सकें, उसका जीवन बंद कली से खुले फूल का जीवन हो जाता है। जरूरत है कि हम प्रेम कर पाएं। जरूरत ज्ञान की कम है। ज्ञान तो दूर ही कर देता है। और ज्ञान से शायद ही कोई कभी किसी को जान पाता हो। इनफर्मेशन, सूचनाएं बाधा डाल देती हैं। सूचनाओं से शायद ही कोई कभी किसी से परिचित हो पाता हो। वे बीच में खड़ी हो जाती हैं, वे पूर्वाग्रह बन जाती हैं, पक्षपात बन जाती हैं। हम पहले से ही जानते हुए होते हैं। जो हम जानते हुए होते हैं, वही हम देख भी लेते हैं।
जो महावीर को भगवान मान कर जाएगा, उसे महावीर में भगवान भी मिल जाएंगे, लेकिन वे उसके अपने आरोपित भगवान होंगे। जो महावीर को नास्तिक, महा नास्तिक मान कर जाएगा, उसे नास्तिक, महा नास्तिक भी मिल जाएगा। वह नास्तिकता उसकी अपनी रोपी हुई होगी। जो महावीर को जो मान कर जाएगा, वही पा लेगा। क्योंकि गहरे में अंततः हम अपनी ही मान्यता को निर्मित कर लेते और खोज लेते हैं। और व्यक्ति इतनी बड़ी घटना है कि उसमें सब मिल सकता है। फिर हम चुनाव कर लेते हैं। जो हम मानते जाते हैं, वह हम चुन लेते हैं। और तब जो हम जानते हुए लौटते हैं, वह जानता हुआ लौटना नहीं है, वह हमारी ही मान्यता की प्रतिध्वनि है।
प्रेम के जानने का रास्ता दूसरा है, ज्ञान के जानने का रास्ता दूसरा है। ज्ञान पहले जान लेता है, फिर खोज पर निकलता है। प्रेम जानता नहीं, खोज

पर निकल जाता है--अज्ञात में, अननोन में, अपरिचित में। प्रेम सिर्फ अपने हृदय को खोल लेता है। प्रेम सिर्फ दर्पण बन जाता है, कि जो भी उसके सामने आएगा--जो भी; जो है, वही उस में प्रतिफलित हो जाएगा। इसलिए प्रेम के अतिरिक्त कोई कभी किसी को नहीं जान सका है। और हम सब ज्ञान के मार्ग से ही जानने जाते हैं, इसलिए नहीं जान पाते हैं।
महावीर को प्रेम करेंगे तो पहचान पाएंगे। कृष्ण को प्रेम करेंगे तो पहचान पाएंगे। और भी एक मजे की बात है कि जो महावीर को प्रेम करेगा, वह कृष्ण को, क्राइस्ट को, मोहम्मद को प्रेम करने से बच नहीं सकता। अगर महावीर को प्रेम करने वाला ऐसा कहता हो कि महावीर से मेरा प्रेम है, इसलिए मैं मोहम्मद को कैसे प्रेम करूं? तो जानना चाहिए कि प्रेम उसके पास नहीं है। क्योंकि अगर महावीर से प्रेम होगा तो जो महावीर में उसे दिखाई पड़ेगा, वही बहुत गहरे में मोहम्मद में, कृष्ण में, क्राइस्ट में, कन्फ्यूशियस में भी दिखाई पड़ जाएगा, जरथुस्त्र में भी दिखाई पड़ जाएगा।
प्रेम प्रत्येक कली को खोल लेता है। जैसे सूरज प्रत्येक कली को खोल लेता है, पंखुड़ियां खुल जाती हैं। और तब अंत में तो सिर्फ फ्लावरिंग रह जाती है। पंखुड़ियां गैर अर्थ की हो जाती हैं, सुगंध बेमानी हो जाती है, रंग भूल जाते हैं। अंततः तो प्रत्येक फूल में जो घटना गहरी रह जाती है, वह है फ्लावरिंग, वह है उसका खिल जाना।
महावीर खिलते हैं एक ढंग से, कृष्ण खिलते हैं दूसरे ढंग से। लेकिन जिसने फूल के खिलने को पहचान लिया, वह इस खिलने को सारे जगत में सब जगह पहचान लेगा। इन व्यक्तियों में से एक से भी कोई प्रेम कर सके तो वह सबके प्रेम में उतर जाएगा।
लेकिन दिखाई उलटा पड़ता है। मोहम्मद को प्रेम करने वाला महावीर को प्रेम करना तो दूर, घृणा करता है! बुद्ध को प्रेम करने वाला क्राइस्ट को प्रेम नहीं कर सकता है! तब हमारा प्रेम संदिग्ध हो जाता है। इसका अर्थ है कि यह प्रेम प्रेम ही नहीं है, शायद यह भी गहरे में कोई स्वार्थ है, कोई सौदा है। शायद हम अपने प्रेम के द्वारा भी महावीर से कुछ पाना चाहते हैं! शायद हमारा प्रेम भी एक गहरे सौदे का निर्णय है, हम कुछ बार्गेनिंग कर रहे हैं। हम यह कह रहे हैं कि हम इतना प्रेम तुम्हें देंगे, तुम हमें क्या दोगे?
और तब हम अपने प्रेम में संकीर्ण होते चले जाते हैं। और प्रेम धीरे- धीरे इतना सीमित हो जाता है कि घृणा में और प्रेम में कोई फर्क नहीं रह जाता। क्योंकि जो प्रेम एक पर प्रेम बनता हो और शेष पर घृणा बन जाता हो, वह एक पर भी कितने दिन तक प्रेम रहेगा? क्योंकि घृणा हो जाएगी बहुत। महावीर को प्रेम करने वाला महावीर को प्रेम करेगा और शेष सबको अप्रेम करेगा। अप्रेम इतना ज्यादा हो जाएगा कि यह प्रेम का बिंदु कब विलीन हो जाएगा, पता भी नहीं चलेगा।
मैंने सुना है, एक महिला थी बर्मा में, वह बुद्ध की प्रेमी थी। और उसने बुद्ध की एक स्फटिक प्रतिमा बना ली थी--छोटी, अति सुंदर। वह निरंतर उसे अपने साथ रखती। हो सकता है किसी दिन सुबह पूजा में, गांव में मंदिर न हो बुद्ध का, तो वह मूर्ति को साथ ही रखती--वह निरंतर साथ रखती।
फिर वह एक गांव में आई, जहां हजार बुद्धों का मंदिर था, जहां एक ही मंदिर में बुद्ध की हजार प्रतिमाएं थीं। वह उस मंदिर में ठहरी। सुबह जब वह पूजा के लिए अपनी मूर्ति रखी और जब उसने धूप जलाई, तो उसे ख्याल आया कि यह धूप मेरे बुद्ध को तो मिलेगी ही मिलेगी, लेकिन दूसरे बुद्धों की जो प्रतिमाएं बैठी हैं, उनको भी यह धूप मिल जाएगी! क्योंकि धूप को कोई बांधा तो नहीं जा सकता। और ऐसा भी हो सकता है कि मेरे बुद्ध को धूप मिले ही न, क्योंकि हवाओं का क्या भरोसा! और धूप उड़ कर दूसरे बुद्धों को मिल जाए! यह तो उसके प्रेम के लिए संभव न था। संकीर्ण था प्रेम।
तो संकीर्ण प्रेम बुद्ध को प्रेम करे, महावीर को घृणा करे, ऐसा ही नहीं, बुद्ध की भी प्रतिमा को, एक प्रतिमा को प्रेम करने लगता है--वह भी खास प्रतिमा को!
अब जैनों में दिगंबर हैं, श्वेतांबर हैं। महावीर की एक ही प्रतिमा को दिगंबर नंगा करके पूजा करेंगे, श्वेतांबर आंखें लगाएंगे,शृंगार करेंगे,

फिर पूजा करेंगे! इस पर भी झगड़ा हो जाएगा। दिगंबर वाली प्रतिमा की श्वेतांबर पूजा नहीं कर सकते, श्वेतांबर वाली प्रतिमा की दिगंबर पूजा नहीं कर सकते! और प्रतिमा एक है! लेकिन अपना आरोपण कर लेंगे, तब वह अपनी होगी! महावीर की प्रतिमा का उतना सवाल नहीं है।
तो उस स्त्री को भी बड़ी बेचैनी हुई कि यह कैसे हो? तो उसने धूप नहीं जलाई, उसने पहले टीन की एक पोंगरी बनाई और उस पोंगरी को धूप के ऊपर रखा, और फिर धुएं को पोंगरी से अपने बुद्ध की नाक तक पहुंचाया! लेकिन तब उसके बुद्ध का मुंह काला हो गया! और तब वह बहुत पछताई, बहुत रोई; क्योंकि बुद्ध का मुंह काला हो गया। और वह उस मंदिर के बड़े पुजारी से मिलने गई और उसने कहा कि मेरे बुद्ध का मुंह खराब हो गया! तो उस पुजारी ने कहा, संकीर्ण प्रेम सदा ही उसका मुंह खराब कर देता है, जिससे प्रेम करता है। इतना संकीर्ण प्रेम होगा तो जिससे तुम प्रेम करती हो, उसका चेहरा भी काला हो जाएगा।
संकीर्ण लोगों ने महावीर की प्रतिमा भी काली कर दी है, मोहम्मद की भी, बुद्ध की भी, कृष्ण की भी--सबकी प्रतिमाएं काली कर दी हैं! क्योंकि संकीर्ण प्रेम घृणा का ही एक रूप है। जितना प्रेम संकीर्ण होगा, उतना ही घृणा से भर जाता है। और जब चारों तरफ घृणा होगी तो यह असंभव है, घृणा के बड़े सागर में प्रेम की छोटी सी बूंद को कैसे बचाया जा सकता है? वह तो प्रेम के बड़े सागर में ही प्रेम की बूंद बच सकती है।
यह हमें ध्यान होना चाहिए कि प्रेम के बड़े सागर में ही प्रेम की बूंद
बच सकती है। घृणा के बड़े सागर में प्रेम की बूंद नहीं बचाई जा सकती है। लेकिन हम चाहते यह हैं कि हमारी प्रेम की बूंद बच जाए और शेष घृणा का सागर हो!
एक मुसलमान फकीर औरत हुई राबिया। कुरान में एक जगह वचन आता है कि शैतान को घृणा करो, तो उसने वह वचन काट दिया, उस पर स्याही फेर दी! लेकिन कुरान में कोई सुधार करे, यह तो उचित नहीं है। हसन नाम का एक फकीर उसके घर मेहमान था। सुबह उसने कुरान पढ़ने को उठाई तो देखा कि उसमें सुधार किया गया है। तो उसने कहा, यह कौन नासमझ है जिसने कुरान में सुधार किया? कुरान में तो सुधार नहीं किया जा सकता। राबिया ने कहा, मुझको ही सुधार करना पड़ा है। तो हसन ने कहा, तू तो नास्तिक मालूम होती है! कुरान में और सुधार करने की तेरी हिम्मत? यह तो बड़ा पाप है।
राबिया ने कहा कि पाप हो या पुण्य, मुझे पता नहीं। उसमें एक वाक्य था, लिखा है कि शैतान को घृणा करो! लेकिन मेरे मन से तो घृणा चली गई, अब तो शैतान भी मेरे सामने खड़ा हो जाए तो मैं घृणा करने में असमर्थ हूं। अब तो मैं शैतान को भी प्रेम ही कर सकती हूं। यह अब अनिवार्यता हो गई, क्योंकि प्रेम के अतिरिक्त मेरे हृदय में कुछ है ही नहीं। शैतान के लिए भी घृणा कहां से लाऊंगी?
और राबिया ने कहा, और एक नई बात तुम्हें बताऊं कि जब तक मेरे मन में घृणा थी, तब तक परमात्मा के लिए भी प्रेम को लाने का उपाय न था। क्योंकि हृदय में घृणा हो तो परमात्मा के लिए प्रेम कैसे लाओगे? प्रेम आएगा कहां से? आसमान से तो नहीं, हृदय से आएगा।
और एक ही हृदय में दोनों का अस्तित्व साथ-साथ नहीं होता। जिस हृदय में घृणा है, वहां प्रेम का निवास नहीं; और जिस हृदय में प्रेम है, वहां घृणा का निवास नहीं। यह ऐसे ही है कि जिस कमरे में उजाला है, वहां अंधकार नहीं; जिस कमरे में अंधेरा है, वहां उजाला नहीं।
तो राबिया ने कहा, मैं बड़ी मुश्किल में पड़ गई हूं। अगर शैतान को घृणा करनी है तो मैं चाहे मानूं या न मानूं, परमात्मा को भी घृणा करती रहूंगी। नाम प्रेम के दूंगी, लेकिन वे झूठे होंगे, क्योंकि घृणा करने वाले चित्त में प्रेम कहां? और अगर मुझे परमात्मा को प्रेम करना है तो मुझे शैतान को भी प्रेम ही करना पड़ेगा, क्योंकि प्रेम करने वाले हृदय में घृणा की संभावना कहां? इसलिए मुझे यह लकीर काट देनी पड़ी। भले ही इसके लिए कितना ही पाप लगे, लेकिन अब कोई उपाय नहीं है।
यह राबिया ने ठीक कहा, या तो हमारा हृदय प्रेमपूर्ण होगा या घृणापूर्ण होगा।

यह असंभव है कि एक व्यक्ति महावीर को प्रेम करता हो और बुद्ध को प्रेम
न करे। बुद्ध और महावीर की तो बात दूसरी, सच तो यह है कि एक व्यक्ति प्रेम करता हो तो वह प्रेम ही कर सकता है। बुद्ध-महावीर का भी सवाल नहीं, साधारणजनों को भी प्रेम ही कर सकता है। यह प्रेम करना अब कोई सौदा नहीं है, अब यह उसका स्वभाव है। अब कोई उपाय ही नहीं है, वह प्रेम ही करेगा।
जैसे कि रास्ते के किनारे एक फूल खिला हो, फूल से सुगंध गिरती हो। रास्ते से कौन निकलता है, यह फूल थोड़े ही पूछता है! अच्छा कि बुरा, अपना कि पराया, मित्र कि शत्रु, फूल यह नहीं पूछता। फूल की सुगंध रास्ते पर फैलती रहती है; और जो भी रास्ते से गुजरता है, उसे सुगंध मिलती है। ऐसा भी नहीं है कि फूल जब चाहे तब सुगंध को रोक ले, कि जब चाहे तब छोड़ दे। ऐसा भी नहीं है कि रास्ता खाली हो जाए तो फूल अपनी सुगंध को रोक ले। खाली रास्ते पर भी फूल की सुगंध गिरती रहती है, क्योंकि सुगंध फूल का स्वभाव है।
जिस दिन प्रेम स्वभाव हो जाता है, उस दिन हम प्रेम ही कर सकते हैं।
और इसलिए यह मैं कहना चाहता हूं कि अगर प्रेम सीमित और संकीर्ण हो तो जानना कि वह प्रेम नहीं है, वह घृणा का ही एक रूप है। और इसलिए अनुयायी कभी भी प्रेमपूर्ण नहीं होता। वह जो फालोअर है, वह कभी प्रेमपूर्ण नहीं होता। क्योंकि जो प्रेमपूर्ण है, वह कैसे अनुयायी बनेगा? या तो वह सबका ही अनुयायी हो जाएगा या किसी का भी अनुयायी नहीं होगा। उसका प्रेम इतना विस्तीर्ण है कि किसके पीछे जाएगा? क्योंकि एक के पीछे जाने में दूसरे को छोड़ना पड़ता है। और एक के पीछे जाने में हजार को छोड़ना पड़ता है। और जिसका प्रेम इतना बड़ा है कि वह किसी को भी नहीं छोड़ सकता, वह किसी के भी पीछे नहीं जाता, वह अनुयायी नहीं रह जाता।
इसलिए मैंने कहा कि मैं महावीर का अनुयायी नहीं हूं, न बुद्ध का, न कृष्ण का। क्योंकि किसी भी एक के पीछे जाने में शेष सबको छोड़े बिना कोई रास्ता नहीं है। इसलिए मैं किसी के भी पीछे नहीं गया हूं, और न कहता हूं कि कोई किसी के पीछे जाए।
और भी एक मजे की बात है कि जो किसी के पीछे जाएगा, वह अपने भीतर नहीं जा सकता। क्योंकि पीछे जाने की दिशा होती है बाहर, और भीतर जाने की दिशा होती है भीतर। तो जो किसी का भी अनुयायी है, वह आत्म-अनुभव को उपलब्ध नहीं हो सकता। क्योंकि उसे जाना पड़ता है किसी के पीछे, और आत्म-अनुभव में सबको छोड़ कर जाना है उसे स्वयं के भीतर।
इसलिए मैं कहता हूं कि जो सबको प्रेम करता है, उसे किसी को पकड़ने का उपाय नहीं रहता। सब छूट जाते हैं और वह अपने भीतर जा सकता है।
यह भी समझ लेने की बात है कि प्रेम अकेला मुक्त करता है, घृणा बांधती है। और जो प्रेम भी बांधता हो, मैं कहता हूं, वह भी घृणा का ही रूप है। क्योंकि प्रेम बांधता ही नहीं, प्रेम एकदम मुक्त कर देता है। प्रेम का कोई बंधन नहीं है। प्रेम न किसी पर ठहरता, न किसी पर रुकता; न किसी को रोकता, न किसी को ठहराता।
प्रेम की न कोई शर्त है, न कोई सौदा है। प्रेम है, तो परम मुक्ति है। एक
को भी अगर हम प्रेम कर लें तो हम पाएंगे कि एक जो था, वह द्वार बन गया अनेक का। और कब एक मिट गया और प्रेम अनेक पर पहुंच गया, कहना कठिन है।
पर हम एक को भी प्रेम नहीं कर पाते! असल में हम प्रेम ही नहीं कर पाते हैं। क्योंकि हम प्रेमपूर्ण ही नहीं हैं। हम ज्ञानपूर्ण बहुत हैं, लेकिन प्रेमपूर्ण बहुत कम हैं।
और कारण हैं। ज्ञान संग्रह करना पड़ता है और प्रेम बांटना पड़ता है। तो
जो चीज संग्रह करनी पड़ती है, वह तो हम कर लेते हैं; क्योंकि उससे हमारे अहंकार को तृप्ति मिलती है। तो धन इकट्ठा कर लेते हैं, ज्ञान इकट्ठा कर लेते हैं, त्याग इकट्ठा कर लेते हैं! जो चीज भी इकट्ठी हम कर सकते हैं, वह कर लेते हैं।
लेकिन प्रेम का मामला उलटा है। प्रेम अकेली घटना है, जिसे हम इकट्ठा नहीं कर सकते, जिसको बांटना पड़ता है। प्रेम को आप इकट्ठा नहीं कर सकते। एक आदमी धन को इकट्ठा करके धनी हो जाएगा, लेकिन ऐसे ही कोई आदमी प्रेम को इकट्ठा करके प्रेमी नहीं हो सकता। प्रेम की धारा ठीक उलटी है। जितना

बांटो उतना प्रेम, जितना इकट्ठा करो उतना कम। जिसकी इकट्ठा करने की वृत्ति है, वह प्रेमी नहीं हो सकता।
पंडित की प्रवृत्ति इकट्ठे करने की होती है, वह ज्ञान इकट्ठा कर लेता है। ज्ञान बहुत इकट्ठा किया जा सकता है। और तभी फिर वह महावीर को या बुद्ध को या कृष्ण को जानने में असमर्थ हो जाता है। सच बात यह है कि फिर वह कृष्ण या बुद्ध या महावीर को जानता नहीं, बल्कि अपने ज्ञान के आधार पर पुनः निर्मित करता है, रि-कंस्ट्रक्ट करता है। वह फिर एक नया आदमी खड़ा कर लेता है, जो कि कभी था ही नहीं। वह उसके ज्ञान के अनुकूल व्यक्ति बना लेता है। इसलिए सभी महापुरुषों का चित्र झूठा हो जाता है। उन सबकी जो पीछे स्मृति बनती है, वह झूठी हो जाती है, वह हमारे द्वारा बनाई हुई होती है।
ज्ञान से कोई द्वार नहीं है किसी को समझने का, प्रेम से द्वार है। क्योंकि प्रेम यह नहीं कहता कि तुम ऐसे होओ तो ही मैं मानूंगा। प्रेम यह कहता है, तुम जैसे हो, उसको मैं प्रेम करने के लिए तैयार हूं। प्रेम यह कहता ही नहीं कि तुम ऐसे हो तो!
अगर मैं महावीर को प्रेम करता हूं तो वे मुझे कपड़े पहने मिल जाएं तो
भी मैं प्रेम करूंगा और वे नंगे मिल जाएं तो भी प्रेम करूंगा। लेकिन एक अनुयायी है, वह कहता है कि महावीर नग्न हैं, तो ही मैं प्रेम करूंगा! अगर वे नग्न नहीं हैं तो अज्ञानी हैं!
एक घटना घटी, मेरी एक मित्र, एक महिला हालैंड गई थी। वहां कृष्णमूर्ति
का एक अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन था, कोई छह-सात हजार लोग सारी दुनिया से इकट्ठे थे कृष्णमूर्ति को सुनने। वह मेरी परिचित महिला एक दुकान पर सांझ को गई है, उसके साथ दो और यूरोपियन महिलाएं थीं। वे तीनों एक छोटी सी दुकान पर कुछ खरीदने गई हैं।
वहां देख कर वे हैरान रह गई हैं, क्योंकि कृष्णमूर्ति वहां टाई खरीद रहे हैं! और न केवल टाई--एक तो यही बात बड़ी गलत मालूम पड़ी कि कृष्णमूर्ति जैसा ज्ञानी एक साधारण दुकान पर टाई खरीदता हो! तो ज्ञानी तो खतम ही हो गया उसी क्षण। और फिर न केवल टाई खरीद रहे हैं, बल्कि यह टाई लगा कर देखते हैं, वह टाई लगा कर देखते हैं; यह भी पसंद नहीं पड़ती, वह भी पसंद नहीं पड़ती! सारी दुकान की टाई फैला रखी हैं।
तो वे तीनों महिलाओं के मन में बड़ा संदेह भर गया कि हम किस व्यक्ति को सुनने इतनी दूर से आए हैं! और वह व्यक्ति एक साधारण सी दुकान पर टाई खरीद रहा है! और वह भी टाई में भी रंग मिला रहा है कि कौन सा मेल खाता है, कौन सा नहीं मेल खाता है!
उन दो यूरोपियन महिलाओं ने मेरी उस मित्र को कहा कि हम तो अब सुनने नहीं आएंगे। बात खतम हो गई है। एक साधारण आदमी को सुनने हम इतने दूर से व्यर्थ परेशान हुए। जिसको अभी कपड़ों का भी ख्याल है इतना ज्यादा, उसको क्या ज्ञान मिला होगा! वे दोनों महिलाएं सम्मेलन में सम्मिलित हुए बिना वापस लौट गईं।
उस मेरी मित्र ने कृष्णमूर्ति को जाकर कहा कि आपको पता नहीं है कि आपके टाई खरीदने से कितना नुकसान हुआ! दो महिलाएं सम्मेलन छोड़ कर चली गई हैं, क्योंकि वे यह नहीं मान सकतीं कि एक ज्ञानी व्यक्ति और टाई खरीदता हो। तो कृष्णमूर्ति ने कहा कि चलो, दो का मुझसे छुटकारा हुआ, यह भी क्या कम है! दो मुझसे मुक्त हो गईं, यह भी क्या कम है! दो का भ्रम टूटा, यह भी क्या कम है! कृष्णमूर्ति ने कहा, क्या मैं टाई न खरीदूं तो ज्ञानी हो जाऊंगा? अगर ज्ञानी होने की इतनी सस्ती शर्त है तो कोई भी नासमझ इसे पूरी कर सकता है। अगर इतनी सस्ती शर्त से कोई ज्ञानी हो जाता है तो कोई भी नासमझ इसे पूरी कर सकता है। लेकिन इतनी सस्ती शर्त पर मैं ज्ञानी नहीं होना चाहता। और इतनी सस्ती शर्त पर जो मुझे ज्ञानी मानने को तैयार हैं, वे न मानें, यही अच्छा है, यही शुभ है।
लेकिन हम सबकी ऐसी शर्तें होती हैं। और शर्तें इसीलिए होती हैं कि हमारा कोई प्रेम नहीं है। हमारी अपनी धारणाएं हैं, उन धारणाओं पर हम कसने की कोशिश करते हैं एक आदमी को! और ध्यान रहे, जितना अदभुत व्यक्ति होगा, उतनी ही सारी धारणाओं को तोड़ देता है; किसी धारणा पर कसा नहीं जा सकता। असल में अदभुत व्यक्ति का अर्थ ही यह है कि पुरानी कसौटियां उस पर काम नहीं

करतीं। अदभुत व्यक्ति, प्रतिभाशाली व्यक्ति न केवल खुद को निर्मित करता है बल्कि खुद को मापे जाने की कसौटियां भी फिर से निर्मित करता है।
और इसीलिए ऐसा हो जाता है कि महावीर जब पैदा होते हैं तो पुराने महापुरुषों के अनुयायी महावीर को नहीं पहचान पाते। क्योंकि उनकी कसौटियां जो रहती हैं, वे महावीर पर लागू नहीं पड़तीं। पुराना जो अनुयायी है, पुराने महापुरुषों का; वह पुरानी उन महापुरुषों के हिसाब से उसने धारणाएं बना कर रखी हैं, वह महावीर पर कसने की कोशिश करता है! महावीर उस पर नहीं उतर पाते, इसलिए व्यर्थ हो जाते हैं। लेकिन महावीर का अनुयायी वही बातें बुद्ध पर कसने की कोशिश करता है, और तब फिर मुश्किल हो जाती है। हमारा चित्त अगर पूर्वाग्रह से भरा है तो महापुरुष तो दूर, एक छोटे से व्यक्ति को भी हम प्रेम करने में समर्थ नहीं हो पाते। एक पत्नी पति को प्रेम नहीं कर पाती, क्योंकि पति कैसा होना चाहिए, इसकी धारणा पक्की मजबूत है! एक पति पत्नी को प्रेम नहीं कर पाता, क्योंकि पत्नी कैसी होनी चाहिए, शास्त्रों से सब उसने सीख कर तैयार कर लिया है, वही अपेक्षा कर रहा है! वह इस व्यक्ति को जो सामने पत्नी या पति की तरह मौजूद है, देख ही नहीं रहा है। और ऐसा व्यक्ति कभी हुआ ही नहीं है। यह बिल्कुल नया व्यक्ति है।
मैंने जो बातें महावीर के संबंध में कहीं, उन पर मेरा कोई पूर्व आग्रह नहीं है। कोई सूचनाओं के, किन्हीं धारणाओं के, किन्हीं मापदंडों के आधार पर मैंने उन्हें नहीं कसा है। मेरे प्रेम में वे जैसे दिखाई पड़ते हैं, वैसी मैंने बात की है। और जरूरी नहीं है कि मेरे प्रेम में वे जैसे दिखाई पड़ते हैं वैसे आपके प्रेम में भी दिखाई पड़ने चाहिए। अगर वैसा भी मैं आग्रह करूं, तो फिर मैं आपसे धारणाओं की अपेक्षा कर रहा हूं। मैंने अपनी बात कही, जैसा वे मुझे दिखाई पड़ते हैं, जैसा मैं उन्हें देख पाता हूं।
और इसलिए एक बात निरंतर ध्यान में रखनी जरूरी होगी--यह बात निरंतर ध्यान में रखनी जरूरी होगी कि महावीर के संबंध में जो भी मैंने कहा है, वह मैंने कहा है और मैं उसमें अनिवार्यरूप से उतना ही मौजूद हूं, जितने महावीर मौजूद हैं। वह मेरे और महावीर के बीच हुआ लेन-देन है। उसमें अकेले महावीर नहीं हैं, उसमें अकेला मैं भी नहीं हूं, उसमें हम दोनों हैं। और इसलिए यह बिल्कुल ही असंभव है कि जो मैंने कहा है, ठीक बिल्कुल वैसा ही किसी दूसरे को भी दिखाई पड़े। यह बिल्कुल असंभव है। मैं किसी आब्जेक्टिव महावीर की, किसी दूर वस्तु की तरह खड़े हुए व्यक्ति की बात नहीं कर रहा हूं। मैं तो उस महावीर की बात कर रहा हूं, जिसमें मैं भी सम्मिलित हो गया हूं, जो मेरे लिए एक सब्जेक्टिव अनुभव है, एक आत्मगत अनुभूति बन गया है। इसलिए बहुत सी कठिनाइयां होंगी।
जो भी मेरी बात को पढ़ेंगे, उन्हें समझने में बहुत कठिनाई और मुश्किल
हो सकती है। सबसे बड़ी मुश्किल तो यह होगी कि वे उस जगह खड़े नहीं हो सकते, जहां खड़े होकर मैं देख रहा हूं। लेकिन इतनी ही उनकी कृपा काफी होगी कि वे इसकी चिंता ही न करें। एक व्यक्ति ने एक जगह खड़े होकर कैसे महावीर को देखा है, इसको समझ भर लें। और फिर अपनी जगह से खड़े होकर देखने की कोशिश करें। जरूरी नहीं है कि उनका जो ख्याल होगा, वह मुझसे मेल खाए। मेल खाने की कोई जरूरत भी नहीं है।
लेकिन अगर इतने निष्पक्ष भाव से मेरी बातों को समझा गया तो जो भी व्यक्ति उतने निष्पक्ष भाव से समझेगा, उसे महावीर को समझने की बड़ी अदभुत कुशलता उपलब्ध हो जाएगी। और न केवल महावीर को, अगर उसने बहुत गौर से समझा तो वह महावीर को ही नहीं, बुद्ध को भी, मोहम्मद को भी, कृष्ण को भी समझने में इतना ही समर्थ हो जाएगा।
इतिहास तो जो बाहर से दिखाई पड़ता है, उसे लिख जाता है। और जो बाहर से दिखाई पड़ता है, वह एक अत्यंत छोटा पहलू होता है। और इसलिए इतिहास बड़ी सच्ची बातें लिखते हुए भी बहुत बार असत्य हो जाता है।
बर्क नाम का एक बहुत बड़ा इतिहासज्ञ विश्व-इतिहास लिख रहा था। और कोई पंद्रह वर्षों से लिख रहा था निरंतर। पंद्रह वर्षों का सारा जीवन उसने विश्व-इतिहास के लिखने में लगाया हुआ था। एक दिन दोपहर की बात है, वह इतिहास लिखने में लगा हुआ है और पीछे शोरगुल हुआ है। दरवाजा खोल कर वह पीछे गया।

उसके मकान के बगल से गुजरने वाली सड़क पर झगड़ा हो गया है। एक आदमी की हत्या कर दी गई है। बड़ी भीड़ है। सैकड़ों लोग इकट्ठे हैं, आंखों देखे गवाह मौजूद हैं। और वह एक-एक आदमी से पूछता है कि क्या हुआ? तो एक आदमी कुछ कहता है! दूसरे से पूछता है, वह कुछ कहता है! तीसरे से पूछता है, वह कुछ कहता है! आंखों देखे गवाह मौजूद हैं, लाश सामने पड़ी है, खून सड़क पर पड़ा हुआ है, अभी पुलिस के आने में देर है, हत्यारा पकड़ लिया गया है, लेकिन हर आदमी अलग-अलग बात कहता है! किन्हीं दो आदमियों की बातों में कोई तालमेल नहीं कि हुआ क्या! झगड़ा कैसे शुरू हुआ? कोई हत्यारे को जिम्मेवार ठहरा रहा है, कोई जिसकी हत्या की गई, उसको जिम्मेवार ठहरा रहा है! कोई कुछ कह रहा है, कोई कुछ कह रहा है! वे सब आंखों देखे गवाह हैं!
बर्क खूब हंसने लगा। लोगों ने पूछा, आप किसलिए हंस रहे हैं? आदमी की हत्या हो गई!
उसने कहा, मैं किसी और कारण से हंस रहा हूं। अंदर आया और वह पंद्रह वर्षों की जो मेहनत थी, उसमें आग लगा दी--वह जो विश्व-इतिहास लिख रहा था। और अपनी डायरी में लिखा कि मैं हजारों साल पहले की घटनाओं पर इतिहास लिख रहा हूं, मेरे घर के पीछे एक घटना घटती है, जिसमें चश्मदीद गवाह मौजूद हैं, फिर भी किसी का वक्तव्य मेल नहीं खाता, तो हजार-हजार साल पहले जो घटनाएं घटी हैं, उनके लिए किस हिसाब से हम मानें कि क्या हुआ, क्या नहीं हुआ? किसको मानें? कौन गवाही है? कौन ठीक है, कौन गलत है, कहना मुश्किल है। बर्क ने लिखा कि इतिहास भी एक कल्पना मालूम पड़ती है, तथ्य नहीं।
इतिहास भी एक कल्पना हो सकती है, अगर हमने बहुत ऊपर से पकड़ने की कोशिश की, और कल्पना भी सत्य हो सकती है, अगर हमने बहुत भीतर से पकड़ने की कोशिश की। सवाल आब्जेक्टिव, वस्तुगत नहीं है, सवाल सदा सब्जेक्टिव है।
तो महत्वपूर्ण महावीर उतने ही हैं, जितना महावीर को देखने वाला है।
और वह वही देख पाएगा, जो वह देख सकता है। क्या हम महावीर को अपने भीतर लेकर जी सकते हैं? जैसे एक मां अपने पेट में एक बच्चे को लेकर जीती है। क्या हम-- और जिसे हम प्रेम करते हैं, उसे हम अपने भीतर लेकर जीने लगते हैं। उस जीने से जो निखार आता है, उसमें हमारा भी हाथ होता है। उसमें महावीर भी होते हैं, और हम भी होते हैं। यह एक गहरा इन्वाल्वमेंट है।
यह उतना ही गहरा है, जैसे कि जब आप रास्ते के किनारे लगे हुए फूल को देख कर कहते हैं, बहुत सुंदर! तो आप सिर्फ फूल के बाबत ही नहीं कह रहे हैं, आप अपने बाबत भी कह रहे हैं! क्योंकि पड़ोस से, हो सकता है, एक आदमी निकले और कहे, क्या सुंदर है इसमें? इसमें कुछ भी तो सुंदर नहीं है। साधारण सा फूल है, घास का फूल है। वह आदमी भी जो कह रहा है, वह भी उसी फूल के संबंध में कह रहा है। रात एक भूखा आदमी है, आकाश की तरफ देखता है, चांद उसे रोटी की तरह मालूम पड़ता है, जैसे रोटी तैर रही हो आकाश में!
हेनरिक हेन एक जर्मन कवि था, वह तीन दिन तक भूखा भटक गया है जंगल में। पूर्णिमा का चांद निकला तो उसने कहा, आश्चर्य! अब तक मुझे सदा चांद में स्त्रियों के चेहरे दिखाई पड़े थे, और पहली दफे मुझे रोटी दिखाई पड़ी। मैंने कभी सोचा ही नहीं था कि चांद भी रोटी जैसा दिखाई पड़ सकता है। लेकिन भूखे आदमी को दिखाई पड़ सकता है। तीन दिन के भूखे आदमी को चांद ऐसा लगा, जैसे रोटी आकाश में तैर रही है!
आकाश में रोटी तैर रही है, इसमें चांद तो है ही, इसमें एक भूखे आदमी की नजर भी है। एक फूल सुंदर है, इसमें फूल तो है ही, एक एस्थेटिक, एक सौंदर्य-बोध वाले व्यक्ति की नजर भी सम्मिलित है। कोई फूल इतना सुंदर नहीं है अकेले में, जितना आंख उसे सुंदर बना देती है और प्रेम करने वाला उसे सुंदर बना देता है; और ऐसी चीजें खोल देता है उसमें, जो शायद साधारण किनारे से गुजरने वाले को कभी भी दिखाई न पड़ी हों।
तो मैंने जो भी कहा है, वह महावीर के संबंध में ही है, लेकिन मैं उसमें मौजूद हूं। और जो हम दोनों को समझने की कोशिश करेगा, वही मेरी बात को समझ पा सकता है। जो सिर्फ मुझे समझता है, वह भी नहीं समझ पाएगा; जो सिर्फ महावीर को शास्त्र से समझता है, वह भी नहीं समझ पाएगा। यहां दो व्यक्ति, जैसे दो नदियां संगम पर आकर घुल-मिल जाएं और तय करना मुश्किल हो जाए कि कौन

सा पानी किसका है, ऐसा ही मिलना हुआ है। और मैं मानता हूं कि ऐसा मिलना हो, तो ही एक नदी दूसरी नदी को पहचान पाती है, नहीं तो पहचान भी नहीं पाती।
और इसलिए इस निवेदन के साथ कि महावीर की जड़ प्रतिमा को, मृत प्रतिमा को, शब्दों से निर्मित रूप-रेखा को मैंने बिल्कुल ही अलग छोड़ दिया है। मैंने तो एक जीवित महावीर को पकड़ने की कोशिश की है। और यह कोशिश तभी संभव है, जब हम इतने गहरे में प्रेम दे सकें कि हमारा प्राण और उनके प्राण से एक हो जाए तो ही वे पुनरुज्जीवित हो सकते हैं। और प्रत्येक बार जब भी कोई व्यक्ति कृष्ण, बुद्ध, महावीर के निकट पहुंचेगा, तब उसे ऐसे ही पहुंचना पड़ेगा। उसे फिर से प्राण डाल देने पड़ेंगे। अपने ही प्राण उंडेल देगा तो ही उसे दिखाई पड़ सकेगा कि क्या है।
लेकिन फिर भी इस बात को निरंतर ध्यान में रखने की जरूरत है कि यह एक व्यक्ति के द्वारा देखे गए महावीर की बात है। एक व्यक्ति के द्वारा देखे गए महावीर की बात है, दूसरे व्यक्ति को इतनी ही परम स्वतंत्रता है कि और तरह से देख सके। और इन दोनों में न कोई विरोध की बात है, न कोई संघर्ष की बात है, न किसी विवाद की कोई जरूरत है।
आप पूछते हैं कि जो मैंने कहा, उसके लिए शास्त्रों के सिवाय आधार भी क्या हो सकता है? और मैं शास्त्रों के आधार को पूर्णतया निषेध करता हूं। फकीर था एक बोकोजू। बुद्ध के संबंध में बहुत सी बातें उसने कही हैं,
जो शास्त्रों में नहीं हैं! और बहुत से ऐसे वक्तव्य भी दिए हैं, जिनका कहीं भी कोई उल्लेख नहीं है! पंडित उसके पास आए शास्त्र लेकर और कहा कि कहां हैं बुद्ध की ये बातें? शास्त्रों में नहीं हैं। तो बोकोजू ने कहा, जोड़ लेना! पर उन्होंने कहा, बुद्ध ने यह कहा ही नहीं है। तो बोकोजू ने कहा, बुद्ध मिलें तो उनसे कह देना कि बोकोजू ऐसा कहता था कि कहा है! और न कहा हो तो कह देंगे!
यह बोकोजू अदभुत आदमी रहा होगा। और बुद्ध से कहलवाने की हिम्मत किसी बड़े गहरे प्रेम से ही आ सकती है। यह कोई साधारण हिम्मत नहीं है! यह उतने गहरे प्रेम से आ सकती है कि बुद्ध को ही सुधार करना पड़े।
एक और घटना मुझे स्मरण आती है। एक संत रामकथा लिखते थे। और वे इतनी अदभुत रामकथा लिख रहे थे--और रोज सांझ रामकथा पढ़ कर सुनाते थे--कि कहानी यह है कि हनुमान तक उत्सुक हो गए उस कथा को सुनने आने के लिए! अब हनुमान का तो सब देखा हुआ था, लेकिन कथा इतनी रसपूर्ण हो रही थी कि हनुमान भी छुप कर उस सभा में सुनते थे!
वह जगह आई, जहां हनुमान अशोक-वाटिका में गए सीता से मिलने। तो उस संत
ने कहा कि हनुमान गए अशोक-वाटिका में, वहां सफेद ही सफेद फूल खिले थे। हनुमान के बरदाश्त के बाहर हो गया, क्योंकि फूल सब लाल थे। हनुमान ने खुद देखा था। और यह आदमी तो देखा भी नहीं था, हजारों साल बाद कहानी कह रहा है। तो हनुमान ने खड़े होकर कहा कि माफ करिए, उसमें जरा सुधार कर लें। फूल सफेद नहीं, लाल थे। उस आदमी ने कहा कि फूल सफेद ही थे। तब हनुमान ने कहा कि फिर मुझे स्पष्ट करना पड़ेगा, मैं खुद हनुमान हूं! हनुमान अपने रूप में प्रकट हुए। मैं खुद हनुमान हूं और मैं गया था! अब तो सुधार कर लीजिए। उसने कहा कि नहीं, तुम्हीं सुधार कर लेना, फूल सफेद ही थे। हनुमान ने कहा, यह तो हद हो गई! हजारों साल बाद तुम कथा कह रहे हो और मैं मौजूद था, मैं खुद गया था! मेरी तुम कथा कहते हो और मुझे इनकार करते हो! उस आदमी ने कहा, लेकिन फूल सफेद ही थे, तुम सुधार कर लेना अपनी स्मृति में।
हनुमान तो बहुत नाराज हुए! कथा कहती है कि उस संत को लेकर वे राम के पास गए। राम से उन्होंने कहा कि हद हो गई! यह आदमी की जिद देखो! यह मुझमें सुधार करवाता है, मेरी स्मृति में! फूल बिल्कुल सुर्ख लाल थे, बगिया में जो खिले थे।
राम ने कहा कि वे संत ही ठीक कहते हैं। फूल सफेद ही थे, तुम सुधार कर लेना। तो हनुमान ने कहा, हद हो गई! तो राम ने कहा, तुम इतने क्रोध में थे कि आंखें तुम्हारी खून से भरी थीं। फूल लाल दिखाई पड़े होंगे! लेकिन फूल सफेद थे। वे ठीक कहते हैं।
बहुत बार, देखा हो तो भी जरूरी नहीं कि सच हो। और बहुत बार, न देखा हो
तो भी हो सकता है सच हो! सच बड़ी रहस्यपूर्ण बात है।

अभी मैं एक नगरी में था, एक बौद्ध भिक्षु मुझे मिलने आए। कुछ बात चलती
थी तो मैंने कहा कि बुद्ध के सामने एक व्यक्ति बैठा हुआ था, वह पैर का अंगूठा हिला रहा था। बुद्ध बोल रहे थे। तो बुद्ध ने उससे कहा कि मित्र, तेरे पैर का अंगूठा क्यों हिलता है? तो उस आदमी ने पैर का अंगूठा रोक लिया। और उसने कहा कि आप अपनी, अपनी आप बात जारी रखिए, फिजूल की बातों से क्या मतलब? पर बुद्ध ने कहा कि नहीं, मैं पीछे बात शुरू करूंगा। पहले पता चल जाए कि पैर का अंगूठा क्यों हिलता है? तो उस आदमी ने कहा, मुझे पता ही नहीं था, मैं क्या बताऊं? क्यों हिलता था, यह मुझे भी पता नहीं है! तो बुद्ध ने कहा, तू बड़ा पागल आदमी है। तेरा अंगूठा है, हिलता है, और तुझे पता नहीं! अपने अंगूठे का होश रख। और जब शरीर का होश नहीं रखेगा तो आत्मा का होश तो बहुत दूर की बात है।
तो उस बौद्ध भिक्षु ने कहा, लेकिन यह किस ग्रंथ में लिखा हुआ है? मैंने कहा, मुझे पता नहीं। मुझे पता नहीं, कहां लिखा हुआ है। और भी एक फकीर हुआ है चीन में, वह यह बात कहता था।
लेकिन उन्होंने कहा, लेकिन कहीं लिखा हुआ नहीं है किसी ग्रंथ में! मैं
तो सारे ग्रंथों का पाठी हूं, उनमें कहीं यह उल्लेख नहीं है।
हो सकता है, न हो। लेकिन जिस फकीर ने कहा है, वह उतना ही अधिकार रखता है जितना बुद्ध। और न भी घटी हो घटना यह, तो घटनी चाहिए थी! मैंने उससे कहा कि न भी घटी हो तो कोई फर्क नहीं पड़ता, लेकिन घटनी चाहिए थी। उस बौद्ध भिक्षु ने कहा, यह बात मैं मान सकता हूं। घटनी चाहिए थी। बात तो ऐसी है कि घटनी चाहिए थी।
इससे क्या फर्क पड़ता है कि घटी कि नहीं घटी? यह भी बहुत मूल्य का नहीं
है कि कौन सी घटना घटती है कि नहीं घटती है। बहुत मूल्य का यह है कि वह घटना क्या कहती है! बुद्ध ने बहुत मौकों पर लोगों को यह बात कही होगी कि जो शरीर के प्रति नहीं जागा हुआ है, वह आत्मा के प्रति कैसे जागेगा? और बहुत बार उन्होंने लोगों को टोका होगा उनकी मूर्च्छा में।
अब यह दूसरी बात है कि घटना कैसी घटी होगी। यह बहुत गौण बात है। महत्वपूर्ण यह है कि बुद्ध जागरण के लिए निरंतर आग्रह करते हैं। और जो शरीर के प्रति सोया हुआ है, वह आत्मा के प्रति कैसे जगेगा, यह भी कहते हैं। और बहुत बार लोगों की मूर्च्छा में उनको पकड़ लेते हैं कि देखो, तुम बिल्कुल सोए थे। और सोए हुए आदमी को बताना पड़ता है कि यह रही नींद! तभी टूट सकती है।
तो घटना बिल्कुल सच है, ऐतिहासिक न हो तो भी। और ऐतिहासिक होने से भी क्या होता है? इतिहास भी क्या है? इतिहास भी क्या है, जहां घटनाएं पर्दे पर साकार हो जाती हैं, इतिहास बन जाता है। और घटनाएं अगर पर्दे के पीछे ही रह जाएं तो इतिहास नहीं बनता है।
इसलिए इस देश में और सारी दुनिया में जो लोग जानते हैं, वे बड़े अदभुत हैं। कहानी है कि वाल्मीकि ने राम की कथा राम के होने के पहले लिखी। यह बड़ी मधुर बात है, और बड़ी अदभुत। राम हुए नहीं तब वाल्मीकि ने कथा लिखी और फिर राम को कथा के हिसाब से होना पड़ा। वह जो कथा थी, फिर कोई उपाय न था, क्योंकि वाल्मीकि ने लिख दी थी, तो फिर राम को वैसा होना पड़ा! वह सब करना पड़ा, जो वाल्मीकि ने लिख दिया था!
अब यह बड़ी अदभुत बात है। यानी यह इतनी अदभुत बात है कि इसे सोचना भी हैरान करने वाला है। राम हो जाएं, फिर कथा लिखी जाए, यह समझ में आता है। लेकिन वाल्मीकि कथा लिख दें, फिर राम को होना पड़े! और सब वैसा ही करना पड़े, जो वाल्मीकि ने लिख दिया! क्योंकि मुश्किल है, वाल्मीकि ने लिख दिया तो अब वैसा करना ही पड़ेगा!
तो वह जो उस बोकोजू ने कहा कि कह देना बुद्ध को कि फिर वे यह कह दें, अगर न कहा हो तो कह दें! तो वह उसी अधिकार से कह रहा है, जिस अधिकार से वाल्मीकि कथा लिखते हैं।
इतिहास पीछे लिखा जाता है, सत्य पहले भी लिखा जा सकता है। क्योंकि सत्य का मतलब है, जिससे अन्यथा हो ही नहीं सकता। इतिहास का मतलब है, जैसा हुआ; लेकिन इससे अन्यथा हो सकता था। इन सारी बातों पर ख्याल करने की जरूरत है! इतिहास का मतलब है, जैसा हुआ, लेकिन अन्यथा हो सकता था, कोई बाधा नहीं

है इसमें। सत्य का मतलब है, जैसा हो सकता है, जैसा हो सकता था, जिससे अन्यथा कोई उपाय नहीं है।
महावीर, बुद्ध, जीसस, इन जैसे लोगों के प्रति इतिहास की फिक्र नहीं करनी चाहिए। इतिहास इतनी, इतनी मोटी बुद्धि की बात है कि हो सकता है ये बारीक लोग उससे निकल ही जाएं, पकड़ में ही न आएं। उन्हें तो किसी और आंख से देखने की जरूरत है--सत्य की आंख से। और उस आंख से देखने पर बहुत सी बातें उदघाटित होंगी, जो शायद इतिहास नहीं पकड़ पाया है।
और इसलिए मैंने जो कहा है, और आगे भी कृष्ण, बुद्ध, कन्फ्यूशियस, लाओत्से और क्राइस्ट के संबंध में जो कहूंगा, उसका ऐतिहासिक होने से कोई संबंध नहीं है। इसलिए जिनकी ऐतिहासिक बुद्धि हो, उनसे कोई झगड़ा ही नहीं है, उनसे कोई विवाद नहीं है।
जगत को एक कवि की दृष्टि से भी देखा जा सकता है। और तब जगत इतने रहस्य खोल देता है, जितने इतिहास की दृष्टि से देखने वालों के सामने उसने कभी भी नहीं खोले। काव्य का अपना विज़न है, अपना दर्शन है। और चूंकि वह ज्यादा प्रेम से भरा है, इसलिए ज्यादा सत्य के निकट है। शास्त्र उसके मेल में भी पड़ सकते हैं, बेमेल भी हो सकते हैं। और चूंकि हमें यह ख्याल में नहीं रहा है, इसलिए जिन लोगों ने अतीत में इन सारे महापुरुषों की गाथाएं लिखी हैं, उनको भी समझना मुश्किल हो गया। क्योंकि उन गाथाओं को लिखते वक्त भी सत्य पर दृष्टि ज्यादा थी, तथ्य पर बहुत कम। तथ्य तो रोज बदल जाते हैं, सत्य कभी नहीं बदलता है। इतिहास तथ्यों का लेखा-जोखा रखता है। सत्य का लेखा-जोखा कौन रखेगा?
इसलिए जिनकी सत्य की बहुत फिक्र थी, उन्होंने इतिहास लिखा तक नहीं। जिनकी सत्य की बहुत फिक्र थी, उन्होंने इतिहास भी नहीं लिखा। यह बात बेमानी थी कि कौन आदमी कब पैदा हुआ, किस तारीख में, किस तिथि में। यह बात बेमानी थी, कौन आदमी कब मरा। यह बात भी अर्थहीन थी कि कौन आदमी कब उठा, कब चला, कब क्या किया। महत्वपूर्ण तो वह अंतर-घटना थी, जिसने उसे सत्य के निकट और सूर्य के निकट पहुंचा दिया। उस घटना को प्रकट कर सके, ऐसी पूरी की पूरी व्यवस्था की। वह व्यवस्था हो सकती है बिल्कुल ही काल्पनिक है, तो भी कठिनाई नहीं है। और हो सकता है कि इतिहास बिल्कुल ही वास्तविक है, तो भी व्यर्थ हो सकता है।
इतिहास तो यह है कि जीसस एक बढ़ई के बेटे थे। और सत्य जिन्होंने देखा, उन्होंने कहा कि वे ईश्वर के पुत्र हैं! तथ्य तो यह है कि एक बढ़ई के बेटे हैं। तथ्य यही है। इतिहास खोजने जाएगा तो बढ़ई के बेटे से ज्यादा क्या खोज पाएगा! लेकिन जिन्होंने जीसस को देखा, उन्होंने जाना कि वे परमात्मा के बेटे हैं। यह किसी और आंख से देखी गई बात है। और इन दोनों में तालमेल नहीं भी हो सकता है। क्योंकि बढ़ई का बेटा और ईश्वर के बेटे में कितना फर्क है! इससे ज्यादा फर्क और क्या हो सकता है?
लेकिन फिर भी मैं कहूंगा कि जिन्होंने बढ़ई का बेटा ही देखा, वे पहचान नहीं पाए उस आदमी को, जो बढ़ई के बेटे से आया था, लेकिन बढ़ई का बेटा नहीं था। जिसका आना और बड़े जगत से था।
और वह नहीं पहचान पाया कोई भी! क्योंकि जब जीसस ने कहा कि सारा राज्य मेरा है, और जो मेरे साथ चलते हैं, वे साम्राज्य के मालिक हो जाएंगे, तो जो तथ्यों को जानते थे, वे चिंतित हो गए। उन्होंने कहा, मालूम होता है जीसस कोई क्रांति, कोई बगावत करना चाहता है! और जो सच में राजा है, उस पर हावी होना चाहता है। और जब जीसस को पकड़ा गया और उनको कांटे का ताज पहनाया गया और उनसे पूछा गया कि क्या तुम राजा हो? तो उसने कहा, हां! हम साम्राज्य जीते हैं, इन सबको साम्राज्य जिताने के लिए ले जा रहे हैं--किंगडम ऑफ गॉड, ईश्वर का राज्य! लेकिन फिर भी समझ में नहीं पड़ सका कि वह आदमी क्या कह रहा है! क्या तुम सम्राट होने का दावा करते हो? तो उसने कहा, हां, क्योंकि मैं सम्राट हूं!
लेकिन यह बात बिल्कुल सरासर असत्य थी। क्योंकि सम्राट तो जीसस नहीं थे--गरीब आदमी का बेटा था। पागल हो गया था, ऐसा मालूम होता है। उस लाख आदमियों की भीड़ में जो सूली देने इकट्ठे हुए थे, दस-पांच ही थे, जो पहचान

पाए कि हां, वह सम्राट है! बाकी ने तो कहा कि खतम करो इस आदमी को, यह कैसी झूठी बातें बोल रहा है!
मरते वक्त पायलट ने--जो गवर्नर था, वाइसराय था वहां का, जिसके सामने सूली की आज्ञा दी गई, जिसकी आज्ञा से सूली लगी--पायलट ने मरते वक्त जीसस के पास खड़े होकर पूछा, व्हाट इज़ ट्रुथ? सत्य क्या है?
जीसस चुप रह गए। कुछ उत्तर नहीं दिया।
सूली हो गई। प्रश्न वहीं खड़ा रह गया पायलट काः सत्य क्या है?
जीसस ने उत्तर क्यों नहीं दिया?
उत्तर इसलिए नहीं दिया कि सत्य दिखाई पड़ता है या नहीं दिखाई पड़ता-- पूछा नहीं जा सकता है।
तथ्य पूछे जा सकते हैं। तथ्य क्या है, व्हाट इज़ दि फैक्ट? बताया जा सकता है कि यह तथ्य है।
जब कोई पूछे, सत्य क्या है? तो बताया नहीं जा सकता, देखा जा सकता है।
तो जीसस चुपचाप खड़ा रह गया कि देख लो, अगर दिखाई पड़ जाए तो तुम्हें पता
चल जाएगा कि सत्य क्या है--यह आदमी सम्राट है या नहीं! और अगर तथ्य की बात ही पूछते हो तो फिर ठीक है, यह आदमी बढ़ई का लड़का है और सूली पर लटका देने योग्य है; क्योंकि इसका दिमाग खराब हो गया है और अपने को सम्राट घोषित कर रहा है!
इधर मैं निरंतर इस संबंध में चिंतन करता रहा हूं कि तथ्य को पकड़ने वाली बुद्धि सत्य को पकड़ सकती है या नहीं? और मुझे लगता है कि नहीं पकड़ सकती। सत्य को पकड़ने के लिए और गहरी आंख चाहिए, जो तथ्यों के भीतर उतर जाती है। और तब ऐसे सत्य हाथ लगते हैं, जिनकी कि तथ्य कोई खबर नहीं दे पाता। इसी दृष्टि से यह सारी बात की है।